सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

४

(१९०३-१९०५)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

भूमिका

प्रस्तुत खण्डमे अक्टूबर १९०३ से जून १९०५ तककी सामग्री दी गई है। इस समय गाधीजी जोहानिसबर्गमे थे और उनका समय तथा ध्यान धन्धेसे सम्बन्धित कार्यों और सार्वजनिक सेवामे बँटा रहता था। उनकी वकालत बहुत अच्छी चल रही थी और आमदनी भी खासी थी। एक पत्र-पुस्तिकामें उनके एक हजार पत्र उपलब्ध है। इनमें से ज्यादातर मुवक्किलोके नाम है और सारेके-सारे लगभग तीन महीनेके अरसेमें लिखे गये है। उन दिनो वे अपने घरसे दफ्तरतक ६ मील रोज साइकिलपर जाया करते थे और पीछे तो पैदल ही जाने लगे थे। इससे मालूम होता है कि उन दिनो भी उनका जीवन कितना सादा था।

जून १९०३ में डर्बनसे साप्ताहिक *इंडियन ओपिनियनका* प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था। वह गाधीजीकी उदारतापूर्ण आर्थिक सहायतासे चालू रखा गया और अक्टूबर १९०४ में तो उन्होने उसे पूरी तरह अपने हाथोमें ले लिया। पत्रमे उनके समय और शक्तिका बड़ा भाग ही नही, वरन् उनकी सम्पत्ति भी लगातार खपती रही। उन्होने गोखलेको लिखा था (जनवरी १३, १९०५) कि उनका दफ्तर अखबारके हितकी दृष्टिसे चलाया जा रहा है और वे अबतक ३,५०० पौडकी जिम्मेदारी उठा चुके है।

सन् १९०५ की दो प्रमुख घटनाएँ थी — जोहानिसबर्गमे प्लेग और फीनिक्स बस्तीकी स्थापना। गाधीजीने उस समय इन दोनो घटनाओका जो उल्लेख किया है, वह उनके द्वारा *आत्मकथामें* अधिक तटस्थ वृत्तिसे दिये गये विवरणकी पृष्ठभूमि है। इन दोनों उल्लेखोमें कुछ मनोरंजक असमानता भी दिखाई देती है। जब मार्चमें जोहानिसबर्गकी भारतीय बस्तीमे प्लेग फैला तब गाधीजीने बीमारीका विस्तार रोकने और बीमारोकी सार-सँभालके लिए तत्काल जोरदार कार्रवाई प्रारम्भ कर दी। उनकी यह कार्रवाई इतनी दूरदर्शितापूर्ण और प्रभावकारी थी कि उसकी तुलना उनके प्रथम जीवनी लेखक रेवरेड जे० जे० डोकने "उस गरीब आदमी" से की है "जिसने अपनी बुद्धिमत्तासे नगरकी रक्षा की थी" (*एक्लीज़ियास्टिक्स* ९, १५)। इसके कई साल बाद जब गाधीजीने इस घटनाकी बात लिखी, तब उन्होने अपने साहसके बारेमे स्वयं थोड़ा संतोष व्यक्त किया; क्योकि उससे लोगोकी सेवा हुई थी और लोगोंपर उसका अच्छा प्रभाव पडा था। देखिए *आत्मकथा* (भाग ४, अध्याय १५, १६, १७)। किन्तु उस समय *इंडियन ओपिनियनमें* गाधीजीने जो लेखमाला प्रकाशित की और समाचारपत्रोमे उनकी जो मुलाकाते और चिट्ठियाँ छपी उनसे इस बातका एक दूसरा ही पहलू प्रकट होता है। उनमें गांधीजीने भारतीयोके जबरदस्त कामपर जोर दिया है और पूरी तरहसे इस बातको सिद्ध करनेकी कोशिश की है कि प्लेग फैलनेका मुख्य कारण नगर-परिषदकी लापरवाही थी। गांधीजी इस दुःखजनक विषयपर दीर्घ कालतक निरन्तर लिखते रहे। अपने इस कामके विषयमें उन्होंने एक जगह कहा है कि वे इसे करते हुए "सत्य, लोक-कल्याण और स्वदेशवासी" इन त्रिदेवोंकी आराधना कर रहे है।

उन्होने समाचारपत्रोंको प्लेगके सम्बन्धमे जो पत्र लिखे और इसी कालमें निरामिष भोजनके विषयमे जो दिलचस्पी ली उनसे हेनरी एस० एल० पोलकका ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुआ। श्री पोलक *क्रिटिक* नामक पत्रके उपसम्पादक थे। दोनोंका स्वभाव समान होनेके कारण वे जल्दी ही एक-दूसरेके मित्र बन गये। दूसरे सज्जन अल्बर्ट वेस्ट इसके पहले

ही छपाईका अपना धन्धा छोडकर *इंडियन ओपिनियनमें* आ चुके थे। उन्होने देखा कि पत्रकी आर्थिक स्थिति गाधीजी जितनी समझते थे उससे भी अधिक कमजोर है, किन्तु फिर भी उन्होने गाधीजीको विश्वास दिलाया कि लाभ हो या न हो, वे वहाँ बने रहेगे। तब गाधीजी इस स्थितिकी जाँच करनेके विचारसे और यदि सभव हो तो उसमें सुधार करनेके उद्देश्यसे तत्काल जोहानिसबर्गसे डर्बनको रवाना हो गये। उन दिनो गाधीजी जोहानिसबर्गमें रहकर वकालत करते थे और *इंडियन ओपिनियन* डर्बनमे छपता और प्रकाशित होता था। पोलक उनको छोड़नेके लिए स्टेशनपर आये और उन्होने गाधीजीको यात्रामे पढ़नेके लिए रस्किनकी पुस्तक, *अनटू दिस लास्ट* दी। रेल-यात्रा पूरे २४ घटोकी थी। गाधीजीने यात्रामे इस पुस्तकको पढा और उनके मनपर इसका जादूका-सा प्रभाव पडा, उससे उनके जीवनमें "तत्काल और व्यावहारिक क्रान्ति" हो गई। वादमें उन्होने इस पुस्तकका गुजरातीमे *सर्वोदय* नामसे अनुवाद किया। यह पुस्तक लोककल्याणकी दृष्टिसे जीवनको रचनेवालोकी मार्गदर्शिका है।

गाधीजी सत्यकी खोज कर्मके पथपर चलकर करते थे और व्यावहारिक क्षेत्रमे सफल होनेपर ही वे किसी विचारको मूल्यवान मानते थे। रस्किनके उपदेशोमे गाधीजीके गम्भीर विश्वासोकी छाया तो थी ही, साथ ही उनमे शरीर-श्रम अथवा अपने हाथोसे काम करनेका जो गौरव वताया गया था, उनमे गाधीजीको *इंडियन ओपिनियनको* स्वावलम्बी बनानेकी तात्कालिक समस्याका हल भी दिखाई दिया। गाधीजी इसके एक या दो सप्ताह पहले अपने चचेरे भाइयो और भतीजोके पास टोगाट गये थे। वहाँ उनकी दूकानके पीछे एक सुन्दर बाग था (प्रभुदास गाधीकी गुजराती पुस्तक *जीवननुं परोढ* पृष्ठ ६३)। उस समय उन्होने सोचा कि बगीचा सुन्दरताके साथ-साथ, दूकानकी तरह आमदनीका विश्वस्त साधन भी हो सकता है। इस तरह इस पुस्तकके पठन और उसकी पृष्ठभूमिमे मननका परिणाम यह हुआ कि गाधीजीने १,००० पौंडमें डर्बनसे १४ मील दूर १०० एकड़की एक जमीन खरीदी और उसमे फीनिक्स बस्तीकी स्थापना की। शक्ति-चालित मशीनोपर निर्भर न रहना पड़े, इसलिए साप्ताहिकका आकार घटाकर 'फुलस्केप' कर दिया गया। २४ दिसम्बर १९०४के अंकमे प्रकाशित "अपनी वात" शीर्षक लेख ३१ दिसम्बरके अकमे फिरसे छापा गया। इसमे इस साहसिक कार्यके सिलसिलेमे गाधीजीके प्रयत्नोका कोई उल्लेख नही है, किन्तु नेटाल भारतीय काग्रेस, ब्रिटिश भारतीय सघ और उन निष्ठावान् कार्यकर्ताओके सहयोगकी मुक्त-कण्ठसे सराहना की गई है, जिन्होने इस "नवल और क्रान्तिकारी योजनाको स्वीकार कर लिया था।" गाधीजीने इस घोषणामे *इंडियन ओपिनियनके* उद्देश्य इस प्रकार दोहराये है "सम्राट एडवर्डकी यूरोपीय और भारतीय प्रजाओमे निकटतर सम्बन्ध स्थापित करना, लोकमतको शिक्षित करना, गलतफहमीके कारणोको दूर करना, भारतीयोके सामने उनके अपने दोष रखना और उन्हे, जब कि वे अपने अधिकारोकी प्राप्तिका आग्रह कर रहे है, उनका कर्त्तव्य-पथ दिखाना।"

उन दिनो दक्षिण आफ्रिकामे ब्रिटिश भारतीय अनेक बड़ी-बडी निर्योग्यताओसे त्रस्त थे। एक उपनिवेशमे जो निर्योग्यताएँ थी, दूसरेमें उनका रूप कुछ वदल जाता था और कुछका रूप कालान्तरसे भी वदलता रहता था। इन निर्योग्यताओमे प्रवास और व्यापार करने, रेलगाडियो और घोडागाडियोमें सफर करने, पैदल-पटरियोपर चलने, बस्तीके बाहर रहने और व्यापार करने तथा अचल सम्पत्ति खरीदने आदिपर प्रतिबन्ध शामिल थे। गोरोकी व्यापारिक ईर्ष्या और कौमी दम्भ, एशियाई विभागकी कारगुजारियो, विक्रेता-परवाना अधिनियमके अन्तर्गत परवाना अधिकारियो तथा नगर-परिषदोके सनक-भरे फैसलों और पहरेदार सघो तथा श्वेत-सघोकी उत्तेजक कार्रवाइयोके रूपमे प्रगट होते रहते थे। बोअरोके समयके बुरे कानूनोका,

ब्रिटिश शासन-कालमें और भी कठोरतासे पालन किया जा रहा था। जनवरी १९०४ के "सिंहावलोकन" शीर्षक लेखमे और दिसम्बर १९०४ के "सालाना लेखा-जोखा" शीर्षक लेखमे गाधीजीने भारतीयोके आसपास छाई हुई घोर घटाओका चित्र खीचा है और उन शुभ लक्षणोका भी उल्लेख किया है जो उन्हे मानव स्वभावके प्रति अपने अटूट विश्वासके कारण दिखाई देते थे। उन्होने कहा कि आपत्ति मनुष्यको शोध कर खरा बनाती है। वे कहते है. "हमारा काम केवल यह है कि जिसे हम सही और न्यायपूर्ण समझते है उसे बराबर करते रहे और परिणाम भगवान पर छोड दे, जिसकी अनुमति या जानकारीके बिना पत्ता भी नही हिलता।"

गिरमिटिया भारतीय मजदूरोकी समस्याके सम्बन्धमे इस समयतक गाधीजीका रुख सख्त हो चुका था। उन्होने भारत-सरकारके इस निर्णयका स्वागत किया कि जबतक ट्रान्सवालमे पहलेसे आबाद भारतीयोकी अवस्थामे सुधार नही किया जाता तबतक भारतसे और अधिक मजदूरोंके प्रवासकी अनुमति नही दी जायेगी। उन्होने गिरमिटिया एशियाई मजदूरोका आयात करने और स्वतन्त्र एशियाइयोको अमानुषताके साथ दास बनाये रखनेके प्रयत्नोका विरोध किया। किन्तु इसका कारण कोई कोरी आदर्शवादी कल्पना नही थी, बल्कि वे भावी पीढ़ियोके कल्याणकी गहरी चिन्ता और उनके प्रति हार्दिक सहानुभूतिसे प्रेरित होकर यह करनेपर विवश हुए थे। किसी राजनीतिक या आर्थिक सिद्धान्तसे नही, उन्होने मानव-जातिके प्रति अपने प्रेमके कारण श्री स्किनरकी खानोमे काम करनेवाले चीनी मजदूरोके सम्बन्धमे पेश की गई रिपोर्टकी आलोचना की। उसी विचारसे प्रेरित होकर उन्होने श्री क्रेसवेलके सोनेकी खानकी कम्पनीकी मैनेजरीसे इस्तीफा देनेपर सराहना भी की। श्री क्रेसवेलने इस्तीफा इसलिए दिया था कि मालिक अच्छे वेतनपर गोरे मजदूरोकी नियुक्तिका विरोध करते थे और केवल मुनाफेकी चिन्तामे बाहरसे लाये हुए मजदूरोको कम मजदूरी देकर कामपर लगाना चाहते थे ("श्री क्रेसवेलका बमगोला", २६–११–१९०३)। गाधीजी साधारणतया आफ्रिकियों या रगदार लोगोंके कष्टोकी चर्चा कभी-कभी ही किया करते थे। युवक नेता गाधीके आचरणमे स्वदेशीकी भावना समा गई थी और उनका व्यवहार, साथी कार्यकर्ताओके व्यवहारकी वे जितनी जिम्मेदारी ले सकते थे, उसीसे मर्यादित होता था।

गाधीजी सदा समझौतेके लिए तैयार रहते थे — ऐसे समझौतेके लिए, जिससे यूरोपीयोकी उचित इच्छाओ और हितोकी पूर्ति भी पूर्ण रूपसे होती हो। उन्होने इस बातका ध्यान रखकर ही प्रवास और व्यापारिक परवानोके सम्बन्धमे ब्रिटिश भारतीय सघके उचित और नरम प्रस्तावोका स्वागत किया। देशमे भारतीयोकी "बाढ" की सम्भावनाको रोकनेके उद्देश्यसे केपके कानूनके नमूनेका प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम सुझाया और भारतीयोके कारण यूरोपीय व्यापारको अनुचित रूपसे हानि न हो इसलिए उन्होने सर्वोच्च न्यायालयमे अपीलके अधिकारके साथ, परवानोपर नगरपालिकाओके नियन्त्रणका सिद्धान्त स्वीकार किया। ("पत्र : *स्टारको*," ३–९–१९०४)। उन्होने लेडीस्मिथके भारतीय दूकानदारोको टाउन क्लार्ककी हिदायतोपर अमल करने और अपनी दूकाने जल्दी बन्द करनेकी सलाह दी, ताकि यूरोपीयोका विरोध समाप्त हो जाये। जब दीर्घकालीन और कठिन सघर्षके बाद हबीब मोटनके परीक्षात्मक मुकदमेमे भारतीय व्यापारियोकी जीत हो गई, तब भी गाधीजीने उन्हें समझाया कि यद्यपि कानूनने उन्हे चाहे जहाँ व्यापार करनेकी स्वतन्त्रता दे दी है, तो भी वे इसका पूरा लाभ न उठाये; बल्कि अपनी जीतके फ़लोका उपभोग "धीरज और दूरदर्शितापूर्ण सयमसे" करे। अग्रेजोकी न्याय-भावनाकी सराहना करते हुए उन्होने लिखा. "ब्रिटिश राज्यमे द्वेषभाव कितना ही तीव्र क्यों न हो, सर्वोच्च न्यायालयोके रूपमे सुरक्षाका एक आश्रय स्थान हमेशा उपलब्ध है।" ("सुयोग्य विजय", १४–५–१९०४)। पॉचेफस्ट्रूमके "पहरेदारो" को हिंसा और

उत्तेजनासे दूर रहनेकी अपील करते हुए उन्होंने लिखा "ब्रिटिश शासनका इतिहास साविधानिक विकासका इतिहास है। ब्रिटिश झंडेके नीचे कानूनकी इज्जत करना लोगोके स्वभावका हिस्सा बन गया है" ("पॉचेफस्ट्रूमके पहरेदार", २४-१२-१९०४)।

गाधीजीने इस समयके लेखो और विशेषत. दादाभाई नौरोजीको लिखे गये अपने पत्रोमें बार-बार अग्रेजोंसे विवेक रखकर अपने पिछले वचनो और आश्वासनोपर कायम रहनेकी अपील की है। किन्तु कभी-कभी उनका रुख कठोर हो जाता है; जैसे उस समय, जब वे ट्रान्सवालके सम्बन्धमें कहते हैं: "यहाँ रहनेवाली आबादीके साथ या तो अच्छा बरताव किया जाये या उसे देशसे खदेड दिया जाये। उनको देशसे निकालनेकी कार्रवाई सख्त तो होगी किन्तु वह सखियाका जहर जैसा देकर धीरे-धीरे किन्तु निश्चित रूपसे प्राण लेनेकी क्रियाकी अपेक्षा कही अधिक सदय होगी" (८-१०-१९०४)। कुछ महीनोंके बाद गाधीजीने देखा कि यदि ब्रिटिश भारतीय, कानूनसे प्राप्त अपने अधिकारोंके मुताबिक मनचाही जगह व्यापार करना चाहते हों और अपने "व्यापार, सम्पत्तिके स्वामित्व और आवागमनके अधिकारोके सम्बन्धमें यूरोपीयोके समान आधारपर रखे जानेके दावेकी पूर्ति" चाहते हों तो उन्हे जीवन-मरणके संघर्षमें उतरना पडेगा (२८-६-१९०५)

उन्होंने अपनी दृष्टिको एक क्षणके लिए भी विद्वेष, रोष या ओछेपनके कारण -धुँधला नही होने दिया। व्यक्तियो और राष्ट्रोमे जो गुण था उसे स्वीकार किया। यहाँतक कि सर जॉन रॉबिन्सन, डॉ० जेमिसन और भूतपूर्व राष्ट्रपति क्रूगर जैसे विवादास्पद व्यक्तियोमें उन्होंने कुछ-न-कुछ सराहनीय गुण देखे। राष्ट्रपति क्रूगर उनकी दृष्टिमें एक महान और ईश्वरपरायण व्यक्ति थे, जो "कभी-कभी गलत दिशामे जानेवाली एकनिष्ठ देशभक्ति" का एक उदाहरण छोड गये हैं ("स्वर्गीय श्री क्रूगर", २३-७-१९०४)।

तफसीलकी छोटीसे-छोटी बात उनके लिए छोटी नही थी। अन्यायसे युद्ध करते हुए "सामान्य जीवनकी छोटी-छोटी बातोंकी" उन्होंने कभी उपेक्षा नही की। १७ और १९ अप्रैल १९०५ को छगनलाल गाधीके नाम लिखे गये पत्रोमे उन्होंने बाहरसे आये हुए काम और अखबारकी निःशुल्क भेजी जानेवाली प्रतियोकी लम्बी सूचीके सम्बन्धमें बडी फिक्रके साथ पूछताछ की है; और अच्छी रोटी बनानेके लिए मैदे और घीके विधिवत् मिश्रणके सम्बन्धमे तफसीलवार हिदायतें भी दी है।

राजनीतिक सफलता और असफलताके समस्त उतार-चढावोसे गुजरते हुए गाधीजीने प्रारम्भसे ही *इंडियन ओपिनियनका* उपयोग "सम्पादक और पाठकोके बीच हार्दिक और स्वच्छ सम्बन्धोकी स्थापना" के लिए किया। उनका लेखन सोद्देश्य और सही दिशामे होता था। उन्होंने गुजराती और अग्रेजी दोनोमे एक ही विषयसे सम्बन्धित लेख लिखे है, किन्तु गुजराती लेख अपेक्षाकृत विविध ज्ञानपूर्ण और लोक-कल्याणकी भावनासे भरे हुए है, जब कि अग्रेजीमें लिखे हुए लेख सैद्धान्तिक अधिक है। इन दोनोंकी तुलना करनेसे यह विदित होता है कि पाठकोका लेखनकी शैली निश्चित करनेमें कितना बड़ा हाथ होता है। उनके "आत्मत्याग" और "फुटकर मिनिटोका सच्चा मूल्य" शीर्षक लेख, उनके धर्म-सम्बन्धी व्याख्यानोंकी भाँति ही, यह जाहिर करते है कि वे अपने धन्धे या सार्वजनिक कार्योंमें कितने ही व्यस्त क्यो न रहे हो, किन्तु उनके कारण उनकी दृष्टिसे जीवनके आधारभूत सत्य कभी ओझल नही होते थे।

पाठकोंको सूचना

इस खण्डमें जो प्रार्थनापत्र और स्मरणपत्र दिये गये हैं और जिनकी संख्या इससे पहले खण्डोकी अपेक्षा कम है, गाधीजीके लिखे हुए माने गये हैं। इस मान्यताके कारण कुछ विस्तारसे पहले खण्डकी भूमिकामे बताये जा चुके हैं। गाधीजी *इंडियन ओपिनियनमें* लिखते थे, इसके सम्बन्धमे उनकी सामान्य साक्षी उनके आत्मकथा-सम्बन्धी लेखोसे मिलती है। इसके अतिरिक्त उनके पुराने साथी श्री एच० एस० एल० पोलक और श्री छगनलाल गांधीकी राय एवं, जहाँ कही मिली वहाँ, अन्य साक्षीको विशेष लेखोके लेखकत्वका निर्णय करनेमे उचित महत्त्व दिया गया है।

अंग्रेजी सामग्रीसे अनुवाद करनेमे हिन्दीको मूलके समीप रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है। छापेकी स्पष्ट भूले सुधार कर अनुवाद किया गया है और मूलमे व्यवहृत शब्दोके सक्षिप्त रूप हिन्दीमें पूरे करके दिये गये है।

गुजरातीसे अनुवाद करनेमे मुख्य उद्देश्य यह रखा गया है कि अनुवादमे मूल सामग्री सही-सही उतार दी जाये। किन्तु उसकी भाषामें हिन्दीपन लानेका प्रयत्न अवश्य किया गया है जिससे वह पढ़नेमे अच्छी हिन्दी लगे।

प्रत्येक लेखकी लेख-तिथि, यदि वह उपलब्ध है, दाहिने कोनेमे ऊपर दी गई है। यदि मूल लेखमें कोई तिथि नही थी तो चौकोर कोष्ठकोमे अनुमानित तिथि, जहाँ आवश्यक हो वहाँ कारणोंके साथ, दे दी गई है। सूत्रके साथ अन्तमे दी गई तिथि प्रकाशनकी है। पत्रोंमे, वे जिन्हे लिखे गये हैं उनके नाम और पते, मूलमे उपलब्ध है तो, सिरेपर बाये कोनेमे दिये गये हैं।

मूलकी भूमिकामे और मूल सामग्रीके भीतर चौकोर कोष्ठकोमे जो-कुछ सामग्री दी गई है, वह सम्पादकीय है। गोल कोष्ठक जहाँ मूलमे आते है, कायम रख लिये गये है। गाधीजीने लेखोमे, कभी-कभी अपने ही लेखो या पत्रोसे उद्धरण दिये है। ये हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापे गये है।

मूल पाठको समझनेमे सहायक अधिकांश जानकारी पादटिप्पणियोंमे दी गई है। उनमें इसी खण्डमें अन्यत्र प्रकाशित सामग्रीके सन्दर्भमे विशेष लेखोके शीर्षको और उनकी तिथियोका उल्लेख कर दिया गया है। सन्दर्भ पहले खण्डके अगस्त १९५८ के संस्करणसे लिये हैं। आत्मकथाके सन्दर्भ गाधीजीकी मूल गुजराती पुस्तक *सत्यना प्रयोगो* अथवा *आत्मकथाकी* नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित १९५२ की नवी आवृत्तिसे लिये हैं। उनमे सम्बन्धित अश और अध्याय मात्र दिये गये है, क्योकि विभिन्न आवृत्तियोमे पृष्ठ-सख्याएँ विभिन्न है।

इस खण्डकी सामग्रीके साधन-सूत्र और इसके कालसे सम्बन्धित तारीखवार जीवन-वृत्तान्त खण्डके अन्तमे दिये गये है।

साधन-सूत्रोंमे एस० एन० सकेत साबरमती सग्रहालय, अहमदाबादमे उपलब्ध कागज-पत्रोका, जी० एन० गाधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमे उपलब्ध कागज-पत्रोका और सी० डब्ल्यू० सम्पूर्ण गाधी वाङमय द्वारा प्राप्त कागज-पत्रोका सूचक है। संकेतोंमें कही कही सी० एस० ओ० "कलोनियन सेक्रेटरीका ऑफिस" के लिए और "सी० ओ०" कलोनियन ऑफिसके लिए आते है।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम इन सस्थाओ और व्यक्तियोके ऋणी है गाधी स्मारक निधि और सग्रहालय तथा अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीका पुस्तकालय, नई दिल्ली, नवजीवन ट्रस्ट और साबरमती आश्रम सरक्षक व स्मारक ट्रस्ट और सग्रहालय, श्री छगनलाल गाधी, अहमदाबाद, भारत सेवक समिति, पूना, कलोनियल ऑफिस पुस्तकालय तथा इडिया ऑफिस पुस्तकालय, लन्दन, प्रिटोरिया और पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज, सार्वजनिक पुस्तकालय, केपटाउन; सार्वजनिक पुस्तकालय, जोहानिसबर्ग, श्री अरुण गाधी, बम्बई और *इंडिया*, *इंडियन ओपिनियन*, *आउटलुक* और *स्टार* समाचारपत्र।

अनुसन्धान और सन्दर्भकी सुविधाओके लिए गाधी स्मारक सग्रहालय तथा इंडियन कौसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय तथा सूचना और प्रसारण मन्त्रालयका अनुसन्धान और सन्दर्भ विभाग, नई दिल्ली; साबरमती सग्रहालय और गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद, ब्रिटिश म्यूजियम पुस्तकालय, लन्दन, राजकीय पुस्तकालय, प्रिटोरिया और विश्वविद्यालय पुस्तकालय, जोहानिसबर्ग हमारे धन्यवादके पात्र है।

विषय-सूची

चित्र-सूची

१. नेटालका प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम

अभीतक हम जिसे प्रवासी-प्रतिबन्धक विधेयकके[1] रूपमे जानते थे, उसपर सम्राट्की मजूरी मिल गई और वह सरकारी *गज़टमें* कानूनके रूपमे प्रकाशित कर दिया गया है। अब वह पूरी शक्ति और प्रभावसहित उपनिवेशमे लागू हो गया है। ब्रिटिश सरकारसे उसके मजूर होनेमे कभी किसीको शका नही रही। अब उपनिवेश बहुत शक्ति-सम्पन्न बन गये है और दिन-प्रतिदिन और भी अधिक शक्तिशाली बनते जा रहे है। इसलिए सम्राट्के भारतीय प्रजाजनोके लिए तो उन सब नियन्त्रणोके सामने धैर्य और शान्तिसे सर झुकाना ही रहा, जो उपनिवेशी उनपर लादना पसन्द करे। बस, हम भी लॉर्ड मिलनरके[2] साथ-साथ यह आशा लगाये रहे कि "समय बीतने पर, और बातचीतकी मददसे," उपनिवेशी खुद ही अपने तरीकोकी भूल समझ लेगे और इस महान शक्तिशाली साम्राज्यके एक अगके निवासियोके नाते हमारे प्रति अपने कर्त्तव्योको पहचानकर महसूस करने लगेगे कि उन्हे उनका पालन करना चाहिए। पुराने और नये कानूनके बीच खास फर्क कहाँ-कहाँ है, यह इस मौकेपर दिखाना अच्छा होगा।

पुराना

(१) भाषा-विषयक शर्त यह थी कि कानूनके साथ अर्जीका जो एक साधारण नमूना दिया गया था उसके अनुसार एक अर्जी यूरोपकी किसी भी भाषाकी लिपिमें लिख सकनेकी योग्यता अर्जदारमें हो।

नया

(१) प्रवासी-अधिकारी किसी भी अर्जीका मजमून बोलता जायेगा। वही अर्जदारको लिखना होगा।

पुराना

(२) अधिकारी प्रवासियोंके नाबालिग बच्चे, जो २१ वर्षसे अधिक उम्रके नहीं होंगे, उपनिवेशमें उनके साथ आ सकेंगे। बच्चोंके लिए भाषाकी कोई कसौटी नहीं होगी।

नया

(२) अब बालिग होनेकी उम्र मनमाने तौरपर १६ वर्ष निश्चित कर दी गई है।

पुराना

(३) हर-कोई आदमी, जो यह सिद्ध कर सके कि वह दो वर्षसे उपनिवेशमें रह रहा है, उपनिवेशका निवासी होनेका प्रमाणपत्र पानेका अधिकारी होगा और इसलिए उसका प्रवेश निषिद्ध नहीं होगा।

नया

(३) यह अवधि अब बढ़ाकर तीन वर्ष कर दी गई है।

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ३८७-८८ तथा पृष्ठ ४२४-२५।

२. सर अल्फ्रेड मिल्नर, केप कालोनीके हाई कमिश्नर और गवर्नर (१८९७-१९०१), ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर उपनिवेशके (१९०१-१९०५)।

पुराना

(४) अपने मित्रों अथवा मुख्तियारोंके द्वारा अर्जी देनेपर अर्जदारोंको अस्थायी प्रवेशपत्र दे दिये जाते थे।

नया

(४) अब यह आग्रह रखा जाता है कि अर्जदार खुद हाजिर होकर अर्जी दे।

पुराना

(५) कानून इस बारेमें कुछ नहीं कहता था कि अपनी पाँच सालकी गिरमिटकी अवधि-भर उपनिवेशकी सेवा कर चुकनेवाला गिरमिटिया मजदूर उपनिवेशका निवासी माना जायेगा या नहीं।

नया

(५) जहाँतक कानूनसे सम्बन्ध है, इस तरह पाँच वर्षतक उपनिवेशमें जो रह चुका है वह उपनिवेशका बाशिन्दा नहीं माना जायेगा।

इस तरह इस विधेयकके खिलाफ ब्रिटिश भारतीयोके युक्तिसगत आपत्ति करनेपर भी पाँच आवश्यक बातोमे उपनिवेशके कानूनमे नियन्त्रण अधिक सख्त बना दिये गये है और इसका भी कोई भरोसा नही कि अब आगे और कुछ नही होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-१०-१९०३

२. श्री वायबर्ग और एशियाई मजदूर

ट्रान्सवालके खान-आयुक्त श्री वायबर्गकी श्रम-आयोगके समक्ष दी गई गवाही अबतकके गवाहों द्वारा प्रयुक्त भूमिकाकी अपेक्षा अधिक ऊँची भूमिकापर स्थित है, और यद्यपि वे विधानपरिषदके सदस्य हैं, फिर भी उन्होंने कुछ खरी-खरी बाते कहनेमें संकोच नही किया है। ट्रान्सवालमें एशियाई मजदूरोको लानेके कट्टर और अथक विरोधी श्री क्विनके प्रश्नोके जवाबमे उन्होने जो बातें कही, उनमे से कुछ अत्यन्त प्रभावकारी बातें हम नीचे दे रहे है।

श्री वायबर्गने कहा :

> खानोंमें अकुशल गोरे मजदूरोंसे काम लेनेके जो प्रयोग हुए हैं उनके बारेमें मुझे प्रत्यक्ष कोई जानकारी नहीं है; परन्तु मैं इस विवादका बहुत दिलचस्पीके साथ अध्ययन करता रहा हूँ। गोरे मजदूरोंके उपयोगके बारेमें मेरी राय इस प्रसिद्ध लोकोक्तिमें आ गई है कि 'जहाँ चाह है वहाँ राह भी है'। अगर गोरे मजदूरोके उपयोगकी इच्छा लोगोंमें बहुत प्रबल हो तो मुझे मानना ही पड़ेगा कि वैसा होकर रहेगा। मैं तो इसे मुख्यतः एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण राजनीतिक प्रश्न समझता हूँ। यह सब इसपर निर्भर है कि हम किस नीतिपर चलना चाहते हैं।
>
> इस प्रश्नका निर्णय पूर्णतः खानोके मालिकोको करना है कि खानोंमें गोरे मजदूरोसे काम लिया जाये, या स्थानीय अथवा बाहरके रंगदार जातिके मजदूरोंसे। वे अपने

इंजीनियरोंसे कह दें, 'हम चाहते हैं कि आप गोरे मजदूरोंको लानेका पूरा प्रयत्न करें और उनसे अधिकसे-अधिक और अच्छेसे-अच्छा काम किस तरह लिया जाये यह जो बतायेगा उसे खूब इनाम दिया जायेगा।' अगर मालिक ऐसा करें तो मेरा खयाल है, गोरे मजदूरोंसे काम लेनेकी जोरोंसे कोशिशें होने लगेंगी और इसमें सफलता भी मिलने लगेगी। इसके विपरीत, अगर खान-मालिक यह कहते रहेंगे, 'हम गोरे मजदूरोंको पसन्द नहीं करते' तो मेरा खयाल है, इंजीनियर कभी गोरे मजदूरोंको लानेका प्रयत्न करने और उसे सफल बनानेकी पर्याप्त प्रेरणा नहीं पायेंगे और इंजीनियरके रूपमें उन्हें ऐसी प्रेरणा मिलनी भी नहीं चाहिए।

श्री व्हाइटसाइडके जवाबमे श्री वायबर्गने आगे कहा :

लड़ाईसे पहलेके दिनोंमें सार्वजनिक कामोंमे मुझे बहुत दिलचस्पी थी और किसी समय मैं दक्षिण आफ्रिकी संघका अध्यक्ष भी था। संघकी नीति यह थी कि जितने भी अधिक अंग्रेजोंको ट्रान्सवालमें लाया जा सके, लाना चाहिए। मेरी, और मैं समझता हूँ, हर अंग्रेजकी, तब यही नीति थी। इस बारेमें कहीं दो रायें हो ही नहीं सकती थीं कि अंग्रेजोंको यहाँ आकर बसनेके लिए जितना अधिक प्रोत्साहन दिया जा सके, देना चाहिए। यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण थी। मैं समझता हूँ कि देशके हर वफादार आदमीका उद्देश्य यही होना चाहिए। परन्तु वफादार और गैर-वफादारकी बात अभी छोड़ दीजिए। मैं तो कहता हूँ कि अगर हम दक्षिण आफ्रिकाको कैनडा और आस्ट्रेलियाकी भाँति, जो गोरोंके देश है, साम्राज्यका महत्त्वपूर्ण भाग बनाना चाहते हैं तो हमको यही करना चाहिए। नहीं तो इसकी भी स्थिति जमैका, ब्रिटिश गियाना अथवा उष्ण कटिबन्धके समीपस्थ अन्य देशोंकी जैसी हो जायेगी, जहाँ गोरे काम लेनेवाले मालिक हैं और अधिकांश असली निवासी गुलामोंसे कुछ ही अच्छे हैं। हमें इस स्थितिसे बचना चाहिए। इस दृष्टिसे यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि यहाँ अधिकांश आबादी गोरोंकी हो जाये और ये गोरे ऐसे हों जो अपना सारा काम खुद करें। यह रुख बड़ा पतनकारी है कि अगर हमको दक्षिण आफ्रिकामे रंगदार मजदूर काफी नहीं मिलते तो हम इनकी पूर्ति किसी दूसरे जरियेसे कर लें।

श्री वायबर्गके इन प्रभावकारी वाक्योसे स्पष्ट हो जाता है कि उनकी रायमे एशियासे लाये जानेवाले गिरमिटिया मजदूरोकी स्थिति गुलामोसे कुछ ही अच्छी होगी। वे सरकारी सहायतासे एशियासे मजदूर लानेका जो विरोध कर रहे हैं उसका एक आधार यह भी है। अब, यह रुख ऐसा है जिसपर किसी भी समझदार आदमीको आपत्ति नही हो सकती। हम तो यही आशा करते है कि उनकी गवाही महत्त्वपूर्ण समझी जायेगी और जो सज्जन उचित और अनुचितका विचार छोड़कर केवल अपने लाभकी खातिर एशियाई मजदूरोका शोषण करनेके लिए उत्सुक है, उनके मनसूबे विफल कर दिये जायेंगे। स्पष्ट ही श्री वायबर्ग एक सिद्धान्तप्रिय पुरुष है और अपने सिद्धान्तोके इतने पक्के है कि वे धन लेकर भी स्वार्थी वर्गोंके दबावका मुकाबला कर सकते हैं, क्योकि श्री क्विनने उनसे यह तथ्य उगलवा लिया कि उन्हे सयुक्त स्वर्णखान (कासालिडेटेड गोल्डफील्ड्स) को इसीलिए छोडना पडा। खान-मालिक श्री वायबर्गसे अपेक्षा करते थे कि वे अपने राजनीतिक विचारोको दबा दे, या बदल दे। एक दिलचस्प बात और भी ध्यानमे रखने लायक है — श्री वायबर्ग यह नही मानते कि यहाँ देशी मजदूरोकी किसी प्रकार

भी कमी है। जब श्री क्विनने उनसे कहा कि आपके पहले जो गवाहियाँ गुजरी है उनसे आपके ये कथन मेल नही खाते, तब श्री वायबर्गने कहा :

> यहाँ जो कुछ हो रहा है उसे देखने-समझनेकी मुझे असाधारण सुविधाएँ प्राप्त है और मेरा तो खयाल है कि इन बाहरके जिलोमें तत्काल बहुत अधिक मजदूरोकी माँग होनेकी कोई सम्भावना नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-१०-१९०३

३. ऑरेंज रिवर कालोनीमें ईश्वरका मजाक

परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर सर हैमिल्टन जॉन गूल्ड-ऐडम्सने अपने दस्तखतोसे घोषणा प्रचारित की है कि इस मासका अन्तिम रविवार नम्रता और प्रार्थनाका या कृतज्ञता-प्रकाशन-का — जैसी भी स्थिति हो — दिवस नियत किया गया है, "ताकि हम अपने आपको परमात्माके सामने नम्र बनाये और उससे विनती करे कि वह इस देशको अनावृष्टिके कोपसे बचाये और यहाँ विपुल और स्फूर्तिदायिनी वर्षा करे।" घोषणामे आगे कहा गया है कि "अगर सर्वशक्तिमान प्रभुकी इच्छासे इससे पहले ही वर्षा हो जाये तो मै घोषित करता हूँ कि यह दिन कृतज्ञता-प्रकाशनका दिन मनाया जाये।" यह विधिका विधान है कि इस घोषणाके तुरन्त बाद ही एक नई घोषणा हुई है, जिसमें तमाम रंगदार लोगोके लिए चेचकके टीके लगवाना अनिवार्य घोषित किया गया है और कहा गया है कि, अगर वे इसमे गफलत करेगे तो उन्हे पाँच पौड जुर्माना देना होगा, अथवा उसके बदले १४ दिनकी कड़ी कैदकी सजा भुगतनी होगी। इन दो घोषणाओका साथ-साथ प्रकट होना तो नि सन्देह विशुद्ध सयोगकी ही बात है। चेचकके खिलाफ इस साव-धानीको हम तो आवश्यक ही मानते है, और जहाँतक रंगदार जातियोके लिए यह टीका खास तौरपर अनिवार्य कर देनेका सवाल है, उसपर भी हमें कोई बहुत भारी शिकायत नही है। परन्तु चूँकि यह दूसरी घोषणा ऑरेंज रिवर उपनिवेशमे हो रही है, अत. यह रंगदार जातियोके प्रति उस अत्यन्त विरोधी नीतिका नमूना है, जो उपनिवेशको पुरानी सरकारसे विरासतके रूपमें मिली है।

फिर पहली घोषणाका अर्थ क्या रहा? [प्राचीन कालमें जब मनुष्य अपने आपको नम्र बनाते थे, तब कुछ त्याग करते, बहुत बडा आत्म-निरीक्षण करते, अपने पापोका प्रायश्चित्त करते और इस तरह जीवनका नया अध्याय शुरू करते थे।] इस घोषणाका मसविदा श्री एच० एफ० विल्सनने बनाया है और लेफ्टिनेंट गवर्नरने उसपर दस्तखत किये है। क्या इन दोनो सज्जनोको कभी, क्षण भरके लिए ही सही, यह भी खयाल हुआ है कि इसमे उनका प्रायश्चित्त करनेका कही कोई इरादा नही है, अथवा जिस सरकारका वे प्रतिनिधित्व कर रहे हैं उसकी नीतिको — चाहे वह पाप-भरी या कैसी भी रही हो — बदलनेका कोई विचारतक नही है? हम यह कहनेकी धृष्टता करते है कि [उपनिवेशमें रंगदार जातियोके प्रति अन्धा और बुद्धिहीन द्वेष भरा पडा है।] जिन ब्रिटिश भारतीयोकी सहायता आवश्यकताके समय उपनिवेशियोने खुशीसे ली थी, उनके लिए उन्होने उपनिवेशके द्वार जान-बूझकर बन्द कर दिये है। याद रहे, ईश्वरके समक्ष यह एक राष्ट्रीय पाप है। जबतक यह नीति जारी रखी जाती है तबतक उपनिवेशमे सर्वशक्ति-

मान ईश्वरकी दृष्टिमें जो स्वीकार हो सके ऐसी नम्रता आ ही नही सकती, क्योकि वह तो मनुष्यकी चमडीके रगको नही, उसके गुणावगुणोको देखेगा और तब निर्णय करेगा। हमारे सामने तो एशियाके पैगम्बर — हजरत ईसाका प्रमाण है। वे भी रगदार जातिके ही थे। उन्होने कहा है कि केवल तोतेकी तरह दुहराई गई प्रार्थना स्वर्गमे स्थान नही दिलाती। उनके शब्द है "जो आदमी 'हे प्रभु, हे प्रभु!' कहकर मुझे पुकारते है वे सभी स्वर्गके राज्यमे प्रविष्ट नही होगे, किन्तु वहाँ वही प्रवेश पायेगा जो मेरे पिताकी इच्छाका अनुसरण करता है।" प्रार्थना वही है, जिसके साथ अनुरूप क्रिया भी हो, अन्यथा वह व्यर्थ तोतारटन्त-मात्र है। बाइबिल कहती है "पृथ्वी परमात्माकी है।" उपनिवेशवासियोने इस मूल वचनको बदल दिया है। वे कहते है "पृथ्वी हमारी है।" अत जबतक ईश्वरकी आज्ञाओको पैरो तले कुचला जाता है तबतक प्रार्थनाका दिन निश्चित करना निरा ढोग है। फिर भी हम स्वीकार करेगे कि घोषणा द्वारा ईश्वरका मजाक बुद्धिपूर्वक नही किया जा रहा है। यह तो सकट और जरूरतके समय ईश्वरके नाम निकली हुई हृदयकी पुकार है। परन्तु साथ ही यह हमारी स्वभावगत कमजोरीका एक सुन्दर उदाहरण भी है। हम ईश्वरको अपने नापसे नापते है और भूल जाते है कि उसके तरीके हमारे तरीकोसे अलग है। अगर ऐसा नही होता तो जिसे हम भूलसे नम्रता और प्रार्थनाका नाम देते है उसके बावजूद हमसे बहुतसी चीजें छिन गई होती। प्रभु सर्वज्ञ है। उसका सूरज भले और बुरे सबको समान रूपसे प्रकाश देता रहता है।

परन्तु क्या हम परमश्रेष्ठ और उनकी सरकारसे क्षणभर रुकने और सोचनेके लिए नही कह सकते? घोषणासे इतना तो प्रकट है कि हृदयमे ईश्वरके प्रति श्रद्धा है। जिस हृदयमे ऐसी श्रद्धा निवास करती है, क्या उसके लिए एक समस्त जातिको, महज इसलिए कि उसकी चमडीका रग उससे जुदा है, निन्दित बताना सुसगत है, जबकि दोनो एक ही राजाके प्रति राजभक्तिके बधनोसे बँधे है? क्या ब्रिटिश भारतीयोने ऐसी कोई बुराई की है, जिससे वे इतने अपमानित किये जानेके योग्य ठहरे, जितने अपमानित वे उपनिवेशमे किये जाते है? किन्तु अगर रगदार जातियोके प्रति इस जिहादको जारी ही रखना है, तो झूठमूठ नम्रताका नाम लेकर प्रार्थनाके लिए दिन मुकर्रर करके ईश्वर और मानवताके प्रति अपराध क्यो करते है?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-१०-१९०३

४. एशियाई मुहकमा

अन्यत्र हम *बारबर्टन गोल्डफील्ड्स न्यूज़के* सवाददाताका एक पत्र छाप रहे है जिसे हमारे सहयोगी *रैंड डेली मेलने* उचित ही ज्ञानवर्धक बताया है। ट्रान्सवालकी वर्तमान सरकारने उपनिवेशके कार्योके प्रवन्धपर जो भारी खर्च किया है, उसकी चर्चा इस पत्रमे बहुत साफ-साफ भाषामें की गई है। अगर सवाददाताके बताये अक अविश्वसनीय नही है, तो यह बिलकुल साफ है कि पिछली बोअर-सरकार हमारी वर्तमान सरकारके मुकाबलेमें कुछ भी नही जँचती। *गोल्डफील्ड्स न्यूज़के* लेखकने जो लम्बी सूची दी है उसमे हम एशियाई मुहकमेको भी जोड़ सकते है, जिसपर सालाना १०,००० पौड खर्च किये जाते है, और इतनेपर भी एशियाइयोको उसका तिलभर भी लाभ नही मिलता। पिछली सरकारके जमानेमें इस खर्च जैसा कोई खर्च नही था, क्योकि वह भारतीय हितोकी चाहे कितनी ही विरोधी रही हो, परन्तु उसने अलग एशियाई मुहकमा कभी नही खोला था। पाठकोको याद होगा कि सर पर्सी फिट्ज़पैट्रिकने[1] इस फी-आदमी एक पौडके भारी अपव्ययका सख्त विरोध किया था, क्योकि ट्रान्सवालमे पूरे १०,००० भारतीय भी शायद ही हो। फिर जब हम यह खयाल करते है कि यह खर्च उन लोगोके नियन्त्रणके लिए किया जा रहा है जो ससारमे सबसे अधिक निर्दोष है तथा जो कभी पुलिसको परेशान नही करते, तो आश्चर्य होता है कि ट्रान्सवाल सरकार इसके औचित्यको कैसे सिद्ध कर सकती है। खैर, सुन रहे है कि छँटनी आ ही रही है। उपनिवेशके सारे असैनिक प्रशासनकी सफाई की जानेको है। हमारा तो खयाल है कि एशियाई मुहकमा एक ऐसा मुहकमा है, जिसे सबसे पहले छाँट दिया जाना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–१०–१९०३

५. जोहानिसबर्गकी भारतीय बस्ती

जोहानिसबर्ग नगर-परिषदकी स्वास्थ्य-समितिने परिषदके सम्मुख एक प्रतिवेदन पेश किया है जिसे हम *स्टारसे* लेकर अन्यत्र छाप रहे है। इसे पढकर दु ख होता है। अगर इस समितिकी सिफारिशोको नगर-परिषद मान्य कर लेती है और सरकार भी इनके आधारपर दिये गये सुझावोपर अपनी मजूरी दे देती है, तो ट्रान्सवालमें बसे अधिकाश भारतीयोकी किस्मतका फैसला हमेशाके लिए हो जाता है। यह स्मरणीय है कि ट्रान्सवालमे जितनी भारतीय आबादी है उसमे से आधीसे भी अधिक जोहानिसबर्गमें है। नगर-परिषदने जिस बस्तीको हालमे ही जब्त कर लिया है उससे कोई एक मीलके फ़ासलेपर काफिरोकी वर्तमान बस्ती है, जिसे हमने देखा भी है। समितिकी अपेक्षा है कि जिन लोगोको पुरानी बस्तीसे स्थान-वचित किया गया है केवल उन्हीको नही, बल्कि जोहानिसबर्ग शहरमें बसे भारतीयोको भी यहाँ रहनेके लिए मजबूर किया जाये। उनके लिए स्वास्थ्य-समितिने यही जगह चुनी है। साफ-साफ शब्दोमे स्वास्थ्य-समितिका सुझाव यह है कि ब्रिटिश भारतीय दूकानदारोके मुँहकी रोटी छीन ली जाये। वहाँ जानेपर

१. ट्रान्सवाल विधान परिषदके सदस्य।

आपसमें वे जो कुछ देन-लेन करे सो बात दूसरी है, परन्तु व्यापारके नामसे वहाँ कुछ भी होना सम्भव नही हो सकेगा। फिर भी लॉर्ड मिलनर हमें आश्वासन दे ही रहे हैं कि *बाजारोंके* लिए ऐसे स्थान चुने जायेंगे जिनमें भारतीयोको शहरकी गोरी और काफिर — दोनो आबादियोके व्यापारका काफी हिस्सा मिल सकेगा। यह स्पष्ट नही है कि समितिने पहलेके ५० × ५० के बजाय अब जो ३० × २० के बाडे बनानेका सुझाव दिया है वह भारतीय बस्तीपर भी लागू है या नही। देखे, सरकार इस अन्यायपूर्ण प्रस्तावके बारेमे क्या कहती है। ट्रान्सवालमें काम बहुत जल्दी-जल्दी होते है। करोडपति चाहते है कि थोडे वर्षोमे ही यहाँका सब सोना निकाल ले। नगर-परिषदने हजारो निर्दोष लोगोकी जमीने बातकी बातमे छीन ली है, इसलिए स्वास्थ्य-समितिके नीचे लिखे शब्दोका अर्थ क्या है, सो हम ठीक तरहसे समझ सकते है.

> **बर्गसंडॉर्पकी पुरानी भारतीय मजदूर बस्ती और अस्वच्छ क्षेत्रके दूसरे हिस्सोसे जिन एशियाइयोंको हटाया जायेगा, उनको बसानेके लिए तुरन्त स्थानका प्रबन्ध करना अति आवश्यक है। अतः यह जरूरी है कि इस योजनाको जल्दसे-जल्द हाथमें लिया जाये।**

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–१०–१९०३

६. ट्रान्सवालके लिए परवाने

परवानोके नियमोके सम्बन्धमे एक विज्ञापन हमने पिछले अकमे छापा था। हम अपने भारतीय पाठकोका ध्यान उस विज्ञापनकी तरफ दिलाना चाहते है। इतने सीधे-सादे, फिर भी कारगर नियम बनानेपर हम मुख्य परवाना-सचिव कप्तान हैमिल्टन फाउलको बधाई देना चाहते है। पाठक देखेंगे कि अब उन्हे परवाने प्राप्त करनेके लिए छ-छ. जगहोपर नही दौडना होगा। पहले अर्जदारोंको भिन्न-भिन्न शहरोके परवाना-दफ्तरोमे जाना पडता था। अब इसकी जरूरत नही रह गई है। हमारी रायमें यह कल्पना बहुत अच्छी और मौलिक है। अब तो शरणार्थीको सिर्फ इतना करना होगा कि वह परवानेके लिए अर्जीका एक फार्म प्राप्त कर ले, उसे भर दे, मजिस्ट्रेटकी उपस्थितिमें उसपर अपने दस्तखत कर दे और मुख्य परवाना-सचिवके पास उसे भेज दे। बस, इसके जवाबमे उसे इस अर्जीकी पहुँच लौटती डाकसे मिल जायेगी और फिर उसकी बारी आनेपर ट्रान्सवालमें प्रवेश पानेका अधिकारपत्र उसके पास पहुँच जायेगा। तब वह खुद जोहानिसबर्ग जाये और ट्रान्सवालमे बसनेका स्थायी अधिकारपत्र ले ले। कुछ लोगोको शायद यह कुछ कठिन प्रतीत हो कि जो लोग ट्रान्सवालके दूसरे हिस्सोमे बसना चाहते हैं उन्हें भी पहले जोहानिसबर्ग आना पड़ेगा; परन्तु यहाँ दो विकल्पोमे से एकके चुनावकी बात थी। एक तो यह कि परवाने प्राप्त करनेके दफ्तर भिन्न-भिन्न शहरोमे हो और दूसरा यह कि सब जोहानिसबर्ग आयें। सो इन दोनोमें से दूसरा विकल्प हमे कम असुविधाजनक प्रतीत होता है; क्योकि इन आनेवालोका बहुत अधिक प्रतिशत तो जोहानिसबर्गकी तरफ ही आकर्षित होता है। अर्जदारोको याद रखना चाहिए कि ट्रान्सवालमे प्रवेशका अधिकारपत्र मिलनेके बाद उन्हे निश्चित समय मिलेगा, जिसके अन्दर उन्हे वहाँ जरूर पहुँच जाना होगा। इसलिए उन्हे इस बातका खास तौरपर ध्यान रखना होगा कि वे वहाँ अवधि बीत जानेपर देरसे न पहुँचे। इन परवानोके नियमोमे शरणार्थियोके लिए तो एक नया युग-सा शुरू हो गया है। जो चीज उन्हे बगैर किसी परेशानी और खर्चके आसानीसे मिल जानी चाहिए थी, उसको पानेकी कोशिशमे

पहले उनकी गाढी कमाईका बहुत-सा पैसा लुट जाता था। कप्तान फाउल अर्जदारोको यह भी स्मरण दिलाते है कि "अर्जीके फार्म या परवानेके लिए कोई शुल्क या कीमत नही देनी है और अगर अर्जदारको अनुमतिपत्रके दफ्तरके किसी कर्मचारीके खिलाफ कभी कोई शिकायत हो तो वह सीधा मुख्य परवाना-सचिवको सूचित करे।" शरणार्थियोको ध्यान रखना चाहिए कि उन्हे अपनी दरखास्तें किसी मुख्तियारके मार्फत नही, सीधे खुद मुख्य परवाना-सचिवके पास भेजनी है। अब अगर वे मुख्तियारो या वकीलोपर बेकार पैसा खर्च करेगे तो इसमे दोष उन्हीका होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–१०–१९०३

७. पॉचेफस्ट्रूमका व्यापार-संघ

पॉचेफस्ट्रूमके व्यापार-सघके अध्यक्ष श्री हार्टलेने सघको दिये अपने वक्तव्यमें नीचे लिखी बाते कही है:

> कुलियोंके सवालपर संघ गंभीरतापूर्वक सोचता रहा है। हमारी कोशिश यह रही है कि अब नये परवाने न जारी किये जायें। और नये आये हुए लोगोंको उनके लिए बने *बाजारोंतक* ही सीमित रखा जाये। फिर भी हम देखते हैं कि शहरके अनेक भागोंमें नई दूकानें खुल गई हैं। और स्थानीय अधिकारियोंसे हमें इस सवालका कोई सन्तोषजनक जवाब नहीं मिलता कि इस मामलेको निपटानेके लिए जो नया अध्यादेश जारी किया गया है उसपर अमल क्यों नहीं हो रहा है। दूसरे सघोसे भी हमारी चिट्ठी-पत्री चल रही है कि हम सब मिलकर इस मामलेमें आगे बढ़ें। संघके सदस्योसे मैं जोरदार अनुरोध करना चाहता हूँ कि कुलियोके आव्रजनको रोकनेके लिए हर तरहकी कोशिश करनी चाहिए; क्योकि यूरोपीय व्यापारियोंके लिए वे भयंकर खतरेका कारण साबित होनेवाले है।

स्पष्ट ही पॉचेफस्ट्रूमके सज्जन पूर्वी ट्रान्सवाल पहरेदार सघ[1] (ईस्ट रैंड विजिलेंट्स) का अनुकरण कर रहे हैं। उन्हे इस बातकी बडी चिन्ता है कि पॉचेफस्ट्रूम नगरका एक-एक भारतीय दूकानदार एक ऐसी पृथक बस्तीमे भेज दिया जाये, जहाँ उसे कोई धधा ही न मिल सके। सघकी बैठकमें श्री हार्टलेने यह घोषित किया कि

> कुलियोके प्रश्नके बारेमें मै कह सकता हूँ कि यह मामला उच्च अधिकारियोंके विचाराधीन है, और मुझे जो-कुछ बताया गया है, उससे मुझे विश्वास होता है कि अच्छा होगा यदि अभी तीन महीने इसे हम जैसाका-तैसा छोड़ दें। इस अवधिमें मेरा खयाल है कि सरकार गोरे व्यापारियोको सन्तोष देने योग्य कुछ कदम उठायेगी।

हम भली भाँति अनुमान कर सकते है कि ये उच्चाधिकारी कौन हो सकते है जिन्होने श्री हार्टलेको आश्वासन दिया है कि तीन महीनेके अन्दर-अन्दर पॉचेफस्ट्रूम नगरमें से भारतीयोको निकाल

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ४०३।

बाहर कर दिया जायेगा। और इन पृथक बस्तियोंके बारेमें हम जैसा सुन रहे है, अगर वे ऐसी ही रही तो इन गरीब दूकानदारोकी क्या खूब दशा होगी! ध्यान देनेकी बात है, जैसा कि श्री हार्टलेके बयानसे स्पष्ट है, कि पॉचेफस्ट्रूमके यूरोपीय व्यापारी अपने साथी भारतीय व्यापारियोंके विरोधी है। इसलिए अगर सरकार उनकी बात मजूर कर लेगी तो कहना होगा कि सारा व्यापार खुद ही हडपनेकी इच्छा रखनेवालोके स्वार्थपूर्ण आन्दोलनकी विजय हो गई। ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोपर अगले वर्ष क्या-क्या मुसीबते आयेंगी इसका पहले ही अनुमान हो जानेपर कुछ महीने हुए परमश्रेष्ठ उच्चायुक्तको एक दरखास्त भेजी गई थी। इसपर परमश्रेष्ठ क्या जवाब देते है, यह जाननेके लिए हम अत्यन्त आतुर है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-१०-१९०३

८. चीनी मजदूरोंके बारेमें श्री स्किनरकी रिपोर्ट

खानमालिकोके सघने श्री एच० रॉस स्किनरको ससारके उन तमाम भागोके दौरेपर भेजा था, जिनका चीनके साथ कुछ भी सम्पर्क है। वे लौट आये है और उन्होने अपना प्रतिवेदन सघके सम्मुख पेश कर दिया है। वह जोहानिसबर्गके अखबारोमे प्रकाशित हुआ है। उसमे मजदूरोके हितोकी चर्चाका एक भी अनुच्छेद ढूँढे नही मिलता। प्रतिवेदन योग्यतापूर्वक लिखा गया है और अको तथा तथ्योसे भरा पडा है। तथापि भावनाके सर्वथा अभावके कारण वह एक अत्यन्त निराशाजनक विवरण है। खान-उद्योगसे सम्बन्धित मजदूरोके प्रश्नपर एक भावनाशून्य और विशुद्ध व्यावसायिक दृष्टिके अलावा किसी दूसरे प्रकारकी आशा तो हमने उनसे की भी नही थी। उनके सामने एकमात्र प्रश्न यही था कि खानोके लिए मजदूर[1] कैसे प्राप्त करे, जिससे उद्योगको अधिकसे-अधिक और मजदूरोको कमसे-कम लाभ हो। उन्होने जोहानिसबर्ग *स्टारमें* छपे अपने साढ़े पाँच कालमवाले सारे प्रतिवेदनमें इसी प्रश्नका उत्तर देनेका यत्न किया है।

श्री स्किनर मजदूरोपर नीचे लिखी शर्तें लगाना चाहेगे :

(१) कुछ वर्षोकी निश्चित अवधितक काम करनेका शर्तनामा।

(२) कुछ वर्गोके मजदूरो और निवासस्थानोपर प्रतिबध।

(३) इस अवधिमे उनके किसी प्रकारके व्यापार करने और कोई जमीन-जायदाद खरीदने या पट्टेपर लेनेपर प्रतिबन्ध।

(४) अगर शर्तकी अवधि नही बढी तो अनिवार्य रूपसे वापस लौट जाना।

(५) अग्रेजी कानून और आरोग्यके नियमोका पालन आवश्यक। ये दोनो चीनकी परम्पराओसे एकदम भिन्न है।

पहली और पाँचवी शर्तको छोडकर शेष सारी शर्तें इस हेतुसे लगाई जायेगी कि अपने मालिककी इजाजतसे अधिक कोई चीनी अपने शरीर या बुद्धिका लाभदायी उपयोग न करने पाये। इसके साथ-साथ श्री स्किनर इनपर अहातोकी प्रथा भी लागू कर देना चाहते हैं। इस प्रकार मजदूर एक निरा कैदी बन जायेगा। जैसा कि *लीडरने* गम्भीरतापूर्वक सुझाया

१. ट्रान्सवालके खान-उद्योग मालिकोंने चीनसे २,००,००० गिरमिटिया मजदूर बुलानेका प्रस्ताव किया था। देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ४८३।

है, अब तो केवल एक काम रह जाता है कि इन शर्तोंके साथ मजदूरोको लानेकी इस योजनाको विधानसभा अपनी मजूरी प्रदान कर दे, तो ट्रान्सवालकी मजदूर-समस्या हल हो जायेगी। श्री स्किनरके मन्तव्यके विपरीत हम आशा करते है कि यदि इस आशयका कानून मंजूर भी हो जाये — जिसके बारेमें हमें बहुत सन्देह है — तो भी जिनको प्रत्यक्ष शर्तनामे लिखने हैं वे लोग आरकाटियो (लेबर-एजेंटो) द्वारा प्रस्तुत सारे प्रलोभनोको ठुकरा देंगे और ऐसी अमानुष शर्तोपर कान नही देंगे। तब खानोके उद्योगका प्रश्न अपने आप और आहिस्तासे गोरे उप-निवेशियो तथा देशी निवासियो दोनोके लिए लाभदायक रूपमे हल हो जायेगा, और चीनी या अन्य किसी एशियाई देशके सहायक मजदूरोकी परेशानी-भरी समस्या भी सामने नही आयेगी। सच तो यह है कि खुद श्री स्किनरको डर है कि मजदूर कही मालिकोके हितोके विरुद्ध अपना सगठन आदि न बना ले। उनके प्रतिवेदनका वह हिस्सा उन्हीके शब्दोमे हम नीचे दे रहे है:

> चीनियोमें फ्रीमेसनरियोके समान पारस्परिक सहयोगकी एक समर्थ प्रणाली होती है। एकताके सामर्थ्य और लाभोंको वे भली-भाँति जानते है। सैनफ्रांसिस्कोमें ऐसे छः संगठन है। अधिकांश प्रवासी चीनी उनमें से किसी-न-किसीके सदस्य है और उसे चन्दा देते रहते है। यह प्रणाली बहुत व्यापक है, परन्तु कुल मिलाकर इसका प्रभाव लाभप्रद ही होता है। ये संगठन अपने सदस्योंकी तरफसे और उनके नामपर अनेक प्रकारके व्यवसाय करते हैं, मजदूरोकी देख-भाल करते हैं, पैसेका लेनदेन करते हैं, या उसे चीन भेजना हो तो उसका प्रबन्ध भी कर देते है। ये चीनियोकी हर प्रवृत्तिमें दिलचस्पी रखते है और उनके हितोकी रक्षा करते है। ये एक और काम भी करते है कि यदि कोई चीनी मर जाये तो कहनेपर मृतककी अस्थियाँ उसके रिश्ते-दारोंके पास चीन भेज देते है। जिनका कार्य-क्षेत्र इतना व्यापक है ऐसी संस्थाएँ अगर रैंडमें भी स्थापित हो जायें तो यहाँके प्रवासी चीनियोंपर उनका गहरा प्रभाव पड़ेगा। कई बातोंमें, जैसा कि ऊपर बताया गया है, उनका प्रभाव हितकारी हो सकता है। परन्तु अगर कहीं उन्हें यह खयाल हो गया कि साधारण मजदूरीके विषयमें खानें पूर्णतः उन्हींपर अवलम्बित है, तो इसमें खतरा भी है। इस कठिनाईको टालनेके लिए स्पष्ट ही यह आवश्यक है कि अभी हम काफिर मजदूरोंकी संख्या बढ़ानेके लिए जो यत्न कर रहे हैं, वह बराबर और जोरोंके साथ जारी रखा जाये, ताकि खानोमें चीनी, काफिर और अन्य साधारण मजदूरोंकी संख्यामें एक प्रकारका सन्तुलन बना रहे। चीनके भिन्न-भिन्न भागोंसे लाये हुए मजदूरोंपर भी यह सिद्धान्त लागू किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, अनुभव यह हुआ है कि उत्तरी भागोंके चीनी दक्षिणी भागोके चीनियोंके साथ शायद ही सहयोग करते है।

इस तरह श्री स्किनर "फूट फैलाकर राज करो" वाली चालसे काम लेना चाहते है। परन्तु हमारा खयाल है कि सगठनोको तोड़नेमें विधानसभाके बनाये कानून मददगार होंगे, ऐसा अगर श्री स्किनरको विश्वास हो, तो वे बहुत बड़ी भूल कर रहे है। उत्तर और दक्षिणी चीनके निवासी अपने देशमे भले ही लड रहे हो, किन्तु यहाँ आनेपर समान विपत्ति उनमें एकता पैदा कर देगी और उन्हे अहातोकी कैद तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके अपहरणके विरुद्ध लड़नेकी शक्ति प्रदान कर देगी। श्री स्किनरकी योजनाकी तफसीलोको देखें तो वे दिलचस्प होते हुए भी हमारी रायमें एकदम अव्यावहारिक है। ज्यों ही वे चीनी डॉक्टरो तथा जमादारोको लायेंगे त्यो ही श्री स्किनर

देखेंगे कि वे अपने लिए व्यक्तिगत स्वतन्त्रता चाहेंगे और अनियन्त्रित रूपसे अपने दिमागका उपयोग भी करना चाहेंगे। [वह दृश्य बड़ा मनोरजक होगा, जब दो समान बुद्धिवाली जातियोंमेंसे एक जाति दूसरीकी बुद्धिके विकासको कुंठित करनेकी कोशिश करेगी।] तफसीलें हम नीचे दे रहे हैं। पाठक खुद ही सोचें कि सर रिचर्ड सॉलोमनका बनाया कोई भी कानून श्री स्किनर द्वारा इतनी लापरवाहीसे बनाई गई कागजी नीतिको सफल करनेमें कहाँतक कामयाब हो सकता है।

एक खानके लिए नियोजित चीनी मजदूरोंके जत्थेकी बनावट इस प्रकार होगी:

(१) एक मुखिया, जो अहातेके प्रबन्धकके साथ काम करेगा और मजदूरों तथा प्रबन्धकर्ताओंके बीच दुभाषियेका काम भी करेगा।

(२) चार उपमुखिया, दो खानके अन्दर और दो ऊपर काम करनेके लिए, जो अंग्रेजी बोल सकते हों या इस काबिल हों कि बहुत थोड़े समयमें काम चलाऊ अंग्रेजी सीख सकें।

(३) हर तीस मजदूरोंके ऊपर देखभाल करनवाला एक जमादार होगा, जिस प्रकार काफिरोंके जत्थोंपर देखभाल करनेवाले होते हैं।

(४) पचास आदमियोंके हर समूहके लिए एक रसोइया होगा, और हर रसोइएकी मददके लिए एक जवान कुली सहायक।

(५) एक चीनी डॉक्टर, जो स्थानीय खान डॉक्टरके मातहत एक मुखियाकी भाँति काम करेगा और अस्पताल उसके सुपुर्द रहेगा। बहुत-से चीनी, खास तौरपर शुरू-शुरूमें, आग्रह करेंगे कि वे अपने देशके डॉक्टरसे भी इलाज करा सकें। इसके लिए कुछ चीनी दवाएँ भी संग्रहमें रखनी होंगी।

प्रत्येक खानपर कुशल गोरे और साधारण काफिर, अथवा कुशल गोरे और साधारण चीनी मजदूर होंगे। चीनी और काफिर मजदूरोंको एक साथ किसी खानपर मिलने नहीं दिया जायेगा। वैसे यदि सम्भव हो तो उनका जिलोंमें मिलना भी रोकना चाहिए। अधिक बड़ी संख्यामें चीनी कुलियोंको लानेसे पहले जो कुछ हजार चीनी मजदूर लाये जायेंगे उनके साथ ऐसे भी आदमी लाये जायेंगे जो चीनियोंसे वाकिफ हों, ताकि उनसे काम लेनेमें सहूलियत हो और जो खानें चीनियोंसे काम लेना चाहें उन्हें चीनियोंको समझनेमें मदद मिले, ताकि एकाएक उनके सामने कोई ऐसी नई परिस्थिति खड़ी न हो जाये, जिसका सामना करनेके लिए वे तैयार न हों।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–१०–१९०३

९. जोहानिसबर्गका वह अस्वच्छ क्षेत्र

गत ७ तारीखको मुख्य मार्ग, जोहानिसबर्गमे एक आम सभा हुई। जोहानिसबर्ग नगर-परिषदने जिन जमीनोपर अधिकार कर लिया है उनके मुआवजे और उस रकबेकी जमीनोके पुराने मालिकोको दिये जानेवाले किरायेके बारेमें उसके रुखपर इस सभाके वक्ताओने अपने विचार प्रकट करनेमे किसी प्रकारकी रू-रियायत नही की। बडी सख्त भाषाका उपयोग किया गया। नगर-परिषदके कार्यको एक बलात्कार माना गया। सभाके अध्यक्ष श्री मार्क गिबन्सने कहा, "नगर-परिषदका कार्य सचमुच लज्जाजनक है, और यह एक लादा हुआ बोझ है जिसे सहन नही करना चाहिए।" दूसरे वक्ताने तो इस जमीन लेनेको "जमीने जब्त" करनेकी सज्ञा दी। नगर-परिषदके सदस्योपर खुलकर बुरे उद्देश्योके आरोप तक लगाये गये। हम नही मानते कि वे इन विशेषणोके पात्र है। जबतक हमारे सामने कोई निश्चित प्रमाण नही है, हम यह विश्वास नही करेगे कि श्री क्विन और उनके साथियोका हेतु शुद्धके अतिरिक्त कुछ और रहा होगा। परन्तु अस्वच्छ क्षेत्रकी समितिके पक्षमे इससे अधिक हम और कुछ नही कह सकते। उनका हेतु अत्यत सकीर्ण रहा है, इसमे तो हमे तिल-भर भी सन्देह नही है और चूंकि भारतीयोने एक बडी सख्यामें मुआवजेके लिए अपने दावे पेश कर रखे है, इसलिए यह उचित होगा कि समितिपर वक्ताओने जो दो आरोप लगाये है, उनकी भी हम जाँच कर लें। इस सम्बन्धके तथ्य अपने आपमें इतने गम्भीर है कि यदि वक्ता केवल तथ्य सामने रख देते तो भी उनका कर्तव्य पूरा हो जाता। नगर-परिषदके खिलाफ सबसे बडा प्रमाण तो प्रत्यक्ष उसीकी यह स्वीकृति है कि १,२०० दावेदारोमें से केवल १६४ ने नगर-परिषद द्वारा दिया गया अत्यन्त अपर्याप्त मुआवजा स्वीकार किया है। इसपर शायद यह कहा जा सकता है कि दूसरे आदमियोकी अपेक्षा खुद दावेदार अपने लाभ-हानिको अधिक अच्छी तरह जानते है, अत. परिषद द्वारा निश्चित मुआवजेका उनके द्वारा स्वीकार कर लिया जाना ही इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि निश्चित मुआवजा बहुत वाजिब था। लेकिन यह दलील पेश करनेवाले इस मुख्य बातको भूल जाते है कि नगर-परिषद और दावेदार समान भूमिकापर नही है। दावेदार बहुत गरीब है। वह जमीन उनकी आजीविकाका एकमात्र साधन थी। साहूकार शायद उन्हे अलग तग कर रहे होगे। ऐसी सूरतमें उनकी इच्छा हो या न हो, उन्हे तो अपने प्रतिपक्षीसे, जिसके पास अक्षय खजाना पडा है, समझौता करना ही था। अस्वच्छ क्षेत्रके गरीब निवासियोके मुकाबलेमें नगर-परिषदके साधन निश्चित रूपसे असीम है। इसलिए हम तो मानते है कि इन थोडेसे दावोका निपटारा भी नगर-परिषदके पक्षमे पेश नही किया जा सकता। बल्कि जब हम देखते है कि अनिर्णीत दावोकी सख्या बहुत अधिक है तब यह उसके खिलाफ सबसे बडा और उसीका पेश किया गया प्रमाण है। दावोके रूपपर विचार करते हुए हमें ज्ञात हुआ है कि जायदादोकी कीमतका निर्णय करनेमें किसी पद्धतिसे काम नही लिया गया है। कुछ जमीने ऐसी है, जिनपर बडी सुथरी इमारते खडी है। जिन जमीनोपर भद्दे, नगे ढाँचे-भर खडे है, उनकी कीमते भी इनके समान ही कूती गई है। याद रहे कि इन दोनो प्रकारकी जमीनोकी कीमतें इमारतोको छोड़कर समान ही है; क्योकि वे उसी बस्तीमें और एक-दूसरेसे लगी हुई है। और ऐसे उदाहरण इक्के-दुक्के नही है। ऐसे बहुत-से उदाहरण पेश किये जा सकते है कि जब पिछली बार वे बिके थे तब उनकी कीमते अच्छी आई थी, किन्तु परिषदके

निर्णायकोने उनकी कीमतें उससे कम आँकी है। यह कहना कोई मानी नही रखता कि मालिकोने अत्यधिक मुआवजेकी माँगे की है। सम्भव है यह सही हो, या गलत भी हो, किन्तु गलत प्रकारकी इस मक्खीचूसपनेकी नीतिका अवलम्बन करके परिषद अपने करदाताओकी कुसेवा ही कर रही है। शायद परिषदके सदस्योने ऐसा करते हुए अपने कर्तव्यको वहुत वढाकर समझ लिया है। सर्वसाधारण रूपसे वे अपने करदाताओका पैसा बचानेकी धुनमे अपने ही उन गरीब करदाताओके साथ बहुत भारी अन्याय कर रहे है, जिन्हे यदि उदारता नही तो न्यायकी बहुत जरूरत है। जब इस क्षेत्रमे आवश्यक सुधार हो जायेंगे तव यहाँका किराया बढ जायेगा। परन्तु कानूनने मालिकोसे यह लाभ छीन लिया है। इस बातकी कोई शिकायत नही कि यह सारी विशेष आय करदाताओकी ही मानी जायेगी। परन्तु इतनेपर भी नगर-परिषदसे यह तो अपेक्षा अवश्य की गई थी कि वह इन अस्वच्छ क्षेत्रोकी जमीनोके मालिकोके साथ शोभनीय और न्यायपूर्ण व्यवहार करेगी। जहाँतक जमीनोके मालिकोसे किराया लेनेवाले नगर-परिषदके प्रस्तावसे सम्बन्ध है, हम समझते है कि जो लोग इसका विरोध कर रहे है उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करनेसे अपने आपको रोकना वड़ा कठिन है। सभाके वक्ताओका यह कथन अक्षरश सही है कि बहुतसे लोगोकी आजीविकाका एकमात्र साधन जायदादे ही है। शायद नगर-परिषदकी 'सेरभर मास' वाली अपनी जिद कानूनकी दृष्टिसे उचित भी हो। परन्तु ऐसे मामलोमे कानूनी अधिकार, अगर उसमे दया-धर्मका खयाल नही रखा गया है तो, क्रूरता बन जाता है। बेदखल लोगोके रहनेके लिए जमीने ढूँढ़नेका प्रश्न अनिश्चित कालके लिए आगे ढकेल दिया गया है। इसलिए जबतक उनके रहनेकी पूरी-पूरी व्यवस्था नही हो जाती और अगर मालिकोको अपनी जायदादोका अस्थायी रूपसे उपयोग नही करने दिया जाता या किराया वगैरह नही लेने दिया जाता तो वे गुजर कैसे करेंगे—खासकर ऐसे कठिन और चिन्ताके समयमे? बारिश बहुत ही पिछड गई है। परमात्मा जाने, दक्षिण आफ्रिकापर उसकी कृपा कब होती है। उद्योग-धन्धे ठप्प है, पैसे-टकेका बाजार भी मन्दा है, और हम अखबारोमे पढते है कि जोहानिसबर्गमे हजारो आदमी एकदम बेकार है। ऐसी परिस्थितियोमे इन निर्दोष लोगोसे उनकी जीविकाका एकमात्र साधन छीन लेना एक ऐसा काम है जिसका किसी प्रकार भी समर्थन नही किया जा सकता। परिषद अभीतक नामजद ही है। अत. शायद वह लोक-भावनाका निरादर कर सकती है। परन्तु हमारी मान्यता है कि परिषद जनताके प्रति सीधी जिम्मेदार नही है, इस कारण उसका यह कर्तव्य दूना हो जाता है कि अस्वच्छ क्षेत्रके निवासियोके प्रति अपने व्यवहारमे न्याय और औचित्यका पूरा-पूरा ध्यान रखे। और अगर वह यह नही कर सकती या करना नही चाहती तो जबतक निर्वाचित परिषद नही बन जाती—जैसी कि वह बहुत जल्दी ही बन जायेगी — तबतक यह कार्रवाई रोक रखी जाये।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–१०–१९०३

१०. जोहानिसबर्गकी पृथक बस्ती

हमे नगर-परिषदके नाम जोहानिसबर्गके निवासियो और करदाताओकी ओरसे दी गई उस अर्जीका समर्थन करनेमें कोई हिचक नही, जिसमें भारतीय बस्तीको यहाँसे हटाकर किसी अधिक उपयुक्त स्थानपर ले जानेकी माँग की गई है। इस अर्जीका एक अश हम गत ७ तारीखके *ट्रान्सवाल लीडरसे* यहाँ उद्धृत करते है, जिससे प्रकट होता है कि यह अर्जी नागरिकोंमे घुमाई जा रही है। अर्जीमें जोहानिसबर्ग नगर-परिषदकी स्वास्थ्य-समितिके उस प्रस्तावका हवाला दिया गया है जिसमे कहा गया है कि अस्वच्छ क्षेत्र-अधिग्रहण अध्यादेश (इनसैनिटरी एरिया एक्स्प्रोप्रियेशन ऑर्डिनेन्स) के अनुसार जिस भारतीय बस्तीके निवासियोको बेदखल किया गया है उसे काफिरोकी बस्तीकी जगह और काफिरोकी बस्तीको और भी आगे हटा दिया जाये। हम स्वीकार करते है कि जिन कारणोको लेकर करदाता इस सुझावका विरोध कर रहे हैं, हमारे कारण उनसे भिन्न हैं। उस अर्जीपर हस्ताक्षर करनेवाले स्पष्ट रूपसे यह चाहते हैं कि भारतीयोको हटाकर काफिरोकी वर्तमान बस्तीसे भी कही आगे बसाया जाये। हमारी राय है कि यह काफिर बस्ती ही जब्त किये गये रकबेसे इतनी अधिक दूर है कि उसका भारतीयोके लिए कोई उपयोग नही हो सकेगा। दूसरे, खुद कानून यह कहता है कि जबतक अस्वच्छ क्षेत्रके इन लोगोको नजदीक ही कही बसनेका स्थान नही बता दिया जाता, तबतक इन्हे अपने वर्तमान स्थानसे न हटाया जाये। हम जानते है कि परिषद द्वारा जब्त की गई जगहसे काफिर बस्ती एक मीलसे भी अधिक दूर है, और हम नही समझते कि बेदखल लोगोको अपनी आजकी जगहसे पूरे एक मीलसे भी दूर ले जाना बेदखली कानूनकी मंशाके अनुकूल माना जायेगा। इसलिए या तो उन लोगोको अपनी जगहसे हटाया ही नही जाना चाहिए, या कोई दूसरा कम आपत्तिजनक स्थान बताया जाना चाहिए। अर्जदारोके प्रस्तावके समर्थनमे केप टाउनका दृष्टान्त दिया गया है और इस तर्कके बलपर ब्रिटिश भारतीयोको जोहानिसबर्गसे दूर हटानेका औचित्य सिद्ध करनेकी कोशिश की गई है कि काफिरोको तो ठेठ मेटलैंडसे केप टाउनमें लाया गया था। परन्तु इन दो उदाहरणोके बीच जरा भी समानता नही है। अगर बस्तीमे रहनेवाले सारे भारतवासी निरे मजदूर होते तब शायद केप टाउनका अनुकरण जोहानिसबर्गमें भी करनेके पक्षमे कुछ कहा जा सकता था, परन्तु जब हम देखते है कि उनमे से अधिकाश व्यापारमें लगे हुए स्वतन्त्र लोग है और कुछकी आजीविका पूर्णतया बस्तीके व्यापारपर ही निर्भर है, तो यह बात तुरन्त ध्यानमें आ सकती है कि नई बस्ती शहरके इतने नजदीक होनी चाहिए कि कमसे-कम वह देशी तथा गोरे ग्राहकोको समान रूपसे आकर्षित करनेकी उचित अनुकूलताएँ प्रदान कर सके।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५-१०-१९०३

११. श्री बालफ़रका मन्त्रिमण्डल

पाँसा फेंक दिया गया है और श्री सेंट जॉन ब्रॉड्रिक भारतके सिरपर मढ़ दिये गये है। श्री ब्रॉड्रिककी योग्यताके बारेमे सर्वत्र यही राय है कि युद्ध-कार्यालयका सचालन पूर्णतः बिगाडनेमे वे सफल रहे है, और मन्त्रीका स्थान सँभालनेमे अपने आपको उन्होने अयोग्य साबित कर दिया है। परन्तु श्री बालफरने देखा कि वे श्री ब्रॉड्रिकको धता तो नही बता सकते, इसलिए उनको ऐसे पदपर बैठा दिया, जिसके खिलाफ कोई जोरदार आवाज नही उठ सकती। भारत-कार्यालयमे श्री ब्रॉड्रिकके बैठानेसे श्री बालफ़रको अपना एक भी वोट खोनेका डर नही है। इस नियुक्तिका भारत भले ही सर्वानुमतिसे विरोध करता रहे, परन्तु लोकसभाके सदस्योके चुनावमे तो भारतका मत नही लिया जाता; वहाँ उसकी कुछ नही चलती। इसीलिए श्री ब्रॉड्रिक अपने आपको बचानेके लिए यह बेहूदा प्रस्ताव लानेकी हिम्मत कर सके कि दक्षिण आफ्रिकी फौजोका पाँच लाख पौडका पूरा वार्षिक खर्च भारत दे। इस योजनाका इतना विरोध हुआ कि अन्तमे उसे छोड ही देना पड़ा, परन्तु इसका भी उनपर कोई असर नही हुआ। इस नियुक्तिके अन्याय और हृदयहीनताको दक्षिण आफ्रिकाके लोगोने भी महसूस किया है। *ट्रान्सवाल लीडरके* अग्रलेख लिखनेवालेने जितनी कड़ी भाषामे इस नियुक्तिकी निन्दा की है उससे अधिक सख्त भाषाका प्रयोग हम नही कर सकते थे। इस नियुक्तिके बारेमे वह लिखता है:

> श्री ब्रॉड्रिकने *पालमालसे* विदा ली, यह तो निश्चय ही एक बड़े लाभकी बात हुई। परन्तु हमें शक है कि अपने काम-काजके शीर्षस्थानपर उनकी नियुक्तिसे भारतकी जनता खुश होगी। इस सर्वसम्मत निर्णयको मानना ही पड़ेगा कि वे पूर्णतः अयोग्य व्यक्ति हैं और ऐसी सूरतमें उन्हें चुपचाप गैर-सरकारी जिन्दगीमें उपेक्षापूर्वक डाल देना चाहिए। निश्चय ही मामलेकी सम्पूर्ण जानकारी उपलब्ध होना तो असम्भव ही है। परन्तु भारतमें वाइसराय लॉर्ड कर्जन हैं जो लॉर्ड डलहौजीके बाद सबसे अधिक योग्य और दृढ़ निश्चयी वाइसराय हैं। इसलिए श्री ब्रॉड्रिकको निश्चय ही ऐसे गुप्त आदेश दे दिये गये होंगे कि वे हर बातमें लॉर्ड कर्जनकी रायका आदर करें और नाम-मात्रको भारत-मन्त्री बने रहें। हम आशा करते हैं कि बात ऐसी ही होगी। क्योंकि, उन्होंने अबतक जो भी प्रयोग किये वे सब इतनी बुरी तरह असफल हुए हैं कि अब कोई पूर्वके नाजुक मामलोंमें उनका फूहड़पन पसन्द नहीं करेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–१०–१९०३

१२. भारतकी साम्राज्य-सेवा

इंडियाके एक ताजा अकमें भारत द्वारा साम्राज्यकी सेवाओके सम्बन्धमे चौका देनेवाले अक छपे हे। इन सेवाओंका क्षेत्र बहुत विस्तृत रहा है और इनका प्रारम्भ १८६० से होता है। *इंडियाने* लिखा है कि भारतने सन् १८६० मे दो और १८६१ में एक सैन्यदल न्यूजीलैंड भेजे। सन् १८६७ मे अबीसीनियाकी चढाईमें भारतने सोलह पैदल सैन्यदल, पाँच रिसाले, सात इंजीनियरोंकी कम्पनियाँ, पाँच तोपखाने और सेनापति तथा अन्य कर्मचारी भेजे। सन् १८७५ में पेराककी सारी चढाईमे भारतीय ही भारतीय थे। सन् १८७८ और १८७९ के अफगान युद्धमें ६०,००० और ७०,००० के बीच भारतीय सिपाही खेत रहे। सन् १८८२ मे मिस्रकी चढ़ाईमे पाँच पैदल सैन्यदल, तीन रिसाले, इंजीनियरोंकी दो कम्पनियाँ और दो तोपखाने भेजे गये। सन् १८८५ और १८८६ मे सूडान और सुआकिनकी चढाइयोमें भेजी गई सारी फौजे भारतीय थी। इनमे से एकको छोडकर सारा साधारण खर्च भारतने ही दिया। अफगान-युद्धके खर्चमे १,८०,००,००० पौंड भारतने दिये, जब कि ग्रेट ब्रिटेनने केवल ५०,००,००० पौंड दिये थे। मिस्रकी चढ़ाईमे भारतने साधारण खर्च तो दिया ही, इसके अलावा ८,००,००० पौंड अतिरिक्त खर्च भी उसीने उठाया। सन् १८६० से पहलेवाले अफगान युद्धमे भारतने जो सहायता दी है वह भी इनके साथ जोड दी जानी चाहिए। उस युद्धमे हजारो भारतीय सिपाही बर्फके नीचे दबकर मर गये थे और जनरल साईको अपनी भारतीय फौजोकी वीरताके कारण नाम कमानेका अवसर मिल गया था। इस आश्चर्यजनक विवरणमे हालकी चीनकी चढाई, दक्षिण आफ्रिकाको सर जॉर्ज व्हाइट और उनके १०,००० भारतीयो द्वारा ऐन मौकेपर दी गई बहुमूल्य सहायता और सोमालीलैंडमें चल रहा वर्तमान युद्ध भी जोड दिये जाने चाहिए। अपने किसी पिछले अकमें हमने भारतको "साम्राज्यकी दासी (सिन्ड्रेला[1])" के रूपमे वर्णित किया है, और हम अपने पाठकोसे पूछना चाहते है कि क्या हमारा किया वह वर्णन किसी भी तरह खीचा-ताना हुआ है? हमारा तो यहाँतक खयाल है कि साम्राज्यके इतिहासमें और खास तौरपर औपनिवेशिक विस्तारके इतिहासमे हमने ऊपर जो वर्णन दिया है उसकी तुलनामे रखने लायक कही भी कुछ नही मिलेगा। अन्य उपनिवेशोने कभी भारत-जितनी सहायता नही की है, या उनसे कभी इस तरह सहायता माँगी ही नही गई है। और यद्यपि उपनिवेशोने गत महायुद्धमे उदारतापूर्वक जो हाथ बँटाया नि.सन्देह वह साम्राज्यके हर सदस्यके लिए गौरवकी बात है, तथापि भारतने जो-कुछ दिया है और जो-कुछ सहा है, उसके मुकाबलेमे यह सब कुछ-नहीके बराबर है। क्योकि यह सत्य भुलाया नही जाना चाहिए कि अन्य उपनिवेशोने जो-कुछ छोटीसे-छोटी भी सेवा की हे उसका पूरा-पूरा मुआवजा उनको दिया गया है। और अगर इजाजत हो तो हम बताये कि आस्ट्रेलियाके मन्त्री तो यहाँतक बढ गये कि ब्रिटेनके खाते उन्होने जो रकम खर्च की उसपर उन्होने व्याज और दलाली तक वसूल की, मानो उनके मातृदेश और आस्ट्रेलियाके बीच केवल आसामी और आढ़तियाका सम्बन्ध हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–१०–१९०३

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ४०९।

१३. देर आयद दुरुस्त आयद

ट्रान्सवालके *गवर्नमेंट गज़टके* एक ताजा अकमें हमने पढा कि जर्मिस्टनका एशियाई दफ्तर उठा दिया गया। दिन चढ़े सही, लेकिन इस जागनेपर सरकार भारतीय समाजकी तरफसे बधाईकी पात्र है। जबसे यह दफ्तर खुला था तभीसे ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय बराबर कहते आये हैं कि यह शुद्ध अपव्यय है। सरकारने अपने इस कदम द्वारा सिद्ध कर दिया कि उनकी बात सही थी। हम आशा करते हैं कि सरकार एक कदम और आगे बढकर मुहकमेको ही पूरी तरहसे उठा देगी। उसमे भला किसीका नही है। उलटे, वह ब्रिटिश भारतीयोको काफी असुविधा और उनकी भावनाओको चोट पहुँचाता है। अनुमतिपत्रोका सारा काम उसके पाससे कम हो जानेके बाद, सवाल यह है कि उसके पास अब क्या काम रह जाता है? आर्थिक नियन्त्रण उसके हाथोमे नही है। और परवाने जारी करनेके लिए परवाना-अधिकारी है। एशियाइयोके नाम दर्ज करनेके लिए मुख्य अनुमतिपत्र सचिव है। इस तरह कल्पना नही की जा सकती कि इस मुहकमेकी उपयोगिता आखिर है किस बातमे?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५-१०-१९०३

१४. पत्र: लेफ्टिनेंट् गवर्नरके सचिवको

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
अक्टूबर १९, १९०३

सेवामे
निजी सचिव
परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेट गवर्नर
प्रिटोरिया

महोदय,

आपके १ तारीखके पत्रके सन्दर्भमे मैं आपको विनम्रतापूर्वक याद दिलाता हूँ और संघकी ओरसे प्रार्थना करता हूँ कि परमश्रेष्ठसे ब्रिटिश भारतीय शिष्टमण्डल[1] की भेंटके लिए कोई तिथि निश्चित कर दे।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय सघ

प्रिटोरिया आर्काइव्ज: एल० जी० २१३२, एशियाटिक्स १९०२-१९०६।

१. सबसे पहले २५ सितम्बरको यह प्रार्थना की गई थी कि परवानोंके सम्बन्धमें स्थिति पर विचारके लिए एक शिष्टमण्डलको मिलनेकी अनुमति दी जाये।

१५. ट्रान्सवालके अनुमतिपत्र

मुख्य सचिवने पिछले महीनोमें जारी हुए अनुमतिपत्रोंके अंक प्रकाशित किये है, जो जोहानिसबर्गके अखबारोमे छपे हैं। ब्रिटिश भारतीयोके लिए यह प्रालेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और दिलचस्प है। इस अवधिमे जारी किये गये अनुमतिपत्रोकी कुल सख्या ३२,३५१ है। इसमे से पुराने निवासियोको दिये गये अनुमतिपत्र केवल ७,८२७ है और शेष २४,५२४ नये आगन्तुकोको दिये गये हैं। यह संख्या केवल ट्रान्सवालकी है। जनवरी और मार्चके बीच ११,८६५, अप्रैल और जूनके बीच ११,८४४ और जुलाई तथा सितम्बरके बीच ८,६४२ अनुमतिपत्र जारी हुए। इन आँकडोमे उन भूतपूर्व निवासियोको शामिल नही किया गया है जिन्होने लडाईके दिनोमें अपने अनुमतिपत्र लौटा दिये थे या जिन्हे वापस लौटनेकी इजाजत दे दी गई थी। इसलिए इस सख्यामें केवल वही यूरोपीय शामिल है, जो बोअर नही है; क्योकि याद रखनेकी बात है कि एशियाइयोके अनुमतिपत्र इनमे शुमार नही किये गये हैं। अकसर ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोको न आने देनेका कारण यह बताया जाता है कि अगर उनके प्रवेशपर कोई रोक नही लगाई गई तो उपनिवेशमे वे–ही–वे हो जायेंगे। ये अंक आरोपका माकूल जवाब हैं। सरकारी कागज बताते है कि इस समय ट्रान्सवालके उपनिवेशमें शायद पूरे १०,००० भारतीय भी नही होंगे, जब कि जोहानिसबर्गके एक पत्रके अनुसार ट्रान्सवालमें नागरिको सहित ५,००,००० यूरोपीय है। इसलिए अभी कोई ऐसा आसन्न भय तो नही नजर आता कि ब्रिटिश भारतीय ट्रान्सवालको पदाक्रान्त कर देंगे। परन्तु ये अंक एक दूसरी दु खदायी कहानी भी सुना रहे हैं कि, जहाँ यूरोपीय शरणार्थियोसे तीन गुने नये यूरोपीयोको ट्रान्सवाल प्रवेशके अनुमतिपत्र दिये गये है वहाँ गैर-शरणार्थी ब्रिटिश भारतीयोको अनुमतिपत्र अगर दिये भी गये हो तो बहुत कम, भले ही विशेष रूपसे उनका खयाल किये जानेके कितने ही प्रबल कारण रहे हो। हमे ऐसे बीसियो लोगोका पता है, जिनको ट्रान्सवालमे काम दिया जानेका आश्वासन दिया गया। परन्तु चूँकि वे शरणार्थी नही थे, इसलिए उन्हे अनुमतिपत्र नही मिले और इस कारण वे इन आश्वासनोंका लाभ नही उठा सके। हर हफ्ते केवल सत्तर अनुमतिपत्र एशियाइयोको मिलते है। हमारा खयाल है, इनमे चीनी भी शामिल है। और जिन गैर-शरणार्थी भारतीयोने अर्जियाँ दी है, उनको यह जवाब मिला है कि जबतक शरणार्थी भारतीयोकी सारी अर्जियाँ खत्म नही हो जाती, उनकी अर्जियोपर विचार नही हो सकेगा। अब अनुमतिपत्रोका सारा मुहकमा अनुमतिपत्रोके मुख्य सचिवके मातहत हो गया है। क्या हम आशा करे कि स्पष्ट रूपसे यूरोपीयोकी — चाहे वे ब्रिटिश प्रजाजन हो या नही — अर्जियोके प्रति जो उदारता वे प्रकट कर रहे हैं, वही भारतीयोकी अर्जियोके प्रति भी करेगे? हम एक क्षणके लिए भी यह नही सुझाना चाहते कि वे हजारो गैर-शरणार्थी ब्रिटिश भारतीयोको ट्रान्सवालमें प्रवेश दे दे। पहले तो ट्रान्सवालमे आनेके इच्छुक लोग हजारोकी सख्यामे है भी नही, और मान लीजिए कि हजारो भारतीय ट्रान्सवालमे आना चाहते है, तो हम खुद जानते है कि उनकी अर्जियोपर विचार नही हो सकता। परन्तु जो लोग ट्रान्सवालमे पहलेसे ही बस गये है उनकी मददके लिए अगर नये आदमियोकी जरूरत है, अथवा जो लोग काफी पढे-लिखे है और जिनकी आजीविकाके स्वतन्त्र साधन है और संभवत जिनके अच्छे ताल्लुकात है, उनकी अर्जियोपर तो अवश्य उदा-

रतापूर्वक विचार होना चाहिए। लॉर्ड मिलनरने श्री चेम्बरलेनको[1] आश्वासन दिया है कि पुराने कानूनपर ट्रान्सवालकी सरकार पहलेकी तरह सख्तीसे अमल नही करेगी। उनके इस कथनका हमने आदरपूर्वक प्रतिवाद कर दिया है, क्योकि वास्तविकता इसके विरुद्ध है। भारतीयोके प्रवेशका प्रश्न हमारे कथनका प्रत्यक्ष प्रमाण है। क्योकि, पिछली हुकूमतके जमानेमें भारतीयोके प्रवेशपर जहाँ किसी प्रकारकी रोक नही थी, वहाँ अब शरणार्थियोको भी बहुत मुश्किलसे कही इक्के-दुक्के लौटने दिया जाता है। और गैर-शरणार्थी भारतीयोके लिए तो ट्रान्सवालके दरवाज एकदम बन्द है। इस प्रकार ट्रान्सवाल-सरकार केवल पुराने एशियाई-विरोधी कानूनसे ही आगे नही बढ़ जाती है, बल्कि इस विषयमे तो उसने नेटाल और केपके कानूनोको भी बहुत पीछे छोड़ दिया है। नेटाल और केपके उपनिवेशोमे जो भारतीय बस गये है वे जब चाहे, स्वतन्त्रतापूर्वक अपने उपनिवेशसे बाहर जा सकते है, और लौट भी सकते है। और जो यूरोपीय भाषाओमे से कोई एक भी भाषा जानते है वे — चाहे पहले उपनिवेशके निवासी रहे हो या न भी रहे हों — इन दोमे से किसी भी उपनिवेशमे आकर बस सकते है। लॉर्ड मिलनरने सुझाया है कि ट्रान्सवालके १८८५ के कानून ३ की जगह नेटाल-कानूनके नमूनेपर कानून बनाया जाये। इसलिए क्या हम सुझाये कि कमसे-कम अभी तत्काल नेटाल और केपके कानूनोके अनुसार जो अर्जदार प्रवेश पानेके अपात्र न हो, उन्हे बगैर रोक-टोकके ट्रान्सवालमे आने दिया जाये? और शरणार्थियोको भी उनकी तरफसे अर्जी आते ही प्रवेश मिल जाया करे? केप और नेटालके कानूनोमे एक और सुविधा यह है कि जो पहलेके निवासी नही है और जो किसी यूरोपीय भाषाकी आवश्यक शैक्षणिक योग्यता नही रखते, किन्तु अन्य प्रकारसे प्रवेश पानेके योग्य है, उन्हे भी विशेष आज्ञासे प्रवेश मिल सकता है। इसके अलावा, ऐसे लोगोको भी, उदाहरणार्थ, पुराने निवासियोके लिए आवश्यक घरेलू नौकरो और दूकानोके लिए गुमाश्तो वगैराको भी, स्वतन्त्रतापूर्वक प्रवेशकी अनुकूलता होनी चाहिए। हम समझते है कि ये माँगे अत्यन्त उचित है। इनसे भारतीयोकी भावनाओको बड़ा समाधान मिलेगा। और जैसा कि हम पहले ही सुझा चुके है, भारतीयोके अनियन्त्रित प्रवेशका अथवा गैर-शरणार्थी अर्जदारोकी बाढके आनेका कोई प्रश्न ही नही है, हम आशा करते है कि सरकार इन सुझावोपर सहानुभूतिपूर्वक विचार करेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–१०–१९०३

१. जोजेफ़ चेम्बरलेन (१८३६–१९१४), उपनिवेश-मंत्री, १८९५–१९०३; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९२।

१६. आस्ट्रेलियाका ब्रिटिश तथा भारतीय साम्राज्य-संघ

आस्ट्रेलियामे स्थापित उपर्युक्त सस्थाका घोषणापत्र हमे मिला है। यह एक शुभ चिह्न है कि जो ब्रिटिश भारतवासी ससारके भिन्न-भिन्न भागोमे जा बसे है, वे सम्राट्की प्रजाके नाते अपने अधिकारोकी रक्षाके हेतु अपने ऊपर होनेवाले आक्रमणोका प्रतिकार करनेके लिए सुसंगठित हो रहे है। संस्थाके पदाधिकारियोके नाम पढनेसे ज्ञात होता है कि आस्ट्रेलियामें बसे हमारे देशभाई कुछ प्रभावशाली यूरोपीयोका सक्रिय सहयोग भी प्राप्त कर सके है। इनमें सर्वश्री टेपू हाल, जी० थॉरबर्न, पास्कल, क्विन इत्यादिके नाम है। और अगर समितिके सदस्योकी सूची सस्थाके साधारण सदस्योकी निर्देशिका मानी जाये तो हम कह सकते है कि सस्था सभी वर्गके भारतीयोका प्रतिनिधित्व करती है।

मालूम हुआ है कि श्री चार्ल्स फ्रान्सिस सीवराइट संस्थाके एक संस्थापक है। *इंडियन डेली न्यूज़*के अनुसार ये सज्जन मेलबोर्नके निवासी और वहाँके बैरिस्टर श्री मार्कस सीवराइटके दूसरे पुत्र है। सस्थाने श्री सीवराइटको राष्ट्रीय महासभा (नेशनल काग्रेस) के आगामी अधिवेशन और मुस्लिम शिक्षा-परिषदके लिए अपने प्रतिनिधिके रूपमे चुना है। वे अपने साथ इन महान सस्थाओके नाम अपनी सस्थाकी तरफसे अर्जियाँ भी ले जा रहे है, जिनमे उनसे अपने प्रवासी भाइयोका खयाल रखनेकी विनती की गई है। यह एक सही कदम है, और हम श्री सीवराइटके प्रयत्नोको बारीकीसे समझते रहेगे, क्योकि यद्यपि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोके प्रश्नके अपने स्वतन्त्र और स्थानीय पहलू है और, इसलिए, श्री सीवराइटके उद्दिष्ट कार्यका उसपर शायद बहुत असर न भी पडे, फिर भी वह एक साम्राज्यका ही प्रश्न है, इसलिए डाउनिंग स्ट्रीटके अधिकारी आस्ट्रेलियामें जो-कुछ करेंगे वह बहुत हदतक दक्षिण आफ्रिकापर भी लागू होगा।

संस्थाके उद्देश्य ऐसे है, जिन्हे सब पसन्द करेगे। उसका उद्देश्य है "कॉमनवैल्थ सरकारकी ऐसे कानूनोके पालनमें मदद करना, जो अनिष्ट प्रकारके — उदाहरणार्थ अज्ञानी, दरिद्र और अनैतिक वर्गोंके — अवाछित आगन्तुकोसे सम्बन्ध रखते है।" इसके अलावा उसका उद्देश्य "ब्रिटिश भारतसे आये अधिक सुसस्कृत व्यापारी-वर्गके खिलाफ जो हानिकर रुकावटे लगी हुई है उन्हे दूर करना" भी है। सस्था यह भी चाहती है कि "आस्ट्रेलियाके भारतीय नागरिकोका सामाजिक रुतबा बढाये। ऐसा करनेसे भारतीयोको और, उनके साथ-साथ, वहाँके जीवनमे वे जिनके दैनिक सम्पर्कमे आते है, उनको भी लाभ पहुँचानेका दोहरा काम होगा।" घोषणा आगे कहती है

> हम सब मिलकर काम करेंगे। कोई सदस्य अपने व्यक्तिगत स्वार्थकी अभिलाषा नहीं रखेगा और सब दूसरी तमाम बातोंको छोड़कर, जिसमें सभी सदस्योका हित होगा, उसीका सर्वोपरि ध्यान रखेंगे। हम दत्तचित्त और निःस्वार्थ रहेंगे। संस्थाके विभिन्न ऊँचे पदोंकी नियुक्तिमें किसी वर्ग या गुटका विचार नहीं करेंगे। एक संगठनके नाते हमारा लक्ष्य सारे राष्ट्र-कुटुम्ब (कॉमनवैल्थ) में ब्रिटिश भारतीयोके लिए न्याय प्राप्त करना होगा।

ये उद्देश्य प्रशसनीय हैं और ऐसे है जिनपर किसीको आपत्ति नही हो सकती। और जिस भावनासे संस्थाके सदस्य काम करना चाहते है, वह तारीफके लायक है। और यदि वे अपने घोषणा पत्रमें लिखित मार्गपर चलते रहे तो उनकी सफलता निश्चित है। हम इस सस्थाकी

स्थापनाका स्वागत करते है और कामना करते है कि वह अपने जीवनको सार्थक करे और चिरायु हो!

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–१०–१९०३

१७. रपट पड़ेकी हर गंगा

जोहानिसबर्गके पत्रोंसे ज्ञात होता है कि आखिर यही निश्चय होने जा रहा है कि खानोके लिए चीनी मजदूर न लाये जाये। श्री स्किनरके अक[1] बताते है कि गहरी खानोमे चीनी मजदूर लाभदायक साबित नही होगे। उनके प्रतिवेदनसे यह भी ज्ञात होता है कि वे आसानीसे आयेगे भी नही। प्रस्तावित शर्तोपर आवश्यक सख्याको राजी करनेके लिए बहुत अधिक खुशामद करनी पडेगी। यदि ये समाचार सही है तो इस मुक्तिपर दक्षिण आफ्रिकाके लोग अवश्य अपने आपको बधाई दे सकते है। हमे आश्चर्य नही होगा, अगर यहाँके करोडपति एकाएक घोषणा कर दे कि इस मन्दीका मजदूरोके प्रश्नसे कोई सम्बन्ध नही है। उसके कारण दूसरे ही है। और यह कि चीनसे मजदूर न आये तो भी खाने बराबर चलती रहेगी। परन्तु यह तो रपट पड़ेकी हर गगा हुई। वे यह कह सकते थे, "चाहे हमे खाने बन्द कर देनी पडे तो भी हम शर्तबन्द एशियाई मजदूरोको लेकर श्रमिक-वर्गके साथ अन्याय न करेगे और वह काम न करेगे जो तत्वत दासोका क्रय-विक्रय है।" अगर वे ऐसा करते तो उनकी स्थिति ज्यादा गौरवास्पद हुई होती और वे श्रमिक-वर्गके प्रिय बन गये होते।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–१०–१९०३

१८. असली रूपमें

डडी नगर-परिषदकी हाल ही मे हुई एक बैठकका यह विवरण *नेटाल मर्क्युरीसे* लिया गया है:

परवाना-अधिकारीने एक भारतीयको, जिसने अपने व्यापारके लिए एक इमारत खड़ी कर ली थी, परवाना दे दिया। परवाना-अधिकारीके इस कार्यका परिषद-सदस्य श्री विल्सनने विरोध किया। उन्होंने इस कार्यको अत्यन्त अनुचित बताया; क्योंकि यूरोपीयों द्वारा बनाई शानदार दूकानोंके किरायेदार भारतीयोंको ऐसे परवाने देनेसे इनकार कर दिया गया था। उन दूकानोंकी तुलनामें इस भारतीयकी इमारत झोंपड़ेके समान कही जायेगी।

परिषद-सदस्य जोन्सने इस विषयपर बड़ा जोरदार भाषण दिया और उन्होंने इस कार्यको लज्जाजनक बताया। क्योंकि, परिषदने साफ इच्छा व्यक्त की थी कि अब भारतीयोंको परवाने न दिये जायें।

१. देखिए "चीनी मजदूरोंके बारेमें श्री स्किनरकी रिपोर्ट" १५–१०–१९०३।

परवाना-अधिकारीने अपनी बुद्धिका उपयोग करके जो निर्णय किया उसे परिषद-सदस्य जोन्सने साहसके साथ "लज्जाजनक" कहा। और परिषद-सदस्य विल्सनके विचारमें वह "अनुचित" है। बेशक अपील सुननेवाले न्यायालयके ये न्यायाधीश क्या खूब है! ध्यान देनेकी बात है कि परवाना देनेवाले अधिकारीके निर्णयके विरोधमे की गई अपीलोको सुननेका अधिकार डडी नगर-परिषदको दिया गया है। ऊपरके विवरणका अर्थ यह हुआ कि अब डडीके परवाना-अधिकारीको परवानेके लिए जो अर्जियाँ आये उनपर अपनी तरफसे कोई निर्णय नही देना चाहिए। उसे तो केवल नगर-परिषदका भोंपू बनकर केवल उसकी आज्ञाओका पालन करते रहना चाहिए। फिर भी इस अग्रेजी उपनिवेशमे हमसे कहा जाता है कि विक्रेता-परवाना अधिनियमके[1] अन्दर अर्जदारोको अपील करनेका अधिकार है। हम तो कहना चाहेंगे कि वास्तवमे परवाना अधिकारीका कार्य नही, बल्कि नगर-परिषदके उक्त दोनो सदस्योके, जो खुद ही डडीमें दूकान-दार है, उद्‌गार ही लज्जाजनक है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–१०–१९०३

१९. एशियाई "बाजार"

हमारे सहयोगी *वेस्टर्न ट्रान्सवाल ऐडवर्टाइज़र* और *ज़ीरस्ट एक्सप्रेसने* एशियाई *बाजारोंके* प्रश्नपर जो विचार प्रकट किये है, उन्हे हम हर्षके साथ नीचे दे रहे है।

व्यापारी-सघ (चेम्बर ऑफ कॉमर्स) की बैठकके विचारणीय विषयोके बारेमे लिखते हुए हमारा सहयोगी अपने अग्रलेखमे कहता है:

> एशियाई *बाजारोंका* तीसरा प्रश्न एक ऐसा विषय है, जिसपर काफी चर्चा करनेकी जरूरत है। व्यापारी संघ इस विषयमें इतना जोर क्यों लगा रहा है, यह अभीतक हमारी समझमें नहीं आया। हमें कहा तो सिर्फ इतना ही गया है कि अगली बैठकमें उसपर विचार होगा, किन्तु हमारा अनुमान यह है कि इस बैठकमें सरकारसे विनती की जायेगी कि वह अध्यादेशपर अमल करनेके लिए तुरन्त कदम उठाये। हमें कुछ भी नहीं मालूम कि एशियाई व्यापारियोको शहरसे बाहर हटानेके लिए कुछ-न-कुछ करनेके लिए संघ इतना उतावला और अधीर क्यों हो रहा है और हम समझते हैं कि हमारे शहरकी धूलभरी सड़कोंपर बहस करना इससे अधिक संगत है।

हमारे सहयोगीको इस प्रश्नपर इतनी समझ-भरी दृष्टिसे विचार करते हुए देखकर हमें प्रसन्नताका अनुभव हुआ है और हम सहयोगी *ऐडवर्टाइज़रकी* रायसे सहमत है कि व्यापारी-सघ भारतीय व्यापारियोको जीरस्टसे हटानेके लिए अत्यन्त आतुर है। हमें ज्ञात हुआ है कि जीरस्टमें पहलेसे ही एक पृथक् बस्ती है, जिसे पुरानी हुकूमतने बसाया था। और यह कि, वर्तमान सरकारने उसका पुन. सर्वेक्षण किया है और उसे वह *बाजारका* नया नाम देकर उन तमाम भारतीय व्यापारियोको वहाँ हटाना चाहती है, जिनके पास लड़ाईके पहले परवाने नही थे। हमारी राय है कि यह कार्य सरकारके द्वारा जारी की गई अपनी सूचनाके[2] अनुरूप

१. कानूनकी धाराओके लिए देखिये खण्ड २, पृष्ठ ३८३–३८६।
२. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ३१४।

भी नही होगा; क्योकि सूचनामे साफ कहा गया है कि ट्रान्सवालमे *बाजार* शहरके अन्दर ही स्थापित किये जायेगे; और लॉर्ड मिलनरका आश्वासन है कि ये *बाजार* शहरके अन्दर ही ऐसी जगहपर होगे कि जिससे ब्रिटिश भारतीयोको गोरे व्यापारका भी कुछ हिस्सा मिल सके। अब, अगर जीरस्टकी पुरानी बस्ती, जो शहरके भीतर नही बाहर है, दूसरे शहरोमे बननेवाले *बाजारोंका* नमूना हो तो हमारी रायमे यह एक अत्यन्त गम्भीर बात होगी। हर हालतमे उन लोगोके लिए अपना सारा कारोबार हटाना बडे सकटकी बात होगी, जिनका व्यापार जम गया है। अत हमे अब भी आशा है कि निहित स्वार्थोको छेड़नेका ऐसा काम नही किया जायेगा। परन्तु एक तरफ पड़ी हुई ऐसी बस्तियोमे व्यापार करना नये अर्जदारोके लिए भी एकदम असम्भव होगा। चूंकि वर्ष समाप्त होने जा रहा है, इस मामलेका निर्णय करना दिन-ब-दिन अधिकाधिक जरूरी होता जा रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-१०-१९०३

२०. भारतसे गिरमिटिया मजदूर

पिछले हफ्ते हमने प्रवासियोके कार्यवाहक संरक्षकके सन् १९०२ के मनोरंजक प्रतिवेदनके एक हिस्सेपर विचार किया था। उस वर्ष सोलह जहाजोने — ग्यारहने मद्राससे और पाँचने कलकत्ता से — ४,३७३ भारतीयोंको उतारा, जिनमे २,९४० पुरुष थे और १,०६९ स्त्रियाँ थी। इस वर्ष प्रवेशके लिए १८,००० अर्जियाँ आई थी। इनके अलावा १,९०२ अविचारित अर्जियाँ सन् १९०१ की पडी हुई थी। इस प्रकार सन् १९०२ के अन्तमे इस प्रतिवेदनके अनुसार १७,५०० मनुष्य ऐसे थे जो भेजे नही जा सके। प्रतिवेदन आगे कहता है:

> अगर भारतमें मजदूरोकी भरती और उन्हें भेजनेका काम जोरोंसे आगे नहीं बढ़ाया गया तो भारतीय मजदूरोंकी आवश्यक संख्या हमें ढाई वर्षसे पहले नहीं मिल सकेगी। भारतीय मजदूरोंकी माँग इतनी अधिक बढ़नेका कारण वतनी मजदूरका, खास तौरपर खेतीके काममें, अविश्वसनीय होना है।

इस असाधारण माँगके दूसरे कारण ये बताये गये है:

> लड़ाईके दिनोंमें इन वतनी आदमियोंको ऊँची मजदूरी मिलती रही है। रिक्शा चलाकर वे प्रतिदिन एक-एक पौंड कमा लेते हैं। फिर गोरी आबादी ९,००० बढ़ गई है। इसलिए बहुतसे मजदूरोंको उनके पास काम मिल गया होगा। मजदूरोंकी इस कमीके कारण वतनी आदमियों और स्वतन्त्र भारतीयोंको खूब ऊँची मजदूरी मिल रही है। यह सातवाँ वर्ष है, जब उनको हर महीने साठ-साठ शिलिंग पड़ जाते हैं।

इस प्रकार प्रतिवेदनसे प्रकट है कि उपनिवेशकी समृद्धिके लिए भारतीयोकी कितनी अधिक आवश्यकता है। हर जगह उनकी जरूरत है और फिर भी अखबारोमे लेखक शिकायते कर रहे है कि उपनिवेशमें भारतीयोकी बाढ़ आ रही है। हमारा सहयोगी *नेटाल ऐडवर्टाइज़र* तो और आगे बढ़कर उपनिवेशके प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम और गिरमिटिया मजदूरोके प्रवेश-सम्बन्धी कानूनोके भेदको भी भुला देता है और लिखता है कि भारतीयोका प्रवेश रोकनेमे प्रवासी-

प्रतिवन्धक अधिनियम एकदम असफल रहा है। हम सहयोगीको याद दिलाना चाहते हैं कि गिरमिटिया मजदूरोंपर प्रवासी-प्रतिवन्धक अधिनियम लागू नही होता और इस प्रकार स्वतन्त्र भारतीयोके प्रवेश-नियन्त्रणका गिरमिटिया मजदूरोके प्रश्नसे कोई सम्बन्ध नही है। विचाराधीन वर्षमें ३२९ पुरुष और १०५ स्त्रियाँ भारत लौटे। और सन् १८९१ के गिरमिटिया मजदूरोके कानूनका सशोधन करनेवाले अधिनियमके मातहत ६४३ पुरुषो और २९६ स्त्रियोने अपनी पाँच वर्षकी अवधि पूरी होनेपर पुन नये शर्तनामेपर दस्तखत किये हैं। १,६५५ पुरुषो और ४५१ स्त्रियोने ३ पौडका व्यक्ति-कर अदा किया है और इस तरह, उपनिवेशको ६,३१८ पौण्डकी सालाना आय दी है। इतने पुरुषो और स्त्रियोका सालाना कर अदा करना यह भी सिद्ध करता है कि स्वतन्त्र भारतीय मजदूरोकी भी यहाँ अत्यधिक माँग है।

> **फिर रसोइये, हुजूरिये, धोबी इत्यादि विशेष प्रकारके नौकरोंकी माँग पहलेके समान ही है। बहुतसे स्वतन्त्र भारतीय ऊँची मजदूरीपर ट्रान्सवाल चले गये हैं और अब एक मामूली रसोइया ६ पौंड प्रतिमास वेतन देनेपर भी भीतरके उपनिवेशोंमें नहीं जाता। खास प्रकारकी योग्यता रखनेवाला आदमी तो १६ पौंड मासिक तककी माँग करता है। मजदूरों और नौकरोंके वेतन इतने बढ़ जानेके कारण साधारण लोगोंका इस वर्गके स्वतन्त्र भारतीयोको अपने घर नौकर रखना लगभग असम्भव हो गया है। गिरमिटिया मजदूर मिले, केवल तभी इस तरहके नौकरोंको रखा जा सकता है।**

इस आखिरी वाक्यसे सिद्ध है कि एक प्रकारकी गुलामी जारी हो तभी यहाँके जरूरतमन्द लोगोंको वाजारकी दरोकी आधीसे भी कम दरोपर नौकर मिल सकते हैं। फिर भी जो लोग अपनी सेवाएँ इतनी कम दरोपर पाँच-पाँच वर्ष अथवा इससे भी अधिक समयके लिए देते हैं, उनको अपनी आजादीकी कीमत ३ पौड वार्षिक कर चुका कर देनी पडती है।

उपनिवेशका भारतीय विवाह-विषयक कानून भी अभीतक अत्यन्त असन्तोषजनक है।

> **विचाराधीन वर्षमें १,०५३ विवाह दर्ज हुए, जब कि इससे पहलेवाले वर्षमें ४०३ विवाह दर्ज हुए थे। इनमें से ५२७ तो भारतीयोंके यहाँ पहुँचनेके बाद, उनके वितरणसे पहले दर्ज हुए थे। शेष नेटालमें दर्ज थे। इसमें अब एक सवाल खड़ा किया गया है कि यदि वधू या वरमें से कोई एक भी १८९१ के २५वें कानूनकी धारा ७१ के अनुसार अपना विवाह दर्ज करानेसे इनकार करे तो ऐसे धार्मिक विवाह जायज माने जायेंगे अथवा नहीं। इसमें शक नहीं कि अविवेकशील लोगोमें बहुत-सी बुराइयाँ फैली हुई हैं। जैसे, वे अपने बच्चोंकी शादी बहुत छोटी उम्रमें कर देते हैं। और जब वे बड़े होते हैं तब लड़कीको पतिके घर भेजनेमें बाधाएँ उपस्थित करते हैं। कभी-कभी पैसे लेकर उसे दूसरे आदमीके साथ जानेके लिए ललचाते भी हैं। और चूँकि इस धारामें धार्मिक विधिकी आवश्यकता नहीं है इसलिए पंजीयनकी हदतक इसका कोई मूल्य नहीं होता।**

यह कठिनाई तबतक बनी रहेगी, जबतक विवाह विषयक कानूनका उपनिवेशके कानूनके साथ सामजस्य स्थापित नही हो जाता और वर-वधूके धर्मके अनुसार हुए विवाहोको मान्यता नही दे दी जाती। विवाहोको दर्ज करानेके खिलाफ भारतीयोके मनमें बड़ा गहरा विरोध है। वे विवाहको केवल एक इकरारनामा नही, वल्कि एक धार्मिक विधि मानते हैं। उनके लिए वह एक अत्यन्त पवित्र वस्तु है। वहुत-सी जातियोमें तो विवाहका वन्धन अटूट होता है। उनमे

तलाक है ही नही। ऐसे लोगोकी दृष्टिमे सरकारी कागजोमे शादियोका दर्ज किया जाना एक तमाशा है, और जैसा कि सरक्षक (प्रोटेक्टर)ने कहा है .

> **उच्च वर्गके भारतीयोंमें स्वभावतः शायद ही कभी कोई कठिनाई पैदा होती है। ये कठिनाइयाँ तो केवल वहीं खड़ी होती हैं, जहाँ माता-पिता लड़कीको धन कमानेका साधन मानते हैं। पंजीयनके लिए गये लोगोंमें से बहुत-सी औरतें शपथपूर्वक यह नहीं कह सकीं कि उनके पति मर चुके हैं। इसलिए उनकी शादियाँ दर्ज नहीं की गईं।**

इस बुराईको कम करनेके दो ही रास्ते है। एक तो यह कि भारतसे रवाना होनेसे पहले प्रत्येक स्त्री और पुरुषके बारेमे निश्चित जानकारी प्राप्त कर ली जाये कि वह विवाहित है या नही। और दूसरा यह कि, वर-वधूके धर्मके अनुसार जो विवाह हुए हो उनको उपनिवेशमें मान्यता दे दी जाये। यदि उपनिवेशके साधारण कानूनके विरुद्ध कोई बात हो—जैसे, किसी मनुष्यकी एकसे अधिक पत्नियाँ हो, या वे विवाहके योग्य वयकी न हो—तो ऐसी शादियोको मान्यता न दी जाये। इसके लिए आवश्यक है कि भारतीय विवाहोकी जाँचके लिए ऐसे अधिकारी नियुक्त कर दिये जाये, जिनकी सचाईपर किसीको शक न हो। उन्हे सब भारतीयोके विवाहोके सम्बन्धकी जानकारी एकत्र करनेका काम सौप दिया जाये। और भारतीयोके मान्य पुरोहितोको यह जानकारी तैयार करनेका काम दिया जाये। यद्यपि ऐसे नियम बनानेसे कठिनाई पूरी-पूरी तरह तो हल नही होगी, फिर भी हमें इसमे जरा भी सन्देह नही कि वह बहुत हदतक कम जरूर हो जायेगी।

कहा जाता है, जो १,४१२ भारतीय भारतको लौटे, वे अपने साथ १६,५२२ पौड नकद और ४,८०९ पौड कीमतके जेवर ले गये। यह एक आदमीके पीछे १५ पौडसे कुछ ज्यादा पड़ा। यह उसकी पाँच वर्षकी बचत है, अर्थात् एक वर्षकी बचत ३ पौड हुई। इस रकमको यदि दक्षिण आफ्रिका आनेवाले भारतीयोकी बचतका नमूना मान लिया जाये तो इससे प्रकट है कि शर्तकी अवधि भारतमे समाप्त करनेका प्रस्ताव अत्यन्त हानिकर है। यह रकम इतनी छोटी है कि उस व्यक्तिको कोई सहारा नही दे सकती। पाँच वर्षके कठिन परिश्रमके बाद १५ पौडकी बचत भारत जैसे गरीब देशमें भी उसे बहुत सहायक नही होगी। इतनी छोटी पूंजीसे वह न तो व्यापार कर सकता है, न और कोई काम-धन्धा।

मद्रासके निवासी बहुत मितव्ययी होते हैं। ध्यान देनेकी बात है कि यह उन्होने एक बार और सिद्ध कर दिया। वे अपने साथ १२,६०० पौड ले गये, जब कि उनके कलकत्तावाले भाई केवल ८,७०० पौड ले जा सके। ३१ दिसम्बरको कुल प्रवासी भारतीयोकी सख्या ८७,००० थी। इनमें से १५,००० उपनिवेशमे पैदा हुए थे। हम देखते है कि सोनेकी खानोमे भी अभी तक भारतीयोंको लिया जा रहा है, यद्यपि यह प्रयोग पूरी तरह सफल साबित नही हुआ है। इसका मुख्य कारण यह है कि उन्हे जाडेके मौसममें कामपर बुलाया गया। यह मौसम उन्हे अनुकूल नही पड़ता। जिन्हे जमीनके अन्दर काम करना होता है, उनकी मजदूरी ड्योढी होती है, अर्थात् १० शिलिंगके बजाय मासिक १५ शिलिंग।

> **संरक्षकके मुहकमेकी मार्फत २३३ भारतीयों द्वारा २,६७६ पौंड १२ शिलिंग और पोस्ट ऑफिसके द्वारा १,०५,८८९ पौंड भारत भेजे गये। ३१ दिसम्बरको नेटाल सेविंग्स बैंकमें १,७८७ भारतीयोके ४६,३०९ पौंड जमा थे। जब कि इससे पहलेके वर्षमें १,३१० भारतीयोंके ३४,१०८ पौंड जमा थे।**

संरक्षक कहता है "यह निवेदन करते हुए प्रसन्नता होती है कि कुल मिलाकर भारतीय कानूनोंका अच्छी तरह पालन करते हैं।" दुर्भाग्यकी बात तो यह है कि कानूनका पालन करनेकी यह अच्छी वृत्ति दक्षिण आफ्रिकामें व्यर्थ जा रही है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९-१०-१९०३

२१. लेडीस्मिथके भारतीय

लेडीस्मिथके व्यापार-सघकी एक दिलचस्प बैठकका सच्चा-सच्चा विवरण हमारे सहयोगी *नेटाल विटनेसने* छापा है। महापौर श्री डी० स्पार्क्सने भारतीय परवानोंके बारेमें अपने भाव प्रकट करते हुए कहा

> **अरब व्यापारी अपने अच्छेसे-अच्छे आदमियोंको ४ पौंड मासिक देते है, जब कि गोरे दूकानदारोंको बीस-बीस पौंड और कभी-कभी इससे भी अधिक देना पड़ता है। भारतीयोंके पास भी व्यापारके परवाने हैं। परन्तु वे यूरोपीय दूकानदारोंके रिवाजोंकी परवाह नहीं करते और अपनी दूकानें चौबीसों घंटे खुली रखते हैं। क्या आप लोग पसन्द करेंगे कि आपके आदमी सुबह पाँच बजेसे लेकर रातके नौ-नौ बजेतक दूकानोंपर काम करते रहें? इस प्रश्नका अब हमपर प्रत्यक्ष असर पड़ने लगा है। इसलिए इस मामलेमें हमें जल्दीसे-जल्दी कोई कदम उठाना चाहिए। इसीमें लेडीस्मिथ शहर, जिले और हमारी आनेवाली पुश्तोंकी भलाई है। किन्तु अगर हम समयपर नहीं चेते और ढील-पोल चलती रही तो लेडीस्मिथका यह ऐतिहासिक शहर एक एशियाई शहर बन जायेगा।**

ऊपरके भाषणमें योग्य महापौर जितनी गलत बातें गिनतीके पाँच-सात वाक्योंमें चतुरताके साथ कह गये हैं, शायद ही कोई इतने थोड़े वाक्योंमें इतनी गलत बातें कह सके। श्री स्पार्क्सको हम चुनौती देते हैं कि ऊपर उन्होंने जो बात सबसे पहले कही है, अर्थात् यह कि भारतीय व्यापारी अपने अच्छेसे-अच्छे आदमियोंको ४ पौंड मासिक वेतन देते हैं, सिद्ध करके बतायें। भारतीय व्यापारी-व्यवसायी अपने कारकुनों और विक्रेताओंको जो वेतन देते हैं उसकी कुछ-कुछ जानकारी रखनेका हम दावा कर सकते हैं। और श्री स्पार्क्सको यह बताते हुए हमें बहुत खुशी हो रही है कि भारतीय व्यापारी अपने अच्छेसे-अच्छे आदमियोंको मासिक २५ पौंडतक अथवा इसके बराबर वेतन देते हैं; अर्थात्, ये आदमी १२ से १५ पौंड तो नकद पाते हैं और इसके अलावा उन्हें भोजन तथा मकानकी सहूलियत दी जाती है। हम यह भी बता दें कि उत्तम आदमियोंको अपनी सेवाकी अवधिके अन्तमें खासा इनाम भी दिया जाता है। इसके आधे दर्जन उदाहरण तो हम अभी दे सकते हैं और अगर श्री स्पार्क्स ४ पौंड मासिक वेतन पानेवाले अच्छेसे-अच्छे आदमियोंके नाम बतानेकी कृपा करें तो हमने जो वेतन बताया है उसके पानेवालोंके नाम हम भी खुशीसे उन्हें बता सकेंगे। यह बिलकुल सही है कि कुछ कारकुन और नौकर सचमुच ४ पौंड मासिक वेतन पाते हैं। परन्तु जिनको यह वेतन मिलता है, वे अकसर इससे अधिक पानेके पात्र भी नहीं होते। जो आदमी एकदम नये हैं, जिनको काम सिखानेकी जरूरत है, और अंग्रेजी भाषाका ज्ञान न होनेके कारण जिनका बहुत उपयोग नहीं हो पाता, वे बहुत अच्छे वेतनकी आशा भी नहीं कर सकते। फिर यह नहीं भुलाया जा सकता कि जिनको ४ पौंड मासिकका भी वेतन मिलता है, उन्हें हमेशा वेतनके अलावा भोजन और मकानकी सुविधा दी जाती

है। हम यह नही कहते कि भारतीय कम वेतन स्वीकार ही नही करते। सच तो यह है कि वे अकसर बहुत थोडा वेतन स्वीकार कर लिया करते हैं। परन्तु जब कोई बात बहुत बढा-चढाकर कही जाती है तो हमे उसका प्रतिवाद करना ही पड़ता है। क्योकि, उपनिवेशमें भारतीयोके प्रति पहले ही काफी दुर्भाव भरा पडा है। ऐसी गलत बातोसे वह और भी बढ जाता है। भारतीयोकी आदते सीधी-सादी और रहन-सहन कम खर्चीला है। इसलिए वे थोडे वेतनमें भी सन्तोष मान लेते हैं। फिर, हमारी समझमे नही आता कि जहाँ इतनी अधिक होड है, और सबके लिए खुली होड़ है, वहाँ वेतनके बारेमे किसीको क्यो शिकायत हो। हम यह स्वीकार करनेको तैयार हैं कि भारतीय दूकाने — बहुतसी, सब नही — यूरोपीय दूकानोकी अपेक्षा अधिक समयतक खुली रहती हैं। परन्तु यह कहना तो सरासर गलत है कि वे सुबह पाँच बजेसे लेकर रातके नौ-नौ बजेतक खुली रहती हैं। और, जहाँतक ऐतिहासिक शहर लेडीस्मिथके एशियाई बन जानेका डर है, क्या हम महापौर महोदयको याद दिलाये कि अगर सर जॉर्ज व्हाइटका प्रमाणपत्र सही है तो उसे बोअरोके हाथमे जानेसे—चाहे वह कितने ही थोडे समयके लिए क्यो न हो—प्रभुसिंह[1] नामक अकेले एक भारतीयकी बहादुरीने बचाया था। वह प्रभुसिंह ही था जो अपनी जानको खतरेमे डालकर एक पेडपर चढकर बैठ गया था, और ज्यो ही अम्बुलवाना टेकड़ीपर बोअर तोप दागी जाती, वह घटा बजाकर उसकी सूचना दिया करता था। प्रभुसिंहका यह काम इतना महत्त्वपूर्ण माना गया कि सर जॉर्जने इसका खास तौरपर उल्लेख किया और लेडी कर्जनने उसे विशेष मान्यता दी और इनामके तौरपर उन्होने उसके लिए एक चोगा भेजा, ताकि वह डर्बनमे उसे सार्वजनिक रूपसे भेट किया जाये। इसलिए श्री स्पार्क्सके मुँहसे यह ताना शोभा नही देता। परन्तु जहाँ लेडीस्मिथके महापौर और वहाँके व्यापार-सघके अन्य सदस्योके शब्द हमारी रायमे अनुचित है, वहाँ लेडीस्मिथके ब्रिटिश भारतीय व्यापारियो और दूकानदारोको भी हम चेतावनी देना चाहते हैं। पहले श्री स्पार्क्सने, और बादमे इतनी अच्छी तरह और सौम्य भाषामे परवाना अधिकारी श्री जी० डब्ल्यू० लाइन्सने, भारतीयोके यूरोपीय दूकानदारोकी अपेक्षा अधिक समयतक दूकाने खुली रखनेकी जो शिकायत की, उसके प्रति हम अपनी सहानुभूति प्रकट किये बिना नही रह सकते। श्री उमर एक व्यापारी हैं। उनका यह कहना वाजिब है कि भारतीयोके और यूरोपीयोके व्यापारमे अन्तर है। भारतीय व्यापारियोके ग्राहक ऐसे वर्गके लोग हैं, जिनके लिए अधिक समयतक दूकाने खुली रखना जरूरी होता है। परन्तु इसमें कोई शक नही कि इस मामलेमे बीचका कोई रास्ता निकल सकता है। और यूरोपीय दूकानदारोकी माँगपर जरूर उचित विचार होना चाहिए। ऐसी बातोमे, और जहाँ समस्त समाजकी भलाईका सवाल हो वहाँ, हमे तमाम उचित सुझावो और सलाहोका, बिना किसी दबावके, अवश्य स्वागत करना चाहिए। यह बिलकुल सम्भव है कि दूकाने आम तौरपर किस समयसे किस समयतक खुली रहे, इस बारेमे कानून बन जाये। परन्तु इससे कही अधिक शोभाजनक और लाभदायक यह होगा कि भारतीय व्यापारी खुद ही इस विषयमे पहल करके आवश्यक सुधार कर ले। तब हम जाहिर कर सकेंगे कि जब-कभी किसी वाजिब शिकायतकी तरफ हमारा ध्यान दिलाया जाता है, हम उसे दुरुस्त करनेके लिए और यूरोपीयोके साथ सहयोग करनेके लिए तैयार रहते हैं। इसलिए श्री लाइन्ससे मिलनेवाले भारतीयोने उन्हे जो वचन दिया है कि वे उनके मध्यमार्गीय प्रस्तावपर विचार करेंगे, अवश्य ही उसका अच्छा परिणाम होगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९–१०–१९०३

१. गांधीजीने इस घटनाका वर्णन *दक्षिण आफ्रिकाका सत्याग्रह*, नवाँ अध्याय पृष्ठ १०३–४ में किया है।

२२. न्यायालयका सम्मान क्या है?

नेटालके विद्वान मुख्य न्यायाधीश सर हेनरी बेलने फिर इस प्रश्नको छेड़ा है कि जब एक ब्रिटिश भारतीय न्यायालयमें कदम रखे तब वह न्यायालयका उचित सम्मान किस प्रकार करे? न्यायमूर्तिके विचाराधीन एक मामलेमे कोई मनोरथ नामक ब्रिटिश भारतीय गवाह खुले सिर न्यायालयमें हाजिर हुआ। न्यायमूर्तिने दुभाषिये (श्री मैथ्यूज) से पूछा कि गवाहोके बारेमें भारतमें क्या रिवाज है? दुभाषियेने कहा कि अगर गवाह जूता पहनकर आये तो इसमें न्यायाधीशका अपमान समझा जाता है। न्यायमूर्तिने दुभाषियेसे कहा कि वह कलकत्ताके मुख्य न्यायाधीशसे दरियाफ्त करे कि वहाँका सही-सही रिवाज क्या है। न्यायमूर्तिने कहा कि मैंने तो भारतीयोको पगडी और जूते दोनो पहनकर न्यायालयमें आते हुए देखा है। उन्होने विनोदपूर्वक यह भी कहा कि अगर वे जूते निकालकर आयें तो उनके गायब हो जानेका डर रहता है। हमारा खयाल है कि इस विषयमे सर हेनरी तिलका ताड़ बना रहे हैं। जहाँतक नेटालसे सम्बन्ध है, यहाँ क्या किया जाये, यह अनेक बार तय हो चुका है। बरसो पहले सर वाल्टर रैगसे[1] भारतीयोका एक शिष्टमण्डल मिला था। और यह तय हुआ था कि पगडी हटानेके स्थानपर भारतीय न्यायासनको सलाम किया करे। जब सन् १८९४ मे नेटाल सरकारकी तरफसे उसके प्रतिनिधि भारत गये तो वे वहाँके रिवाजके बारेमें पूरी-पूरी जानकारी लाये थे। और इसका उल्लेख उन्होने सरकारको पेश किये अपने प्रतिवेदनमें किया था। उन्होने स्पष्ट किया था कि भारतके चलनमे सम्बन्धित व्यक्तियोको, चाहे वे पूर्णत अथवा अशत भारतीय वेशभूषामे हो, पगडी या जूते उतारनेकी आवश्यकता नही है। अर्थात् अगर उनके सिरपर कोई पूर्वी पोशाक है तो उसे नही हटाना चाहिए। परन्तु अगर जूते देशी ढगके बने है तो उनको पूर्वी रिवाजके मुताबिक निकाल देना चाहिए। सर वाल्टर यह जानते थे। अत उन्होने हुक्म दिया कि बूट या जूते नही निकाले जायें, क्योकि नेटालमें उन्हे निकालना व्यावहारिक नही होगा, और दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय निरपवाद रूपसे यूरोपीय ढगके बूट या जूते ही पहनते है। न्यायमूर्तिको हम यह भी याद दिला दें कि जब वे वकालत कर रहे थे, और नेटालके वकील-मण्डलकी शोभा बढ़ा रहे थे, तब उन्होने कासिम अब्दुल्ला बनाम बेनेटकी तरफसे बडे वकीलकी हैसियतसे पैरवी की थी। कासिम अब्दुल्लाने श्री बेनेट मजिस्ट्रेटपर मामला इसलिए चलाया था कि उनकी अदालतमें चल रहे एक मामलेमें श्री बेनेटने हुक्म दिया था कि गवाहकी पगड़ी जबरदस्ती उतार ली जाये। इसपर श्री कासिमने हर्जानेकी माँग की थी। तब वे यह फैसला प्राप्त करा सके थे कि ब्रिटिश भारतीयोको सिरकी पोशाक या जूता निकालनेके लिए मजबूर नही करना चाहिए, किन्तु अदालतमें प्रवेश करनेपर वे सलाम किया करे। तबसे यहाँ यही रिवाज पाला जाता है। और अब इस प्रश्नको पुन छेड़ना अनुचित होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९-१०-१९०३

१. पहले नेटालके छोटे न्यायाधीश और बादमें स्थानापन्न मुख्य न्यायाधीश।

२३. ट्रान्सवालके "बाजार"

ट्रान्सवालमे रहनेवाले ब्रिटिश भारतीय दूकानदारो और व्यापारियोको पृथक बस्तियोमे (जिनको *बाजारका* गलत नाम दिया गया है) चले जानेकी जो सूचनाएँ मिली है, उनकी मियाद आगामी ३१ दिसम्बरको समाप्त होती है। प्रतीत होता है कि सरकारके एशियाई मुहकमेमे कोई आसुरी प्रतिभा काम कर रही है। भिन्न-भिन्न शहरोके मजिस्ट्रेटोने अर्जदारोको बाड़े देनेके बारेमे जो सूचनाएँ जारी की है उन्हे हमने देखा है। जमीने देनेके इन प्रस्तावोमें इतनी कडी शर्तें जुडी हुई है कि उन्हें देखकर हमे यही कहना पडता है कि वर्तमान कानूनमे भारतीयोको जो-कुछ थोड़ा-बहुत दिया गया है, उससे भी उन्हे वचित करनेका जानबूझकर प्रयत्न किया जा रहा है। हमारी समझमे नही आता कि उपनिवेशकी सरकारकी तरफसे नही, तो उसके नामसे, व्यापारमे भारतीयोके प्रति ऐसी तुच्छ ईर्ष्या कभी पैदा ही क्यो होनी चाहिए। इन सूचनाओमे से एकमे लिखा है :

> अगर आप कोई खास बाड़े चाहते हैं तो अपनी अर्जीमें आपको लिखना चाहिए कि आपको ये बाड़े क्यों चाहिए। अगर इन बाड़ोके पट्टेपर आपका कोई विशेष हक हो तो उसका भी उल्लेख कीजिए। आपको याद रखना है कि मैं ऐसे किसी आदमीको बाड़े नहीं दे सकता, जो वास्तवमें शहरमें नहीं रहता या व्यापार नहीं कर रहा है, और जिसको प्रत्यक्ष रहने या व्यापारके लिए इन बाड़ोंकी जरूरत नहीं है, और रहने अथवा व्यापारके लिए ठीक जितने बाड़ोंकी जरूरत होगी उससे अधिक भी नहीं दिये जायेंगे।

हमे याद नही पड़ता कि ऐसी 'न खाये न खाने दे' वाली नीति कभी पिछली गणराज्य सरकारके जमानेमे भी रही हो। हम आशा करते है कि इन तथाकथित *बाजारोंमें* दी जानेवाली जमीनोका लालच चाहे कितना भी क्यो न हो, ट्रान्सवालके भारतीय तबतक इनसे कोई वास्ता नही रखेगे जबतक, लॉर्ड मिलनरने जिस कानूनके बननेका वचन दिया है, वह बन नही जाता। परन्तु, किसी भी हालतमे कोई अर्जदार जमीनकी जरूरतका कारण क्यो बताये? कानूनके अनुसार निर्धारित स्थानोमे भारतीय बिना प्रतिबन्धोके जमीने रख सकते है। तब अगर कोई अर्जदार उन *बाजारोंमें* जमीन लेना चाहता है तो उसे वह क्यो नही मिल सकती? फिर, किसी अर्जदारपर उसके रहने और व्यापारके लिए जितनी जमीनकी जरूरत हो केवल उतनी ले सकनेकी शर्त क्यो? क्या इसका अर्थ हम यह समझे कि इन जमीनोके पट्टेदारोको अपने हिस्से दूसरे किसीको किरायेपर देनेका हक नही होगा, और उन्हे खुद हमेशा उनपर रहना होगा, नही तो उनके पट्टे छीन लिये जायेंगे? फिर इन जमीनोके पट्टे केवल उन्हीको क्यो दिये जायेंगे जो इन शहरोमे रहते या व्यापार करते है? पिछली हुकूमतके जमानेमे हर पृथक् बस्तीमे ऐसे मालिक और पट्टेदार थे, जो अपनी खुदकी जमीनोपर नही रहते थे। उन्हे जिस तरह चाहे इनको बरतनेका अधिकार था। वे इन्हे दूसरे व्यापारियोको किरायेपर दे सकते थे और अनेक जमीने रख सकते थे। तब ब्रिटिश हुकूमतमे उनकी यह आजादी क्यो छीनी जा रही है? लॉर्ड मिलनरका आश्वासन है कि सरकारके दिलमे ब्रिटिश भारतीयोके प्रति कोई दुर्भाव नही है और वह उन्हे केवल समानता और न्यायपूर्वक ही नही, उदारतापूर्वक भी

रखना चाहती है। परन्तु इन अनमोल *बाजारों*के बारेमे कौमके विरुद्ध जो सूचनाएँ निकाली गई है, वे तो इस आश्वासनके एकदम विपरीत है। अगर सरकार भारतीयोको परेशान करनेवाले कानून बनाकर यहाँसे निकाल बाहर करना चाहती है तो वह उन्हे एक बारमें बोरिया-बिस्तर समेत उपनिवेशसे बाहर क्यो नही कर देती? ऐसा करना उनके प्रति दया होगी। वे अपनी स्थिति जान जायेंगे और सरकारको अपने कार्योंके लिए झूठमूठके बहाने भी नही ढूँढने पडेंगे। ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी पुरानी सरकारकी भाँति वह साफ-साफ कह दे कि "यद्यपि आप लोग ब्रिटिश प्रजाजन है, तथापि हम आपसे कोई वास्ता नही रखना चाहते; क्योकि आपकी चमडीका रग गेहुँआ है।" ऐसा करना सख्त कार्रवाई है, और शायद ब्रिटिशोके लिए अशोभनीय भी। परन्तु इसमे ईमानदारी है। और यदि सरकार सचमुच भारतीयोपर मेहरबान है और उल्लिखित आश्वासनोपर अमल करना चाहती है तो अबतक बरती जानेवाली अपनी नीतिमें वह जितनी जल्दी परिवर्तन कर सके, सबके लिए उतना ही अच्छा होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९-१०-१९०३

२४. ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय

हम ट्रान्सवालके तथा-कथित भारतीय *बाजारों*के प्रश्नपर वापस जानेके लिए कोई क्षमा-याचना नही करते। वहाँ ब्रिटिश भारतीयोकी स्थिति अत्यन्त नाजुक है, और यह देखते हुए कि इस समय प्रश्नका यह सबसे कमजोर हिस्सा है, हम इसीपर अधिक ध्यान केन्द्रित करना अपना कर्तव्य समझते है। हम दूसरे स्तम्भमे स्टैन्डर्टनके मजिस्ट्रेटके हस्ताक्षरोसे युक्त एशियाई लोगोके नाम निकाली गई सूचना पुन छापते है। इससे स्पष्ट रूपसे वह भावना व्यक्त होती है, जिससे ब्रिटिश भारतीयोसे व्यवहारके सम्बन्धमें एशियाई विभागकी नीति सचालित होती प्रतीत होती है। सूचनाके अनुसार *बाजारमें* बाड़ोके पट्टेके लिए दरख्वास्तें माँगी गई थी जिनकी सूची गत मासकी ३० तारीखको बन्द होनी थी। प्रार्थियोको अपनी दरख्वास्तोमें यह बताना है कि "किन्ही विशेष बाड़ोकी आवश्यकता उन्हे क्यो है और उनको पट्टेपर देनेके लिए उनके दावोके आधार, यदि उनके पास हो तो, क्या है।" फिर मजिस्ट्रेट दी हुई तारीखपर दरखास्तोपर विचार करेगा और प्रार्थियोमे बाडोको निम्नलिखित नियमोके अनुसार बाँट देगा:

(क) किसी भी ऐसे व्यक्तिको कोई बाड़ा न दिया जायेगा जो वस्तुतः शहरमें नहीं रहता है या व्यापार नहीं करता है और जिसे अपने निवास या व्यापार-सम्बन्धी कार्योंके लिए बाड़ेकी आवश्यकता नहीं है।

(ख) किसी भी व्यक्तिको जितने बाड़े वस्तुतः उसके निवास या व्यापारके लिए आवश्यक हों, उससे अधिक बाड़े न दिये जायेंगे।

(ग) यदि किसी विशेष बाड़ेके लिए एकसे अधिक प्रार्थी है तो, किसी दावेदारके पास विशिष्ट व्यवहारके लिए अच्छा दावा न होनेकी अवस्थामें, उस बाड़ेका निर्धारण कानून द्वारा या किसी अन्य तरीकेसे किया जायेगा, जिसका फैसला मजिस्ट्रेट करेगा।

अब, जैसा हम इन स्तम्भोमे कई बार बता चुके है, १८८५का कानून ३ भारतीयोको मुहल्लो, *बाजारों*, या बस्तियोमे, जो उनके लिए निर्धारित किये जायें, भूमि-सम्पत्ति रखनेका

असीमित अधिकार देता है, किन्तु उनके इस अधिकारके गिर्द, शहरसे बहुत दूरकी बस्तियोके सम्बन्धमे, जहाँ व्यापार करना अत्यन्त असभव और रहना बहुत खतरनाक होगा, अत्यन्त परेशान करनेवाली शर्तोकी बाधाएँ खड़ी कर दी गई है। जो शर्तें लगाई गई है, उनकी हद दर्जेकी कठोरता समझनेके लिए यह तथ्य ध्यानमे रखना होगा कि ये बाड़े महज जमीनके खाली टुकड़े है। पट्टेदारोको इनकी पैमाइशकी फीस और किराया ही नही देना है, बल्कि उन्हे इनके ऊपर अपने मकान-दूकान भी बनाने है। तभी वे इन बाड़ोको अपने निवास या व्यापारके लिए ले सकते है, और वे केवल ऐसे ही कामोके लिए काफी होगे, दूसरे कामोके लिए नही। सरकार यह आशा कैसे करती है कि प्रत्येक भारतीय पट्टा ले लेगा, उसपर बाड़ा बना लेगा और शायद उसे किरायेपर न उठा सकनेपर भी वहाँ रहेगा। यह बात समझना बहुत कठिन है। सूचनामे दी गई हास्यास्पद शर्तोका पालन किया जा सके, इसके लिए प्रत्येक भारतीयको विशाल साधन-सम्पन्न व्यक्ति होना आवश्यक है। किन्तु दुर्भाग्यसे वह ऐसा है नही। फिर यदि वह सुन्दर इमारत नही खडी कर सकता, या केवल टीनकी खोली खड़ी कर लेता है, तो दोष उसके सिरपर मढ़ा जायेगा और वह इसलिए घृणा और तिरस्कारका पात्र बनाया जायेगा, कि वह महज खोलियोमे रहता है, यद्यपि स्थिति बिलकुल उसकी उत्पन्न की हुई नही, बल्कि सरकारकी उत्पन्न की हुई होगी। ट्रान्सवालमे भी कई स्थानोमे न्यूनाधिक इसी भाषामे ब्रिटिश भारतीयोको सूचनाएँ भेजी गई है। उनमे दी गई शर्तें लगानेमे परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयका कोई हाथ है, इसमे हमें बहुत अधिक सन्देह है। वस्तुत यह देखते हुए कि प्रत्येक सूचनाके शब्द दूसरीसे भिन्न है, सत्य बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। अत यह प्रतीत होता है कि मजिस्ट्रेट सभवत. प्रधान कार्यालयसे प्राप्त बहुत ही सामान्य निर्देशोके आधारपर अपने आप ही यह कार्रवाई कर रहे है। यदि ऐसी बात है तो इससे एक बार फिर हमने जो स्थिति ग्रहण की है उसका औचित्य सिद्ध हो जाता है। वह स्थिति यह है — भारतीयोके सम्बन्धमे कोई सम्बद्ध निश्चित नीति नही है और वे न्यूनाधिक मजिस्ट्रेटो या अन्य अफसरोकी दयापर निर्भर है, जो भारतीयोके प्रति या विरुद्ध, अपने पक्षपातके अनुपातसे, नरम या कड़ा व्यवहार करते है। ऐसी स्थिति अधिक दिन नही टिक सकती, अत. आशा की जाती है कि सर आर्थर लॉली[1], जिनका हृदय विशाल है, अपने बहुविध कर्तव्योसे कुछ समय बचायेगे और इस मामलेमे स्वय दिलचस्पी लेंगे। भारतीय गत दो वर्षसे अनिश्चय और दुविधाकी अवस्थामे रहनेके लिए विवश हो रहे है। उनको अपने दर्जेकी स्पष्ट व्याख्याकी आशा रखनेका अधिकार है। इस बीच, जैसा गताकमे कह चुके है, हम विश्वास करते है कि ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय धैर्यपूर्वक घटनाओकी प्रतीक्षा करेंगे और बाजारोंसे कोई सरोकार रखनेसे इनकार कर देंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५–११–१९०३

१. लेफ्टिनेंट गवर्नर।

२५. ईस्ट लन्दन और उसके भारतीय निवासी

हम अन्य स्तम्भमे *ईस्ट लंदन डिस्पेचका* एक संयत अग्रलेख उद्धृत करते है, जो नगरमे भारतीयों द्वारा भूमि-सम्पत्ति रखनेके प्रश्नपर लिखा गया है। हमारे सहयोगीने यह लेख एक भारतीयके साथ, जिसने वहाँकी एक प्रवान सडकपर भूमिका एक टुकड़ा खरीदा था और उसकी अच्छी कीमत दी थी, घटित घटनाके आवारपर लिखा है। हम अपने सहयोगीसे पूर्णत: सहमत है कि नगर-परिषद भवन-निर्माण कानूनोको कठोरतासे लागू करे, और हम उसे विश्वास दिलाते है कि यदि नगर-परिपद इस दिशामें अपने कर्तव्यका पालन करे तो सदासे सीधे-सादे और नियम-पालक भारतीय उन कानूनोंको भंग करके कभी मकान न बनायेंगे। अपने इस कथनकी सत्यताके प्रमाणस्वरूप हम भारतीय व्यापारियो द्वारा डर्बनमें ग्रे स्ट्रीटपर और अन्यत्र बनाई गई शानदार इमारतोका हवाला देते है। मुख्य बात यह है कि भारतीयोके साथ वन्वुजन और वन्वु प्रजाजनका-सा व्यवहार किया जाना चाहिए। हमें इसमे सन्देह नही कि भारतीयोके विरुद्ध अनुचित या ओछी स्पर्धा और अन्य दोषोके जो आरोप प्राय. अनुचित रूपसे लगाये जाते है, उनका कारगर इलाज यही है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५-११-१९०३

२६. प्लेग और लाल-फीताशाही

हमे कई सवाददाताओसे इस आशयकी शिकायते मिली है कि यद्यपि नेटालसे ट्रान्सवाल जानेवाले भारतीयोपर से प्लेग-सम्बन्धी रुकावटें हटा ली गई है; फिर भी प्रामाणिक ब्रिटिश भारतीयोको १० शि० ६ पे० खर्च करके डॉक्टरी प्रमाणपत्र लेने पड़ते है और फोक्सरस्टमें अव भी उनकी डॉक्टरी परीक्षा की जाती है। चिकित्सा-अविकारी उन्हे मजिस्ट्रेटके नाम पत्र दे देता है कि इस दिनतक उनको डॉक्टरी निगरानीमें रखा जाये। हमे यह लाल—फीताशाहीका अतिरेक प्रतीत होता है। यदि नियमोके हटाये जानेके वाद भी ये परेशानियाँ जारी रहती है तो हम नही जानते, ट्रान्सवाल-सरकारकी प्लेग-सम्बन्धी सूचनाको रद करनेका अर्थ क्या है। डॉक्टरी प्रमाण-पत्र लेना और उसके लिए आधी गिन्नी देना गरीव शरणार्थियोपर विलकुल अनावश्यक कर है। अत. ट्रान्सवालकी सरकार अपने अधिकारियोको जितनी जल्दी आवश्यक निर्देश भेज देगी, भारतीय शरणार्थियोके लिए उतना ही अच्छा होगा। वस्तुस्थिति यह है कि इन गरीवोको पिछले नौ माससे सफाई और स्वास्थ्य-सम्बन्धी सावधानीके नामपर अनन्त कष्टो और असुविधाओका लक्ष्य बनाया जा रहा है; जबकि दूसरे हजारो लोग तनिक भी डॉक्टरी निरीक्षण या व्यवस्थाके विना मुक्त रूपसे नेटालसे ट्रान्सवालमे प्रविष्ट होने दिये जाते है।'

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५-११-१९०३

२७. "ईस्ट रैंड एक्सप्रेस" और उसके तथ्य

बताया जाता है कि स्पेलोनकेन जिलेमे भारतीयोको परवाने दिये गये है। इस विषयपर हमारे सहयोगी *ईस्ट रैंड एक्सप्रेसने* अपने श्रेष्ठ साप्ताहिकके हालके एक अकमे "गुप्त कारगुजा-रियाँ" शीर्षकसे एक सम्पादकीय उपलेख प्रकाशित किया है। सहयोगी कहता है:

> स्पेलोनकेनमें वास्तवमें जो कुछ हो रहा है वह जानना एक दिलचस्प बात होगी। पता चला है कि इस तथ्यके बावजूद कि युद्धसे पहले वहाँ भारतीयोंको परवाने नहीं दिये जाते थे, अब अधिकारियोंने कुछ भारतीय व्यापारियोंको वहाँ कारोबार करनेके लिए परवाने दिये हैं। सन् १९०३ की सूचना ३५६ का क्या हुआ, यदि उसकी धाराएँ इतनी खुल्लम-खुल्ला तोड़ी जा सकती हैं? उस सूचनाकी उपधारा २ में स्पष्ट कहा गया है: 'किसी भी एशियाईको निर्दिष्ट *बाजारोंके* अतिरिक्त अन्यत्र व्यापार करनेके नये परवाने न दिये जायेंगे।' अब स्पेलोनकेनमें तो *बाजार* नहीं है। वह तो एक ऐसा विस्तीर्ण क्षेत्र है, जहाँ मुख्यतः वतनी लोग बसे हैं। प्रतीत होता है, सरकार जान-बूझ कर अपनी घोषणाका उल्लंघन कर रही है और एशियाइयोंके लिए असीमित स्पर्धाका द्वार खोल रही है। यदि सरकार एशियाइयोंके सम्बन्धमें नेटाली कानूनोंको लागू करनेका इरादा रखती है, तो वह खुल्लम-खुल्ला ऐसा करे। तब हम अपना कर्तव्य सोच लेंगे; किन्तु जैसी गुप्त कार्रवाईका ऊपर जिक्र किया गया है, वैसी कार्रवाइयोंका हमें अन्त कर देना चाहिए।

अब, हमे जो सूचना मिली है वह ऊपरकी सूचनाके विपरीत है। हमे ज्ञात हुआ है कि दो भारतीय अपने पुराने परवानोसे वचित होते-होते बचे। सयोगसे हमें यह बात भी ज्ञात है कि पीटर्सबर्ग जिलेसे ही, जिसके अन्तर्गत स्पेलोनकेन स्थित है, भारतीय व्यापारियोंकी अधिकांश मुसीबते शुरू होती है। हमारा विश्वास है कि हमारे सहयोगीको जो सूचना दी गई है वह वफादार भारतीयोके ऊपर और अधिक मुसीबतें लानेमे मदद देनेका एक प्रस्ताव-मात्र है। हमारे सहयोगी और हमारे बीच भारतीयोके प्रश्नपर एक सच्चा मतभेद है; किन्तु हमारा खयाल है कि हमारा सहयोगी इसपर विचारके समय तथ्योंको गलत रूपमें पेश करना नही चाहता। अतः हम उससे कहते है कि वह इस बातकी जाँच करे कि हमने जो कुछ ऊपर कहा है वह तथ्योका सही विवरण है या नही?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५-११-१९०३

२८. ट्रान्सवालमें यात्रा

हमारे सहयोगी *ट्रान्सवाल लीडरने* वतनी रेल-यात्रियोके सम्बन्धमे एक गुमनाम लेखककी खबरको प्रमुखता दी है और एक स्थानीय रेलगाड़ीके पहले दर्जेके डिब्बेमे वतनी यात्रियोको स्थान देनेकी रेलवे-अधिकारियोकी गुस्ताखीपर बहुत क्रोध प्रकट किया है। कथित सवाददाताके लेखानुसार बात यह दिखाई देती है कि उसको जॉर्ज गॉशसे आनेवाली रेलगाडीके पहले दर्जेके डिब्बेमें चार वतनी यात्री बैठे मिले। अन्य सब डिब्बोमे यूरोपीय यात्री बैठे थे। सवाददाताके पास पहले दर्जेका टिकट था और वह भी उसी गाड़ीसे जाना चाहता था। जब उसको दूसरे किसी डिब्बेमें स्थान न मिला तब, ऐसा प्रतीत होता है कि, वह उस डिब्बेके पाससे निकला जिसमे वतनी यात्री बैठे थे। यह उसकी सहिष्णुताकी सीमासे परे था। वह नहीं समझ सकता था कि वे पहले दर्जेमे यात्रा क्यो करते है। उन्होने भी किराया दिया है, यह प्रश्न उसके लिए विचारणीय न था। वह गार्डके पास गया और गार्डने यह कहा प्रतीत होता है कि वतनी यात्रियोने भी पहले दर्जेका किराया दिया है, अत उनको भी उस गाडीके पहले दर्जेमें यात्रा करनेका उतना ही अधिकार है, जितना स्वय सवाददाताको। गार्डके इस उत्तरके कारण वह सवाददाता अखबारोमें शिकायत छपाने दौड पड़ा। अपने पत्रमे उसने वतनी लोगो और भारतीयोको मिलाजुला दिया है। ऐसा ही हमारे सहयोगीने भी किया है। इस महादेशमे निस्सन्देह यह असाधारण बात नही है। इससे उस खतरेका पता चलता है, जिसका सामना हमारे देशवासियोको दक्षिण आफ्रिकामे सामान्यत, और ट्रान्सवालमे मुख्यत, करना है। यहाँ "वतनी, कुली और भारतीय" शब्दोंका ऐसा प्रयोग करनेकी एक प्रवृत्ति है, मानो ये सब एक ही हो। *लीडरने* रेलवे अधिकारियोसे अपील की है कि वे वतनी लोगोको और कुलियोको — ब्रिटिश भारतीयोको वह इसी नामसे पुकारना पसन्द करता है — पहले दर्जेमें यात्रा करनेसे तुरन्त वर्जित कर दें। वह यह भूल जाता है कि रेलवेके नियमोमे इस समय न तो भारतीयोका और न वतनी लोगोका पहले दर्जेमें यात्रा करना वर्जित है। और केवल वतनी लोगोके सम्बन्धमे यह व्यवस्था है कि वे अपनी अर्जी गाड़ी रवाना होनेके विज्ञापित समयसे कमसे-कम आधा घटा पूर्व दें। यदि वे चार या चारसे ज्यादा एक साथ यात्रा करनेवाले होंगे, तो उनकी अर्जीपर विशेष रूपसे विचार किया जायेगा। हम अपने सहयोगीको स्मरण दिला सकते है कि पुराने शासनमें भी भारतीयोकी पहले दर्जेमें यात्रा वर्जित न थी। हम उसे यह तथ्य भी याद दिलाना चाहते है (यद्यपि हमें बतलाया जाता है कि अखबारोके इतिहासमें पूर्व उदाहरणोका कोई मूल्य नही होता) कि *ट्रान्सवाल लीडर* युद्धसे पूर्व रगदार लोगोके अधिकारोका समर्थक था। इस पत्रकी सम्पादकीय कुर्सीको सुशोभित करनेवाले श्री पेकमैनकी अपेक्षा अधिक सहानुभूति रखनेवाला उनका कोई दूसरा मित्र नही था।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५-११-१९०३

२९. लेडीस्मिथके भारतीय दूकानदार

नेटाल विटनेस और *टाइम्स ऑफ नेटालने* लेडीस्मिथके भारतीय दूकानदारोके प्रति श्री लाइन्सकी कार्रवाईपर और इस धमकीपर, कि यदि वे यूरोपीयोके साथ अपनी दूकाने बन्द करना मजूर न करेंगे तो उनके परवाने नये न किये जायेंगे, जो टिप्पणियाँ लिखी है, उनको स्थान देते हुए हमे बहुत प्रसन्नता होती है। *टाइम्स ऑफ नेटाल* अपने सदाके तरीकेसे ब्रिटिश भारतीयोंकी निन्दा करनेके बाद आगे कहता है:

> किन्तु, इस सबके बावजूद, प्रश्न यह है कि लेडीस्मिथके टाउन क्लार्क श्री लाइन्सकी यह कार्रवाई कहाँतक उचित है कि वे सब अरब व्यापारियोंको इकट्ठा करें और उनको अपनी दूकानें उन्हीं समयोंपर बन्द करनेका आदेश दें जिनपर उनके यूरोपीय साथी बन्द करते हैं; और उनको वे ही छुट्टियाँ भी मनानेको कहें; और अन्यथा करनेपर उनके परवाने वापस लेनेकी धमकी दें। यह एक परवाना-अधिकारीके अधिकारोंका बहुत ही मनमाना उपयोग प्रतीत होता है। जब कोई व्यक्ति एक बार परवाना ले लेता है और सामान्यतः देशके और मुख्यतः अपनी नगरपालिकाके उपनियमोंका पालन करता है तब यह किसी भी स्थानीय अधिकारीके अधिकारोंके बाहर होना चाहिए कि वह उसको इतनी बुरी तरहसे बरबाद कर सके, जैसा श्री लाइन्स कहते हैं; क्योंकि यदि इस नवीनतम अफसरशाही उदाहरणका उचित निष्कर्ष निकाला जाये तो लेडीस्मिथका यह निरंकुश अधिकारी और ऐसे ही पदोंपर नियुक्त उपनिवेशके अन्य अधिकारी किसी भी यूरोपीयको अपनी दूकान जिस समय चाहें उस समय बन्द करनेका आदेश दे सकते हैं। यह एक नाजुक विषय है, आप इसे पसन्द करें या न करें; किन्तु 'अंग्रेजका घर उसका गढ़ है', यह पुरानी उक्ति लेडीस्मिथमें इस विषयको हल करनेसे पूर्व ध्वस्त कर देनी पड़ेगी।

यह कथन निस्सन्देह उचित है और विशुद्ध कानूनी और ब्रिटिश दृष्टिकोणसे भी श्री लाइन्सका प्रस्ताव मनमाना और अत्याचारपूर्ण है। फिर भी हम उस मतपर दृढ हैं, जो हमने व्यक्त किया है। श्री लाइन्सने जो मनमाना ढग अख्तियार किया उसके बावजूद लेडीस्मिथके ब्रिटिश भारतीयोके लिए यह बहुत ही गौरवास्पद होगा कि वे श्री लाइन्सके सुझावोको मान ले। निस्सन्देह शर्त यह है कि वे व्यावहारिक हो। यदि वे ऐसा कर सके तो उनके हाथोमे आत्म-रक्षाका एक बहुत अच्छा हथियार होगा और इससे लेडीस्मिथमे उनका बहुत-सा विरोध कम-जोर पड जायेगा। जबतक विक्रेता-परवाना अधिनियम वर्तमान रूपमे उपनिवेशकी कानूनी पुस्तकोमे मौजूद है तबतक भारतीय समाजको जागरूक रहना आवश्यक होगा और जहाँ झुकना उचित हो वहाँ झुकना भी पड़ेगा, भले ही उसमे कुछ आर्थिक हानि भी उठानी पडे, क्योकि वे (अर्थात् भारतीय व्यापारी) पूर्णतः परवाना-अधिकारियो, नगर-परिषदो या स्थानीय निकायोकी दयापर निर्भर हैं, जैसा बार-बार सकेत किया जा चुका है। कुछ इक्के-दुक्के उदाहरण ऐसे हो सकते है जिनमे इग्लैंडके अधिकारियोसे सहायता मिल सकती है। फिर भी यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि यह तन्त्र बड़ी मन्द गतिसे चलता है। अतः सबसे सुरक्षित बात यह है कि जैसी

स्थिति है उसे स्वीकार किया जाये। इस कानूनको हटवानेके उद्देश्यसे सब प्रयत्न किए जाये और इस दरमियान इस विधिसे कार्य किया जाये जिससे यह प्रकट हो जाये कि हमारे ऊपर जो निर्योग्यताएँ लगाई गई हैं, वे किस प्रकार अत्यन्त अनुचित हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५–११–१९०३

३०. पत्र: लेफ्टिनेंट गवर्नरके सचिवको

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
नवम्बर ७, १९०३

सेवामे
निजी सचिव
परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर
प्रिटोरिया

महोदय,

आपका तारीख ४ का पत्र[1] क्रमाक २१३१, मिला।

जैसा कि मैं कह ही चुका हूँ, इस वर्षकी विज्ञप्ति ३५६ को लेकर ब्रिटिश भारतीय सघने जो प्रतिवेदन[2] किया था उसके सम्बन्धमें परमश्रेष्ठके उत्तरोके मामलेपर बल देनेकी मेरी कोई इच्छा नही है। किन्तु मैं यह आशा करनेकी धृष्टता अवश्य करता हूँ कि परमश्रेष्ठके सम्मुख प्रस्तुत तथ्योको देखते हुए सघकी विनीत प्रार्थनापर कृपापूर्ण विचार किया जायेगा। और इस सम्बन्धमें मुझे परमश्रेष्ठका ध्यान लॉर्ड मिलनर द्वारा श्री चेम्बरलेनको भेजे गये खरीतेकी ओर आकर्षित करनेकी अनुमति दी जाये। यह खरीता[3] ब्रिटिश भारतीयोकी स्थितिके बारेमे उदार नीति निश्चित करता हुआ लगता है।

मैं हूँ,
आपका विनम्र सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइव्ज एल० जी० २१३२, एशियाटिक्स १९०२–१९०६।

१. यह पत्र गाधीजीके २ नवम्बरके पत्रका उत्तर था। गाधीजीका पत्र उपलब्ध नहीं है।

२. लेफ्टिनेंट गवर्नरने लिखा था कि उनके उत्तरोंके अर्थोमें किसी अन्तरकी कोई गुजाइश नहीं है। उन्होंने लिखा: "हर जगह बरते गये शब्द साफ और स्पष्ट हैं और वे सूचनाके अतर्गत ऐसे छूट पानेवालोंकी संख्याको साफ तौरपर सीमित करते हैं जो युद्धके पहले व्यापार करनेके परवाने रखते थे।"

३. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ४५२–५३।

३१. टिप्पणियाँ[1]

जोहानिसबर्ग
नवम्बर ९, १९०३

ट्रान्सवालके भारतीय प्रश्नपर टिप्पणियाँ; ९ नवम्बर १९०३ तक

इस समय सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न, इस वर्षकी सूचना ३५६ पर, जो कि *बाजार*-सम्बन्धी सूचनाके नामसे मशहूर है, अमलका है।

वर्ष समाप्त होनेवाला है, इसको देखते हुए ब्रिटिश भारतीयोका एक शिष्टमण्डल परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेट गवर्नरसे मिलने गया था।[2] वह उन्हे इस बातके लिए तैयार करना चाहता था कि जो ब्रिटिश भारतीय इस समय नियमपूर्वक मिले हुए परवानोके सहारे उपनिवेशमे व्यापार कर रहे है उन सबके परवानोको मान लिया जाये।

यह ध्यानमे रखनेकी बात है कि, उक्त सूचनापर कठोरतासे अमल किया गया तो इस वर्षकी समाप्तिके पश्चात् बस्तियोसे बाहर वे ही लोग व्यापार कर सकेंगे, जिनके पास युद्ध छिड़नेके समय परवाने थे।

इसलिए दो प्रकारके भारतीय व्यापारियोके मामलोपर विचार होना बाकी है। पहले वे, जो युद्धसे पहले व्यापार तो करते थे, परन्तु जिनके पास परवाने नही थे; और दूसरे वे, जिन्हे ब्रिटिश अधिकार हो जानेके पश्चात् ब्रिटिश अधिकारियोने शरणार्थी होनेके आधारपर परवाने दिये थे।

बाजार-सम्बन्धी सूचनाके विषयमे परमश्रेष्ठके साथ जो पत्र-व्यवहार हुआ था, उससे आशा हो चली थी कि पहले प्रकारके लोगोके परवानोके सम्बन्धमे कोई कठिनाई नही खडी होगी, क्योकि युद्धसे पहले प्राय. सभी ब्रिटिश भारतीय ट्रान्सवालमें परवानोके बिना ही (क्योकि वे दिये ही नही जाते थे), परवाना शुल्कके वादेके आधारपर या गोरे मित्रोके नामपर व्यापार करते थे, और उस समयकी सरकार भी इसे जानती थी।

परन्तु ब्रिटिश भारतीयोके दुर्भाग्यसे परमश्रेष्ठने इसका दूसरा ही अर्थ लिया और कहा कि उनका मतलब सघको यह सूचित करनेका कदापि नही था कि अगले ३० दिसम्बरके पश्चात् बस्तियोसे बाहर उनको छोड़कर किसीको व्यापार न करने दिया जायेगा, जिनके पास युद्धसे पहले भी सचमुच ऐसा करनेके परवाने थे।

परन्तु जब परमश्रेष्ठको यह ज्ञात हुआ कि युद्धसे पहले सैकड़ों भारतीय ब्रिटिश सरकारके संरक्षणके कारण परवानोके बिना व्यापार करते थे, तब उन्होने कहा कि इस प्रश्नपर वे कार्यकारिणी-परिषदकी बैठकमे विचार करेगे।

इसलिए आशा की जा सकती है कि प्रथम प्रकारके परवानेदारोको कुछ राहत मिल जायेगी।

परन्तु आजकल हमे इतनी अधिक निराशाओका सामना करनेका अभ्यास हो चुका है कि यदि हम यहाँ स्थितिका स्पष्ट वर्णन करके यह बतला दे कि इन लोगोको *बाजारों* या बस्तियोमे भेज देनेका परिणाम क्या होगा, तो शायद गलती नही होगी।

१. गांधीजीने ये टिप्पणियाँ दादाभाई नौरोजीको भेजी थीं। दादाभाई नौरोजीने बदस्तूर इनकी एक प्रति भारत-मन्त्रीको भेजी थी और *इंडियाने* इन्हें खरीतेके रूपमें अपने ४-१२-१९०३ के अंकमें प्रकाशित किया था।

२. ३० अक्टूबरको।

यद्यपि प्रामाणिक संख्या बतलाना कठिन है, फिर भी ऐसा अनुमान भली प्रकार किया जा सकता है कि ५० प्रतिशतसे अधिक परवानेदार प्रथम श्रेणीमे आयेगे।

उनमे से बहुतसे दस या इससे भी अधिक वर्षोसे व्यापार कर रहे हैं, उन्होने जिन दूकानोको सजा रखा है, उनके पट्टे वे बडी-बड़ी मियादोके लिए लिये हुए है, और वे बडी मात्रामे मालका आयात करते है, क्योकि उनके ग्राहक गोरे और काफिर दोनो है। क्या उन्हे वर्षकी समाप्तिपर बस्तियोमे जाना पडेगा; यद्यपि गणराज्यके समयमें श्री चेम्बरलेन उन्हीके लिए इतने प्रयत्नपूर्वक लडे थे, और उन्होने सफलता भी प्राप्त की थी?

उन्हे परवानोके बिना बस्तियोसे बाहर व्यापार करने दिया जाता था, क्योकि श्री क्रूगरके[1] लिए ब्रिटिश सरकार बहुत बलवान सिद्ध हुई थी। और, अब उन कुछ भाग्यशाली भारतीयोके साथ असाधारण व्यवहार क्यो किया जाये, जिन्होने बोअर-सरकारसे परवाने ले लिये थे? निश्चय ही, उनका मामला, प्रथम श्रेणीके उन अभागे लोगोसे किसी भी प्रकार अधिक मजबूत नही है, जिनको अब बस्तियोमे जानेकी सूचना दी जा चुकी है।

इन कुछ लोगोको युद्धसे पहले परवाने क्यो मिल गये थे, इसका कारण निम्नलिखित है:

जब ब्रिटिश सरकारके साथ लम्बे-चौडे पत्र-व्यवहारके बाद बोअर-सरकारने अनुभव कर लिया कि वह ब्रिटिश भारतीयोको बस्तियोंमे नही ढकेल सकती तब १८९९ मे यह निश्चय किया गया कि उस वर्षसे पहले जो ब्रिटिश भारतीय बस्तियोसे बाहर व्यापार कर रहे थे, उन्हे परवाने दे दिये जाये। उस समय जो समर्थ थे उन्होने तो परवाने ले लिये, परन्तु जो १८९८में कुछ समयके लिए ट्रान्सवालसे बाहर चले गये थे वे रह गये, और उस समय भी सबको परवाने एक साथ नही दिये गये थे।

बोअर-सरकारका काम बड़ा सुस्त था। परवाना-अधिकारी फुर्तीसे या हिदायतोके अनुसार कदाचित् ही काम करते थे। फल यह हुआ कि दूर-दूरके कस्बोमें प्रार्थनापत्र देनेपर भी बहुतसे भारतीयोको परवाने नही मिल पाये। परन्तु फिर भी उनके व्यापारमें विघ्न नही डाला गया।

तो क्या अब उनको, किसी कसूरके बिना, बस्तियोसे बाहरके नगरोमें व्यापार करनेके अधिकारसे वंचित कर दिया जायेगा?

अब दूसरी श्रेणीके लोगोके परवानोपर विचार करना शेष रह गया।

इन लोगोको, उपनिवेशपर ब्रिटिश अधिकार हो जानेके पश्चात्, बिना किसी शर्तके परवाने मिले थे। लॉर्ड मिलनरके ही खरीतेमे लिखा है कि १८८५ के कानून ३ को[2] लागू करनेका विचार इसी वर्ष किया गया था। पिछले वर्ष, पिछली सरकारके एशियाई-विरोधी अब्रिटिश कानूनोपर अमल करनेका विचारतक किसीके मनमे नही आया था। ये लोग शरणार्थी थे, उनमे से बहुत-से युद्धसे पहले किसी-न-किसी स्थानपर व्यापार भी करते थे, और ब्रिटिश अधिकारी, जो स्थानीय विद्वेष-भावनामें शिक्षित नही हुए थे, स्वभावत. यह नही समझ सकते थे कि जब विदेशियोतक को व्यापार करनेके परवाने दिये जा रहे है तब ब्रिटिश प्रजाजनोको क्यो न दिये जायें?

यह काम एशियाई दफ्तरके लिए ही सुरक्षित था कि वह एशियाई-विरोधी कानूनोको खोदकर निकाले और उन्हे लागू करनेका सुझाव दे। स्वार्थी लोगोने ब्रिटिश भारतीयोके विरुद्ध

१. एस० जे० पॉल क्रूगर (१८२५–१९०४), ट्रान्सवालके प्रेसीडेंट, १८८३–१९००। देखिए "स्वर्गीय प्रेसीडेंट क्रूगर" २३–७–१९०४।

२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९१।

जो आन्दोलन छेड़ा, उससे इस दफ्तरका बल और भी बढ गया, और परिणाम यह हुआ कि अब हमे *बाजार*-सम्बन्धी सूचनाका सामना करना पड़ रहा है।

पिछली जनवरीमे जब ब्रिटिश भारतीय शिष्टमण्डल श्री चेम्बरलेनसे मिला था[1] तब वे समझ ही नही सकते थे कि जो परवाने एक बार दिये जा चुके, उन्हे वापिस किस प्रकार लिया जा सकता है?

इसके अतिरिक्त, दूसरी श्रेणीके व्यक्तियोकी सख्या बहुत कम है; उनके हाथमें भी बहुत माल रुका पड़ा है और किसी-किसीने दूकानोके पट्टे भी ले रखे है। इन सबको यदि *बाजारोंमें* जानेके लिए विवश किया गया तो उसका मतलब इनका पूर्ण विनाश कर डालना होगा।

सरकारने जिन इलाकोमे *बाजारोंके* लिए स्थानका चुनाव करना उचित समझा है, उनमे से कइयोके व्यापार-पेशा लोगोसे ब्रिटिश भारतीय सघ (ब्रिटिश इडियन असोसिएशन) सच्चे हालात जाननेका यत्न कर रहा है। अबतक प्राप्त विवरणोके अनुसार इनमे से एक भी स्थान ऐसा नही है — जहाँ 'गोरे' या काफिर ग्राहक जाना पसन्द करेगे — यद्यपि लॉर्ड मिलनर और सर आर्थर लॉली, दोनोने हमे विश्वास दिलाया था कि उनका चुनाव शहरोके अन्दर और ऐसे स्थानोपर किया जायेगा, जहाँ ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोको गोरे और काफिर, दोनो प्रकारके ग्राहकोसे व्यापार करनेकी उचित सुविधाएँ मिल सके।

हरएक मामलेमें *बाजारोंको* रास्तोसे दूर हटाकर कायम किया गया है, और यद्यपि कानूनकी दृष्टिसे वे शहरकी हदमे है, तथापि उसके बसे हुए भागोसे अवश्य ही दूर है। एक मामला तो ऐसा था कि वर्तमान बस्तीको और भी परे हटानेका यत्न किया गया था। यहाँ यह भी ज़िक्र कर देना चाहिए कि परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरने हमारे शिष्टमण्डलसे कहा था कि उनकी सम्मतिमे *बाजारोंके* स्थानोका चुनाव बहुत अच्छा किया गया है और जिन लोगोको वहाँ जाना पड़ेगा उन्हे व्यापार करनेका अच्छा अवसर मिलेगा।

परमश्रेष्ठका अत्यन्त आदर करते हुए हम कहना चाहते है कि इस सम्बन्धमें सर्वथा निष्पक्ष तथा अच्छा स्थानीय अनुभव रखनेवाले लोगोकी रिपोर्टें और अपना सारा जीवन व्यापारमे बिताये हुए लोगोकी सम्मतियाँ आखिरकार परमश्रेष्ठकी सम्मतिसे कही अधिक विश्वसनीय है।

बाजारके स्थानके बारेमे निम्नलिखित रिपोर्ट नमूनेके लायक है।

श्री जे० ए० नेसिर, जे० पी०, वकील, क्लार्क्सडॉर्प *बाजारके* बारेमे कहते है:

> मेरी सम्मतिमें प्रस्तावित स्थान व्यापारके लिए उपयुक्त नहीं है; क्योंकि यह सम्भावना नहीं कि नगरके निवासी इतना फासला तय करके वहाँ खरीदारी करनेके लिए जायेंगे . . . पुराने शासनमें पृथक् भारतीय *बाजार* कोई नहीं था।

डॉ० जुप, एम०बी०, बी०एस०सी० कहते है:

> मेरी सम्मतिमें इस समय जो स्थान *बाजारके* लिए अंकित किया गया है वह स्वच्छताकी दृष्टिसे निन्दनीय है।

इस लेखके लिखे जा चुकनेके पश्चात्, वहाँके जिला-सर्जनने भी उक्त स्थानकी निन्दा की है।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस: ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ४०२।

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ २९२।

३२. ऑरेंज रिवर उपनिवेश और अश्वेत-कानून

गवर्नमेंट गजटके अभी हालके एक अंकमें बिलकुल स्पष्ट रूपसे बताया गया है कि ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी सरकार रगदार लोगोंकी स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगानेवाले विधानोंपर अमल करनेसे किन्ही भी बातोके विचारसे रुकनेवाली नही है। २३ अक्टूबरके *गजटमें* नगरपालिका कानूनमें सशोधनके लिए एक अध्यादेशका मसविदा प्रकाशित किया गया है। इसमें नगर-पालिकाओ के चुनावोमें मतदाताओकी निर्योग्यताओके सम्बन्धमें यह धारा है:

> **ऐसा प्रत्येक व्यक्ति, जो १८९३ के कानून ८ की धारा ८ के अनुसार रंगदार व्यक्ति है, और जो किसी गोरे पिताके रंगदार माताके साथ या किसी रंगदार पिताके गोरी माताके साथ वैध विवाहकी सन्तान नहीं है या जिसने ऐसी सन्तान होनेपर भी कानूनके ३४वें अध्यायकी धाराओंके अन्तर्गत इस उपनिवेशमें अचल सम्पत्तिका स्वामित्व या अधिकार प्राप्त नहीं किया है, मतदाता होनेके अयोग्य है।**

अब १८९३ के कानून ८ की धारा ८ के अन्तर्गत,

> **जो 'रंगदार व्यक्ति' शब्द इस कानूनमें आते हैं उनमें, जबतक किसी प्रकरणमें स्पष्ट निषेध न हो तबतक, ये लोग सम्मिलित होंगे: दक्षिण आफ्रिकाकी किसी भी वतनी जातिके १६ वर्षकी आयु या अनुमानित आयुसे ऊपरके एक या अनेक पुरुष या स्त्री, सब रंगदार लोग और वे सभी लोग जो किसी भी नस्ल या जातिके हों, किन्तु कानून या रिवाजके अनुसार रंगदार माने जाते हों, या रंगदार लोगोंकी भाँति व्यवहार पाते हों।**

अत यह परिभाषा इतनी व्यापक है, जितनी कल्पनामें आ सकती है और इसमे ब्रिटिश भारतीय भी सम्मिलित है। यह धारा स्वत: अधिक महत्त्वपूर्ण नही है, क्योकि हम जानते हैं कि ट्रान्सवाल-सरकारने अभी हालमें ही सभी रगदार लोगोका नगरपालिकाओके चुनावोमे भाग लेनेका अधिकार छीन लिया है। ब्रिटिश भारतीयोकी यह निर्योग्यता निश्चय ही उनपर लगी निर्योग्यताओमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण नही है, किन्तु जब हम इसे ब्रिटिश भारतीयोके विरुद्ध सरकारकी जान-बूझकर अख्तियार की गई शत्रुतापूर्ण नीतिके उपलक्षणके रूपमें देखते है तब यह कोई कम महत्त्व नही रखती । उपनिवेश सरकार भूतकालीन परम्परासे बिलकुल विमुख नही हो सकती। पुराने कानूनोमें परिवर्तन होना भी है तो बुराईकी दिशामें ही। श्री चेम्बर-लेनने लॉर्ड मिलनरको प्रेषित खरीतेमें उनकी एशियाई गिरमिटिया मजदूरोकी माँगका उत्तर देते हुए दोनो उपनिवेशोके भारतीय-विरोधी कानूनोका उल्लेख किया है और यह आशा व्यक्त की है कि वे निर्दिष्ट दिशामे राहत देगें। हमने ऊपर जिस धाराका उल्लेख किया है, और वे धाराएँ जिनका उल्लेख हम करनेवाले है, उस खरीतेके ऑरेज रिवर उपनिवेश द्वारा दिए गये उत्तर है। जो उपनिवेश उपनिवेश-कार्यालयके अधीन और उसके सीधे नियन्त्रणमें है, उसकी सरकार किस प्रकार उस कार्यालयके प्रधान-अधिकारीके आदेशोका उल्लघन करती है और किस प्रकार ब्रिटिश भारतीयोके सम्बन्धमें पिछले कानूनोको हटानेसे इनकार ही नही करती जाती, बल्कि ब्रिटिश भारतीयोंको बाँधनेवाली रज्जुको और भी कड़ा करती जाती है, यह अकल्पनीय

है। अध्यादेशके इसी मसविदेमें पीछे हम कुछ धाराएँ वस्तियोंके सम्बन्धमें भी देखते हैं। हाशियेपर अंकित टिप्पणीमें "वतनी वस्तियों" का उल्लेख है; किन्तु धारा स्पष्ट रूपसे "सभी रंगदार लोगों" पर लागू होती है। वह इस प्रकार है:

> परिषदको अधिकार है कि वह नगर-पालिकाओंकी भूमिके उस भाग या भागोंपर, जहाँ वह उचित समझे, बस्तियाँ स्थापित करे, जिनमें अपने मालिकोंके मकानोंमें रहनेवाले घरेलू नौकरोंके अतिरिक्त अन्य सभी रंगदार लोग रहनेके लिए बाध्य किये जा सकेंगे। वह समय-समयपर इन बस्तियोंको बन्द कर सकती है और नई बस्ती या बस्तियाँ बसा सकती है। परिषदको इन लोगोंके उचित नियंत्रणके लिए नियम बनानेका अधिकार भी दिया जाता है। कोई भी पुरुष या स्त्री, जिसकी अनुमानित आयु सोलह वर्षसे अधिक हो, या साठ वर्षकी अनुमानित आयुसे कम हो, इन बस्तियोंमें अड़तालीस घंटेसे अधिक न रहेगा, जबतक
>
> (क) वह वस्तुतः नगरपालिकाकी सीमामें या नगरपालिका-क्षेत्रकी सीमासे बाहर पाँच मीलके घेरेमें रहनेवाले किसी गोरे मालिक का कर्मचारी न हो और उसके पास इस आशयका नगर-परिषदका परवाना न हो। या जबतक
>
> (ख) उसने सन् १८९३ के कानून ८ की धारा ३ के अनुसार अपनी ओरसे काम करनेकी अनुमतिका प्रमाणपत्र न ले लिया हो और वस्तुतः उस कार्यमें लगा हुआ न हो। या जबतक
>
> (ग) वह ऐसा व्यक्ति न हो, जिसने रंगदार जन-राहत अध्यादेश (कलर्ड पर्सन्स रिलीफ़ ऑर्डिनेन्स), १९०३ की धाराओंके अन्तर्गत अपवादपत्र प्राप्त कर लिया हो। या जबतक
>
> (घ) वह किसी ऐसे पुरुषकी वैध पत्नी न हो जो पहले कही धाराओंके अन्तर्गत ऐसी बस्तीमें रह रहा हो।

उन उपधाराओंका निचोड़ यह है कि एक बस्तीकी सीमामें, जो अस्तबल या कांजीहौसकी तरह परिषदकी इच्छासे हटाई जा सकती है, रहनेके लिए भी एक रंगदार व्यक्तिको पूर्वानुमति लेनी आवश्यक है और वह एक छोटा नौकर होना चाहिए, अर्थात् वह उपनिवेशमें तबतक नहीं रह सकता जबतक वह विशुद्ध मजदूर न हो। हमारे पाठक कहीं यह कल्पना न कर लें कि इन उल्लिखित कानूनोंमें रंगदार चर्मधारियोंके लिए बड़े-बड़े विशेषाधिकार सुरक्षित हैं, अतः हम यहाँ यह जिक्र कर दें कि १८९३ के कानून ८ की धारा ३ में यह विधान है: स्थानीय निकाय ५ शिलिंग प्रतिमास शुल्क देनेपर रंगदार व्यक्तिको अपनी सेवाएँ जिसको चाहे उसको बेचनेकी अनुमति दे सकते हैं, बशर्ते कि वह ऐसा करनेके लिए आवश्यक प्रमाणपत्र प्राप्त कर ले। रंगदार जन-राहत अध्यादेशमें इसकी जो योग्यताएँ बताई गई हैं वे बहुत ऊँची हैं। इन योग्यताओंसे रंगदार व्यक्ति व्यक्तिगत परवाना रखनेसे, जिसे समय-समयपर नया कराना पड़ता है, और जिसका निश्चित शुल्क देना पड़ता है, छूट प्राप्त करनेका अधिकारी हो सकता है। यह महँगी छूट बहुत ही अप्रिय विधि-विधानोंमें से गुजरनेके बाद दी जाती है और इसमें वस्तुतः मामूली परवानेकी जगह छूटका प्रमाणपत्र होता है। इससे अधिक इस अध्यादेशसे कोई राहत नहीं मिलती। और ऐसे छूट-प्राप्त व्यक्तिपर अन्य सभी निर्योग्यताएँ — जैसे व्यापार करने, खेती करने, अचल सम्पत्ति खरीदने, बस्तियोंके बाहर रहने आदि पर लगाई निर्योग्यताएँ

— ज्यों-की-त्यों रह जाती हैं। ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी सरकारका रंगदार लोगोंके प्रति ऐसा रवैया है। अतः जबतक उपनिवेश-कार्यालय साम्राज्यकी श्वेत प्रजाओंकी दशाके सम्बन्धमें अपने विशेषाधिकारका प्रयोग करनेका मार्ग नहीं अपनाता, तबतक उन सैकड़ों ब्रिटिश भारतीयोंको बड़ी कठिनाईका सामना करना होगा, जो ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें अपनी आजीविका कमानेके उद्देश्यसे प्रवास करने और बसनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि ब्रिटिश भारतीयोंके इंग्लैंडवासी मित्र हमारी इन बातोंको देखेंगे, उनका अध्ययन करेंगे और हमारी रक्षा करेंगे एवं उपनिवेश-कार्यालयसे आग्रह करेंगे कि वह सम्राट्की राजभक्त प्रजाके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन करे। अपने राजस्व-सम्बन्धी आन्दोलनमें श्री चेम्बरलेनने बड़ी मुस्तैदीसे इस तथ्यपर जोर दिया है कि भारतमें लड़ाकू शक्तिका अक्षय भंडार सुरक्षित है, जिसका उपयोग आवश्यकताके समय साम्राज्य रत्ती-भर भी झिझकके बिना कर सकता है। हाँ, भारत समस्त साम्राज्यकी सेवामें अपना भाग अदा करनेके लिए सदैव तैयार है। क्या परम माननीय महानुभाव उपनिवेशोंको भी अपने कर्त्तव्योंका पालन करनेके लिए समझानेमें अपने प्रभावका उपयोग करेंगे?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२-११-१९०३

३३. स्वर्गीय सर जॉन रॉबिन्सन

मृत्युने स्वर्गीय सर जॉन रॉबिन्सनके रूपमें हमारे बीचसे नेटालके एक निर्माताको उठा लिया है। उत्तरदायी शासनमें प्रथम प्रधानमन्त्रीके रूपमें उन्होंने अपने पीछे उपनिवेशकी उपयोगी सेवाका एक ऐसा लेखा छोड़ा है, जिससे आगे बढ़ना दूर, बराबरी करना भी किसीके लिए सरल न होगा। जैसा अभी हालकी घटनाओंसे सिद्ध हो चुका है, यह अत्यन्त सौभाग्यकी बात थी कि जब उपनिवेशको स्वशासन दिया गया, जिसकी प्राप्तिमें सर जॉनका हाथ प्रमुख था, तब उसका शासन उनको और उनके ही जैसे उनके योग्य साथी स्व० परम माननीय श्री हैरी एस्कम्बको सौंपा गया। उन्होंने इसका कार्य जिस उत्तम रूपसे आरम्भ किया, उसके बिना उत्तरदायी शासनमें नेटालकी जो स्थिति होती उसकी कल्पना करना कठिन नहीं है। सम्पादकसे प्रधानमन्त्री बनना बहुत बड़ी उन्नति है। इससे उस व्यक्तिकी खरी योग्यता प्रकट होती है, जो अब हमारे बीचमें नहीं है। अपनी योग्यता, उत्साह और उद्देश्य-निष्ठासे उन्होंने *नेटाल मर्क्युरीको* नेटालकी एक शक्ति बनानेमें सफलता प्राप्त की। उन्होंने उपनिवेश सरकारपर उन सब गुणोंका और भी उत्कृष्ट रूपमें प्रभाव डाला। इसके लिए सम्राट्ने उनको के० सी० एम० जी० की उपाधि प्रदान करके मानो उनकी योग्यताको मान्यता प्रदान की थी। ब्रिटिश भारतीय इन माननीय महानुभावको मताधिकार अपहरण विधेयकके[1] निर्माताके रूपमें भली भाँति याद रखेंगे। ब्रिटिश भारतीयोंका उस समय उनके विचारोंसे मतभेद था। और इसका कारण था; किन्तु कोई यह नहीं कह सकता कि उस विधेयकको प्रस्तुत करनेमें वे ऊँचे इरादोंके अतिरिक्त किन्हीं और बातोंसे प्रेरित थे। वह विधेयक, जो बादमें परिवर्तित हुआ, उपनिवेशकी कानूनी पुस्तकोंका अभीतक अंग है। अच्छा होता कि उस विधेयकको प्रस्तुत करते समय उन्होंने जो

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३१९।

शब्द कहे थे वे भी उस कानूनका अग होते। उन्होने स्पष्ट शब्दोमें कहा था कि ब्रिटिश भारतीयोको मताधिकारसे वचित करनेमे विधानसभाके प्रत्येक सदस्यने अपने ऊपर एक गभीर दायित्व लिया है और वह उनका न्यासी हो गया है। यदि उस विधानकी रचनामे, जो बादमे बना, हमारे विधायकोकी ऐसी ही भावना रही होती तो शिकायतकी बात बहुत कम रह गई होती। सर जॉनके हृदयमे ब्रिटिश भारतीयोके प्रति प्रेमका भाव था, यह इस तथ्यसे सिद्ध हो जाता है कि जब वे अपनी गम्भीर बीमारीसे अच्छी तरह उठे भी न थे तभी अपने स्वास्थ्यकी बडी कुर्बानी करके उन्होने लेडीस्मिथकी मुक्तिका उत्सव मनानेके लिए काग्रेस-भवनमे आयोजित सभाकी अध्यक्षता करनेका नेटाल भारतीय-काग्रेसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया था[1]। जैसा उनका सामान्य नियम था, उन्होने कार्यक्रममे पूरे हृदयसे भाग लिया और नेटालके भारतीय आहत-सहायक दलकी उदारतापूर्वक सराहना की।[2] उन्होने उस अवसरपर जो सुन्दर भाषण दिया था उसको हम पूराका-पूरा दूसरे पृष्ठपर पुन छापते हैं। हम लेडी रॉबिन्सन और उनके परिवारको उनके इस वियोगमें, जो समस्त उपनिवेशके लिए शोककी बात है, अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रेपित करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२–११–१९०३

३४. क्लार्क्सडॉर्पमें एशियाई "बाजार"के लिए प्रस्तावित जगह

हमें ज्ञात हुआ है कि ट्रान्सवालकी सरकारने अनेक शहरोमे एशियाई *बाजारों*के लिए जो जगहे पसन्द की हैं वे उपयुक्त हैं या नही, इसके बारेमें उन शहरोके ब्रिटिश भारतीयोने रिपोर्टें तैयार कराई हैं। क्लार्क्सडॉर्पके भारतीयोने भी ऐसा ही किया है, और जिन डॉक्टर महानुभावने भारतीयोकी ओरसे अपनी रिपोर्ट दी है, उन्होने सफाईकी दृष्टिसे उन जगहोको निन्दनीय ठहराया है। इस रिपोर्टका समर्थन भी बहुत विचित्र क्षेत्रोसे हुआ है। *क्लार्क्सडॉर्प माइनिंग रेकॉर्ड*के इसी ३ तारीखके अकके अनुसार, स्थानीय जिला चिकित्सा-अधिकारीने भी उस जगहके विरुद्ध राय दी है और स्वास्थ्य-निकायने मजूर किया है कि चूँकि सरकारने उस जगहको पसन्द कर लिया है, इसलिए वह इस मामलेमे असमर्थ है। यह बात दु खजनक है, अन्यथा इसपर सभीको हँसी आती। अगर सम्भव होता तो निकाय कह देता कि इस पसन्दगीमे उसका कोई हाथ नही है, परन्तु उसके दुर्भाग्यसे *बाजार*-विषयक सरकारी सूचनाके अनुसार सरकार प्रस्तुत जगहके बारेमें बगैर स्वास्थ्य-निकायसे सलाह लिये शायद निर्णय नही कर सकती थी। फिर राजधानी प्रिटोरियामे होनेके कारण सरकार एक बार बहाना भी कर सकती है कि आरोग्यकी दृष्टिसे वह जगह अनुपयुक्त है, इसका उसे ज्ञान नही था। परन्तु स्वास्थ्य-निकायके पास ऐसा कोई बहाना नही है, क्योकि उसके सदस्य सब वहीके रहनेवाले है और उन्होने आँखे खूब खोलकर ही इस जगहकी सिफारिश की होगी। *क्लार्क्सडॉर्प माइनिंग रेकॉर्डमें* यह प्रतिवेदन जिस तरह प्रकाशित हुआ है, उसे हम ज्योका-त्यो यहाँ पेश कर देना ही सबसे अच्छा समझते हैं :

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १४६।

२. वही खण्ड, पृष्ठ १७१।

जिला चिकित्सा-अधिकारीका पत्र पढ़ा गया, जिसमें उन्होंने लिखा है कि वे एशियाई *बाजारके* लिए चुनी गई जगहको अनुपयुक्त मानते हैं, क्योंकि बरसातके दिनोंमें वहाँ पानी भर जाता है। यह बताया गया कि *बाजारके* २०० बाड़े होंगे, जिनमें से कमसे-कम तीन-चौथाईकी जरूरत वर्षोंतक नहीं पड़ेगी, और यह कि यद्यपि कुछ बाहरी बाड़े नीची जमीनपर है, तथापि अधिकांश तो बहुत ही सुन्दर जगहपर है। फिर, यह प्रश्न स्वास्थ्य-निकायके अधिकार-क्षेत्रसे बाहरका है, क्योंकि सरकार उस जगहको पसन्द कर चुकी है, उसका सर्वेक्षण करा चुकी है और उसकी *बाजारके* रूपमें घोषणा भी कर चुकी है।

दूसरे शहरोमे भी *बाजारोंकी* सिफारिश करनेवाले स्वास्थ्य-निकाय इसी कोटिके हैं। फिर भी लॉर्ड मिलनरने उपनिवेश-कार्यालयको यह आश्वासन दिया है कि *बाजारोंके* लिए अच्छे स्थान चुने जायेंगे, स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी और व्यापारकी दृष्टिसे भी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२-११-१९०३

३५. श्वेत-संघ और ब्रिटिश भारतीय

गत ५ तारीखको जोहानिसबर्गके अन्तर्गत फोर्ड्सबर्गमें श्वेत-संघके तत्वावधानमें एक सभा हुई थी, जिसमें कई प्रश्नोपर बहस हुई। अखबारोमें छपे समाचारोसे ज्ञात होता है कि कार्रवाई "अत्यधिक सजीव" रही, "बीच-बीचमे शोर-गुल भी हुआ।" श्री ए० मैक-फारलेन सभापति थे और लगभग अस्सी व्यक्ति उपस्थित थे। सभापतिने अपने प्रारम्भिक भाषणमें एशियाइयोके प्रवासपर कुछ विस्तारके साथ अपने विचार प्रकट किये। उन्होने कहा:

श्वेत-संघकी स्थापना एक वर्ष पहले इस भावनाके कारण हुई थी कि जोहानिसबर्गमें अवांछनीय श्रेणीके विदेशियोंकी बाढ़-सी आ गई है। वे छोटी-छोटी दूकानों तथा व्यापारी हलकोंमें भरे जा रहे है और बहुत-से मामलोंमें हमारी जातिके उन लोगोंका स्थान ले रहे हैं, जो लड़ाईके कारण यहाँ नहीं आ पाये और जिन्होने लड़ाईका पूरा धक्का सहा। . . . उन्होने भाषणमें बताया कि लड़ाईके बाद लौटनेके लिए एशियाइयोको आसानीसे अनुमतिपत्र मिलते जा रहे हैं, ब्रिटिशोंको उन्हें पानेमें कठिनाई हो रही है और एशियाई उनके लिए बेईमानीके तरीकोंसे भी काम ले रहे हैं। ट्रान्सवालके कानूनके अनुसार चीनी और भारतीय परवाने रखनेके अधिकारी नहीं है। परन्तु वर्तमान सरकारने वह कानून उन चीनियों और भारतीयोंके लिए मुल्तवी कर दिया है, जो लड़ाईसे पहले गैर-कानूनी तौरपर व्यापार कर रहे थे। . . . यहाँ यह सवाल पूछा जा सकता है कि जब भारत-सरकारने हमें रेलवेके कामके लिए अपने यहाँ मजदूरोंकी भरती करनेकी आज्ञा देनेसे इनकार कर दिया है तब क्या हम यह माँग नहीं कर सकते कि यहाँ जितने भी भारतीय है उन सबको वापिस भारत भेज दिया जाये, क्योंकि व्यापारियोंके रूपमें उन्होने इस देशकी वास्तविक उन्नतिमें बाधा पहुँचानेका काम किया है?

ब्रिटिश भारतीयोके बारेमे श्री मैक-फारलेनके ये विचार है। अब वास्तविकताको देखिए। सरकारी कागजातके अनुसार जनवरी और अक्तूबरके बीच जहाँ यूरोपीयोको २८,००० अनुमतिपत्र जारी किये गये, वहाँ ब्रिटिश भारतीयोको युद्ध-विरामकी घोषणाके बादसे लेकर अभीतक १०,००० से भी कम अनुमतिपत्र दिये गये है। इसके अलावा, हम पहले ही जो अक प्रकाशित कर चुके है उनसे ज्ञात होगा कि ये सबके-सब २८,००० यूरोपीय गैर-शरणार्थी है। दूसरी तरफ, कुछ दर्जन ब्रिटिश भारतीयोको छोड़कर सारेके-सारे अनुमतिपत्र पानेवाले भारतीय शरणार्थी है। अब, अनुमतिपत्रोके लिए एशियाइयोंपर मनमाने तरीके काममे लानेके विषयमे हम सुयोग्य सभापतिका ध्यान केवल उन मामलोकी तरफ दिलाना चाहते है, जो हाल ही मे कैप्टन हैमिल्टन फाउलने कितने ही यूरोपीयोपर बगैर अनुमतिपत्रके ट्रान्सवालमे आने अथवा अनुमतिपत्रोका अवैध व्यापार करनेके अपराधमे दायर किये है। यूनानके सहायक उप-राजप्रतिनिधि पर अवैध अनुमति-पत्र बेचनेके अपराधमे भारी जुर्माना हुआ था। हमारा खयाल है कि वे केवल यूरोपीयोके लिए ही अनुमतिपत्र प्राप्त करनेका काम करते थे। सभापतिका यह सुझाव उनके भाषणके सम्पूर्ण भावके अनुरूप ही है कि जो भारतीय ट्रान्सवालमे वर्षोसे बसे हुए है और जिन्होने यहाँ जमीन-जायदाद ले ली है और जो उपनिवेशमे स्वतन्त्र आदमीकी हैसियतसे आये है, उनको तुरन्त स्वदेश भेज दिया जाये, क्योकि गुलामीकी-सी शर्तोपर भारत-सरकारने ट्रान्सवालको मजदूर भेजनेसे इनकार कर दिया है। मौजूदा सरकारपर इन्ही महानुभावोके विरोधका असर पड़ता है। इन्हीकी प्रेरणासे *बाजार*-सूचनाएँ जारी हुई है, जिनकी वजहसे सैकड़ो ब्रिटिश भारतीय दूकानदार इस वर्षके अन्ततक भिखारी बना दिये जायेंगे। इस सभाका सम्पूर्ण ब्योरा *डेली मेलसे* हम अन्यत्र उद्धृत कर रहे है, जिससे पाठकोको पता चलेगा कि ब्रिटिश भारतीयोके खिलाफ किस प्रकारका विरोध काम कर रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२-११-१९०३

३६. भारतीय और "ईस्ट रैंड एक्सप्रेस"

हमारा सहयोगी अभीतक भारतीय प्रश्नमे उलझा हुआ है। उसके एक ताजा अकमे आधेसे अधिक कालम एक भारतीय द्वारा ईस्ट रैंड जिलेमे जमीनके एक टुकड़ेकी खरीदके मामलेसे भरा है। तथ्य जो उसमे दिये गये है काफी सही है। हमारे पास भी सारी हकीकत है। तथापि, हम अपने सहयोगीको एक बहुत ही आवश्यक बातकी याद दिलाना चाहेंगे, वह यह कि, इस जमीनकी खरीदारी पूर्णत: सही तरीकेसे हुई है। जब ट्रान्सवालपर अंग्रेजोने अधिकार किया तब लोगोने — जिनमे सरकारी अधिकारी, सर्वसाधारण जनता और स्वयं भारतीय भी शामिल है — समझ लिया कि पुराने भेदभाव-भरे कानून अब नही रह गये है। लॉर्ड मिलनरके खरीते और स्वर्गीया सम्राज्ञीके मन्त्रियोके भाषण लोगोके दिमागमे ताजा थे। उनको ध्यानमे रखकर वे इस स्वाभाविक नतीजेपर पहुँचे कि जिस बुराईको दूर करनेके लिए पिछली लड़ाई लड़ी गई थी, वह अब नही रही होगी। ब्रिटिश साम्राज्यके दूसरे किसी भी भागमे ब्रिटिश प्रजाजनोके विरुद्ध ऐसे दुर्भाँति करनेवाले कानून नही है। इसलिए, उस भारतीयने जमीन खरीद ली और उस गोरे मनुष्यने पूरी तरह यह समझकर वह उसे बेच दी कि जमीनकी रजिस्ट्री हो जायेगी। यही नही, रजिस्ट्रारके दफ्तरमे रजिस्ट्रीकी दरखास्त पेश भी हो गई। जब यह पता लगा कि

भारतीयोकी आशाएँ पूरी नही होनेवाली है, और एक भारतीयके नामपर जमीन दर्ज नही हो सकती, तब केवल यही एक मार्ग रह गया कि वह किसी गोरेके नाम दर्ज करा दी जाये। इसलिए उस गरीबने एक गोरे मित्रसे प्रार्थना की कि वह जमीन अपने नामपर करवा ले, ताकि जब जमीन बिके तो उसमे उसे नुकसान न उठाना पड़े। उस गोरे मित्रने यह मंजूर कर लिया और इस तरह मामला समाप्त हो गया। हमे तो इससे दु ख हुआ, परन्तु अगर इस हालतपर हमारे सहयोगीको सन्तोष होता है तो उसे वह सन्तोष मुबारक हो। हम तो केवल इतना ही कहेगे कि यह अत्यन्त अब्रिटिश है। किन्तु इस छोटेसे प्रश्नके प्रति जो रुख प्रकट हुआ है उस-पर हमे आश्चर्य नही है, क्योकि इसी लेखमे लिखा है कि ईस्ट रैंडके लोगोका आगे यह कार्यक्रम होगा : (१) शहरके बाहर *बाजारोंको* छोड़कर अन्यत्र कोई एशियाई व्यापार नही होगा, जैसी कि कानूनकी आज्ञा है। (२) किसी जमीन या स्थावर सम्पत्तिका स्वामित्व एशियाइयोको न हो, इस सम्बन्धमें वर्तमान कानूनका पूरा-पूरा समर्थन किया जायेगा। (३) तमाम एशियाइयोको काफिरोके समान माना जायेगा। अपने सहयोगीकी स्पष्टवादिताकी हमने सदैव सराहना की है। इस मामलेमे भी हमें उसके वही गुण दिखलाई पडते हैं। वह कटु सत्य कहनेमे संकोच नही करता। सरकारसे माँग की जानेवाली है कि वह शहरोके बाहर *बाजार* बना दे। सच पूछिए तो इस बातकी आवश्यकता ही नही है, क्योकि जहाँ जगहोका चुनाव हो गया है वहाँ सरकारने पहलेसे ही ऐसा कर दिया है। हम नही समझते कि ईस्ट रैंडका कोई कट्टरतम व्यक्ति भी, स्वय अपनी दृष्टिसे इनसे अधिक उपयुक्त जगहोका चुनाव कर सकता था। ये जगहे ऐसे हिस्सोमे है, जहाँ व्यापार लगभग असम्भव और निवास खतरोसे भरा है। दूसरी माँग भी अनावश्यक ही है, क्योकि सरकार वर्तमान कानूनके पालनमे जरा भी रू-रियायत करना नही चाहती। उलटे, उसका तो रुख नियन्त्रणोको जितना भी सख्त बनाया जा सके उतना सख्त बनानेका है। तीसरी माँग सबसे अधिक स्पष्ट है। और अगर ब्रिटिश भारतीयोके दर्जेका सवाल अनिश्चित कालके लिए ताकमे रखा जा सका तो यह प्रश्न हमेशाके लिए हल है। सारे एशियाइयोको एक ही स्तरपर ले आना बहुत सरल उपाय है। परन्तु मुश्किल तो यह है कि ट्रान्सवालकी सरकार पुरानी सभी घोषणाओको चाहे कितना ही पैरो तले कुचलनेकी इच्छा करे, और तैयार हो जाये, हमारा अनुमान है कि हमारे सहयोगी द्वारा सुझाये गये मार्गका अवलम्बन करनेमे उसे भी हिचक होगी। उसका अर्थ होगा सन् १८८५ के कानून ३ को रद कर देना और उसके स्थान-पर ऐसा कानून बनाना, जो उसने पिछली हुकूमतको कभी पास नही करने दिया। भूतपूर्व राष्ट्रपति क्रूगरने कई बार प्रयत्न किया कि लन्दन-समझौतेकी १४ वी धाराको इस तरह बदल दिया जाये कि "दक्षिण आफ्रिकाके वतनियोमें" तमाम एशियाइयोको भी शामिल कर लिया जाये, और चाहा कि उसपर स्वर्गीया सम्राज्ञीकी सरकार अपनी मजूरी दे दे। परन्तु लॉर्ड डर्बी दृढ रहे और उन्होने ऐसे किसी प्रस्तावपर विचार करनेसे इनकार किया। इसलिए ट्रान्सवालमे भारतीयोके प्रति न्याय करनेकी भावनाका जबतक लवलेश भी बचा रहेगा, हमारे सह-योगीकी योजना यद्यपि बड़ी सरल है, तथापि उसके कार्यान्वित होनेमें कुछ कठिनाई अवश्य होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२-११-१९०३

३७. पत्र : लेफ्टिनेंट गवर्नरके सचिवको

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
नवम्बर १४, १९०३

सेवामे
निजी सचिव
परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर
प्रिटोरिया

महोदय,

आज जिनके पास व्यापारिक परवाना है उन्हे हटानेका प्रश्न उन लोगोके लेखे इतना महत्त्वपूर्ण और गभीर है कि मै फिर परमश्रेष्ठका ध्यान बँटानेका साहस कर रहा हूँ।

शिष्टमण्डलने परमश्रेष्ठकी सेवामे निवेदन किया था कि लॉर्ड मिलनरका श्री चेम्बरलेनके नाम तारीख ११ मईका खरीता ब्रिटिश भारतीयोके इस मतकी पुष्टि करता है कि इस वर्षकी सूचना ३५६से वर्तमान परवानो पर असर नही पडेगा। मै समर्थनमे विनयपूर्वक खरीतेसे निम्न अश उद्धृत कर रहा हूँ

> परन्तु सरकार इस बातकी चिन्तामें है कि वह इस कामको (कानूनके अमलको) देशमें पहलेसे बसे हुए भारतीयोंका बहुत खयाल रखते हुए और निहित स्वार्थोंके प्रति — जहाँ इन्हे कानूनके विरुद्ध भी विकसित होने दिया गया है — सबसे अधिक खयाल रखते हुए करे। . . . लड़ाईसे पहले जो एशियाई लोग उपनिवेशमें थे केवल उन्हींका सवाल होता तो महामहिमकी सरकारके मनके लायक नये कानून बननेतक हम राह देख सकते थे। परन्तु यहाँ तो नये-नये आनेवालोंका ताँता लगा रहता है और वे व्यापार करनेके परवाने माँगते रहते हैं। और, यूरोपीय लोग बिना सोचे-समझे परवाने देते जाने और एशियाइयोंको उनके लिए ही विशेष रूपसे पृथक बनाई गई बस्तियोंतक सीमित रखनेका कानून लागू करनेमें सरकारकी लापरवाहीके विरुद्ध निरन्तर प्रतिवाद और अधिकाधिक तीव्र रोष प्रकट कर रहे हैं। ऐसी दशामें एकदम खामोश बैठे रहना असम्भव हो गया है। . . . जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ, लड़ाईके पहले यहाँ जिन एशियाइयोंके जो निहित स्वार्थ थे उन्हें सरकार स्वीकार करनेको तैयार है। परन्तु दूसरी तरफ, उसे लगता है कि कानूनके खिलाफ नये निहित स्वार्थोंको खड़े होने देना उचित नहीं होगा। लड़ाईके दरमियान और युद्धविरामके बाद, कितने ही नवागन्तुकोंके नाम व्यापारके अस्थायी परवाने जारी कर दिये गये थे। इन परवानोंकी मियाद ३१ दिसम्बर, १९०३ तकके लिए बढ़ा दी गई है। परन्तु इन परवानेदारोंको हिदायतें दे दी गई हैं कि उस तारीखको उन्हे अपने लिए निश्चित सड़कों, या *बाजारोंमें* चले जाना होगा।

उपर्युक्त उद्धरणसे स्पष्ट है कि लॉर्ड मिलनरके मनपर छाप यह है कि व्यापारिक परवाने नवागन्तुकोंको दिये गये हैं, अतएव केवल उन्हे ही सडको या *बाजारोंमें* हटाया जाना चाहिए। किन्तु जैसा कि शिष्टमण्डलने निवेदन किया है, जिन्हे *बाजारोंके* वाहर व्यापार करनेके परवाने दिये गये हैं, अगर उनमे कोई नवागन्तुक है, तो उनकी संख्या वहुत कम है।

लॉर्ड मिलनर फिर कहते है

> प्रतिष्ठित ब्रिटिश भारतीयो अथवा सुसम्य एशियाइयो पर हम कोई निर्योग्यताएँ लगाना नहीं चाहते। . . . वह (सरकार) तीन महत्त्वपूर्ण बातोमें इन एशियाइयोके प्रति रियायत दिखा रही है, जो पिछली हुकूमतने नहीं दिखाई थी।

इन वातोमे से एक है ऊँचे तवके के एशियाइयोकी सारे विशेष कानूनोसे छूट। जहाँतक केवल निवासियोको इनके दिये जानेका सवाल है मैं निवेदन करनेकी धृष्टता करता हूँ कि जो स्वच्छता और अन्य नियमोका अनुसरण करते है, उन्हे नया कानून वननेतक अपना व्यापार अवाध रूपसे करने देना चाहिए।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइव्ज. एल० जी० २१३२, एशियाटिक्स १९०२–१९०६।

३८. टिप्पणियाँ[1]

[जोहानिसबर्ग
नवम्बर १६, १९०३]

नवम्बर १६, १९०३ को समाप्त होनेवाले सप्ताहका विवरण

स्थिति अब भी वैसी ही है। पिछले सप्ताह जो संक्षिप्त विवरण[2] भेजा गया था वह लॉर्ड मिलनर द्वारा मई २, १९०३ को श्री चेम्बरलेनके नाम भेजे गये खरीतेके आधारपर अच्छी तरह स्पष्ट किया जा सकता है।

यद्यपि लॉर्ड मिलनर कहते है, सरकार इस बातके लिए चिन्तित है कि कानून इस तरह लागू हो, जिसमें उपनिवेशमें पहलेसे बसे भारतीयोका पूरा खयाल रखा जाये, फिर भी पिछले सप्ताह यह प्रकट हो गया कि भारतीयोंका कितना कम खयाल रखा गया है।

उन भारी हितोको, जो जोखिममें है, देखते हुए यह आवश्यक है कि लॉर्ड मिलनरके खरीतेसे और उद्धरण चुने जाये, जिनसे प्रकट होगा कि वह अमलमें आनेवाले वर्तमान तरीकोसे वस्तुतः कितना भिन्न है। लॉर्ड मिलनर कहते है:

> लड़ाईके पहले जो एशियाई उपनिवेशमें थे, केवल उन्हींका सवाल होता तो महामहिमकी सरकारके मनके लायक नये कानून बननेतक हम राह देख सकते थे; परन्तु

१. गांधीजीने यह विवरण दादाभाई नौरोजीको भेजा था, जिन्होंने इसकी एक प्रति भारतमन्त्रीको भेजी थी। यह दिसम्बर ११, १९०३के *इंडियामें* छपा था।
२. देखिए "टिप्पणियाँ," नवम्बर ९, १९०३।

यहाँ तो नये-नये आनेवालोंका ताँता लगा रहता है और वे व्यापार करनेके परवाने भी माँगते रहते हैं। ऐसी दशामें एकदम खामोश बैठे रहना असम्भव हो गया है।

लॉर्ड महोदय आगे कहते हैं:

जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ, लड़ाईके पहले यहाँ जिन एशियाइयोंके जो निहित स्वार्थ थे उन्हें सरकार स्वीकार करनेको तैयार है। परन्तु दूसरी तरफ, उसे लगता है कि कानूनके खिलाफ नये निहित स्वार्थोंको खड़े होने देना उचित नहीं होगा। लड़ाईके दरमियान और, युद्धविरामके बाद, कितने ही नवागन्तुकोंके नाम व्यापारके अस्थायी परवाने जारी कर दिये गये थे। इन परवानोंकी मियाद ३१ दिसम्बर, १९०३ तकके लिए बढ़ा दी गई है। परन्तु इन परवानेदारोंको हिदायतें दे दी गई हैं कि उस तारीखको उन्हें अपने लिए निश्चित सड़कों, या *बाजारों*में चले जाना होगा।

अब, उपर्युक्त कथनके अनुसार उन लोगोकी राहमे, जो युद्धके पहले व्यापार कर रहे थे, कोई रुकावट नही आनी चाहिए; साथ ही उन लोगोकी भी, जो युद्धके पहले इस देशमे बस गये थे, चाहे फिर वे युद्धके पूर्व व्यापार करते रहे हो, या नही। खरीतेके अनुसार *बाजार*-सूचनाका असर केवल उन्ही नये आगन्तुकोपर होना चाहिए, जिनके बारेमे कहा गया है कि वे यहाँ आकर भर गये है। वास्तवमे, जैसा कि पिछले विवरणमें बताया गया है, नये आगन्तुक तो बहुत ही कम है; क्योंकि देशमे केवल शरणार्थियोको आने दिया गया है। इसलिए खरीतेपर भरोसा कर निष्क्रिय बैठे रहनेसे कोई लाभ नही होगा। समय भागता जा रहा है, खरीतेके अनुसार यह अत्यन्त आवश्यक है कि बेचारे ब्रिटिश भारतीयोको आश्वासन दिया जाये कि उनके परवानोका सम्मान किया जायेगा।

लॉर्ड मिलनर आगे कहते है:

प्रतिष्ठित ब्रिटिश भारतीयों और सुसभ्य एशियाइयोंपर हम कोई निर्योग्यताएँ नहीं लादना चाहते।

और, परमश्रेष्ठ आगे कहते हैं:

इसलिए, तीन महत्त्वपूर्ण बातोंमें सरकार एशियाइयोंके साथ ऐसी रियायत दिखा रही है, जो पिछली हुकूमतने नहीं दिखलाई थी।

उक्त मामलोमे से एक है उच्च वर्गके एशियाइयोको सभी तरहके विशेष विधानोंसे मुक्त करना। यह रियायत, निवासस्थानको छोड़कर, जो कुछ महत्त्व नही रखता, अन्यत्र अभी तक नही दी गई है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात है देशका कानून स्वीकार करनेवाले लोगोके व्यापारमे रोड़े न अटकाना। बस्तियोसे बाहर निवासस्थानके अधिकारपर निःसन्देह बहुत जोर डाला जाता है। किन्तु तुलनात्मक दृष्टिसे निवासस्थानका अधिकार तो भावनासे सम्बन्धित है और व्यापारका अधिकार रोटीसे।

जहाँतक *बाजारों*के लिए स्थानोके चुनावका सम्बन्ध है, भारतीयोंकी केवल एक राय है —अर्थात् उनके कट्टर विरोधी इनसे बुरे स्थान नही चुन सकते थे। व्यापारके लिए ये स्थान सर्वथा बेकार है। ज्यादातर मामलोमे ये उजाड भूमि-खण्ड है, जो व्यापारिक केन्द्रोसे दूर पड़ते है। निष्पक्ष पेशेवर लोगोने प्रमाणित किया है कि व्यापारिक दृष्टिसे उनका कोई मूल्य नही है।

. . . .

रस्टेनबर्ग *बाजारके* सम्बन्धमें स्वास्थ्य-निकायके एक सदस्यतक ने यह कहनेमें सकोच नही किया कि वहाँ व्यापार नही हो सकता, और तो भी लॉर्ड मिलनरने श्री चेम्बरलेनको लिखा है :

> जैसा कि आप जानते हैं, दक्षिण आफ्रिकाकी भूतपूर्व गणराज्य-सरकारने इन एशियाई *बाजारोंके* लिए जो जगहें चुनी थीं, उनमें बहुत-सी इस कामके लिए सर्वथा अनुपयुक्त थीं, क्योंकि शहरके व्यापार-केन्द्रोंसे वे दूर पड़ती थी। बहुतसे शहरोंमें जगहें चुनी ही नहीं गई थीं। अब सरकारका यह इरादा है कि एशियाई *बाजारोंके* लिए उपयुक्त जगहें चुननेमें जरा भी देर न की जाये। वे समाजके सभी वर्गोंके जाने-आनेके लायक हों। मुझे विश्वास है कि वहाँ रहनेके लिए जानेवाले लोगोंकी जरूरत और रिवाजके अनुसार एक बार जब वहाँ *बाजार* स्थापित हो जायेंगे तब वे आजकी स्थितिसे अधिक अच्छी तरह नहीं तो, कमसे-कम इतनी ही अच्छी तरह वहाँ अपना व्यापार कर सकेंगे।

उक्त उद्धरण यह प्रकट नही करता कि लॉर्ड मिलनरके इरादे अच्छे नही है, बल्कि बताता है कि १८८५ के कानून ३ के प्रशासनका उत्तरदायित्व जिनपर है, वे उन इरादोपर अमल नही कर रहे है। वास्तवमें वे इस कानूनको ऐसे ढगसे अमलमे ला रहे है जो भारतीयोके अत्यन्त विरुद्ध है, क्योकि कानून सरकारको मजबूर नही करता कि वह *बाजारोंको* दूर-दराज जगहोमे चुने, बल्कि वह उसे अधिकार देता है कि वह एशियाइयोको रहनेके लिए सडकें, मुहल्ले तथा बस्तियाँ बताये। लॉर्ड मिलनरने स्वय पृथक सडके स्थापित करनेके बारेमें विचार किया था। उसी खरीतेमे उन्होने कहा है: "उन्हे उन सडको या *बाजारोंमें* जाना होगा, जो इस मतलबके लिए चुने गये है।"

हम देखते है कि लॉर्ड मिलनरका वक्तव्य, जहाँतक सम्भव हो सकता है, निश्चित है। इसलिए सरकारसे जो न्यूनतम अपेक्षा की जाती है, यह है कि लॉर्ड मिलनरकी घोषणाको पूर्ण रूपसे अमलमे लाये और ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोके परवानोको नया करके उन्हे बरबाद होनेसे बचाये। यदि सरकार चाहे तो नये अर्जदारोके साथ भिन्न तरीकेसे बरताव किया जा सकता है।

भारतीय हितोके प्रति प्रशासनकी उदासीनता, या वैरभावको सिद्ध करनेके लिए बारबर्टनके स्वास्थ्य-निकायकी कार्रवाईका उदाहरण दिया जा सकता है। जैसा कि पिछले सप्ताह बताया जा चुका है, वहाँ वर्तमान बस्तीको नगरसे और दूरके स्थानपर हटानेका प्रयत्न किया गया था। उसके बाद सरकारने लिखा है कि, वर्तमान बस्तीके उपकरणोको ज्योका-त्यो रहने दिया जायेगा; क्योकि स्वास्थ्य-निकाय न तो उनको हटानेका हर्जाना दे सकता है, और न उसपर होनेवाले खर्च ही। किन्तु जो एक हाथसे दिया गया है, उसे दूसरे हाथसे छीन लिया गया है; क्योकि अभी-अभी स्थानिक मजिस्ट्रेटके हस्ताक्षरोसे एक सूचना निकली है, जिसके जरिये वर्तमान पट्टेदारोकी पट्टेदारीपर नई और असाधारण शर्तें लगा दी गई है। ये शर्तें गैर-सरकारी पक्षोके बीच भी नही सुनी गई थी। इसका मतलब यह है कि यदि वे नई बस्तियोमें नही जाना चाहते तो उन्हे अपनी जगहोमे उप-किरायेदारको और, यहाँतक कि, किसी अभ्यागतको भी रखनेका हक न होगा। यदि वे न माने तो उन्हे "बेदखलीका खतरा" उठाना होगा और, "नियत तारीखको किराया न देनेपर पट्टेदारी समाप्त कर दी जायेगी।" वर्तमान परवानेदारोके सिवा न तो किसी अन्य व्यक्तिके नाम परवाने बदले जा सकते है और न किसी अन्य स्थानके लिए नये कराये जा सकते है। इस प्रकार निकायको, यदि उसका निर्णय बहाल रहा तो, एक भी पैसा खर्च किये बिना ही भारतीयोको वर्तमान बस्तियोसे हटानेका सन्तोष प्राप्त हो जायेगा।

यह सारे-का-सारा, स्पष्ट रूपसे, १८८५ के कानून ३ के खिलाफ है, क्योंकि, कुछ हो, बस्तियोंके अन्दर तो ब्रिटिश भारतीयोको भी वैसे ही अधिकार होगे जैसे कि किसी साधारण व्यक्तिको। यह मामला सरकारके सामने पेश किया गया है।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस: ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, ४०२।

३९. ट्रान्सवालके "बाजार"

अच्छा हो कि ब्रिटिश भारतीयोके लन्दन-स्थित मित्र ११ मईको श्री चेम्बरलेनके नाम भेजे गये लॉर्ड मिलनरके खरीतेकी तुलना ट्रान्सवालके अधिकारियोके उस रुखके साथ करे जो उन्होने ब्रिटिश भारतीयोके व्यापारी परवानोके बारेमे धारण कर रखा है। इन दूकानदारोके बारेमे लॉर्ड मिलनर अपने खरीतेमे लिखते है:

> परन्तु सरकार इस बातकी चिन्तामें है कि वह इस कामको (कानूनके अमलको) देशमें पहलेसे बसे हुए भारतीयोंका बहुत खयाल रखते हुए और निहित स्वार्थोंके प्रति — जहाँ इन्हें कानूनके विरुद्ध भी विकसित होने दिया गया है — सबसे अधिक खयाल रखते हुए करे।

इस वक्तव्यको पढ़कर स्वभावत मनुष्यका यही खयाल हो सकता है कि जितने भी भारतीय इस समय परवाने प्राप्त करके उपनिवेशमे व्यापार कर रहे है, उन्हे छेडा नही जायेगा और उन्हे बस्तियोमे जानेपर मजबूर नही किया जायेगा। परन्तु वास्तविकता कुछ और ही है। कुछ बहुत थोड़े लोगोको छोडकर, जिनको लड़ाईके पहले व्यापारी परवाने मिल सके थे, शेष सबको, यद्यपि वे लड़ाईके पहले बगैर परवानोके व्यापार करते थे, बस्तियोमें जाना होगा मानो इन लोगोका कोई निहित स्वार्थ है ही नही। इसलिए ट्रान्सवालकी वास्तविक जानकारीके अभावमे इंग्लैडमे लोगोको यह गलत खयाल हो सकता है कि ट्रान्सवालकी स्थिति चिन्ता करने लायक नही है और, यह कि, जिनके पास परवाने है उनको वर्षके अन्तमे छेडा नही जायेगा। इसलिए हम उन्हे सावधान कर देना चाहते है कि अगर उन्होने अपने दिमागमे ऐसा कोई खयाल बना लिया हो तो उसे हटा दे। लॉर्ड मिलनरके खरीतेके उपर्युक्त उद्धरणके बावजूद वे निश्चयपूर्वक जान ले कि इस समय इन निर्दोष लोगोको बचानेके लिए भगीरथ-प्रयत्नकी जरूरत है। अगर वह नही किया गया तो इस वर्षके अन्तमे सैकड़ो भारतीय व्यापारी बरबाद हो जायेगे। लॉर्ड मिलनरके खरीते-पर हम जितना ही अधिक विचार करते है, उतना ही हमे लगता है कि वह गुमराह करनेवाला है। लॉर्ड महोदय कहते है.

> जैसा कि मै पहले कह चुका हूँ, लड़ाईके पहले यहाँ एशियाइयोंके जो निहित स्वार्थ थे, उन्हें सरकार स्वीकार करनेको तैयार है। परन्तु दूसरी तरफ, उसे लगता है कि कानूनके खिलाफ नये निहित स्वार्थोंको खड़े होने देना उचित नहीं होगा। लड़ाईके दरमियान, और युद्ध-विरामके बाद, कितने ही नवागन्तुकोंके नाम व्यापारके अस्थायी परवाने जारी कर दिये गये थे। इन परवानोंकी मियाद ३१ दिसम्बर, १९०३ तकके

लिए बढ़ा दी गई है। परन्तु इन परवानेदारोंको हिदायतें दे दी गई है कि उस तारीखको उन्हें अपने लिए निश्चित सड़कों या *बाजारोंमें* चले जाना होगा।

लड़ाईसे पहले कुछ भारतीय परवानोके बगैर व्यापार करते थे। दूसरे ऐसे भारतीय शरणार्थी भी है, जो लड़ाईसे पहले किन्ही जिलोंमे व्यापार नही करते थे। परन्तु बादमे उन्हे वहाँ व्यापार करनेके लिए परवाने दे दिये गये है। उनको छेडा जायेगा या नही, इस विषयमें उपर्युक्त वक्तव्यमें एक शब्द भी नही आया है। लॉर्ड मिलनरके अनुसार प्रश्न एकमात्र नये आनेवालोंका है। अगर *बाजार*-सूचना केवल उन नये आनेवालो पर लागू होती, जिनके पास अस्थायी परवाने है, तो शायद बहुत कहने-सुननेकी बात नही होती। परन्तु यह लगभग निरपवाद रूपसे सिद्ध किया जा सकता है कि सारे वर्तमान परवानेदार शरणार्थी है, जो "लड़ाईसे पहले यहाँ रहते थे।" और फिर भी, इन सबको "उनके लिए निश्चित सड़कोपर या *बाजारोंमें* चले जाना होगा।" "सड़को" शब्दपर ध्यान दीजिये। और उसे नीचे लिखे सदर्भके साथ पढ़िए।

लॉर्ड महोदय कहते है·

> जैसा कि आप जानते है, दक्षिण आफ्रिकाकी भूतपूर्व गणराज्य-सरकारने इन एशियाई *बाजारोंके* लिए जो जगहें चुनी थीं उनमें बहुत-सी इस कामके लिए सर्वथा अनुपयुक्त थीं, क्योंकि शहरके व्यापार-केन्द्रोंसे वे दूर पड़ती थीं। बहुतसे शहरोंमें जगहे चुनी ही नहीं गई थीं। अब सरकारका यह इरादा है कि एशियाई *बाजारोंके* लिए उपयुक्त जगहें चुननेमें जरा भी देर न की जाये। वे समाजके सभी वर्गोंके जाने-आनेके लायक हों। मुझे विश्वास है कि वहाँ रहनेके लिए जानेवाले लोगोंकी जरूरत और रिवाजके अनुसार एक बार जब वहाँ *बाजार* स्थापित हो जायेंगे तब वे आजकी स्थितिसे अधिक अच्छी तरह नहीं तो, कमसे-कम, इतनी ही अच्छी तरह वहाँ अपना व्यापार कर सकेंगे।

इन शब्दोको पढनेपर स्वभावत: किसी भी आदमीको यही खयाल हो सकता है कि इन *बाजारोंकी* जगहे सचमुच बडी अच्छी और पिछली गणराज्य-सरकारने जो चुनी थी उनसे बिलकुल भिन्न प्रकारकी होंगी। और यह कि, यह सड़कोकी अदला-बदली मात्र है। परन्तु जिन्हे ट्रान्सवालके हालातका पता नही है उन्हे हम बता दे कि वहाँ इन *बाजारोंका* चुनाव ऊपर लिखी भावनासे नही किया गया है। किसी भी मामलेमे कोई सड़क भारतीयोके व्यापार या निवासके लिए निश्चित नही की गई है। प्राय. सभी बस्तियाँ शहरके व्यापार-केन्द्रोसे जितनी भी अधिक दूर रखी जा सकती थी, उतनी दूर रखी गई है। हम अन्यत्र वे प्रतिवेदन प्रकाशित कर रहे है जो हमारे पास प्रकाशनार्थ भेजे गये है। प्रतिवेदन ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय सघकी प्रेरणासे इस उपनिवेशके अपने पेशेमें अच्छी स्थितिके सज्जनो द्वारा तैयार किये गये है। ये सब सज्जन एक रायसे कह रहे है कि चुनी हुई जगहे व्यापारके लिए किसी कामकी नही है। लॉर्ड मिलनरने यह तो खुद ही स्वीकार किया है कि पिछली हुकूमतने जो जगहे चुनी थी वे व्यापारके लिए अत्यन्त अनुपयुक्त थी। किन्तु हम पूर्ण निश्चयके साथ कहते है कि वर्तमान सरकार द्वारा चुनी गई जगहे प्राय. उनसे दूनी खराब है। पिछली सरकार द्वारा चुनी हुई बस्तियोकी जगहोको और भी दूर ले जानेका प्रयत्न किया गया है और एक दो बस्तियोको छोड कर, जिनकी जगहे पुरानी थी शेष सब उन्ही दूरकी जगहोमे कायम रखी गई है। आज तो प्राय. ये सारे स्थान निरे रेगिस्तान है, जहाँ सफाई और पानीका कोई प्रबन्ध नही है। मकान भी नहीं बने है। ट्रान्सवालसे ५,००० मीलकी दूरीपर बैठे हुए लोगोको शायद हमारी बातोपर विश्वास न हो, परन्तु अक्षरश. सत्य तो यह है कि जिन लोगोको इन *बाजारोंमें* जाकर बसना है उन्हें

वास्तवमे एक नये नगरकी स्थापना करनी होगी। उन्हे जमीनोके पट्टे लेने होंगे, अपने खर्चसे उनपर मकानात खड़े करने होंगे और अगर उनमें क्षमता हो, नये सिरेसे व्यापारको जमाना होगा। 'अपने खर्चेसे' शब्दपर हम इसलिए जोर दे रहे है कि इन बाडोके लिए होड उन्ही लोगोके बीच होगी जिन्हे अपने व्यापार और निवासके लिए वहाँ मकान बनाने हैं। इसलिए स्पष्ट है कि छोटे व्यापारी वहाँ अच्छे मकान बनानेके लिए ३०० से ४०० पौड तक नही जुटा सकेंगे। *बाजारोंकी* जगहोका निश्चय अभी-अभी हुआ है। वहाँपर उनको तुरन्त मकान बनाना शुरू कर देना चाहिए और पहली जनवरीसे पहले उसे पूरा करके इस तारीखको अपने नये निवास-पर रहनेके लिए चले जाना चाहिए। लॉर्ड महोदय फर्माते हैं कि "*बाजार* समाजके सब वर्गोके लोगोके आने-जाने लायक होगें।" अगर इन शब्दोका अर्थ यह हो कि इन *बाजारोंपर* पीला झडा और आस-पास कांटेदार तार नही लगाये जायेंगे तो उनका कहना जरूर सही होगा। परन्तु अगर वे इन शब्दोके द्वारा यह कहना चाहते हो कि सभी वर्गोके लोग वहाँपर सौदा खरीदनेके लिए आसानीसे जा सकेंगे, तो हमे फिर कहना होगा कि यह एकदम गलत है। शहरसे बाहर, व्यापार-केन्द्रसे एक मीलके फासलेपर, रास्तेसे हटकर भारतीय *बाजारोंमें* सौदा खरीदनेके लिए जानेसे लोग इनकार करेगें। और फिर भी लॉर्ड महोदय आशा रखते है कि भार-तीयोका व्यापार जिस प्रकार चल रहा है, अगर उससे अधिक अच्छी तरह नही तो वैसा तो जरूर चलता ही रहेगा। परिस्थितिकी यह हृदयहीनता वर्णनसे परे है। अभी तो केवल इसी आशाके सहारे लोग टिके है कि वर्ष समाप्त होनेसे पहले सरकारसे कुछ राहत मिलेगी और वर्तमान परवानेदारोको छेड़ा नही जायेगा। खरीतेके बारेमें और भी कुछ कहना शेष है। इंग्लैंडसे और भारतसे आये समाचारपत्रोमे हमने देखा है कि खरीतेका यह प्रभाव पडा है कि प्रतिष्ठित ब्रिटिश भारतीयो और मुख्य एशियाइयोंपर *बाजार*-सूचनाका असर नही पड़ेगा? क्योकि लॉर्ड मिलनर कहते हैं:

> **प्रतिष्ठित ब्रिटिश भारतीयों और सुसभ्य एशियाइयोंपर हम कोई निर्योग्यतायें नहीं लगाना चाहते। . . . इस विषयमें पिछली हुकूमतने जो कानून बना दिया था वर्तमान सरकार फिलहाल उसे कायम रख रही है। परन्तु तीन बहुत महत्त्वपूर्ण बातोंमें वह एशियाइयोंके साथ ऐसी रियायत दिखा रही है जो पिछली हुकूमतने नहीं दिखलाई थी।**

लॉर्ड महोदयने इसमें वर्तमान कालका प्रयोग किया है, जो ध्यान देनेकी बात है। इन तीन महत्त्वपूर्ण बातोमे से एक तो उच्च वर्गके एशियाइयोकी सभी विशेष कानूनोसे मुक्ति है। भारत और इग्लैडके अपने पाठकोको हम पुन: विश्वास दिलाना चाहते हैं कि इस मुक्तिके सिद्धान्तको भी मान्यता नहीं मिली है। फिर, वह मुक्ति कानूनका भाग नही है। और केवल निवाससे सम्बन्ध रखती है। और अगर कभी वह रियायत मिलेगी भी तो भविष्यमे किसी दिन, जिसका पता नही है। तबतक प्रतिष्ठित भारतीयों और अन्य सबका भाग्य एक जैसा है और उन्हे बगैर किसी रू-रियायतके बस्तियोमें जाकर बसने और वही — केवल वही — व्यापार करनेके लिए मजबूर किया जायेगा। वास्तविक स्थिति जिसे हम जानते है और बता रहे है उसमे और लॉर्ड मिलनर द्वारा खीची गई एशियाइयोकी स्थितिकी तसवीरमे यह महान अन्तर है। एक तसवीर लोगोको वस्तुस्थितिसे अन्धा बना सकती है। दूसरी तसवीर वस्तुस्थितिका सही-सही चित्रण है, और हम विचारपूर्वक कहते है कि इसमें तिलभर भी अत्युक्ति नही की गई है। हम जो बातें खुद जानते है और जिनका ब्योरा हमको मिला है उसीके आधारपर हम यह कह रहे है। परिस्थिति इतनी नाजुक, और अब्रिटिश है कि हम केवल यह आशा करते है कि शायद इस आखिरी घड़ीमें भी उसमें कोई परिवर्तनकी सूरत निकल आये, और नवीन

वर्ष भारतीय व्यापारियोके लिए इतनी उदासी लेकर न अवतरित हो, जितना कि इस समय वह प्रतीत हो रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९-११-१९०३

४०. भारतके पितामह

भारतकी ताज़ा डाकमें आये अखबारोमें श्री दादाभाई नौरोजीकी[1] साल-गिरहपर बहुत लम्बे-लम्बे लेख है। निश्चय ही श्री दादाभाईका भारतमें वही स्थान है जो इंग्लैंडमें श्री ग्लैड्स्टनका था। उन्होंने अपने ७९वे वर्षमें प्रवेश किया है और उनकी यह वर्षगाँठ सारे भारतमें जैसे मनाई जानी चाहिए थी उसी तरह मनाई गई है। लाखो-करोडो मनुष्योने परमात्मासे प्रार्थनाएँ की कि वह उस वृद्ध पुरुषपर अपने आशीर्वादकी वृष्टि करे, और उसे चिरायु करे। हम भी उन करोडोकी प्रार्थनामे शामिल है। हिन्दूकुशसे लेकर कन्याकुमारीतक और कलकत्तासे लेकर कराचीतक श्री दादाभाईके प्रति जनताका जितना प्रेम है उतना और किसी जीवित व्यक्तिके प्रति नही है। उन्होंने अपना सारा जीवन अपनी जन्मभूमिकी सेवामें अर्पित कर दिया है और यद्यपि वे पारसी है, फिर भी सारे देशके हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और अन्य सब उनके प्रति उतना ही आदर और श्रद्धा रखते है जितना कि पारसी खुद। भारतकी सेवाके लिए उन्होंने अपने सुख-वैभवको तिलाजलि दे दी और एक निर्वासितका जीवन स्वीकार किया। उन्होंने तो अपना धन भी इसी काममे लगा दिया है। उनकी देशभक्ति शुद्धतम है और उसकी प्रेरणाका एकमात्र स्रोत मातृभूमिके प्रति कर्तव्यकी भावना ही है। यही नही, उनका व्यक्तिगत चरित पूर्णत आदर्श रहा है, जिसका उठती पीढीको हर दृष्टिसे अनुकरण करना चाहिए। जहाँतक हमारा खयाल है, उनके सारे राजनीतिक कार्योकी बुनियादमें एक प्रबल धार्मिक उत्साह रहा है, जिसे कोई मिटा नही सकता। जो देश दादाभाई जैसे पुरुषको जन्म दे सकता है, उसका भविष्य नि सन्देह अत्यन्त उज्ज्वल है। इग्लैंडकी लोकसभाके लिए एक ब्रिटिश क्षेत्रसे चुने जानेवाले वे पहले भारतीय है। अपने इस चुनावके वाद जब वे भारत आये तो उनका स्वागत बड़ी धूमधामसे किया गया। बम्बईसे लाहौरकी उनकी इस विजय-यात्राको जिन्होंने देखा, वे कहते है कि उनके स्वागतोत्सवमे जो उत्साह दिखाई दिया, उसकी बराबरी अगर किसी उत्साहसे हो सकती है तो वह चिरस्मरणीय लॉर्ड रिपनके उस समयके सत्कारका उत्साह ही था, जब वे अपने वाइसरायके पदसे निवृत्त हुए थे। ऐसे पुरुषका सम्मान करके निश्चय ही राष्ट्रने अपना ही सम्मान किया है। श्री दादाभाईका जीवन अपार कठिनाइयोसे भरा पडा है (जैसा कि हमारे बहुत-से पाठकोको ज्ञात है); परन्तु उन सबके बावजूद वे अनुपम श्रद्धा और नि.स्वार्थ भावसे अपने लक्ष्यपर डटे रहे है। देश और जातिकी सेवामें जो धीरज उन्होंने बताया है, दक्षिण आफ्रिकामे हमारे लिए वह एक सबक लेनेकी वस्तु है। राजनीतिक सघर्षोमें विजय कभी एक दिनमे नही मिल जाती। जो इनमें पड़ते है उन्हे अक्सर निराशाओका ही सामना करना पड़ता है। दक्षिण आफ्रिकामें हम इसका अनुभव कर ही रहे है। फिर अगर हम यह स्मरण कर ले कि श्री दादाभाई गत चालीस वर्ष या इससे भी अधिक समयसे इस

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९३।

संघर्षमें पड़े हुए है तो उससे हमे बडा सतोप मिलेगा। क्योकि, हमारी लडाई तो अभी शुरू ही हुई है और, फिर,[हम पर जो मुसीबतें आई है उनमें तो कही कही आशाकी किरणें भी दिखाई दे जाती है] *अपने तमाम कामकाजके बीच श्री दादाभाई दक्षिण आफ्रिकाके प्रश्नपर* भी बराबर ध्यान देते रहे है और वे हमारे पक्षके अत्यन्त लगन-भरे सरक्षकोमें से है। परमात्मासे हमारी यही हार्दिक प्रार्थना है कि वह श्री दादाभाईको शरीर और मनसे पूर्णत: स्वस्थ रखे, ताकि वे चिरायु होकर अपनी मातृभूमिकी गौरवमयी सेवा करते रहें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९-११-१९०३

४१. लॉर्ड हैरिस और ब्रिटिश भारतीय

भारत-सरकारने ट्रान्सवालको मजदूर भेजने और इस तरह उसकी मदद करनेसे तबतकके लिए इनकार कर दिया है, जबतक ट्रान्सवाल-सरकार वहाँकी भारतीय आबादीकी शिकायतोको दूर करनेके लिए तैयार नही होती। हमारे सहयोगी *ट्रान्सवाल लीडरको* प्राप्त सामुद्रिक तारके अनुसार, कहा जाता है, बम्बईके भूतपूर्व गवर्नर लॉर्ड हैरिसने दक्षिण आफ्रिकाकी सयुक्त स्वर्ण-क्षेत्रों (कान्सॉलिडेटेड गोल्डफील्ड्स) के अध्यक्षकी हैसियतसे ट्रान्सवालके मजदूरो-सम्बन्धी प्रश्नपर अपने विचार प्रकट करते हुए भारत-सरकारके इस रुखपर असन्तोष प्रकट किया है। लॉर्ड हैरिस बडे प्रतिष्ठित पुरुष है; परन्तु उनके उद्‌गारोसे, अगर वे सही है, प्रकट होता है कि स्वार्थ मनुष्यको कितना अन्धा बना देता है। लॉर्ड महोदय अब बम्बईके गवर्नर तो रहे नही; इसलिए भारतके दृष्टिकोणसे इस प्रश्नपर विचार करनेकी उन्हे जरूरत ही नही मालूम होती। वे एक बहुत बड़ी सोनेकी कम्पनीके पूँजीदाता और अध्यक्ष है और उसके हिस्सेदारोको मुनाफा दिलाना उनकी जिम्मेवारी है। इसलिए जब वे देखते है कि उनकी कम्पनी मजदूरोकी कमीसे कठिनाईमें फँस गई है, तब भारत-सरकारके इस रुखपर उन्हे रोष आता है कि वह अपने आश्रितोंकी रक्षा करनेका प्रयास करती है। उनकी कम्पनीको मुनाफा न मिलनेकी सभावना उनकी नजरोमे सबसे बड़ी चीज है। ट्रान्सवालके भारतीयोपर लगी निर्योग्यताएँ और गिरमिटिया मजदूरोके लिए प्रस्तावित शर्तें कितनी ही पक्षपात-भरी क्यो न हो वे उसकी तुलनामे कुछ नही है। इस घटनासे यह भी प्रकट होता है कि इग्लैंडमें ब्रिटिश भारतीयोके जो मित्र और संरक्षक है उनको कितनी सावधानीसे ब्रिटिश भारतीयोके हितोपर निगाह रखनेकी जरूरत है; परन्तु हम लॉर्ड महोदयसे कहेगे कि वे अपने पिछले जीवनपर निगाह डाले जब वे बम्बईके गवर्नर थे। हम उनसे अपने देशभाइयोकी तरफसे यह भी अपील करेंगे कि वे एक सच्चे खिलाड़ीके भावसे उनका खयाल जरूर रखे। पिछली बार इस उपनिवेशसे गुजरते समय भारतीयोके प्रतिनिधियोसे डर्बनमे उन्होने यह कहा भी था कि वे अपने हृदयमे भारतीयोके लिए सदा प्रेमपूर्ण स्थान बनाये रखेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९-११-१९०३

४२. राष्ट्रीय कांग्रेस और दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय

इंडियन ओपिनियनके इस अकके भारत पहुंचते-पहुंचते राष्ट्रीय काग्रेसके आगामी अधिवेशनकी तैयारियाँ बहुत आगे बढ चुकेंगी। इस अधिवेशनके मनोनीत सभापति श्री लालमोहन घोष[1] है। हमें जरा भी सदेह नही कि देशके प्रति उनकी दीर्घकालीन और सुयोग्य सेवाओ एव अद्वितीय वक्तृत्व-कलासे इस अधिवेशनमे विशाल जन-समूह आकर्षित होगा। श्री लालमोहन घोष मजे हुए राजनीतिज्ञ है और अपने देशभाइयो तथा सरकारसे सहानुभूतिका भाव जागृत करना भली-भाँति जानते है। वे इग्लैंडकी अनेक सभाओमे श्रोताओपर अपना सिक्का बैठा चुके है और हमें जरा भी शक नही कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोके प्रश्नको वे बहुत ही योग्यताके साथ सँभालेगे। इस महान सभाके कार्यकी आवश्यक मर्यादाओका हमे पूरा-पूरा खयाल है। अभी तो यह सरकारके लिए एक स्वेच्छा-सगठित सलाहकार परिषद मात्र है, परन्तु जैसे-जैसे समय बीतता जायेगा, और उसका आकार, बल, ज्ञान और मानसिक सन्तुलन अबतकके ही समान बढता जायेगा, वह जो भी विचार सरकारके सामने रखेगी, सरकार उसका आदर किये बिना न रह सकेगी। उसपर उसे ध्यान देना ही पडेगा। दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोका प्रश्न उन थोड़े-से प्रश्नोमें से एक है जो दलगत राजनीतिसे बिलकुल अलग है और जिनके विषयमें काग्रेस तथा शक्तिशाली आग्ल-भारतीय दलके बीच किसी प्रकारका मत-भेद नही है। अत उसके लिए दोनो पक्ष कन्धेसे-कन्धा भिडाकर काम कर सकते है और एक ही मचसे सरकारसे सर्व-सम्मत अपील भी कर सकते है। इसके अलावा, इस प्रश्न-विशेषके बारेमें सरकारकी खुशामद करनेकी भी जरूरत नही है, क्योकि लॉर्ड कर्जनने अनेक बार कहा है कि वे इस प्रश्नपर उपनिवेशोके रुखको बहुत अधिक नापसन्द करते है। इसलिए भारतमे तो केवल इतना ही आवश्यक है कि दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश भारतीयोके प्रति न्याय-प्राप्तिके प्रयत्नमे लॉर्ड महोदयके हाथोको मजबूत करनेके लिए लगातार आन्दोलन किया जाता रहे। हमे आशा है कि इस महान देशभक्तके नेतृत्वमें काग्रेस हम दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोको नही भुलायेगी, यद्यपि भारतके करोड़ो लोगोकी तुलनामें हम बहुत थोडे है। हमारी निर्योग्यताओके इस प्रश्नकी तहमें एक महान साम्राज्य-सम्बन्धी सिद्धान्त है, जिसकी सम्भावनाओका ठीक-ठीक अन्दाजा लगाना भी बडा कठिन है। बहुतसे ख्यातनामा आग्ल-भारतीयोने भारतीयोको उनकी साहसिकताकी कमी और मानसिक सकीर्णतापर कोसा है, क्योकि वे काफी बड़ी सख्यामें, अपने देशको छोडकर किस्मत आजमाईके लिए कही नही जाते है। अब, यह बिलकुल स्पष्ट हो गया है कि भारतसे बाहर जानेपर उनको ब्रिटिश प्रजाजनोका पूरा दर्जा नही मिल सकता। दूसरे देशोको उनके मुक्त रूपसे प्रवास करनेके मार्गमें यह एक कठिन बाधा है। किन्तु जैसे-जैसे देशमे पाश्चात्य शिक्षाका प्रसार होगा, साहसी भारतीय प्रवासियोकी शक्तिको बाहरकी ओर प्रवाहित करनेका मार्ग खोलना ही होगा। इन प्रवासियोका क्या हो, यह प्रश्न छोटा या महत्त्वहीन नही है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९-११-१९०३

१. लालमोहन घोष (१८४९-१९०९) वकील, लेखक और भारतको स्वराज देनेके प्रबल समर्थक।

४३. अत्याचारका इतिहास

कई वर्षोंसे और लड़ाईके बहुत पहलेसे, ब्रिटिश भारतीय बारबर्टनकी बस्तीमें रह रहे है। उस बस्तीकी स्थापना पिछली सरकारने की थी। वहाँके स्वास्थ्य-निकायने *बाजार*-सूचनासे प्रोत्साहित होकर अब किसी-न-किसी बहाने ब्रिटिश भारतीयोको उस बस्तीसे हटाकर शहरसे और भी दूर एक स्थानमे भेजनेका निश्चय किया है। इसके लिए स्वास्थ्य-निकायको सरकारकी स्वीकृति लेनी अनिवार्य थी, जो उसे तुरन्त दे दी गई। परन्तु इस शर्तपर कि, वर्तमान बस्तीको स्वास्थ्य-निकाय अपने खर्चेसे नई जगहपर ले जायेगा या केवल मकानोकी कीमतका वाजिब मुआवजा मालिकोको दे देगा। इसके अनुसार काबिज लोगोको सूचनाएँ भी दे दी गईं और वे परिस्थितिको समझ कर पूरे निश्चयके साथ काममे लग गये। उन्होने सरकारसे दरखास्त की कि उन्हे वहाँसे हटाया न जाये। कई अर्जियाँ गुजारी। इसपर जाँच की गई। अर्जदारोके विरोधके आधार ये थे: पहला यह कि, वे वर्तमान बस्तीमे बहुत लम्बे अर्सेसे रह रहे है और अपने व्यापार-व्यवसायमे एक साख बना चुके है। दूसरा यह कि, ऐसे लोगोके लिए वहाँसे हटने और नई बस्तीमे जानेसे बहुत बड़ा नुकसान होगा। तीसरा यह कि, नई बस्ती ऐसी जगह नही है जहाँ वे कुछ भी व्यापार कर सके। फिर वह वर्तमान बस्तीकी अपेक्षा शहरसे और भी ज्यादा दूर है और ऐसी जगह है जो स्वास्थ्यप्रद नही है। इसके अलावा उन्होने इस प्रश्नपर एक विशेष प्रतिवेदन भी तैयार कराया। शहरके प्रसिद्ध सर्वेक्षक श्री बर्टियरने उसमे लिखा कि शहरके चौक बाजारसे छोटेसे-छोटे रास्तेसे भी बस्तीकी नई जगह १ मील और ९३० गजकी दूरीपर है।

> बस्तीकी जमीन उसी किस्मके काले पत्थरकी है, जैसी कि पड़ोसके अस्पतालकी छोटी टेकड़ीकी है और वास्तवमें बस्तीका एक हिस्सा तो वस्तुतः उस टेकड़ीके ढालपर ही पड़ता है। इस बातको ध्यानमें रखते हुए, यह भी गम्भीर रूपसे विचारणीय है कि इस जमीनमें दीमक बहुत है, जिन्होंने उक्त पहाड़ीपर अस्पतालकी इमारतोंको बहुत नुकसान पहुँचाया है।

अपने वर्तमान स्थानसे बस्तीको हटाना वाछनीय है या नही, इस प्रश्नकी विस्तारके साथ चर्चा करते हुए श्री बर्टियरने स्पष्ट रूपसे बताया है कि यह वाछनीय नही है। वे लिखते है:

> बस्तीके वर्तमान स्थानमें, जो बारबर्टनसे काप घाटीको जानेवाले मुख्य मार्गके बिलकुल नजदीक है, कुछ हदतक व्यापारकी अनुकूलता है। फासला भी इतना है कि शहरके साथ भी व्यापार-व्यवसाय चल सकता है। किन्तु नया स्थान तो मुख्य मार्गसे दूर एक कोनेमें सिरेपर पड़ेगा। शहरका फासला भी बढ़ जाता है। इस कारण व्यापार-व्यवसायमें कठिनाइयाँ और भी बढ़ जायेंगी। फिर बस्ती और उपनगरोंके बीच मुसाफिरोंके लिए सरकारी बसोंकी व्यवस्था भी नहीं है। अस्पतालकी टेकड़ीके पूर्वमें होकर जो भी रास्ता नई बस्तीमें जायेगा वह स्वास्थ्य-निकायकी जमीनसे एक सौ गजके अन्दर-अन्दर ही पड़ेगा, जहाँ कि खच्चरोंका अस्तबल है, पाखाने और कूड़े-करकटकी गाड़ियाँ खड़ी की जाती हैं और बाल्टियाँ तारकोल लगाकर जमा रखी जाती हैं।

इस सबका सरकारने जवाब भेजा है कि वह नये स्थानको आरोग्यके लिए हानिकर नही मानती। उसने इस बातको टाल ही दिया है कि बस्तीको हटाना नितान्त अनावश्यक है। फिर भी, वह कहती है कि चूंकि स्थानिक निकाय मुआवजा देनेके लिए अथवा बस्तीको हटानेका खर्च उठानेके लिए भी तैयार नही है, इसलिए वहाँ रहनेवालोको अभी छेडा नही जायेगा। किन्तु अब उनपर नई शर्तें लादी जा रही हैं, जो अत्यन्त सन्तापकारक हैं। अगर ये शर्तें न लादी जाती तो आज ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोकी जो स्थिति है, उसे देखते हुए, उक्त समझौता ठीक कहा जा सकता था। परन्तु बस्तीके निवासियोको वर्तमान बस्तीमें रहनेकी इजाजत जिन शर्तोंपर दी जायेगी उनको देखते हुए तो यह समझौता बिलकुल निकम्मा बन गया है। जो चीज एक हाथसे दी गई है, वह दूसरे हाथसे छीन ली गई है। इन गरीबोको भेजी गई नई सूचनामे लिखा है:

> बस्तीमें केवल वर्तमान परवानेदारोंको और उनकी स्त्रियों तथा बच्चोंको ही रहनेकी छूट होगी। निश्चित तारीखपर वाजिब किराया अदा नहीं किया गया तो उनकी किरायेदारी खत्म कर दी जायेगी। कोई परवानेदार अपने बाड़ेमें उप-किरायेदार न रखेगा और अन्य किसीको नहीं रहने देगा, अन्यथा वह बेदखल कर दिया जायेगा। इसी प्रकार वर्तमान बस्तीके लिए नये परवाने जारी नहीं होंगे और न दिये हुए परवाने दूसरे किसीके नामपर बदले जायेंगे।

ये शर्तें अत्यन्त सतापकारी हैं। किरायेदार दुर्भाग्यवश हम भी हैं, परन्तु हमें स्वीकार करना चाहिए कि हमारे मकान मालिकने ऐसी कोई शर्तें नही लगाई हैं और अन्य किसी पट्टेमें भी हमने इस तरहकी शर्तें नही देखी हैं। इससे तो कही अच्छा होता, अगर निकाय सीधा कह देता कि "हम आपको कोई मुआवजा नही देना चाहते। फिर भी, आपको नये स्थानपर जाना ही होगा।" परन्तु लोगोको इस तरह टेढे-मेढे तरीकोसे उनके स्थानोसे खदेड़नेकी नीति उसके निर्माताओके लिए प्रतिष्ठाकी सूचक नही। यह प्रत्यक्ष है कि बारवर्टनका स्वास्थ्य-निकाय ब्रिटिश भारतीयोसे सम्बन्धित कानूनकी कोई परवाह नही करना चाहता। वह जगह, जहाँ ब्रिटिश भारतीय रहते हैं, सन् १८८५ के कानून ३ के अनुसार या तो पृथक बस्ती है, या नही है। अगर वह पृथक बस्ती है, और कानूनको समझनेमें हम कोई भूल नही करते, तो हर ब्रिटिश भारतीयको परवानेकी फीस भर देनेपर न केवल वहाँ रहनेका, बल्कि उप-किरायेदारको, और निश्चित रूपसे मेहमानोको भी, अपने यहाँ रखनेका तथा बस्तीके किसी भी भागमे, जिसमें वह चाहे, व्यापार करनेका भी अधिकार अवश्य है। परन्तु जैसा कि पाठकोने देख लिया होगा, नई शर्तोंके अनुसार निकाय भारतीयोको अपने यहाँ मेहमान रखनेसे भी मना करेगा और अगर वे रखेंगे तो उनको "बस्तीसे निकाल देगा।" हमे ज्ञात हुआ है कि मामला सरकारके विचाराधीन है। चिन्ताके साथ हम सरकारके निर्णयकी प्रतीक्षा करेंगे। हम जानना चाहेंगे, बारबर्टनका स्वास्थ्य-निकाय जो-कुछ करना चाहता है, उसके बचावमे लॉर्ड मिलनर क्या कहेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९-११-१९०३

४४. पत्र: दादाभाई नौरोजीको

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
नवम्बर २३, १९०३

सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी,
वाशिंगटन हाऊस,
७२, एनर्ले पार्क,
लदन, एस० ई०, इंग्लैड

प्रिय महोदय,

मैंने गत सप्ताह[1] ट्रान्सवालके भारतीय व्यापारियोंकी स्थितिके सम्बन्धमें आपको लिखा था और सुझाया था कि सभव हो तो श्री ब्रॉड्रिक या श्री लिटिलटनसे निजी मुलाकात माँगी जाये। इस मामलेमें जितना सोचता हूँ उतना ही मुझे विश्वास होता है कि ऐसी कोई कार्रवाई करना नितान्त आवश्यक है। इस मुलाकातमें बातचीत केवल अत्यावश्यक प्रश्न — अर्थात्, वर्तमान परवानेदारोके अधिकारोंतक सीमित रखी जाये। *इंडियन ओपिनियनके* इसी अंकमें आप *बाजारोंके* लिए प्रस्तावित स्थानोके बारेमें जिम्मेदार लोगोके प्रतिवेदन देखेगे। अधिकांश मामलोमे सरकारने उत्तर दिया है कि ये प्रतिवेदन गलत हैं और यह कि सम्बन्धित शहरोमें केवल ये ही स्थान उपलब्ध हैं। मुझे पूर्ण विनम्रतासे यह कहनेमें कोई हिचक नही है कि ये स्थान व्यापारके लिए बिलकुल बेकार है और, सच कहा जाये तो, सरकार इस विषयमें विवादमें नही पड़ना चाहती, बल्कि इस तर्कका आश्रय लेती है कि, कोई अन्य स्थान उपलब्ध ही नही है। कुछ भी हो, जो इस समय बस्तियोके बाहर व्यापार कर रहे हैं, उनके लिए वहाँ हटाये जानेका बिलकुल प्रश्न ही नही उठना चाहिए। मैं लॉर्ड मिलनरके खरीतेकी चर्चा कर ही चुका हूँ। उससे प्रकट हो जायेगा कि कमसे-कम उन्होंने इन लोगोको, जो शरणार्थी हैं, हटानेकी कभी कल्पना न की थी। श्री चेम्बरलेनने गत जनवरीमें शिष्टमण्डलको जो वचन दिया था, उसका आशय भी यही है। ब्रिटिश भारतीयोके सामान्य दर्जेके प्रश्नके अतिरिक्त मुझे इसमें कोई सन्देह नही कि यदि उपनिवेश-कार्यालय और भारत-कार्यालय पर्याप्त दबाव डाले तो इन गरीब लोगोको न्याय मिलनेकी पूरी संभावना है।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० २२५८) से।

१. देखिए "टिप्पणियाँ," नवम्बर १६, १९०३।

४५. पत्र : लेफ्टिनेंट गवर्नरके सचिवको

ब्रिटिश भारतीय संघ

पी० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
नवम्बर २५, १९०३

सेवामें
निजी सचिव
परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेट गवर्नर
प्रिटोरिया

महोदय,

ब्रिटिश भारतीयोंके पासके व्यापारिक परवानोसे सम्बन्धित मेरे तारीख १४ के पत्रके उत्तरमें आपका तारीख २४ का पत्र, क्रमाक ९७/२, मिला।

जोहानिसवर्गमे परमश्रेष्ठसे ब्रिटिश भारतीय प्रतिनिधिमण्डलकी भेंटकी तारीखके बादसे अवतक उपनिवेश-सचिवकी ओरसे उस प्रश्नसे सम्बन्धित कोई पत्र नही आया है।

परमश्रेष्ठने प्रतिनिधिमण्डलसे कृपापूर्वक ऐसा कहा था कि इस मामले पर किसी पासकी तारीखपर कार्यकारिणी परिषदकी बैठकमे विचार किया जायेगा और तब सघको उत्तर भेजा जायेगा।

जानना चाहता हूँ कि क्या सघको उक्त उत्तर मिलेगा?

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय सघ

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइव्ज : एल० जी० ९७/२, एशियाटिक्स १९०२–१९०६।

४६. इंग्लैंड और रूस

एक तुलना

श्री स्काइनने ७ जुलाई, १९०३ को इम्पीरियल इन्स्टिटयूटमे "इग्लैड और रूस द्वारा एशियाइयोपर शासन" विषयपर एक मनोरजक भाषण दिया था, जिसे ईस्ट ऐंड वेस्टने अपने अक्टूबरके अंकमें छापा है। इस विषयमें हम दक्षिण आफ्रिकाके लोगोंको बौद्धिक ही नही, बल्कि उससे कुछ अधिक दिलचस्पी है। अनन्त एशिया और उसकी हजारो जातियोपर, जिनमे बहुत-सी बातोमें जमीन-आसमानका अन्तर होते हुए भी, कुछ ऐसी समानता है, जिसकी व्याख्या नही हो सकती, इन दोनोमे से किसी एकके शासनकी सफलता या असफलताके बारेमे अन्तिम निर्णय देना राष्ट्रोके इतिहासमे अभी बहुत जल्दी करना होगा। वक्ताने कहा था:

> **रूसी सम्राट् — जार — के कई करोड़ बौद्ध और मूर्ति-पूजक प्रजाजन है और २०,७०,००,००० हिन्दू भारत-सम्राट्की सत्ता स्वीकार करते है, किन्तु पूर्वमें केवल इस्लाम इन दोनोके अधिकारियोंके सम्मुख एक जैसी समस्याएँ प्रस्तुत करता है। . . . ब्रिटिश भारतमें नबीके कमसे-कम ५,३८,०४,००० अनुयायी हैं। सन् १८९७ की जनगणनाके अनुसार, रूसके महान्, गौर वर्णीय जारके शासनाधीन मुसलमानोंकी संख्या १,८७,०७,००० है। . . . इसके विपरीत, मै कह दूँ कि, तुर्कीमें खलीफाके प्रजाजन, जो उनका धर्म मानते हैं, १,८५,००,००० से कम हैं।**

इस प्रकार यह प्रत्यक्ष है कि श्री स्काइनने अपनी तुलनाकी सुनिश्चित मर्यादाएँ बना ली है, इसलिए यद्यपि उनके भाषणका व्यापक अर्थ लगानेकी गुजाइश नही है, फिर भी वह पठनीय है। भारतीय शासनको कही "उदार निरकुशता"का नाम दिया गया है। यद्यपि इन शब्दोंमें परस्पर विरोधाभास है; किन्तु कदाचित् वे भारतमे अग्रेजी राजकी अवस्थाको बहुत कुछ यथार्थ रूपमे व्यक्त करते है। जबतक अग्रेजी राजकी प्रभुतामें हस्तक्षेप नही होता, तबतक भारतके लोगोके प्राचीन कालसे चले आते हुए रीति-रिवाजोका लिहाज किया जाता है और उन्हें अछूता रहने दिया जाता है। उनको अपने देशके मामलोमे न्यूनाधिक मोटे तरीकेका स्वशासन प्राप्त है। सन् १८५७[1] की ऐतिहासिक घोषणा और उसके बाद एकके बाद दूसरे वाइसरायोकी घोषणाएँ बताती है कि उनके पीछे जाति, रग और धर्मके सब भेदभावोको समाप्त करने और साम्राज्यके समस्त प्रजाजनोको समान अधिकार देनेका इरादा है। इसलिए यदि स्वयं भारतमे इन घोषणाओपर पूरा अमल नही हो पाता तो इसका कारण यह नही कि अधिकारी उन्हे पूरा करना नही चाहते, बल्कि यह है कि व्यवहारमे ब्रिटिश शासनकी सर्वोच्चताके सम्बन्धमे अनुचित भय या शासितोके सम्बन्धमे अनिश्चित सन्देहसे उनके हाथ रुकते है। इसलिए अस्थायी स्खलनोके बावजूद यह आशा करनेके लिए पर्याप्त आधार हैं कि [ज्यो-ज्यो लोगोकी स्वाभाविक राजभक्तिकी परीक्षाके अवसर आते जायेंगे त्यो-त्यो सन्देह या भय धीरे-धीरे विलुप्त होते जायेंगे और उनका स्थान विश्वास लेता जायेगा।] दक्षिण आफ्रिकाकी अभी हालकी लडाई और चीनके अभियानसे भारतीय शासकोके मनपर आश्चर्यजनक प्रभाव पडा है और भारतीय दृष्टिकोणसे

१. प्रत्यक्षतः १८५८ के बजाय भूलसे लिखित।

उनके द्वारा अप्रत्यक्ष रूपमें बहुत हित हुआ है। किन्तु श्री स्क्राइनने जिस मुख्य बातपर जोर दिया है वह राजनीतिककी अपेक्षा धार्मिक है। उनका तर्क यह है कि लाखों-करोड़ो मानवोंसे व्यवहार करते समय धर्मोंकी जो सहिष्णुता इतनी आवश्यक प्रतीत होती है वह शासकोंमें दिखाई नही पड़ती। वे कहते है:

> ईसाइयों और मुसलमानोंके भौतिक संघर्षसे उत्पन्न तीव्र कटुताके कारण हम प्रति-स्पर्धी धर्मके प्रति थोड़े अन्यायी हो गये हैं। स्पेनमें मूअरोंके शासनकी यश-गाथाओंसे यह असंदिग्ध रूपसे सिद्ध हो जाता है कि इस्लामके सिद्धान्त बौद्धिक और भौतिक उन्नतिके विरोधी नहीं हैं। वस्तुतः इस्लाममें कई बातें ऐसी हैं जो हमें उसका आदर करनेके लिए विवश करती हैं। उसके एकेश्वरवाद और सब मानव प्राणियोंके भ्रातृत्वके आदर्श केवल कल्पनाशील और विचारशील लोगोंमें विकसित हो सकते थे। वे आत्माको पतित करनेवाले उस भौतिकवाद और विवेकहीन धन-पिपासाके विरुद्ध शक्तिशाली प्रति-रोधक हैं, जो पश्चिमी यूरोप और अमेरिकामें ज्ञात सभ्यताके स्वरूपको नष्ट करनेका भय पैदा कर रहे हैं।

इस उत्कृष्ट साक्षीमें हम पश्चिममे उमरखय्यामकी रचनाओंको प्राप्त अनुपम सफलताकी बात और जोड सकते है। जब हम यह लिख रहे हैं तब तुर्कीके लाखों करोड़ो अनुयायी कठिनाइयों और कष्टोंके बावजूद स्वेच्छासे पूरे एक मासके रोजे रख रहे होंगे। जो लोक-समुदाय किसी भौतिक या प्रत्यक्ष लाभकी खातिर नही, बल्कि बहुत ही अप्रत्यक्ष और विशुद्ध आध्यात्मिक लाभकी खातिर ऐसी कठिनाइयाँ सहन कर सकता है, उसके धर्ममें कोई ऐसी बात जरूर होगी जो प्रशसनीय है और उससे ऐसा करा सकती है। ब्रिटिश शासनके लाभ गिनानेके बाद श्री स्क्राइन आगे कहते है:

> सत्य मुझे उन रंगोंमें चित्रांकनके लिए विवश करता है, जिनसे पूर्वमें ब्रिटिश साम्राज्यका वह आश्चर्यजनक विकास फीका पड़ जाता है। कुल मिलाकर हमारा शासन कदाचित् संसारमें सर्वोत्तम और सबसे अधिक सच्चा है; किन्तु वह निष्ठुर और फीका है। उससे अभीतक साहूकारी-दूकानकी गंध आती है। वह भारतीयोंकी सराहक प्रवृत्तिके, जो उनके स्वभावका एक रक्षक अंग है, अनुकूल पड़ता है; किन्तु उनके हृदयको स्पर्श नहीं करता। इसमें दोष कुछ हमारा भी है। हमारी जातिमें कल्पनाशीलताकी कमी है, इसीलिए हम मानसिक दृष्टिसे अपने-आपको दूसरे लोगोंकी स्थितिमें रखने या अपने-आपसे यह प्रश्न पूछनेमें असमर्थ हैं कि, हम स्वभावतः जो रुख इख्तियार करते हैं यदि वही रुख वे इख्तियार करें तब हम उसे कैसा समझेंगे। यदि अंग्रेजोंको सहानुभूतिके दिव्य गुणका अपना हिस्सा इससे ज्यादा मिला होता तो दक्षिण आफ्रिकी युद्ध ही न हुआ होता, हमारे साधन यों कुचले न गये होते और हमारा ध्यान अधिक महत्त्वपूर्ण बातोंकी ओरसे न हटा होता।

हमारे पाठक तुरन्त समझ जायेंगे कि पिछले दो वाक्य दक्षिण आफ्रिकापर बहुत ज्यादा लागू होते है। यदि गोरे उपनिवेशी अपने-आपको कानूनन निर्योग्य बनाये गये ब्रिटिश भारतीयोके स्थानमे रखकर सोच सकते तो उन्हे तुरन्त पता चल जाता कि ये निर्योग्यताएँ कितनी अनुचित है। श्री स्क्राइनने रूसी शासनका निम्नलिखित चित्र खींचा है:

जब ब्रिटेनमें पन्द्रहवीं शताब्दीमें लंकास्टर और यॉर्क-वंशीय युद्ध (वार्स ऑफ रोजेज) समाप्त हुआ तब रूसके कतिपय जनशासित राज्य मास्कोके ग्रैंड ड्यूककी अधीनतामें संगठित थे। जारशाही एक पूर्ण तथ्य थी और ग्रीक चर्चने उन शक्तियोंको मुक्त कर दिया था, जो इस्लामकी पतनोन्मुख कट्टरतासे भी बढ़ गई थीं। इस प्रकार रूसने तातारी जुआ उतार फेंका था और देशोंको जीतने और अपना अंग बनानेका अभियान आरम्भ कर दिया था। नैपोलियन प्रायः कहा करता था "रूसीको खुरचो तो तुम्हें तातार मिलेगा"। यद्यपि उसका यह कथन तथ्यके ठीक विपरीत था, फिर भी रूसी लोगोंमें अब भी एक असंदिग्ध मँगोल स्वभाव दिखाई देता है। रिश्तेकी आन्तरिक भावनाने एशियामें उनका मार्ग प्रशस्त कर दिया है। उनमें जातीय अभिमान नहीं है; अतः वे अपने साथी पूर्वी प्रजाजनोंसे समानताके आधारपर मिलते हैं। समरकन्दमें मैंने मुसलमान जिला-अधिकारीके साथ भोजन किया और सामाजिक सम्पर्ककी दृष्टिसे मैं उसके स्त्री-बच्चोंसे मिला। किन्तु इसके विपरीत, अंग्रेज पूर्वी जातियोंको अपनेसे हीन समझा करते हैं। उनके इस रुखके कारण वे शक्तियाँ उनके विरुद्ध हो जायेंगी, जो यदि संगठित होतीं तो भारतमें राजनीतिक क्रान्ति कर देतीं।

हम इस पत्रसे और भी उद्धरण दे सकते हैं, किन्तु हमारा उद्देश्य पाठककी भूखको उत्तेजित करना और उसे मूल भाषण पढ़नेके लिए तैयार करना है। किन्तु हम वक्ता महोदयके अन्तिम शब्दोके साथ, जिनमे उन्होने तुलना करनेका प्रयत्न किया है, इस लेखको समाप्त करते हैं। वे कहते हैं:

पूर्वी लोगोंपर शासन करनेकी अंग्रेजी और रूसी विधियोंकी तुलना करना कठिन है। जारके अधिकारियोंको विशाल दूरियों और अस्वास्थ्यवर्धक जलवायुसे संघर्ष करना पड़ता है, क्योंकि वहाँ सिंचाईका पानी, जमीनके भीतर न सोखनेसे मलेरिया बहुत फैलता है। किन्तु भारतमें शासकोंकी सबसे बड़ी कठिनाई घनी आबादी और तज्जनित जीवन-संघर्षकी उग्रता है। इस प्रकार ब्रिटिश भारतमें एक भारी लुटारू वर्ग पैदा हो गया है, जिसकी समता मध्य एशियामें नहीं मिलती। सन् १८९७ में तुर्किस्तानमें ३३,४२,००० निवासी फ्रान्ससे लगभग दुगुने क्षेत्रमें रहते थे, और ट्रान्सकास्पियामें, ब्रिटेनसे तिगुनेसे कुछ ज्यादा बड़े देशमें, केवल ८,३३,००० लोग फैले हुए थे। इसके अतिरिक्त, उनकी सुख-सुविधाका स्तर भी ऊँचा है। दुष्काल वहाँके लोग जानते भी नहीं और ये प्रदेश पृथक होनेसे हैजे और प्लेगसे भी लगभग सुरक्षित हैं। मौकेपर जाकर रूसी तरीकोंका अध्ययन करनेवाले भारतीय अधिकारीकी हैसियतसे मेरा विश्वास है कि दोनोंमें से प्रत्येक शक्ति अपने पूर्वी प्रजाजनोंका सामाजिक और राजनीतिक स्तर ऊँचा उठानेकी सचाईके साथ आकांक्षा रखती है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६–११–१९०३

४७. "ईस्ट रैंड एक्सप्रेस" और हम

ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोकी स्थितिके बारेमे हमारे विचारोकी तरफ हमारा सहयोगी बराबर ध्यान देता रहता है। इसे हम अपना सम्मान ही समझते है। हम यह भी मानते है कि भारतीयोकी बहुत-सी कठिनाइयोंकी जड़मे गलतफहमियाँ है और सयमके साथ विचार-विनिमयसे गलतफहमियाँ दूर भी हो सकती है। इसलिए हमारे सहयोगीने गत १४ तारीखके अकमें जो लिखा है उसका जवाब देते हुए हम उस प्रश्नपर फिर वापस आते हैं। सहयोगीने लिखा है कि पीटर्सबर्ग शहरमे लडाईसे पहलेकी अपेक्षा भारतीय परवानेदारोकी संख्या अब कुछ बढ गई है। हम इसे स्वीकार करते है, परन्तु जहाँतक स्पेलोनकेन जिलेसे सम्बन्ध है, हम अत्यन्त निश्चयपूर्वक कहते है कि वहाँ परवानोकी सख्यामें बहुत ही कम वृद्धि हुई है। इस जिलेमें जो भी भारतीय दूकानदार इस समय व्यापार कर रहे है वे अपनी अपनी जगहोमे दस-दस, बल्कि इससे भी अधिक, वर्षोसे व्यवसाय करते है। सहयोगीको हम यह भी बता दें कि उन्हें अपने परवानोको नये करवानेके लिए बहुत अधिक जद्दोजहद करनी पड़ी है। परन्तु ये तो इक्के-दुक्के मामले है और व्यापक रूपसे फैली हुई बीमारीके लक्षण-मात्र है। *एक्सप्रेसके* इन शब्दोंमें सारा मर्म आ जाता है:

> साफ-साफ बात कहना अच्छा होता है, इसलिए हम स्वीकार करते हैं कि सम्भव हो सके तो ट्रान्सवाल अपनी सीमाके अन्दर स्वतन्त्र एशियाइयोंको नहीं चाहता। उसका कारण, जैसा कि कुछ हलकोंमें खयाल मालूम होता है, यह नहीं है कि हम पढ़े-लिखे भारतीयोंको हीन मानते हैं; बल्कि यह है कि कानून-सम्मत शर्तोंपर गोरोंके लिए उनके सम्मुख होड़में टिकना असम्भव है। व्यापारियोंकी हैसियतसे नेटालमें सारे व्यापारपर उनका तेजीसे एकाधिपत्य होता जा रहा है। वे कुशल व्यापारी तो है ही; परन्तु इसके साथ अत्यन्त मितव्ययी भी हैं। इस कारण अपने तमाम प्रतिस्पर्धियोंके मुकाबलेमें वे हर चीज कम कीमतमें बेच सकते हैं। अगर कहीं उनके पैर यहाँ जम गये तो यहाँ भी वही हाल होगा। इसीलिए हम ईस्ट रैंडवासी लोग एशियाइयोंको व्यापारिक या सामाजिक दर्जा देनेके इतने विरोधी है। हमें तो सिर्फ एक प्रकारके एशियाईकी जरूरत है, और वह है अकुशल गिरमिटिया मजदूर। आत्मरक्षा प्रकृतिका पहला कानून है। उसका तकाजा है कि यहाँ अन्य सभी लोग वर्जित निवासी हों, भले ही यह कठोरता दिखाई दे। जिन लोगोंके अधिकार फिलहाल यहाँ हैं उनके अधिकारोंकी यथासम्भव रक्षा की जाती रहेगी, परन्तु यहाँ रियायतें तो बन्द होनी ही चाहिए।

भारतीयोके प्रति उपनिवेशमें जो दुर्भाव है, उसका असली कारण इसमें आ जाता है। इसके जवावमे बहुत कुछ कहा जा सकता है; परन्तु उसे हम थोडेसे-थोड़े शब्दोमें कहनेकी कोशिश करेंगे। ऊपरके कथनमें नेटालका उदाहरण दिया गया है; परन्तु अगर जरा भी गहराईसे उसकी जाँच की जायेगी तो उससे यह प्रकट हो जायेगा कि इससे तो उलटी ही बात सिद्ध होती है। नेटालमे भारतीय व्यापारी बड़ी सख्यामें जरूर है, परन्तु व्यापारका सर्वोत्तम भाग तो यूरोपीयोके ही हाथोमे है और आगे भी रहेगा। भारतीय व्यापारी जहाँ अपने गुजर-बसरके लिए नेटालमें अच्छी कमाई कर सके है, वहाँ उनमें से एकको भी अभी वह दर्जा प्राप्त नही हो सका

है, जो हारवे, ग्रीनेकर ऐंड कम्पनी — अथवा एस० बूचर ऐंड सन्सको, अथवा अन्य बड़े व्यापारी सस्थानोको प्राप्त है, यद्यपि कुछ भारतीय व्यापारियोने भी अपने व्यापारका प्रारम्भ उन्ही दिनो किया था, जिन दिनो इन पेढ़ियोने। वस्तुत हम खुद एक भारतीय व्यापारीका उदाहरण जानते है, जो अपने साथ पूंजी लेकर आया था। यहाँ उसने एक अव्यवसायी यूरोपीयको अपना साझीदार बना लिया। दोनो गहरे दोस्त बन गये, और आज भी दोनोके आपसी सम्बन्ध बहुत सन्तोषजनक है। फिर भी व्यापार शुरू करते समय जिस यूरोपीयके पास अपनी पूंजी भी नही थी, वह दौड़में अपने पुराने साझीको बहुत पीछे छोड़ गया है और अब उपनिवेशमे उसकी स्थिति प्रथम श्रेणीकी है। किन्तु इस घटनाकी व्याख्या बिलकुल स्पष्ट है। [भारतीय व्यापारीकी आदतें यूरोपीयके मुकाबले कम खर्चीली है; परन्तु उसमे यूरोपीय व्यापारीकी सगठनशक्ति, अंग्रेजी भाषाकी जानकारी और उसके यूरोपीय सम्बन्धोसे प्राप्त व्यापारिक लाभकी कमी सहज है।] हमारी रायमें भारतीय व्यापारीकी तरह किफायतशारी न होनेकी कमी यूरोपीय व्यापारी इन गुणोसे पूरी ही नही कर लेता, बल्कि उसको इनका और भी अधिक लाभ मिलता है। खुद भारतमे बड़े-बड़े भारतीय व्यापारी सस्थान है; परन्तु वहाँ बडी-बड़ी यूरोपीय पेढ़ियाँ इन गुणोसे ही उनका मुकाबला कर रही है। आज भी सबसे अधिक कमाई देनेवाले व्यापार ज्यादातर यूरोपीयोके ही हाथोमें है; यद्यपि भारतीयोकी योग्यता तथा साहसिकताको वहाँ पूरा-पूरा अवकाश प्राप्त है। इसलिए, चाहे दक्षिण आफ्रिका हो या अन्य कोई देश, भारतीय व्यापारियोने तो मध्यस्थ या आढ़तियोका ही काम किया है। हम यह स्वीकार करनेके लिए स्वतन्त्र है कि अपवाद रूपमे वे छोटे यूरोपीय दूकानदारोके मुकाबलेमे कही-कही सफलता प्राप्त कर सकते है; परन्तु वहाँ भी, जैसा कि सर जेम्स हलेटने कहा है, कुल मिलाकर यूरोपीय व्यापारी ही नफेमे रहते है; क्योंकि दूसरे क्षेत्रोमे उनकी साहसिकताके लिए खूब अवकाश रहता है। यदि भारतीय नेटालमे न आये होते तो जो यूरोपीय व्यापारी काफिरोके बीच व्यापार करनेवाले छोटे-छोटे दूकानदार बने रहते वे ही आज या तो थोकके बडे व्यापारी है, जिनके मातहत पचासो आदमी काम कर रहे है, या खुद ऐसे थोक व्यापारके संस्थानोमे लगे हुए है। आज यहाँ उनकी अपनी करमुक्त जायदादे है, और वे बेरिया [डर्बनमें धनीमानी और शौकीन लोगोके मुहल्ले] मे अपेक्षाकृत सुख-चैनकी जिन्दगी बिता रहे है। इसलिए हमारा खयाल तो यह है कि भारतीयों की सादगी और किफायतशारीका जरूरतसे ज्यादा तूल बाँधा गया है। परन्तु क्या इस विषयमे साम्राज्यकी दृष्टिसे कुछ भी कहनेको नही रह जाता? भलेके लिए हो या बुरेके, और भारतीय कितने ही छोटे क्यो न हो; परन्तु वे आखिर साम्राज्यके हिस्सेदार तो है ही। ऐसी सूरतमे उनकी योग्यता या मिहनत उन्हे जितनेका अधिकारी ठहराये, उतना मुनासिब हिस्सा क्या उन्हे देनेसे इनकार करना उचित है? हमारा सहयोगी चाहता है कि ट्रान्सवालमे भारतीय केवल गिरमिटिया मजदूरोकी हैसियतसे ही आयें, उससे ज्यादा अन्य किसी हैसियतसे नही। [आत्मरक्षा अवश्य प्रकृतिका पहला कानून हो सकता है, परन्तु हम नही मानते कि प्रकृति किसीको यह भी सिखाती है कि जिसकी सहायतासे वह ऊपर चढा हो उसकी हस्तीको ही मिटा दे।] [शुद्ध स्वार्थकी दृष्टिसे यह क्षम्य हो सकता है कि आप एक सम्पूर्ण प्रजातिके लिए उपनिवेशके दरवाजे बन्द कर दे। परन्तु प्रकृतिके किसी भी कानूनके साथ इस व्यवहारका मेल बैठाना बहुत मुश्किल मालूम होता है कि एक आदमीका दूसरेके स्वार्थके लिए उपयोग कर लिया जाये और जब उसकी जरूरत समाप्त हो जाये तब उस गरीबको ठोकर मारकर हटा दिया जाये।] परन्तु दक्षिण आफ्रिकाका वर्तमान सघर्ष उन लोगोके अधिकारोकी पूरी रक्षाके लिए है, जो दक्षिण आफ्रिकामे पहलेसे ही बसे हुए है। इस बातको हमारा सहयोगी स्वीकार करता है, परन्तु

साथ ही "यथासम्भव" जैसा सुरक्षित तथा संदिग्ध शब्द जोड़ देता है; पर यह तो इस बातपर निर्भर करेगा कि इस प्रश्नको किस दृष्टिसे देखा जाता है और यह "यथासम्भव" शब्द भारतीय समाजकी उचित आवश्यकताओंकी पूर्ति की हदतक जाता है या नहीं। हमारा खयाल है, पत्रकारकी हैसियतसे हमारी भाँति हमारे सहयोगीका भी कर्तव्य है कि हम लोकमतको इस तरह शिक्षित करें, जिससे इस कठिनाईको पार करनेका उत्तम मार्ग निकल सके।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६-११-१९०३

४८. श्री क्रेसवेलका बमगोला

श्री क्रेसवेल अभी कुछ पहलेतक 'विलेज मेन रीफ गोल्ड माइनिंग कम्पनी लिमिटेड' के प्रबन्धक थे, जिससे उन्होंने अब इस्तीफा दे दिया है और वह मंजूर कर लिया गया है। उन्होंने अपना इस्तीफा देते हुए कम्पनीके सेक्रेटरी श्री विलब्रोको जो लम्बा पत्र लिखा था वह जोहानिसबर्गके पत्रोंमें भी प्रकाशनार्थ भेजा है। जोहानिसबर्गमें बतनी श्रम-आयोगके सामने अपना चौंका देनेवाला बयान देते हुए उन्होंने जो खयाल पैदा किया था उसीकी पुष्टि इस लम्बे पत्रसे होती है। इस बयानमें उन्होंने अत्यन्त निश्चयात्मक रूपसे बताया था कि उस बड़े खान-निगमकी खानोंकी खुदाईके लिए गिरमिटिया एशियाई मजदूर लानेका प्रयत्न आर्थिक आवश्यकताकी अपेक्षा एक राजनीतिक चाल अधिक है। पाठकोंको याद होगा कि उस समय श्री क्रेसवेलने अपने कथनकी पुष्टिमें अपने नाम लिखा गया श्री टारबटका एक पत्र पेश किया था, जिसमें बताया गया था कि इन दिनों गोरे मजदूरोंसे काम लेनेका जो प्रयोग चल रहा है उसे अधिकांश खान-कम्पनियाँ पसन्द नहीं करतीं। यह पत्र पेश करनेके कारण ही श्री क्रेसवेलसे जवाब तलब किया गया था। श्री विलब्रो लिखते हैं: "आपके द्वारा श्री टारबटके २३ जुलाई १९०२ के व्यक्तिगत पत्रका प्रकाशन सचालकोंकी दृष्टिमें अक्षम्य है।" श्री क्रेसवेलके लिए यह सम्भव न था कि वे यह डंक सहकर चुप बैठ जाते। कम्पनीको लिखा वह लम्बा पत्र उसीका परिणाम था। श्री क्रेसवेलके प्रति किसीको भी सहानुभूति हुए बगैर नहीं रह सकती। सब कठिनाइयाँ सहकर भी उन्होंने अपनी खानोंपर गोरे मजदूरोंसे काम लेनेका प्रयोग सफलतापूर्वक किया है। वे इसे पूरे दिलसे पसन्द भी करते थे; परन्तु वे वस्तुत: अकेले पड़ गये। अधिक उत्पादन और अधिक मुनाफेकी जोरदार माँग पूरी करनेमें वे पिछड़ गये। जैसा कि हम इन कालमोंमें पहले अनेक बार लिख चुके हैं, हम तो यही कह सकते हैं कि इस विषयमें श्री क्रेसवेलने जो रुख ग्रहण किया है, आनेवाली पुश्तोंका लाभ उसीमें है। समय ही बताएगा कि उपनिवेशमें खान-उद्योगके तथाकथित विकासके लिए अगर एशियासे कभी गिरमिटिया मजदूर लाये गये तो यह एक गलत कदम होगा, जिससे आनेवाली पुश्तें दु:खी होंगी और इस योजनाके बनानेवालोंकी बेझिझक निन्दा करेंगी। श्री क्रेसवेलका त्यागपत्र तो एक छोटी और व्यक्तिगत बात है। इससे उन्हें आर्थिक कष्ट हो सकता है, या शायद न भी हो। परन्तु वहाँसे उनके हट जानेसे सुधारकोंका काम और भी कठिन हो जाता है। इस दृष्टिसे उनके हट जानेसे उन लोगोंकी बड़ी हानि हुई है, जो न केवल वर्तमान पीढ़ीके कल्याणके लिए चिन्तित हैं, बल्कि भावी पीढ़ियोंके हितोंका भी उतना ही खयाल रखते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६-११-१९०३

४९. क्लार्क्सडॉर्पका एशियाई "बाजार"

कुछ दिन पहले हमने क्लार्क्सडॉर्पकी एशियाई बस्तीके बारेमे लिखा था। उसके जवाबमें हमारे सहयोगी *क्लार्क्सडॉर्प माइनिंग रेकर्डने* जो बहुत ही संयत लेख लिखा है उसे हम हर्षके साथ अन्यत्र दे रहे है। इसमें निकायका यह आश्वासन है कि क्लार्क्सडॉर्पके ब्रिटिश भारतीयोके साथ असमानता और अन्यायका व्यवहार करनेकी उसकी इच्छा नही है। हम उसके लिए निकायके कृतज्ञ है। परन्तु हम यह कहनेकी अनुमति चाहते है कि सहयोगीने अपने लेखमें कुछ बाते खुद स्वीकार की है, जिनसे प्रकट है कि क्लार्क्सडॉर्पके ब्रिटिश भारतीयोकी स्थिति कितनी कठिन है और प्रस्तावित नये स्थानके बारेमें उनका मन्तव्य कितना उचित है। यह भी साफ तौरपर स्वीकार किया गया है कि प्रस्तावित स्थानके कमसे-कम कुछ हिस्सेको तो जिला-सर्जनके प्रतिवेदनमे भी बुरा बताया गया है। उस आपत्तिका यह कोई जवाब नही कि सारे स्थानकी एक साथ जरूरत नही होगी। अगर उसकी जरूरत नही है तो वह नक्शेमे शामिल ही क्यो किया गया था? अगर आवासी मजिस्ट्रेट ही कुछ नीची भूमिवाले बाड़े अर्जदारोको दे देते तो उन्हे कौन रोकनेवाला था? सरकारने तो इन बाडोके बँटवारेके सम्बन्धमे बहुत अधिक सत्ता अपने हाथोमे रख छोड़ी है। वह आग्रह कर सकती थी कि सबसे पहले निचले हिस्सोको ही निपटायेगी। अब भी हमारा खयाल यही है कि निकायके लिए ऐसा रुख अख्तियार करना और यह कहना ठीक नही कि एक बार स्थानका निश्चय हो जानेके बाद उसके हाथोमे कुछ नही रह जाता। आखिर स्थानोका चुनाव करनेमे उसका भी तो हाथ था ही। इसलिए हमें यह खयाल अवश्य होता है कि अगर जिला-सर्जनके प्रतिवेदनको पानेके बाद वह निचले हिस्सोको *बाजारकी* जमीनमें शामिल करनेका विरोध करता तो यह उसके लिए बहुत शोभाजनक होता। सहयोगी आगे लिखता है:

> **उल्लिखित स्थान शहरमें उपलब्ध एकमात्र स्थान है। अब केवल तीस बाड़े बचे हैं, जिनको अभी कब्जेमें नहीं लिया गया है; परन्तु किसी भी हालतमें एशियाई बस्तीके तौरपर उनका उपयोग नहीं किया जा सकता। वर्तमान बस्तीके पास शहरके उत्तर और पश्चिममें कुछ बाड़े जोड़े जा सकते थे; किन्तु उससे लगे हुए बाड़ोंके मालिक स्वभावतः इस कार्रवाईका विरोध करेंगे।**

अब, यह स्पष्ट रूपसे लाचारीकी स्वीकृति है और साथ ही इस बातकी भी कि निश्चित किया गया स्थान शहरसे बड़ी दूरीपर है। ब्रिटिश भारतीयोके लिए कोई स्थायी स्थान निश्चित करनेके सिद्धान्तको थोड़ी देरके लिए अगर अलग रख दिया जाये, तो हमारा खयाल है कि अगर निकाय कोई ऐसा उपयुक्त स्थान प्राप्त नही कर सकता, जहाँ ब्रिटिश भारतीय उतनी ही सुविधासे व्यापार कर सके जितनी सुविधासे वे शहरमें अबतक कर रहे थे, तो वह उनको जहाँ अभी वे है वही पडे रहने दे। परन्तु एक बार उन्हे अलग रखनेका सिद्धान्त स्वीकार कर लेनेके बाद अपने पड़ोसमे ब्रिटिश भारतीयोको रखनेपर आपत्ति करनेवाले लोग मिल ही जाया करेगे। तब क्या शहरी निकाय इसी तरह अपनी लाचारी बताकर ब्रिटिश भारतीयोको शहरोसे इतनी दूर फेंक देना चाहते है, जहाँ व्यापार करना उनके लिए असम्भव हो जाये? अंग्रेज स्वभावतः निहित स्वार्थोको छेड़ना पसन्द नही करते, और अपने विरोधीके साथ भी न्यायका व्यवहार

करना चाहते है। परन्तु ब्रिटिश भारतीय तो विरोधी भी नही है। वे तो सह-प्रजाजन है। इसलिए हमारी राय है कि जहाँपर उन्होने अपना व्यापार-व्यवसाय जमा लिया है वहाँसे उन्हें हटाकर, उनकी भलाईका विचार न करके, एक रेगिस्तान जैसी निर्जन जगहपर फेंक देना किसी भी प्रकार न तो उचित है और न न्याययुक्त। बस सारे प्रश्नका मर्म यही है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६-११-१९०३

५०. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेससे विनती

हमें जो पत्र मिले है, उनसे मालूम होता है कि अगले दिसम्बर महीनेमे मद्रासमें होनेवाली काग्रेस ब्रिटिश उपनिवेशोमें बसे हुए भारतीयोकी स्थितिपर विचार करेगी। इस खबरसे हमे धीरज बाँधना चाहिए और देखना चाहिए कि वहाँ क्या होता है। उपनिवेशोमे भारतीयोको होनेवाली तकलीफोके बारेमें भारतीय काग्रेस पिछले पाँच-छ सालसे आवाज उठा रही है और छुटकारा मिले, इस हेतु उसने प्रस्ताव[1] भी पास किये है, जिससे सरकारका और लोगोका ध्यान इस ओर जाये। इसके लिए उपनिवेशोमें रहनेवाले भारतीय इस सस्थाका उपकार मानते है और आशा करते हैं कि वह चिन्तापूर्वक इस विषयमें अपने विचार प्रकट करती रहेगी, ताकि परिणाम अच्छा निकले।

यह साल उपनिवेशोमें रहनेवाले भारतीयोके लिए बहुत महत्त्वका है। आस्ट्रेलियाके लश्कर[2] सम्बन्धी व्यवहारसे भारतकी जनताकी आँखें बहुत खुली है। इस देश (दक्षिण आफ्रिका) में भी हर तरफसे खुल्लमखुल्ला जुल्म बढने लगा है। केपमे जो प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम (इमिग्रेशन रिस्ट्रिक्शन ऐक्ट) बना, उसपर बगालके व्यापार-सघ (चेम्बर ऑफ कामर्स) ने वाजिब कदम उठाकर सरकारका ध्यान खीचा है। केप टाउन, जोहानिसबर्ग और डर्बनमे भारतीयोकी जो बडी सभाएँ हुईं, उनके विवरणसे भारतकी जनता परिचित है; लेकिन ऐसा मालूम होता है कि सरकार किसी उलझनमे पडी, है, और उसके कारण लॉर्ड मिलनर है। लॉर्ड मिलनरने श्री चेम्बरलेनको जो खरीता भेजा है, उसका असर हमारे खिलाफ बहुत हुआ है — अर्थात् जान पडता है कि लॉर्ड मिलनरकी सद्भावनाके कारण भारत-सरकारका कुछ ऐसा खयाल बन गया है कि कानूनोका अमल नरमीके साथ होता होगा, और भले आदमियोको कुछ भी तकलीफ नही होती होगी। यह मानना कितना गलत है, सो तो हम हमेशा बताते रहे है।

१८९७ में नेटालमें विधान बननेके बाद उससे होनेवाली परेशानियोकी चर्चा १९०२ तक चलती रही थी। लेकिन केप उपनिवेशमे नया प्रवासी-प्रतिबन्धक कानून बना, ट्रान्सवालमे *बाजार*-सम्बन्धी सूचना निकली, ऑरेंज रिवर कालोनी आँख मूँदकर अत्याचारपूर्ण कानून बनाती ही चली जा रही है नेटालमें नगरपालिकाओने ट्रान्सवाल जैसे कानून शुरू करनेकी माँग की है, और सरकारने गिरमिटिया मजदूरोके बारेमे नया कानून पास किया है, इसलिए स्थितिकी गम्भीरता बहुत बढ गई है, जिसकी ओर हम भारतके अपने भाइयोका ध्यान खास तौरपर खीचते हैं। अगर भारतकी सरकार एकदम जाग्रत होकर कडे कदम नही उठायेगी तो, हमें डर लगता है कि, नया साल शुरू होते ही यहाँकी भारतीय जनतामें हाहाकार मच जायेगा। यहाँतक सभावना

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४१४ और खण्ड ३, पृष्ठ २२८-३२।
२. ईस्ट इंडियन नाविक

है कि न जाने कितने लोग जो १९०३ के दिसम्बरतक अच्छे व्यापारी माने जाते रहे है, १९०४ के जनवरी महीनेमे दिवालिया अथवा भिखारी बन जायेंगे। आशका यह भी है कि ट्रान्सवालमें और उसी तरह नेटालमे भी १९०४ के जनवरी महीनेमें थोड़े-बहुत व्यापारियोको भी व्यापार करनेके सालाना परवाने नही मिलेंगे, और अगर ऐसा हुआ, तो जहाँ-तहाँ हाहाकार मच जायेगा। इसपरसे भारतके हमारे भाई देखेंगे कि समय बहुत नाजुक है, और उसे सँभालनेकी बड़ी जरूरत है। यहाँकी पुकार विलायत या भारततक पहुँचनेमे देर लगती है, और पहुँचती है, तो पूरे जोरसे नही। इस बातको ध्यानमें रखकर यदि भारतीय काग्रेस अपने कर्तव्यके अनुसार कड़ा विरोध करे और भारतकी सरकारके कान खोले, तो आशा है कि कुछ राहत मिलेगी। काग्रेस प्रस्ताव पास करे और फिर हरएक इलाकेके कुछ अगुआ लोग गवर्नरोसे प्रतिनिधिमण्डलोके रूपमे मिले, और एक प्रतिनिधिमण्डल खुद लॉर्ड कर्जनसे रूबरू मिलकर जनताकी भावना उनपर प्रकट करे, और साथ ही विनती करे कि वे तत्काल तार द्वारा ऐसा सन्देश भेजे, जिससे अत्याचारोकी रोक हो, तो हमे विश्वास है कि इस देशमें बढ़ते जानेवाले अत्याचारोकी रोक होगी और देरसे ही सही, पर भारतके लोगोंको इन्साफ मिलेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६-११-१९०३

५१. पत्र: दादाभाई नौरोजीको

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६, कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
नवम्बर ३०, १९०३

सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी,
वाशिंगटन हाउस,
७२, एनर्ले पार्क
लदन, एस० ई०, इग्लैड

प्रिय महोदय,

गत सप्ताह सरकारसे एक पत्र मिला था, जिसमें कहा गया था कि वह विधान परिषदसे *बाजार*-सम्बन्धी सूचनामें इस आशयका संशोधन करनेके लिए कहेगी कि जो लोग लड़ाई आरम्भ होनेपर परवाने लेकर या परवानोके बिना व्यापार कर रहे थे, वे *बाजारों* या बस्तियोके बाहर व्यापार करनेके अधिकारी होंगे। इससे कुछ राहत मिलेगी, किन्तु बहुत कम। समस्त वर्तमान परवानोके सम्बन्धमें आश्वासनसे कम किसी चीजसे *न्यूनतम न्यायके* उद्देश्य पूरे नही होते। इसके अतिरिक्त, "लड़ाई आरम्भ होनेपर व्यापार" शब्द भी कई उलझनें पैदा करेंगे। उदाहरणके लिए, उनका क्या होगा जो १८९९ के आरम्भमें या उससे पूर्व व्यापार तो करते थे, किन्तु ११ अक्तूबरको ट्रान्सवालमें न तो मौजूद थे और न व्यापार ही कर रहे थे? यद्यपि, मुझे यह प्रतीत होता है कि दोनोका एक समान ही खयाल रखा जाना चाहिए।

वस्तुतः जिस व्यक्तिने लड़ाई आरम्भ होनेसे ठीक दो मास पूर्व व्यापार करना आरम्भ किया हो वह उनकी अपेक्षा बहुत कम अधिकारी है जो ट्रान्सवालमें दो वर्षसे व्यापारमें लगे थे; किन्तु युद्धके आरम्भ होनेपर व्यापार नहीं कर रहे थे। जैसा मैं कह चुका हूँ, कि इन तथा-कथित *बाजारोंमें* किसी भी वर्तमान परवानेदारके लिए अपना व्यापार चलाना नितान्त असम्भव है। अत मैं यह विश्वास करता हूँ कि आप श्री ब्रॉड्रिक या श्री लिटिलटनसे मुलाकात कर सकेंगे और इस तारके अनुसार कार्य आरम्भ कर देंगे।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० २२५१) से।

५२. पत्र : कांग्रेसको

[जोहानिसबर्ग]
दिसम्बर १, १९०३

सेवामें,
माननीय सचिवगण
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
मद्रास

प्रिय महोदयगण,

मैं बुकपोस्ट (रजिस्टर्ड) से उस बयानकी[1], जो यहाँके भारतीयोंने गत वर्ष श्री चेम्बरलेनको उनके डर्बन आनेपर दिया था, और उस प्रार्थनापत्रकी[2], जो स्थानीय विधानसभाको प्रवासी-विधेयक स्वीकार करनेके विरोधमें दिया था, कुछ प्रतियाँ भेजता हूँ।

बयानसे आप नेटालमें १९०२ के अन्ततक भारतीयोंपर लगाई गई निर्योग्यताओंकी उचित कल्पना कर सकेंगे। तभीसे नेटाल ट्रान्सवाल द्वारा समुपस्थित उदाहरणके अनुकरणका प्रयत्न कर रहा है। मैं यहाँकी एक विशाल सभाकी कार्रवाईका[3] भी उल्लेख कर दूं जो *इंडियन ओपिनियनमें* छपी थी।

प्रवासी विधेयक हमारे विरोधके बावजूद दोनों सदनोंसे पास हो गया है और उसपर राजकीय स्वीकृति भी प्राप्त हो चुकी है।

इंडियन ओपिनियन आपको अंग्रेजीमें ताजीसे-ताजी खबरें और गुजरातीमें कुछ सुझाव भी देता है। मुझे ज्ञात हुआ है कि उसके मालिकने आपको पत्रके सब अंकोंकी कुछ प्रतियाँ भेजी हैं।

यदि भारत-सरकार मजबूत रुख इख्तियार नहीं करेगी, और वह भी तत्काल, तो मुझे भय है, नव वर्षमें दक्षिण आफ्रिकामें बहुत-से भारतीय बरबाद हो जायेंगे।

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ २८६।
२. वही खण्ड, पृष्ठ ३७०।
३. देखिए *इंडियन ओपिनियन*, ४-६-१९०३।

आशा है, आपकी कमेटी स्थितिकी गम्भीरताका अनुभव करेगी और जल्दी ही राहत प्राप्त करनेका प्रयत्न पूरे उत्साहसे करेगी।

आपका विश्वासपात्र,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४१०६) से।

५३. बम्बईके लॉर्ड बिशप और भारत

अपने उपनिवेशवासी पाठकोके लाभार्थ हम नीचे डॉक्टर मैकार्थरके उस विदाई-भाषणका कुछ अश दे रहे है, जो बम्बईमे पाँच वर्षसे कुछ ऊपर बिशपके पदपर रहनेके बाद इग्लैंडके लिए रवाना होनेसे पहले, उन्होने बम्बईके टाटा मैशनमे दिया। डॉ० मैकार्थर भारतमे बहुत अधिक नही रहे। उसमे भी बीमारीके कारण उन्हे बीचमें बाहर जाना पडा था। किन्तु इस थोड़े समयमे भी उन्होने वहाँके तमाम वर्गोका प्रेम प्राप्त कर लिया था। और यद्यपि वे इग्लिश चर्चके प्रमुख थे तथापि हिन्दुओ, मुसलमानो, पारसियो और उन तमाम जातियोको, जो उनके धर्मको नही मानती, अपनी तरफ आकर्षित करनेमें उन्हे कोई कठिनाई नही हुई (यह काम किसी प्रकार आसान नही था)। उनकी इस असाधारण सफलताका रहस्य, जैसा कि न्यायमूर्ति श्री चन्दावरकर[1] ने अपने स्वागत-भाषणमे कहा था, उनकी नम्रताकी भावना है, जो उनकी प्रत्येक प्रवृत्तिको प्रेरित करती रही है। विद्वान न्यायाधीशने आगे कहा:

> इसका कारण उनकी समझमें यही था कि सबसे पहले बिशप मैकार्थरके अन्दर नम्रताका असली धार्मिक गुण प्रचुर मात्रामें है। उन्होंने इसे धार्मिक गुण बताया; परन्तु हाल ही में उन्होंने कहीं पढ़ा था कि नम्रता इस युगकी वैज्ञानिक वृत्तिका भी प्राण है। इस तरह नम्रता एक ऐसा तत्व है जिसे विज्ञान और धर्म दोनों गुण कहते हैं। और बिशप मैकार्थरके पास यह गुण प्रचुर मात्रामें है।

बिशप मैकार्थरने इसका जवाब देते हुए नीचे लिखे सारगर्भित शब्द कहे:

> श्री मेहताने बिशपके पदके बारेमें अपने विचार बड़ी योग्यतापूर्वक प्रभावोत्पादक भाषामें प्रकट किये है। मुझे लगता है कि भारतमें बिशपका स्थान या तो बहुत नगण्य और छोटा है, अथवा फिर वह अनेक प्रकारसे बहुत बड़ा और भव्य है। यह बात उसके बारेमें व्यक्तिकी अपनी कल्पना और उसके प्रति रुखपर निर्भर करती है। जब मै भारतमें आया तब मेरे मनमें बड़ी झिझक और चिन्ता थी। और इस महान पदका मै किस प्रकार निर्वाह कर सकूंगा इसके बारेमें, अपने प्रति वास्तवमें आत्मविश्वासका अभाव अनुभव कर रहा था। भारतमें बिशप बनकर आनेवाले किसी व्यक्तिके प्रति भारतीयोंका रुख क्या होगा, इसका भी मै अन्दाजा नहीं लगा सकता था। . . . परन्तु भारतीयोंके रुखने मेरी सारी चिन्ताओंको भगा दिया और मै अनुभव करने लगा कि भारतीयोंके

१. सर एन० जी० चन्दावरकर प्रमुख शिक्षा-शास्त्री, समाजसुधारक और बम्बई उच्च न्यायालयके न्यायाधीश थे। सन् १९०० में कांग्रेसके लाहौर अधिवेशनके सभापति हुए थे।

बीच काम करनेका एक सुन्दर और अनूठा अवसर मेरे सामने है। . . . भारतीयोके मानसका अध्ययन करनेमें मुझे अधिकसे-अधिक आनन्द आने लगा। भारतीयोके मानस और अनुभूतिके कुछ अंग ऐसे है जिनके प्रति मेरे हृदयमें अत्यधिक आदर है। भारतीयोंकी बुद्धि अत्यन्त तीव्र, सूक्ष्म और सुसंस्कृत है। इससे उत्तम कोटिके भारतीय कैसे होते है इसका परिचय हो जाता है। फिर उनकी आत्मानुशासन और स्वावलम्बनकी वृत्ति भी अत्यन्त अद्‌भुत है। इसके अतिरिक्त उनमें एक गहरी और सच्ची धार्मिक सहज-बुद्धि भी होती है। मेरा खयाल है कि इन विशेषताओके कारण मानव जातिके भविष्य-निर्माणमें भारत बहुत बड़ा योग दे सकता है। मै उन लोगोंमें से हूँ जो विश्वास करते है कि कुछ अच्छी और बुनियादी बातें ऐसी है जो सभी धर्मोमें पाई जाती है; और संसारके सभी महान धर्मोमें अच्छे नतीजे देनेकी क्षमता है। मै भारतके जिन धर्मोके सम्पर्कमें आया उन सभीके उत्तम फल भी मैंने देखे। आत्माकी आकांक्षाओको प्रकट करने तथा अध्यात्म-जगतके ऊँचे प्रदेशोंमें मार्गदर्शन करनेकी क्षमताएँ इन धर्मोमें है। और मुझे लगता है कि इन सब धर्मोका आचरण मनुष्योको इन शक्तियोंके प्राप्त करनेमें मदद करता है। इसलिए इनकी त्रुटियोके बारेमें लोगोंका चाहे जो खयाल हो यह मानना ही पड़ेगा कि इन धर्मोमें ऐसी शक्ति और क्षमता जरूर है। तब कोई संकीर्णता और अश्रद्धाके साथ उनकी आलोचना करनेकी बात कैसे सोच सकता है? मेरी समझमें धर्मान्तर करानेवालेका काम मैंने यहाँ कभी किया ही नहीं। मैंने कभी किसी पढ़े-लिखे पुरुष या स्त्रीसे अपने धर्मकी शरण लेनेके लिए भी नहीं कहा। . . . यह कल्पना गलत है कि अंग्रेज भारतमें इसलिए आये है कि उसकी मददसे वे अपना कोई स्वार्थ-साधन करें। इसमें किसी भी प्रकारके स्वार्थ-साधनका हेतु नहीं है। अगर भारतकी सेवा, उसके सामाजिक जीवनको प्रगतिशील बनाना और संसारके कल्याण-साधनमें वह जिस-किसी प्रकार भी उपयोगी हो सकता है उसमें उसकी सहायता करना अंग्रेजोंका उद्देश्य नहीं है तो उन्हें यहाँ नहीं रहना चाहिए। अगर अंग्रेजोंको इसमें जरा भी संदेह हो कि वे इस देशका भला नहीं कर रहे है तो उन्हें यहाँ सत्ताधारी बनकर रहनेका कोई अधिकार नहीं है। वे यहाँ धन और सत्ता प्राप्त करनेके लिए नहीं आये है। यहाँ तो वे न्यासी (ट्रस्टी) है। यहाँपर उनका काम और धंधा यह है कि वे आनेवाले वर्षोंमें भारतीयोंको ऐसा महान अवसर प्रदान करे, जिससे वे भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक वैभव प्राप्त कर सकें और उसके द्वारा वे मानवताकी सेवा कर सकें, जिसका मुझे विश्वास है।

यह तनिक लम्बा उद्धरण हमने इसलिए दिया है कि हमारे खयालसे बिशपके शब्द काफी प्रभावशाली है — उनके पद और उनके अपने निजी महत्त्वके कारण भी। उनका सारा भाषण और सभाकी कारंवाई मनन करने लायक है — खास तौरपर दक्षिण आफ्रिका जैसे देशमें, जहाँ भौतिक महत्त्वाकाक्षाओ और स्वार्थलिप्साने मनुष्यके मानसपर इतना अधिकार कर रखा है। डॉ० मैकार्थरके विचारोकी विशालता, उदात्तता और नम्रताका हमारे मनोमें लवलेश भी हो तो जीवन आजकी अपेक्षा कही अधिक सह्य बन सकता है। हमारे यूरोपीय मित्रोके लिए ये शब्द विशेष रूपसे स्वागत करने योग्य है, क्योकि ये उनके अपने धर्माचार्यके मुखसे निकले है; और ब्रिटिश भारतीयोके प्रति सही रुख क्या हो सकता है उसका निर्णय करनेमें इनसे

बड़ी मदद मिल सकती है। वे अवश्य अपने हितोका ध्यान रखे और उनकी रक्षा करें किन्तु यदि वे बिशप मैकार्थरकी उदारताको अपना सके तो उन दो समाजोके मतभेद मिटनेमें बड़ी सहायता मिले, जिन समाजोको प्रकृतिने एक झडेके नीचे लाकर खडा कर दिया है। मनुष्य तब तक वास्तवमे सभ्य नही बन सकते, जब तक कि वे अपनी सभ्यता और भलाईमे जीव-मात्रको शामिल नही कर लेते। और इस प्रश्नपर हम धार्मिक, वैज्ञानिक अथवा राजनीतिक—चाहे जिस दृष्टिसे विचार करें—इसमे कोई शक नही कि बिशपने तत्त्वकी बात कही है। वह सबके सँजोकर रखने लायक है। और जैसाकि हमने अखबारोमें पढा है, अगर एक आदमी पाँच बरसोके थोड़े-से समयमे दो जातियोको पहलेकी अपेक्षा अधिक नजदीक लानेकी दिशामें इतना अधिक काम कर सका है तो कल्पना कीजिए कि अगर यह वृत्ति एक झडेके नीचे रहनेवाली समस्त जनताके मनोमे फैल जाये तो उसका कितना कल्याणकर परिणाम हो सकता है? इमर्सनने कहा है, संसार अधिकाशमे सहिष्णुता और समझौतेके आधारपर ही चल रहा है, इसमे कोई शक नही कि अभीष्ट अवस्थाको प्राप्त करनेके लिए प्रत्येक पक्षको कुछ देना और कुछ लेना पड़ता है। हमारी कामना है कि बिशपका यह भाषण अधिकसे-अधिक पाठकोके हाथोमे पहुँचकर उनपर अच्छा प्रभाव डाले।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३–१२–१९०३

५४. ट्रान्सवालके उपनिवेश-सचिव

श्री डब्ल्यू० ई० डैविडसनके त्यागपत्र दे देनेपर उनके स्थान पर नये उपनिवेश-सचिव श्री पैट्रिक डंकनकी नियुक्तिकी घोषणा सरकारी *गज़टमें* की गई है। ट्रान्सवालके हमारे देश-भाइयोको इस नियुक्तिमे कोई दिलचस्पी न हो ऐसा नही है। हम नही जानते कि उन्हे इस परिवर्तनपर बधाई दे या नही। क्योकि एशियाई प्रश्नके बारेमे श्री डकनके रुखका हमे कुछ पता नही है। इस समय एशियाई विभाग सीधा उपनिवेश-सचिवके मातहत है, जिन्होने यह काम अपने सहायक श्री डब्ल्यू० एच० मूअरके सुपुर्द कर रखा है। इसलिए हम इन माननीय सज्जनको याद दिलानेका साहस करते है कि उनके हाथोमें एक अत्यन्त पवित्र काम सौंपा गया है, अर्थात् वे एक ऐसी अल्पसख्यक कौमके हितोके सरक्षक है जिसे एक शक्ति-शाली बहुसख्यक कौमकी दुर्भावनासे सघर्ष करना पड रहा है। आजका जमाना आगे चलकर ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोकी स्थितिको नया मोड देनेवाला सिद्ध होगा। एशियाई-विरोधी कानूनो और *बाजार*-सूचनाओसे सम्बन्धित अनेक प्रश्नोपर उन्हे अपने निर्णय देने होगे। अत. सामने पेश होनेवाले तमाम पेचीदा प्रश्नोको सुलझानेके लिए उन्हे अपनी सारी शक्ति और सिद्धान्त-निष्ठासे काम लेना होगा। यदि साथ ही वे थोड़ीसी सहानुभूति और सहृदयता भी इनमें जोड़ दें तो हमे निश्चय है वे अपने आपको ट्रान्सवालके भारतीयोकी कृतज्ञताका पात्र बना लेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३–१२–१९०३

५५. व्यापार-संघ और युद्ध-क्षतिका मुआवजा

जोहानिसबर्गके अखबारोंमें यह खबर छपी है कि सरकार बड़ी पेढियों या कम्पनियोंको, चाहे वे ब्रिटिश प्रजाजनोंकी हो या अन्यकी, मुआवजा देनेसे इनकार-सम्बन्धी अपने निर्णयपर अब भी पुनर्विचार करनेसे इनकार कर रही है। सर आर्थर लालीके इस कार्यको व्यापार-संघके अध्यक्ष श्री जॉर्ज मिचल विश्वासघातके समान समझते है। वे कहते है कि श्री चेम्बरलेनने निश्चित रूपसे यह वचन दिया था कि जिन-जिनको भी लड़ाईमें नुकसान हुआ है, उन्हे मुआवजा दिया जायेगा। इसलिए उनका खयाल है कि सरकारको छोटी और बडी पेढियोंके बीच भेद करनेका कोई अधिकार नही है। हम इस विचारसे अपनी सहानुभूति प्रकट करना चाहते है। आखिर छोटी और बड़ी पेढ़ियोंके बीच जो भी भेद किया जायेगा वह मनमाना और पूर्णत: अवैज्ञानिक होगा। और जिन्हे व्यापारका थोड़ा भी ज्ञान है वे आसानीसे समझ सकते है कि जो पेढ़ियाँ बड़ी दिखाई देती है उनको, सभव है, दी जा सकनेवाली हर मददकी जरूरत हो; क्योकि उनके कामका फैलाव बहुत होता है। और ऐसी काफी पेढ़ियाँ होगी जिनपर इस लड़ाईका असर उन छोटी पेढियोंकी अपेक्षा बहुत अधिक गम्भीर हुआ हो, जिनका कारोबार छोटा होनेसे नुकसान भी थोड़ा ही होता है। फिर हम अपने निजी अनुभवसे भी जानते है कि छोटी पेढियाँ बगैर मुआवजा मिले भी अपने कर्ज देनेवालोंकी माँगोका सफलतापूर्वक मुकाबला कर सकी है। परन्तु जिन्हें अपनी साख बचानी है वे ऐसा नही कर सकतीं। इसलिए उनपर दोहरी मुसीबत आई है। अनेक कम्पनियोंने अपने साहूकारोंकी ब्याज-सहित रकम अदा की है। और अब उनके सामने सरकारका निर्णय है कि उन्हे उनके हकका मुआवजा नही दिया जायेगा। श्री मिचलने यह धमकी दी है कि वे इंग्लैंडकी सरकार तथा ब्रिटिश ससदतक अपनी पुकार भेजेंगे। परन्तु हमारा खयाल है कि अगर यहाँकी सरकार इस माँगपर अनुकूलतापूर्वक विचार करनेके लिए राजी नही है, तो इंग्लैंडकी सरकारसे दरखास्त करके भी लाभकी बहुत कम सम्भावना है। फिर भी हमारी हार्दिक कामना है कि व्यापार-संघको उसके प्रयत्नोंमें यश मिले और वह इंग्लैंडकी सरकारके सामने अपनी माँगका औचित्य सिद्ध कर सके।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३-१२-१९०३

५६. श्रम-आयोगका प्रतिवेदन

श्रम-आयोगका प्रतिवेदन प्रकाशित हो गया है। फिलहाल हम श्री क्विन और श्री व्हाइट-साइडके अल्पसख्यक प्रतिवेदनपर ही विचार करना चाहते है। हम जानते है कि ये सज्जन बडी कठिन लड़ाई लड रहे है। फिर भी हमे यह कहना चाहिए कि उनके निर्णय न्यायपूर्ण है; इसलिए नही कि उन्होने अपने कथनकी पुष्टिमे कुछ आँकडे या, अपने मन्तव्योका समर्थन करनेके लिए, बहुत-से गवाह पेश किये है; बल्कि हमारा खयाल है कि, उनकी पुष्टिके लिए ऐसी किन्ही चीजोकी जरूरत ही नही है, क्योकि उनके कथन लगभग स्वयसिद्ध सत्य है। जो स्वार्थ और दुर्भावसे अन्धे नही है, उन्हे इन दो आयुक्तोकी निम्नलिखित राय माननेमे कोई आपत्ति नही होगी:

> **हमारी राय है कि जो लोग इस उपनिवेशमें स्थायी रूपसे नहीं बसना चाहते और जो इस उपनिवेशके स्थायी वैभव अथवा भावी परिणामोंका बगैर विचार किये आज ही अपने उद्योगका विस्तार करना चाहते है, उनकी बातोंकी बहुत सावधानीसे जाँच करके ही उद्योगके लिए आवश्यक वतनी मजदूरोंकी निश्चित संख्या तय की जा सकेगी, इसके बगैर नहीं।**

गवाहियोका जिन्होने थोड़ा भी अध्ययन किया है उन्हें यह समझनेमे कठिनाई नही होगी कि ये शब्द कितने यथार्थ है। फिर उनकी "आवश्यकताओ" की परिभाषा भी हमारी रायमे आदर्श है। इसके बाद इन "आवश्यकताओ" की पूर्तिके लिए देशमे पर्याप्त मजदूर है या नही यह जाननेके लिए हजारो प्रश्न करनेकी कोई जरूरत नही रह जाती। आयुक्त आगे कहते है:

> **इसलिए हम आवश्यकताओंका यह अर्थ लेते है कि उत्पादन और व्ययकी दृष्टिसे लड़ाईसे पहले ट्रान्सवालके उद्योग जिस अच्छी अवस्थामें थे उनको उस हालतमें लानेके लिए तथा इस उपनिवेशके गोरे और रंगदार दोनों प्रकारके निवासी किस प्रकार वैभव-शाली हो सकते हैं इस बातको ध्यानमें रखते हुए इन उद्योगोंका अधिकसे-अधिक विस्तार करनेके लिए कितने मजदूरोंकी जरूरत होगी।**

यही सारी परिस्थितिका मर्म है। अगर पूंजीपतियो और केवल वर्तमान पीढ़ीके लाभके लिए उपनिवेशका शोषण करके उसे वैभवशाली बनाना है तो इसमे कोई शक नही कि आयोगके बहुसख्यक सदस्योका प्रतिवेदन पूर्णत उपयुक्त है। परन्तु यदि उपनिवेशका विकास क्रमश करना है तो इसमे रत्तीभर भी सन्देह नही कि उपनिवेशके अन्दर ही जितने और जैसे मजदूर मिल सकें उनसे उसे सन्तोष मानकर काम चलाना चाहिए। अस्वाभाविक तरीकोकी मददसे बनावटी तौरपर लाई गई वृद्धि और स्वाभाविक क्रमिक विकास इन दोनोमे जमीन-आसमानका अन्तर होता है। पहली वस्तु अस्वाभाविक परिस्थितियोकी उपज होगी, देखनेमे सुन्दर और लुभावनी होगी, परन्तु परिणाममे हलाहल। दूसरी चीज निश्चय ही देखनेमे इतनी लुभावनी नही होगी, परन्तु उसका फल स्थायी लाभ पहुँचानेवाला होगा। प्रयत्न करके गिरमिटिया मजदूरोके हमलेको रोकना सभव होगा या नही, इसमे हमे सन्देह है, तथापि हम यह कहे बगैर नही रह सकते कि श्री क्विन और श्री व्हाइटसाइडने अपने कर्तव्यका पालन निर्भयतापूर्वक कर दिया है, जिसके लिए वे हार्दिक बधाईके पात्र है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३–१२–१९०३

५७. ट्रान्सवालमें एशियाइयोंका संरक्षक

प्रिटोरिया स्थित एक सवाददाताने हमारे पास एक छपा हुआ फार्म भेजा है जिसपर सहायक उपनिवेश-सचिव श्री डब्ल्यू० एच० मूअरके दस्तखत है और तारीख ५ नवम्बर पडी है। इसमें प्रिटोरियामें रहनेवाले तमाम एशियाइयोको सूचित किया गया है कि,

> प्रिटोरियाके एशियाई *बाजारमें* जमीनोंके लिए तारीख १ जनवरी १९०४से लेकर इक्कीस वर्ष अथवा इससे कम अवधिके लिए जो पट्टे लेना चाहें उन्हें अपनी अर्जियाँ तारीख ३० नवम्बर १९०३की दोपहरतक एशियाइयोंके संरक्षक श्री चैमनेके पास दे देनी चाहिए, जो अर्जियोंपर विचार करके जमीनोंका वितरण करेंगे।

इसके बाद वे शर्तें है जिनके आधारपर विचार और वितरण होगा। अपने पिछले अंकोमें हम बता चुके है कि एशियाइयोको जबरदस्ती अलग बसाने और इन *बाजारोंके* लिए चुने गये स्थानोके बारेमे हम अपने विचार प्रकट कर चुके है। प्रिटोरियाके *बाजारोंके* बारेमें भी वही बात लागू होती है। यह पृथक बस्ती कोनेमें एक तरफ है और उसके तथा शहरके बीच एक नाला पडता है। भारतीयोका सारा व्यापार बहुत दूर प्रिन्सलू स्ट्रीटमें केन्द्रित है। वहाँसे अपने कारोबारको उठाकर इस बस्तीमें जाना अपने हाथ अपने पाँवपर कुल्हाड़ी मारना है। परन्तु आज प्रश्नके इस पहलूपर नही, हम श्री चैमनेके पदपर कुछ कहना चाहते है। हमें बताया गया है कि उन्हे भारतका बडा विशाल अनुभव है। उनके विचार उदार है और जिनका उन्हे सरक्षक नियुक्त किया गया है उनके प्रति उनके हृदयमे सहानुभूति बहुत बड़ी मात्रामें है। सबसे पहले तो हम यह बता दें कि इस पदका नाम हमें बहुत अच्छा नही लगता। उससे हमे गिरमिटिया मजदूरीसे सम्बन्धित गंध आती है। और दक्षिण आफ्रिकामें तो इस पदका अर्थ यही लगाया जाता है कि नेटालमें जिस प्रकार गिरमिटिया मजदूरोके हितोंकी देखभाल करनेवाला अधिकारी होता है उसी तरहका यह भी कोई अधिकारी होगा। परन्तु हम नामपर भी नही झगड़ना चाहते। मुद्देकी बात तो यह है कि क्या श्री चैमने भारतीयोको सन्तोष हो, इस प्रकार अपना काम कर रहे है? अब अगर हमारे सवाददाताका कहना सही है तो श्री चैमने भारतीयोके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करनेकी इच्छा रखते हुए भी ऐसा नही कर सकेंगे। क्योकि उन्हे कोई स्वतन्त्र सत्ता नही है। एशियाई मुहकमेका सम्पूर्ण प्रबन्ध और संचालन उपनिवेश-सचिवके हाथोमे है और श्री चैमनेको केवल उनके हाथके नीचे काम करना है। अगर बात यही है तो हमें यह कहना पडेगा कि हालत बडी अजीब है। नेटालमें प्रवासियोके संरक्षकके हाथोमें भी कही अधिक सत्ता है और इस पदका वहाँ वजन और प्रभाव है। वहाँ वह गवर्नरके प्रति जिम्मेदार है; परन्तु प्रिटोरियामे काम दूसरे ढंगसे होता है। एक भले आदमीको सरक्षक तो बना दिया, किन्तु उसे काम करनेमें पहलका अधिकार नही दिया गया। अगर हमे गलत जानकारी मिली है तो सरकारने उनके लिए जो कानून और नियम बना दिये है उनका तनिक भी उल्लघन किये विना मनुष्य-मनुष्यके बीच सम्मानपूर्वक न्याय करनेका सुवर्ण अवसर श्री चैमनेके सामने उपस्थित है। रास्ता चलता आदमी भी एक निगाहमें जान सकता है कि जिन लोगोके पास आज *बाजारोंसे* बाहर व्यापार-व्यवसाय करनेके परवाने है ऐसे सैकड़ो ब्रिटिश भारतीयोको इस वर्षके अन्तमें उन बस्तियोमें भगा देना बहुत बड़े कलककी बात है।

बहुत धीरजके साथ इस प्रश्नकी जाँच होनी चाहिए। और हमे तो जरा भी सन्देह नही कि यूरोपीयोंका विरोध मोल लिये बिना मामला शान्तिके साथ सुलझ सकता है। अगर श्री चैमनेके हाथोमे सत्ता है तो क्या वे इस अवसरके अनुरूप काम करेगे? अगर उनके हाथोमे यह सत्ता नही है तो क्या सरकार भारतीयोके सामने यह निरर्थक नाम और पद झुलाते रहना बन्द करनेकी कृपा करेगी?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३-१२-१९०३

५८. एक अपील[1]

कोर्ट चेम्बर्स
जोहानिसबर्ग
दिसम्बर ७, १९०३

सेवामे,
सम्पादक
लीडर

महोदय,

कुछ भारतीय व्यापारियोकी ओरसे, जिनकी किस्मत इस वर्षकी सूचना ३५६ से सम्बन्धित सरकारके निर्णयपर लटक रही है, मै दो शब्द कहना चाहता हूँ। मुझे विश्वास है इसे प्रकाशित करके आप अवश्य मुझे अपने सौजन्यका लाभ उठाने देगे।

प्रस्तुत सूचनाका तकाजा है कि इस वर्षके अन्ततक सारे भारतीय *बाजारोंमें* चले जायें और वही व्यापार करे या रहे। तथापि वह उन लोगोको इससे बरी करती है जिनके पास लड़ाई शुरू होते समय *बाजारों* और पृथक बस्तियोके बाहर व्यापार करनेके परवाने थे। कुछ एशियाइयोको निवासके बारेमे अपवाद-स्वरूप बरी रखा जा सकता है, इसका हम इस समय जिक्र नही करेगे, क्योकि यहाँ वह प्रश्न अप्रस्तुत है। सभी जानते है कि लडाईसे पहले बहुत-से भारतीय बिना परवानोके पृथक बस्तियोसे बाहर व्यापार कर रहे थे। ब्रिटिश मन्त्रालय (डाउनिंग स्ट्रीट) के आदेशानुसार ब्रिटिश एजेटकी छायाके कारण वे ऐसा कर पा रहे थे। अर्थात्, सरकार ऐसे व्यापारियोंका अपवाद करनेकी जरूरत मानती है, जिनके पास परवाने नही थे, परन्तु जो सिद्ध कर सकते है कि वे लड़ाई छिड़नेके समय पृथक बस्तियोसे बाहर व्यापार कर रहे थे।

एक वर्गके लोग और रह जाते है, जो लड़ाईके पहले व्यापार तो नही करते थे, परन्तु जिन्हे शरणार्थी होनेके नाते पिछले वर्ष बस्तियोसे बाहर व्यापार करनेके परवाने ब्रिटिश अधिकारियोने दे दिये थे और जिनपर ऐसा करते समय किसी प्रकारकी शर्तें या बन्दिशे नही लगाई गई थी। इनमे से अधिकाश लोग जोहानिसबर्गमे है। मेरी नम्र राय है कि इनके निहित स्वार्थोंकी भी उसी प्रकार रक्षा की जानी चाहिए, जैसे कि उन अन्य अधिक भाग्यशाली भाइयोकी जो लडाईसे पहले व्यापार करते थे। इनका व्यापार भी काफी अच्छा जम गया है। मुझे यह कहनेकी

१ *ट्रान्सवाल लीडरसे* प्रकाशित।

जरूरत नही है कि इनके लिए अपने व्यापारको पृथक वस्तियोंमें ले जाना, जहाँ कोई आवादी नही है और जहाँ चीजें खरीदनेके लिए लोगोको आकर्षित नही किया जा सकता, असंभव है। इन्हे वहाँ जानेके लिए मजबूर करनेका अर्थ इनके मुँहका कौर छीनना है और यह काम ट्रान्सवालकी जनताके नामपर किया जा रहा है। मै कदापि नही मान सकता कि इस देशके वहुसख्यक लोग ऐसी (जिस कृतिकी धमकी दी जा रही है उसके वर्णनमे सही शब्दका प्रयोग करनेपर अगर मुझे क्षमा किया जाये) अमानुषता कर सकते है। मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ और मेरे पास इसके लिए अच्छे सवूत है कि जोहानिसवर्गके वहुत-से व्यापारियोने जव सरकार-से पिछली गणराज्य-सरकारके एशियाई-विरोधी कानूनोपर अमल करनेका आग्रह किया था तव उनका उद्देश्य यह कदापि नही था कि, जिनके पास कानूनके अनुसार परवाने है ऐसे वास्तविक शरणार्थियोको किसी प्रकार हानि पहुँचे। वे चाहते थे — और इसमें वे सफल भी हो गये है — कि नये अर्जदारोको परवाने न दिये जाये, नही तो और नये स्वार्थ निर्मित हो जायेंगे। यह एक अजीव बात होगी कि एक ऐसे राष्ट्रके निवासी, जो निहित स्वार्थोका इतना आदर करते है कि गुलामोके मालिको और होटलोके मालिकोके हितोको भी — जिन्हे अगर अनैतिक कहे तो अनुचित नही होगा — मान्यता दे सकते है, इन निर्दोष व्यापारियोके हितोकी अवगणना करे।

फिर मेरी इस प्रार्थनाको राज्यके ऊँचेसे-ऊँचे अधिकारीके दिये गये वचनका आधार है। पिछले वर्ष इन्ही दिनो पहले-पहल यह धमकी दी गई थी कि उक्त भारतीयोको अपने परवाने नये करवानेका हक नही होगा। इस ओर श्री चेम्बरलेनका ध्यान आकर्षित किया गया। उस समय उन्होने कहा था कि वे विश्वास नही कर सकते कि इस धमकीपर अमल किया जायेगा। यह उनकी बात है जिन्होने "एक ब्रिटिश अधिकारीका लिखा पुर्जा वैंक-नोटके समान है" ये प्रसिद्ध शब्द कहे थे। वे समझ रहे थे कि यह सूचना एक स्थानीय अधिकारीकी भूलसे जारी हो गई है। इसका परिणाम यह हुआ कि परवाने नये कर दिये गये, यद्यपि इसके लिए दु.खदायक सघर्ष करना पड़ा और सो भी केवल शुरूमे पिछले जून मास और वादमे इस मासकी ३१ तारीखतक के लिए। इसलिए मिली हुई राहतको स्थानीय अधिकारियोने जव पहली वार तात्कालिक बताया तव लॉर्ड मिलनरसे विनती की गई। उन्होने इस विषयपर अपने विचार श्री चेम्बरलेनको भेजे गये खरीतेमे प्रकट किये है। इसमें (यदि मैंने आशय ठीक समझा है तो), परमश्रेष्ठने कहा है कि, वर्तमान भारतीय परवानेदारोमें से केवल उनको पृथक वस्तियो-में जाना होगा जो लडाईसे पहले ट्रान्सवालमे नही रहते थे। मै पहले ही वता चुका हूँ कि ये भारतीय वास्तविक शरणार्थी है।

"लड़ाई छिड़नेके वक्त" ऐसे शब्द है, जिनके कारण अनन्त कठिनाइयाँ और भद्दे भेदभाव पैदा होगे। इसलिए आप इस प्रश्नपर चाहे जिस दृष्टिसे विचार कीजिए, इसका सरल हल यही है कि इस समय जिन लोगोके पास परवाने है उन सवको मान्यता दे दी जाये। अगर जरूरत हो तो यह शर्त लगाई जा सकती है. "जो लड़ाईसे पहले ट्रान्सवालमें व्यापार करते थे।"

मेरे देश भाइयोपर अनुचित होड़का आरोप लगाया जाता है। मैं यहाँ तो उसका सक्षेप-में ही जवाव दे सकता हूँ। हाथ कगनको आरसीकी जरूरत नही होती। क्या यह सत्य नही है कि इस होड़के वावजूद यूरोपीय व्यापारी ही सर्वत्र प्रवल है? यह सच है कि भारतीय रहन-सहन मितव्ययी और सादा होता है। परन्तु वह अपने व्यापारमें भी सीधा-सादा और सगठन-की योग्यतामे गरीव है। उसके इस कलामे निपुण वनने और उसकी होडसे भय होने योग्य परिस्थिति आनेमें वहुत दिन लगेंगे। कहा जा सकता है कि यदि भारतीयोका आगमन वेरोक-टोक जारी रहा तो उनकी संख्या वढ जायेगी और तव उसका असर अवश्य होगा। परन्तु मैं तो

केवल उनकी तरफसे अपील कर रहा हूँ, जो अभी व्यापारमे लगे हुए है। ब्रिटिश भारतीयोने यह भी सुझाया है कि परवानोका नियन्त्रण नगर-परिषद अथवा जिला-निकायके हाथोमे दे दिया जाना चाहिए, ताकि उनका दुरुपयोग न होने पाये। आरोग्य और नगरकी सुन्दरताकी दृष्टिसे सफाई और इमारतोसे सम्बन्धित अन्य उचित जरूरतोकी पूर्ति भारतीय बहुत खुशीसे करेगे।

मेरी विनती यह है कि ट्रान्सवालमे जो ब्रिटिश नागरिक बस गये है, उनकी सहानुभूतिका मेरे देशभाइयोको अधिकार है। लड़ाईके पहले उनसे मदद चाही गई और उन्होने प्रसन्नतापूर्वक दी। डचेतर गोरा-समिति (एटलाडर कमिटी) के तत्कालीन सदस्योने, जिनकी बात सरकार सुनती है, कहा था कि ज्यो ही प्रिटोरियामे ब्रिटिश झडा लहराने लगेगा, उसकी हवाके झकोरोसे भारतीयोकी सारी तकलीफे और निर्योग्यताएँ उड़ जायेगी; क्योकि, क्या वे ब्रिटिश प्रजाजन नही है? इस समय मै निर्योग्यताओंका सामान्य प्रश्न नही उठाना चाहता। उस समय जो बहुत बड़े-बड़े वचन दिये गये थे, उनमे से मै इस समय एक बहुत छोटी चीज माँग रहा हूँ। क्या वह भी स्वीकार नही होगी?

अन्तमे एक बात और कहनेकी इजाजत चाहता हूँ कि पिछली लड़ाईमे अपना नम्र हिस्सा अदा करनेमे भारतीय पीछे नही रहे है। शासकीय खरीतोमें उनके कामका सम्मानपूर्वक उल्लेख किया गया है। तब *पंचने* गाया था "आखिर हम सब साम्राज्यके पुत्र है।" उनकी प्रशसामें यह जो कहा गया है और इसमें जो अर्थ भरा पड़ा है उसे झुठलाने लायक कोई काम मेरे देशभाइयोके द्वारा उसके बादमें हुआ हो, ऐसी खबर मुझे नही है।

आपका, आदि,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४-१२-१९०३

५९. प्रार्थनापत्र : ट्रान्सवाल-परिषदको[1]

जोहानिसबर्ग
दिसम्बर ८, १९०३

सेवामें,
माननीय अध्यक्ष और सदस्यगण
ट्रान्सवाल विधान-परिषद

ट्रान्सवाल ब्रिटिश भारतीय-संघकी समितिके अध्यक्ष अब्दुल गनीका प्रार्थनापत्र

सविनय निवेदन है कि,

उपनिवेश-सचिवने सूचना दी है कि वे आगामी तारीख ९ को एशियाई *बाजारोंके* सम्बन्धमे एक प्रस्ताव पेश करनेवाले है। आपका प्रार्थी उसी सम्बन्धमे माननीय सदनकी सेवामें उपस्थित हो रहा है।

प्रार्थी आदरपूर्वक निवेदन करता है कि नये प्रस्तावके द्वारा दी जानेवाली राहत न्यायकी आवश्यकताओंके मानसे पूर्णतः अपर्याप्त होगी।

१. यह १७-१२-१९०३ के *इंडियन ओपिनियनमें* भी प्रकाशित हुआ था।

बाजारों अथवा पृथक् बस्तियोके बाहर व्यापार करनेवाले ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोको तीन वर्गोमें विभक्त किया जा सकता है.

पहला : जिनके पास युद्ध छिडनेके समय *बाजारोंके* बाहर व्यापार करनेके परवाने थे।

दूसरा : वे जो बिना परवानोके इसी तरह व्यापार करते थे।

तीसरा: वे जो लडाई छिड़नेके समय व्यापार नही करते थे, परन्तु जिन्हे इसके पहलेसे ट्रान्सवालके सच्चे निवासी होनेके कारण पिछले वर्ष ब्रिटिश अधिकारियोने बगैर किसी शर्त या प्रतिबन्धके *बाजारोंसे* बाहर व्यापार करनेके परवाने दिये थे।

इनमे दूसरे वर्गके व्यापारियोकी सख्या सबसे अधिक है।

तीसरे वर्गके व्यापारियोकी सख्या बहुत छोटी है और उनमे से अधिक जोहानिसबर्गमें ही बसे हुए है।

तीसरे वर्गवालोके लिए *बाजारोंमें* हटाया जाना बडी गभीर बात होगी। वहाँ उनके लिए किसी प्रकारका भी व्यापार कर सकना असम्भव है। और इस समय गोरे निवासियो और काफिरोके बीच उनका जो व्यापार फैला हुआ है और जिसके लिए उनके पास कानूनी परवाने हैं उसे तो वे किसी प्रकार वहाँ नही चला सकेंगे।

बाजारकी जगहोकी अनुपयुक्तताके अलावा भी प्रार्थी इस माननीय सदनका ध्यान नीचे लिखी बातोकी तरफ खीचना चाहता है·

पिछले वर्ष लगभग इन्ही दिनोकी बात है, पीटर्सबर्गमें ऊपर बताये गये तीसरे वर्गके तमाम ब्रिटिश भारतीयोको सूचनाएँ मिली थी कि उनके परवानोकी अवधि पूरी हो जानेपर वे नये नही किये जायेंगे। इसलिए तत्कालीन परममाननीय उपनिवेश-मन्त्रीका ध्यान उनकी ट्रान्सवाल-यात्राके समय इस प्रश्नकी तरफ खीचा गया था। उन्होने कहा था कि इस धमकीपर अमल नही हो सकेगा। और इसके फलस्वरूप अबतक ये परवाने नये किये जाते रहे है।

परमश्रेष्ठ लॉर्ड मिलनरने भी तारीख ११ मई १९०३ को परम माननीय श्री चेम्बरलेनको भेजे गये अपने खरीतेमें इस प्रश्नपर जोर दिया था।

परमश्रेष्ठ कहते है.

> परन्तु सरकार इस बातकी चिन्तामें है कि वह इस कामको (कानूनके अमलको) देशमें पहलेसे बसे भारतीयोंका बहुत खयाल रखते हुए और निहित स्वार्थोका — जहाँ इन्हें कानूनके विरुद्ध भी विकसित होने *दिया गया* है — सबसे अधिक विचार रखते हुए, करे। . . . लड़ाईसे पहले जो एशियाई लोग उपनिवेशमें थे केवल उन्हींका सवाल होता तो महामहिमकी सरकारके मनके लायक नये कानून बननेतक हम राह देख सकते थे। परन्तु यहाँ तो नये आनेवालोंका ताँता लगा रहता है और वे व्यापार करनेके परवाने माँगते रहते हैं . . . ऐसी दशामें एकदम खामोश बैठे रहना असम्भव हो गया है।

इसी खरीतेमे परमश्रेष्ठने आगे लिखा है:

> जैसा कि मै पहले कह चुका हूँ, लड़ाईके पहलेसे यहाँ जिन एशियाइयोंके जो निहित स्वार्थ थे उनको सरकार स्वीकार करनेके लिए तैयार है। परन्तु दूसरी तरफ, उसे लगता है कि कानूनके खिलाफ नये निहित स्वार्थोको खड़े होने देना उचित नहीं होगा। लड़ाईके दरमियान और युद्धविरामके बाद, कितने ही नवागन्तुकोंके नाम व्यापारके अस्थायी परवाने जारी कर दिये गये थे। इन परवानोंकी मियाद ३१ दिसम्बर १९०३ तकके लिए बढ़ा

दी गई है। परन्तु इन परवानेदारोंको हिदायतें दे दी गई हैं कि उस तारीखको उन्हें उनके लिए निश्चित सड़कों या *बाजारोंमें* चला जाना होगा।

प्रार्थीकी नम्र रायमे खरीता उन तमाम वर्तमान ब्रिटिश भारतीय परवानेदारोको, जो लड़ाईसे पहले ट्रान्सवालमे रहते थे, साफ तौरसे *बाजार*-सूचनाके अमलसे वरी करता है।

प्रार्थीके सघने सन् १८८५ के कानून ३ के अमलका सदा आदरपूर्वक विरोध किया है, क्योकि वह स्वर्गीया महारानीकी सरकार और पिछली गणराज्य-सरकारके बीच मतभेदका विषय रहा है। वह पिछली लडाईके कारणोमे से एक कारण था और ब्रिटिश सविधानके विपरीत है।

परन्तु अभी प्रार्थी इस सामान्य प्रश्नको उठाना नही चाहता। अभी तो वह यही आशा लेकर उपस्थित हुआ है कि यह माननीय सदन वर्तमान परवानेदारोके साथ किसी प्रकारकी छेड़छाड़ नही होने देगा।

प्रार्थीके सघके पास जो जानकारी है उसके अनुसार जिन्होने लड़ाईसे पहले कभी व्यापार नही किया, उनकी सख्या सम्भवत एक सौसे अधिक न होगी। *बाजारोंसे* बाहर व्यापार करनेके लिए उनके परवाने भी अगर नये कर दिये गये तो *बाजार*-सूचनाके सिद्धान्तको कोई आँच नही आनेवाली है; परन्तु स्वय उन आदमियोके लिए तो यह जीने और मरनेका सवाल है।

इसके अतिरिक्त "लड़ाई छिड़नेके समय या उससे तुरन्त पहले" इन शब्दोके अमलसे बहुत भारी कठिनाइयाँ और ईर्ष्या-भरे भेदभाव उत्पन्न हो जायेंगे।

प्रार्थीके सघकी विनम्र राय है कि जो व्यक्ति सन् १८९९ के मध्यमे व्यापार करते थे उन्हे परवाने दे दिये जाये, परन्तु जो १८९८ के अन्तमे तो व्यापार करते थे और १८९९ के प्रारम्भमे नही, उन्हें इनकार कर दिया जाये, तो यह सरासर अन्याय होगा। फिर, यह भी सम्भव है कि सन् १८९९ मे भी एक पेढीके दो साझेदार रहे हो। अगर दोनो परवानोके लिए अर्ज करें तो एकको दूसरेपर तरजीह देना आसान बात नही होगी।

ये केवल उन बहुत-सी कठिनाइयोके उदाहरण है जो इस सूचनाके कारण कानूनको अमलमे लानेके वक्त उत्पन्न होगी।

ब्रिटिश भारतीय सम्राट्की राजभक्त प्रजा है और वे शराबसे परहेज करनेवाले, मेहनती और कानूनके मुताबिक चलनेवाले माने गये है।

इसलिए प्रार्थीका संघ नम्र निवेदन करता है कि यह माननीय सदन इस विषयके पक्षमे विचार करे और सूचनामे ऐसा संशोधन करे कि आजके भारतीय परवानोको मान्यता दी जा सके, बशर्ते कि परवानेदार यह सिद्ध कर सके कि लडाईके पहले वह ट्रान्सवालका निवासी था। यह न्यायपूर्ण और उचित तो होगा ही, माननीय श्री चेम्बरलेन और परमश्रेष्ठ लॉर्ड मिलनरकी उल्लिखित घोषणाओके अनुरूप भी होगा।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए आपका प्रार्थी; कर्त्तव्य समझकर, सदा दुआ करेगा।

जोहानिसबर्ग, आज तारीख ८ दिसम्बर, उन्नीस सौ तीन।

अब्दुल गनी
अध्यक्ष, ब्रिटिश भारतीय संघ

प्रिटोरिया आर्काइव्ज : मूल अंग्रेजी प्रति की फोटो-नकल (पिटिशन एल० सी० ४/०३) से।

६०. लॉर्ड हैरिस और भारतीय मजदूर

जोहानिसबर्ग स्टारने लॉर्ड हैरिसका वह भाषण उद्धृत किया है जो उन्होंने गत १२ नवम्बरको केनन स्ट्रीट होटल, लदनमे दक्षिण आफ्रिकाके सयुक्त स्वर्ण-क्षेत्रो (कान्सॉलिडेटेड गोल्ड फील्ड्ज़) के हिस्सेदारोकी साधारण सभामे दिया था। इस भाषणसे एशियाई मजदूरोके प्रश्नपर लॉर्ड महोदयके विचारोका हमें अधिक अच्छी तरह पता लग सकता है। हमे स्वीकार करना पड़ता है कि इस भाषणको पढ़कर हमें बड़ी निराशा हुई है और उनके प्रति सम्पूर्ण आदर रखते हुए हमें कहना पड़ता है कि जिन आर्थिक स्वार्थोका वे प्रतिनिधित्व करते है उनकी रक्षाकी अत्यधिक चिन्ताने उनके विचारोको ढक लिया है। लॉर्ड हैरिस भारतीयोको ऐसी शर्तोपर लाना चाहते है जो उन्हे यहाँ अपने दिमागका, अगर ऐसी कोई चीज वे रखते हो, उपयोग करनेसे रोके और गिरमिटकी अवधि पूरी हो जानेपर उनको जबरदस्ती वापस कर दे। इसमे इस बातका कोई खयाल नही किया जायेगा कि वे यहाँ अधिक अच्छी कमाई कर सकते है या नही। लॉर्ड हैरिसने यह खोज की है कि इसमे वास्तवमें मजदूरोका बहुत बड़ा हित होगा। लॉर्ड महोदय कहते है:

> मुझे लगता है कि खानोंके लिए मजदूरोंकी भरती करनेकी इजाजत तब मिलेगी जब हम व्यापारीवर्गके साथ अधिक अच्छा व्यवहार करनेका वचन देंगे — इस शर्तमें कुछ अदूरदर्शिता मालूम होती है। . . .
>
> कुली कोई बहुत पढ़े-लिखे तो होते नहीं। वे तो केवल शरीर-श्रम करनेवाले लोग होते है। भारतकी खानोंमें जिस प्रकारका व्यवहार मजदूरोके साथ होता है उससे बुरा तो नहीं, बल्कि शायद अच्छा ही व्यवहार हम उनके साथ करेगें। और ऊँची जातियोंके लोग उन्हें जिस तरह भारतमें रखते है उससे तो निश्चय ही हमारा व्यवहार बहुत अच्छा होगा। . . .
>
> मेरा तो खयाल है कि अगर इस तरह मजदूरोंको भारतसे बाहर जाने और वापस लौटनेके लिए उत्साहित किया जायेगा तो सारे भारतके लोगोको उससे बड़ा लाभ होगा।

हम इन बातोका जवाब कुछ सीधे प्रश्न पूछ कर देना चाहते है.

क्या लॉर्ड महोदयको यह पता है कि भारतमें नीचेसे-नीचे वर्गका आदमी धीरज और अध्यवसायके बलपर ऊँचेसे-ऊँचे स्थानपर पहुँच सकता है? क्या वे जानते है कि अनेक भारतीय एक साधारण मजदूरकी स्थितिसे बहुत सम्मानित पदोपर पहुँचे है? क्या यह सत्य नही है कि भारतीय गिरमिटिया मजदूरोंको जबरदस्ती स्वदेश लौटानेका कारण यह है कि गिरमिटसे मुक्त होनेपर व्यापार और दूसरे व्यवसायोमें वे यूरोपीयोके साथ होड़ करने लग जायेगे? क्या यह कहनेमे अप्रत्यक्ष रूपसे भारत-सरकारकी निन्दा नही है कि भारतीय मजदूरोके साथ खुद भारतमे जैसा व्यवहार होता है उसकी अपेक्षा ट्रान्सवालमें अधिक अच्छा व्यवहार होगा? (व्यक्तिगत रूपसे हम नही मानते कि शारीरिक व्यवहारका प्रश्न यहाँ उठता भी है, क्योकि हमारा दृढ़ विश्वास है कि ट्रान्सवालमें मजदूरोके साथ काफी अच्छा व्यवहार होगा।) क्या लॉर्ड महोदय सचमुच मानते है कि यदि ऊँची जातिके लोग भारतमें नीची जातिके लोगोके साथ विवेकपूर्ण बरताव नही करते है तो, इसी कारण, एक उदार शासनके

मातहत यहाँ भी — भले कुछ बदले हुए रूपमे ही क्यो न हो — ऐसा भेदभाव बरतना उचित है? और क्या वे यह नही जानते कि भारतकी ऊँची जातियोके लोगोमे जो भी कमियाँ हो, कमसे-कम वे अपने स्वार्थ-साधनके लिए तो परिवर्तित रूपमे गुलामीकी प्रथाको आश्रय नही देते? ट्रान्सवालमे बरसो रह लेनेके बाद और उसे भारतकी अपेक्षा अधिक अपना घर बना लेनेके बाद यदि ये मजदूर जबरदस्ती भूखो मरनेके लिए भारत भेज दिये जायेंगे तो क्या उससे इनका या भारतके अन्य निवासियोका आर्थिक लाभ होगा? क्या यह किसी भी अर्थमे उचित कहा जा सकता है कि मनुष्योके एक समाजको महज इस आशकासे बौना बना दिया जाये कि वह मनुष्योके दूसरे समाजसे स्पर्धा करने लगेगा? इस परिस्थितिको रोकनेका क्या यह रास्ता अधिक सीधा नही है कि गिरमिटिया मजदूरोको लाना ही बन्द कर दिया जाये और उपनिवेशको अपने स्वाभाविक क्रमसे धीरे-धीरे विकसित होने दिया जाये?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०–१२–१९०३

६१. लेडीस्मिथमें भारतीयोंके परवाने

लेडीस्मिथके टाउन क्लार्क श्री लाइन्सने शहरके परवाना-अधिकारीकी हैसियतसे शहरके भारतीयोको सूचनाएँ भेजी है। उनमे विक्रेता-परवाना अधिनियमकी वे धाराएँ बताई गई हैं जिनमें व्यापारके परवाने देनेकी शर्तोका उल्लेख है। साथमे प्रार्थनापत्रोंके फार्म भी भरनेके लिए भेजे है, जिनमे निम्न महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद आया है:

> **मैं पाबन्द होता हूँ कि शनिवारको छोड़कर किसी भी दिन शामको पाँच बजे बाद अपनी दूकानको व्यापारके लिए खुला न रखूँगा। मैं अपने कारोबारकी जगहको सरकारी छुट्टीके सब दिनोंमें बन्द रखनेके लिए भी पाबन्द होता हूँ।**

कुछ सप्ताह पूर्व ही हमने श्री लाइन्स और लेडीस्मिथके ब्रिटिश भारतीयोंकी मुलाकातकी खबर छापी थी, जिसमे श्री लाइन्सने धमकी दी थी कि यदि ब्रिटिश भारतीय अपनी दूकानें शामको पाँच बजे बन्द करना स्वीकार न करेंगे तो वे उनके परवाने अगले वर्षके लिए नये न करेंगे। अब उन्होने कदम आगे बढ़ाया है, और स्पष्टत: धमकी अमलमे लायी जायेगी। हम अपना यह मत व्यक्त कर ही चुके है कि यदि सम्भव हो तो लेडीस्मिथके भारतीय दूकानदारोके लिए श्री लाइन्सके प्रस्तावको मान लेना ठीक होगा। हमे सन्देह नही, इससे अन्तमे बहुत भलाई होगी। नि.सन्देह यह प्रश्न उठता है कि क्या भारतीय व्यापारी पाँच बजे सायकाल अपनी दूकाने बन्द करके अपना व्यवसाय कर सकेंगे। सम्भव है उनका अधिकाश व्यवसाय केवल पाँच बजे बाद ही होता हो। इस स्थितिमें इस माँगकी पूर्ति उनके लिए असम्भव होगी, किन्तु यदि ऐसी बात हो और यह अन्तत सिद्ध भी किया जा सके तो, हमारा खयाल है, श्री लाइन्समे इतनी न्यायबुद्धि अवश्य होगी कि वे पाबन्दीकी शर्तको छोड़ ही दे। यह पूर्णत आपसी समझौतेका मामला है। हमे भरोसा है कि लेडीस्मिथके भारतीय काफी सयमसे काम लेंगे और यह देखेंगे कि जो मार्ग हमने सुझाया है उसका अवलम्बन करनेमे उनका हित है। यदि दूकानें बन्द करनेका यह नियम समस्त व्यापारियोपर लागू न होता हो तो नि सन्देह उक्त आश्वासन

किसी भी अवस्थामें नहीं दिया जा सकता। इस सम्बन्धमें हम उनका ध्यान श्री लाइन्सकी सूचनामें दी गई निम्न धाराकी ओर आकर्षित करते हैं:

> उन दूकानों-मकानोंके सम्बन्धमें कोई परवाने न दिये जायेंगे जो निर्दिष्ट व्यापारके लिए अनुपयुक्त होंगे या जिनमें स्वास्थ्य और सफ़ाईकी उचित और आवश्यक व्यवस्था न होगी, या दोनों कामोंके लिए व्यवहृत होनेवाली इमारतोंके मामलेमें विक्रेताओं, मुहर्रिरो या नौकरोंके लिए गोदाम-घरों या उन कमरोंके अतिरिक्त, जिनमें माल और सामान रखा जा सके, पर्याप्त और योग्य स्थान न होगा।

यह नि.सन्देह ऐसी व्यवस्था है जिसकी पूर्तिमें कोई भी हिचक या कठिनाई न होनी चाहिए। सचाई यह है कि लेडीस्मिथके अधिकतर भारतीय गोदाम इस प्रकारकी सभी आपत्तियोंसे मुक्त हैं, यह हम जानते हैं; किन्तु यह बताना अच्छा है कि उल्लिखित धारा भाषा और भाव दोनोंकी दृष्टिसे कार्यान्वित की जानी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०-१२-१९०३

६२. सरकार तथा बारबर्टनके भारतीय

४ दिसम्बरके ट्रान्सवालके सरकारी *गजट*में श्री डब्ल्यू० एच० मूअरके हस्ताक्षरोंसे एक सूचना छपी है जिसके द्वारा भारतीयोंकी वर्तमान बस्ती ही *बाजारकी* जगह निश्चित कर दी गई है। उसमें यह असाधारण अनुच्छेद भी है:

> इस *बाजारमें* माहवारी किरायेदारीपर बाड़े *केवल* उन्हीं एशियाइयोंको दिये जायेंगे जो वर्तमानमें वहाँ रह रहे हैं या व्यापार कर रहे हैं। मियादी पट्टे नहीं दिये जायेंगे और किरायेदारोंको उपकिरायेदार रखनेका अधिकार नहीं होगा ('केवल' खुद सूचनामें ही दूसरे टाइपमें है)।

इस प्रकार बारबर्टनके आवासी मजिस्ट्रेट द्वारा जारी की गई सूचनाके जिस अत्यन्त आपत्ति-जनक अंगकी तरफ कुछ समय पहले हमने पाठकोंका ध्यान खीचा था, उसे सरकारने कायम रखा है। अब बस्तीको बन्द करनेके विरोधमें आपत्ति करके वास्तविक न्याय पानेका प्रयत्न करनेपर भारतीयोंके सामने सम्भावना यह आती है कि उपकिरायेदार न रखनेकी नई शर्तके कारण उन्हे बगैर मुआवजेके बस्ती छोड़ नये *बाजारमें* जानेके लिए मजबूर होना पड़ेगा। पाठकोंको ज्ञात है कि इस नये *बाजारके* खिलाफ भी गंभीर आपत्तियाँ उठाई गई हैं। अगर वहाँ नही जाना है तो उन्हें बारबर्टनको ही छोड़ देना होगा। फिर भी लॉर्ड मिलनर कहते है कि बोअरोंके शासनकालमें भारतीयोंके साथ जैसा व्यवहार होता था उसकी अपेक्षा अब उनके साथ कही अच्छा व्यवहार हो रहा है!

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०-१२-१९०३

६३. "मॉनिंग पोस्ट" और एशियाई मजदूर

अभी हमारे हाथोमे जोहानिसबर्गके जो समाचारपत्र आये है उनमें *मॉर्निंग पोस्ट* द्वारा भारत-सरकारसे गिरमिटिया मजदूर भेजनेके सम्बन्धमे की गई अपीलका समाचार छपा है। *डेली मेलका* संवाददाता कहता है कि पराये चीनियोके बजाय ब्रिटिश भारतीय मजदूरोसे खानोकी खुदाई करवानेकी आशा अभी इस पत्रने छोडी नही है। उसने लिखा है कि यह पूरी तरह ब्रिटिश साम्राज्यके हितमे है कि भारत-मन्त्री श्री ब्रॉड्रिक भारतके वाइसराय लॉर्ड कर्जनसे ट्रान्सवालके साथ भारतीय मजदूरोके बारेमे कोई समझौता करनेका आग्रह करे, जिसमे कुलियोके साथ अच्छे व्यवहारका आश्वासन तो हो, परन्तु उन्हे राजनीतिक अधिकार देनेका नही। हम नही जानते कि "राजनीतिक अधिकार" से *मॉर्निंग पोस्ट* क्या समझता है, परन्तु हमें बड़ा भय है कि दक्षिण आफ्रिकामे इन शब्दोका प्रयोग एक ऐसे नये अर्थमे करनेका विचार किया जा रहा है, जिसमे ब्रिटिश प्रजाजनोके घूमने-घामने, व्यापार करने और रहनेके मामूली अधिकार भी सम्मिलित हो जाये। ब्रिटिश भारतीय मताधिकारकी आकाक्षा नही करते, परन्तु व्यापार करनेकी और जहाँ उनकी इच्छा हो वहाँ बसनेकी पूर्ण स्वतन्त्रताका — जहाँतक वह रग-भेदके बगैर किये गये सफाईके प्रबन्ध और तत्सम्बन्धी रिवाजोके विरुद्ध न पडती हो — आग्रह जरूर रखते है। अगर *पोस्ट* हमारी बताई इन बातोको अच्छे व्यवहारका अंश मानता है तो हमें उसकी अपीलके विरोधमें कुछ भी नही कहना है, परन्तु जैसा कि ट्रान्सवालके लोग जोर दे रहे है, यदि इन मजदूरोको जबरदस्ती स्वदेश लौटाया जानेवाला है, और उनपर दूसरे नियन्त्रण लगाये जानेवाले है, तो हमे कहना होगा — जैसा कि हमने बहुधा कहा है — कि इन व्यापारियोके अधिकार हमे बहुत ही महँगे पड़ेंगे। और जब *मॉर्निंग पोस्ट* जैसा प्रभावशाली अखबार भी ट्रान्सवालके लिए भारतीय मजदूरोकी जरूरतपर जोर देता है तो भारतीयोके हितैषी इग्लैंड और दक्षिण आफ्रिकाकी घटनाओपर जितनी भी सावधानीसे नजर रखें उतनी थोड़ी ही होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०–१२–१९०३

६४. "बाजार"-सूचनामें संशोधन[1]

जोहानिसबर्ग
दिसम्बर ११, १९०३

सरकारका विचार विधान-परिषदमें *बाजार*-सम्बन्धी सूचनामें एक सशोधन पेश करनेका है, उसके फलस्वरूप ट्रान्सवालके कुछ ब्रिटिश भारतीय विशेष रूपसे पृथक बनाये गये *बाजारों* या बस्तियोंमें ही अपना व्यापार चलानेकी पाबन्दीसे मुक्त हो जायेंगे।

परन्तु इस सशोधनमे सब वर्तमान परवानेदार नही आते। सशोधित कानूनका असर फिर भी यह रह जायेगा कि कोई एक सौ ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोको बस्तियोमे जाना पड़ेगा। इसका मतलब यह होगा कि ये सब व्यापारी बिलकुल बरबाद हो जायेंगे।

इसलिए यहाँ ब्रिटिश भारतीयोंकी एक सार्वजनिक सभा की गई और उसमें इस आशयका प्रस्ताव पास किया गया कि जबतक ट्रान्सवालके भारतीय-विरोधी कानूनोंमें वह परिवर्तन नहीं कर दिया जाता, जिसका वादा किया गया है, तबतक सभी वर्तमान परवानेदारोकी रक्षा की जाये।

विधान-परिषद प्रस्तावित सशोधनपर आगामी सोमवार, १४ दिसम्बरको विचार करेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया, १८-१२-१९०३

६५. तार: ब्रिटिश समितिको

जोहानिसबर्ग
दिसम्बर १२, १९०३

सेवामें
इनकाज

सरकार विधान-परिषदमें *बाजार*-सम्बन्धी सूचना संशोधन लाना और सब वर्तमान परवानोको शामिल न करके केवल कुछ भारतीयोको *बाजारमें* व्यापारकी पाबन्दीसे मुक्त करना चाहती है। इसका अर्थ है लगभग सौ व्यापारियोको बस्तियोमें अनिवार्यत· हटाना और उनकी · बिलकुल बरबादी। अत: ब्रिटिश भारतीयोकी सामूहिक सभामे प्रस्ताव द्वारा प्रार्थना की गई कि सब वर्तमान परवानेदारोको भारतीय-विरोधी कानूनोंमें परिवर्तन होने तक सरक्षण दिया जाये। परिषदमे सशोधन पर विचार सोमवारको होगा। कृपया सहायता करे।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

इडिया ऑफिस ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स ५७/१९०४।

१. यह "एक सवाददातासे प्राप्त" रूपमें प्रकाशित हुआ था।

६६. एक सामान्य पत्र[1]

[दिसम्बर १७, १९०३के पूर्व]

महोदय,

परिषदके कार्यक्रममे इस वर्षकी *बाजार*-सूचना ३५६ के सशोधनपर माननीय उपनिवेश-सचिवके नामपर जो प्रस्ताव पेश है, उसके सम्बन्धमे विधान-परिषदके विचारार्थ एक प्रार्थनापत्र[2] पहले ही भेजा जा चुका है। मेरे सघकी विनती है कि श्रीमान उसपर सहानुभूतिपूर्वक विचार करे।

तथापि कुछ बाते ऐसी है जिनका उल्लेख प्रार्थनापत्रमे ठीक तरहसे नही किया जा सकता था। इसलिए मेरा सघ यह निवेदन आपकी सेवामे प्रस्तुत करनेकी अनुमति चाहता है।

प्रार्थनापत्रमे जिस विषयकी चर्चा की गई है वह भारतीय समाजके लिए अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है और अगर यूरोपीय व्यापारियोके दृष्टिकोणसे देखा जाये तो उनके लिए उसका कोई तुलनात्मक महत्त्व नही है।

अगर माँगी गई राहत नही मिलती तो आगामी १ जनवरीको ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोकी स्थिति अत्यन्त सकटग्रस्त हो जायेगी।

आप परिस्थितिको पूरी तरह समझ सकें, इस उद्देश्यसे सरकारके प्रति सम्पूर्ण आदर प्रकट करते हुए मैं कहता हूँ कि *बाजारोंके* लिए जो स्थान चुने गये है वे व्यापारकी दृष्टिसे निकम्मे है। लगभग प्रत्येक स्थान शहरसे बहुत दूर है और वहाँ मामूली सुविधाएँ भी नही है। वहाँ जानेका मतलब भारतीयोके लिए बिलकुल नये कस्बे या गाँव बसाने जैसा ही होगा।

इस बातका अधिक विस्तार करना आवश्यक है, क्योकि आप देशसे परिचित हैं, और कमसे-कम कुछ *बाजारों*के स्थानोकी स्थिति भी जानते है। इसलिए अन्य कारणोसे नही तो केवल इसी कारणसे सही, निवेदन यह है कि वर्तमान परवानेदारोको छेड़ना उनके लिए अत्यन्त सकटावह होगा।

मेरे सघको पता है कि परिषदके कुछ माननीय सदस्य मानते है कि उपनिवेशमें लड़ाईसे पहले जितनी भारतीय आबादी थी उसकी अपेक्षा अब बहुत अधिक है और उपनिवेशमें ऐसे बहुत-से भारतीय घुस आये है जो पहले यहाँ नही रहे है। मै आपको निश्चय दिलाना चाहता हूँ कि वास्तवमे बात ऐसी नही है। कुछ नये लोग देशमे जरूर आ गये है; परन्तु परवानोके सिलसिलेमे पिछले दिनो जो मुकदमे चलाये गये थे उनके फलस्वरूप बहुत-से लोगोको देशकी सीमासे बाहर कर दिया गया है और उन नये लोगोमे से तो शायद ही किसीके पास परवाना हो।

इसलिए मेरे संघकी यह विनती नये लोगोकी तरफसे नही, परन्तु सच्चे शरणार्थियोकी तरफसे है। उन्हे *बाजारोंमें* भेजनेके इस प्रयासका एकमात्र कारण यह है कि लडाईसे पहले वे ट्रान्सवालमे व्यापार नही करते थे या विशेषत जिन स्थानोमे व्यापार करनेके परवाने अब उनके पास है उनमे वे लड़ाईके पहले व्यापार नही करते थे। यह एक ऐसा भेद है कि उसका औचित्य समझमे आना कठिन है। असलमें छोटे-छोटे शहरोमे भारतीय व्यापारियोकी तथा-कथित होडका भय इस कदमकी जडमे है। परन्तु मेरे सघका नम्र निवेदन तो यह है कि ऐसे छोटे शहरोमे बहुत कम भारतीय व्यापारी है। इनमे से अधिकांश तो मुख्यत. जोहानिसबर्गमें

१. यह ब्रिटिश भारतीयोंने ट्रान्सवाल विधान-परिषदके सदस्योंको लिखा था।

२. देखिए "प्रार्थनापत्र: ट्रान्सवाल-परिषदको," दिसम्बर ८, १९०३।

है, जहाँ कि यह दुर्भाव इतना तीव्र नही है और न वहाँ ऐसी भारी होड़ ही अनुभव की जा रही है, क्योकि वहाँ यूरोपीय व्यापारियोकी सख्या बहुत अधिक है। तब क्या इन थोड़े-से गरीब भारतीय व्यापारियोकी रोटी छीनना ठीक है, क्योकि जितनी भी बार यह कहा जाये, थोड़ा ही होगा कि भारतीयोका *बाजारोंके* बाहर जो व्यापार है उसे सफलताकी सम्भावनाके साथ बस्तियोमे ले जाना असम्भव है? मेरा सघ इस सम्बन्धमें कुछ उदाहरण पेश करना चाहता है :

उदाहरणके लिए, रस्टेनबर्गमें केवल एक भारतीय व्यापारी व्यापार कर रहा है, यद्यपि वह लडाईसे पहले वहाँ व्यापार नही करता था। यहाँ क्षेपक रूपमें कहा जा सकता है कि वह जोहानिसबर्गमें जरूर वर्षोतक व्यापार करता रहा है। क्या यह अकेला भारतीय *बाजारमें* चला जाये जो कि लगभग बियाबान् जगल-सा है, जहाँ कोई आवागमन नही और जहाँ अकेले एक आदमीका रहना भी खतरनाक है? और क्या केवल इस आदमीको हटा देनेसे आज शहरमे जो दूसरे व्यापारियोंका व्यापार चल रहा है उसमें कोई कहने लायक अन्तर पड जायेगा?

श्वीजर रेनेककी बात तो इससे भी गम्भीर है। वहाँ दो व्यापारी है, जो लड़ाईसे पहले वहाँ व्यापार नही करते थे, यद्यपि उनमें से कमसे-कम एक लडाईसे पहले ट्रान्सवालमे व्यापार करता था। इस जगह बहुत कम मकानात है और आबादी भी बहुत विरल है। क्या ये दो आदमी उस बस्तीमे जाकर कुछ भी व्यापार कर सकेंगे, जो बहुत दूर है और जहाँ आज एक भी आदमी नही रहता?

इस तरहके बहुत-से उदाहरण दिये जा सकते हैं। उनसे प्रकट है कि प्रयोगमें लाये जानेवाले साधन और प्राप्त किये जानेवाले परिणामके बीच हद दर्जेका अनमेलपन है। संघका मत है कि इन देशभरमें बिखरे व्यापारियोको *बाजारोंमें* भेजना बीमारीको भगानेका अत्यन्त उग्र उपाय है और इससे वह बीमारी अच्छी नही होगी, जो मौजूद बताई जाती है। हाँ, अगर नये आनेवाले भारतीयोको *बाजारोंके* बाहर व्यापार करनेके परवाने देनेकी इच्छा हो तो इसको मेरा सघ पूरी तरह समझ सकता है। फिर भी जिनका व्यापार-व्यवसाय नि सन्देह जम गया है उनके प्रति उपेक्षापूर्ण रुखको सहन करना बहुत कठिन है, क्योकि पिछले वर्ष जो परवाने दिये गये थे वे भारतीयोने खुले तौरपर जायज तरीकेसे प्राप्त किये थे। ब्रिटिश अधिकारियोने भी उनको ये परवाने यह जानते हुए कि वे भारतीय है और लडाईसे पहले अपने क्षेत्रोमे व्यापार नही करते थे, इस आधारपर दिये थे कि वे शरणार्थी हैं। इन परवानोको जारी करते समय कोई शर्तें भी नही लगाई गई थी।

इसलिए मेरा संघ आदरपूर्वक पूछता है कि क्या इन मुट्ठीभर भारतीयोको इस तरह परेशान करना वाजिब है, जिन्होने अपना व्यापार अच्छी तरह जमा लिया है, जिनके भण्डारोमें बहुत-सा माल पडा है और जिनमें से कुछने अपने कब्जेकी जगहोके लम्बे पट्टे लिखा रखे है? मेरा संघ मानता है कि आप केवल यूरोपीयोके हितोका ही नही, बल्कि उन सबके हितोका प्रतिनिधित्व करते है, जो इस उपनिवेशमें बस गये है, और विशेष रूपसे उनका, जो ब्रिटिश प्रजाजन है। इसलिए मेरा संघ आशा करता है कि उसने आपके सामने जो प्रश्न रखा है उसका अध्ययन करनेके लिए आप जरूर समय निकालेगे और न्यायोचित निर्णयपर पहुँचेंगे।

आशा है आप कष्टके लिए क्षमा करेगे।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष, ब्रिटिश भारतीय सघ

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७-१२-१९०३

६७. ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय

जोहानिसबर्गके अखबारोमे हमने पढा कि ट्रान्सवालकी विधान-परिषदकी कार्रवाई प्रार्थना-पूर्वक शुरू हुई। अपने भाषणके अन्तमे परमश्रेष्ठ परिषद-अध्यक्षने सदस्योको "सर्वशक्तिमान परमेश्वरके मार्गदर्शनमे" सौपा और उससे "अत्यन्त भावभरी प्रार्थना की कि उनकी सारी मन्त्रणाएँ उसकी महिमाको बढ़ाये और राज्यको समृद्ध बनाये।" और, उन्होने विश्वास प्रकट किया कि "उन्हे अपने कार्यमे परमात्माका अनुग्रह प्राप्त होगा।" यह सब बहुत धर्ममय है और यहाँतक तो बहुत सतोषजनक भी है। जो ईश्वरका भय मनमे रखकर प्रत्येक कार्य करते हैं और अपने प्रत्येक कार्यमें उसका मार्गदर्शन चाहते है, उनसे भय करनेकी कोई बात नही है। परन्तु दुर्भाग्यसे इस तरहकी बाते बहुत-कुछ रूढ बन गई है। हम प्रार्थना इसलिए करते है कि वह रिवाजमे आ गई है, हम ईश्वरकी मदद भी इसीलिए माँगते है कि वह भी एक रिवाज हो गया है, इसलिए नही कि हम उसे कोई विशेष महत्त्व प्रदान करते है या उसके पीछे सचमुच ऐसी कोई भावना होती है, जो उसकी मदद प्राप्त करनेके लिए जरूरी है। हमे बहुत भय है कि, जब परमश्रेष्ठने प्रार्थना पढी या अपने भाषणको समाप्त किया तब शायद उन्होने अपने-आपसे यह प्रश्न भी नही पूछा कि परिषदके विचारणीय विषयोमे कोई ऐसी बात तो नही है, जो सम्भवत. प्रभु-महिमाको बढ़ानेवाली न हो। खैर, हम तो वस्तुस्थितिको ही जाँचे। उपनिवेश-सचिव श्री पी० डकनने नीचे लिखे प्रस्तावकी सूचना दी:

> **एशियाइयोंके व्यापारके लिए *बाजारोंकी* तजवीज करनेके सम्बन्धमें ८ अप्रैल १९०३ की शासकीय सूचना ३५६की उपधारा ३ में 'लड़ाई' शब्दके बाद नीचे लिखे शब्द जोड़ दिये जायें — इसी प्रकारकी परिस्थितियोंमें उन एशियाइयोंको परवाने दिये जायें, जो लड़ाई शुरू होते समय अथवा उसके तुरन्त पहले ऐसी जगहोंमें व्यापार करते थे, जिनको सरकारने विशेष रूपसे निश्चित नहीं किया था — भले ही उनके पास उस समय ऐसे व्यापारके लिए कानूनके अनुसार आवश्यक परवाने न भी रहे हों। वे तमाम व्यापारी, जो इस उपधाराके मातहत परवाने पानेकी माँग करें, इस सम्बन्धमें अपना सबूत राजस्व-अधिकारीके सामने पेश करें और उसको सन्तोष करा दें कि उनके सम्बन्धमें उपर्युक्त शर्तें पूरी हो जाती हैं।**

इस प्रस्तावके बारेमे ब्रिटिश भारतीय क्या सोचते है, यह बतानेके लिए *इंडियन ओपिनियन*के इस अकमे पाठकोको काफी सामग्री मिलेगी। इन स्तम्भोमे हम अनेक बार बता चुके है कि *बाजार*-सम्बन्धी सूचना अनावश्यक है और वह स्वर्गीया महारानीके मन्त्रियो तथा श्री चेम्बरलेन द्वारा समय-समयपर दिये गये वचनोंके विपरीत है, परन्तु इस समय हम वह प्रश्न नही उठाना चाहते। हम तो ब्रिटिश भारतीय अर्जदारोने अपनी दरखास्तमे जो स्थिति अपनाई है, केवल उसीकी जाँच करेंगे।

परन्तु ऐसा करनेसे पहले हम इस अवसरपर अपने ट्रान्सवालवासी देशभाइयोको बधाई देते है कि, उन्होने ऐसी सराहनीय क्रियाशीलता दिखाई है और इतने व्यवस्थित ढगसे अपने प्रार्थनापत्र अधिकारियोके सामने पेश किये है। उसी हफ्तेके मगलवार और शुक्रवारके बीच विधानसभाको प्रार्थनापत्र देना, सदस्योको एक लम्बा गश्तीपत्र भेजना और सफल सार्वजनिक

सभा करना, जिसमें लगभग पाँचसौ लोग उपस्थित हों, बहुत ही प्रशंसाके लायक काम है, और हम नेटाल-वासी भारतीयोके लिए अनुकरणीय है।

अब हम प्रस्तुत विषयपर आते है। सक्षेपमें स्थिति यह है·

बाजार-सूचना उन ब्रिटिश भारतीयोके परवानोमे हस्तक्षेप नही करती, जो यह दिखा सकते है कि लड़ाई छिड़ते समय उनके पास *बाजारोंसे* बाहर व्यापार करनेके परवाने थे। अब सरकार यह सरक्षण उन लोगोको भी देना चाहती है जो लडाई छिडते समय बिना परवानोके व्यापार करते थे। फिर तो केवल वे भारतीय शेष रह जाते है जो यद्यपि लडाईसे पहले व्यापार तो नही करते थे, परन्तु शरणार्थी होनेके कारण ब्रिटिश अधिकारियोसे परवाने प्राप्त कर सके थे। इसलिए ब्रिटिश भारतीयोने विधान-परिषदको प्रार्थनापत्र दिया है और विनती की है कि इस अन्तिम वर्गके व्यापारियोको भी सरक्षण दिया जाये। उनका तर्क कुछ इस प्रकार है:

जिन लोगोको आप सरक्षण नही देना चाहते उनकी सख्या बहुत छोटी है और जहाँ तक यूरोपीयोकी भावनाका प्रश्न है, वह विचार करने योग्य भी नही है। करीब छ सौ परवाने है। इनमे से उक्त अर्थमें नये प्रकारके व्यापारियोको अलग करके आप करीब सौ आदमियोको बस्तियोमें खदेड सकेगे। इससे होडमे मुश्किलसे कोई अन्तर पड़ेगा। आपने इन परवानेदारोकी रक्षा करनेका बार-बार वचन दिया है। श्री चेम्बरलेनने यह वचन दिया है, और लॉर्ड मिलनरने भी दिया है। लडाईसे पहले ब्रिटिश एजेंटोने गणराज्यकी हुकूमतसे कारगर अर्जी-पुर्जा करके ब्रिटिश भारतीयोको व्यापार दिलाया था। इसलिए यद्यपि आपने सिंहके समान शक्ति पा ली है, फिर भी आपको अपनी इस शक्तिका उपयोग इन थोडेसे आदमियोको कुचल कर उनका अस्तित्व मिटा देनेमें नही करना चाहिए। हमने कोई अपराध नही किया है। आप हम पर ऐसे दोषोका आरोप कर रहे है, जिनकी अगर उचित जाँच की जाये तो आप देखेंगे कि वे कोई दोष ही नही है, और व्यापारिक ईर्ष्याको भी इतना बढावा नही देना चाहिए कि उससे निहित अधिकार खतरेमे पड जायें।

हमें ऐसा मालूम होता है कि ऐसी दलीलका, जैसी यह है, कोई जवाब नही है और जोहानिसबर्गमें वेस्ट ऐंड हॉलकी बड़ी सभामें वक्ताओने जो तथ्य बताये, वे सही है। तो क्या सरकारने जो रुख धारण किया है वह परमश्रेष्ठकी विधान-परिषदके सदस्योको ईश्वरके मार्ग-दर्शनमें सौंपनेकी बातसे मेल खाता है? और क्या उसकी "परिषदके सदस्योकी मन्त्रणाएँ ईश्वरकी महिमाको बढायें," इस भावभरी प्रार्थनासे कोई सगति है? हम स्पष्ट रूपसे कहते है कि इसमें हमें ईश्वरका हाथ दिखाई नही देता। हम यह भी नही मानते कि सैकडो निर्दोष व्यापारियोको बरबाद कर देनेसे किसी प्रकार भी ईश्वरकी महिमा बढ सकती है, या राज्य समृद्ध बन सकता है।

उधर हम देखते है कि पूर्वी ट्रान्सवाल पहरेदार-संघ (ईस्ट रैंड विजिलैंट्स) उपर्युक्त सशोधन करनेकी हिम्मत करनेपर सरकारके खिलाफ डडा लेकर खडा हो गया है। वह इस बातपर आगबबूला हो रहा है कि जिस सरकारने लडाईसे पहले ब्रिटिश भारतीयोको पिछली प्रजातन्त्री सरकारके कानूनोका भंग करके भी बगैर परवानोके व्यापार करनेमें मदद दी, वही अब उन परवानोको कानूनी मानकर उन्हें वही संरक्षण दे रही है और विलम्बसे ही सही, उनके साथ न्याय कर रही है। इसलिए उन्होंने विधान-परिषदको एक अर्जी भी भिजवाई है। इस तरह सरकारके सामने एक तरफ ब्रिटिश भारतीयोकी अत्यन्त युक्तिसगत विनती है, जिसमें सरकारसे एक बहुत छोटा न्याय माँगा गया है, और दूसरी तरफ पूर्वी ट्रान्सवालके पहरेदार-संघके सदस्य विरोधी है, जिनकी माँग है कि भारतीयोंके साथ किसी प्रकार भी न्याय न किया जाये। बॉक्स-बर्गके इन भले आदमियोकी दलीलपर दु ख होनेके साथ-साथ हँसी भी आती है। उनका खयाल

है कि अगर सरकारने *बाजार*-सूचनामें किसी प्रकारका भी संशोधन किया तो यह ट्रान्सवालके गोरे निवासियोंके साथ विश्वासघात होगा। क्या ये भले आदमी क्षणभर यह विचार भी करनेका कष्ट करेंगे कि इस तरहकी दलील देकर वे अपने आपको कितनी हास्यास्पद स्थितिमें रख रहे हैं, क्योंकि सरकारके लिए भारतीयोंके प्रति पहले घोर विश्वासघात किये बगैर गोरे निवासियोंको किसी प्रकार भी वचन देना असम्भव है? हमारे ये मित्र यह उम्मीद कैसे कर रहे हैं कि सरकार भारतीयोंको निश्चित रूपसे बस्तियोंमें भेजनेका निश्चित वचन दे, जब कि साम्राज्य-सरकारने इसी प्रश्नको लेकर युद्धकी घोषणातक कर दी थी? *बाजार*-सूचना निकल चुकी है, यह सही है। परन्तु हमने जो-जो बातें कही हैं उनको ध्यानमें रखते हुए इसका अर्थ यह तो नहीं लगाया जा सकता कि वह गोरे निवासियोंको किसी प्रकारका वचन है, यद्यपि हम यह स्वीकार करते हैं कि इस सूचनाको जारी करना सरकारकी कमजोरीका चिह्न है। परन्तु सूचना निकलनेपर यह तर्क असंगत है कि अब सरकारको उसमें अपनी पसन्दके मुताबिक किसी प्रकार भी संशोधन करनेका अधिकार नहीं है। हमारी तो विनीत राय है कि ट्रान्सवालकी शक्तिशाली सरकारके सामने सीधा रास्ता यह है कि उसने ब्रिटिश भारतीयोंको जो वचन दिये हैं उनका वह पालन करे; और केवल यही नहीं, इन वचनोंके अलावा भी उसका यह कर्तव्य है कि वह बलवान पक्ष अर्थात् यूरोपीयोंके विरोध और दुर्भावोंसे कमजोरों अर्थात् भारतीयोंकी रक्षा करे, क्योंकि स्वार्थ बलवानोंकी न्याय-भावनाको अन्धा कर सकता है। इसलिए सरकारको उनके विरोधसे विचलित नहीं होना चाहिए — भले ही वह जोरदार भी क्यों न हो — बल्कि परस्पर-विरोधी स्वार्थोंके बीच न्यायकी तराजूके पलड़े बराबर रख कर विशुद्ध न्याय ही करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–१२–१९०३

६८. जोहानिसबर्गमें भारतीयोंकी आम सभा

पिछले शुक्रवारकी सुबह जोहानिसबर्गमें हमारे भाइयोंकी एक बड़ी सभा हुई थी। उसमें २४ घंटेकी सूचनापर गाँव-गाँवसे प्रतिनिधि शामिल हुए, जिसके लिए उन्हें शाबाशी दी जानी चाहिए। विख्यात पेढ़ी मुहम्मद कासिम कमरुद्दीनके संचालक सेठ अब्दुल गनी सभाके अध्यक्ष थे। उन्होंने प्रभावशाली भाषण दिया और साबित किया कि सरकार कानूनमें जो फेरफार करनेवाली है वे काफी नहीं हैं। इस समय ट्रान्सवालमें भारतीय व्यापारी तीन तरहके हैं: (१) जो लड़ाईसे पहले परवाने लेकर व्यापार कर रहे थे, (२) जो बगैर परवाना लिए व्यापार करते थे, और (३) ब्रिटिश शासन आनेके बाद जिन्हें परवाने दिये गये। लड़ाईसे पहले जो परवाने लेकर व्यापार करते थे उन्हें नये परवाने दिये जा रहे हैं। अब सरकार यह सुधार करना चाहती है कि दूसरे वर्गके लोगोंको, अर्थात् लड़ाईसे पहले जो व्यापार करते थे, परन्तु जिनके पास तब परवाने नहीं थे, उन्हें भी परवाने दे दिये जायें। इस सभाका उद्देश्य यह था कि तीसरे वर्गके व्यापारियोंके साथ भी न्याय हो, अर्थात् जो लोग पहले व्यापार नहीं करते थे परन्तु जिन्हें ब्रिटिश अधिकारियोंने परवाने दे दिये थे उन्हें भी परवाने दिये जायें। स्वयं चेम्बरलेनने भी कहा था कि परवाने उन्हें भी जरूर दिये जाने चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–१२–१९०३

७०. ट्रान्सवालके व्यापार-संघ और ब्रिटिश भारतीय

अन्यत्र हम ब्रिटिश भारतीय सघ द्वारा ट्रान्सवालके व्यापार-सघोंके सदस्योके नाम भेजे गये गश्तीपत्रको[1] ज्योका-त्यो प्रकाशित कर रहे है। उनका सम्मेलन गत १८ तारीखको प्रिटोरियामें हुआ था और रैंड *डेली मेलने* उसकी कार्रवाईका विवरण प्रकाशित किया है। इसे पढ़नेपर ज्ञात होगा कि सम्मेलनमे उपस्थित प्रतिनिधियोपर उस गश्तीपत्रका कोई असर नही हुआ। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि उपनिवेश-सचिवने प्रस्तावित सशोधनपर विचार मुल्तवी करनेका निर्णय बहुत देरसे — ऐन वक्तपर — किया था, इसलिए गश्तीपत्र भी बहुत देरसे भेजा गया। गश्तीपत्रमे यह विशेष स्पष्ट रूपसे बताया गया है कि यदि लडाईसे पहले वगैर परवाने व्यापार करनेवाले भारतीयोके निहित स्वार्थोकी रक्षा करना उचित है, तो लड़ाईके बाद पैदा हुए ऐसे स्वार्थोंकी रक्षा करना और भी अधिक उचित है। पत्रमें युद्ध-पूर्वकी डचेतर गोरा समितिको भारतीय समाजने जो सहयोग दिया था, उसका भी उल्लेख था। उसका असर भी सदस्योपर होना चाहिए था। अपनी निजी जानकारीके आधारपर हम कह सकते हैं कि समितिके नेता बहुत चाहते थे कि इग्लैंडकी सरकारको आवेदनपत्र भेजनेमें भारतीय उनका साथ दे। उस समय भारतीयोपर लगाई गई निर्योग्यताओपर विशेष रूपसे चर्चा हुई थी और सब इस बातको मानते थे कि अगर लड़ाई हुई तो ये निर्योग्यताएँ खत्म हो जायेंगी। इसलिए सम्मेलनके सदस्योको यह शोभा नही देता कि अब वे उलट पड़े और भारतीयोके विरुद्ध ऐसी कड़ी कार्रवाईका सुझाव दें जिसका लड़ाईसे पहले बुरेसे-बुरे दिनोमें सपनेमे भी खयाल नही था। इस प्रकारके सुझावोके पक्षमे सदस्योंने जो दलीले पेश की वे अत्यन्त लचर थी, और कुछ तो विकृत तथ्योपर आधारित थी। हम यह खयाल पैदा करना नही चाहते कि तथ्योकी यह तोड-मरोड़ जान-बूझकर की गई थी। उसका कारण शायद यह भी हो कि वक्ता किसी चीजको निष्पक्ष दृष्टिसे देखनेमें असमर्थ ही थे, परन्तु हम तो कहते है कि वक्ताओं द्वारा कही गई कुछ बातें बिलकुल निराधार थी। जिम्मेवार पदोपर काम करनेवाले आदमी अपनी सार्वजनिक हैसियतमें ऐसी-ऐसी बाते गढ लें, जिन्हे खानगी रूपमे बिना जाँच-पड़ताल किये कहनेमें उन्हे खुद बड़ी लज्जा अनुभव हो, यह समयका ही प्रतीक है। खबर है कि, सम्मेलनके अध्यक्षने कहा .

> बारबर्टनके धनी भारतीय शहरके प्रमुख व्यापारियोंके पास गये थे। इन भारतीयोंने उनसे विनती की थी कि वे मकानात और परवाने प्राप्त करनेके उद्देश्यसे उन्हें अपने नामोंका उपयोग करने दें। एक भारतीयने यहाँतक डींग हांकी कि अगर उसे परवाना मिल जाये तो वह एक वर्ष भरके अन्दर-अन्दर काफिरोंके बीच व्यापार करनेवाले हर गोरेका बोरिया-बिस्तर बँधवा देगा।

अब हम बगैर किसी झिझकके कह सकते है कि इस कथनमे रत्ती भर भी सत्य नही है। बारवर्टनमे धनिक भारतीय है ही नही। वहाँ भारतीय व्यापारी बहुत थोडे है। और जो है, वे केवल बस्तीमें ही रहते है। शहरके अन्दर कोई भी भारतीय व्यापारी नही बसा है। जो गिनतीके भारतीय व्यापारी बस्तीमे कुछ व्यापार कर रहे है, वे इतने गरीब है कि व्यापार-संघके

१. देखिए पिछला शीर्षक।

अध्यक्षने उनपर जिस महत्त्वाकांक्षाका आरोप लगाया है, वे उसका सपना भी नही देख सकते। बस्तीके अधिकाश निवासी फेरीवाले हैं; इसलिए व्यापार-संघके अध्यक्षको हमारी चुनौती है कि वे उस भारतीयका नाम बतायें जिसने, कहा जाता है, बारह महीनेके अन्दर-अन्दर काफिरोके बीच व्यापार करनेवाले हर गोरे दूकानदारको निकाल बाहर करनेकी डीग हाँकी है। अध्यक्षने यह पँवाड़ा भी गाया :

> उनका इरादा यह नहीं है कि वे किसी दुश्मनीके भावसे . . . सरकारसे इसकी शिकायत करें। परन्तु उनका रुख पूरी तरहसे देशप्रेमी और मित्रका-सा होना चाहिए। दूसरे शब्दोंमें मानो वे कहना चाहते हैं— 'सज्जनो! आप क्या करनेवाले हैं, इसका जरा ध्यान रखिए। अच्छा हो, आप सावधान रहें, क्योंकि यह बड़ी गम्भीर बात है। इस विषयमें इस देशकी जनताकी भावनाएँ कितनी तीव्र और गहरी हैं; उसका आपको गुमान नहीं है। यह ऐसा प्रश्न है, जिसपर सारे देशकी जनता सरकारके खिलाफ एक हो सकती है। अगर सरकार गोरोंके विरोधमें रंगदार जातियोंका पक्ष ग्रहण करती है तो यह अत्यन्त गम्भीर मामला हो जाता है।'

ये भले आदमी व्यापारी है और इस मामलेमे इनका अपना स्वार्थ भरा पड़ा है। ये अगर बना सकते तो तमाम प्रतिस्पर्धियोका बहिष्कार करनेके लिए अपना एक गिरोह बना लेते। इनको ऐसी बाते कहते देखकर हमे हँसी आती है। ऐसी भाषामे सारे समाजकी तरफसे ये बोल रहे है मानो, खरीदारोके और इनके स्वार्थ एक ही हो। अध्यक्ष कहते है कि इस विषयमे जनताकी भावनाएँ कितनी तीव्र और गम्भीर है, उसका किसीको विश्वास भी नही हो सकता। परन्तु वे भूल जाते है कि भारतीयोका व्यापार एक बहुत बड़ी हदतक गोरे ग्राहकोपर ही निर्भर करता है। अगर उनकी भावनाएँ इतनी तीव्र है तो वे अभीतक इन भारतीय व्यापारियोको अपना सहारा कैसे देते है? अगर भारतीयोका बहिष्कार करना इन व्यापारियोके हाथोंमे है, तो भारतीयोको तग करके उपनिवेशसे भगा देनेके उद्देश्यसे भला इस तरह कानूनोका सहारा लेनेकी क्या जरूरत है? बहुत-से पाठकोके लिए यह एक नई खबर होगी कि सरकार रगदार जातियोका पक्ष करने लग गई है। अब लॉर्ड मिलनर कह सकते है कि वे चक्कीके दो पाटोके बीच पिस रहे है, क्योकि एक तरफ भारतीय कहते है कि लडाईसे पहले उनके साथ जैसा व्यवहार होता था अब सरकार उनके साथ उसकी अपेक्षा कही बुरा व्यवहार कर रही है और, उधर, इस सम्मेलनके सदस्य कहते है कि सरकारने भारतीयोको आश्रय दे रखा है।

भारतीय व्यापारी तो मुट्ठी भर है, परन्तु उनकी उपस्थितिसे उत्पन्न परिस्थितिको तिलका ताड़ बना दिया गया है। रगदार गिरमिटिया मजदूरोके रूपमे उपनिवेशपर जिस गम्भीर बुराईके छा जानेका खतरा है उसकी हलकेपनसे उपेक्षा कर दी गई है। क्योकि, सर जॉर्ज फेरारने अध्यक्षको वस्तुत· यह आश्वासन दे दिया है कि इन गिरमिटिया मजदूरोको स्थायी रूपसे यहाँ हरगिज नही बसने दिया जायेगा और इसके लिए हर सम्भव सावधानी बरती जायेगी। हम तो समझते है कि अगर इस देशकी जनताको एक आवाजसे सरकारका किसी मामलेमे विरोध करना चाहिए तो वह निस्सन्देह यह गिरमिटिया मजदूरोका मामला है।

सम्मेलनमे जो प्रार्थनापत्र भेजनेका निश्चय किया गया और जो प्रस्ताव स्वीकृत किये गये, उनके बारेमे हम कुछ भी नही कहेगे। वहाँ विभिन्न वक्ताओने जो भाषण दिये, उनके ये दोनो बाते अनुरूप ही है। प्रार्थनापत्रमे "गोरी और रगदार जातियोके मिश्रण" पर बहुत कुछ कहा गया है। क्या हम इस सम्मेलनके सदस्योको बता दे कि जहाँतक ब्रिटिश भारतीयोका

सम्बन्ध है यह बात वस्तुत. कही नही पाई जाती? अगर भारतीयोका किसी बातपर सबसे अधिक आग्रह है तो वह एक बात — जातिकी शुद्धता — ही है। परन्तु आप इस बातको विवादका विषय क्यो बनाते हैं? हम तो बहुत जानना चाहते है कि अबतकका पिछला इतिहास क्या है और प्रार्थनापत्र भेजनेवालोका अनुभव क्या है?

स्वीकृत प्रस्तावोमे से एक "किसी विधानको, जो ऐसे सिद्धान्तको वृथा बना दे, अत्यन्त भय और घृणासे देखता है।" यह वस्तुत. बहुत ही हँसीके लायक बात है। सदस्य एक ऐसी बातसे अत्यन्त भयभीत है जिसका कही अस्तित्व ही नही है। लॉर्ड एलेनबरोने कहा था कि अफगान युद्धके दिनोमे कुछ लोग ऐसे थे जिनको गुबरीलेकी आवाज सुनकर खयाल होता था कि उन्होने तोपोकी गड़गड़ाहट सुनी है। इस सम्मेलनके सदस्योकी हालत प्रत्यक्षत. कुछ ऐसी ही हो गई जान पड़ती है, क्योकि अभीतक तो ऐसा कोई कानून जनताको नही दिया गया है और जहाँतक हमें पता है जिस कानूनकी बड़ी आशायें दिलाई जा रही हैं वह अगर बन भी गया तो वह भारतीयोकी दृष्टिसे वर्तमान कानूनकी अपेक्षा कही बुरा होगा। सदस्योने यह तो खयाल कर ही लिया होगा कि अभी उपनिवेश-सचिवने जो सशोधन रखा है, वह यह कानून नही है — मुख्यत. तब जब कि उपनिवेश-सचिवने बहुत स्पष्ट रूपसे बता दिया था कि इस *बाजार*-सम्बन्धी सूचनाका व्यापक प्रश्नपर सचमुच क्या असर पड़ेगा।

ट्रान्सवालके विभिन्न व्यापार-सघोके सदस्योसे हमारा आग्रहपूर्वक अनुरोध है कि वे ब्रिटिश भारतीय-सघ द्वारा भेजे गये गश्तीपत्रके प्रारम्भिक अनुच्छेदोपर निर्विकार चित्तसे विचार करे। उसमे जो दो बातें कही गई है वे यूरोपीय दृष्टिकोणसे बिलकुल कारगर समझी जानी चाहिए। नगर-परिषदो अथवा नगर-निकायोमे अधिकतर व्यापारी ही हैं। भारतीय कहते है — "परवानोके विषयमें हमारा पक्ष इतना न्यायोचित है कि हमें अपने मामलोका निर्णय आपके हाथोमें सौंपने और उसको माननेमें जरा भी संकोच या झिझक नही है, बशर्ते कि आप अपने निर्णयके खिलाफ सर्वोच्च न्यायालयमें अपील करनेके हमारे अधिकारको छीन न लें। जहाँतक नये बसनेवालोका सवाल है, हम बिलकुल सहमत हैं कि श्री चेम्बरलेनने उपनिवेशोके प्रधान-मन्त्रियोके समक्ष भाषण देते हुए जो बाते कही थी उनकी दिशामें उनपर अवश्य उचित नियन्त्रण लगाये जा सकते हैं। अगर आप इस नीतिपर चलेंगे तो न्यूनाधिक परिमाणमे आप ब्रिटिश परम्पराओकी रक्षा कर लेंगे।"

हमारी विनीत सम्मतिमे, इस स्थितिपर किसीको विरोध नही हो सकता। हम व्यापार-सघोसे विनती करेंगे कि कुछ समय निकाल कर वे इस प्रश्नपर विचार करे और उसके बाद अपने-आपसे खुद ही पूछे कि क्या यह समझौता उचित नही है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४-१२-१९०३

७१. अपने संशोधनपर श्री डंकन

ट्रान्सवालके एशियाई विरोधी कानूनका जो योग्यतापूर्ण, सहानुभूति-भरा और ऐतिहासिक विवेचन उपनिवेश-सचिवने[1] किया, उसके लिए वे बधाईके पात्र है। अपने सशोधनके पक्षको जोरदार बनानेमे स्वभावतः उन्हे कोई कठिनाई नही हुई। बडे विश्वासजनक ढंगसे उन्होने बताया कि ब्रिटिश भारतीय ट्रान्सवालमे कानूनके खिलाफ भी जो व्यापार कर सके, उसका एकमात्र कारण श्री क्रूगरके शासन-कालमे उन्हे ब्रिटिश सरकारकी तरफसे प्राप्त सरक्षण था। इसलिए अगर उन्हे बस्तियोमे ठेल देना उचित भी हो, तो भी अब सरकार अपने कदमोको वापस लेकर ऐसा नही कर सकती। जैसा कि उन्होने बताया, यह प्रश्न भावुकता या नीतिका नही, विशुद्ध न्यायका है। इसलिए उन्होने सदस्योसे, और उनके द्वारा सामान्यत ट्रान्सवालके लोगोसे भी, अनुरोध किया कि वे इस प्रश्नपर निर्विकार चित्तसे विचार करे और यह सोचे भी नही कि वर्तमान सरकार भारतीयोके साथ धोखा कर सकती है। दयनीय बात तो यह है कि, सरकारको यह सब पहले नही सूझा। यह बात भी आसानीसे समझमे नही आती कि वह एक शासन-सम्बन्धी मामलेमे इतनी दौड़धूप क्यो करती है और *बाजार*-सम्बन्धी सूचनामे सशोधन करनेके लिए परिषदमे क्यो जाती है। श्री डंकनने खुद स्वीकार किया है कि कानूनकी दृष्टिसे *बाजार*-सम्बन्धी सूचनाका कोई महत्त्व ही नही है, क्योकि उसे कानूनका अग नही समझा जा सकता। हम यहाँ उन्हीके शब्द देते है:

> **सबसे पहले उनको यह याद रखना चाहिए कि यह कानून नहीं बल्कि एक सूचना-मात्र है। इसमें वह नीति बताई गई है, जिसपर सरकार देशके कानूनकी व्याख्याके मामलेमें चलना चाहती है।**

इसलिए यह स्पष्ट है कि इस प्रश्नको परिषद्में ले जानेकी जरा भी जरूरत नही थी। साधारण मनुष्योके लिए विधान-परिषदके विभिन्न कार्योंके भेदोको समझना कठिन है। वे क्या जानें कि कानूनकी-सी सत्ता रखनेवाले परिषदके कार्य कौन-से है, और दूसरे कार्य कौन-से है, जो ऐसी सत्ता नही रखते, बल्कि परिषदका केवल मत प्रकट करते है। साधारण मनुष्यके विचारमे तो ऐसी सारी सूचनाएँ देशके कानून ही है। वे यह भी भूल जाते है कि पहले भारतीयोको वास्तवमे जो अधिकार प्राप्त थे, वे इस सूचना द्वारा छिन गये है और नया सशोधन उनमे-से कुछ अधिकार वापस दिलानेके लिए पेश किया गया है। वे इसे एक रियायत मानते है और इसलिए इसका विरोध करते है। उनके साथ आप चाहे कितनी ही दलील कीजिए या उन्हे कितना ही समझाइए, उनके दिमागमे जो खयाल पैदा हो गया है वह नही हटेगा। इसलिए हमारा खयाल तो यह है कि पहले तो सरकारने यही गलती की कि वह *बाजार*-सम्बन्धी सूचनाको परिषदमे ले गई। उसने खुद अपनी मर्जीसे अपने हाथ-पैर बाँध लिये है और एक अनिष्ट आन्दोलनको पैदा होनेका मौका दिया है। हाँ, अगर सरकारका हेतु यही रहा हो कि ऐसा आन्दोलन सचमुच पैदा हो, ताकि एशियाई-विरोधी नीतिपर अमल करनेमे उसके हाथ मजबूत हो, तो बात दूसरी है। परन्तु उपनिवेश-सचिवका भाषण इस तरहकी राय बनानेसे हमे रोकता है।

फिर, अपने प्रस्तावके पक्षमे इतना कायल कर देनेवाली दलील देनेके बाद समझमे नही आता कि उपनिवेश-सचिवने अपवादोमे उन भारतीयोको भी क्यो नही शुमार कर लिया,

१. श्री पैट्रिक डंकन।

जिन्हें पिछले वर्ष बगैर किसी शर्तके परवाने दे दिये गये थे, यद्यपि वे लड़ाईसे पहले व्यापार नहीं करते थे। उन्होने अपने प्रभावशाली तर्कका आधार ब्रिटिश सरकारके पिछले कार्योको बनाया। वही दलील अभी ऊपर बताये व्यापारियोके मामलेमें और भी अधिक अच्छी तरह लागू होती है, जिनके लिए जोहानिसबर्गका ब्रिटिश भारतीय संघ इतना प्रशसनीय प्रयत्न कर रहा है। पिछले वर्ष जिन भारतीयोको परवाने दिये गये थे, अगर उनको बस्तियोमे भेजा गया तो वह भी ब्रिटिश सरकार द्वारा किये गये एक कार्यको पलटना ही कहा जायेगा। श्री चेम्बरलेनने हमें आश्वासन दिया है कि एक ब्रिटिश अधिकारीके लेखका वही महत्त्व होता है, जो बैकके नोटका होता है। सो, इन व्यापारियोके परवाने नोट है, जिनपर दस्तखत करनेवाले ब्रिटिश अधिकारी ही थे। हमने इनमें से बहुत-से परवाने देखे है और एकपर भी हमने किसी प्रकारकी शर्त नही पाई है। तब उनको दूसरे परवानोसे अलग क्यो माना जाता है? ये बाते ऐसी है जिनपर सरकारको विचार करना उचित था। हम पहले कह चुके है कि सरकारको न्याय करनेमें डर लगता है और चूंकि प्रस्तावित संशोधनपर बॉक्सबर्ग और बारबर्टनमे इतना शोर-गुल हो रहा है, इसलिए बहुत सम्भव है, सरकार सोचती हो कि ब्रिटिश भारतीयोके साथ समानता और न्यायका व्यवहार करनेके झगड़ेमें पड़कर उसे अब लोगोका बुरा नही बनना चाहिए। परन्तु ब्रिटिश झंडेको अपना कहनेवाली सरकारोकी परम्परा तो ऐसी नही है, इसलिए हम अब भी आशा करते है कि जिन गरीब व्यापारियोको बस्तियोमें चले जानेकी हिदायते दी गई है, उनके परवाने बस्तियोसे बाहर व्यापार करनेके लिए नये कर दिये जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४-१२-१९०३

७२. ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय

ट्रान्सवालमें लगातार ऐसी उद्वेगकारी घटनाएँ हो रही है कि अभी कुछ समय और हमको अपना ध्यान उनकी ओर देना पड़ेगा और दूसरी बहुत-सी बातोको छोड़ देना होगा, यद्यपि हम उन्हें कुछ स्थान देना चाहेगे। गत २२ तारीखको विधान-परिषदमें जो बहस हुई वह अत्यन्त मनोरजक और शिक्षाप्रद थी। ट्रान्सवाल-सरकारके भारतीयोकी स्थितिसे सम्बन्धित रुखकी हमने अनेक बार शिकायत की है। इसलिए इस बार उपनिवेश-सचिवके प्रस्तावपर उसने जो मजबूत रुख इख्तियार किया है उसपर उसे हम तुरन्त धन्यवाद देते है। इसपर अगर वह कोई दूसरी तरहका रुख लेती तो सचमुच आश्चर्यकी ही बात होती। फिर भी, अभी हालमे ब्रिटिश भारतीयोकी स्थिति इतनी अधिक डावाँडोल हो गई थी कि हमे निश्चय नही हो रहा था कि सरकार लडखड़ा नही जायेगी और स्वार्थी व्यापारियोके दबावसे झुककर अपने प्रस्तावको वापिस नही ले लेगी। अन्तमें उसने सर जॉर्ज फेरारके सशोधनको स्वीकार तो कर लिया, परन्तु हमारा खयाल है कि इससे उसने इस प्रश्नपर जो रुख ग्रहण किया है, उसमे कोई अन्तर नही पड़ता। उपनिवेश-सचिव और महान्यायवादी (अटर्नी-जनरल) दोनोने यह पूर्णतया स्पष्ट कर दिया कि सर जॉर्ज फेरारका सुझाव स्वीकार करनेके मानी ये नही है कि जो भारतीय लडाईसे पहले परवाने लेकर, अथवा बगैर परवानोके भी, व्यापार करते थे उनके परवानोको सरकार मानना नही चाहती। सर रिचर्ड सॉलोमनने बगैर किसी रू-रियायतके इस बातका बड़ी दृढ़ताके साथ समर्थन किया। विद्वान वक्ता महोदयने कहा:

अगर माननीय सदस्य प्रस्तावमें संशोधन नहीं करेंगे तो वे एक बहुत बड़े वर्गके साथ अन्याय करनेके दोषी होंगे। मालूम होता है कि साम्राज्य-सरकारने जो रुख धारण किया है उससे माननीय सदस्योंको आश्चर्य हुआ है; परन्तु भारतीय साम्राज्यके सम्बन्धमें सम्राट्की सरकारकी जिम्मेवारियोंका जब हम खयाल करते हैं, और वहाँ बसे करोड़ों लोगोंका और सम्राट्के प्रति उनकी वफादारीका जब हमें ध्यान आता है, तब हमारी समझमें फौरन यह बात आ जाती है कि मनुष्य-मनुष्यके बीच न्यायकी तराजूके पलड़े बराबर रखना यहाँ कितना आवश्यक है। लोगोंको साम्राज्यके न्यायपूर्ण शासनमें विश्वास है, तभी तो साम्राज्यमें बसनेवाले इन करोड़ों लोगोंकी वफादारीपर ब्रिटेन भरोसा करता है।

गैर-सरकारी सदस्योमे से श्री हॉस्केनने बहुत ही सहानुभूतिपूर्ण रुख प्रकट किया और सदनको बताया कि भारतीय-विरोधी आन्दोलन केवल व्यापारियोतक ही सीमित है और उसमें जोहानिसवर्गका व्यापार-मण्डल शरीक नही है। उन्होने यह भी कहा कि भारतीय व्यापारियोसे उपनिवेशको किसी प्रकार भी हानि नही हो रही है। श्री हॉस्केनने बताया कि जोहानिसबर्गके व्यापार-संघका रुख तो यह है कि लोग भारतीयोके साथ व्यापार करते है, केवल इसीसे सिद्ध हो जाता है कि उनकी यहाँ माँग है। अगर यहाँके लोगोको भारतीय व्यापारियोके विरुद्ध सचमुच कोई खास आपत्ति होती तो वे उनका बहिष्कार करते और उनके लिए यहाँ व्यापार करना असम्भव कर देते।

विरोधी पक्षके नेता श्री लवडे और श्री बोर्क थे। श्री लवडेकी बात तो हम समझ सकते हैं। पिछली हुकूमतके जमानेमें भारतीयोके पक्षमें उन्होने कभी एक शब्द भी नही कहा था। उनकी दृष्टिसे तो भारतीय एक विशुद्ध अभिशाप है; परन्तु हम स्वीकार करते है कि श्री बोर्कने जो-कुछ कहा, उसे पढ़ कर हमे बड़ी निराशा हुई। हम उन्हें सदासे ट्रान्सवालका एक उदारमना नागरिक मानते आये है, और हमारा खयाल था कि जो भी कोई प्रश्न उनके सामने निर्णयके लिए रखा जाये, उसपर वे निष्पक्षतापूर्वक विचार कर सकते है। परन्तु हमारी नम्र राय है कि गोरे व्यापारियोके स्वार्थोकी रक्षाकी चिन्तामे वे उनके दुर्भावसे प्रभावित हो गये, अन्यथा उनकी कमजोर दलीलका इसके अतिरिक्त दूसरा कोई कारण दिखाई देना कठिन है। यह बात उनकी समझमे ही नही आ सकी कि लड़ाईसे पहले ब्रिटिश सरकारने जिन भारतीय व्यापारियोको पूरा सरक्षण दिया था और जिनको उसके प्रतिनिधियोने ट्रान्सवालके कानूनोको तोड़ने और अपना व्यापार जारी रखनेके लिए प्रोत्साहित किया था, उनको अब भी उसी सरकारसे, यद्यपि वह सरक्षण देनेकी और भी अच्छी स्थितिमे है, सरक्षण मिलना जारी क्यो रहना चाहिए। उन्होने बड़ी स्पष्टताके साथ इस बातको स्वीकार किया कि भारतीयोके व्यापारका विरोध बोअरोकी तरफसे नही आया था, बल्कि ब्रिटिश व्यापारियोकी ओरसे आया था। इसलिए वे अब भारतीय स्पर्धाकारियोसे ब्रिटिश व्यापारियोके लिए संरक्षणकी माँग करते है, भले ही इसके लिए ब्रिटिश भारतीयोके निहित स्वार्थोको छीन कर ब्रिटिश सरकारको झुकनेकी जरूरत पड़े। श्री बोर्क बहुत पुराने अनुभवी व्यापारी है और व्यवसायीके रूपमे उनकी जानकारी ज्यादा होनी चाहिए। उनको तो ऐसी सामान्य दलील नही दुहरानी थी कि अगर भारतीय व्यापारियोपर रोक नही लगाई गई तो वे यूरोपीय व्यापारियोको क्षेत्रसे भगा देंगे। वे इस बातको भूल ही जाते है कि जब उनपर किसी प्रकारका प्रतिबन्ध नही था, तब भी वे ऐसा करनेमे सफल नही हुए; और यह भी कि प्रिटोरियामे यूरोपीयोके व्यापारके मुकाबले भारतीयोका व्यापार बहुत ही कम है।

परन्तु हम एक बात और कह दें। अगर यह भय ठीक भी हो तो भी वर्तमान प्रश्नसे उसका कोई सम्बन्ध नही है, क्योकि विधान-परिषद तो अभी केवल पुराने परवानोंके प्रश्नपर ही विचार कर रही है। उपनिवेश-सचिवके और श्री बोर्कके सशोधनोके बीच सर जॉर्ज फेरारने एक मध्यम मार्ग सुझाया था। उसका नतीजा यह है कि "लड़ाईसे पहले व्यापार करनेवाले तमाम एशियाइयोके मामलोकी जाँच करनेके लिए एक आयोगकी नियुक्ति होगी। इस बीच एशियाई दूकानदारोको अस्थायी परवाने दे दिये जायेंगे और सरकार एक नये कानूनका मसविदा पेश करेगी, जिसमें केप कालोनीके प्रवासी-अधिनियमके सिद्धान्तोका समावेश होगा।"

हम इस आयोगकी नियुक्तिका स्वागत करते हैं; क्योकि हमने सदा यह अनुभव किया है कि वर्तमान परवानेदारोकी वास्तविक संख्याके बारेमे बडी गलतफहमी है और भारतीय व्यापारके परिणामोको श्वेत-संघ और अन्य संस्थाओने बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बताया है। इसलिए आयोगकी मददसे इस गलतफहमीको दूर करनेका अवसर मिल जायेगा और हर आदमी जान लेगा कि उपनिवेशमें भारतीय व्यापारकी वास्तविक स्थिति क्या है। भारतीयोने तो हमेशा यह माँग की है कि उनके कार्योपर रोशनी डाली जाये। अत. हम आयोगके परिणामोंकी प्रतीक्षा बहुत विश्वासके साथ कर रहे है। अगर हमारी अपेक्षाएँ सही साबित हुई तो ट्रान्सवालके विचारशील उपनिवेशवासियोके लिए भारतीय-विरोधी आन्दोलन जारी रखनेका कोई कारण नही रह जायेगा, क्योकि उससे किसी भी पक्षको कोई लाभ नही है। उलटे, दोनो समाजोंके बीच, जिनको उचित था कि एक साथ शान्तिपूर्वक रहते, इस आन्दोलनके कारण बेकार भावनाओंकी कटुतामात्र बढ़ती है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३१-१२-१९०३

७३. ट्रान्सवालके रंगदार रेल-यात्री

जिस दिन श्री डकनने विधान-परिषदमें *बाजार*-सम्बन्धी सूचनापर अपना संशोधन पेश किया, उसी दिन श्री एच० सॉलोमनने रेलोके रगदार मुसाफिरोंके सम्बन्धमें अपना प्रस्ताव रखा। यद्यपि उन्होने जो-कुछ कहा वह प्राय· वतनी मुसाफिरोंके बारेमें ही था, फिर भी उससे बडी शिक्षा मिलती है, क्योकि उससे प्रकट होता है कि "वतनी" और "रंगदार आदमी" जैसे शब्दोका पर्याय रूपमें प्रयोग करके उनके अन्तर्गत ब्रिटिश भारतीयोको भी घसीट लेना कितना आसान है। माननीय सदस्यका प्रस्ताव भी इतना गोल-मोल और पूर्वापर-विरोधी था कि सर रिचर्डको उन्हे फटकार बतानेमें कोई कठिनाई नही हुई, जिसपर श्री सॉलोमनको अपने शब्द वापिस भी लेने पडे। सर रिचर्डकी आपत्ति यह थी कि अगर वे रंगदार जातियोके लोगोको पहले दर्जेमें नही बैठने देना चाहते तो दूसरे दर्जेके मुसाफिरोंपर भी उन्हे न लादना चाहिए। इसपर श्री सॉलोमनको स्वीकार करना पड़ा कि वे इस तरहकी कोई बात कहना नही चाहते थे। उनका खयाल था कि रगदार जातियोंके लिए उसी दर्जेमें अलग प्रवन्ध रहे।

हम सर रिचर्डसे इस बातमें सहमत हैं कि यह प्रस्ताव असामयिक है और इससे अकारण ही कटुता और दुर्भावना फैलेगी। अगर गोरे मुसाफिर पसन्द नही करते कि रेलोमें वतनी आदमी अथवा एशियाई उनके डिब्बोमे सहयात्रीके तौरपर सफर करे, तो हमारी रायमे फूटसे बचने और रंगदार यात्रियोके लिए अलग डिब्बोकी व्यवस्था करनेमे ही समझदारी होगी, जिससे

कि, यदि किसी गोरे यात्रीको अन्य डिब्बेमे स्थान न मिले और वह रंगदार यात्रियोके डिब्बेमें — यद्यपि वह भलीभाँति जानता है कि यह डिब्बा रगदार यात्रियोके लिए ही है — दी गई जगहका लाभ उठाये, तो किसी प्रकारकी शिकायतका मौका न रहे।

स्पष्टत यह मामला कानून बनानेके बजाय रेलवे व्यवस्थासे अधिक सम्बन्धित है। रेलवे खुद ही इतना प्रबन्ध कर सकती है। श्री सॉलोमनके प्रति आदर रखते हुए भी, हमारा खयाल है, इस तरहका प्रस्ताव पेश करनेमें उन्होने सदनकी प्रतिष्ठाका खयाल नही रखा। ऐसा प्रतीत होता है कि इस कार्यमे एक दोषको दूर करने अथवा एक सार्वजनिक महत्त्वके प्रश्नकी ओर सरकारका ध्यान प्रमुख रूपसे खीचनेकी इच्छा उतनी नही थी, जितनी कि लोगोके दुर्भावको तुष्ट करनेकी अभिरुचि। इसीलिए अगर डॉ० टर्नर जैसे लोगोको प्रस्तावकी सीमाके बाहर जाकर भी उनका विरोध करना पडा तो इसके लिए जिम्मेदार श्री सॉलोमन ही हैं। हाँ, अप्रत्यक्ष रूपमे इस विवादसे एक प्रकारका लाभ ही हुआ। इससे प्रकट हो गया कि सर रिचर्ड सॉलोमन रंगदार जातियोके एक मित्र और हितैषी हैं जो चाहते है कि आदमी-आदमीके बीच न्यायका व्यवहार होना चाहिए, और यह भी कि लोक-भावना चाहे कितनी ही प्रबल हो, अगर वह न्यायकी मूल भावनाके विपरीत होगी तो भी वे पथसे विचलित नही होगे।

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, ३१-१२-१९०३

७४. "कैवल्य"पर टिप्पणी

[१९०३? १९०४][1]

ईसाई पादरियोने उतावलेपनमे "कैवल्य"में[2] हिन्दुओके महान विश्वासका अर्थ "शून्य"मे विश्वास किया है। वे कहते है कि "हिन्दुओके विश्वासके अनुसार शून्यमे विलीन हो जाना — अस्तित्व खो देना — सबसे बडी चीज है।" इस भाष्यने ईसाई और हिन्दू धर्मोके बीच एक गहरी खाईका निर्माण कर दिया है जिससे दोनोकी हानि हुई है।

संस्कृतके जिस शब्दका अनुवाद "शून्य" किया गया है उसके अर्थके सम्बन्धमे मतैक्य न होनेके कारण यह सारी भ्रान्ति उत्पन्न हुई है। साधारण तौरपर वह जिस अर्थकी व्यजना करता है सो इस मान्यताके कारण कि हम इस समय जो है वही सब-कुछ है, और तब हिन्दू दार्शनिक कहता है, "शून्य मेरे लेखे सब-कुछ है; क्योकि तुम जिसे सब-कुछ कहते हो वह तो प्रत्यक्ष ही नश्वर है।" (क्या शरीर और इन्द्रियोका नाश नही होगा और इसी तरह दूसरी सब वस्तुओका भी जिन्हे हम देखते या अनुभव करते है?) शून्यको इस तरह देखे तो उससे वही विचार व्यक्त होता है जो अन्तिम मोक्षसे होता है — अर्थात् ईश्वरसे एकरूप होना। यह ईश्वर स्पेन्सरका महान "अज्ञेय" तत्व है, किन्तु वह सापेक्ष अज्ञेय है; अर्थात् वह स्पेन्सर द्वारा वर्णित ज्ञानके साधारण साधनोसे ज्ञेय नही है। इतनेपर भी यदि आप निरी साधारण बुद्धिसे परे किसी उच्चतर साधन

१. इस प्रलेखकी ठीक तारीख नहीं मिलती। मूल पत्र डर्बनके आवासी मजिस्ट्रेट श्री जेम्स स्टुअर्टके संग्रहमें गांधीजीके "पत्र: जेम्स स्टुअर्टको", जनवरी १९, १९०५ के साथ प्राप्त हुआ है और अब कुमारी केली केम्बेलके पास है। इसपर श्री स्टुअर्टकी लिखी यह सूचना है: "यह श्री मो० क० गांधीका लिखा हुआ है। मुझे १९०३-४ के लगभग डर्बनमें दिया गया था।" इस कालमें गांधीजीने हिन्दू धर्मपर थियोसॉफिस्टोंके साथ बहुत चर्चाएँ की थीं। देखिए *आत्मकथा*, भाग ४, अध्याय ५।

२. अंग्रेजीका "इटर्नल-ब्लिस" लिखते हुए गांधीजीके सामने कैवल्य, नित्यानन्द, मोक्ष अथवा निर्वाण कौन-सा शब्द था, यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता।

की सत्ता स्वीकार करे, जिसे वास्तवमें हिन्दू और ईसाई दोनो ही स्वीकार करते है तो "तत्" — "वह तत्व" अज्ञेय नही हो सकता।

हिन्दू कहते है वह जाना जा सकता है। ईसाई भी ऐसा ही कहते है — "जिन्होने मुझे जान लिया उन्होने परमपिताको जान लिया।" किन्तु फिर इस उद्धरणका अर्थ क्या है? कदाचित् शब्दोको छोडकर दोनो बातोमें कोई अन्तर नही है। "जब कुहरा हट जायेगा तब हम एक दूसरेको अधिक अच्छी तरह पहिचानेगे।" तबतक यदि हम मतभेदकी बातोकी अपेक्षा एकताकी बातोको खोज निकालनेकी कोशिश करे तो क्या वह सम्भव नही है कि हमे कुछ पहले उस स्थितितक पहुँचनेमे सहायता मिले।

[अंग्रेजीसे]

कुमारी केली केम्बेल, डर्बन के सौजन्यसे प्राप्त हस्तलिखित मूल प्रतिसे।

७५. पिछले सालका सिंहावलोकन

ट्रान्सवाल

गत वर्ष इन दिनों ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय आशासे परिपूर्ण थे, क्योंकि श्री चेम्बरलेन उन्हे आशा दिलाते आ रहे थे कि जो लोग इस देशमें बस गये है और जिन्हे सामान्य प्रवासी अधिनियमके अनुसार उपनिवेशमे आ जानेकी अनुमति मिल सकती है, वे तो, बहरहाल, "न्यायोचित और सम्मानास्पद व्यवहारके अधिकारी"[1] होगे ही। उस वक्त स्थिति बहुत अनिश्चित थी। व्यापारियोके नाम सूचनाएँ जारी की गई थी कि उनके परवाने नये नही किये जायेंगे। १८८५ का कानून ३ उपनिवेशकी कानूनकी किताबमें अब भी मौजूद था। ट्रान्सवालके कुछ भागोमे पैदल-पटरीके नियमो तकको कार्यान्वित कराया जा रहा था। जोहानिसबर्गकी भारतीय बस्तीके निवासियोका भाग्य अधरमे झूल रहा था। बस्तीकी सफाई सम्बन्धी हालतके बारेमे डॉ० पोर्टरकी खयाली रिपोर्ट नगी तलवारकी तरह उनकी गरदनपर लटक रही थी। उपनिवेश भरके श्वेत-सघ सभाएँ करके सरकारसे माँग कर रहे थे कि जो ब्रिटिश भारतीय उपनिवेशमे पहले ही बस गये है उनपर और पाबन्दियाँ लगाई जाये। एशियाई दफ्तरोके तौर-तरीकोसे भारी शरारत हो रही थी। जोहानिसबर्गके दफ्तरमें भ्रष्टाचारका बोलबाला था और शरणार्थी तबतक उपनिवेशमें घुस नही सकते थे, जबतक कि परवाने लेनेके लिए दोनो हाथो धन न उलीचे। और, कई अवसरोपर ये परवाने निकम्मे कागज ही होते थे। श्री चेम्बरलेनसे प्रिटोरियामे जो शिष्टमण्डल मिला था उसके सामने उनका जोरदार बयान ही कठिनाइयोके इन घने बादलोको चीरकर दिखाई देनेवाली आशाकी एकमात्र किरण था, हालांकि, दुर्भाग्यवश, वह बादलोको छिन्न-भिन्न करनेके लिए काफी सबल सिद्ध नही हुआ। आगे चलकर, अर्थात् पिछले अप्रैलके महीनेमें, जब भारतीयोने सरकारसे प्रार्थना की कि उनके दर्जेकी साफ-साफ व्याख्या कर दी जाये और मौजूदा परवानोके बारेमें आश्वासन दिया जाये, तब सरकारने *बाजार*-सूचनाके नामसे मशहूर, सूचना ३५६ भारतीय समाजपर लाद दी और १८८५ के कानून ३ के अनुसार, जो पिछले कई वर्षोसे निःसत्व पड़ा हुआ था, ३ पौंडका पजीकरण (रजिस्ट्रेशन)-कर वसूल करनेके लिए कप्तान हैमिल्टन फाउलको एशियाइयोका रजिस्ट्रार मुकर्रर

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ३०६।

कर दिया। जोहानिसबर्गके ब्रिटिश भारतीय संघने लॉर्ड मिलनरकी शरण ली,[1] परन्तु उसे लॉर्ड महोदयसे जबानी सहानुभूतिके सिवा कुछ नही मिला। उन्होने भारतीय समाजको जोरदार सलाह दी कि वह ३ पौंडी करकी अदायगीका विरोध न करे; और यह वचन भी दिया कि परवाने आदिके जो मामले उनकी निगाहमे लाये गये है, उनकी वे सावधानीसे जाँच करेगे। परमश्रेष्ठने यह महत्त्वपूर्ण बयान दिया कि *बाजार*-सूचना सिर्फ एक अस्थायी उपाय है और निकट भविष्यमे, कदाचित् विधान-परिषदके तत्कालीन अधिवेशनमे ही, १८८५ के कानून ३ के स्थानपर एक विधेयक पेश किया जायेगा।

आज स्थिति पहलेसे बहुत अच्छी नही है, यद्यपि कुछ बातोमे, निश्चय ही, प्रगति बताई जा सकती है। *बाजार*-सूचना पर अब भी अमल हो रहा है और उसके द्वारा सर्वनाश होनेसे बचनेके लिए ब्रिटिश भारतीय संघको अपने सारे साधन काममे लाने पड़े है। व्यावहारिक रूपमे वह सूचना दुविधाजनक पाई गई है। परवाना-अधिकारी उसके अर्थके बारेमे निश्चित निर्णय हमेशा नही दे सके है। नतीजा यह हुआ कि निहित स्वार्थोकी रक्षाके लिए समाजको भगीरथ-प्रयत्न करने पडे। और तो भी आज कोई यह नही कह सकता कि तमाम मौजूदा परवानोको स्वीकार किया जायेगा या नही। ट्रान्सवालके उपनिवेश-सचिवने सूचनामे ऐसा संशोधन करनेका प्रयत्न किया, जिससे उन भारतीयोके हितोकी रक्षा हो सके जो लडाईके पहले ब्रिटिश हस्तक्षेपके कारण परवानोके बिना व्यापार करते थे। इस मामलेमे अन्तमे समझौता हो गया। सरकारने सर जॉर्ज फेरारका वह संशोधन स्वीकार कर लिया है जिसमे ऐसे ब्रिटिश भारतीयोके दावोकी जाँच करनेके लिए आयोग (कमीशन) नियुक्त करनेकी बात कही गई है और केपके प्रवासी-अधिनियमके ढंगपर कानून पेश करनेकी सरकारसे प्रार्थना की गई है। अभी यह कहना सम्भव नही कि इस संशोधनका असर क्या होगा। हमने उसे सद्भावनाओका प्रमाण समझकर मंजूर कर लिया है और, इसलिए, उसका एक ही अर्थ लगाया है, जो सम्भव है और जो वर्तमान सरकारकी घोषणाओके भी अनुकूल है। वह अर्थ यह है कि, जो लोग लड़ाईसे पहले व्यापार कर रहे थे उन सबको *बाजारोंसे* बाहर व्यापार करनेके परवाने दिये जायेगे और केप जैसा कानून बननेका अर्थ यह होगा कि मौजूदा एशियाई-विरोधी कानून बिलकुल उठा दिये जायेगे और जिस भारके नीचे भारतीय पहलेसे ही दबे हुए है, उसमें कोई वृद्धि नही होगी। एक बात बिलकुल साफ हो जानी चाहिए कि ब्रिटिश सरकारके राज्यमे पुरानी हुकूमतकी अपेक्षा स्थिति अधिक असह्य न बना दी जाये — भले ही इसका हेतु इतना ही क्यो न हो कि, लडाई छेडनेके जो कारण जाहिरा तौरपर बताये गये थे उनमें से एक कारण ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोपर मढी हुई निर्योग्यताएँ भी था। इस वर्षमे दो निर्णयात्मक सुधार हुए है। परवाना विभाग फिर परवानोके मुख्य सचिवको सौप दिया गया है और हमे जो समाचार मिले है उनसे हम कृतज्ञतापूर्वक कहते है कि भ्रष्टाचार बिलकुल मिट गया है और वास्तविक शरणार्थियोको बेजा देरके बिना परवाने मिल जाते है। एशियाई दफ्तर अब भी है। हमे पता नही, क्यो है, परन्तु हमे मालूम हुआ है कि "एशियाइयोके संरक्षक" के रूपमे श्री चैमने भारतीय समाजके हितैषी और हमदर्द है।

जोहानिसबर्गकी बस्ती भारतीयोके हाथसे निकल गई है। यदि ऐसा न होता तो भी कोई भारी मुसीबत न होती, क्योकि अकेले जोहानिसबर्गमे भारतीयोको उस छोटेसे क्षेत्रके भीतर ९९ वर्षके पट्टेका अधिकार दिया गया था और अब वहाँ निवासियोको भरोसा नही है कि उन्हे वही सुविधाएँ दी जायेगी या नही; यह भी भरोसा उन्हे नही है कि नया स्थान

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ३२४।

कहाँ तय किया जायेगा। कुछ भी हो, वह स्थान मौजूदा जगहके बराबर लाभदायक हरगिज नही होगा।

सक्षेपमें, ट्रान्सवालकी यह स्थिति है। एशियाई गिरमिटिया मजदूरोको लानेकी धमकीसे गडबडी और बढ रही है, और इतने अधिक गिरमिटिया लोगोका अस्तित्व भारतीयोंको बाँधनेवाले बन्धन और भी कडे करनेका बहाना बनाया जायेगा। किन्तु दक्षिण आफ्रिकामें लॉर्ड मिलनर एक मजबूत आदमी है। सही या गलत, जब उन्हे विश्वास हो गया कि युद्ध आवश्यक है तो सारे विरोधके बावजूद उन्होने उसे पार लगाया। इसलिए हम आशा रखते रहेंगे कि परमश्रेष्ठने जो वचन दिये है उन्हे वे पूरा कर सकेंगे और ब्रिटिश भारतीयोके बारेमे सरकारी नीतिके सिद्धान्त साफ तौरपर तय कर सकेंगे। स्वार्थी व्यापारियोका भारतीयोके प्रति द्वेष नि सन्देह प्रबल है, मगर हमारी रायमे यह और भी बड़ा कारण है कि परमश्रेष्ठ दृढ़ रहें और सबलोके विरोधसे निर्बलोकी रक्षा करे।

ऑरेंज रिवर कालोनी

इस उपनिवेशका विचार करते है तो निराशा ही हाथ लगती है। वर्तमान शासनने पुराने गणराज्यके भारतीय-विरोधी कानूनोकी सतर्कताके साथ रक्षा की है और उन पर हर तरहकी दस्तन्दाजीको रोका है। जैसा कि इन स्तम्भोमें बताया गया है, उसने आगे बढकर पेशगी विधान भी पास किया है; तमाम रगदार प्रजापर नियन्त्रणकी असाधारण शक्ति उसने नगरपालिकाओको सौपी है। श्री चेम्बरलेनने मामलेपर बारीकीसे विचार करके जल्दी ही सुविधा कर देनेका वचन दिया था, किन्तु उसका कोई फल नही निकला। ब्रिटिश शासनके लगभग दो वर्ष बाद भी ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें किसी भी स्तरके भारतीयका प्रवेश नही है। जो कुछ बरसो पहले उस उपनिवेशमे व्यापार करते थे उन्हे भी वापस आनेकी इजाजत नही है। हमने यहाँतक सुना है कि सारी प्रारम्भिक कार्रवाइयोमे से गुजर चुकनेके बाद जो थोडे-से भारतीय नौकरोकी हैसियतसे कालोनीमें रहते थे, अभी पिछले महीनेमें उन्हे इसलिए गिरफ्तार किया गया और उनपर जुर्माना भी किया गया कि, शायद वे पहलेसे भिन्न कोई नौकरी इस समय कर रहे थे। श्री लिटिलटनको[1] उदार साम्राज्यवादी भावनाएँ रखनेका श्रेय प्राप्त है। वे जिस पदपर है वहाँ अपने साम्राज्यवादको कसौटीपर परख सकते है। क्या वे अवसरके अनुकूल प्रवृत्त होकर उपनिवेशका द्वार ब्रिटिश भारतीयोके लिए खोल देंगे? — बेशक बिना प्रतिबन्धोके नही, क्योकि यह मुद्दा हमने मान लिया है कि दक्षिण आफ्रिकामे रग-द्वेषके अस्तित्वको ध्यानमे रखकर प्रवास-नियमनके लिए सर्व-सामान्य कानून बनाया जा सकता है, किन्तु हमारा यह दृढ मत है कि किसी भी वर्ग, धर्म या रगके आदमीको प्रवासी कानून द्वारा लगाई हुई शर्तें पूरी करनेके बाद किसी भी ब्रिटिश उपनिवेशमे और अपनी रुचिका उद्यम करनेका अधिकार होना चाहिए।

नेटाल

इधर ज्यादा नजदीककी बात लें तो बहुत-कुछ कहनेको नही है। प्रिटोरियामें ब्रिटिश भारतीय शिष्टमण्डलके मिलनेपर श्री चेम्बरलेनने जो उत्साहवर्धक शब्द कहे थे वे ही उन्होने डर्बन और पीटरमैरित्सबर्गके शिष्टमण्डलोसे भी कहे। प्रवासी-प्रतिबन्धक कानून अधिक कठोर हो गया है। शैक्षणिक धारा इस तरह सशोधित कर दी गई है कि यदि प्रवासी-अधिकारी चाहे तो किसी भी व्यक्तिका जाँचमे सफल होना बहुत मुश्किल हो जायेगा। किन्तु यह बहुत ज्यादा

१. चेम्बरलेनके बाद लिटिलटन १९०३ में उपनिवेश-मन्त्री नियुक्त हुए।

महत्त्वकी बात नही है। असलमे दुखती हुई-रग तो विक्रेता-परवाना अधिनियम है। डर्बन नगर-परिषद और नेटालके अनेक स्थानिक निकायोकी हलचलोसे इस भयको खासा आधार मिल जाता है कि, यह कानून सख्तीसे लागू किया जायेगा। अभी नगर-परिषदे ही अपने परवाना-अधिकारियोके निर्णयके खिलाफ की गई अपीलोको सुननेवाली सत्ता है। जबतक सर्वोच्च न्यायालय इन परिषदोके निर्णयोके खिलाफ अपील सुननेकी सत्तासे वंचित रखा जायेगा तबतक यह कानून कष्टोंका प्रबल कारण बना रहेगा। लेडीस्मिथके परवाना-अधिकारीने भारतीयोको सूचना भेजी है कि वे जबतक दूकाने बन्द करनेके मामूली वक्त की पाबन्दीके लिए रजामन्द नही होते, उनके परवाने फिर जारी नही किये जायेंगे। हमने एकाधिक बार यह आशा व्यक्त की है कि लेडीस्मिथके ब्रिटिश भारतीय व्यापारी इस सम्बन्धमे परवाना-अधिकारीके साथ कोई आपसी समझौता कर सकेंगे, हमारी समझमे यह बहुत ही नाजुक और ऐसा मामला है, जिसपर यदि निर्णय लेनेमे कोई गलती हो गई तो फिर शिकायते दूर कराना बहुत कठिन हो जायेगा।

लगता है डर्बनमे *बाजारों* या बस्तियोसे सम्बन्धित श्री एलिसके प्रस्तावका मुर्दा दफन हो चुका है, किन्तु उसकी दुर्गन्ध नाकमे भर गई है और कह नही सकते कब उसे फिर उखाड़नेके प्रयत्न किये जाये। यह प्रस्ताव ट्रान्सवाल-*बाजार*-सूचनाके प्रकाशनके तुरन्त बाद आया था, और जैसा कि हमने उस समय स्पष्ट किया था, उसे सुयोग्य महापौर महाशयने अशोभनीय जल्दबाजीमें पेश किया था। प्रस्तावकी[1] स्याही कागजपर सूखने भी नही पाई थी कि ट्रान्सवालसे खबर मिली कि *बाजार*-सूचना केवल एक अस्थायी विनियम है, और उसे उपनिवेशके स्थायी कानूनोमे शामिल करनेका कोई इरादा नही है।

यह देखते हुए कि नेटालमे हजारो भारतीय अपने कुटुम्बोके साथ रहते है और उन्हे अपने बच्चे पढ़ाने-लिखाने है, यहाँ भारतीयोकी शिक्षाका प्रश्न गम्भीर है। सरकार भारतीयोकी शिक्षाका काफ़ी अच्छा प्रबन्ध करनेको कितनी भी तैयार क्यो न हो, उपनिवेशकी लोकशालाओ (पब्लिक स्कूलो) के द्वार भारतीय विद्यार्थियोके लिए बन्दकरके उसने भारतीय समाजको बहुत बड़े घाटेमे डाल दिया है। डर्बनके सरकारी मदरसेमे जो आखिरी तीन भारतीय छात्राएँ पढ़ रही थी, वे श्रेयके साथ उत्तीर्ण होकर निकल आई है। अब दुर्भाग्यसे उनकी दूसरी बहनोको वैसे शिक्षणकी सुविधा नही रही। ये तीनो लड़कियाँ ठीक भारतीय कुटुम्बोकी है। इनका पालन-पोषण बहुत अच्छी तरह हुआ है और इनकी शिक्षिकाएँ इन्हे खूब चाहती थी। ये हमेशा पहली पंक्तिमें रही और श्रम, सत्य और शीलकी दृष्टिसे इनका चरित्र बहुत ऊँचा था। यह सोचकर दुःख होता है कि अन्य भारतीय लड़कियाँ जो ऐसी ही सुविधाएँ मिलने पर इन्ही जैसा करतब कर दिखाती, अब केवल अपनी चमड़ीके रगके कारण ऐसे अवसरसे वंचित है।

थोड़ी-बहुत चैन मिल जानेसे भारतीय समाज नेटालमे शिक्षा-सुधारका काम हाथमे ले सका है। इस सिलसिलेमें हबीबी मदरसा उल्लेखनीय है। यह उन्नतिशील सस्था है और सूफी साहबकी देखरेखमे इसकी व्यवस्था सुचारु है। हमारी इच्छा तो यही है कि ऐसी ही और भी सस्थाये उपनिवेशमें जहाँ-तहाँ हों। रेवरेड स्मिथने अभी-अभी भारतीय-शिक्षकोके लिए एक प्रशिक्षण महाविद्यालय खोला है। अच्छा प्रबन्ध होने और प्रोत्साहन मिलनेपर यह उपनिवेशमे नैतिक और शैक्षणिक प्रभावका बहुत बड़ा केन्द्र बन सकता है।

और भी बहुतसे ऐसे सुधार है, जिन्हे भारतीय समाज बखूबी हाथमें ले सकता है। हम आशा करे कि पिछले वर्षकी अवनतिके स्थानपर इस वर्ष उन्नति होगी और हमारे कुछ उदारचेता भारतीय व्यापारी इनमे से कुछ कामोको पूरा करेंगे।

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ३४३।

केप कालोनी

इस सबसे पुराने उपनिवेशमें कहने लायक बहुत-कुछ नही है। प्रवासी अधिनियम पिछली जनवरीमे लागू किया गया था। सुनते है वह खास सख्तीसे अमलमें नही लाया जा रहा है। उस तरहके कानूनके अमलमें कुछ कठिनाइयोका आना स्वाभाविक है। किन्तु कुल मिलाकर अधिकारीगण उसकी कठोरता कम करनेके लिए उत्सुक जान पड़ते है।

ईस्ट लदनमें बस्ती कानून और पैदल-पटरी कानूनने, जो, जरूरत पडेगी, यह मानकर, पहलेसे ही बना लिये गये थे, एक समय तो काफी खीझ उत्पन्न कर दी थी। किन्तु अब सुनते है भद्रवेशी ब्रिटिश भारतीय छूटका प्रमाणपत्र लिए बिना भी पैदल-पटरियोपर चलते है और उनको सताया नही जाता। बात अभी तो सन्तोषजनक दिखाई देती है, किन्तु हमारी रायमे ऐसा उपनियम नगरपालिकापर कलंक है और जितनी जल्दी यह उठा लिया जाये उतना नगरपालिकाके लिए श्रेयस्कर होगा। यह एक विडम्बना है कि सम्राटकी सरकारने ऐसे कानूनको उस उपनिवेशमें अनुमति दे दी जिसमे भारतीय-विरोधी कानून कमसे-कम त्रासदायक है। फिर भी ब्रिटिश भारतीय इससे इतना सबक तो ले ही सकते है कि अगर कोई समाज अपने हितोके प्रति जागरूक न रहे तो वह ब्रिटिश सरकारके मातहत फूल-फल नही सकता।

अपनी बात

दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश भारतीयोकी स्थितिके इस संक्षिप्त सिंहावलोकनके अन्तमें हम कुछ अपनी भी कहनेकी अनुमति चाहते है। अभी *इंडियन ओपिनियनको* प्रकाशित होते मुश्किलसे सात महीने हुए है, किन्तु हम समझते है, इस थोडी-सी अवधिमें ही उसने एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। उसे जो कुछ प्रतिष्ठा मिली उसका उपयोग हमने समाजके और साम्राज्यके, जिसका अंग होनेका हमे अभिमान है, हितमें करनेकी कोशिश की है। हमने जो कार्यक्रम बनाया है वह महत्त्वाकाक्षापूर्ण है। वह पूरा-पूरा सम्पन्न नही किया जा सका है — उसके निर्माताओकी यह अपेक्षा भी नही थी कि वह सारा-का-सारा एकदम पूरा हो जायेगा। वह तो हमारा लक्ष्य है, जिसे हम यथासम्भव जल्दी प्राप्त करना चाहते है। एक सिद्धान्तपर हमने अडिग रहनेका प्रयत्न किया है — जो खालिस तथ्य है उससे कभी अलग न होना, और वर्षमे जो कठिन सवाल सामने आयें उन्हे निपटानेमें, हमारा खयाल है, हमने, जितनी अधिक नरमीसे उस समयकी परिस्थितियोंमें काम लिया जा सकता था, उतनी नरमीसे काम लिया है। हमारा कर्त्तव्य बहुत सीधा-सादा है। हम समाजकी और, अपने निजी नम्र ढगसे, साम्राज्यकी सेवा करना चाहते है। हमें जिस कार्यको उठानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उसकी पवित्रतामे हमारा विश्वास है। सर्वशक्तिमान परमेश्वरकी करुणामें हमारी अचल निष्ठा है और ब्रिटिश विधानमें हमें पूरा भरोसा है। ऐसी हालतमें यदि हम चोट पहुँचानेके लिए कुछ लिखें तो हम अपने कर्त्तव्यसे च्युत होगे। तथ्य कटु हों या मधुर, उन्हे हम सदा पाठकोके सामने रखेंगे। जनताके सामने उन्हें उनके नगे रूपमें लगातार पेश करते रहनेसे ही दक्षिण आफ्रिकामें दोनो समाजोके बीचकी गलतफहमी हटाई जा सकेगी। यदि इसे जल्दी हटानेमें हम थोडी-बहुत भी मदद कर सके तो यही हमारे लिए काफी पुरस्कार हो जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७-१-१९०४

७६. ट्रान्सवालमें मजदूर-समस्या

सर जार्ज फेरारका प्रस्ताव[1]:

सरकारका ध्यान ट्रान्सवाल मजदूर आयोगकी रिपोर्टकी[2] तरफ दिलाया जाये और सरकारसे एक ऐसे अध्यादेशका मसविदा पेश करनेका अनुरोध किया जाये, जिसके अनुसार विटवॉटर्सरैंड इलाकेकी खानोंमें मजदूरोंकी भर्ती पूरी करनेके लिए अकुशल रंगदार गिरमिटिया मजदूर बाहरसे बुलाये जा सकें और उनपर ऐसी पाबन्दियाँ लगाई जा सकें जिनसे वे अकुशल मजदूरोंके तौरपर ही नौकर रखे जा सकें और करार पूरा होनेपर अनिवार्य रूपसे स्वदेश लौटाये जा सकें; और इसलिए कि इस महत्त्वपूर्ण मामलेपर पूरा विचार किया जा सके, अध्यादेशका मसविदा इस परिषदमें पेश होनेके काफी पहले अंग्रेजी और डच भाषामें प्रकाशित कर दिया जाये।

यह प्रस्ताव एक बहुत लम्बी बहसके बाद जबरदस्त बहुमतसे स्वीकार कर लिया गया। पक्षमें २२ और विपक्षमें केवल ४ मत — सर्वश्री बोर्क, लवडे, रेट और हलके — थे।

सर जॉर्ज फेरार ३ घंटेसे अधिक बोले। श्री हल ४ घंटे बोले, लेकिन इस अवसरका मुख्य भाषण शायद सर रिचर्ड सॉलोमनका था। अवसर अनोखा था, और सारे दक्षिण आफ्रिकाके इतिहासमें न सही, ट्रान्सवालमे ब्रिटिश राज्यके इतिहासमे वह एक महत्त्वपूर्ण घटना समझी जायेगी। बेशक, प्रस्तावके पक्षमे बोलनेवालोने जोरदार ढगसे अपना मामला रखा, फिर भी हमारी रायमे उससे हम कई वर्ष पीछे ढकेल दिये गये हैं और हमारा निश्चित खयाल है कि सर जॉर्ज फेरार और उनके समर्थक आगेकी ओर नही देख सके। जो व्यक्ति बड़े-बड़े मुनाफोके लिए झगड रहे है, उनका यह रुख तो हम भलीभाँति समझ सकते है कि जिस प्रश्नमे ऐसे मुनाफोका त्याग निहित हो, उसपर वे निष्पक्ष दृष्टि नही रख सकते। ऐसी ही स्थितिमें दूसरे लोग होते तो शायद वे वही दृष्टि रखते जो एशियाइयोके समर्थकोने रखी है। यह दलील नि:सन्देह लचर है कि, चीनी मजदूरोके विनियमन पर सरकार जो पाबन्दियाँ लगायेगी वे इतनी बडी होगी कि उनसे एशियाई-विरोधियोकी उठाई हुई सारी आपत्तियोका जवाब मिल जायेगा। जो सज्जन इस तरह तर्क करते है वे इस हकीकत पर ध्यान नही देते कि चीनी भी मनुष्य है, और प्रतिबन्ध कितने ही कडे लगाये जाये, तो भी दक्षिण आफ्रिकाके सारे समाजपर उनका असर पडे बिना नही रह सकता। अवश्य ही हम एशियाई-विरोधियोसे इस बातमें सहमत नही है कि चीनी लोग दूसरे लोगोसे जरा भी ज्यादा चरित्रहीन है, या क्षुद्र प्राणी है। गिरमिटिया चीनियोंकी ही नही, भारतीयोकी भी इतनी बडी सख्यामे मौजूदगीपर हमारा ऐतराज यह है कि उसका दक्षिण आफ्रिकाके भविष्यपर प्रभाव पड़े बिना नही रह सकता, और गोरोके दृष्टिकोणसे तो वह प्रभाव और भी बुरा होगा। यदि दक्षिण आफ्रिकामे किसीको जबरदस्ती लाना है तो नि संदेह ब्रिटिश द्वीप समूहके निवासियोको ही लाना चाहिए, और किसीको नही। यह अपेक्षा करना व्यर्थ है कि समय पाकर हालात अपने आप ऐसे हो जायेंगे कि गोरोको हाथसे काम करनेमे आपत्ति न रह जायेगी। सम्भावना यही है कि जब एक बार दक्षिण आफ्रिका या ट्रान्सवालके यूरोपियोंको हाथसे काम करना

१ यह ट्रान्सवाल विधान परिषदमें रखा गया था।

२. देखिए पृष्ठ ७५।

अपनी शानके खिलाफ समझनेकी आदत हो जायेगी, और वे यह काम रंगदार लोगोसे लेनेके आदी हो जायेंगे, तब वे इसके विपरीत करनेको, और हाथका काम खुद करनेको, राजी नही होगे। सर पर्सीने[1] अपने श्रोताओसे कहा कि वे ट्रान्सवालमें गिरमिटिया रगदार मजदूरोको न आने देनेका परिणाम सोचें। उन्होने, अपने खयालके अनुसार, बहुत अन्धकारपूर्ण चित्र खीचते हुए कहा कि यदि ऐसा हुआ तो विभिन्न नगरपालिकाओने जो जबरदस्त काम हाथमें लिये है उनमें से अधिकतर उन्हे छोड देने पड़ेगे। हम साफ-साफ स्वीकार करे कि, अगर ट्रान्सवालके लोग केवल भविष्यको सँभाले तो, भले ही यह शुरूमें कठोर दिखाई दे, हमें इन बड़े कामोको बन्द कर देनेमें कोई असाधारणता दिखाई नही देती। यह बिलकुल ठीक है कि जब यहाँ ब्रिटिश सत्ता आई तब जो बहुत -सी अतिशयोक्तिपूर्ण बातें सोची गई थी उनकी तरतीब बदलनी पडेगी; परन्तु वह अच्छा ही होगा। हमें खेद है कि लम्बी और उबा देनेवाली सारी बहसमें सर जॉर्जके पाबन्दियो सम्बन्धी प्रस्तावकी पिछली धाराके विरुद्ध आवाज उठानेवाला एक भी वक्ता नही था। यह देखकर निराशा होती है कि तेजस्वी लोगोके उस समूहमें किसीने भी उसपर चीनियोके दृष्टिकोणसे विचार करना जरूरी नही समझा। सब सहमत थे कि चीनी लोग परिश्रमी, समझदार और योग्य है, फिर भी किसीको इसमें असगतता नही दिखाई दी कि उनके साथ निरे गुलामोका-सा बरताव किया जाये, और खानोके विकासके लिए जितनी थोड़ी अक्लकी जरूरत हो उसके सिवा जबरदस्ती उनको अपनी समझ और योग्यतासे काम न लेने दिया जाये। सर रिचर्डका[2] खयाल था कि अगर किसी काफिरको सरकारी हस्तक्षेप द्वारा या कर लगाकर काम करनेपर मजबूर किया जायेगा-तो वह जबरिया काम होगा और उसे ब्रिटिश सरकार सहन नही कर सकेगी। यदि आप एक आदमीको चूस लें, उसकी हलचलोपर पाबन्दी लगाये और ज्यो ही उसका गिरमिट पूरा हो उसे निकाल बाहर करे तो क्या वह भी ऐसी ही बात नहीं है? किन्तु इस मौकेपर दलीलें देनेसे कोई फायदा नही। पाँसा पड़ चुका है। जल्दी ही हमारे सामने अध्यादेशका मसविदा आयेगा, और शायद कुछ ही महीनोमें हजारो गिरमिटिया मजदूर भी। ट्रान्सवाल जो महत्त्वपूर्ण कदम उठानेवाला है उसका परिणाम समय बतायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७-१-१९०४

१. सर पर्सी फिट्ज़पैट्रिक — ट्रान्सवाल विधान परिषदके सदस्य।
२. सर रिचर्ड सॉलोमन।

७७. ट्रान्सवालमें गिरमिटिया मजदूर-अध्यादेशका मसविदा

अन्यत्र हम ट्रान्सवालमे गैर-यूरोपीय अकुशल मजदूरोके प्रवेशका नियमन करनेवाला अध्या-देश पूराका-पूरा उद्धृत कर रहे है। सरकारने सर जॉर्ज फेरारके प्रस्तावपर तडाकेसे कार्रवाई की है। अध्यादेशका मसविदा होशियारीसे बनाया गया है। मगर सरकारको इस कारगुजारी-पर बधाई नही दी जा सकती। एक ईसाई ब्रिटिश सरकार इस जाग्रत शताब्दीमे ऐसे प्रस्ताव पेश कर सकती है, जैसे कि अध्यादेशके मसविदेमे रखे गये है — यह आधुनिक सभ्यताकी हालत पर दुखपूर्ण टीका है। सदसद् विवेककी किसी भी दृष्टिसे अध्यादेशका मसविदा काफी कठोर है, और वह हजारो चीनियो या अन्य एशियाई जातियोको, जिन्हे उसके अनुसार इस देशमे लाया जायेगा; भारवाही पशु बना डालेगा। उनका आना-जाना उनके काम करनेकी जगहोमे एक मीलकी परिधिके भीतर सीमित रखा जायेगा और उन जगहोको वे बाकायदा हस्ताक्षर किये हुए पासोके बिना नही छोड़ सकेंगे, और सो भी ४८ घटेसे अधिक समयके लिए नही। उनमे कोई कौशल हो तो भी वे उसे काममे नही ला सकेंगे और, जैसा भी तय हो, तीन या पाँच वर्षके अन्तमे वे ट्रान्सवालसे वापस भेज दिये जायेंगे। जबरदस्ती वापस भेजनेकी क्रियाको लागू करनेका तरीका बहुत सीधा-सादा और कारगर है; परन्तु उतना ही अमानुषिक भी है। जिस धाराके अनुसार जबरदस्ती वापस भेजनेका नियमन किया जायेगा उसमे कहा गया है कि अगर गिर-मिटिया मजदूरोंमें से कोई वापस जानेसे इनकार करेगा तो उसे एक तरहसे स्थायी कैद भुगतनी होगी, और यह तभी खत्म होगी जब वह देशसे बाहर निकाल दिया जाना मजूर कर लेगा। इस प्रकार, परिस्थितिवश ट्रान्सवालमे फिर संशोधित गुलामीका युग लाया जायेगा। खानोका काम किसी भी कीमतपर जारी रहना ही चाहिए — भले इसमे ब्रिटिश नीतिके अत्यन्त स्नेह-सरक्षित सिद्धान्तोका बलिदान ही क्यो न करना पड़े। इंग्लैंडमे ऐसे लोग है, जिन्हे दूसरे देशोके कामोकी बडी चिन्ता लगी रहती है और वे दक्षिण अमेरिका और दूसरी जगहोके लोगोको, जो इनकी रायमे ईसाकी शिक्षासे गिर रहे है, उपदेश देते रहते है। पता नही वे इस प्रस्तावित अध्यादेशके बारेमे क्या कहेंगे, जो ग्रेट ब्रिटेन और आयर्लैंडके राजा तथा भारतके सम्राटके नामपर ट्रान्सवालमे जारी किया जानेवाला है।

भारतीयोके लिए अध्यादेशका यह मसविदा सिर्फ दिमागी दिलचस्पीकी चीज नही, उससे ज्यादा है, क्योकि भारत-सरकारके ट्रान्सवालकी अनुनय-विनय मान लेने भरकी देर है, और उपनिवेश-सरकार खुशी-खुशी भारतके लोगोको इस कीमती अध्यादेशका तुहफा दे डालेगी।

धारा २९ मे यह कहा गया है कि,

> इस अध्यादेशकी कोई बात इस उपनिवेशमें लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा उन ब्रिटिश भारतीयोंके लाये जानेपर लागू नहीं होगी, जिन्हें गवर्नरके मंजूर किये हुए रेल-मार्ग बनाने पर या दूसरे निर्माण-कार्योंपर लगाया जायेगा; किन्तु हमेशा शर्त यह होगी कि ऐसा प्रवेश, उन नियमोंके अनुसार हो जिन्हें विधान-परिषद मंजूर करेगी और यह भी शर्त होगी कि इस अध्यादेशके मजदूरोंको स्वदेश लौटानेके नियम, आवश्यक परिवर्तनोंके साथ, ब्रिटिश भार-तीयोंपर लागू होंगे।

हमें आशा है, भारतमे लोकमतके नेता और इंग्लैंडमे भारतवासियोंके हितैषी इसका ध्यान रखेंगे। इससे जाहिर होता है कि ट्रान्सवाल-सरकार यह नही मानती कि भारत-सरकार अध्यादेशके मसविदेकी धाराओको चुपचाप पी लेगी, लेकिन दुर्भाग्यवश इससे यह भी प्रकट होता है कि उसे आशा है, जल्दी ही भारत-सरकार अनिवार्य वापसीकी शर्तपर भारतीय गिरमिटिया मजदूरोको लानेकी बात मजूर कर लेगी। हमने अनेक वार अपना यह मत प्रकट किया है कि हम स्वतत्र भारतीयोकी स्वतन्त्रताके बदले गिरमिटिया भारतीयोकी लगभग गुलामों जैसी हालत मजूर नही करेगे, और यह ध्यानमे रखना चाहिए कि ट्रान्सवाल-सरकारने अपने व्यवहारमें अभीतक भारतीयोके साथ अत्यन्त "प्रारम्भिक न्याय" (ये श्री डकनके शब्द है) करनेकी भी कोई इच्छा प्रकट नही की है। डूबते हुए आदमीकी तरह ट्रान्सवालके लोग उसी तिनकेका सहारा लेनेपर उतारू है जो उपनिवेशको दिवालियापनसे बचा सके; और अगर खानोके भौतिक विकासकी और इस प्रकार उपनिवेशके भौतिक वैभवकी रक्षा हो सके तो वे कितने ही नीचे उतर आनेको उद्यत है। हम इतनी ही आशा रख सकते है कि ट्रान्सवालके लोग कुछ भी चाहे, चीनी जनता या चीन-सरकार इस प्रस्तावित अध्यादेशके साथ कोई वास्ता रखनेसे इनकार करके और भारत-सरकार अपने मूल रवैयेपर कायम रहकर ट्रान्सवालवालोकी, उनकी हर कोशिशके बावजूद, कोई सहायता नही करेगी तो इस प्रकार उस समाजको (हम अत्यन्त आदरके साथ कहते है) ऐसी बातसे बचायेगी जो मानवताके विरुद्ध अपराध है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४-१-१९०४

७८. नव वर्षका उपहार

जब *बाजार*-सूचनाके संशोधनमे अपना प्रस्ताव पेश करते समय ट्रान्सवालके उपनिवेश-सचिवने अपना बहुत सहानुभूतिपूर्ण भाषण दिया, तब हमें उसमें भारतीय व्यापारियोके शुभ भविष्यके लक्षण दिखाई दिये थे। हमने निष्कर्ष निकाला था कि सर जॉर्ज फेरारका प्रस्ताव मान लेना बहुत अच्छा हल है। पाठकोको स्मरण होगा कि सर जॉर्जका प्रस्ताव यह था कि, भारतीय व्यापारियोके निहित स्वार्थोकी जाँचके लिए एक आयोग नियुक्त किया जाये और जो लोग लडाईसे पहले सचमुच व्यापार कर रहे थे उन सबके परवाने फिलहाल नये कर दिये जाये। लेकिन हुआ यह है कि सरकारने ट्रान्सवालके विभिन्न भागोमे आय-विभागके अफसरोको हिदायत दी है कि फिलहाल केवल उन्हीको परवाने दिये जाये जो यह विश्वास करा सके कि वे लडाईके पहले परवानेसे, या परवानेके बिना, व्यापार कर रहे थे। उपनिवेश-सचिवका मूल संशोधन यह था कि जो आय वसूल करनेवाले अफसरोको इस तरहका विश्वास करा सके, उन्हे बिना शर्त परवाने दे दिये जायें और यद्यपि उपनिवेश-सचिवने अपने भाषणमें अपनी स्थितिका पराक्रमके साथ बचाव किया, और सर जॉर्जका प्रस्ताव इसलिए मान लिया कि उसमें सशोधनकी भावनाका समावेश हो जाता था, फिर भी जिन हिदायतोका हमने जिक्र किया है वे स्पष्ट ही, इस नीतिसे अलग है। आय वसूल-करनेवाले अफसरोके सामने सबूत अब भी पेश करना होगा — मानो मूल सशोधन इस अन्तरके साथ स्वीकृत हो गया हो कि जहाँ सशोधनके अनुसार बिना शर्त परवाने दिये जाते, वहाँ इन हिदायतोके अनुसार केवल अस्थायी परवाने दिये जायेगे। इस प्रकार कथनी और करनीके बीचमे जबरदस्त खाई है। उपनिवेश-सचिवने जो आशाएँ दिलाई थी वे, ज्यो ही उनके शब्दोको

कार्यान्वित करनेकी नौबत आई, चूर-चूर हो गईं। भारतीयोने पहले ही एक बार अपने पहलेके व्यापारका सबूत दे दिया है, क्योकि परिपाटी यह थी कि एशियाइयोके पर्यवेक्षक (सुपरवाइजर ऑफ एशियाटिक्स) की सिफारिशके बिना किसीको व्यापार करनेका परवाना नही दिया जाता था। शर्तोके खिलाफ भारतीय रोये-चिल्लाये, परन्तु कोई लाभ नही हुआ। दुनिया भरके हलफनामे पर्यवेक्षकोके पास ले जाने पडते थे और वे परवानोके प्रार्थियोके दावोकी पूरी जाँच करके सिर्फ उन्हीको परवाने देनेकी सिफारिश करते थे जो उनकी रायमे युद्धसे पहले व्यापार करते थे, या दूसरी तरह परवाने प्राप्त करनेके पात्र थे। अब सरकार द्वारा नियुक्त अफसरोकी ये तमाम सिफारिशे निकम्मी समझी जायेंगी। आय वसूल करने वाले अफसरोके सामने फिर सबूत पेश करने होगे और फिर भी मानो इसलिए कि अत्याचार अधूरे रह गये थे, प्रत्येक भारतीय परवानेदारको एक आयोग (कमिशन) के सामने घसीटा जायेगा, वहाँ उसे फिर प्रमाणोकी अग्नि-परीक्षामे से गुजरना होगा और तब भी भगवान जाने उसका परवाना बहाल होगा या नहीं। सरकारके इस निर्णयका परिणाम यह है कि भारतीय समाजको हलफनामो और दूसरे दस्तावेजो पर सैकड़ो पौड खर्च करने होगे, तब कही अस्थायी परवाने जारी किये जायेंगे। जो यह सिद्ध नही कर सकेंगे कि वे लड़ाईके पहले व्यापार करते थे, उन्हे अपनी दूकाने बन्द कर देनी होगी। इसकी कोई परवाह नही की जायेगी कि उन्हे एशियाई अधिकारियोकी सिफारिशपर गत वर्ष या उससे पहलेके वर्षमे बिना शर्त परवाने मिले थे।

ट्रान्सवालमे उनकी यह दशा हो गई है। इस दु:खद स्थितिके कारण ढूँढनेके लिए दूर जानेकी जरूरत नही है। श्री बोर्कने स्पष्ट कर दिया है कि यूरोपीय व्यापारी भारतीय स्पर्धा लेशमात्र भी नही चाहते — और श्री बोर्क धनिक वर्गके प्रतिनिधि है, और वे ३,००,००,००० पौडकी उस युद्ध-सहायताको वापस लेनेका प्रस्ताव करनेवाले भी है, जिसकी श्री चेम्बरलेनके आगमनपर ससारके सामने इतना ढिढोरा पीटकर घोषणा की गई थी। शान्तिकी घोषणा होनेपर व्यापारमे जो तेजी आई, सरकार उसके बहावमे, साधारण लोगोकी तरह बह गई और उसने भारी कर्ज करके ऐसा काम हाथमे ले लिया है, जिसे वह धनके बिना जारी नही रख सकती। इसलिए वह उन सब लोगोको, जिनकी बात ऐसे मामलोमे सुनी जानेकी सम्भावना हो, राजी करना चाहती है — भले ही ऐसा करनेसे स्पष्ट वचन-भंग और निर्दोष नागरिकोकी बरबादी होती हो और उसके अपने ही अधिकारियोके दिये हुए दस्तावेज रद हो जाते हो। सरकार इतनी कमजोर और भयभीत है कि न्याय नही कर सकती।

तब ऐसे सकटके समय ब्रिटिश भारतीयोका क्या रुख होगा? हमारे दिमागमें यह बिलकुल साफ है कि क्या होना चाहिए। भारतीयोको सर्वथा शान्त और धैर्यसे रहना चाहिये, और अब भी भरोसा रखना चाहिए कि अन्तमे न्याय जरूर किया जायेगा। उन्हे सरकारको आदरपूर्ण दरख्वास्ते तो देते ही रहना चाहिए, परन्तु आय वसूल करनेवाले अधिकारियोके सामने प्रमाण देनेसे दृढतापूर्वक इनकार भी करना चाहिए, और कह देना चाहिए कि जो आयोग नियुक्त होगा वे उसके सामने प्रमाण देगे। हो सकता है कि परवानोके बिना व्यापार करनेके लिए मुकदमे चलाये जाये और अगर समन जारी कर दिये जाये और परवानेके बिना व्यापार करनेपर जुर्माने किये जाये तो अभियुक्तोको परिस्थितिके अनुकूल साहस दिखाकर जुर्माना देनेसे इनकार कर देना चाहिए और जेल चले जाना चाहिए। ऐसे कामके लिए जेल जानेमे कोई बेइज्जती नही है, आम तौरपर बेइज्जती उन अपराधोको करनेमें है, जिनपर कैदकी सजा दी जा सकती है, स्वय कैदमे बेइज्जती नही है। इस मामलेमे कथित अपराध, अपराध है ही नही और यह तरीका अपनाना बहुत शानदार बात होगी। हमे मालूम है कि ट्रान्सवालके भारतीय

समाजने अबतक जानबूझकर अपनी कानूनी स्थितिका सहारा नहीं लिया है। उसने यह आशा रखी थी कि अन्तमें सरकार उसके साथ न्याय करेगी। परन्तु यदि सरकार अपने कर्त्तव्यको तिलां-जलि देकर भारतीय समाजकी रक्षा करनेसे इनकार करती है तो भारतीय समाजको सर्वोच्च न्याया-लयकी सहायता लेकर इस प्रश्नकी जाँच करानी ही चाहिए कि निवासमें व्यवसाय सम्मिलित है या नहीं। १८८५ के कानून ३ का मंशा है कि भारतीय अलग बस्तियोंमें रहें, व्यापारके बारेमें वह कुछ नहीं कहता। बोअर उच्च न्यायालयने बहुमतसे फैसला दिया है कि भारतीयोंके लिए निवासमें व्यवसाय सम्मिलित है। हम नहीं समझते कि सर्वोच्च न्यायालय इस फैसलेको बन्धनकारी मानेगा। कुछ भी हो, मुद्दा महत्त्वका और विचारणीय है; और यद्यपि हमें अब भी आशा है कि कानूनी दावेकी नौबत नहीं आयेगी, फिर भी यदि सरकार तमाम मौजूदा परवानेदारोंकी रक्षा न करनेका आग्रह रखेगी तो उपनिवेशकी सबसे ऊँची अदालतमें अपील करनेके सिवा हमें और कोई उपाय दिखाई नहीं देता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४-१-१९०४

७९. पैदल-पटरी उपनियम

इसी ७ तारीखको प्रिटोरियाकी नगर-परिषदकी एक बैठकमें श्री लवडेने प्रस्ताव रखा कि,

> पुलिसको दी गई इन हिदायतोंको देखते हुए कि रंगदार लोगोंको पैदल-पटरियाँ इस्तेमाल करनेसे न रोका जाये, परिषद तुरन्त प्रिटोरियाके नागरिकोंके अधिकारों, रीति-रिवाजों और विशेष सुविधाओंके इस दुरुपयोगकी रोकथामके लिए कदम उठाये।

प्रस्ताव पेश करते हुए उन्होंने अपने भाषणमें कुछ असाधारण बातें कहीं और यद्यपि उनकी वे बातें ज्यादातर काफिरोंपर लागू होती हैं, फिर भी यह स्पष्ट है कि उनके सपाटेमें सभी रंगदार आ जाते हैं। स्पष्ट रूपसे उनके लेखे काफिर घृणाके पात्र हैं और शिक्षामें वे कितने ही उन्नत क्यों न हों, वे पैदल-पटरीपर चलनेके योग्य भी नहीं हैं। किन्तु हम काफिरोंके कोई वकील नहीं हैं; फिल-हाल हमारा सम्बन्ध उन बहुत अजीब दलीलोंसे है, जो श्री लवडेने अपने प्रस्तावके समर्थनमें दी हैं। उनके खयालसे यदि काफिरोंको — और काफिर ही क्यों, किसी भी रंगदार आदमीको — पैदल-पटरियों पर चलने दिया जायेगा, तो उन्हें नगरपालिकाका मताधिकार — राजनीतिक मताधि-कार — मिल जायेगा और वह उनके साथ विधान-परिषदमें बैठेगा। क्या हम इन माननीय सज्जनको याद दिलायें कि अभी उस दिन यही सरकार जिसने, बताते हैं, अच्छे कपड़े पहने हुए वतनियोंको पैदल-पटरियोंपर चलनेसे न रोकनेकी पुलिसको हिदायतें दी हैं, तमाम रंगदार लोगोंको नागरिक मताधिकारसे वंचित करनेको राजी हो गई थी? अपने मुद्दे साबित करनेके प्रयत्नमें श्री लवडेने अपने श्रोताओंको बताया कि भारतमें भारतीयोंको उसी रेलके डिब्बेमें सफर नहीं करने दिया जाता जिसमें यूरोपीय सफर करते हैं। हम यह जाननेके लिए बहुत उत्सुक हैं कि उन्हें यह जानकारी कहाँसे मिली। अगर वे नागरिक जीवनमें बिलकुल नये आदमी होते और ऐसा बयान देते तो उसे क्षम्य समझा जा सकता था, परन्तु श्री लवडेकी स्थितिके भद्र पुरुषके लिए पहले तस्दीक किये बिना दावेसे बयान देना — और सो भी ऐसे बयान, जिनसे बहुत हानि हो सकती है — मिथ्या-पवादसे कम नहीं है। कोई भी व्यक्ति जो भारतमें थोड़े समय भी रह चुका है, यह जानता है कि

वहाँ ऐसे कोई नियम नही है, जैसे श्री लवडेने बताये है; और अक्सर भारतके महान रेल-मार्गोपर, पहला दर्जा हो या दूसरा, यूरोपीय और भारतीय साथ-साथ एक ही डिब्बेमे सफर करते देखे जाते है। वतनी लोगोके प्रश्नपर श्री लवडेके विचार कितने ही उग्र क्यो न हो, हमारा हमेशा यह खयाल रहा है कि वे उनके प्रामाणिक विचार है, और वे पहले तथ्योका पता लगाये बिना किसी बयानके साथ अपना नाम नही जुडने देते, परन्तु जैसे इस मामलेमे वे भारतीय रेल-यात्राके बारेमे अपने बन्धु-सदस्योके मनपर गलत छाप डालनेके साधन बने है, ठीक उसी तरह उन्होने राहमे किसी पुलिसवालेकी चलती-चलाती बातचीतको प्रस्तावका आधार बनाकर सरकारके प्रति भी अन्याय किया है। परिषद और सरकार दोनोके प्रति उनका कर्त्तव्य था कि वे पुलिस कमिश्नरके साथ पत्र-व्यवहार करके परिषदकी बैठकमे प्रस्ताव लानेसे पहले अपनेको दी गई जानकारीकी पड़ताल कर लेते।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४-१-१९०४

८०. श्री बोर्कसे प्रार्थना

ट्रान्सवाल विधान-परिषदमे प्रिटोरियाके माननीय सदस्यने सूचनापत्रपर एक प्रश्न रखा है। यह प्रश्न वे सर रिचर्ड सॉलोमनसे विधान-परिषदके खुलनेपर उन नियमोके बारेमे पूछेंगे जो भारतमे यूरोपीयो और भारतीय मुसाफिरोको रेलोमे जगह देनेके बारेमे प्रचलित है। हम माननीय सदस्यको पहले ही सूचित कर देते है, कि मुसाफिर यूरोपीय हो या भारतीय, उनमे कोई भेद नही किया जाता, और किसी भी दर्जेमे सफर करनेवाले भारतीयोको वही अधिकार है जो यूरोपीयोको है। परन्तु कुछ रेलोमे तीसरे दर्जेमे सफर करनेवाले भारतीयोकी भीड़ बहुत होनेके कारण तीसरे दर्जेके कुछ डिब्बे केवल यूरोपीयो और यूरेशियाइयोके लिए सुरक्षित रखे जाते है। अगर हमे माननीय सदस्यको एक सुझाव देनेकी इजाजत हो तो हम कहेगे, वे इस प्रश्नमे कुछ और जोड़ दे, और सामान्य रूपमे पूछ ले कि, स्वय भारतमे भारतीयोका दर्जा क्या है। तब उन्हे बताया जायेगा कि वहाँ कानूनकी नजरमे वर्ग, रंग या धर्मका कोई अन्तर नही है, शाही विधान-परिषदमें भारतीय सदस्य यूरोपीयोके साथ-साथ बैठते है, भारतके तमाम उच्च न्यायालयोमे भारतीय न्यायाधीश है, नगर-निगमोमे अधिकतर सदस्य भारतीय है, बम्बईके नगर-निगमके अध्यक्ष पिछले साल एक भारतीय थे, इस समय मद्रास उच्च न्यायालयके स्थानापन्न मुख्य न्यायाधीश एक भारतीय है और वहा सबको व्यवसाय और निवासकी पूरी स्वतत्रता है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४-१-१९०४

८१. श्री ग्लैड्स्टनका जीवनवृत्त

इस जमानेमे महापुरुषोंमे गिने जानेवाले श्री ग्लैड्स्टनका जीवनवृत्त जो उनके पट्ट शिष्य श्री मॉर्लेने[1] लिखा है, तीन जिल्दोमे हालमे ही प्रकाशित हुआ है। भारतमे जीवनवृत्त कम लिखे जाते है। अत· जीवनवृत्तकी क्या कीमत है, सो समझनेमे इस ओरकी जनता भाग्यहीन ही रही है। पाश्चात्य जनता इस विषयमे बहुत आगे बढ़ गई है। महात्मा पुरुषोंके जीवनवृत्तोमें अनेकानेक प्रकारकी शिक्षा समाई रहती है। जो शिक्षाप्रद उदाहरण इस जीवनवृत्तसे मिलते हैं, उनका जन-समाजपर बहुत महत्त्वका प्रभाव पड़ता है।

महात्मा ग्लैड्स्टन किस कोटिके पुरुष थे, इस विषयपर एक व्याख्यान माननीय श्री चन्दावरकरने उच्च श्रेणीके श्रोता-समाजके समक्ष २२ नवम्बर, १९०३को प्रार्थना-समाज मन्दिरमे दिया था। श्री चन्दावरकरने अपने भाषणके आरम्भमें बताया था कि इस संसारमे महापुरुष कौन होता है और महापुरुषमें कौन-कौनसे गुण होने चाहिए। श्री ग्लैड्स्टन कैसे थे, समूचे यूरोपकी जनता एक महापुरुषके रूपमे उनका सम्मान किसलिए करती है, आदि बातोंकी संक्षिप्त चर्चा करके उन्होंने श्री ग्लैड्स्टनकी स्तुति की थी, और वैसा करते हुए माननीय वक्ताने तत्ववेत्ता इमर्सनका उदाहरण देकर बताया था कि 'जिस मनुष्यमे विनय, सौजन्य, शान्ति, दया, दूसरेका मत कितना ही भूलभरा क्यो न हो, तो भी उसके प्रति आदर, कामको समझनेकी शक्ति, परिणामदर्शिता, त्रिकालाबाधित सत्यके प्रति दृढ़ भक्ति-भाव, कार्य करनेकी एक निश्चयात्मक बुद्धि आदि गुण प्रधानतया होते हैं, वह महापुरुष कहा जा सकता है। ऐसा महापुरुष तत्ववेत्ता इमर्सन था। श्री चन्दावरकर ने बताया कि बड़प्पन वाचालतासे नही आ जाता, बल्कि ये गुण तो संयम-पालनसे ही आ सकते हैं।

श्री मॉर्लेने ग्लैड्स्टनका जो जीवनवृत्त लिखा है, उससे स्पष्ट पता चलता है कि जिस तरह इमर्सन तत्वज्ञोमे महान गुणी था, उसी तरह राजद्वारियों और राजनीतिज्ञोंमे ग्लैड्स्टन महान गुणी था। इस महात्माकी यह अद्भुत खूबी है, और यही कारण है कि इंग्लैण्डकी ही नही, बल्कि अनेक राष्ट्रोंकी जनता इसकी ओर पूज्य बुद्धिसे देखती है। इस संसारमे जन्म लेकर मेरा कर्त्तव्य क्या है और मेरी योग्यता क्या है, इसे श्री ग्लैड्स्टनसे अधिक अच्छी तरह दूसरा कोई समझ नही सका। व्यवस्थापूर्वक और चिन्तापूर्वक नियमित रीतिसे उन्होंने जो दैनन्दिनी लिखी है, वह इस बातका उत्तम उदाहरण है। राष्ट्रीय उन्नतिके चिन्तनमे वे सदैव निमग्न रहते थे, और उन्हे विद्याका इतना व्यसन था कि उसीके परिणामस्वरूप वे राजमान्य, लोकमान्य और प्रजाप्रिय महात्मा बन गये थे। उनका बुद्धि-चातुर्य विलक्षण था। उनकी राजनीतिक सूझबूझ आदर्श थी। हाथमें लिये हुए कामको पूरा करनेमे वे बेजोड़ थे। अपयश प्राप्त होनेपर वे खिन्न नही होते थे, बल्कि सदैव सत्यको पकड़े रहते थे। यश मिलनेपर आनन्दित नही होते थे। बल्कि जब दुनियाके लोग उनपर प्रसन्न होते थे और समाचारपत्र उनकी अद्भुत चमत्कारपूर्ण शक्तिका गान करते थे, तब यह राजमान्य पुरुष अपने मनमें विचार करके बहुत अच्छी तरह सोच लेता था कि उसकी अपनी योग्यता कितनी कम है। इग्लैंडकी प्रजाकी उन्नतिके लिए

१. बादमें वाइकाउंट जॉन मॉर्ले (१८३८–१९२३), उदार राजनयिक और ग्रन्थकार, १८८६ और १८९२–९५में आयरलैंड-मन्त्री और १९०५–१० में भारत-मन्त्री।

इस राजमान्य पुरुषने आयरलैण्डको स्वराज्यका हक दिलानेमे जो श्रम उठाया था, उसमे यद्यपि इसका पराभव हुआ, तथापि इंग्लैंडकी प्रजा और इसके विरोधी भी यह नही कह सकते कि इसका वह कार्य लोक-कल्याणका नही था। राजमान्य और प्रजामान्य होते हुए भी वह गर्वसे फूल नही गया था। राजके मानकी अपेक्षा प्रजाके मानको ही उसने श्रेष्ठ माना था, और इस सबके मूलम उसकी कर्त्तव्यपरायणता और सुजनता थी। श्री चन्दावरकरने श्री ग्लैड्स्टनके ऐसे लोकोत्तर गुणोके उदाहरण श्री मार्ले-कृत जीवनवृत्तसे पढकर सुनाये थे। उनसे इस महापुरुषका सौजन्य और विनय, कुटुम्ब-भक्ति, प्रजा-भक्ति और राज-भक्ति, स्वदेशाभिमान, नीति, प्रीति आदि गुण बहुत शिक्षाप्रद मालूम होते थे। खेदकी बात इतनी ही है कि इस प्रकारके भाषणोका लाभ गुजराती जनताको भाग्यसे ही मिल पाता है। श्री चन्दावरकरने प्रार्थना-समाजके मन्दिरमे श्री ग्लैड्स्टनका जो यशोगान किया है, वह उस महात्माकी समाधिपर फूलोका एक गुच्छा चढानेके समान ही है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४–१–१९०४

८२. तार: गवर्नरके सचिवको

जोहानिसबर्ग
जनवरी १६, १९०४

सेवामें
परमश्रेष्ठ लॉर्ड मिलनरके निजी सचिव

सरकारने ब्रिटिश भारतीय सघको अभी सूचित किया कि अगर परवानेदार लडाईसे पहले व्यापार नही करते थे तो जिन शहरोमे नई पृथक बस्तियाँ बन गई है उनकी पुरानी पृथक बस्तियोमें भी उनके परवाने नये नही किये जायेंगे। यह *बाजार*-सूचनाकी सीमामे बिलकुल नही आता और भारतीय-विरोधी आन्दोलनसे जरूरी नही होता। नई बस्तियोके सब स्थान उजाड है। अगर व्यापारी वहाँ जाये, भी तो उन्हें अपने खर्चपर इमारते बनानी पड़ेगी, जो बहुतोके सामर्थ्यके बाहर है। इसके सिवा सब नई इमारते एकदम नही बन सकती। सघ परमश्रेष्ठसे हस्तक्षेपका नम्रतापूर्वक अनुरोध करता है। उसे भरोसा है कि वर्तमान परवाने आयोगकी रिपोर्ट आनेतकके लिए नये कर दिये जायेंगे। व्यापारियोको मुकदमे चलाये जानेका डर है, इसलिए जल्द जवाब की प्रार्थना है।

बिआस[1]

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइव्ज. एल० जी० ९२ स० ९७/१/२ एशियाटिक्स १९०२–१९०६।

१. ब्रिटिश इंडियन असोसियेशन (ब्रिटिश भारतीय संघ) का तारका पता।

८३. ट्रान्सवालकी स्थिति[1]

[जोहानिसबर्ग]
जनवरी १८, १९०४

ट्रान्सवालमें भारतीयोंकी आज तककी स्थितिका प्रदर्शक वक्तव्य

जैसा कि नीचेके वक्तव्यसे स्पष्ट होगा, सरकारने एक असमर्थनीय तथा विरोधी रुख अख्तियार कर लिया है:

उपनिवेश-सचिव श्री डंकनने विधान-परिषदमें इस आशयका प्रस्ताव रखा कि जो लोग लड़ाईसे पहले बिना परवानोंके भी व्यापार कर रहे थे, उन सबके परवाने नये कर दिये जायें। सर जॉर्ज फेरारने संशोधन पेश किया कि ऐसे लोगोंको अस्थायी रूपसे परवाने दिये जायें और उनके दावोंकी जाँचके लिए एक आयोग नियुक्त किया जाये। लगता था कि इन परिस्थितियोंमें भारतीयोंके तमाम मौजूदा परवाने फिर अस्थायी रूपसे जारी कर दिये जायेंगे; किन्तु सरकारने संशोधनकी सीमा संकुचित करके परवाना देनेवाले अधिकारियोंको हिदायतें दी हैं कि वे पहलेके व्यापारके बारेमें प्रमाण लें और यदि उन्हें सन्तोष हो जाये तो अस्थायी परवाने जारी करें। अन्य लोगोंको *बाजारों*के सिवा दूसरी जगहोंके लिए परवाने न दिये जायें। इसका अर्थ हुआ आयोगमें एक और आयोग! यदि नियुक्त होनेवाले आयोगको प्रमाण लेने हैं तो फिर गरीब व्यापारी राजस्व लेनेवालोंके सामने प्रमाण पेश करनेके खर्चमें क्यों डाले जायें — खास करके जब उनके परवाने अस्थायी तौरपर ही जारी किये जानेवाले हैं? इसके सिवा, शान्तिकी घोषणाके बाद जब इन्हें परवाने दिये गये थे तब ये एशियाई पर्यवेक्षकोंके सामने प्रमाण देनेपर मजबूर किये ही जा चुके हैं। पर्यवेक्षकोंने उनकी बड़ी सख्तीसे जाँच की थी और दिलजमई कर ली थी कि वे वास्तविक शरणार्थी हैं और लड़ाईके पहले व्यापार कर रहे थे। इसके बाद ही उन्होंने सिफारिशें की थीं, जिनके बलपर परवाना-अधिकारियोंने परवाने जारी किये थे। वे सारे प्रमाण, जो भारतीय-समाजके विरोधके बावजूद सरकारी अधिकारियोंके आगे पेश किये गये थे, अब निःसत्व माने जायेंगे। उनके निर्णय निरर्थक हो जायेंगे और भारतीयोंको फिरसे परीक्षा देनी होगी; और यह परीक्षा भी पूरे तौरपर अनिर्णीत होगी। अंग्रेजी झंडेकी छायामें अधिकारोंकी ऐसी अनिश्चितता इसके पहले कभी नहीं देखी गई थी।

बात अभी बाकी है। लॉर्ड मिलनरने कहा है कि युद्धके बाद परवाने अस्थायी तौरपर दिये गये थे। ब्रिटिश भारतीयोंने इस वक्तव्यका खण्डन किया है। परवाने ज्यादातर पूरे वर्षके लिए बिना किसी शर्तके दिये गये थे — इस दावेकी पुष्टिमें सरकारके सामने बहुत ठोस प्रमाण पेश किया जा चुका है। ऐसे पाँच-छः लोगोंके मामले सरकारको बताये गये जिनको पिछले सालके प्रारम्भमें ३१ दिसम्बरको समाप्त होनेवाले परवाने दिये गये थे। किन्तु उनपर कोई शर्त न लिखी रहनेके कारण उन्हें उन्हीं अहातोंके पंच-साला परवाने दिये गये। एक आदमीको इसलिए परवाना दिया गया कि वह लड़ाईके पहले ट्रान्सवालकी किसी और जगहमें व्यापार करता था और युद्धमें वह किसी सिपाहीकी जान बचानेका निमित्त बना था। उसे इसपर बहुत अच्छा

१. यह दादाभाई नौरोजीको भेजा गया था और उन्होंने इसकी एक नकल भारत-मन्त्रीको भेजी थी। यह १९-२-१९०४ के *इंडियामें* भी प्रकाशित किया गया था।

प्रशसा-पत्र भी दिया गया था। एक उदाहरण ऐसा था जिसमे किसी व्यक्तिने जिम्मेदारी लेनेसे डरकर अपना पट्टा न्यायाधीशके हवाले कर दिया और न्यायाधीशने परवाना जारी करनेके पहले उसपर अपने दस्तखत करके उस व्यक्तिको कानूनका कवच पहना दिया। और अब ये दोनों आदमी और कम-ज्यादा ऐसी ही परिस्थितिवाले दूसरे आदमी बीहडोमे ढकेल दिये जायेंगे —ऐसे बीहड़ोमे जिनको *बाजारोंकी* गलत सज्ञा दी गई है। कसूर यह है कि इनका व्यापार एकदम लडाईके पहले उन जगहोमे नही था।

श्री क्रूगरने जो चाहा था यह उससे भी कही ज्यादा है। परिस्थिति कितनी हास्यास्पद और दु खजनक है यह उनमे से एक व्यक्तिके उदाहरणसे स्पष्ट हो जायेगा। १८९९ मे इस व्यक्तिको धमकी दी गई थी कि उसे हटकर *बाजारमें* जाना ही पडेगा। उसने ब्रिटिश एजेंटसे दरख्वास्त की। ब्रिटिश एजेंटने सौजन्यके साथ तार देकर कहा कि सूचनाकी परवाह किये बिना वह जहाँ है वही बना रहे। जो ब्रिटिश सरकार उस समय अपनी प्रजाकी रक्षाके लिए मुस्तैद थी वही आज पंगु हो गई है और रक्षा करनेमे डरती है, जब कि बाहरके लोगोको ऐसा लगता है कि अभयदानके लिए वह आज पहलेसे अधिक अच्छी स्थितिमे है। लड़ाईके पहले भारतीयोको चलते-फिरते व्यापार करनेके परवानें हकके तौरपर मिल जाते थे। अब राजस्व-अधिकारी ऐसे परवाने देनेसे इनकार करते है।

इसके सिवाय बाजार है ही नही, इस तथ्यको चाहे जितना जोर देकर कह सकते है। यहाँ तक कि, सरकारने भी स्वीकार किया है कि उनके चुने हुए कुछ स्थान व्यापारोपयोगी नही है। इन्हे चुननेका बहाना यह बताया जाता है कि आन्दोलन बहुत उग्र है। शब्दोको हेरफेर कर कहे तो सरकार न्याय यों नही कर पाती कि भारतीयोके प्रतिद्वन्द्वी बहुत ताकतवर है और सरकारको विश्वास है कि किसी-न-किसी दिन इन जगहोका विकास होगा और तब आजके ये बीहड़ स्थान भी व्यापारके सुविधाजनक स्थल हो जायेंगे।

फिर, इन तथाकथित *बाजारोंमें* जमीने देनेकी शर्त यह है कि जमीनवाले अपना पैसा लगाकर वहाँ दूकाने बना ले। हर व्यापारी ४०० या ५०० पौंड लगा कर कामके लायक मकान-दूकान नही बना सकता। और ये जमीनें सिवा उनके, जो उनमे बसना या व्यापार करना चाहते है, किसीको दी नही जा सकती।

इसलिए, हालतको चाहे जिस तरह उलट-पलट कर देखिए, भारतीय व्यापारियोके सामने सर्वनाश ही खड़ा दिखाई पड़ता है।

पुरानी सरकारके बनाए हुए *बाजार* या बस्तियाँ मिडिलबर्ग और पीटर्सबर्गमे थी। ये काफी सुविधाजनक स्थानो पर बनी है। अब वर्तमान सरकारने *बाजार* इन नगरोमे व्यापारके केन्द्रसे और भी दूर निश्चित किये है। पुराने *बाजारोंमें* बहुतसे भारतीय धन्धा कर रहे है। वहाँ गोरोके साथ स्पर्धाका नाम भी नही है। वहाँ कोई गोरा व्यापारी व्यापार करेगा भी नही। इतनेपर भी, कहते हुए पीड़ा होती है, सरकारने तय किया है कि इन *बाजारोंमें* धन्धा करनेवाले व्यापारियोको नये स्थानोपर हटना पड़ेगा। यह तो गोरे व्यापारी सरकारसे जिसकी कामना कर सकते है उससे भी ज्यादा हो गया।

लॉर्ड मिलनरने श्री चेम्बरलेनके नाम अपने खरीतेमे सारे ससारके सम्मुख यह प्रकट किया है कि मौजूदा सरकार तीन खास मुद्दो पर प्रतिबन्ध ढीले कर रही है, पहला, *बाजारके* लिए जो जगहें चुनी जा रही है वे व्यापारके केन्द्रसे दूर नही है और वहाँ हर समाजका आना-जाना सुगम है, दूसरा, वास्तविक शरणार्थियोके *बाजारोंसे* बाहर व्यापार करनेके परवाने फिर दे दिये जायेंगे; और तीसरा यह कि, उच्च स्तरके भारतीय सब कानूनी निर्योग्यताओसे मुक्त रहेंगे।

ऊपर बिना नमक-मिर्च मिलाये जिस वस्तुस्थितिका बयान किया गया है, उससे स्पष्ट है — परम सम्माननीय महोदय क्षमा करे — कि उक्त तीन बातोमे से एक भी तथ्योके समक्ष नही ठहर सकती। क्योकि, *बाजार* दुर्गम स्थानोमे निश्चित किये गये है, वास्तविक शरणार्थियोके परवाने पुन जारी नही किये जा रहे है, और भारतीय, वे कितने भी प्रतिष्ठित क्यो न हो, तमाम निर्योग्यताओके शिकार बने हुए है। अभीतक सिर्फ निवासकी छूटका वचन मिला है, किन्तु वह भी इतनी अपमानजनक शर्तोसे घिरा हुआ है कि शायद ही किसी आत्माभिमानी भारतीयने उस छूटकी सुविधाके लिए दरख्वास्त की है। फिर, निवासकी छूट भारतीयोकी आखिरी जरूरत है। निवासकी ऐसी छूटका क्या मूल्य होगा, जिसके साथ व्यापारका हक जुडा हुआ नही है? वर्तमान शासनमे क्रम उलटा हो गया है। व्यापार मुख्य वस्तु है, इसे समझकर पहले श्री चेम्बरलेनने बोअर-सरकारसे कहा था कि नगरोका भारतीय व्यापार जैसाका-तैसा छोड दिया जाये, किन्तु यदि श्री क्रूगर स्वच्छताकी दृष्टिसे ब्रिटिश भारतीयोके लिए अलग निवासकी जगहे निश्चित करना चाहे, तो उन्हे इसपर आपत्ति न होगी।

युद्ध अंशत भारतीयोंके लिए लडा गया था। यदि वे अपनी स्थिति बेहतर नही कर सकते तो कमसे-कम लडाईके पहलेकी सुविधाका दावा तो वे कर ही सकते है।

[अंग्रेजीसे]

कॉलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स · सी० ओ० २९१, जिल्द ७५, इंडिया ऑफिस।

८४. ऑरेंज रिवर उपनिवेश

आम तौरपर किसी देशका सरकारी *गजट* पढनेमे बडा नीरस होता है और वकीलोको छोडकर वे ही लोग उसके नजदीक फटकते है जो दिवालेकी सूचनाओ और ऐसी ही दूसरी चीजोका अध्ययन करना चाहते है। परन्तु ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें प्रकाशित सरकारी *गजट* इस सामान्य नियमका अपवाद है। उस *गजटके* अंक पढनेमें प्राय· दिलचस्प होते है और, साथ ही, हममें से कुछके लिए दु खद भी। उससे प्रकट होता है कि उपनिवेशमे सम्राटकी सरकार रगके प्रश्नपर ब्रिटिश नीतिको बोअरोकी नीतिमे पूरी तरह मिला देनेकी दिशामे छलाग भरती हुई प्रगति कर रही है। जैसे नया धर्मान्तरित मुल्ला जोर-जोरसे अजाँ देता है वैसे ही ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी सरकार भी रगके प्रश्नपर पूरी तरह बोअरोके विचारकी बन जानेके कारण अपने उत्साहमें उनको भी मात दे रही है। पिछले ३१ दिसम्बरके (जो नीति-निर्धारणके लिए बहुत अनुकूल तारीख है) *गजटमें* ब्रैडफोर्ट नगरके लिए प्रकाशित नियमोमें "वतनी" शब्दकी एक नई ही परिभाषा दी गई है।

धारा ११४ में कहा गया है कि:

> इन नियमोंमें जहाँ कहीं 'वतनी' या 'वतनी लोग' शब्द आते है वहाँ, अगर प्रकरणसे और कोई अर्थ साफ-साफ न निकलता हो तो, वे स्त्रियो और पुरुषोंके और इनके बोधक होगे और इनपर लागू होंगे: दक्षिण आफ्रिकाकी तमाम वतनी जातियोंके[1] सोलह सालकी आयुके, या सोलह सालकी संभावित आयुके, या उससे अधिक आयुके स्त्री या पुरुष; और तमाम रंगदार व्यक्ति एवं वे सब जो कानून या रिवाजके अनुसार वतनी या

१. यहाँ मूलमें 'जगहों' शब्द भूलसे छपा प्रतीत होता है।

रंगदार व्यक्ति कहे जाते हैं, या जिनसे वैसा बरताव किया जाता है — चाहे वे किसी भी जाति या राष्ट्रके क्यों न हों।

उसके बाद वे गुलाम बनानेवाले नियम आते हैं, जिनकी तरफ हमने अनेक बार इन स्तम्भोंमें ध्यान आकर्षित किया है। यह परिभाषा जितनी हो सकती है, उतनी व्यापक और अपमानजनक है। यहाँ तक कि, राजा रणजीतसिंहजी[1], या सर मचरजी[2], या लॉर्ड मिलनरके शब्दोमे जापानी राजदूत भी, जापानियोके बारेमे हम अखबारोमे जो भी गर्वभरी बाते पढते है उनके बावजूद, अगर एक खानगी व्यक्तिकी तरह सफर करना चाहे तो ब्रैंडफोर्ट नगरमे उनके साथ दक्षिण आफ्रिकाके एक वतनीका-सा बरताव किया जायेगा, उन्हे पृथक बस्तियोकी सीमामें ही रहना पडेगा, निवास परवाने लेने पड़ेंगे, वे "आवारा वतनी" माने जायेंगे — चाहे इस शब्दका कुछ भी अर्थ हो, रातके दस बजेके बाद बस्तीके बाहर नही रह सकेंगे, कर्फ्यूकी घंटीके बाद आम रास्तो या खुली जगहोमे नही रह सकेगे और जिन गाड़ियोपर "केवल वतनी" लिखा होगा उनके सिवा और गाड़ियोमे नही चल सकेगे। जिस तरीकेसे परम्परागत ब्रिटिश नीतिका सार्वत्रिक त्याग किया गया है वह भी बहुत चतुरतापूर्ण है। उपनिवेशके कानूनमे ऐसा कोई भेद-भाव रखा जाता तो उसके लिए उपनिवेश-कार्यालयसे मजूरी लेनी पडती, और वह मजूरी देनेके लिए कितना भी तैयार क्यो न हो, शायद पूरी-पूरी बात मजूर न कर पाता। इसलिए उपनियमोकी शरण ली गई है, जिनके लिए ब्रिटिश मन्त्रिमडलसे स्वीकृति लेनेकी आवश्यकता नही है, और जिनकी मजूरी वैधानिक शासनवाले उपनिवेशका लेफ्टिनेट गवर्नर स्वभावत और शिष्टाचारवश कुछ आपत्ति किये बिना दे देता है। और फिर भी उस लडकीकी तरह जो बराबर चिल्लाती रही कि "अब भी हम सात है,"[3] ऑरेंज रिवर उपनिवेशके राज्याधिकारियोको यह कहते शर्म नही आयेगी कि, "अब भी हम ब्रिटिश नीतिका पालन कर रहे है!" आशा है, इग्लैंडमें कोई व्यक्ति इन नियमोको, जिन्हे हम अन्यत्र छाप रहे है, देखेगा, इनका अध्ययन करेगा और जनताको बतायेगा कि उन्नत ऑरेंज रिवर उपनिवेशमे इग्लैंडके नामपर क्या किया जा रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-१-१९०४

१. नवानगरके जाम साहब — महाराजा रणजीतसिंहजी विभाजी, १८७२-१९३३, जो क्रिकेटके खेलके लिए "रंजी" नामसे प्रसिद्ध थे।

२. सर मंचरजी भावनगरी, देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४२०।

३. विलियम वर्ड्सवर्थकी कविता "वी आर सेवन" में एक छोटी बालिका कहती है कि हम सात भाई-बहन है; मेरे दो भाई-बहन स्वर्गमें है, फिर भी हम सात है।

८५. आत्मत्याग

त्याग जीवनका धर्म है। वह जीवनके हर क्षेत्रमें व्याप्त है और उसका नियमन करता है। व्यापारिक भाषामे कहे तो, कीमत चुकाये विना अथवा, दूसरे शब्दोंमें, त्याग किये विना, हम न कुछ कर सकते है और न पा सकते है। हम जिस समाजके अग है उसका यदि हमें उद्धार करना है तो हमें इसका मूल्य अदा करना होगा, अर्थात् स्वार्थका त्याग करना होगा। समाजके लिए काम करते हुए जो-कुछ प्राप्त हो उसका एक भाग ही हम अपनी खातिर रख सकते हैं, अधिक नही। बस यही त्याग है। कभी कभी हमें महँगे दाम चुकाने पडते हैं। सच्चा त्याग कर्मसे अधिकतम आनन्द प्राप्त करनेमें ही है — फिर उसमें जोखिम चाहे कुछ भी हो। ईसा मसीहने कलवारीमे क्रॉसपर प्राण दिये, और वे ईसाई धर्मके रूपमें एक शानदार विरासत छोड गये। हैम्डनने[1] कष्ट पाया, परन्तु जहाजी-कर[2] नही रहा। जोन ऑफ आर्कको जादूगरनी कहकर जला दिया गया, परन्तु उसे अमर सम्मान मिला और उसके हत्यारे सदाके लिए कलकित हो गये। ससार उसके आत्म-त्यागका परिणाम जानता है। अमेरिकावालोने अपनी स्वाधीनताके लिए अपना खून बहाया।

ये दृष्टान्त हमने फर्क बतानेके लिए दिये है कि व्यक्तिगत रूपमें भारतीयोको समाजका बहुत बडा लाभ करनेके लिए कितनी थोडी कुर्वानी करनी है, और जिनके उदाहरण हमने दिये है उन्हे कितना त्याग करना पड़ा था। दक्षिण आफ्रिकामे आम तौरपर और ट्रान्सवालमें खास तौरपर भारतीय अनेक कष्ट भोग रहे है। ट्रान्सवालमे उनका भाग्य अधरमे झूल रहा है। उनके रोजीके सावनतक निर्दयतासे छीने जा सकते हैं। उन्हे अशिष्टतापूर्वक पृथक बस्तियोमे खदेड़ा जा सकता है। तव फिर ब्रिटिश भारतीय कौन-सा आत्मत्याग करे, जिससे उन्हे राहत मिलनेकी आशा हो सके? प्रत्येक भारतीयको इस प्रश्नपर इस तरह सोचना चाहिये मानो यह खुद उसको प्रभावित करता है। उसे सबकी भलाईके लिए धन देना चाहिए और अपना समय और शक्ति लगानी चाहिए। सबके खतरेका सामना करनेके लिए व्यक्तिगत मतभेदको भुला देना जरूरी है। अपने-अपने आराम और अपने-अपने फायदेको छोडना चाहिए। इसके साथ धीरज और सयम भी रखना होगा। जो सीधा और तग रास्ता यहाँ बताया गया है उससे जरा भी इधर-उधर हुए तो कगारेपर से नीचे आ गिरेगे — इसलिए नही कि हमारा पक्ष जरा भी बेजा या कमजोर है, बल्कि इसलिए कि हमारे खिलाफ जो विरोध खडा किया गया है वह बहुत बडा है।

सामूहिक भावनाके बिना कभी किसी जाति या समाजने कोई सफलता प्राप्त नही की। राष्ट्रीय हित करनेकी इच्छा हो सकती है, परन्तु केवल-मात्र इच्छा, यद्यपि वह ध्येयकी ओर प्रगतिमे एक आवश्यक मजिल है, कुछ ज्यादा किये बिना बेकार होती है। ध्येयकी प्राप्तिके लिए आवश्यक साधन अपनानेकी तैयारी होनी चाहिए। किसी जंजीरमे उसकी सबसे कमजोर कडीसे ज्यादा ताकत नही होती। अगर हम अटल रहकर कन्धेसे-कन्धा भिडाकर और अस्थायी निराशाओसे विचलित हुए विना खडे रहने और काम करनेके लिए तैयार नही है तो हमारे लिए

१–२. इग्लैंडके राजा चार्ल्स प्रथमने १६३४–३७ में नौसेनाके परिपोषणके लिए संसदकी अनुमतिके विना, एक जहाजी कर लगा दिया था। जॉन हैम्डन (१५१४–१६४३) ने उसके खिलाफ आन्दोलनका नेतृत्व किया; जिसमें उसे वहुत कष्ट सहने पड़े, किन्तु जहाजी कर अन्ततः रद हो गया।

असफलता ही उचित पुरस्कार या, यो कहिए कि, कर्त्तव्यकी घोर अवहेलनाका योग्य दड होगी। ब्रिटिश राज्यमे रहनेवाली जातियोके लिए किसी वीरतापूर्ण त्यागकी भी जरूरत नही है। मुख्य आवश्यकता इस बातकी है कि धैर्यके साथ, लगातार और सौम्य वैधानिक प्रयत्न किया जाये। लगनसे सर्वत्र सफलता मिलती है। ब्रिटिश उपनिवेशोमे तो वह और भी कारगर होती है। यदि ब्रिटिश तन्त्रकी चाल धीमी है, क्योकि राष्ट्रका स्वभाव ही रूढिप्रिय है, तो वह लगन और एकताको जल्दी समझने और स्वीकार कर लेनेवाला भी है। एक भारतीय कहावत हे, रोये बिना माँ भी बच्चेको दूध नही पिलाती। फिर, ब्रिटिश सरकार तो और भी कम सुननेवाली है। इसलिए हम आशा करते हैं कि दक्षिण आफ्रिका भरमें हमारे देशवासी ब्रिटिश सविधानके इस पहलूका सावधानीसे ध्यान रखेंगे और तबतक चैन नही लेंगे जबतक पूरा न्याय नही किया जाता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-१-१९०४

८६. डॉ० जेमिसन और एशियाई

डॉ० जेमिसनने[1] केप उपनिवेशके गवर्नर महोदयके सामने एक बड़ी माकूल तजवीज रखकर केपके बॉड दलको पगु बना दिया है, और गवर्नरने उनका प्रस्ताव मान लिया है, यह वस्तुस्थिति योग्य डॉक्टर महोदयके दलको बहुत ही ठोस सहायता पहुँचायेगी। ट्रान्सवालमे चीनी मजदूर आनेवाले हैं, इस दृष्टिसे उन्होंने गवर्नरसे अनुरोध किया कि केप उपनिवेशके दरवाजे चीनियोके लिए बन्द करनेका कानून बना दिया जाये। अपने साम्राज्य-निष्ठाके दावेके अनुसार उन्होने सुझाया कि पाबन्दी सिर्फ गैर-ब्रिटिश एशियाइयोपर ही लागू हो। इस प्रकार उन्होने एशियाई ब्रिटिश प्रजाजनोंका दर्जा पहले-पहल स्वीकार किया। उन्होने एक विधेयकका मसविदा भी स्वीकृतिके लिए पेश किया, और गवर्नरने *गजटमें* एक ऐसा विधेयक छाप कर अपनी प्रतिक्रिया प्रकट की है, जिसमे प्रगतिशील दलके उक्त नेताकी सिफारिशोकी सभी जरूरी बाते अपना ली गई है। अब भी यह आशा की जा सकती है कि इस ऐन वक्तपर भी ट्रान्सवालके लोग ऐसी छलॉंग न मारनेका फैसला करेंगे, जो भयंकर परिणामोसे भरी हुई है, और वे उक्त विधेयकका पास होना अनावश्यक बना देगें। क्योकि, भले वह गैर-ब्रिटिश प्रजाजनोपर लागू किया जानेको हो, वह बहुत कठोर है, और इसलिए, एक ब्रिटिश उपनिवेशके उपयुक्त नही है। इसके अतिरिक्त, इस प्रकारका कानून सघ-शासनकी प्रगतिको अनिश्चित कालके लिए रोक देगा। इसलिए अब भी ट्रान्सवालके लोगोके लिए समय हैं कि वे स्थितिपर पुन. विचार करे और कम आपत्तिजनक उपायोसे वर्तमान कठिनाइयोको पार करें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-१-१९०४

१. सर एल० एस० जेमिसन (१८५३-१९१७) ये १९०४-१९०८ तक केप कालोनीके प्रधानमन्त्री रहे थे।

८७. एशियाई अनुमतिपत्रों-सम्बन्धी रिपोर्ट

लॉर्ड मिलनरके अनुरोधसे कप्तान हैमिल्टन फाउलने एक ज्ञापन तैयार किया है, जिसमे एशियाइयोको दिये गये अनुमतिपत्रोके आँकडे बताये गये है। इस ज्ञापनमे विशुद्ध तथ्योका स्पष्ट वर्णन और श्री लवडे तथा उनके मित्रोको पूरा जवाब है। ये लोग गला फाड-फाड कर चिल्ला रहे थे कि हजारो भारतीय लुकछिपकर उपनिवेशमें घुस आये है। और, परमश्रेष्ठ लॉर्ड मिलनरके प्रति पूरा आदर रखते हुए हम कहेगे, यह ज्ञापन श्रीमानके खरीतेमें दिये गये इस वक्तव्यका पूरा खण्डन भी है कि बहुत-से गैर-शरणार्थी ब्रिटिश भारतीय उपनिवेशमें घुस आये है और उन्होंने परवाने हासिल कर लिये है। जैसा कि कप्तान फाउलका बयान है, यह सच है कि ५७९ भारतीय अनुमतिपत्रोके बिना उपनिवेशमे रहनेके जुर्ममें सीमाके पार भेजे गये है। इससे यह तो हरगिज साबित नही होता कि ये लोग जान-बूझकर घुस आये थे। पिछले वर्षके शुरूमें यह कहा गया था कि जब शान्तिकी घोषणा हो जायेगी और परवानोके नियम ढीले कर दिये जायेंगे तब उपनिवेशमें प्रवेश करनेके लिए अनुमतिपत्रोकी जरूरत नही होगी। रेलोमें कोई देख-रेख थी नही, अत. भारतीय स्वाभाविक रूपसे उपनिवेशमे आ गये थे। अब वे निकाल दिये गये है। ये भारतीय ब्रिटिश प्रजाजन है और ऐसे लोग नही है जिनसे शान्ति-रक्षा अध्यादेशके अर्थकी सीमामे समाजको कोई खतरा हो सकता हो, इस बातको देखते हुए बहुतोको यह शका होगी कि क्या यह कदम न्यायसगत है। हमारी रायमे, ब्रिटिश भारतीयोके आगमनपर पाबन्दी लगानेके लिए अध्यादेशका उपयोग गलत रूपमें किया जा रहा है। जब वह जारी किया गया था तब उसका स्पष्ट उद्देश्य ऐसे लोगोको उपनिवेशमें आनेसे रोकना था जो राजनीतिक दृष्टिसे खतरनाक हो सकते थे — अवश्य ही भारतीयोकी तरह सम्राटके सबसे अधिक राजभक्त माने हुए प्रजाजनोको रोकना नही। उपनिवेशमें केवल ८,१२१ भारतीय है। इससे सिद्ध होता है कि उनके विरुद्ध अध्यादेशपर अमल कितनी कठोरतासे किया गया है। सर कनिंघम ग्रीन (तब, श्री ग्रीन)के कथनानुसार १८९९ मे यहाँ वयस्क भारतीयोकी आबादी १५,००० से ऊपर कूती गई थी। इसलिए, ७,००० शरणार्थियोके बारेमें अभी और जवाबदेही करनी पड़ेगी। यह भी कहा जा सकता है कि भारतीय प्रवासियोपर पाबन्दी लगानेकी प्रथा पुरानी नही है, बिलकुल नई है। पुरानी हुकूमतके कानून कुछ भी रहे हो, परन्तु ब्रिटिश भारतीयोके प्रवेशपर कतई कोई पाबन्दी नही थी और न उनके पजीकरणकी धारापर सख्तीसे अमल किया जाता था। फिर भी हम परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयको श्री चेम्बरलेनको यह आश्वासन देते हुए पाते है कि पुराने कानून पहलेकी तरह कठोरतासे लागू नही किये जा रहे है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१–१–१९०४

८८. आत्मत्याग — १

मनुष्यकी प्रकृति ऐसी है कि वह अतिशय सामान्य वस्तुको कुछ नही गिनता। साधारणतः हम कहते है कि खाये-पिये विना आदमीकी एक घड़ी भी गति नही है। किन्तु ऐसा कहते समय हम इतना नही सोचते कि खानपानकी अपेक्षा हवा ज्यादा जरूरी है — किन्तु हम उस ओर ध्यान नही देते, क्योंकि हमेशा श्वास लेते रहते है। और भूख-प्यास समय-समयपर लगती रहती है, उसकी झट याद आ जाती है। इसी प्रकार आत्मत्यागको समझिए। जिन्दगी आत्मत्याग करनेसे निभती है। फिर भी उस ओर ध्यान नही जाता।

आत्मत्याग अनेक प्रकारका है, आज हम केवल स्वार्थके त्यागका विवेचन करेंगे। स्वार्थके त्यागकी महिमा सब जानते है। और इस विषयमे मनुष्य जितना अधिक विचार करता है उसकी उतनी अधिक जरूरत लगती है और वह उसे समझता है। नासमझ सोचे तो जरूरी लगे, समझदार सोचे तो जरूरी लगे, इतना ही नही वह उसे समझ भी सकता है और समझनेपर वैसा स्वार्थत्याग करनेके लिए तत्पर भी हो जाता है। हम यह बात अपने बचपनसे जानते है और इसलिए बारबार कहते है कि मेहनतके बिना कुछ नही मिलता। किन्तु हम जैसे-जैसे बड़े होते है और विचार करते है वैसे-वैसे अपने अनुभव और इतिहासके अध्ययनसे इन साधारण वचनोका तात्पर्य हमारी समझमे अधिकाधिक आने लगता है। टेकरी चढ़नेमे थोडी मेहनत, पहाड चढनेमे बहुत मेहनत; छोटा काम करनेमे कम जोखिम, कम कष्ट, बड़ा काम करनेमे बड़ी जोखिम, बड़ा कष्ट। अगर हमे पहाड़ चढ़ना आवश्यक जान पड़ता है तो हम बहुत श्रमकी परवाह नही करते और बडा काम करना हो तो जोखिम और कष्टको नही गिनते अर्थात् जरूरत पड़नेपर त्याग करनेमे नही डरते।

इस मुल्कमे रहनेवाले हमारे भाई भी इस विचारसे अनजान नही है। यहाँ आकर वे जो दो पैसे कमाते है वह इसी त्यागका परिणाम है। घरबार छोडा, सगे-सोदरे छोडे, महासागर पार किया — इतना सारा त्यागा और भली भाँति विचार करनेके बाद। त्याग किया, हिम्मत बाँधी तभी इस देशमे आ सके और स्थिति सुधार सके। अर्थात् सोच-विचारकर त्याग करनेसे अच्छा फल निकलता है, इसे वे अच्छी तरह समझते है और इसलिए समय-समयपर त्याग करके अपनी स्थितिको सुधारनेका प्रयास करते है और हम आशा करते है कि वे सदा सोच-समझकर त्याग द्वारा सार्वजनिक और अपनी हालत रोज-रोज सुधारते ही रहेंगे।

हम आज त्याग करनेके कर्त्तव्यके विषयमे इसलिए लिख रहे है कि देशमे और विशेषतः ट्रान्सवालमें गोरे लोग हमारी स्थितिको अत्यन्त विषम बनाने पर तुले हुए है। हमारे साधारण अधिकार एकके बाद एक छीने जा रहे है। इसके बाद भी कोई हमारी तरफसे बड़ा संघर्ष नही चलाता और इसलिए गोरे हमे असहाय और निर्बल मानते है और उनकी मदांधता दिन-दिन बढ़ती जाती है। यहाँकी सरकार गोरोके हाथमे है और उन्हे नाराज करनेमे डरती है; इसलिए उनकी चाहे जितनी ऊटपटांग और अन्यायपूर्ण जिद मान लेती है और उसे कायम रखती है और बड़ी सरकारको समझाती है कि लोकमतका मान रखनेके लिए ऐसा करना पड़ता है। हमारे दुर्भाग्यसे बड़ी सरकार अपनी सत्ताका प्रयोग करके [लोकमतके] ऐसे दुरुपयोगके खिलाफ काफी जोर नही लगाती। भारत-सरकार, हमारी रक्षा करना जिसका खास फर्ज है, एकाध बार डरते-डरते थोड़ा-सा बोलती है — केवल थोड़ा-सा। जब हमारी ओरसे दबाव डाला गया तभी लॉर्ड मिलनरने मजदूरोकी माँग की। उससे एक अवसर मिला और कहा गया कि यदि [स्वतंत्र] भारतीयोकी स्थिति सुधारी जाये तो किसी निश्चित अवधि तक गुलामी करनेके

लिए मजदूर भेजे जायें। हमारे अधिकारका मजदूरोंकी गुलामीसे कोई भी सम्बन्ध नहीं है — फिर भी ऐसी शर्त पेश की गई; इसपर से ऐसा अनुमान होता है कि यदि ट्रान्सवाल गुलामोंकी तरह काम करनेके लिए भारतीय मजदूर भरती करनेकी माँग वापस ले ले तो भारत-सरकार ट्रान्सवालमें रहनेवाली भारतीय जनताकी हालत नहीं सुधार सकती। नेटाल और ऑरेंज रिवर कालोनीके उपनिवेशोंसे तो हमें कोई आहट ही नहीं आती, मानो वहाँ दूधकी नदियाँ बह रही है। ऐसा है हमारा दुर्भाग्य और इसलिए हमें कर्तव्योंके विषयमें बार-बार लिखना पड़ता है। हमारे बुजुर्गोंकी 'अपने मरे बिना सरग नहीं मिलता' और 'परकी आशा सदा निराशा' जैसी कहावतें ऐसे दुखदायी अनुभवोंपर से याद आती है और उनका महत्त्व समझमे आता है।

इतना याद रखना चाहिए कि ब्रिटिश सरकारकी वृत्ति न्यायी है और इच्छा इंसाफ करनेकी है। राज ब्रिटिश है इसलिए ब्रिटिश राजनीति समझना हमारा फर्ज है। जैसे-जैसे ब्रिटिश राजनीति और नियमोंका अध्ययन करते है वैसे-वैसे, किस तरह अपनी माँगें सामने रखें, यह समझमे आता है, और यदि यह समझमें आ जाये तो फिर मुराद पूरी होनेमे बहुत मुश्किल नहीं रहती। समय लगता है किन्तु बात वाजिब हो तो अन्तमें होकर रहती है। ऐसा नहीं है कि केवल भारतीय जनताको ही इन्साफ देरमें मिलता है, आयरलैंडका उदाहरण देखिये, ब्रिटिश-प्रकृति ही ऐसी है। अब हमारा फर्ज यह है कि यह बात ध्यानमें रखकर प्रयत्न करे। सबका सुख सो मेरा सुख, सबका लाभ सो मेरा लाभ, ऐसा उत्तम विचार मनमे दृढ़ करके मन लगाकर यदि हम अपना काम करते है तो अन्तमे हमारी धारणा अवश्य पार पड़ेगी क्योंकि हम न्याय माँग रहे है, मेहरबानी नहीं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-१-१९०४

८९. एक बेजोड़ मुकाबला

ट्रान्सवालके भारतीयोंका प्रश्न एक नई और चिन्ताजनक स्थितिमें पहुँच गया है। उस उपनिवेशकी सरकारने न्यायकी पुकार सुनी-अनसुनी कर दी है। उसने 'न खाय न खाने दे' की नीति अख्तियार करनेका फैसला किया है। यहाँतक कि भारतीयोंको काफिरोंकी बस्तियोंमें भी व्यापार करनेकी इजाजत नहीं है, ताकि कहीं ऐसा न हो कि, वे उससे अपनी आजीविका उपार्जित कर लें! सरकारका खयाल है कि उसने *बस्ती* शब्द बदलकर *बाजार* कर दिया, यह बड़ी रियायत दे दी है। और ऐसा करनेके बाद यह स्वाभाविक ही है कि वह इसके बदलेमे बस्तियोंको उन जगहोंसे भी ज्यादा दूर हटा दे जहाँ वे बोअरोंकी हकूमतमें थी, और उन जगहोंमे रख दे जहाँ, कमसे-कम कुछ जगहोंमें, उसकी अपनी ही स्वीकारोक्तिके अनुसार इस समय व्यापार चलाना मुमकिन नहीं है।

चिकित्सक लोग इलाजका एक तरीका जानते है, जिसे वे अनशन-चिकित्सा कहते है। ट्रान्सवाल सरकारने भारतीय मुसीबतका भी ऐसा ही इलाज अपनाया है। अगर वह भारतीयोंको शराफतसे सीमा पार नहीं भेज सकती तो, कोई कारण नहीं कि उन्हें शहरकी हदके बाहर भी न रख सके, जिससे या तो वे भूखों मर जायें या बिलकुल चले जायें। जब यही तरीका डचोंके अलावा दूसरे यूरोपीय लोगोंपर जो कुछ पहलेतक एटलांडर[1] कहे जाते थे, लागू

१. दक्षिण आफ्रिकी डचेतर गोरे प्रवासियोंके लिए डच नाम।

किया गया था, उस समय लॉर्ड मिलनरने इसे "टोच-कोच नीति" का नाम दिया था। फिर भी, बोअर-सरकारने डचेतर यूरोपियोके साथ जो व्यवहार किया था, निर्दयतामे उसकी तुलना ट्रान्सवाल-सरकारके इस व्यवहारसे नही की जा सकती, जो वह अपने एक प्रजा-वर्गके साथ अब कर रही है। इसीलिए भारतीयोने, अन्तिम उपायके रूपमे, इस मामलेको उपनिवेशके उच्च न्यायालयमें ले जाने और यह परीक्षा करानेका बुद्धिमत्तापूर्ण फैसला किया है कि क्या सरकारको ब्रिटिश भारतीयोको बस्तियोके बाहर व्यापार करनेके परवाने देनेसे इनकार करनेका अधिकार है। ऐसा रास्ता अख्तियार करना बहुत ही जरूरी हो गया है, यह बडा दयनीय है। किन्तु ट्रान्सवालके भारतीय लगभग दो वर्षतक इस मामलेको सर्वोच्च न्यायालयके सम्मुख नही ले गये, और उससे फैसला लेकर मामलेको खत्म करनेके बजाय उन्होने सरकारसे ही थोड़ा-सा न्याय प्राप्त करनेका प्रयत्न किया, यह उनके लिए निश्चय ही श्रेयास्पद है। वे पूरी तरह श्री चेम्बरलेनकी सलाहपर चले हैं और उन्होने यूरोपीय व्यापारियो और सरकारसे उचित समझौता करनेकी कोशिश की है। उन्होने केवल अपने मौजूदा हकोके सरक्षणकी माँग की है। और, लॉर्ड मिलनरके नाम श्री चेम्बरलेनके खरीतेके बावजूद जब इतना भी उन्हे देनेसे इनकार किया गया तभी वे सर्वोच्च न्यायालयसे क्या फैसला मिलता है यह आजमाइश करनेके लिए मजबूर हुए हैं।

यह भाग्यकी विडबना है कि भारतीय समाज उसी मामलेको सर्वोच्च न्यायालयमे ले जायेगा — और यह भी सरकारी विरोधके बावजूद — जिसके सम्बन्धमे श्री चेम्बरलेनने भारतीयोका पक्ष लिया था और इसका समर्थन अखीर तक किया था। यहाँ तक कि, जब बोअर उच्च न्यायालयका फैसला[1] आशाके विरुद्ध और ब्रिटिशोकी मान्यताके विपरीत हुआ तब श्री चेम्बरलेनने श्री क्रूगरसे कहा कि वे ब्रिटिश भारतीयोके हकमे मामलेको एक भिन्न दृष्टिकोणसे पेश करेगे। जिस बातका हम उल्लेख करते है वह सन् १८९८ की है। यह स्मरण होगा कि भूतपूर्व फ्री स्टेटके तत्कालीन प्रधान न्यायाधीशने ब्रिटिश सरकार और बोअर सरकारके एक निवेदनपर फैसला[2] दिया था। प्रश्न यह था कि बोअर-सरकारको एशियाई विरोधी कानून बनानेका अधिकार है या नही। पचने फैसला दिया कि बोअर सरकारको सन् १८८५ का कानून ३, जिस रूपमे वह सन् १८८६मे संशोधित हुआ था उस रूपमे, मंजूर करनेका अधिकार है। इस फैसलेकी बिनापर बोअर सरकारने "स्वच्छताके प्रयोजनसे उनको (एशियाकी आदिम जातियोके लोगोको)," निवासके लिए निर्दिष्ट गलियाँ, मुहल्ले और बस्तियाँ बता देनेका अधिकार सुरक्षित कर लिया। लेकिन इससे समस्या पूरी तरह हल नही हुई, क्योकि यह जानना तो बाकी रह ही गया था कि "निवास" शब्दका अर्थ क्या था। अर्थात्, क्या इसका अर्थ यह था कि भारतीय जहाँ चाहे वहाँ रह नही सकते; किन्तु व्यापार कर सकते हैं? ब्रिटिश सरकार कहती थी — हाँ, कर सकते है। बोअर सरकारका खयाल दूसरा था। इसीलिए भूतपूर्व गणराज्यके उच्च न्यायालयकी पूरी न्यायसभाके सम्मुख परीक्षार्थ एक मुकदमा चलाया गया। न्यायमूर्ति मॉरिस, जॉरिसन और ईसरकी न्यायसभा बनी। न्यायमूर्ति मॉरिसने मुख्य फैसला दिया। उससे न्यायमूर्ति ईसरने तो सहमति प्रकट की, किन्तु न्यायमूर्ति जॉरिसन असहमत रहे। जैसा कि फैसलेसे मालूम होगा, न्यायमूर्ति मॉरिसने पूरी तरहसे ब्रिटिश या, यो कहिए कि, भारतीय दावेके पक्षमे तर्क किया, किन्तु यह महसूस भी किया कि वे उच्च न्यायालयके एक पहलेके सर्वसम्मत निर्णयको स्वीकार करनेके लिए बँधे हुए है। न्यायमूर्ति ईसरकी सहमतिका

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १–२ और १३–१७।
२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १७७–७८ और १८९–९०।

आधार भी वही था। न्यायमूर्ति जॉरिसनको अपना निर्भीक फैसला देनेमें कोई कठिनाई नही हुई। चूँकि वे "निवास" शब्दकी व्याख्यामें ईमानदारीसे व्यापार या व्यवसायको शामिल नही कर सकते थे, इसलिए उन्हे उच्च न्यायालयके पहले फैसलेको उलटनेमे कोई झिझक नही हुई।

इससे भी ब्रिटिश सरकारका उत्साह भग नही हुआ। उसने भारतीयोके हितोकी रक्षा करने लायक काफी उपाय फिर भी कर लिए और फैसला खिलाफ होनेके वावजूद लडाई शुरू होनेतक ब्रिटिश प्रतिनिधि वोअर सरकारको भारतीयोको वस्तियोमे भेजनेसे रोकनेमे समर्थ रहा। अव समय वदल चुका है और उसी प्रकार ब्रिटिश नीति भी। आगामी सघर्षको देखते हुए हम इन तीनो फैसलोका विस्तृत विश्लेषण फिर करेगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८-१-१९०४

९०. धन्यवाद, बोर्कसाहब

श्री बोर्कने भारतीय रेलगाडियोमे भारतीय यात्रियोके नियमनके बाबत जो प्रश्न[1] किया था, उसके उत्तरमे सर रिचर्ड सॉलोमनने नीचे लिखी जानकारी दी है.

> भारतकी रेलगाड़ियोंमें यूरोपीय और देशी लोगोंकी यात्राका नियमन करनेकी व्यवस्थाके बारेमें मुझे कोई व्यक्तिगत जानकारी नहीं है। मैंने माननीय सदस्यके प्रश्नकी एक नकल रेलवे-कमिश्नरको भेज दी थी। उन्होंने मुझे पत्र द्वारा सूचित किया है कि भारतीय रेलोंमें प्रथा यह है कि कोई भी देशी व्यक्ति, अगर वह अपना भाड़ा दे देता है तो, जिस डिब्बेमें चाहे उसमें बैठ सकता है; और यह भी कि, सब रेलगाड़ियोंमें स्त्रियोंके डिब्बे लगाये जाते हैं, परन्तु यदि कोई गोरा व्यक्ति अपनी पत्नीके साथ यात्रा करना चाहे, और साथ ही यह आश्वासन भी चाहे कि उसके डिब्बेमें कोई देशी व्यक्ति न रहेगा, तो उसे पूरा-का-पूरा डिब्बा लेना पड़ता है।

यह जानकारी ठीक हमारे अनुमानके अनुरूप है, और यद्यपि हमें श्री बोर्कके साथ सहानुभूति है कि वे जो-कुछ चाहते थे वह उन्हे नही मिला, फिर भी माननीय सदस्य इतना कष्ट उठानेके लिए धन्यवादके पात्र तो है ही, और हम आशा करे कि वे जो उत्तर मिला है उसे मजूर करेगे। उन्होने चुनौती दी थी, और जो उत्तर पानेका अनुमान बाँधा था कि भारतीय रेलोमें भेदभाव किया जाता है और, इसलिए, वैसा भेदभाव -ट्रान्सवालकी रेलोमें भी बहुत वाजिवी तौरसे किया जा सकता है, इस तर्कका उलटा भी तो सही होना चाहिए। इसलिए, चूँकि भारतमें कोई भेदभाव नही किया जाता, इसका अर्थ यह होता है कि ट्रान्सवालमें भी ब्रिटिश भारतीयोके प्रति भेदभाव नही किया जा सकता। श्री बोर्क एक सम्मानित पुरुष है। वे भेदभावकी पीडासे ग्रस्त है सही, फिर भी इसी कारण वे उस स्थितिसे पीछे नही हटेंगे, जिसे उन्होने जानबूझकर ग्रहण किया है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८-१-१९०४

१. देखिए "श्री बोर्कसे प्रार्थना," १४-१-१९०४।

९१. ब्लूमफॉटीनका संकट

दक्षिण आफ्रिका सचमुच अचरजो और सकटोका स्थान है, जैसा कि उसे नामवरीकी कब्र भी बताया गया है। पिछले दस वर्षोमे उसपर मुसीबतोपर मुसीबते आई है। वेम्बीका विस्फोट, जेमिसनके हमलेके ऐन मौकेपर ग्लेनको जक्शनकी रेल-दुर्घटना और अभी हालका ब्लूमफॉटीनका प्रलयकर तूफान — इन सबसे मालूम होता है कि दक्षिण आफ्रिकाके लोग कैसी अनिश्चित हालतमे रह रहे है। रॉयल होटलके छज्जेपर खड़े हुए लोग पानीसे घिरनेके पाँच मिनट पहले ही, जब पानी हहराता-घहराता आ रहा था, शायद यह सोच रहे थे कि वे एक भव्य दृश्यका आनन्द ले रहे है; मगर, अफसोस, उन पाँच मिनटोके अन्तमे साराका-सारा विशाल भवन भहराकर भूमिसात् हो गया, और वह दु खद कहानी कहनेको सिर्फ एक या दो व्यक्ति बचे! इस मन्दीके समयमे लगभग आधे ब्लूमफॉटीनका बह जाना, लगभग चार सौ लोगोका बे-घरबार हो जाना और साठसे अधिक व्यक्तियोका पानीमे बिलकुल समा जाना एक ऐसा आघात है, जिसे सहना बहुत कठिन है। विध्वंसके इस नजारेमे राहतका बाइस सिर्फ वह हमदर्दी है, जो दक्षिण आफ्रिकाके हर हिस्सेसे उस दुर्भाग्यग्रस्त स्थानको हासिल हुई है। विभिन्न नगरपालिकाओने ब्लूमफॉटीनके मेयरकी अपीलका तत्परताके साथ और उम्दा तरीकेसे उत्तर दिया है — यह उनके लिए बड़ी प्रशसाकी बात है। और हमे अपने पाठकोको सूचना देते हर्ष होता है कि भारतीय समाज भी पीडितोके सहायतार्थ चन्दा दे रहा है। सहायता कितनी छोटी क्यो न हो, वह सब अवसरके अनुकूल और बहुत ही उपयुक्त प्रयोजनके लिए होगी। इसलिए हम अपने पाठकोसे, उनकी स्थिति कैसी भी क्यो न हो, अपील करते है कि वे अपनी जेबे टटोले और अपना चन्दा भेजे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८-१-१९०४

९२. जोहानिसबर्ग व्यापार-संघ

जोहानिसबर्ग व्यापार-संघ (चेम्बर ऑफ कॉमर्स) की कार्य-समितिने संघके सामने यह प्रस्ताव रखा है:

पिछली अप्रैलकी सरकारी सूचनापर, उपनिवेश-सचिव द्वारा विधान-परिषदमें पेश किये गये उसके संशोधनपर, विधान-परिषदके जाँच-आयोग नियुक्त करनेके प्रस्तावपर, और १९ दिसम्बरको हुए ट्रान्सवाल व्यापार-संघके प्रतिनिधियोंके सम्मेलनकी सिफारिशोंपर ध्यान दिया गया।

आपकी समिति अब सिफारिश करती है कि,

(१) शासन-परिषद द्वारा की गई व्यवस्थाकी, जो अप्रैल १९०३ की सरकारी सूचना ३५६ में शामिल है, उचित आजमाइश की जाये। (२) सरकारसे निवेदन है कि उक्त सूचनाकी अन्तिम धारामें उल्लिखित अपवाद बहुत ही सीमित रूपमें मंजूर किये जायें, क्योंकि यूरोपीय समाजके बीच रहनेवाले एशियाइयोंकी संख्यामें कुछ भी वृद्धि होना उस समाजकी व्यापक भावनाके विपरीत होगा। (३) युद्धसे पहले परवानोंके बिना व्यापार करनेवाले भारतीयोंके मामलोंपर संघ तबतक मत प्रकट न करे जबतक इस मामलेमें सरकार द्वारा नियुक्त आयोगकी जाँच पूरी न हो जाये। (४) किसी एशियाईको किसी गोरेके नामसे व्यापार न करने दिया जाये या ऐसे किसी व्यवसायके मुनाफेमें अपना स्वार्थ न रखने दिया जाये, जिसका परवाना किसी गोरेके नामसे लिया गया हो। (५) उपर्युक्त सिफारिश १ के बावजूद, और सारे प्रश्नको स्थायी और अन्तिम रूपसे निपटाने और इस मामलेको फिरसे उखाड़नेके अन्य प्रयत्नोंको रोकनेके महत्त्वको देखते हुए, समितिकी सिफारिश है कि बिना भेद-भावके तमाम एशियाई व्यापारियोंको हटाकर *बाजारोंमें* रखने और जिन लोगोंके कानूनके अनुसार प्राप्त निहित स्वार्थ हों उन्हींको मुआवजा देनेके औचित्यपर सरकारसे विचार करनेको कहा जाये।

समितिकी सिफारिशें निश्चित रूपसे निराशाजनक हैं। संघके पिछले इतिहासके आधार-पर हमने समितिकी तरफसे अधिक राजनयिक सूझबूझका प्रस्ताव पानेकी उम्मीद की थी और हम अब भी आशा करते हैं कि संघ अपनी कार्य-समितिके प्रस्तावको माननेसे इनकार कर देगा। जब समिति एक अनुच्छेदमें कहती है कि *बाजार*-सूचनाकी आजमाइश की जाये और दूसरेमें कहती है कि इस आजमाइशके बावजूद ब्रिटिश भारतीय दूकानदारोंको *बाजारोंसे* निकाल दिया जाये और मुआवजा दे दिया जाये, तब उसका यह तर्क समझना कठिन हो जाता है। समिति चाहती है कि सरकार निवास-सम्बन्धी अपवाद बहुत ही कम कर दे। जोहानिसबर्ग जैसे अन्तर्राष्ट्रीय शहरकी तरफसे यह बात बहुत हास्यास्पद है। किन्तु हम समितिको विश्वास दिलाते हैं कि अबतक भारतीयोंने काफी संयम रखा है और किसी भी अपवादका लाभ नहीं उठाया है। जबतक वे अपनी वैध हैसियतकी कमी पूरी नहीं कर लेते तबतक वे अपने निवासके लिए सरकारकी उदारतापर निर्भर नहीं रहेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८–१–१९०४

१३. आत्मत्याग — २

हम लोगोमे से अनेकोको अनुभव हुआ है कि एकेसे सार्वजनिक लाभ होता है। नेटालमे आजसे बीस बरस पहले भारतीयोको इतना अधिक सताया जाने लगा था कि सरकारको विशेष आयोगकी नियुक्ति करनी पडी। इस आयोगने बड़ी जाँच-पडताल की और परिणाममे मत हमारे पक्षमे दिया। गोरोमे अध्यवसाय और एकताका गुण पर्याप्त होनेके कारण उपद्रव जारी रहा और भारतीयोको सिर्फ बाडोमे रखनेकी बार-बार माँग हुई। उस समय भारतीय जनतामे जितना चाहिए उतना एका नही था, इसलिए उपद्रव रुका नही, बल्कि उलटे बढता गया और स्वराज्य मिलते ही भारतीयोको अपमानित और हैरान करनेके कायदे बनाये जाने लगे। यद्यपि भारतीय देरसे जागे फिर भी उत्साह तथा लगनसे काम करने लगे जिससे जुल्मका बढना रुक गया — नही तो आज सब बाड़ोमें होते। दुर्भाग्यसे यह जोश-खरोश सिर्फ लगभग तीन ही बरस रहा, किन्तु इस अवधिमे बहुत लाभ हुआ और यद्यपि आज वह जोश-खरोश नही है फिर भी एकता बढती जाती है और यह मजबूत हो जाये तो हमारी हालत सुधरे बिना नही रहेगी। इस हकीकतको सोचें तो आत्मत्यागका महत्त्व सहजमे समझा जा सकता है। हम लोगोने स्वार्थका त्याग करना शुरू किया कि परमार्थ-बुद्धि खिलने लगी और उसका फल अच्छा हुआ। कुछ-न-कुछ त्याग किये बिना एका और मिलजुलकर काम नही हो सकता। ससारकी इमारत त्यागपर खड़ी है।

हम इस लेखकी ओर अपने ट्रान्सवालके भाइयोका विशेष ध्यान खीचते है क्योकि वहाँ स्थिति बहुत अव्यवस्थित और खेदजनक है। आजतक यह सोचकर कि सरकार जरूर न्याय करेगी हमने अदालत जानेका विचार नही किया। किन्तु यदि सरकार गोरी जनताके वशमे रहकर हमारे प्रति इन्साफ करनेमे अनमनी या अशक्त लगे तो सारी कौमका मिलकर इसपर विचार करना और योग्य कदम उठाना नितान्त आवश्यक है। ऐसा करनेमे समय या पैसा या बादमे दोनोका त्याग करना पड़े तो हमे आशा है कि वे बेशक करेगे। प्रसग बहुत नाजुक है, और गया अवसर फिर हाथ नही आता, यह ध्यानमे रखकर हमारे ट्रान्सवालके भाइयोको अपना रक्षण करनेकी भरपूर कोशिश करनी चाहिए, और हमे लगता है कि वे ऐसा करनेमे कमी नही करेगे। हमारा दावा सही है। इसलिए यदि लगनसे आन्दोलन चलाये तो परिणाममे जय मिले बिना नही रहेगी। एक होने और समय तथा धनका त्याग करनेका यह मौका है। हमे अपना कर्तव्य करना ही चाहिए। बादमे जो ईश्वरकी इच्छा होगी वह होगा। बचपनमे हमने एक गाड़ीवानकी बात पढी थी; वह याद रखने योग्य है। गाड़ीका पहिया कीचडमे धँस गया तो वह भगवान्‌की प्रार्थना करने लगा। उसपर भगवान्‌ने कहा कि इस तरह प्रार्थना करनेसे काम नही चलेगा। तू मेहनत कर तो बादमें भगवान् मदद करेगा। तब गाडीवानने मेहनत की और पहिया निकला। हम सब इसका तात्पर्य समझ सकते है, इसलिए इसका खुलासा करनेकी जरूरत नही है। हमसे जितनी बने उतनी कोशिश करे, यह हमारा कर्तव्य है — फल ईश्वरके हाथमे है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८–१–१९०४

९४. ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय

पिछले सप्ताह हमने तैय्यब हाजी खान मुहम्मद और एफ० डब्ल्यू० राइट्ज, एन० ओ०, के परीक्षात्मक मुकदमेका[1] जिक्र किया था। जैसा कि हम बता चुके है, उस मुकदमेमे सारी बहस इस वातपर आ पड़ी कि "निवास" शब्दका क्या अर्थ किया जाये। १८८५ का कानून ३, १८८६ के संशोधनके अनुसार यह विधान करता है

> सरकारको सफाईके प्रयोजनसे उन्हें (एशियाकी आदिम जातियोंके लोगोंको) रहनेके लिए निश्चित गलियाँ, मुहल्ले और बस्तियाँ बतानेका हक होगा।

तत्कालीन ट्रान्सवाल सरकारकी तरफसे यह कहा गया था कि भारतीयोके निवास-स्थानमें रहना भी, जिसका प्रयोजन व्यापार करना हो, शामिल है और, इसलिए, भारतीय निश्चित गलियो, मुहल्लो और बस्तियोमें ही व्यापार कर सकते है। इसके विपरीत, ब्रिटिश सरकारकी यह दलील थी कि "निवास" का मतलब व्यवसायको छोडकर रिहाइश ही हो सकता है और "सफाईके प्रयोजनसे" वाक्याश स्पष्ट बताता है कि भारतीय व्यापारको अछूता छोड दिया जायेगा। अदालतकी अध्यक्षता करनेवाले न्यायाधीश श्री मॉरिसने पहलेके एक निर्णयको[2], जो १८८८ मे इस्माइल सुलेमान ऐंड कम्पनीके मुकदमेमें दिया गया था, अपने फैसलेका आधार बनाया। याद रहे कि इस्माइल सुलेमान ऐंड कम्पनीके इस मामलेकी सुनवाई तत्कालीन ऑरेंज फ्री स्टेटके मुख्य न्यायाधीशके पच-फैसला देनेके पहले हुई थी। न्यायाधीशके अपने ही विचारके अनुसार:

> अदालत अधिक न्यायानुमोदित सिद्धान्तोके अनुसार फैसला देती, यदि उसने इस्माइल सुलेमान ऐंड कम्पनीके मुकदमेमें किसी स्थानपर रहने और व्यापार करनेके बीच फर्क किया होता। साधारण शब्द-प्रयोगके अनुसार जहाँ कोई व्यापार करता है परन्तु सोता नहीं, वहाँ ऐसा नहीं कहा जाता कि वह रहता है।

परन्तु विद्वान न्यायाधीशने सोचा कि वे पहलेके दिये हुए निर्णयसे बँधे है और इसलिए यद्यपि उनका अपना अर्थ उस अर्थसे भिन्न था जो उस शब्दका किया गया, फिर भी वे इस्माइल सुलेमान ऐंड कम्पनीके मुकदमेके फैसलेकी अवहेलना नही करना चाहते थे। अब ऐसा मालूम होता है कि गणतन्त्री सविधानकी इस धाराका उस समय पूरा उपयोग किया गया था कि, "राज्यमें गोरो और कालोंमें समानता नही होनी चाहिए।" यह मान लिया गया था कि भारतीय (दक्षिण आफ्रिकाकी) काली जातियोके लोग है। ऐसी सूरतमें यह तर्क किया गया कि १८८५ का कानून ३ सुविधा देनेवाला है, पाबन्दी लगानेवाला हरगिज नही। इस्माइल सुलेमानके मुकदमे और उपर्युक्त दलीलको काममे लेनेके बारेमे कोई कुछ भी कहे, वह उसके बादके तैयब हाजी खान मुहम्मदके मामलेपर किसी भी तरह लागू नही किया जा सकता, क्योकि मुख्य न्यायाधीशने साफ कहा था कि १८८४ के लन्दन सम्मेलनके[3] अनुसार ट्रान्सवाल सरकारको

१. देखिए "एक बेजोड़ मुकाबला", २८-१-१९०४।

२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३८९।

३. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९५।

ब्रिटिश भारतीयोंकी स्वतंत्रतापर प्रतिबंध लगानेवाला कोई कानून पास करनेका हक नही है। और उन्होने यह राय दी थी कि, दोनो सरकारे १८८६ के सशोधनके अनुसार १८८५ के कानून ३ से बँधी हुई है, क्योकि उन दोनो कानूनोके पास होनेमे ब्रिटिश सरकारकी खास रजा-मदी थी। हमारा खयाल है कि इस दलीलकी तरफ न्यायाधीशोका काफी ध्यान नही दिलाया गया। और उन्होने मुकदमेमें अपना फैसला इस तरह दिया मानो कोई पंच-फैसला था ही नही। यद्यपि न्यायाधीश जॉरिसन भी, ब्रिटिश भारतीयोके दुर्भाग्यसे, न्यायाधीश मॉरिसनके फैसलेसे सहमत हो गये, तथापि उनका तर्क पूरी तरह ब्रिटिश सरकारके किये हुए अर्थके पक्षमें था। सविधानमे असमानताके सम्बन्धमे विद्वान न्यायाधीश कहते है

> **इससे यह निष्कर्ष निकालना कि कुलियोके खिलाफ सरकार जो भी कार्रवाई ठीक समझे कर सकती है, मेरी रायमें, ऐसा व्यापक अर्थ करना है, जिसका विधान-सभाका कभी इरादा नहीं हो सकता था। इस धारामें रंगदार लोगोंका मतलब उन रंगदार लोगोंसे है जो उस समय यहाँ रहते थे — अर्थात्, मतलब काफिरोसे है। लोकसभा (फोक्सराट) ने जब कुलियोंके लिए अलग कानून बनाया तब उसकी यही भावना मालूम होती थी कि कुली इसमें शामिल नहीं किये गये।**

किन्तु इस समय ये फैसले ध्यान देने लायक है। इसलिए हम इन्हे अन्यत्र उद्धृत कर रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–२–१९०४

९५. फिर ऑरेंज रिवर उपनिवेश

हम एक अन्य स्तम्भमे उस अध्यादेशका मसविदा प्रकाशित कर रहे है, जिसमे रगदार लोगोंपर व्यक्ति-कर लगानेके सम्बन्धमे बनाये गये कानून एकत्र और संशोधित किये जा रहे है और जो १६ जनवरीके ऑरेंज रिवर उपनिवेशके असाधारण *गज़टमें* निकला है। उस उप-निवेशकी वर्तमान सरकारकी रंग-विरोधी प्रवृत्ति बिलकुल विलक्षण है। वहाँ बुरे-से-बुरे रूपकी गुलामी अमली तौरपर पुनरुज्जीवित की जा रही है और अध्यादेशके उक्त मसविदेसे दक्षिण अमेरिकाके इसी तरहके कानूनकी याद आती है। हम पत्रोमे पढ़ते है कि उस देशमे जो हब्शी जुर्माना नही दे सकते वे सेवाके लिए किसी भी गोरेके जो उनका जुर्माना अदा कर दे, हवाले किये जा सकते है और इस प्रकार, आड़े-टेढे ढगसे, अमेरिकाके संविधानके अनुसार गैर-कानूनी गुलामी दिन-दहाड़े जारी रखी जाती है और कानून द्वारा मजूर कर दी जाती है। उल्लिखित अध्यादेशके मसविदेकी धारा १३ इस प्रकार है:

> **इस अध्यादेशके अनुसार कर-संग्राहकके माँगनेपर कोई रंगदार व्यक्ति व्यक्ति-कर न चुका सके तो उस हालतमें कर-संग्राहक तुरन्त इसकी सूचना उस खेत या मकानके गोरे मालिक, पट्टेदार या कब्जेदारको (यदि कोई हो तो) देगा और, उसके बाद, यदि उक्त कर चुकाया नहीं जाता या उसकी अदायगीके लिए काफी जमानत नहीं दी जाती तो, जिलेका स्थानीय मजिस्ट्रेट या शान्ति-संरक्षक (जस्टिस ऑफ दि पीस), जो भी वहाँ हों,**

उक्त रंगदार व्यक्तिको उक्त जिलेमें रहनेवाले किसी ऐसे गोरेकी करारबन्द सेवामें रख देगा, जो उक्त कर चुकानेको रजामन्द हो। व्यवस्था यह है कि ऐसा हरएक करारनामा एक सालसे ज्यादाके लिए नहीं होगा।

इस प्रकार, यदि कोई रंगदार व्यक्ति अध्यादेशके अनुसार लगाया गया व्यक्ति-कर, अर्थात् एक पौंड वार्षिक नही चुकाता है, तो उसे एक सालके लिए किसी ऐसे गोरेके साथ इकरारनामेके अधीन रखा जा सकता है, जो कर चुकानेको तैयार हो। और यह कर १८ से ७० वर्ष तककी उम्रके हरएक रंगदार मर्दको चुकाना होगा। इसमे बीमारी या ऐसे किसी भी कारणसे कोई छूट दिखाई नही देती, और ऐसा कठोर कानून बनाना — भले ही वह दक्षिण आफ्रिकाकी वतनी जातियोपर ही लागू क्यो न होता हो — हमारे लिए गुलामीका कारण होगा। हमारे लिए अपनी भावनाओको रोकना कठिन हो जाता है, जब हमे पता चलता है कि यह ब्रिटिश भारतीयोंपर भी लागू होता है, क्योकि २०वी धारामें हम पढते है·

'रंगदार व्यक्ति' शब्द इस अध्यादेशके उद्देश्यकी पूर्तिके लिए जिनके बोधक होंगे उनमें अरब, चीनी और दूसरे एशियाई और ऐसे ही अन्य सब लोग भी शामिल होंगे, जो कानून या रिवाजसे दक्षिण आफ्रिकामें रंगदार माने जाते है।

बात इतनी सी ही नही है कि उपनिवेश अपने दरवाजे भारतीयोके प्रवेशके लिए बन्द रख रहा है, बल्कि जो थोडेसे भारतीय घरेलू नौकर इस उपनिवेशमें अपने शान्तिपूर्ण धन्धे कर रहे है, उनको लेकर भी उसके लिए ब्रिटिश भारतीयोपर नये-नये अपमान लादते जाना जरूरी है। क्या इसीकी खातिर लडाई मोल ली गई थी और करोड़ो रुपये और हजारो जानें बरबाद की गई थी? लॉर्ड मिलनरको दयालुतापूर्ण और उदार विचार रखनेका श्रेय प्राप्त है। उन्होने कई बार कहा है कि उन्हे रंगके सम्बन्धमें कोई पूर्वग्रह नही है। तब क्या वे इस अध्यादेशको मजूरी दे देंगे?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–२–१९०४

१६. ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय व्यापारी

परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरने विधान-परिषदके प्रस्तावके अनुसार जब सर्वश्री ह्नी, शेरिडन रूबी और चैमनेका एक आयोग नियुक्त कर दिया है। श्री चैमने उसके मन्त्री है। यह आयोग

> **उन एशियाइयोंके मामलोंका विचार करेगा, जो लड़ाई छिड़नेके समय या उससे ठीक पहले बिना परवानोंके पृथक बस्तियोंके बाहर ट्रान्सवालके शहरोंमें व्यापार कर रहे थे; और जाँच करके यह रिपोर्ट देगा कि ऐसे व्यापारियोंकी संख्या क्या है और पृथक बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेकी अनुमति दी जानेके कारण वे जिन निहित स्वार्थोका दावा करते है वे दावे कैसे है और उनका क्या मूल्य है।**

आयोगके सदस्योके बारेमे हमें कुछ कहना नही है। मन्त्री श्री चैमने भारतीयोकी नजरमे भारतीय अनुभव और निष्पक्ष भाव रखनेवाले सज्जन है। श्री ह्नी तटकर-निर्देशक और शेरिडन राजस्वके निरीक्षक है। यह मान लेना काफी निरापद है कि ये सज्जन बिना किसी पक्षपातके काम करेंगे। श्री रूबी एक योग्य बैरिस्टर है और निर्वाचक-सूचियोके सुधारका अच्छा काम कर रहे है। उनकी कानूनी तालीमसे दूसरे सदस्योको विषयकी सीमामे रहने और उसके सम्बन्धमे कोई कानूनी मुद्दे उठे तो उनका सामना करनेमे मदद मिलनी चाहिए। किन्तु आयोगकी उपयोगिताके सम्बन्धमे कुछ दिलचस्पी पैदा होती है, क्योकि भारतीयोने एक परीक्षात्मक मुकदमा छेड़ दिया है। अगर उसका फैसला उनके पक्षमे होता है, जैसा कि होना चाहिए, तब तो आयोगका परिश्रम व्यर्थ हो जायेगा। इसलिए यह जाहिर है कि मुकदमेका नतीजा निकलनेतक आयोगकी नियुक्ति स्थगित रखी जाती तो ज्यादा अच्छा होता। ट्रान्सवाल, खास तौरपर आजकल, बहुत खुशहाल नही है और यह दु:खकी बात है कि बहुत-सा धन व्यर्थकी छानबीनमे बरबाद कर दिया जायेगा। आयोगके विचारणीय विषय ऐसे है कि, "लड़ाई छिड़नेसे ठीक पहले" शब्दोका अर्थ करनेमे श्री रूबीकी कानूनी योग्यता काफी खर्च होगी। उनकी मर्यादामें आनेवाला कौन समझा जायेगा? आयोगके सदस्य ऐसी तारीख कैसे मुकर्रर करेंगे जो, उनकी रायमे, लड़ाई छिड़नेके तुरन्त पहलेकी होगी? परन्तु उन विविध भेद-भावोकी, जो अक्सर ईर्ष्या-द्वेषजन्य होते है और जाँचके दौरानमे जिनके सामने आनेकी सम्भावना है, इस समय चर्चा करना बेकार है। पाँसा फेंका जा चुका है और अब हम आयोगकी कार्रवाईकी बड़ी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहे है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–२–१९०४

१७. आस्ट्रेलियाके ब्रिटिश भारतीय

हम अपने पाठकोंका ध्यान श्री चार्ल्स फ्रान्सिस सीवराइटके कार्यकी रिपोर्टकी ओर आकर्षित करते है। ये आस्ट्रेलियाके ब्रिटिश साम्राज्य-सघके यूरोपीय कमिश्नर है और रिपोर्ट बम्बईके *एडवोकेट ऑफ इंडियामें* प्रकाशित हुई है। हम मानते है कि श्री सीवराइट अच्छा काम कर रहे है और हम उनके शुभ व्रतमे पूरी सफलता चाहते है। श्री सीवराइटने ऐसा पक्ष ग्रहण किया है, इससे जाहिर होता है कि आस्ट्रेलियामे भी, जहाँ उस दिन नष्ट हुए जहाजके लोग अपनी चमड़ीके रगके कारण उतरनेसे रोक दिये गये है, ऐसे यूरोपीय मौजूद है, जिन्हे रग-सम्बन्धी कानून बनानेपर और इस प्रश्नपर सर्वसाधारणका रवैया देखकर हृदयसे लज्जा होती है। हम दक्षिण आफ्रिकाके उपनिवेशियोसे अपील करते है कि क्या वे समयके चिह्न नही पहचानेंगे और साम्राज्य-निष्ठोकी हैसियतसे इस प्रश्नपर भारतमे रहनेवाले करोड़ों लोगोकी भावनाओका खयाल करना ठीक नही समझेंगे? अगर वे भारतवासियोके दक्षिण आफ्रिकामे यात्रा करना या बसना पसन्द करनेपर अत्यन्त अपमानजनक पाबन्दियाँ लगाकर उनकी भावनाओको आघात पहुँचाते रहेगे, तो केवल समय आनेकी देर है कि, भारत और उपनिवेशोके बीच स्थायी मनोमालिन्य हो जायेगा और इन उपनिवेशोकी रायमें इस समय भारत कितना ही नगण्य दिखाई देता हो, परन्तु जल्दी ही ऐसा समय आयेगा जब उन्हे भूल स्वीकार करनी पडेगी। शायद तब भूल सुधारना सभव नही रह जायेगा। आदान-प्रदानकी नीति ही एकमात्र व्यावहारिक नीति है। उपनिवेशी तो ससारके अन्य सब लोगोसे अधिक व्यावहारिक सामान्य बुद्धि रखनेवाले माने जाते है। अगर उसे वे इस प्रश्नमे लगायें तो उनकी समझमे आ जायेगा कि जो-कुछ वे लेते है उसके बदलेमे थोड़ा-सा भी दे तो यह बुद्धिमत्ता ही होगी।

श्री सीवराइटने एक घोषणापत्र तैयार किया है। उसे भी हम अन्यत्र छाप रहे है। उन्होंने चन्देके लिए अपील की है। यह एक नाजुक मामला है। हमारे विचारसे इस शुभ कार्यको पूरा नैतिक समर्थन मिलना चाहिये। परन्तु आस्ट्रेलियाकी समस्या वही होना जरूरी नही है जो दक्षिण आफ्रिकामे है; इसलिए धनका बँटवारा नही किया जा सकता। प्रत्येक समाजको अपना उद्धार आप करने देना चाहिए। इसके लिए जरूरी है कि सब अपने-अपने साधन जुटायें और हमारी रायमें कारगर सहयोग इसी तरह किया जा सकता है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४-२-१९०४

१८. श्री डोमन टेलूकी अकाल मृत्यु

हमे यह सूचित करते हुए बहुत दु.ख होता है कि जोहानिसवर्गके सावधान और अति चतुर भारतीय भाई श्री डोमन टेलू जवानीमे यह फानी दुनिया छोड गये है। जोहानिसवर्गके हमारे सब भारतीय उन्हे अच्छी तरह जानते है। असलमे वे अमगेनीके रहनेवाले थे, परन्तु पुरुषार्थ करके अपना भाग्य आजमानेके लिए वे जोहानिसबर्ग पहुँचे थे। वहाँ सवल प्रयास द्वारा अपने सुनारके धधेमे और दूसरे व्यापारमे मामूली पैसा कमाकर वे जमीनके मालिक बन गये थे। उनकी कुछ जमीन नेटालमे भी है। वे अपने पुरुषार्थसे थोडी-बहुत अग्रेजी सीखे थे और अपने सदुद्योगसे तथा धर्मके आकर्षणसे उन्होने हिन्दीका अभ्यास किया था। वे धर्माभिमानी थे और हिन्दू धर्मकी उन्नतिके लिए सदा आतुर रहते थे। साधारण सार्वजनिक कामोमे वे बहुत उत्साह दिखाते थे। माँ-बापकी गरीवीके कारण और नेटालमे साधारणतया भारतीयोंपर गुजरनेवाली आफतोमे पले-पुसे होनेके कारण वे सकटके समयमें धीरजसे किन्तु दृढतासे काम लेना सीखे थे। यह शिक्षण जोहानिसबर्गमें उनके बहुत काम आया था।

वे जिस कामका जिम्मा लेते थे उसमें सदा आग्रही रहते थे। परन्तु उस आग्रहको हदमे रखकर काम करनेके लिए वे हमेशा आतुर थे। लडाईसे पहले और लड़ाईके बाद भी वे भारतीयोके सार्वजनिक काममे आग्रहपूर्वक हाथ बँटाते थे। लड़ाईके बाद अनुमतिपत्र (परमिट) के मामलेमें नि.स्वार्थ भावसे और बहुत सचाईके साथ वे हमारे स्वदेशी भाइयोको (अनुमतिपत्र) दिलाने और उनके दूसरे दु ख दूर करनेके लिए अपना लगभग पूरा समय खपाते थे। बोअर लोगोकी मुसीवत दूर हुई और अग्रेजी राज्यमे हमारी स्थिति अच्छी होनेकी आशा भंग हो गई, तव हमारी लड़ाई चलानेके लिए सब भाइयोको एकत्र करनेमे उन्होने कोई भी प्रयास वाकी नही रखा था। दूसरोके साथ उनके पुरुषार्थके कारण भारतीय संघ (इडियन असोसिएशन) नामक सभाकी स्थापना हुई थी, और उस सभाके कोशमे सैकडोकी रकम जमा करानेमे वे भोजनादिसे निवृत होकर दिन-रात लगे रहते थे। वे और भी कई सार्वजनिक काम करना चाहते थे। उनकी मृत्युसे भारतीय कौमका एक अच्छा आदमी उठ गया है। वे *इंडियन ओपिनियनके* एक एजेट थे और अपने कामकी बलि देकर हर हफ्ते पचास प्रतियाँ खुद जाकर बेचते थे, और उनकी दस्तूरी (कमिशन) तक नही लेते थे। जोहानिसवर्गके भारतीयोके प्रति तथा श्री डोमनके परिवारके प्रति हम अपनी समवेदना प्रकट करते है, और परमात्मासे प्रार्थना करते है कि वह उनकी आत्माको मुक्ति दे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–२–१९०४

९९. श्रमके प्रश्नपर लॉर्ड हैरिस

डेली मेलसे लेकर अन्यत्र हम एक मुलाकातके समाचार छाप रहे हैं, जो उसके प्रतिनिधिने बम्बईके भूतपूर्व गवर्नर लॉर्ड हैरिससे की है। लॉर्ड महोदय आजकल जोहानिसबर्गमें हैं और संयुक्त स्वर्ण-क्षेत्र (कॉन्सॉलिडेटेड गोल्डफील्ड्स) के अध्यक्ष हैं। उन्होंने मुलाकात करनेवालेको बाहरसे मजदूर लानेके बारेमें अपने विचार बताये हैं और उनका खयाल है कि इंग्लैंडमें उसका जो विरोध किया जा रहा है वह बहुत अनुचित है। उन्होंने अपने कथनके समर्थनमें यह तथ्य बताया है कि वेस्ट इंडीज और दूसरे देशोंमें सबसे पहले बाहरसे रंगदार गिरमिटिया मजदूर लाये गये हैं। लॉर्ड महोदयसे इसकी अपेक्षा कहीं अच्छे तर्ककी आशा की जाती थी, क्योंकि हमें निश्चय है, वे अपरिचित हो नहीं सकते कि वेस्ट इंडीज और ट्रान्सवालमें तथा दूसरे देशोंके श्रम-अध्यादेशों और उस श्रम-अध्यादेशके बीच बहुत बड़ा अंतर है जिसे, ट्रान्सवाल-सरकार चाहती है, ब्रिटिश सरकार बिना पसोपेश के मंजूर कर ले। सबको मालूम है कि वेस्ट इंडीज गोरे श्रमिकोंके लिए उपयुक्त नहीं है, क्योंकि वहाँकी आबोहवा बड़ी कष्टदायक है, जबकि ट्रान्सवालका जलवायु बिलकुल अच्छा है और यहाँ गोरे मजदूरोंको जैसा काम वे इंग्लैंडमें करनेके आदी हैं वैसा ही करनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी। किसीने कभी यह नहीं कहा है कि ऐसे मजदूरोंके लिए यहाँका जलवायु उपयुक्त नहीं है। आपत्ति एकमात्र यह है कि गोरे मजदूर बहुत महँगे हैं। श्री मॉर्लेने यह बताकर आर्थिक दलीलको निपटा दिया है कि खानोंको थोड़े मुनाफेसे सन्तोष करना चाहिए और जो खानें गोरे श्रमिकों द्वारा बिलकुल चलाई ही नहीं जा सकतीं उनमेंसे सोना निकालनेकी उतावली करनेकी जरूरत नहीं है। रही बात दूसरे देशों और ट्रान्सवालके गिरमिटिया-कानूनोंमें अन्तरकी, सो वह अन्तर उतना ही है जितना स्वतन्त्रताके और गुलामीके इकरारनामोंमें होता है। जहाँतक हमें मालूम है, ब्रिटिश उपनिवेश-वादके इतिहासमें मजदूरोंके लिए कहीं ऐसा कठोर, ऐसा व्यापक और ऐसा अन्यायपूर्ण गिरमिटिया कानून मुश्किलसे मिलेगा, जैसा ट्रान्सवालका श्रमिक आयात अध्यादेश (लेबर इम्पोर्टेशन आर्डि-नेन्स) है। वेस्ट इंडीज और अन्यत्र जो गिरमिटिया मजदूर जाते हैं वे गुलाम बनकर नहीं जाते, बल्कि ज्यों ही उनका इकरारनामा पूरा हो जाता है, वे उस देशमें बसने और साधारण नागरिक अधिकार भोगनेके लिए स्वतंत्र हो जाते हैं। इसलिए हमारा नम्र निवेदन है कि लॉर्ड हैरिसका वेस्ट इंडीज़ और दूसरे देशोंके उदाहरण देना उचित नहीं है।

भारत-सरकारके रुखपर लॉर्ड महोदयकी टिप्पणियाँ और भी रोचक और शिक्षाप्रद हैं। लॉर्ड महोदय कहते हैं :

> भारतीय दृष्टिकोणसे, मेरा खयाल है, भारत-सरकारका रुख अब कुछ भी हो, शुरूमें उसने भूल की थी। व्यापारी और कुली बिलकुल अलग-अलग लोग हैं। भारतके लिए एक उत्तम बात होती अगर भारतसे ट्रान्सवालको आना-जाना होता रहता। दोनों देशोंके बीच निश्चय ही बहुत-सा व्यापार खड़ा हो जाता और कुली ट्रान्सवालको अपने परि-श्रमका लाभ देकर, अपने रुपये लेकर — वह पूंजी लेकर, जिसकी भारतको असली जरू-रत है — अपने गाँवोंको लौट जाते।

हमें यह कहनेके लिए क्षमा किया जाये कि यद्यपि कुली और व्यापारी अलग-अलग लोग हो सकते हैं, फिर भी इसका मतलब यह नही होता कि कुली हमेशा कुली ही बना रहे और उसे माल-असबाब जैसा समझा जाये। अगर उसे इस देशमें लाया ही जाता है तो उसे यहाँ बसने और ईमानदारीकी रोजी कमानेके अधिकारसे क्यो वचित रखा जाये? और भारत-सरकार अपना रास्ता छोडकर एक ऐसी सरकारके लिए क्यो गुजाइश निकाले जो यहाँ रहनेवाली भारतीय आबादीके साथ न्यायका बरताव करनेका कुछ भी खयाल नही रखती? गिरमिटिया मजदूरोको लानेके कारण भारतका व्यापार बहुत बढ जानेकी बात करना तो बहुत ठीक है; लेकिन कुछ हजार भारतीयोके गुलाम बनकर ट्रान्सवालमे जानेसे भारतीय दरिद्रताकी समस्या हल नही होगी और हमारा खयाल है कि भारत-सरकारने, सुझाई हुई शर्तोपर और जो ब्रिटिश भारतीय पहलेसे इस उपनिवेशमे बसे हुए हैं उनकी हालतमे सुधार हुए बिना, भारतसे ट्रान्सवालमे गिरमिटिया मजदूर न आने देनेका फैसला ठीक ही किया है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–२–१९०४

१००. लेडीस्मिथके परवाने

लेडीस्मिथके टाउन क्लार्क और परवाना-अधिकारी श्री लाइन्सने अब ब्रिटिश भारतीय दूकानदारोको यह टिप्पणी जोडकर परवाने दिये हैं:

> **यह परवाना इसके मालिक द्वारा ली हुई ठीक इस जिम्मेदारीके अनुसार दिया गया है कि परवानेवाली दूकान शनिवारके सिवा किसी दिन शामको पाँच बजेके बाद व्यापारके लिए खुली नहीं रहेगी और परवानेवाली दूकान छुट्टीके दिनोंमें बन्द रखी जायेगी।**

यह सिद्धान्त मान लेनेके बाद कि जल्दी दूकाने बन्द कर देनेके बारेमे भारतीय दूकानदारोको श्री लाइन्सकी लगाई शर्ते मजूर कर लेनी चाहिए, हम उपर्युक्त टिप्पणीके खिलाफ बहुत-कुछ नही कह सकते। तथापि इस मर्यादाके अन्तर्गत, हम परवानोपर लिखी जानेवाली टिप्पणीपर विरोध व्यक्त करनेके लिए लाचार हैं, क्योंकि वह गैर-कानूनी और बेमौका है। कोई सत्ता धारण करना एक बात है, और जनताके सामने रोषप्रद ढगसे उसका प्रदर्शन करना दूसरी बात है। यदि श्री लाइन्सने अपनी जीतसे सन्तोष कर लिया होता और परवानेदारोके प्रति उसका प्रदर्शन न किया होता तो वह कम कारगर न होती, और सुन्दर भी दिखाई देती। यदि जिम्मेदारी जरा भी भग होती तो वे अगले साल कठोर कार्रवाई कर सकते थे। अभी तो हमारा यही खयाल है कि उपर्युक्त टिप्पणीसे सारी सुन्दरता जाती रही। श्री लाइन्सको यह भी जान लेना चाहिए कि परवानोपर टिप्पणी लिख देनेके बावजूद मान लीजिए, कोई, परवानेदार उसकी परवाह नही करता और शामके पाँच बजेके बाद भी अपना कारोबार जारी रखता है, तो वे (श्री लाइन्स) एक बार दिया हुआ परवाना रद नही कर सकते। निषेधपर अमल करानेके लिए कानूनी तरकीब कोई नही है। यह तो उनके अपने और भारतीय दूकानदारोके बीच केवल समझौता और करारकी बात है। इसलिए हमे अफसोस है कि श्री लाइन्सने परवानोपर वह टिप्पणी दर्ज कर दी है। साथ ही, जो हो गया उसपर

रोने-चिल्लानेसे कोई लाभ नही और हमारे खयालसे जिम्मेदारीका कड़ाईसे पालन करना लेडी-स्मिथके ब्रिटिश भारतीय दूकानदारोका स्पष्ट कर्तव्य है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११-२-१९०४

१०१. पत्र : डॉ० पोर्टरको

२१ से २४ कोर्ट चेम्बर्स
फरवरी ११, १९०४

डॉ० सी० पोर्टर
स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारी
पो० ऑ० बॉक्स १०४९
जोहानिसबर्ग

प्रिय डॉ० पोर्टर,

मै आपको भारतीय बस्तीकी भयकर हालतके बारेमे लिखनेकी धृष्टता कर रहा हूँ। कमरोमें वर्णनातीत भीडभाड दिखाई पडती है। सफाई करनेवाले बहुत अनियमित रूपसे भेजे जाते है और बस्तीके अनेक निवासी मेरे दफ्तरमें आकर शिकायत कर गये है कि अब सफाईकी हालत पहलेसे भी बहुत बुरी है।

बस्तीमे काफिरोकी भी बहुत बडी आबादी है, जिसका वस्तुत: कोई औचित्य नही है।

मैने जो-कुछ सुना है उससे मेरा विश्वास है कि बस्तीमे मृत्युसंख्या बहुत बढ गई है और मुझे लगता है कि आज जो हालत है वह यदि बनी रही तो, आज हो या कल, कोई सक्रामक बीमारी फैले बिना नही रह सकती।

मै जानता हूँ, सफाई-सम्बन्धी सुधारोमें आप बहुत बढे-चढे है। इसलिए मै आपसे प्रार्थना करना चाहता हूँ कि मेहरबानी करके आप एक बार खुद वहाँ जाये और सफाईके समान ही बस्तीके घनेपनकी समस्या भी उचित रूपसे हल करा दे। यदि आपको मेरा सुझाव ठीक लगे और मै कुछ काम आ सकूँ तो मुझे आपके साथ जानेमें खुशी होगी।

मै यह और कहना चाहता हूँ कि आज जो हालत है उसके लिए बस्तीके निवासी किसी प्रकार जिम्मेदार नही है।

आपका सच्चा,
मो० क० गाधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९-४-१९०४

१०२. पत्र : डॉ० पोर्टरको

२१ से २४ कोर्ट चेम्बर्स
फरवरी १५, १९०४

डॉ० सी० पोर्टर
स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारी
जोहानिसवर्ग

प्रिय डॉ० पोर्टर,

आप पिछले शनिवारको भारतीय बस्ती देखने गये और उसकी ठीक-ठीक सफाईके काममें दिलचस्पी ले रहे हैं, इसके लिए मैं आपका बहुत ही आभारी हूँ। मैं वहाँकी स्थितिके बारेमें जितना अधिक विचार करता हूँ वह मुझे उतनी ही बुरी मालूम होती है। और मेरा खयाल है कि यदि नगर-परिषद असमर्थताका रवैया अपना लेती है तो वह अपने कर्तव्यसे च्युत होती है, और मैं यह भी जरूर आदरपूर्वक कहता हूँ कि लोक-स्वास्थ्य समितिका यह कहना किसी भी तरह उचित नही हो सकता कि वहाँ न तो भीड-भड़क्केको रोका जा सकता है और न गन्दगीको। मुझे विश्वास है कि इस मामलेमे *बरबाद किया गया* एक-एक पल विपत्तिको जोहानिसबर्गके नजदीक लाता है, और उसमे ब्रिटिश भारतीयोका कोई भी दोष नही है। जोहानिसबर्गके सब स्थानोमे से भारतीय बस्ती ही शहरके सारे काफिरोको भरनेके लिए क्यो चुनी जाये, यह मेरी समझमे ही नही आता। जहाँ लोक-स्वास्थ्य समितिकी सफाई-सम्बन्धी सुधारकी बड़ी-बडी योजनाएँ बेशक बहुत प्रशसनीय और कदाचित् आवश्यक भी है वहाँ, मेरी नम्र रायमे, भारतीय बस्तीकी गन्दगी और अत्यधिक भीड-भाड़के मौजूदा खतरेकेका सामना करनेके स्पष्ट कर्त्तव्यकी भी उपेक्षा नही होनी चाहिए। मैं महसूस करता हूँ कि इस समय कुछ सौ पौड खर्च कर देनेसे शायद हजारो पौडकी बचत होगी, क्योकि यदि दुर्भाग्यवश बस्तीमे कोई छूतकी बीमारी फैल गई तो लोगोमे घबराहट पैदा हो जायेगी और इस समय जो बुराई बिलकुल रोकी जा सकती है उसके इलाजके लिए तब तो रुपया पानीकी तरह बहाया जायेगा।

मुझे आश्चर्य नही है कि आपके अमलेको बहुत काम करना पड़ता है, इसलिए वह बस्तीकी सफाईका पूरा काम करनेमे असमर्थ है, क्योकि आपको जो चीज चाहिए और जो मिल नही सकती वह है हरएक मकानके लिए एक सफैया। [जो काम सबपर छोड़ दिया जाता है, वह किसीका भी नही होता।] आप बस्तीके प्रत्येक निवासीसे सफाईकी देखभाल करनेकी आशा नही रख सकते। जब्तीसे पहले हरएक बाडेका मालिक अपने बाड़ेकी ठीक सफाईके लिए जिम्मेदार माना जाता था और वह बहुत स्वाभाविक भी था। मैं स्वय जानता हूँ कि इसके परिणामस्वरूप प्रत्येक बाडेके साथ एक सफैया लगा रहता था और जो उसकी बराबर देखभाल रखता था; और मैं नि सकोच कह सकता हूँ कि बाडोकी जो हालत इस समय है, उसके मुकाबिलेमे वे अच्छी और आदर्श अवस्थामे रखे जाते थे।

आप मुझसे उपाय सुझानेके लिए कहते हैं। मैने तो इस मामलेको टाला था और अगर नगर-परिषद कोई उचित ढग अपना ले तो मुझे सन्देह नही कि स्थितिमे तुरन्त सुधार हो सकता है। और उसके लिए नगर-परिषदको कुछ खर्च भी न करना पडे, और शायद कुछ पौडकी बचत भी हो जाये। बाड़ोके मालिकोको थोडे अरसेके लिए — छ: महीने या तीन महीनेके

लिए — पट्टे दे दिये जायें। पट्टोमे ठीक-ठीक लिख दिया जाये कि हर वाडेमें या हर कमरेमें कितने आदमी रखे जायेंगे। पट्टेदार कीमत आँकनेवालो द्वारा आँकी गई कीमतका, मान लीजिए, ८ फीसदी चुकाये, और जिस वाड़ेका उन्हे पट्टा दिया गया हो, उसकी सफाईके लिए उन्हे सख्तीके साथ जिम्मेदार बनाया जाये।

तब सफाईके नियमोपर कठोरतासे अमल कराया जा सकता है। एक या दो निरीक्षक वाडोको रोज देख सकते है और नियम भग करनेवाले लोगोके साथ सख्तीसे पेश आ सकते है।

यदि यह विनम्र सुझाव मान लिया जाये तो आपको दो-तीन दिनमे बहुत सुधार दिखाई देगा और आप थोडी-सी कलम चलाकर गन्दगी और भीड-भाड़का सफलतापूर्वक सामना कर सकते है। नगर-परिषद भी व्यक्तियोसे किराया वसूल करनेकी झझटसे बच जायेगी।

अवश्य ही, मेरे सुझावके अनुसार नगर-परिषदको बस्तीसे काफिरोको हटा लेना होगा। मै स्वीकार करता हूँ कि भारतीयोके साथ काफिरोको मिला देनेके बारेमे मेरी भावना बहुत ही प्रबल है। मेरे खयालसे यह भारतीय लोगोके साथ बड़ा अन्याय है और मेरे देशवासियोके सुप्रसिद्ध धीरजको भी बेजा तौरपर खपानेवाला है।

यद्यपि अस्वच्छ क्षेत्रमें शामिल किये गये दूसरे भागोमें मै स्वयं नही गया हूँ, फिर भी मुझे बडा अन्देशा है कि वहाँ भी वही हालत होगी और मैंने ऊपर जो सुझाव दिया है, वह दूसरे भागोपर भी लागू होगा।

मुझे भरोसा है कि आप इस पत्रको उसी भावनासे अगीकार करेगे जिस भावनासे यह लिखा गया है; और मुझे आशा है कि मैंने अवसरकी विकटताको देखते हुए आवश्यकतासे अधिक जोरदार भाषाका उपयोग नही किया है। कहनेकी जरूरत नही कि इस दिशामें मेरी सेवाएँ पूरी तरहसे आपके और लोक-स्वास्थ्य समितिके सुपुर्द है। और मुझे कोई शक नही कि सफाईके मामलेमे भारतीय समाज जो-कुछ कर सकता है वह कर दिखानेका अगर नगर-परिषद उसे उचित मौका भर दे दे तो, मेरे मनसे, बहुत भूल न होगी।

आप इस पत्रका जैसा चाहे उपयोग कर सकते है।

अन्तमे, मै आशा करता हूँ कि समाजके सामने जो खतरा है उसका कोई उपाय तुरन्त खोज निकाला जायेगा।

आपका विश्वासपात्र,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९-४-१९०४

१०३. सर गॉर्डन स्प्रिग ईस्ट लन्दनमें

सर गॉर्डन स्प्रिग[1] दुबारा चुने जानेके लिए ईस्ट लन्दनमे सिर-तोड कोशिश कर रहे है। यह वैसा ही है, जैसे कि डूबता तिनकेका सहारा लेता है। पहले कभी उन्होने वतनी निर्वाचकोके सामने उनकी बस्तीमे भाषण नही दिया, परन्तु चूँकि ईस्ट लन्दनके लोगोने उनको सूखा जवाब दे दिया मालूम होता है, इसलिए उन्होने वतनी मतदाताओकी बस्तीमे जाकर उनकी सभामे भाषण देनेका निश्चय किया। परन्तु सर गॉर्डनके दुर्भाग्यसे सभाने उन परममाननीयके प्रति सर्वसम्मतिसे अविश्वास प्रकट कर दिया। सभाके वक्ताओमे से एकने उन्हे ठीक ही याद दिलाया कि उन्होने वतनियोके लिए कुछ नही किया और केप उपनिवेशमे ईस्ट लन्दन ही एक ऐसी जगह है जहाँ वतनियोको पैदल-पटरियोपर चलनेका अधिकार नही है। वक्ताने सर गॉर्डनपर ठीक ही दोष लगाया कि उन्होने उपर्युक्त नागरिक नियमोकी मजूरी दी थी और वे (सर गॉर्डन) यही लूला-लगडा जवाब दे सके कि यह नगरपालिकाका मामला है, और वे नगर-परिषदकी कार्रवाईके न्यायाधीश नही बनना चाहते। लेकिन, हमारे लिए तत्काल दिलचस्पीकी चीज तो यह है कि ईस्ट लन्दनके महापौरने इस प्रश्नपर अप्रत्यक्ष प्रकाश डाला। उन्होने कहा .

> किसी हदतक नियमन करनेवाले कानूनोंका कारण जलपान-गृहोंका फिरसे खुलना है, क्योंकि जब वतनी लोग शराब पिये होते है तब वे किसीका, यहाँतक कि गोरी महिलाओंका भी, लिहाज नही करते। बहुत सम्भव है जलपान-गृह फिरसे बन्द कर दिये जाये तो नियम पालन करानेकी जरूरत ही न होगी।

अगर हकीकत वही है जो महापौरने बताई है तो, जहाँतक वतनियोंका सम्बन्ध है, नियमोके लिए कुछ बहाना दिखाई देता है, यद्यपि हमारी समझमे नही आता कि ऐसे लोगोको नशेमे चूर होने और गड़बड़ी मचाने तथा रुकावट डालनेके लिए मुकदमे चलाकर सजा क्यो नही दी जा सकती। ठीक तरीका तो, निस्सन्देह, कुछ इसी तरह, और जुर्म-सम्बन्धी साधारण नियमोके अनुसार, इस बुराईसे निपटनेका होगा। कुछ भी हो, ईस्ट लन्दनमे रहनेवाले मुट्ठीभर भारतीयोपर तो यह नियम लागू करनेका ऐसा कोई बहाना हो नही सकता, क्योकि उनके खिलाफ किसीने नशेबाजी करने या रुकावट डालनेका कभी कोई इलजाम नही लगाया है। जहाँतक हमारी जानकारी है, ईस्ट लन्दनके भारतीयोमे नशेबाजीकी कभी कोई वारदात नही हुई है। हमे मालूम हुआ है कि ईस्ट लंदनके भारतीय सघने इस मामलेमे वहाँकी नगर-परिषदसे निवेदन किया है और हम सच्चे दिलसे आशा रखते है कि अगर इन नियमोको जारी करनेका कारण वही है, जो महापौरने प्रकट किया है, तो जहाँतक ये ब्रिटिश भारतीयोपर लागू होते है, इन्हे रद कर दिया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८-२-१९०४

१. चार बार केप कालोनीके प्रधानमन्त्री। १९०४ में श्री जेमिसनके हटनेपर प्रधानमन्त्री हुए थे।

१०४. फिर पीटर्सबर्ग

पीटर्सबर्ग, जो गत वर्ष ब्रिटिश भारतीय दूकानदारोको तग करनेमें अगुआ बना था,[1] उतने ही जोरसे अपनी नीति चला रहा है। नवनिर्मित नगर-परिषदने उत्पीड़न कायम रखनेकी उत्सुकतामें अब एक प्रस्ताव पास किया है कि फेरीवालोको भी सताये बिना व्यापार न करने दिया जाये। नगर-परिषदके एक सदस्य श्री क्रॉसने यह प्रस्ताव किया है:

> एक उपनियमका मसविदा तैयार किया जाये, जिसमें यह बताया जाये कि सिवा उन जगहोंके, जो उनके लिए खास तौरसे अलग कर दी गई हैं, एशियाई अथवा रंगदार लोगोंको अन्यत्र व्यापार करनेके लिए कोई परवाने न दिये जायेंगे।

श्री चिटेंडनने प्रस्तावका अनुमोदन किया और, *जोटपैन्सबर्ग रिव्यू* आगे लिखता है, "यह तय हुआ कि यदि लेफ्टिनेंट गवर्नर उपनियमकी तस्दीक कर दें तो उसके भगकी सजा २० पौंड जुर्माना या छ महीनेकी कैद होनी चाहिए।" किसी फेरीवालेसे पृथक बस्तीमे ही फेरीको सीमित कैसे रखवाया जा सकता है, यह समझना कठिन है। श्री क्रूगरकी सरकारने यद्यपि अनेक निर्दयतापूर्ण कार्य किये थे, तथापि वह कभी इतनी दूरतक नही गई, जितनी पीटर्सबर्गकी नगर-परिषद जाना चाहती है। पीटर्सबर्गकी नगर-परिषदमे अनेक वकील है और यह आश्चर्यकी बात है कि उनमें से किसीको कभी नही सूझा कि नगर-परिषद ऐसी अन्यायपूर्ण सत्ता धारण करनेकी चेष्टा करके, जो कानून द्वारा उसे प्राप्त नही है, अपने आपको हास्यास्पद बना रही है। इस प्रस्तावपर विचार किया जाये तो इसका तर्क सम्मत अर्थ यह होगा कि किसी विशेष अध्यादेशकी लम्बी-चौडी आवश्यकताके बिना ब्रिटिश भारतीय बन्धनमे आ जायेंगे; क्योकि कोई भारतीय अपनी बस्तीकी सीमाके भीतर ही अपने मालकी फेरी लगा सकता है, तो यह कहना जरा भी अनुचित न होगा कि वह अपने *बाजारके* भीतर ही घूम-फिर सकेगा और *बाजारकी* सीमासे बाहर कभी नही जायेगा। हम शक नही है कि पीटर्सबर्गकी नगर-परिषदके खयालसे नगर-परिषदकी सत्ताका इस तरह अर्थ लगाना आदर्श होगा। किन्तु हमें आशा है कि सर आॅर्थर लाली इस परिषदको उपहास और असम्भव स्थितिसे बचायेंगे और उससे साफ-साफ कह देंगे कि प्रस्तावित उपनियमकी मंजूरी नही दी जा सकेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–२–१९०४

1. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ २९४ और ३१०–११।

१०५. पत्र : डॉ० पोर्टरको

२१ से २४, कोर्ट चेम्बर्स
फरवरी २०, १९०४

डॉक्टर सी० पोर्टर
स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारी
जोहानिसबर्ग

प्रिय डॉ० पोर्टर,

मैं आपके आजकी तारीखके पत्रके लिए आभारी हूँ।

मेरे जिस पत्रके कुछ हिस्सोपर आपने आपत्ति की है, उसे लिखनेका मेरे लिए एक ही कारण था कि, सफाईके उद्देश्य-साधनमे मदद मिले और मेरे अपने देशवासियोकी सेवा हो सके। [मैंने जो-कुछ कहा है उसमे से कुछ भी मैं वापस नही लेता, क्योकि अगर जरूरत हो तो मेरे प्रत्येक कथनकी पुष्टि की जा सकती है।]

किन्तु मैं आपका यह खयाल दुरुस्त किये बिना नही रह सकता कि भारतीय लोग काफिरोको किरायेदार रख रहे है। उन्हे उप-किरायेदार रखनेका तो अधिकार ही नही है।

मै यही आशा रख सकता हूँ कि मौजूदा हालते जल्दी ही खत्म हो जायेगी।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, ९-४-१९०४

१०६. नगरपालिका सम्मेलन और भारतीय व्यापारी

पिछले सप्ताह जोहानिसबर्गमे ट्रान्सवालके नगरपालिका-सम्मेलनकी जो बैठक हुई उसमें बॉक्सबर्ग-परिषदके प्रतिनिधि श्री जॉर्ज कॉन्स्टेबलने नीचे लिखा प्रस्ताव पेश किया :

> इस बातको ध्यानमे रखते हुए कि विधान-परिषदके सामने एक नया एशियाई कानून लाया जानेवाला है, और यह कि, यह प्रश्न स्थानीय शासन संस्थाओंके लिए इतने बड़े महत्त्वका है, ट्रान्सवालकी नगरपालिकाओंका यह सम्मेलन अपनी राय अंकित करता है कि यहांके निवासियोंके लिए सबसे सन्तोषजनक नीति यह होगी कि तमाम एशियाइयोंको *बाजारोंमें* रख दिया जाये, और जो पिछली सरकार द्वारा पहले दिये हुए परवानोंके अनुसार बाहर व्यापार करता हो उसे वाजिब मुआवजा दिया जाये; और यह भी कि, तमाम स्थानीय अधिकारियोंको ऐसे उपनियम बनानेकी अनुमति दी जाये जो रंगदार लोगोंसे सम्बन्धित मामलोंको नियमित करने और *बाजारों* तथा निवास-स्थानों आदिके लिए स्थान मुकर्रर करनेके बारेमें जरूरी हों।

यह प्रस्ताव पास हो गया। केवल श्री गॉशने इसके विरुद्ध मत दिया।

प्रस्तावमें नम्रतापूर्वक माँग की गई है कि व्यापार और निवासके लिए तमाम एशियाई लोग *बाजारोंमें* रख दिये जायें, जो लड़ाईसे पहले परवानोंकी रूसे व्यापार करते थे उन्हें मुआवजा दिया जाये और नगरपालिकाओंको इन मामलोंको विनियमित करनेका अधिकार दिया जाये। ठेठ शब्दोंमें, प्रस्तावका अर्थ यह है कि ब्रिटिश भारतीयोंको भूखों मारा जाये, ताकि वे इस देशको छोड़ दें। श्री गॉशके शब्दोंमें "एशियाइयोंको *बाजारोंमें* रखनेका विचार उन्हें वहाँ बसानेका इतना नहीं है, जितना कि उनसे बिलकुल पिण्ड छुड़ानेका है।" ब्रिटिश भारतीयोंने पूर्ण रूपसे सिद्ध कर दिया है कि तथाकथित *बाजार* निवास या व्यापारके लिए सर्वथा अनुपयुक्त हैं। ब्रिटिश भारतीयोंको देशसे सर्वथा निकाल देना उन्हें अंग-भंग करके तिल-तिल मारनेकी अपेक्षा दयाका काम होता। श्री कॉन्स्टेबल नगरपालिकाओंके लिए जो सत्ता चाहते हैं उसका आदर्श ऑरेंज उपनिवेशका ब्रैडफोर्ट है। उपनगरके नगरपालिका-उपनियमोंकी हम कुछ समय पहले चर्चा कर चुके हैं और, हमारे खयालसे, हम सिद्ध कर चुके हैं कि किस तरह उन नियमोंके अधीन रंगदार लोग निरे माल-असबाब जैसे बन जाते हैं।

हमें भय है कि श्री कॉन्स्टेबलकी न्याय-भावनाको प्रेरित करना बेकार होगा। वे आत्मरक्षाके थोथे धर्मके पुजारी हैं। और जैसा कि हममें भी कितने ही लोग विद्वेष और हठधर्मीसे अंधे होकर करते हैं, उन्हें अपने अन्तःकरणको समझा लेने और इस तरह सन्तोष दिला देनेमें कोई कठिनाई नहीं होती कि वह महान कानून चाहता है, ब्रिटिश भारतीयोंको बरबाद कर दिया जाये। इसी कानूनके उन अंग्रेजोंने, जो शायद अधिक समबुद्धिवाले थे और, इसलिए, निर्णय करनेके अधिक योग्य थे, दूसरे अर्थ किये हैं। उनका खयाल था कि इस कानूनमें एक दूसरे और उच्चतर कानूनकी मर्यादा लगी हुई है। अर्थात्, हमें अपनी रक्षा इस तरह करनी चाहिए जिससे दूसरे लोगोंके अधिकारोंका अतिक्रमण न हो। श्री कॉन्स्टेबलके देशवासियोंने भी उक्त मर्यादासे निकलनेवाला यह सीधा-सादा नतीजा निकाला है कि जब हमारा ऐसे लोगोंसे पाला पड़े तो जो हमारी तरह आचरण नहीं करते हैं, और हमें सन्तोष हो जाये कि हम ठीक रास्तेपर हैं, तब हमें ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिससे वे ऊँचे उठकर हमारी सतहपर आ जायें, न कि वे कुचल दिये जायें। क्या हम उनसे और उनके मित्रोंसे कह सकते हैं कि वे इस पहलूपर विचार करें?

परन्तु भारतीय व्यापारियोंके प्रति विरोधकी इस बढ़ती हुई तीव्रताका रहस्य क्या है? यह नहीं है कि भारतीय हितोंके शत्रुओंकी संख्या बढ़ रही है, बल्कि यह है कि जिन सज्जनोंने पहले विरोध भड़काया था वे एशियाइयोंके दमनके सम्बन्धमें अपनी माँगें अधिकाधिक जोरदार करते जा रहे हैं।

क्या भारतीयोंने इसके लिए कोई कारण दिया है? उत्तर बेशक नकारात्मक है। फिर क्या चीज है जिसने द्वेषाग्निको प्रज्वलित किया है? सभामें बोलनेवालोंने इसका उत्तर दे दिया है। उन्होंने सरकारकी मदद करनेके प्रस्तावका समर्थन किया है। सरकारकी मदद क्यों? क्या वह एशियाई विरोधी है? इसलिए क्या उसे इस नीतिमें आम लोगोंकी हिमायतकी जरूरत है? हम इतनी दूर नहीं जायेंगे कि यह कहें कि सरकार जान-बूझकर एशियाइयोंके विरुद्ध है। परन्तु श्वेत-संघोंके महानुभावोंको अनुभवसे पता लग गया है कि अगर वे जोरसे और लगातार एशियाइयोंके विरुद्ध चिल्लायेंगे तो वस्तुतः जो-कुछ वे चाहते हैं, वह उन्हें मिल जायेगा। इसलिए कुदरती तौरपर अपनी माँगोंके बारेमें उनका हौसला बढ़ गया है। उन्होंने १८८५ के कानूनपर अमलकी माँग की, और उत्तरमें *बाजार*-सूचना आ गई। उन्होंने एशियाइयोंको पृथक् बस्तियोंमें भिजवाना चाहा और कई स्थानोंपर *बाजार* कायम हो गये हैं। हम और भी उदाहरण दे

सकते है, जिनमें सत्ताधारी गोरोके विरोधके सामने झुके हैं। सरकारके इस झुक जानेका अर्थ लोगोने आन्दोलन जारी रखनेका निमन्त्रण समझा तो ठीक ही समझा। उत्तरमे श्री कॉन्स्टेबलका प्रस्ताव मौजूद है। लॉर्ड मिलनरने एशियाइयोके अधिकारोके साथ खिलवाड़ किया तो हमारे बॉक्सबर्गके मित्र गगालमे बैठे बच्चेकी तरह मचल रहे है कि, "हम तो लेकर ही छोडेगे।" लॉर्ड मिलनरने एशियाई-विरोधी कानूनोको इस तरह बदल देनेका वचन दिया है कि वे ब्रिटिश सविधानके अनुरूप हो जाये। नगरपालिका-सम्मेलनने बता दिया है कि वह किस प्रकारका परिवर्तन चाहता है। वह तो श्री क्रूगरको भी मात कर देना चाहता है। कलतक जो डचेतर गोरे (एटलॉन्डर्स) कहे जाते थे, उन्हे शिकायत थी कि पुरानी सरकारके दिनोमे शासनके मामलोमे उनकी कोई बात नही चलती थी। अब उनकी सुनवाई होने लगी है, तो वे उसे उसी तरीकेपर इस्तेमाल करना चाहते है जिसके विरुद्ध वे गला फाड़-फाडकर चिल्लाते थे। जिन ब्रिटिश भारतीयोका उन्होने पुरानी हुकूमतसे लडनेमे सहर्ष सहयोग लिया, उन्हीको वे अब सम्मिलित झडेके नीचे विदेशी (एटलॉन्डर) बना देना चाहते है। और यह है शराफत और वफादारीके बारेमे उनका खयाल!

इस सम्मेलनकी सारी दु खदायी कार्यवाहीके बीच श्री गाँशका भाषण मरुभूमिमे हरियाली जैसा था। वे साफ-साफ और दृढ़तासे बोले। उन्होने प्रस्तावका विरोध किया और अपने विरोधके पक्षमें ऐसी दलीले दी, जिनसे किसी भी आदमीको, जो पक्षपातसे रगा हुआ न हो, सन्तोष हो जायेगा। भारतीय समाज श्री गाँशका, उनकी स्पष्टोक्ति और न्यायकी हिमायतके लिए, आभारी है। और जबतक उनके जैसे आदमी है, हमारा विश्वास बना रहेगा कि जो पक्ष वास्तवमे न्यायपूर्ण है, अन्तमे उसकी ही जीत होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५-२-१९०४

१०७. ट्रान्सवालके लिए भारतसे मजदूर

सर जॉर्ज फेरारने पिछले सप्ताह खान-सघकी वार्षिक बैठकमें खानोके वर्षभरके कामकी जो उत्तम समीक्षा प्रस्तुत की, उसमें स्वभावतः ही उन्होने मजदूरोके सवालकी विस्तृत चर्चा की है। उन्होने जो बातें कही उनसे मालूम होता है कि खानोके लिए भारतसे गिरमिटिया मजदूर जुटानेकी अब भी कोशिश हो रही है। उन्होने कहा:

> सम्भव है कि हम अपने कार्यका विस्तार भारततक कर सकें, परन्तु अभीतक भारत-सरकारका रुख विरोधका है। वह हमारे यहाँ मजदूर भेजनेको तो तैयार है, परन्तु उन्हें लौटा देनेकी हमारी शर्तोपर आपत्ति करती है। फिर भी जब यह समझमें आ जायेगा कि इन खानोंमें करार पूरा हो जानेके बाद मजदूरोंके लौट जानेसे उनके अपने देशकी खुशहाली कितनी बढ़ जाती है, तब भारत-सरकारको आज जो आपत्तियाँ है वे शायद भारतीय साम्राज्यके ही हितकी खातिर न उठाई जाये।

यह अजीब बात है कि लोग अपने पहलेसे बने विचारोके समर्थनमे कैसी दलीले ढूँढ़ लेते है। भारत-सरकार एकमात्र भारतीय साम्राज्यके हितोकी खातिर आपत्तियाँ न उठायेगी, यह कोई नया विचार नही है। लॉर्ड हैरिस, जिनसे अधिक जानकारी रखनेकी आशा की जा सकती है, पहले ही यह और इससे ज्यादा कह चुके है। इसलिए सर जॉर्ज फेरारके वैसे ही विचारोंसे हमे आश्चर्य नही होता। लेकिन अगर वे थोड़ी गहराईमे देखे तो उन्हे तुरन्त पता चलेगा कि

उनके तर्कमे कोई सार नही है। उदाहरणार्थ, हम मान लेते है कि २०,००० भारतीय प्रस्तावित शर्तोंपर ट्रान्सवाल गये और उन्हे ३ पौंड या ३ पौंड १० शिलिंगकी मासिक मजदूरी मिली; और उन्होने ३० पौड प्रतिवर्ष बचाये। इसका अर्थ हुआ तीन सालमें ९० पौडकी बचत, अर्थात् २०,००० मजदूरोने १८,००,००० पौडकी बचत की। भारतवर्षकी आबादी ३०,००,००,००० की है। इस हिसाबसे ट्रान्सवालमें गिरमिटिया मजदूरोकी कमाईसे १ पौड प्रति व्यक्ति बाँटनेके लिए कितने साल लगातार काम करना पड़ेगा? क्या कोई आदमी, जिसके होश-हवास ठीक हो, कहेगा कि ऐसे काल्पनिक लाभकी खातिर भारत सरकार भारतीयोको गुलामोकी तरह बेच देगी? हमने जो आँकडे दिये है, वे अवश्य इस कल्पनापर आधारित है कि प्रत्येक भारतीय अपनी लगभग सारी मजदूरी बचा लेगा। इसके सिवा, अगर जबरदस्ती वापस भेज देनेका सिद्धान्त मान लिया तो भारतको वर्षानुवर्ष ऐसी भारतीय आबादीके निर्वाहका प्रबन्ध करना होगा जो अपेक्षाकृत अधिक महँगे रहनसहनकी आदी है। नतीजा यह होगा कि प्रस्तावित शर्तोके अनुसार गिरमिटिया मजदूरोको यहाँ बुलाना वरदान होनेके बजाय स्वय मजदूरोके लिए भी सचमुच अभिशाप बन जायेगा।

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, २५–२–१९०४

१०८. केपके चुनाव

प्रगतिशील दलकी शायद आशासे अधिक जीत हुई है। जो बहुत ही आशावादी थे उन्होने भी कभी नही सोचा था कि इसे विधानसभामे पाँचका स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो जायेगा। हम डॉक्टर जेमिसनको उनकी विजयपर अपनी विनम्र बधाई देते है। आशा है कि उनके दलकी सफलता केपके ब्रिटिश भारतीयोके लिए शुभ होगी, यद्यपि उन्हे केपमे उतनी शिकायतें नही है, जितनी नेटाल, ट्रान्सवाल अथवा ऑरेंज रिवर उपनिवेशमे है। केपमें भी कुछ अरसेसे उनके अधिकार छीन लेनेकी प्रवृत्ति रही है और केप प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियममे भारतीय-विरोधी परिवर्तन किये गये, वह "बॉड दल" की कृपा है। श्री मेरिमन और उनके मित्रोने ही विधेयकके मसविदेमे वह सशोधन स्वीकृत कराया, जिससे उपनिवेशमें प्रवेश करनेके ऐसे नियम बनाये गये कि वे ब्रिटिश प्रजाजनोपर भी लागू हो जाये। हमे मालूम है कि बॉड दलवाले केपके रगदार लोगोके पास गये और उन्होने उन्हे अपने इने-गिने मत बॉड दलके उम्मीदवारोको देनेके लिए समझाया। और यद्यपि प्रगतिशीलो और बॉड दलके लोगोमे चुनाव करनेको शायद बहुत-कुछ नही है, फिर भी जहाँतक ब्रिटिश भारतीयोका सम्बन्ध है, अगर मत देने ही हो तो हमे यह कहनेमें कोई सकोच नही कि प्रगतिशीलोको तरजीह मिलनी चाहिए। सचमुच डॉ० जेमिसनने बिलकुल साफ दिलसे सामने आकर कहा कि वे सभ्यताके अलावा और किसी आधारपर ब्रिटिश प्रजाजनोके बीच कोई भेदभाव करनेमे विश्वास नही रखते। यह ऐसा बयान है जिसपर किसीको आपत्ति नही हो सकती। हम यही आशा रख सकते है कि लायक डॉक्टर, जो अब उपनिवेशके प्रधानमंत्री है, अपनी बातसे मुकर नही जायेंगे और प्रतिस्पर्धी व्यापारियोकी चिल्लाहट या बॉड दलवालोके आन्दोलनसे दबकर इस पुराने उपनिवेशमे रहनेवाले ब्रिटिश भारतीयोके अधिकारो और स्वतन्त्रतामे कमी नही करेगे।

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, २५–२–१९०४

१०९. विक्रेता-परवाना अधिनियम

डर्बनकी नगर-परिषदने फिर एक बार साबित कर दिया है कि व्यापारियोंके लिए विक्रेता-परवाना अधिनियम अत्याचारका कैसा भयकर बेलन है। कार्रवाईसे मालूम होता है कि कोई श्री जे० एस० वुल्फ़सन पिछले तीन वर्षोसे व्यापार कर रहे है। परन्तु इस साल परवाना-अधिकारीके जी मे आया और उसने उनका परवाना नया करनेसे इनकार कर दिया। इसके कोई कारण नही बताये गये, और, इसलिए, पीड़ित-व्यापारी श्री एस्क्यूकी सेवाएँ प्राप्त करके अपीलके प्रक्रियामे से गुजरा है, जिसकी कानूनमे गुजाइश है। किन्तु श्री एस्क्यू अन्धकारमें भटक रहे थे, क्योकि उन्हे यह मालूम नही था कि किस बिनापर उनके मुवक्किलकी रोटी छीनी गई थी। उन्होने सिर्फ अनुमान लगाया था कि उनके मुवक्किलका बहीखाता ठीक तरहसे नही रखा गया था, और अब वे निश्चित रूपसे जानना चाहते थे कि इनकारीका कारण यही था या नही। इसलिए महापौरने परवाना-अधिकारीकी रिपोर्ट माँगी, मगर श्री एस्क्यूको उसे देखनेकी इजाजत नही थी, क्योकि वह "गुप्त" थी। श्री एस्क्यूने विरोध किया, परन्तु व्यर्थ। अन्तमे श्री बर्नके रूपमे उन्हे एक ऐसे परिषद-सदस्य मिल गये जो चुपचाप बैठने और किसी मनुष्यको सुन-वाईका मौका दिये बिना सजा देनेके निर्दय अन्यायमे शरीक होनेको तैयार नही थे। जब महापौरने विरोधमे यह कहा कि उक्त दस्तावेज प्रकट नही किया जा सकता तब श्री बर्नने धमकी दी कि यदि महापौर अपने एतराज पर अड़े रहेगे तो वे भविष्यमे अपीले सुननेका काम नही करेगे। यह धमकी ऐसी थी, जिसकी महापौर महोदय उपेक्षा नही कर सकते थे और इसलिए उन्होने यह कह कर बीचका मार्ग निकाल लिया कि मामलेपर समितिमे विचार किया जायेगा। इसलिए श्री एस्क्यूने ठीक ही हस्तक्षेप किया और कहा कि यह तो मध्य युगमे लौट जानेकी बात हुई। हमे तो मालूम नहीं कि मध्य युगमे भी, सुनिश्चित कानूनी तरीके होते हुए, इस तरहकी शोकजनक हालत होने दी जाती थी। अवश्य ही, यदि किसी मनुष्यको अपील करनेका अधिकार है तो उसे उन कागजातको देखनेका भी हक होना चाहिए जो मिसलमे मौजूद हो। श्री एस्क्यूने सोमनाथके जिस मुकदमेका[1] हवाला दिया उसका फैसला करते हुए न्यायाधीश मेसनने नगर-परिषदकी कुछ साल पहलेकी मनमानी कार्रवाईपर कुछ चुभते हुए उद्-गार प्रकट किये थे। परिषदने अपीलकर्ताको मिसल देखनेकी इजाजत देनेसे इनकार कर दिया था और मामलेपर समितिमे, अर्थात् अपीलकर्ताकी पीठके पीछे, विचार किया था। किन्तु इस अव-सर पर परिषदने समितिका आश्रय जरूर लिया और कुछ समयकी प्रसवपीड़ाके बाद इस प्रस्तावको जन्म दिया कि श्री एस्क्यू कागजात देख सकते है। उनमे टिप्पणी सक्षिप्त थी — "बही-खाता असन्तोषजनक, परवाना नही दिया गया।" फिर श्री एस्क्यूने यह साबित करनेको शहादत पेश की कि बहीखाता योग्य हिसाबनवीसने रखा था और, इसलिए, नगर-परिषदको अपना अधिकार काममें लाकर परवाना-अधिकारीको परवाना जारी करनेका आदेश देना चाहिए। परन्तु नगर-परिषद इतनी आसानीसे न्याय करनेको राजी नही की जा सकती थी। इसलिए उसने अपीलको खारिज कर दिया, परन्तु श्री एस्क्यूको सुझाया कि वे परवाना-अधिकारीको फिरसे अर्जी दे।

दक्षिण आफ्रिकाके प्रमुख और आदर्श शहरकी नगर-परिषद इस प्रकार अपनेको जलील करे और जो मामले अपीली अदालतके रूपमे उसके सामने आये उनपर निष्पक्ष विचार करनेकी

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ २।

अपनी अयोग्यताका इकबाल करे, यह खेदजनक कलंककी बात है: परन्तु इसमें आश्चर्य जरा भी नहीं है। कसूर विधान-मण्डलका है। उसने नगर-परिषदोंको अत्यन्त निरंकुश सत्ता दी है, और जब उसके दुरुपयोगपर कोई नियन्त्रण नहीं रहा, तब डर्बन जैसे सुव्यवस्थित स्थानकी नगर-परिषदसे भी, उसके उपयोगका लोभ संवरण नहीं हो सका। जो सदस्य अपीलें सुनने बैठते हैं उन्हें कानूनकी तालीम नहीं है। उनमें से कुछ प्रतिस्पर्धी व्यापारी हैं और जब उनके अपने स्वार्थ निहित हों तब उनसे निष्पक्ष निर्णय देनेकी आशा रखना उचित नहीं है। इसलिए जबतक विक्रेता-परवाना अधिनियम उपनिवेशकी कानूनकी पुस्तकको कलंकित करता रहेगा तबतक उपनिवेशके लोगोंको उन्हीं अशोभनीय कार्रवाइयोंके दुहराये जानेके लिए तैयार रहना होगा, जिनकी तरफ जनताका ध्यान दिलानेका कटु कर्त्तव्य हमें अदा करना पड़ा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३-३-१९०४

११०. जोहानिसबर्गकी भारतीय बस्ती

अन्यत्र हम वह प्रतिवेदन छाप रहे हैं, जो अस्वच्छ क्षेत्र-अधिग्रहण अध्यादेश (इन-सैनिटरी एरिया एक्सप्रोप्रिएशन ऑर्डिनेन्स)के मातहत केवल भारतीयोंको बसानेके नये स्थानके सम्बन्धमें लोक-स्वास्थ्य समितिने दिया है। प्रतिवेदनसे प्रकट होता है कि जोहानिसबर्गकी नगर-परिषदकी लोक-स्वास्थ्य समितिने अपना विचार बदल लिया है। यह कुतूहलजनक बात है कि कैसे सरकार और सार्वजनिक संस्थाएँ अब भी समय-समयपर एशियाई-विरोधी नीति बदलती जाती हैं। पूर्व-निर्धारित सिद्धान्तोंसे हटनेके लिए बाहरका जरा-सा दबाव भी, भले वह कितना ही स्वार्थपूर्ण क्यों न हो, काफी प्रलोभन बन जाता है। बहुत दिन नहीं हुए, हमने अपने पाठकोंको सूचित किया था कि नगर-परिषदकी लोक-स्वास्थ्य समितिने एशियाई *बाजार*के लिए वर्तमान काफिर-बस्तीके स्थानकी सिफारिश की है। भारतीयोंने इसका विरोध किया। विरोधके अनेक आधारोंमें से एक यह था कि वह *बाजार* वर्तमान बस्तीसे बहुत दूर होगा। परन्तु समितिको एक और अर्जी दी गई। उस अर्जीमें परिषदके सुझावको नापसन्द किया गया था, क्योंकि अर्जदारोंकी रायमें वह स्थान उपर्युक्त बस्तियोंके बहुत नजदीक था। अर्जी पर १,३०० व्यक्तियोंके हस्ताक्षर थे, जिनमें से बहुतसे व्रिक्स्टन, मेफेयर और फोर्ड्सबर्गके निवासी बताये जाते हैं। भारतीयोंका विरोध बेशक बेकार था, परन्तु लोक-स्वास्थ्य समिति इन १,३०० अर्जदारोंके विरोधकी अवहेलना नहीं कर सकती थी। इसलिए वह कुछ महीने पहले प्रकट किये अपने ही मतसे मुकर गई है और यह सुझाव लेकर सामने आई है कि जिस स्थानकी पिछली सरकारने कभी भारतीय और चीनी बस्तीके लिए तजवीज की थी, उसे एशियाई *बाजार* के लिए ले लिया जाये; और समिति दलील देती है कि,

> जिस भूमिका इस *बाजार*के स्थानके लिए उपयोग करनेकी अब तजवीज की गई है, वह वही है जो इस कामके लिए कई वर्षोंसे सुरक्षित कर रखी गई है। इसलिए इस कामके लिए इस स्थानके उपयोगके विरुद्ध आपत्तियाँ उतनी प्रबल नहीं हैं, जितनी शहरसे उतने ही फासलेके अन्दरके किसी अन्य स्थानके खिलाफ उठाई जा सकती हैं।

प्रस्तावित स्थानको ब्रिक्स्टनसे पूरी तरह अलग रखनेके लिए यह प्रस्ताव है कि,

> **स्थानका नक्शा इस तरहका बनाया जाये कि एशियाई *बाजार* और ब्रिक्स्टनके बीचकी पश्चिमी सीमापर लगभग, दो सौ फुट चौड़ी जगह साफ तौरपर छूटी रहे। . . . और पश्चिमी तथा उत्तरी सीमाओंपर बस्तीके निवासियोंको सीधे ब्रिक्स्टन पहुँचनेसे रोकनेके लिए एक अलंघ्य बाड़ खड़ी कर दी जाये।**

लोक-स्वास्थ्य समिति यह और कह सकती थी कि वह स्थान जिसकी अब वह सिफारिश कर रही है, वहीं है जिसके बारेमे युद्धसे पहले ब्रिटिश सरकारने बहुत जोरदार विरोध प्रकट किया था, जिसके खिलाफ तत्कालीन उप राजप्रतिनिधि श्री एमरिस इवान्सने तीव्र निन्दायुक्त प्रतिवेदन लिखा था और जिसे अन्तमे पिछली सरकारने भी अस्वीकार कर दिया था। क्या अब उस स्थानमे इतना अद्भुत सुधार हो गया है? अथवा चौक *बाजार* और इस स्थानके बीचका फासला इन तीन वर्षोंमे इतना घट गया है कि ब्रिटिश राज्यमे अब वह उपयुक्त बन गया? १८९९ मे डाकघरसे यह फासला ४$\frac{3}{4}$ मील था।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३-३-१९०४

१११. मलायी बस्ती

जोहानिसबर्गकी मलायी बस्तीके बारेमें जोहानिसबर्गकी नगर-परिषदकी सामान्य उद्देश्य-समितिकी सिफारिश निम्नलिखित है:

> **इस सिफारिशमें जिस जमीनका उल्लेख है उसका कुल क्षेत्रफल १८,८८५ एकड़ होता है। आयोगकी सिफारिश है कि यह जमीन, केवल दक्षिणके तिकोने भागकी ४१ एकड़ भूमिको छोड़कर, जिसका अधिकांश इस समय मलायी बस्तीके कब्जेमें है, परिषदके अधिकारमें होनी चाहिए। इस भू-भागके विषयमें आयोग सिफारिश करता है कि यह सरकारकी सम्पत्ति रहे और रेलवेकी भावी आवश्यकताओंके लिए सुरक्षित रखा जाये। ज्ञात हुआ है, आयोगका सुझाव यह है कि जबतक रेलवेको जरूरत न हो तबतक यह जमीन परिषदके नियन्त्रणमें रहे और वही इसका इस्तेमाल करे। लोक-स्वास्थ्य समितिने आयोगकी सिफारिश मान ली है; परन्तु उसने अपनी ओरसे यह सिफारिश की है कि, उसमें एक शर्त डालकर साफ कर दिया जाये कि जिन मलायी लोगोंके अधिकारमें इस समय यह जमीन है उन्हें परिषद जब भी हटाना जरूरी या वांछनीय समझे तब उन्हे हटाने और मुआवजा देनेका खर्च रेलवे-प्रशासन या सरकारको उठाना चाहिए। और यह भी कि, जबतक मलायी लोगोंका कब्जा रहे तबतक मलायी बस्तीके सम्बन्धमें सफाईकी या दूसरी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए परिषदको कोई इमारतें खड़ी करनेकी जरूरत मालूम हो, तो उन इमारतोंका मुआवजा परिषदको दिया जाये।**

इसलिए इस स्थानके निवासियोंको अपने हितोकी रक्षा करनेके सम्बन्धमें बहुत सावधान रहना पड़ेगा। सफाईकी दृष्टिसे इस स्थानके विरुद्ध किसीने कभी कानाफूसी भी नही की है। वहाँके निवासी बहुत साफ-सुथरे ढँगसे रहते है। उन्होने खासे अच्छे मकान बनाये है। उनमे

से कुछने ईंटोंकी इमारतें भी बना ली हैं और यदि उन्हें उनके स्थानोंसे हटाया गया तो यह क्रूरता होगी। अब समय आ गया है कि सरकार ट्रान्सवालके रंगदार लोगोंको निवासकालकी निश्चितता और उनके दर्जेके बारेमें आश्वासन प्रदान करे। जब यह बस्ती बसाई गई, तब वहाँ जंगल-मात्र था। अब अगर वह फूलती-फलती जगह बन गई है तो उसका कारण वहाँ रहनेवाले लोगोंकी मेहनत है। सरकारका कर्तव्य है कि उनके परिश्रम और लगनकी कद्र करे। हम देखते हैं कि इस बस्तीके बाडोंका किराया ७ शिलिंग ६ पेंससे बढ़ाकर १ पौंड माहवार कर दिया गया है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३–३–१९०४

११२. प्रवासी-प्रतिबन्धक प्रतिवेदन

अन्यत्र हम उस दिलचस्प, विस्तृत और योग्यतापूर्ण प्रतिवेदनके मुख्य मुद्दे दे रहे हैं जो श्री स्मिथने[1] तैयार किया है और माननीय उपनिवेश-सचिवको दिया गया है।

विभिन्न मुद्दोंकी जाँच करनेसे पहले हम श्री स्मिथका ध्यान एक ऐसी बातकी ओर खींचना चाहते हैं, जो हमें प्रतिवेदनका एक-मात्र दोष मालूम होती है, अन्यथा वह प्रतिवेदन उपनिवेशमें प्रवासपर प्रतिबन्ध लगानेके वर्षभरके कामका एक ऐसा सार है जिसपर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। श्री स्मिथकी लेखन-शैली जोरदार है, परन्तु हमें आदरपूर्वक कहना होगा कि किसी सरकारी रिपोर्टमें नाटकका या अखबारका ढंग अपनाना शोभा नहीं देता। जाँचके समय होनेवाली देरके सम्बन्धमें मुसाफिरोंकी शिकायतोंका जिक्र करते हुए वे कहते हैं :

> साफ मौसममें, लंगर डालनेके स्थानपर सामानकी पिटारी लिये घंटेभर नौका-ठेलेपर खड़े रहनेवाले व्यक्तिके लिए वस्तुस्थितिका महत्त्व नहीं होता। सम्बन्धित अधिकारी काम निपटाकर खुद किनारेपर आ जानेको उत्सुक होगा, यह बात उसे मालूम नहीं होती। वह किसीसे (कदाचित् किसी लौटे हुए उपनिवेशीसे) विभागकी निन्दा सुनता है और आसानीसे उसके स्वरमें-स्वर मिला देता है। फिर, कड़वी भावनाओंसे भरा हुआ वह विभागकी त्रुटियोंपर आलोचना लिखने और अखबारोंमें भेजनेके लिए, और भावी यात्रियोंकी दशा सुधारनेके हेतु अव्यावहारिक सुझाव तैयार करनेमें अपनी परोपकार-वृत्तिका उपयोग करनेके लिए अपने होटलको दौड़ पड़ता है।

और लीजिए

> मैं पहले ही बता चुका हूँ कि ऐसे यात्रियोंसे किसी राहतकी आशा रखना बेकार है जो 'सारे दाँव-पेंच जानते हैं।'

प्रतिवेदनके बीच-बीचमें ऐसे सजीव अंश आते हैं जिनके पढ़नेमें बेशक मजा आता है, मगर हमारी रायमें सरकारी प्रतिवेदनको जैसा होना चाहिए वैसे तथ्यपूर्ण कागजातमें ऐसी सामग्रीकी गुंजाइश नहीं है। इसके अतिरिक्त, जो शैली उन्होंने अपनाई है उससे श्री स्मिथकी चिड़चिड़ाहट जाहिर होती है। वैसे वे आसानीसे विचलित नहीं होते और जिन लोगोंसे उनके दफ्तरका

१. प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिकारी श्री हैरी स्मिथ।

वास्ता होता है उन सबके साथ बडा शिष्ट व्यवहार करते है। हमारे खयालसे जनताको शिकायते करनेका पूरा हक है। कभी-कभी शिकायते माकूल नही होती, अक्सर जोरदार भाषामे प्रकट की जाती है और जब-तब बढा-चढा कर भी की जाती है। दुर्भाग्यसे यह ऐसी हालत है जिसे ठीक नही किया जा सकता, और इस उसूलपर कि "जिसका इलाज नही हो सकता उसे बर्दाश्त करना चाहिये", उन अफसरोसे जिन्हे अप्रिय कर्त्तव्य पालन करने पड़ते है, यह अपेक्षा की जाती है कि वे जनताकी ऐसी बात सहन कर ले और उसकी खिल्ली न उडाये। हमारे कहनेका यह मतलब हरगिज नही है कि श्री स्मिथको शिकायतका जवाब देनेकी कोशिश नही करनी चाहिए थी। हमारा ऐतराज उसके तरीकेपर है।

स्वय प्रतिवेदनको ले तो श्री स्मिथ अपने शुरूके अशमे इस बातपर क्षम्य गर्व करते है कि १८९७ का मूल प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम "रद कर दिया गया है और उसके स्थान पर नया और अधिक व्यापक कानून उस ढगपर बन गया है, जिसके सुझानेका सम्मान मुझे (उन्हे) प्राप्त है।" हमारे लिए यह समझना आसान नही है कि इस बातपर गर्व करनेका कारण क्यो होना चाहिए। जो लोग रोजी कमानेके लिए उपनिवेशमें आते है और जिनका एकमात्र दोष शायद उनकी गरीबी या चमडी है, उन्हे न आने देना कभी कोई आनन्ददायक कर्तव्य नही हो सकता, और श्री स्मिथ जैसे उदार प्रकृतिके मनुष्यके लिए तो वह खास तौरपर दु खद होगा। उनके प्रतिवेदनसे हमे ज्ञात होता है कि वे ६,७६३ भावी प्रवासियोको सफलतापूर्वक रोक सके। इनमे से ३,२४४ ब्रिटिश भारतीय थे, जिनमे २४ स्त्रियाँ और ३७ बच्चे शामिल है। दरअसल चूकि प्रवास अधिनियम उपनिवेशका कानून है और श्री स्मिथ वे अधिकारी है जिन्हें उसपर अमल करानेका काम सौपा गया है। इसलिए वे उन लोगोको जो इस कानूनकी कसौटी पर पूरे न उतरे, वापस लौटानेके सिवा कुछ कर नही सकते। परन्तु इससे यह प्रकट होता है कि स्वय कानून कितना कड़ा है और उसका ब्रिटिश भारतीयोपर कितना भयकर असर हो रहा है, क्योकि, यह याद रखना चाहिए कि, इन लोगोने लम्बी समुद्र यात्रा की थी और नेटालका टिकट लेनेमे शायद यह सोचकर, कि वे किसी ब्रिटिश उपनिवेशमे उतरनेसे रोके नही जायेगे, अपने पास जो-कुछ था सो सब लगा दिया था। यद्यपि यह कानून है, फिर भी लाखो भारतवासियोने इस कानूनका हाल शायद ही सुना होगा, इसलिए वहाँके लोग इस सिद्धान्तको हजम नही कर सकते कि साम्राज्यके विभिन्न भागोमे एक ही झडेके नीचे साम्राज्यके नागरिकोके अधिकारोमे इस तरहका भेद हो सकता है।

जाँचके बाद प्रवेश पानेवाले प्रवासियोमे १,८६९ भारतीय जिनमे १९५ स्त्रियाँ और ४९९ बच्चे थे, २१ चीनी, १ मिस्री, ३८ यूनानी, ८ सिहली, १ सीरियाई, और ८ तुर्क थे। प्रवेश पानेवाले भारतीयोमे १५८ ने शैक्षणिक परीक्षा पास की। यह कुल प्रवेश पानेवालोके दशाशसे कम है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि नया कानून अभी तो अमलमे आया ही है, इसलिए हमे भारी अन्देशा है कि श्री स्मिथके आगामी प्रतिवेदनमे शिक्षा-सम्बन्धी जाँचमे पास होनेवालोकी सख्या बहुत घटी हुई दिखाई देगी।

श्री स्मिथने यह दिलचस्प जानकारी दी है

"इन बारह महीनोंमें कोई २६९ प्रमाणपत्र (अधिवासके) जब्त किये गये और जो लोग उन्हें लाये थे, उन्हें राह बता दी गई।"

यह देखते हुए कि इस वक्त ऐसे हजारो प्रमाणपत्र चल रहे है, जिन प्रमाणपत्रोका दुरुपयोग हो गया है उनकी संख्या बहुत थोड़ी है। फिर भी इससे जाहिर होता है कि विधान-मण्डलने, अपनी बुद्धिमानीका प्रयोग जनताके रास्तेमें कानूनसे बचनेके लिए प्रलोभन रखनेमे

किया है। संसार भरमें सभी प्रतिबन्धक कानूनोंका यही इतिहास है, जब प्रतिबन्ध व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और गतिविधियोंपर हो तब तो यह खास तौरपर सही उतरता है।

प्रतिवेदन और भी पूर्ण होता यदि श्री स्मिथ अपने संक्षिप्त विवरणमें उन कारणोको शामिल कर देते, जिनके आधारपर इच्छुक प्रवासियोंको उपनिवेशमे घुसनेसे रोका गया है। प्रतिवेदनमे एक चीज और भी छोड़ दी गई मालूम होती है। वह है कि, जो ब्रिटिश भारतीय इस विभागकी परीक्षा पास करनेके बाद १८९७ के पश्चात् उपनिवेशमे प्रविष्ट हुए, उन्हे भी उपनिवेशसे निकाला जा रहा है, भले ही वे बस गये हो। नये आनेवालोके सम्बन्धमे कानूनके कठोर परिपालनके विरुद्ध हम बहुत अधिक न भी कहे, फिर भी हम यह जरूर महसूस करते है कि जो लोग उपनिवेशमे बस चुके है उन्हे खदेड़ देनेका प्रयत्न करके विभाग बहुत ही ज्यादती करेगा। सभ्य मनुष्योको अपराधियोकी भाँति उपनिवेशसे बाहर निकाल देना — खास तौरसे तब, जब कि यह ज्ञात हो जाये कि जिस विभागने उन्हे उपनिवेशमें प्रवेश करने दिया वही उन्हे खदेड़ रहा है — शायद ही न्याय्य है। हम इस प्रश्नकी तहमें नही जायेंगे कि १८९७ के बाद वे कैसे और क्यो यहाँ जमनेमें सफल हुए। यद्यपि उन्होने कानूनी शर्तोंको पूर्णत. पूरा नही किया, फिर भी यह हकीकत तो है ही कि वे इस देशमें चोरीसे नही आये, बल्कि श्री स्मिथके मातहत काम करनेवाले अफसरो द्वारा अच्छी तरह जाँच-पड़ताल करनेके बाद प्रविष्ट हुए। इसलिए हमें विश्वास है कि जहाँतक उपनिवेशके ब्रिटिश भारतीय निवासियोका सम्बन्ध है, श्री स्मिथ अपना हाथ रोक लेंगे, भले वे १८९७ के पहले उपनिवेशमें रहे हो या नही।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०–३–१९०४

११३. एशियाई व्यापारी-आयोग

ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोके सामने लड़ाईसे पहले उत्पन्न हुए निहित स्वार्थोंके बारेमें अपने दावे पेश करनेका एक बडा कठिन कार्य है और इस बातको देखते हुए कि आयोग अपनी प्रारम्भिक बैठक १४ तारीखको करनेवाला है, उसकी विचारणीय विषयावलीका अध्ययन करना बेजा नही होगा।

विषयावलीका क्षेत्र काफी व्यापक है, परन्तु इस मामलेमें विषयोका इतना सामान्य होना कई पेचीदगियाँ और यह सवाल उत्पन्न करता है कि निहित स्वार्थ किसे माना जाये?

प्रथम तो, आयुक्तोको

> कुछ खास एशियाइयोके मामलोंका विचार करना है और जाँच करके प्रतिवेदन देना है कि ऐसे व्यापारियोंकी संख्या कितनी है और पृथक बस्तियोके बाहर व्यापार करनेकी इजाजतके मामलेमें जिन निहित स्वार्थोका उन्होने दावा किया है वे किस प्रकारके और किस मूल्यके हैं।

इस प्रकार, आयुक्तोंको व्यापार करनेके सवालपर विचार करनेकी कोई सत्ता नही है। वे सिर्फ परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरको प्रतिवेदन दे सकते है। विषयावलीका कड़ाईसे अर्थ किया जाये तो ज्ञात होगा कि उसे निहित स्वार्थोंकी कीमत आँकनेका या यह निश्चय करनेका भी अधिकार नही है कि वे किस प्रकारके हैं। वह तो इतनी ही सूचना

दे सकता है कि इन मुद्दोंपर एशियाइयोको क्या कहना है। अगर ऐसा है तो यह प्रश्न बहुत सादा है। ब्रिटिश भारतीयोको इतना ही बयान देना है कि वे किस तरह, कहाँ और कबसे व्यापार कर रहे है, उनके कोई साझेदार है या नही और वे अपनी साख और अपने कारोबारका कितना मूल्य आँकते है, क्योकि निहित स्वार्थोमे उनके उस मालकी कीमत ही नही, जिसे वे युद्ध छिड़नेके समय बेचते थे, बल्कि साखकी कीमत भी शामिल होगी। किन्तु सबसे बडी कठिनाई साखके मूल्याकनमे ही आयेगी। इसके बाद सबसे कँटीला सवाल यह है कि वे एशियाई कौनसे है, जिन्हे अपने दावे दाखिल करनेकी इजाजत होगी। हम जानते है कि विचारणीय विषयावलीके अनुसार उनकी व्याख्या यह की गई है कि

> **जो लड़ाई छिड़नेके समय और उसके ठीक पहले ट्रान्सवालके शहरोंमें पृथक बस्तियोंसे बाहर परवानोंके बिना व्यापार कर रहे थे।**

इसलिए, किसी ब्रिटिश भारतीयको अपना दावा पेश करनेसे पहले यह साबित करना होगा कि :

१. वह ट्रान्सवालमे व्यापार कर रहा था;
२. वह पृथक बस्तियोसे बाहर व्यापार कर रहा था;
३. उसके पास कोई परवाना नही था,
४. वह लड़ाई छिड़नेके समय व्यापार कर रहा था, और
५. लड़ाई छिड़नेके ठीक पहले भी व्यापार कर रहा था।

अगर हम भूल नही कर रहे है तो उपर्युक्त उद्धरणमे "के समय" के बाद "और" के बजाय "या" शब्द होना चाहिए, क्योकि विधान-परिषदके सारे वाद-विवादसे यह इरादा प्रकट होता था कि जो लोग लडाई छिड़नेके समय या उससे ठीक पहले व्यापार कर रहे थे उन सबके अधिकारोका लिहाज किया जाये। फिर भी हम देखते है कि आयोगकी विषयावलीके अनुसार दावेदारोको यह सिद्ध करना पड़ेगा कि वे लडाई छिडनेके समय ही नही, बल्कि उसके ठीक पहले भी व्यापार कर रहे थे। कठिनाईको ठोस रूपमे रखा जाये तो उसका अर्थ यह है कि उक्त विषयावलीके अनुसार यह काफी नही है कि कोई भारतीय, मान लीजिये, १८९९ के जून मासमे व्यापार कर रहा था और लड़ाईकी सम्भावनाके कारण ट्रान्सवाल छोडकर चला गया था, परन्तु उसे यह भी साबित करना होगा कि वह ११ अक्टूबर १८९९ के दिन दरअसल व्यापारमे लगा हुआ था। और अगर इस विषयावलीका कड़ाईसे अनुसरण किया गया तो सैकड़ो दावेदारोपर सहज ही झाड़ू फिर जायेगी।

हमने इन कठिनाइयोंका उल्लेख यह दिखानेके लिए किया है कि ब्रिटिश भारतीयोके सामने जो काम है वह कितना खर्चीला है।

परीक्षात्मक मुकदमेकी सुनवाई सर्वोच्च न्यायालयके सामने जल्दी ही शुरू होनेवाली है। अगर शुरू परिणाम भारतीय समाजके अनुकूल हुआ तो भारतीय व्यापारियोके लिए जरूरी नही होगा कि वे अपने दावे पेश करनेका खर्च भी उठाये। परन्तु वे दुविधामें पडे हुए है। यह निश्चित नही कि मुकदमेकी सुनवाई कब होगी। आयुक्तोने इस मासकी १५ तारीख मुकर्रर की है, जो बदली नही जा सकती, इसके पहले दावे पेश हो जाने चाहिए। हमे मालूम हुआ है कि ब्रिटिश भारतीय सघने आयुक्तोसे कारंवाईको स्थगित रखनेकी प्रार्थना की है। यह प्रार्थना हमे बहुत ही माकूल मालूम होती है। दूसरी ओर आयुक्तोको एक कर्तव्य पालन करना है। उन्हे जल्दीसे जल्दी लेफ़्टिनेंट गवर्नरके पास प्रतिवेदन भेज देना चाहिए। आयोगकी नियुक्ति परी-

क्षात्मक मुकदमा दायर होनेसे पहले हुई थी और यदि परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर सरकारको मुकदमेका फैसला होनेतक अपना विचार-विमर्श स्थगित रखनेका अधिकार नही देते, तो हम सहज ही समझ सकते है कि मामलेको स्थगित रखनेकी माँगका निर्णय करनेमे आयुक्तोको विषम स्थितिका सामना करना पडेगा। फिर भी भारतीय व्यापारियोसे यह आशा रखना महज निर्दयता होगी कि जब उन्हे परीक्षात्मक मुकदमेको ध्यानमें रखते हुए दावे पेश करनेसे होने-वाली असुविधा और खर्चसे बचनेकी पूरी उम्मीद है, तब वे अपने दावे दाखिल करे। इसलिए यह विश्वास रखा जाना चाहिए कि आयुक्त यह गुत्थी सुलझा सकेंगे और परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरके *लगाये* हुए फर्जके अनुरूप भारतीयोके साथ न्याय करनेमे समर्थ होंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०–३–१९०४

११४. युक्तिसंगत

श्री कॉन्स्टेबलके प्रस्तावके सम्बन्धमें जोहानिसबर्गके नगरपालिका-सम्मेलनकी[1] कार्रवाईकी हम पहले ही चर्चा कर चुके है। उनका प्रस्ताव यह है कि तमाम एशियाई व्यापारियोंको हटाकर अलग बस्तियोमे भेज दिया जाये, परन्तु मुआवजा केवल उनको ही दिया जाये जिनके पास लडाईसे पहले *बाजारों* या बस्तियोसे बाहर व्यापार करनेके परवाने थे। इसपर हमारे सहयोगी *साउथ आफ्रिका गार्जियनने* एक बहुत युक्तिसगत लेख लिखा है, जिसका तर्क अकाटच है। *गार्जियन* ठीक ही कहता है कि अगर चीनियोंका, गुलामोकी शक्लमे, चीनसे यहाँ हमला होने-वाला है तो मुट्ठी-भर ब्रिटिश भारतीयोको परेशान करनेका कोई कारण नही हो सकता। यह दलील इस बातसे प्रबल हो जाती है कि स्वय बॉक्सबर्गने ही, जिसकी ओरसे श्री कॉन्स्टेबल बोले, चीनी आक्रमणके पक्षमें निर्णय किया है। हम अपने सहयोगीका तर्क उसीके शब्दोमें देते है :

> इस आन्दोलनमें किसी सिद्धान्तकी प्रेरणाका अभाव इस बातसे सिद्ध होता है कि इसे बॉक्सबर्गके व्यापारियोंने आगे बढ़ाया है, और वे ही ट्रान्सवालमें चीनियोंके यूथोंको, ऐसी पाबन्दियोंके साथ, जो उन्हें व्यापार करनेसे *अलग रखें*, ट्रान्सवालमें लानेका समर्थन करनेमें सबसे अधिक क्रियाशील रहे हैं। इन लोगोंको समाजके नैतिक कल्याणकी चिन्ता नहीं है। ये इतना ही चाहते हैं कि जो व्यापार इस समय भारतीयोंके पास जाता है वह इनकी कोठियोंमें आने लगे। जहाँ ये एक लाख या इससे अधिक ऐसे मंगोलोंको लानेकी हिमायत करते हैं, जिनसे राष्ट्रीय जीवन भ्रष्ट और पतित होगा, वहाँ यह आग्रह भी करते हैं कि थोड़े-से ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंको उनके व्यापारका विरोध न करनेके लिए बाध्य किया जाये और उन्हें विरोध न करनेसे जो घाटा रहे उसका ट्रान्सवालके लोग मुआवजा चुकायें। ट्रान्सवालके लोग एशियाइयोंको यूरोपियोंसे अलग रखने और जहाँतक हो सके, जातीय संकरताको रोकनेके लिए तो बखूबी ऐसा कर सकते हैं; किन्तु यदि चीनियोंको लाखोंकी संख्यामें आना है तो फिर ट्रान्सवालमें सभ्यताका ऊँचा स्तर कायम

[1] देखिये पृष्ठ १४३।

रखनेकी सब आशाएँ छोड़ देनी होंगी, और जिस बातका बॉक्सबर्गके व्यापारियोंने इतने उत्साहपूर्वक समर्थन किया है उसकी तुलनामें भारतीय व्यापारियोंकी उपस्थिति छोटी-सी बुराई रह जायेगी। अगर ये सज्जन समझते हैं कि सिद्धान्तका त्याग कर देनेके बाद वे कोई ऐसी चीज प्राप्त कर सकते हैं जिसका आग्रह सफलतापूर्वक केवल उस परम आवश्यकताके आधारपर किया जा सकता है जिसके लिए जातीय संकरताको रोकना जरूरी है, तो हमारा खयाल है कि इसका अंजाम निराशा-मात्र ही होनेवाला है। यह करदाताओंके प्रति अन्याय होगा कि उनसे उन भारतीय व्यापारियोंको मुआवजा देनेके लिए कहा जाये जिन्हें मंगोल समाजमें व्यापार करनेके अधिकारसे वंचित रखा जायेगा। यह घोषणा की जा चुकी है कि ट्रान्सवालके लोगोंकी मर्जी अपनी समृद्धिका आधार एशियाई मजदूरोंको बनाने की है। यदि ऐसा हो तो रंगदार लोगोंकी स्पर्धामें गोरे व्यापारियोंकी जो हानि होगी वह कोई खास महत्वकी बात नहीं होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०–३–१९०४

११५. जोहानिसबर्गका एशियाई "बाजार"

जोहानिसबर्गकी बेदखल कराई गई बस्तीके ब्रिटिश भारतीय निवासियोके साथ हमारी पूरी सहानुभूति है। उनकी हालत बड़ी ही दर्दनाक है। पिछले सितम्बरसे इस क्षेत्रके अनेकानेक निवासी अपनी आजीविकाके एकमात्र साधनसे वंचित कर दिये गये है। बेदखलीके बदलेमे उनके दावोका अनुमान लगाते समय ऊँचे किरायोका कोई खयाल नही रखा गया, जिन्हे पानेके वे अभ्यस्त थे। इसलिए पचोने जितने मुआवजोके फैसले दिये है वे यद्यपि नगर-परिषदके अन्तिम प्रस्तावोसे बहुत-कुछ ऊँचे हैं, फिर भी भारतीयोके लिए बहुत कम संतोषकी वस्तु है, क्योकि उन्हे जो रकमें मिली हैं उनपर इतना ब्याज मिलना असभव है कि वे बिलकुल आरामसे गुजारा कर सके। उन सबको अधिगृहीत क्षेत्रके अन्दर ही घिरा रहना होगा, और नगर-परिषदकी दयापर जीना पड़ेगा, क्योकि कानूनके अनुसार उनके लिए किसी स्थायी जगहकी व्यवस्था नही की गई है। जमीनमे वे अपना रुपया लगा नही सकते, क्योकि ट्रान्सवालमे उन्हे स्थायी सम्पत्तिके मालिक बननेका हक हासिल नही है। प्राप्त समाचारोके अनुसार, इस बस्तीमें सफाईकी हालत आजकल जितनी खराब है, उतनी पहले कभी नही थी। अतिरिक्त काफिर आबादी भी इसी बस्तीमे रखी जा रही है। नतीजा यह है कि वहाँ अवर्णनीय घिचपिच हो गई है। जब बाड़े मालिकोके नियत्रणमे थे तब उन्हे ठीक हालतमे रखनेकी जिम्मेदारी उनपर मानी जाती थी और तब यह स्थान अवश्य ही रहने लायक था। प्रत्येक मालिक अपने बाड़ेके लिए एक भगी रखता था और यह देखता था कि बेजा भीड़ न हो। लेकिन अब तो बस्तीकी सफाई किसीका भी काम नही रही। नगर-परिषदसे सारी जगहकी देखभाल करनेकी आशा रखी जाती है, परन्तु ठीक प्रबन्ध और ठीक तरहके अमलेके अभावमें वह बुरी तरह असफल हुई है। हमे मालूम है कि डॉ॰ पोर्टर जो-कुछ कर सकते है, करनेके लिए उत्सुक है, परन्तु प्रत्येक बाड़ेपर एक भगी रखनेके लिए उनको धन प्राप्त नही है। उन्होने इतना ही किया है और यही वे कर भी

सकते थे, कि निरीक्षकोकी सख्या बढा दी गई है। परन्तु इतना करना काफी नही है। अगर [अधिग्रहणके पूर्व][1] बस्तीकी स्थिति ऐसी होती जैसी हमने बताई है, तो ब्रिटिश भारतीयोकी आदतो और सफाईकी अवहेलनापर सब तरफसे शोर [मच गया होता[2]]। पहली तान मेजर ओ'मियाराने छेडी थी, और जिसे अब अस्वच्छ क्षेत्र कहा जाता है, जिसमे यह बस्ती शामिल है, उसकी निन्दा की थी। डॉ० पोर्टरने उसी तानको पकडा और बस्तीका चित्र कालेसे-काले रगमें पेश किया। मेजर ओ'मियारा और डॉ० पोर्टर दोनोका कहना था कि इस इलाकेके — और खास तौरपर बस्तीके — अस्तित्वसे नगरका स्वास्थ्य सदा सकटापन्न रहता है, और उन्होने सलाह दी कि सारी बस्तीका सफाया कर देनेमें एक क्षण भी खोया न जाये। फिर भी बस्ती वही बनी है — सिर्फ वह पहलेसे बहुत बदतर हो गई है; और इससे इनकार न तो लायक डॉक्टर महोदय कर सकते है और न नगर-परिषद। तब, "सकटापन्न" का अर्थ क्या हो सकता था, इसका अनुमान प्रत्येक पाठक स्वय लगा सकता है। इसके अलावा जोहानिसबर्गके अखबारोमे छपे समाचारोसे प्रकट होता है कि नये स्थानका बन्दोबस्त और सुधार पूर्ववत् ही दूरकी बातें है। लोक-स्वास्थ्य समितिके प्रस्तावपर ब्रिक्स्टन और जोहानिसबर्गके दूसरे भागोके निवासियोने रोप प्रकट किया है। नगर-परिषदसे एक शिष्टमण्डल मिला है और उसके सामने एक अर्जी भी पेश की गई है। इसलिए लोक-स्वास्थ्य समितिका ताजा प्रस्ताव हरगिज अन्तिम नही, इसमें कोई सन्देह नही है। यह बात नही कि इसका बडा महत्त्व है, क्योकि यदि हम गलत न समझे हो तो, ब्रिटिश भारतीय ऐसे स्थानपर जानेसे साफ इनकार कर देंगे, जो व्यापारके लिए बिलकुल निकम्मा हो। उसपर १८९९ में जो आपत्तियाँ[3] की गई थी वे आज भी उतनी ही ठीक है। परन्तु शिष्टमण्डलसे ऐसी शिक्षा मिलती है जिसे समझ लेना अच्छा है। स्वास्थ्य-समितिकी सलाह है कि मौजूदा काफिर बस्तीका उपयोग भारतीयोको बसानेके लिए किया जाये। ब्रिक्स्टनके महानुभावोने इस प्रस्तावका विरोध किया था और उन्हे सफलता मिली थी। अब वे दूसरी सिफारिशपर फिर ऐतराज कर रहे है और हमे मालूम हुआ है कि नगर-परिषदने इस उद्देश्यसे कि प्रस्तावित स्थानका वैयक्तिक रूपसे निरीक्षण कराया जाये, लोक-स्वास्थ्य समितिका प्रस्ताव स्वीकार करनेके बजाय उसपर विचार स्थगित कर दिया है। इसलिए यदि लोक-स्वास्थ्य समितिकी सिफारिश ताकपर रख दी जाये तो हमे जरा भी आश्चर्य नही होगा। इस स्थितिमे ब्रिक्स्टन और आसपासके इलाकेके निवासियोको अपनी आपत्तिपर आग्रह भर रखना है, बस वह मान ली जायेगी। इस बीच गरीब भारतीयोको धीरजके साथ प्रतीक्षा ही करनी होगी। प्रार्थियोने जो दलीले दी है वे [ब्रिटिश भारतीयोके प्रति यूरोपीयोके वर्तमान रुखके][4] बिलकुल अनुरूप है। हम सरसरी तौरपर [यह ध्यान रखे][5] कि श्री ब्राउन नामके एक पादरीने प्रार्थियोके प्रवक्ताका काम किया था। इन लोगोका कहना है कि, "हमारी स्त्रियों और हमारे बच्चोके लिए इस जिलेमें रहना असम्भव और खतरनाक होगा।" यह जानना मनोरजक होगा कि ये सज्जन इतने साल जिलेमें कैसे रह सके, क्योकि याद रखना चाहिए कि काफिर बस्ती और भारतीय बस्ती जहाँ इस वक्त है वही उन्हे १० सालसे अधिक हो गये है, और पड़ोसमे यूरोपीय बिना किसी खतरेके रह सके है और वहाँ रहना उन्हे असम्भव नही मालूम हुआ, क्योकि काफिरोको पड़ोसमें रखनेका सवाल अब पहली दफा नही उठा है। प्रार्थी यह भी कहते है :

३. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ६८ और आगे।
१–२, ४–५. कोष्ठकोंके शब्द हमारे है; मूलमें यहाँके शब्द कट गये है।

यद्यपि इस प्रकार एशियाइयोंके लिए स्थान मिल जायेगा, फिर भी (यूरोपीय) समाजका एक बहुत बड़ा वर्ग बेघरबार हो जायेगा, क्योंकि नगरसे और रोजन्दार मजदूरोंके स्थानसे थोड़े फासलेके भीतर मुनासिब कीमतपर और जमीन उपलब्ध नहीं है।

यह तो सचमुच हँसीकी बात है! उन (यूरोपीयों) को जहाँ वे है वहाँसे हटानेके बारेमे तो कोई प्रश्न ही नही उठाया गया। सच तो यह है कि, उन्हे अपनी हालत बेहतर बनाने और अपने-अपने घरबार बनानेके लिए हर तरहकी सुविधाएँ दी गई है। जो लोग द्वेपसे इतने अन्धे हो गये है कि न्याय और अन्यायमे बिलकुल भेद नही कर सकते, उनसे बहस करना बेकार है। उनका सुझाव है कि भारतीयोको पहाडीके दक्षिणमे किसी ऐसे स्थानपर भेज दिया जाये, जहाँ नगरसे उनका सब सम्बन्ध कट जाये और रहे तो मुश्किलके साथ। जब उन्हे इस ऐतराजका सामना करना पडता है कि पहाड़ीके दक्षिणके स्थान सब खानोके इलाकेमे होनेके कारण सुरक्षित है, तब वे कहते हैं कि चूँकि सरकारको खानोके इलाकेका उतना हिस्सा ले लेनेका अधिकार है, जो सड़के बनाने और ढेर लगाने वगैरहके लिए जरूरी हो, और चूँकि नगर-परिषदने नगरका कचरा जमा करनेके लिए उसका कुछ भाग पहले ही ले लिया है, इसलिए वह जिसे नगरका जिन्दा कचरा समझती है उसे भी वहाँ जमा कर सकती है।

उपनिवेश-सचिव इन सज्जनोके जिनके प्रतिनिधि श्री ब्राउन है, और भारतीयोके बीचमे जिन्हे मौजूदा बस्तीके अधिकसे-अधिक निकट निवास-स्थान पानेका कानूनी हक है, आखिरी पच है। मनुष्य होनेके नाते भारतीयोका अधिकार है, कि उनकी वर्तमान असमजसकी स्थिति समाप्त की जाये और उन्हे ऐसी स्थितिमे रख दिया जाये कि वे अपना गुजारा कर सके।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–३–१९०४

११६. फिर पैदल-पटरियाँ

जबसे ट्रान्सवालपर गोरोका कब्जा हुआ है तभीसे इस देशके एशियाई-विरोधी कानूनोके बारेमे सरकारसे बराबर आवेदन-निवेदन किये जाते रहे है। इन कानूनोमे पुराना नगर-नियम भी है, जो रगदार लोगोको अगल-बगलके पैदल रास्तोका इस्तेमाल करनेसे रोकता है। गत वर्षके ब्रिटिश भारतीय सघने लेफ्टिनेट गवर्नरका ध्यान इस नियमकी ओर आकर्षित किया था और परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेट गवर्नर महोदयने कहा था कि वे एशियाई-विरोधी कानूनोको बेतरतीब निपटाना नही चाहते, बल्कि सारे प्रश्नपर एक साथ विचार किया जायेगा। इसी बीच, उन्होने उनसे मिलनेवाले शिष्टमण्डलको विश्वास दिलाया कि पुलिस ब्रिटिश भारतीयोको नही सतायेगी। परन्तु ट्रान्सवालसे खबर मिली है कि पुलिस कमिश्नरने पैदल रास्तो-सम्बन्धी उपनियम लागू करनेकी हिदायते जारी कर दी है। अबतककी नीति इस तरह अचानक त्यागनेका कारण यह है. कहा जाता है कि एक काफिरने कुछ बदमाशी की। मामला श्री वान डर बर्गके सामने आया और उन्होने उस (काफिर) को बरी कर दिया। दिलचस्पी रखनेवाले कुछ लोगोने सोचा कि इस मामलेमे ठीक-ठीक न्याय नही किया गया है। अखबारोको बहुत ही आवेशयुक्त भाषामे लिखे हुए पत्र भेजे गये। *लीडरने* अपने स्तम्भ खोल दिये और वतनी-विरोधी कठोर नीतिकी वकालत करके आन्दोलनको प्रोत्साहित किया। इसका जो परिणाम हुआ वह हम देख रहे है, और यदि वतनी लोगोके विरुद्ध कोई नियम लागू किये जाते है तो भारतीयो सहित

अन्य रगदार लोग भी स्वभावत· उनकी चपेटमे आ जाते है। लॉर्ड मिलनरने दोनोमे कोई भेद करनेसे इनकार कर दिया है और इसका भारतीयोको परिणाम भोगना पडेगा। पुलिस कमिश्नरने कृपा करके हिदायतोमे यह जरूर जोड़ दिया है कि १९०२ के २८ वे अध्यादेशके अनुसार मुक्त वतनियो और ऊँची श्रेणीके रगदार लोगोके साथ कोई छेड़छाड न की जाये। इसलिए पुलिसको बहुत ही कष्टप्रद कर्त्तव्य पूरा करना होगा। उसे ऊँची श्रेणीके और दूसरे रगदार लोगोकी पहचान करनेमे प्रवीण बनना पडेगा। स्पष्टत ऐसी कोई कसौटी तो तय नही की गई, जिससे पता लगे कि उच्च श्रेणीका रगदार मनुष्य कौन है। इसलिए यह निर्णय पूरी तरहसे पुलिसके विवेकाधीन रहेगा। पुलिस कमिश्नरको शायद यह नही सूझा कि ऐसी हिदायतोसे बहुत बडी मात्रामे चिढ़ और असुविधा उत्पन्न हुए बिना नही रहेगी। जिन नियमोका क्षेत्र इतना अनिश्चित है उनकी अपेक्षा सब सम्बन्धित लोगोके लिए यह कही बेहतर होता कि नियम जैसे है वैसे ही लागू किये जायें, और पैदल-पटरियोंपर चलनेसे सभी रगदार लोगोको मना कर दिया जाये। यह कठोर उपाय हो सकता है, परन्तु यदि ट्रान्सवाल-सरकारको रग-विरोधी नीतिका अनुसरण करना है, तो हमें और कोई हल दिखाई नही देता। नये नियम इस बातका एक अतिरिक्त दृष्टान्त उपस्थित करते है कि किस प्रकार ब्रिटिश भारतीय सघकी यह शिकायत उचित सिद्ध हो रही है कि ट्रान्सवालके पुराने एशियाई-विरोधी कानून पहलेसे कही ज्यादा सख्तीसे काममे लाये जाते है, क्योकि जहाँतक ब्रिटिश भारतीयोका सम्बन्ध है, पैदल-पटरी सम्बन्धी नियम बोअर राज्यमे बिलकुल नि सत्व थे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७-३-१९०४

११७. पत्र : डॉ० पोर्टरको

२१ से २४, कोर्ट चेम्बर्स
जोहानिसबर्ग
मार्च १८, १९०४

डॉ० सी० पोर्टर
स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारी
जोहानिसबर्ग

प्रिय डॉ० पोर्टर,

साथका कच्चा रुक्का[1] जैसा मेरे पास आया है वैसा ही आपको भेजता हूँ। मुझे मालूम हुआ है कि, इस हालतमें, बस्तीमें लगभग १५ भारतीय पडे है। उनमेसे बहुतेरे कगाल है। एक आदमी मर गया है और उसकी लाशको किसीने हटाया नही है, या कोई हटानेकी स्थितिमे ही नही है।

क्या आप कृपा करके इस मामलेमें दिलचस्पी लेगे? स्वयसेवक बहुत काम कर रहे है और बीमारोकी देखभाल की जा रही है। चन्दा इकट्ठा करनेकी भी कोशिश की जा रही

१. यह उपलब्ध नहीं है। परन्तु गांधीजीने *आत्मकथा* (गुजराती, १९५२, पृष्ठ २८८) में कहा है कि मदनजीतके पेन्सिलसे लिखे हुए इस रुक्केका आशय यह था: "यहाँ एकाएक प्लेग फैल गया है। आपको तुरन्त आकर कुछ करना चाहिए, नहीं तो परिणाम भयकर होगा। फौरन आइए।"

है। लेकिन, मै आशा करता हूँ, इसी बीच, आप भी जो-कुछ जरूरी हो वह सब करनेकी कृपा करेगे।

मुझे ज्ञात हुआ है कि ये आदमी खानोसे आये है, जहाँ ये काम करते रहे है। अगर आप बस्तीके खाली बाडोमे से एक बाड़ा अस्थायी अस्पतालके कामके लिए दे दे तो इसकी बहुत सराहना की जायेगी। मै मानता हूँ कि इन लोगोकी देखभाल करना नगर-परिषदका फर्ज है। फिर भी, भारतीय समाज चन्दा इकट्ठा करेगा और इसके लिए आशिक रूपसे स्थानको सज्जित कर लेगा। डॉ० गॉडफ्रे, जो हालमे ही ग्लासगोसे लौटे है, सम्भवत मुफ्त या नाम-मात्रकी फीस लेकर बीमारोकी देखभाल करेगे। लेकिन मै मामला पूरी तरह आपके हाथोमे छोड़ता हूँ।

आपका सच्चा

मो० क० गांधी

[विशेष कथन][1]

मार्चकी पहली तारीखको एक छोटासा रुक्का[2] लिखकर डॉ० पोर्टरको सूचना दी गई थी कि मेरी रायमे प्लेग फैल गया है। ८ मार्चका पत्र उसका उत्तर है।

उस पत्रकी नकल नही रखी गई थी और वह सम्भवत. डॉ० पोर्टरके घरपर है; इसलिए स्वास्थ्य-कार्यालय नकल नही दे सकता।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९-४-१९०४

११८. "स्टार" के प्रतिनिधिकी भेंट[3]

जोहानिसबर्ग
मार्च २१, १९०४

प्रसिद्ध भारतीय वकील श्री मो० क० गाधी दो प्लेग-समितियोंमे काम कर चुके है और दो वर्षतक स्वयसेवकके तौरपर प्लेग-पीडितोके परिचारक रहे है। उन्होने आज प्रातः स्टारके प्रतिनिधिसे मुलाकातमे कहा कि भारतीय समाजने सम्बन्धित अधिकारियोको लगभग दो मास पूर्व चेतावनी दे दी थी कि उन्हे बडे सन्देहजनक चिह्न दिखाई दे रहे है। इसके बाद डॉ० पोर्टरको एक और पत्र भेजा गया, जिसमे कहा गया था कि प्लेगके चिह्न दिखाई देने लगे है। चार दिन बाद श्री गाधीने बयान दिया कि उन्हे डॉ० पोर्टरसे इस आशयका खत मिला कि स्वास्थ्य-अधिकारीको उक्त कथनके समर्थनमे कोई लक्षण दिखाई नही पड़े। किन्तु शुक्रवारको श्री गाधीको सूचना मिली कि कुछ भारतीय "मृत या मरणासन्न" स्थितिमे रिक्शागाडियो द्वारा लाकर बस्तीमे "डाले" जा रहे है। अधिकारियोको सूचित करनेके बाद श्री गाधी डॉ० गॉडफ्रे, डॉ० पेरारा और एक स्वास्थ्य-निरीक्षकको साथ लेकर सदिग्ध इलाकेमे गये और उन्होने एक मकानमे, जिसे भारतीय समाजने स्वय अलग कर दिया था, प्रवेश करनेपर १४ बीमार

१. पत्र-व्यवहार इस कैफियतके साथ अखबारोंको दे दिया गया था।

२. यह उपलब्ध नहीं है।

३. यह भेंट बादको २४-३-१९०४ के *इंडियन ओपिनियनमें* प्रकाशित हुई थी।

देखे। भारतीयोने आपसमे स्वेच्छासे चन्दा जमा किया था और कुछ पुरुष स्वयसेवक-परिचारकोकी देखरेखमे बीमारोको अपेक्षाकृत आरामसे रख दिया गया था। उस कामचलाऊ अस्पतालको डॉ० गॉडफ्रेने तुरन्त अपने नियन्त्रणमे ले लिया और यह इतजाम किया कि दवा-दारू जाननेवाला कोई एक शुश्रूषक सारी रात वहाँ मौजूद रहे। श्री गाधीका कहना है कि शनिवारको सुबह टाउन क्लार्कने उनसे मिलकर कहा कि वे नगर-परिषदकी ओरसे कोई आर्थिक दायित्व तो नही ले सकते, लेकिन अनुरोधके अनुसार वे स्टेशन रोडवाले सरकारी गोदामको अस्थायी अस्पतालके तौरपर काममे लानेकी इजाजत दे देगे और जिला-सर्जन डॉ० मैकेजी व्यवस्थाकी देखरेख करेगे तथा ब्यौरेकी बाते डॉ० गॉडफ्रेपर छोड दी जायेगी। प्राप्त मकानको स्वयसेवको द्वारा साफ कराया गया, उसमें छूतनाशक दवा छिडकी गई, २५ खाटे लाई गई और साढे तीन बजे-तक बीमार उसमे दाखिल कर लिये गये। डॉ० मैकेजीने व्यवस्था की थी कि परिचारिका-बहन वेस्टको परिचारकोके कामकी देखभाल करनेके लिए दाइयोके निवासस्थानसे यहाँ भेजा जाये। इस समयतक डॉक्टरोकी राय नही बन पाई थी कि लक्षण किस रोगके है। परन्तु बीमारीके जोरके कारण डॉ० मैकेजी बादमे इस नतीजेपर पहुँचे कि रोगी निमोनियाके प्लेगसे पीड़ित है। भर्ती किये गये २५ रोगियोमे से रविवारकी रातको सिर्फ ५ जिन्दा बचे। इनमेसे ३ राइटफॉन्टीनके छूतके रोगोके अस्पतालमे भेज दिये गये। श्री गाधीने अपने बयानमें आगे कहा कि भारतीय समाजने प्लेगको फैलनेसे रोकनेके लिए प्रत्येक उपाय, जो किया जा सकता था, किया है और अबतक उसने हर मामलेकी खबर दी है। एक जन-साधारणकी हैसियतसे बोलते हुए श्री गाधीने अपना यह विचार प्रकट किया कि यदि ठीक-ठीक सावधानी बरती जाती तो बीमारी फैली न होती। वे उन स्थानोपर रोगियोकी सेवा करते रहे है, जहाँ प्लेगसे असाधारण मौते हुई है, परन्तु जो लोग बीमारोके सम्पर्कमें आये उनकी खूब सावधानी रखनेके कारण रोग पृथक किये हुए स्थानतक ही सीमित रहा है। अन्तमें श्री गाधीने कहा, "मेरी रायमे प्लेग फैलनेका एकमात्र कारण अस्वच्छ क्षेत्रकी गन्दगी और भीड-भाड़की हालत थी। हालकी वर्षाने उसे और भी बढा दिया था। मै नही समझता कि रोगके कीटाणु बाहरसे ही आये होगे। प्लेग एक उग्र प्रकारके निमोनियासे अधिक कुछ नही है। उसके फैलनेका दोष भारतीय समाजपर बिलकुल नही है। सरकारी तन्त्र ही दोषपूर्ण है और, मै पूरे और उचित आदरके साथ कहता हूँ कि, यदि लोक-स्वास्थ्य समिति अधिक कार्य-कुशल होती तो प्लेग फैलता ही नही। अब तो सिर्फ एक ही बात की जा सकती है कि, अस्वच्छ क्षेत्रकी सारी इमारतें जला दी जाये और लोगोको एक अस्थायी शिविरमे ले जाया जाये और उन्हे भोजन दिया जाये। इसमे खर्च तो होगा, परन्तु वह करने लायक होगा।

[अंग्रेजीसे]

स्टार, २१-३-१९०४

११९. ब्रिटिश भारतीय उद्यम

हमारे सहयोगी *नेटाल ऐडवर्टाइज़रने* अपने विशेष सवाददाताका एक पत्र छापा है, जिसमें विक्टोरिया प्रान्तके ब्रिटिश भारतीय जमीन-मालिकोके प्रश्नकी चर्चा की गई है।

नेटालमे भारतीयोके पास कुछ जमीन रहे, चाहे वह थोडी ही हो, इस खयालसे ही संवाददाताको बड़ा रोष है। उसके दुर्भाग्यसे उसके पेश किये हुए तर्क और तथ्य सब यह जाहिर करते है कि उस प्रान्तमे भारतीयोका बसना और जमीनोका मालिक होना स्वय प्रान्तके लिए बडा वरदान सिद्ध हुआ है।

उक्त पत्रमें जो तथ्य दिये गये है उनकी चर्चा करनेसे पहले हम एक भूल सुधार देना चाहते है। उसका लेखक समझता है कि भारतीयोके हाथोमे बहुत जमीन चली गई है। मगर हम कह सकते है कि अबतक जमीनके ज्यादातर हिस्सेके मालिक यूरोपीय ही है। विशाल बागान उन्हीके है और वे भव्य भवन भी, जो सब भारतीय मजदूरोके कारण ही सभव हुए है। अवश्य ही जहाँ-तहाँ भारतीयोके हाथोमे जमीनके एक-दो टुकड़े होनेसे ही यह भय उचित नही हो जायेगा, जो लेखक पैदा करना चाहता है। कुछ भी हो, आखिर लेखकको भारतीयोकी निन्दामे कहना क्या है? वह कहता है:

> **जो कोई जिलेमें सफर करेगा . . उसे यह स्वीकार करनेमें कठिनाई न होगी कि . . . यह जिला, कमसे-कम उपनिवेशका सबसे अधिक परिश्रमपूर्वक जोता-बोया जिला है। कुछ वर्ष पहले उत्तरी तटवर्ती पट्टी इतनी समृद्ध दिखाई नहीं देती थी। इतनी अधिक जमीनमें काश्त होनेसे पहले, सालके इस समयमें अमगेनी और टुगेलाके बीचमें जो कुछ दिखाई देता था वह था — गर्मीकी धूपसे भूरी पड़ी घासका बड़ा मैदान। आज कुदरती घासका क्षेत्र नगण्य होता जा रहा है और वह बरसातकी बहुतायतके कारण बसन्तकी हरियालीकी तरह हरा-भरा है; और जब फसलें पकनेवाली है तब लोग कहते है कि इतनी अनाजदार फसलें पहले कभी नहीं हुई थीं।**

कोई भी इससे यही सोचता कि इन हालातपर बधाई दी जानी चाहिए; परन्तु लेखक इन्हे खेदजनक समझता है, क्योकि प्रान्तकी खुशहालीका कारण भारतीय उद्यम है। उसे प्रदेशका बंजर और उजाड़ होना तो पसन्द होता, लेकिन हराभरा और उपनिवेशको अच्छी आमदनी देनेवाला होना पसन्द नही है, जिसमे सैकडो रईसी ठाठवाले यूरोपीय किसानोका मज़ा करना सम्भव हुआ है। इसके अलावा लेखक स्वीकार करता है कि बहुतसी जमीन भारतीयोको यूरोपीय लोगोने पट्टेपर दी है। इसका अर्थ यह है कि यूरोपीय किसान जबतक भारतीय कृषकोको खेत जोतनेके लिए नौकर न रखे तबतक वे स्वय जमीनसे लाभ नही कमा सकते। फिर, यह भी याद रखना चाहिए कि अगर कोई भारतीय किसी जमीनका मालिक बन भी सका है तो मूल यूरोपीय मालिकोके जमीन बेच देनेके कारण ही। और, यद्यपि हमारे सहयोगीके संवाददाताने इस कारण उनको देशद्रोही बताया है, फिर भी निष्पक्ष लोग यह समझेंगे कि इससे बेचनेवालोको ही नही, बल्कि सामान्य समाजको भी लाभ हुआ है; क्योकि बेचनेवालोने भारतीयोको जमीनपर काम करनेका मौका देकर उपनिवेशकी समृद्धिको बढ़ाया है।

हमारी नम्र सम्मतिमे, सवाददाताने जो तर्क और तथ्य पेश किये है उनसे खेदजनक मानसिक दुर्बलता और आर्थिक नीतिको समझनेकी शक्तिका अभाव प्रकट होता है। अच्छे आचरण-वाले, निर्व्यसनी और परिश्रमी लोग किसी भी समाजकी मूल्यवान सम्पत्ति समझे जाते। उपनिवेश ही 'न खाये, न खाने दे,' की नीतिसे सचालित हो रहे है, इसीलिए वहाँ हमें इस प्रकारके लोगोके विरुद्ध चिल्लाहट सुनाई देती है। अन्तत हमारा खयाल तो यह है कि सादे जीवन और परिश्रमी लोगोसे रहित समाज बहुत समयतक टिक नही सकेगा, और जिस भूमिपर वह रहता है उसके साधनोसे पूरा लाभ भी नही उठा सकेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४–३–१९०४

१२०. जोहानिसबर्गमें प्लेग[1]

भारतीय समाजका महान कार्य

लगभग दो महीने हुए, जोहानिसबर्गमें प्लेगका पता लगा था। (यह कहना सही नही होगा कि प्लेग फैल गया है)। भारतीयोने अधिकारियोको चेतावनी[2] दी थी कि यदि नगर-परिषदके अधिकार कर लेनेके बाद तथाकथित अस्वच्छ क्षेत्रकी जो हालत हो गई है उसका उपाय न किया गया तो उन्हे महामारीकी अपेक्षा करनी ही होगी। क्योकि, २६ सितम्बरके बाद नगर-परिषदने किरायेके मकानोके आकारका लिहाज रखे बिना उस इलाकेमे किरायेदार रख लिये थे। इसलिए वहाँ इतनी भीड-भाड हो गई है कि उसका वर्णन नही किया जा सकता। परिषद द्वारा बाड़ोको साफ न रख सकनेके कारण इस गन्दगीमे और वृद्धि हो गई है। मकान-मालिकोके हाथोसे जिम्मेदारी छीन ली जानेके कारण वे एक-एक बाड़ेमे ५०-५० या इससे भी ज्यादा लोगोके रहनेपर काबू नही रख सके। उदाहरणके लिए, गत वर्ष २६ सितम्बरसे पहले भारतीय बस्तीमे ९६ मकान-मालिक ठीक सफाईके लिए जिम्मेदार थे। नगर-परिषदने नियन्त्रण अपने हाथमें ले लिया तो इसका मतलब यह था कि उसे कमसे-कम ९६ मेहतर रखने चाहिए थे। यह परिषद कर नही सकती थी, या करना नही चाहती थी। कुछ भी हो, जो इलाका पहले कभी इतना अस्वच्छ नही था कि उसके अधि-ग्रहणकी जरूरत हो, उसे अब परिषदने ऐसा बना दिया है। इसीलिए उपर्युक्त चेतावनी दी गई थी। इसपर, हाल ही हवामे असाधारण नमी आ गई, जिससे तेज निमोनिया फैल गया, जो आसानीसे सक्रामक हो सकता है। और, इस रोगने अस्वच्छ क्षेत्रमें अनुकूल स्थिति पाकर बहुत ही भयकर रूप धारण कर लिया, और यह निमोनियावाला प्लेग बन गया। ज्योही लोग ऐसे बीमार पड़े त्योही अधिकारियोको फिर सूचना दी गई; परन्तु चार दिनकी जाँचके बाद वे इस नतीजेपर पहुँचे कि ये प्लेगके रोगी नही है। चार दिनके बाद सकटकी स्थिति आ गई। कुछ भारतीय मरणासन्न अवस्थामे बस्तीमे लाये गये। मामलेकी खबर फिर अधिकारियोंको दी गई। परन्तु अब समाजने मामला अपने हाथमे भी ले लिया। उसने अनुभव किया कि दफ्तरी ढर्रे — लाल फीते — के कारण शायद तुरन्त कार्रवाई न हो सके। बीमारोको तत्परतासे

१. यह "हमारे निजी संवाददातासे प्राप्त" रूपमें छपा था।
२. देखिए "पत्र: डॉ० पोर्टरको," फरवरी ११, १९०४।

डॉक्टरी सहायता दी गई। डॉक्टर ग्रॉडफ़े अभी-अभी ग्लासगोसे आये थे। उन्होने अपनी सेवाएँ समाजको मुक्त रूपमे सौप दी। बादमे, उसी दिन (शुक्रवारको) स्वास्थ्य-निरीक्षक मौकेपर पहुँचे और उन्होने सहायताका हाथ बढाया। लेकिन अभीतक वे सरकारी तौरपर जिम्मेदारी लेनेमे असमर्थ थे। कुछ मकानोको कब्जेमे लेकर अस्थायी अस्पताल बना दिया गया। जिन्होने इस अस्पतालका दृश्य देखा है—उन मरीजोको तडपते हुए, जिन्हे कभी बीमार होना ही नही था, डॉ० ग्रॉडफ़े, श्री मदनजीत और नौजवान शिक्षित भारतीयोको भारी खतरा उठाकर शुश्रूषक बने हुए तथा उन छोटे-छोटे कमरोमे भरे १४ मरीजोकी सावधानताके साथ सेवा करते हुए; और उन मरीजोको एकके बाद एक मौतके मुँहमे समाते हुए—वे उस दृश्यको कभी भूलेगे नही। वह दृश्य भीषण भी था और प्रेरणाप्रद भी—भीषण उस दारुण शोकान्त घटनाके फलस्वरूप और प्रेरणाप्रद इसलिए कि उससे समाजके प्रसगानुकूल उठ खड़े होने और सगठन करनेके सामर्थ्यका दर्शन हुआ। जहाँ एक बाड़ेमे बीमारोकी देखभाल की जा रही थी, वही दूसरे बाड़ेमे एक बहुत बड़ी आम सभा हो रही थी। गरीब-अमीर सबने मिलकर कोई एक हजार पौड चन्दा जमा किया, ताकि समाजके उपयोगके लिए एक स्थायी अस्पताल खडा किया जा सके। जिस ढगसे गरीबोने आगे आकर चन्दा दिया वह उनके लिए बहुत ही श्रेयास्पद है।

शनिवारको प्रात काल ऐसा मालूम हुआ कि अधिकारियोने स्थितिको समझा है। उन्होने एक बहुत बड़े गोदामको, जो पुराना चुगीघर था, अस्थायी अस्पतालके लिए दे दिया। फिर भी, टाउन क्लार्कने उस समय कोई आर्थिक दायित्व लेनेसे इनकार कर दिया और बिस्तर, चटाइयाँ वगैरा जुटानेका काम समाजपर छोड दिया। किन्तु भारतीयोको रुपये-आने-पैसेकी गिनती करते रहनेकी गुंजाइश नही थी, और उन्होने इतजाम अपने हाथमे ले लिया। जिला-सर्जनने बड़ी कृपा करके एक बहुत अच्छी तालीम पाई हुई दाई दे दी और अन्तमे २५ रोगियोमे से पाँचको संक्रामक रोगोके अस्पतालमे पहुँचा दिया गया है और प्लेग फैल जानेकी सरकारी तौरपर घोषणा कर दी गई है। इस प्रकार, नगर-परिषदको समयपर सहायतार्थ आनेके लिए गरीबोके मक्खियोकी तरह मरनेका दृश्य देखनेकी जरूरत हुई है। फिर भी किसी व्यक्ति-विशेषका कोई दोष नही है, क्योकि अलग-अलग सभी भलाई करनेको उत्सुक रहे है। इस भयकर दुर्घटनाके लिए दोषी वह निष्प्राण, भारी-भरकम नगर-निगम है, जो लाल फोतेसे बँधा हुआ है और कल्पनाओपर पनपता है। बस्तीके चारो ओर अब घेरा डाल दिया गया है, यद्यपि दूसरे जिलोमे भी प्लेगकी घटनाएँ हुई है। परन्तु भारतीय समाज अपने कष्टोको अपनी परम्पराओके योग्य वीरतापूर्ण धैर्यके साथ सहन कर रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४–३–१९०४

१२१. प्लेग[1]

जोहानिसबर्ग
मार्च ३०, १९०४

आजतकके आँकड़े ये हैं:

गोरे	
निश्चित रोगी	६
सदिग्ध रोगी	९
रंगदार	
संदिग्ध	४
एशियाई	
निश्चित	५०
सदिग्ध	६
वतनी	
निश्चित	६
संदिग्ध	२३

निश्चित प्लेग रोगियोकी मृत्युसंख्या

गोरे	एशियाई	वतनी
६	४७	३

लगभग ये सभी आँकड़े प्लेग फैलनेकी जानकारी हो चुकनेके बादके है, अर्थात्, सत्यानाशी २०वी तारीखके बाद बहुत कम नये लोग बीमार हुए है। पहले दो दिन ही, जब बीमारोको समेटा जा रहा था, मृत्युसंख्या अधिक रही। और, एशियाइयोके अधिक संख्यामे बीमार होने तथा मरनेके कारणोका पता भी इससे लग जाता है। निमोनियाकी बीमारीने प्लेगका रूप पहले भारतीयोंमे धारण किया। डॉक्टरोने उन मामलोको मामूली माना। सावधानियाँ नही बरती गईं। यह चेतावनी देनेके बावजूद कि यह प्लेग है, अधिकारियोको भरोसा नही हुआ। और छूत फैली। इससे सबक यह मिलता है कि मामूली मामलोमें भी साधारण सावधानी बरती जानी चाहिए। हर बीमारी कम-ज्यादा सक्रामक होती है। फिर छूत-नाशक औषधियोको अच्छी तरह छिड़कने और, उस घरमे ही सही, बीमारको अलग करनेमें क्या बिगड़ता है।

यह दंतकथा कि केवल भारतीय-बस्तीमे ही छूत है, अभीतक चलाई जा रही है, और शायद यह अच्छी बात है। इससे लोगोको सतोष होता है और उनमे निरर्थक भय नही फैलता।

जब घेरा डाला गया तब बस्तीमें १,३६१ भारतीय थे। इनमे से ८०० से ऊपर क्लिप्स-प्रूटमें हटा दिये गये है। यह स्थान जोहानिसबर्गके मार्केट-स्क्वेयरसे लगभग १२ मील है। जिन भारतीयोको दुर्भाग्यवश सूतक (क्वारंटीन) में रहना पड़ा है उनके व्यवहारसे अधिकारी पूरी तरह संतुष्ट है। वे भी अपनी तरफसे भारतीयोको आवश्यक सुविधायें दे रहे है। धार्मिक आग्रहोंका आदर किया जाता है। घेरेके लोगोंको भोजन काफी उदारतापूर्वक दिया जाता है।

१. यह "हमारे जोहानिसबर्ग संवाददाता द्वारा प्राप्त" रूपमें प्रकाशित हुआ था।

लोगोंको भेजना विचारपूर्वक होता है और मारधाड़में होनेवाली बातोमें अनिवार्य त्रुटियोकी शिकायतोपर तत्काल ध्यान दिया जाता है। पूरी बस्ती इस हफ्तेमें खाली हो जायेगी और इमारतें जलाकर राख कर दी जायेंगी। इस तरह, जो काम पिछले साल २६ सितम्बरको, जब कथित अस्वच्छ क्षेत्रकी बेदखली की जा रही थी होना था, इस समय भयभीत मन:स्थितिमे अधाधुध खर्चपर हो रहा है।

क्लिप्सप्रूटमे श्री बर्जेस खीमेकी देखरेखमे है। जनताके जो प्रिय बन गये है वे डॉ० विलियम ग्रॉडफ्रे वहाँ नगर-परिषदकी ओरसे सहायक चिकित्सा-निरीक्षक नियुक्त कर दिये गये है और निस्सन्देह कुछ ही दिनोमे खीमा व्यवस्थित रूपसे चलने लगेगा।

जोहानिसबर्गके अधिकारी सहूलियतसे काम ले रहे है। किन्तु दुर्भाग्यवश प्रिटोरियाको छोड़कर ट्रान्सवालकी दूसरी जगहोके बारेमे यही बात नही कही जा सकती। डॉ० पेक्सके अनुसार, पीटर्सबर्ग, क्रूगर्सडॉर्प और पॉचेफस्ट्रूममे केवल प्लेगकी रोकथाम ही नही की जा रही है, भारतीय-समाजकी दुरवस्थासे पूरा-पूरा लाभ उठाकर उनका उन्मूलन करनेकी कोशिश की जा रही है। व्यापारिक ईर्ष्या खुलकर खेल रही है और प्लेगकी रोकथामके बहाने भारतीय व्यापारकी जड़े उखाडी जा रही है। जैसे बने वैसे उनकी राहमे रोडे अटकाये जा रहे है। किन्तु भारतीय धीरज और बहादुरीसे इन तकलीफोका सामना कर रहे है। यूरोपीय व्यापारियोकी बन आई है। किन्तु यदि भारतीय शान्त बने रहे तो उन्हे हानि पहुँचानेवाले लोगोके प्रयत्न निष्फल हो जायेंगे। क्रूगर्सडॉर्पमे भारतीयोका सन्तप्त हो उठना ठीक ही था। लगता था परिस्थिति बहुत विषम हो जायेगी, किन्तु श्री रिच[1] वहाँ पहुँच गये है और मामला सद्भावसे सुलझ गया है। भारतीयोके लिए यह समय अपने अधिकारोपर अड़नेका नही है, कष्ट भोगकर अपनी जिम्मेदारी समझनेका है। प्लेग पहले उनमे फैला था। रोगियोकी सर्वाधिक संख्या भी उन्हीमे है। जनताका निष्कर्ष यह है कि इस अनिष्टकी जड़ भारतीय ही है। यह सही-गलत जो हो, इसे मानना तो होगा ही। और भारतीय समाज धैर्यपूर्वक कष्ट सहकर य दिन काट रहा है, यह ठीक ही है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९-४-१९०४

१. एल० डब्ल्यू० रिच, उस समय गांधीजीके मुंशी।

१२२. प्लेग

आखिर जोहानिसबर्गमें प्लेग फैल गया है। अबतक लगभग ६० व्यक्ति उसके शिकार हो चुके है, जिनमे ४६ एशियाई है, ६ गोरे और ४ वतनी। रोगियोमें मृत्यु-सख्या एक तरहसे सौ फीसदी रही है। यह एक भयकर वस्तुस्थिति है। भारतमें ऐसा नही होता, और पहले कभी दक्षिण आफ्रिकामे भी ऐसा नही हुआ। इसलिए जोहानिसबर्गके प्लेगकी किस्म अबतक देखी गई किस्मोमें सबसे ज्यादा घातक है। फिर, उसके शिकार इतने थोडे समयमे मरे है कि विश्वास नही होता। जो पहले-पहले थोडीसी खाँसी और हलका-सा ज्वर मालूम होता है, वही कुछ घटोमें, या दूसरे दिन, तेज बुखार, थूकमे खून और जोरकी छटपटाहटमें बदल जाता है। रोगीका कष्ट भयकर होता है। तीसरे दिन सन्निपात और मौत आती है। अन्तिम स्थितिमे बीमार इतना थक जाता है कि यद्यपि उसके मुखपर घोर पीडा झलकती है, तो भी वह बेचारा उसे वाणी द्वारा प्रकट नही कर सकता। हमारे सवाददाताने इसका कारण बताया है। जोहानिसबर्गकी लोक-स्वास्थ्य समिति अब अपनी पूरी ताकतसे लगी है, परन्तु इससे उसकी पिछली गफलतका दोष मिट नही जाता — मिट नही सकता। उसे डॉ॰ पोर्टरके नाम लिखे गये पत्रमें समयपर चेतावनी दे दी गई थी और, हमे मालूम हुआ है, वह अध्यक्षतक पहुँचा भी दी गई थी, किन्तु उसपर ध्यान ही नही दिया गया। स्थानके बारेमें झगडनेमे कीमती वक्त बरबाद कर दिया गया। इस बीचमे नगर-परिषदके कर-सग्राहक भीड-भाड सम्बन्धी नियमोकी परवाह न करके अस्वच्छ क्षेत्रमे किरायेदारोको ठूँसते रहे। सफाईकी सर्वथा उपेक्षा की गई, किरायेदार भी व्यक्तिग इस मामलेमें कुछ कर नही सकते थे। ट्रान्सवालके लोग अब इसकी भारी कीमत चुका रहे है।

लेकिन हमें गड़े मुर्दे उखाडना पसद नही। विशेष प्लेग-अफसर डॉ॰ पेक्स और डॉ॰ मैकेंजी[1] बडे साहस और निष्ठासे इस विभीषिकासे लड रहे है। समितिने खतरेको अनुभव कर लिया है, इसलिये वह अपनी कोशिशोमे कोई कोर-कसर नही रख रही। उसने इन योग्य डॉक्टरोको असीम सत्ता दे दी है और इनको निरीक्षकोके अच्छे अमलेकी सहायता प्राप्त है। उनका प्लेगपर अच्छा काबू हो गया है और अब उसकी भयकरता मिट गई है। लोक-स्वास्थ्य समितिने इस प्रकार अपनी मुजरिमाना गफलतका प्रायश्चित्त कर लिया है। लेकिन अफसोसके साथ स्वीकार करना पडता है कि इस दोषसे भारतीय समाज मुक्त नही ठहराया जा सकता। अन्य समाजोकी अपेक्षा उसपर जो दण्ड पडा है, उसका वह, हमे भय है, थोडा या बहुत पात्र है ही। भारतीयोको सफाईकी अपेक्षा और भीड-भाडके विरुद्ध नाराजगी जाहिर करनी चाहिए थी। यह बहाना नही किया जा सकता कि नगर-परिषदने ऐसी स्थिति पैदा होने दी। जहाँ हम अकसर राजनीतिक हेतुसे किये जानेवाले अतिशयोक्तिपूर्ण आरोपो और तीव्र आक्षेपोसे अपने देशवासियोकी रक्षा करनेमे सबसे आगे है, वहाँ अगर अपने कर्तव्यपर दृढ रह कर उनके दोष उनको न बतायें तो अपने पेशेके प्रति वफादार नही होगे। भारतीयोमे प्लेगसे ४७ व्यक्तियोका बीमार होना इस बातका निश्चित प्रमाण है कि हमारे गरीब तबकेके देशबन्धुओके निवासस्थानोमे कितनी कम सफाई रखी जाती है।

१. जिला सर्जन जिन्हें नगर परिषदने इसी कार्यके लिए नियुक्त किया था।

क्या लोक-स्वास्थ्य समितिकी तरह उन्होंने भी प्रकृतिके प्रति अपने अपराधका कोई प्रायश्चित्त किया है? हमे जोरके साथ 'हाँ' कह सकनेमें खुशी है। जब परिषद सोई हुई थी तब वे जाग गये। जिस क्षण उन्हे अनुभव हो गया कि रोग अत्यन्त भयंकर रूपमें शुरू हो गया है, उसी क्षण उन्होंने प्रशसनीय परिश्रम और धैर्यके साथ काम शुरू कर दिया। उन्होंने एक कामचलाऊ अस्पताल खोला और चन्दा इकट्ठा किया, रोगियोकी सेवा और दूसरे जरूरी कामोके लिए स्वयसेवक आगे बढे, बीमारीकी हरएक घटनाकी जानकारी अधिकारियोको दी गई, और अपने ऊपर लगाई गई विशेष पाबन्दियोका अत्यन्त सहिष्णुतासे पालन किया गया। यह सब समाधानकारक और श्रेयास्पद है। इससे उनकी कानून और व्यवस्थाके पालनकी वृत्ति प्रकट होती है और यह भी जाहिर होता है कि उनपर अत्यधिक पाबन्दियाँ लगाना अथवा उन्हे अत्यधिक कठिनाइयोमें डालना किसी भी बिनापर उचित नही होगा। जो समाज नियन्त्रणमे रह सकता है उसके भीतरी दोष आसानीसे दूर किये जा सकते है। परन्तु यदि भारतीय समाज कोई स्थायी पाठ नही सीखेगा और इस अग्नि-परीक्षाके बाद भी किसी देखरेख अथवा नियन्त्रणके बिना स्वेच्छासे सफाईके नियमोपर अच्छी तरह ध्यान नही देगा तो उसको जो दंड मिला है वह बहुत थोडा ही होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २-४-१९०४

१२३. ट्रान्सवालका एशियाई व्यापारी-आयोग

मार्च १६ को एशियाई व्यापारी-आयोगकी पहली नियमित बैठक हुई थी। *जोहानिसबर्ग लीडरसे* हम उसकी कार्रवाई एक अन्य स्तम्भमे उद्धृत कर रहे है।

आयुक्तोने निर्णय किया है कि उन्हे उन ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोके दावोपर विचार करनेका अधिकार नही है जो यह साबित नही कर सकते कि वे लडाईसे ठीक पहले पृथक् बस्तियोके बाहर परवाने लेकर व्यापार कर रहे थे, और लडाई छिड़ जानेके कारण अपना व्यवसाय छोडनेको मजबूर हुए थे। इसका अर्थ यह है कि, जो लोग ट्रान्सवालमे १५ वर्षसे व्यापार करते थे, परन्तु जिन्होने, यों कहिए कि, अगस्त १८९९मे अपना व्यवसाय खतम कर दिया था, उनकी आयुक्तोके आगे कोई हैसियत नही है, और यदि इस सीमित विचार-क्षेत्रके अन्तर्गत आयुक्तोके प्रतिवेदनपर ही मामला खत्म हो जाता है तब तो परवानोके बलपर इस समय व्यापार करते हुए सैकड़ो भारतीय व्यापारी अपना व्यापारका अधिकार खो देंगे और फलस्वरूप बिलकुल बरबाद हो जायेंगे। परन्तु यह निर्णय भले ही कठोर दिखाई देता हो, आयुक्तोके सामने कोई दूसरा मार्ग नही था। सच तो यह है कि हमने अपने पाठकोको इसके लिए पहले ही तैयार कर दिया था, जब हमने कुछ समय पूर्व इस प्रश्नकी चर्चा की थी।[1] आयोगके विचारणीय विषयोकी सूचीकी भाषामे बचावकी कोई गुजाइश नही रखी गई है; उसमे केवल यह कहा गया है कि आयुक्त उन लोगोके मामलोपर विचार करेंगे जो बस्तियोसे बाहर परवानोके बिना लड़ाई छिडनेके समय या उससे ठीक पहले व्यापार कर रहे थे। हमे आशा है कि सरकारने विचारणीय विषयावली तैयार करते समय कभी ऐसे किसी

१. देखिए "एशियाई व्यापारी-आयोग," १०-३-१९०४।

परिणामकी कल्पना नही की होगी, क्योकि उपनिवेश-सचिव और लॉर्ड मिलनरने भी बार-बार कहा है कि सरकार उन भारतीयोके व्यापारको छेड़ना नही चाहती, जो लड़ाईसे पहले व्यापार कर रहे थे — चाहे उनके पास परवाने रहे हों या नही। जिन थोडेसे भारतीयोने १८९९ में किसी तरह व्यापारके परवाने हासिल कर लिये थे उनमे, और जिन्होने परवाने तो हासिल नही किये थे, परन्तु फिर भी व्यापार कर रहे थे उनमें, बिलकुल फर्क नही हो सकता। बोअर सरकारके खयालसे वे ऐसा गैरकानूनी तौरपर कर रहे थे; परन्तु उस गैरकानूनी कार्रवाईको ब्रिटिश सरकारने पैदा किया था और वही उसका पोषण कर रही थी, क्योकि उसकी नजरमे १८८५ का कानून ३ सर्वथा घृणास्पद था। इसलिए लड़ाईसे पहलेके १५ वर्षोमें भारतीयोंको ब्रिटिश सरक्षणमे विश्वास रखने दिया गया, यहाँतक कि वे जब जीमे आता ट्रान्सवाल छोड़कर चले जाते और फिर वापस आ जाते, कारोबार स्थापित करते, उसे बेच देते और फिर जब चाहते तब पुन स्थापित कर लेते थे। इसलिए पृथक बस्तियोसे बाहर कानूनके विरुद्ध व्यापार करनेके अधिकारमे एक निहित स्वार्थ पैदा कर दिया गया था, और यद्यपि यह नि सन्देह एक असाधारण स्थिति है, फिर भी है तो एक सच बात। जब यह स्थिति मौजूद थी, तभी लड़ाई छिड़ गई, और "लड़ाईके कारणोमें एक १८८५ का कानून ३ भी था।" इसलिए भारतीयोका यह सोचना बहुत स्वाभाविक था कि लडाईमे जीत होनेपर यह कानून खत्म हो जायेगा; और यह निष्कर्ष भी निकलता है कि यदि ब्रिटिश भारतीय १८९९ के पहले कानून तोडकर व्यापार कर सकते थे तो अब तो उनका दावा और भी प्रबल है, क्योकि इस बातका जरा भी महत्त्व नही कि वे लड़ाईके ठीक पहले व्यापार कर रहे थे या नही। कसौटी यह है कि, लडाईसे पहले वे कभी ट्रान्सवालमें व्यापार करते थे या नही; और अगर करते थे तो कमसे-कम अब भी उन्हे उस नीतिके अनुसार व्यापार करनेका हक है, जिसका अनुसरण ब्रिटिश सरकारने बोअर-हुकूमतके दिनोमे किया था; क्योंकि जो भी भारतीय लडाईसे पहले ट्रान्सवालमे प्रवेश करता था और अपना व्यापार जमा लेता था, वह जानता था कि वह जब चाहे तभी व्यापार स्थापित कर सकता है और उसे भग करके फिर जमा सकता है। इसलिए हम महसूस करते है कि यदि ब्रिटिश भारतीयोके साथ न्याय करना है, तो आयोग-की विषयावलीको बहुत व्यापक बनाना पड़ेगा। एशियाइयोके पर्यवेक्षक श्री बर्जेसने आयोगके सामने गवाही देते हुए साफ-साफ बयान किया था कि लडाईके बाद ऐसे बहुत कम भारतीयों (३) को परवाने दिये गये थे, जो प्रमाण देकर उनको यह सन्तोष नही करा सके कि वे लड़ाईसे पहले पृथक बस्तियोके बाहर ट्रान्सवालमें व्यापार कर रहे थे। इसलिए जिन भारतीयोको पृथक बस्तियोके बाहर व्यापार करनेके परवाने इस वक्त मिले हुए है, वे सब (जैसा कि ब्रिटिश भारतीय संघ हमेशा कहता रहा है) श्री बर्जेसके बयानके अनुसार व्यापार करनेके अपने अधि-कारोको पहले ही साबित कर चुके है। यद्यपि इसमे पुनरुक्तिका खतरा है, फिर भी हम कह सकते है कि इन परवानोको जारी करते समय कोई शर्त नही लगाई गई थी और न्याय और अन्यायकी हमारी दृष्टिके अनुसार, यदि एक भी ब्रिटिश भारतीय व्यापारीको, जो इस समय पृथक बस्तियोके बाहर ट्रान्सवालमें व्यापार कर रहा है, छेड़ा गया तो यह अन्याय होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २-४-१९०४

१२४. नेटालमें विक्रेता-परवाना अधिनियम

उस दिन वीनेनमे सात भारतीय व्यापारियोने परवाना-अधिकारीके निर्णयके विरुद्ध स्थानिक निकायमे अपील की। परवाना-अधिकारीने विक्रेता-परवानोकी सातो अर्जियाँ नामंजूर कर दी थी। जो शहादत पेश की गई उससे मालूम होता है कि उक्त व्यापारियोमे से एक आठ सालसे दूकान कर रहा है; दूसरे भी पुराने दूकानदार है, जिनके पास कई सालसे व्यापार करनेके परवाने हैं। चूँकि परवाना-अधिकारीने फिरसे परवाने देनेसे इनकार कर दिया था, इसलिए स्थानीय निकायमे अपील की गई थी। एक अर्जदारने इस आशयकी गवाही दी कि उसके पास आठ वर्षसे परवाना है और उसका बही-खाता उसके समय-समयपर रखे हुए कच्चे हिसाबके आधारपर उसका अंग्रेज मुनीम लिखता है। दूसरोके बही-खातोकी भी यही प्रणाली है। दो दिनतक इन मामलोकी सुनवाई करनेके बाद निकायने फैसला दिया कि चूँकि उसको उनके हिसाब रखनेके तरीकेसे सन्तोष नही हुआ है, इसलिए उसने परवाना-अधिकारीका फैसला बहाल रखा है। अगर व्यवस्था इसी ढगकी रही तो हमें बहुत अन्देशा है कि लगभग प्रत्येक भारतीय दूकानदारका सफाया हो जायेगा। इस बातको सभी जानते है कि छोटे दूकान-दारोकी बही-खाता रखने योग्य स्थिति नही होती। उनका लेन-देन सब नकद होता हैं। वे क्रय और विक्रय बहुत-कुछ नकद करते है और उन लोगोसे बही-खाता रखनेकी अपेक्षा करना ही भारी सख्ती होगी। प्रस्तुत मामलेमे इन लोगोने अंग्रेजी भाषामें बही-खाता रखनेका प्रयत्न किया है। स्पष्ट है कि निकाय उनसे यह अपेक्षा करता है कि वे योग्य मुनीमोकी मार्फत रोजमर्राका बही-खाता रखे। इसका अर्थ है ६ या ७ पौंड या इससे भी अधिक माहवारी खर्च। जो छोटे-छोटे व्यापारी अपने व्यवसायमे १०-१५ पौंड माहवार मुश्किलसे बचा पाते है वे शायद इस प्रकारका महँगा शौक नही कर सकते। यदि स्थानीय निकाय इस तरहके स्पष्टतः बेहूदा नियमका आग्रह रखेंगे कि अंग्रेजी भाषामे योग्य मुनीमो द्वारा ही दैनिक बही-खाता लिखाया जाये, तो इसका नतीजा होगा उपनिवेशमे कमसे-कम छोटे भारतीय व्यापारियोका सरलतासे खात्मा। क्या विक्रेता-परवाना अधिनियम इस दृष्टिसे ही पास किया गया था? निकायके फैसलेसे कानूनमे संशोधनका प्रश्न फिरसे उठ खडा हुआ है। जब विक्रेता-परवाना अधिनियम पास किया गया था उस समय ही नगरपालिकाओको दी हुई सत्ताका दुरुपयोग करनेकी प्रवृत्ति मौजूद थी। उसके बाद श्री चेम्बरलेनका उलहना आया और उसका वाछित परिणाम भी हुआ; परन्तु वह केवल क्षणिक था। इसलिए जबतक विक्रेता-परवाना अधिनियममें कुछ ऐसे निश्चित अधिकार शामिल नही किये जाते जिनसे पीड़ित पक्ष सर्वोच्च न्यायालयतक पहुँच सके, या उन कारणोकी व्याख्या नही कर दी जाती जिनसे परवाने नामंजूर किये जा सकते है, तबतक ऐसे मामले, जैसे हमने ऊपर बताये है, समय-समयपर होते ही रहेगे। यदि लोगोके निहित स्वार्थोका आदर करना है तो यह मामला सरकारके गम्भीर विचार करनेके लायक है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २-४-१९०४

१२५. पत्र: जोहानिसबर्गके अखबारोंको[1]

कोर्ट चेम्बर्स
जोहानिसबर्ग
अप्रैल ५, १९०४

महोदय,

श्री रॉयने[2], अगर उनके बारेमे यह समाचार सही है तो, इस बातसे इनकार किया है कि स्वास्थ्य-अधिकारी अथवा लोक-स्वास्थ्य समिति दोनोमे से किसी को भी कभी प्लेगके बीमारोकी सूचना दी गई थी। इस इनकारको देखते हुए और इसलिए कि, अब (देरसे ही सही) लोक-स्वास्थ्य समितिकी कोशिशो, डॉ० पेक्स और डॉ० मैकेजी की सहायता और प्लेगके प्रकोपका पता लगनेके बाद भव्य मौसमके कारण बीमारी काबूमें आ गई है, और इसलिए जनता निर्विकार होकर निर्णय करनेकी स्थितिमे है, मैं श्री रॉयकी सम्मतिसे डॉ० पोर्टर और अपने बीचका पत्र-व्यवहार प्रकाशनार्थ भेजनेका साहस करता हूँ।

इससे पता चलेगा कि आनेवाली घटनाओकी काफी चेतावनी पिछली ११ फरवरीको, अर्थात् हम लोगोमें प्लेगके अस्तित्वका सरकारी तौरपर पता लगनेके ठीक १ महीना और ९ दिन पहले, दे दी गई थी। उसे १५ फरवरीको जोरदार शब्दोमे (जो, मेरे खयालसे, बादकी घटनाओसे बिलकुल उचित सिद्ध हुए है) दुहरा दिया गया था। १ मार्चको डॉ० पोर्टरको एक पत्र लिखा गया था जिसमे उन्हे निश्चित सूचना दी गई थी कि, मेरी नम्र रायमे, प्लेग वस्तुत. फैल गया है।

क्या इससे अधिक निश्चित बात और कोई हो सकती थी? इसका शायद एक ही जवाब है। जो सूचना दी गई थी वह गैरसरकारी थी और एक साधारण व्यक्तिकी तरफसे थी। परन्तु क्या मुर्दाघरके कागजातमे उसका दारुण समर्थन उपलब्ध नही था जिनसे, हमें सरकारी तौरपर बताया गया है, यह सिद्ध होता था कि अस्वच्छ क्षेत्रमे मृत्यु-सख्या गैर-मामूली तौरपर बढ गई है? नही, साहब, सरकारी तौरपर जोरदार उपाय किये जानेके पहले तो उस दारुण शोकान्त घटनाके प्रत्यक्ष दर्शनकी जरूरत थी, जो पिछले महीनेकी १८, १९ और २० तारीखोको घटित हुई! जो साफ तौरपर सरकारी कर्त्तव्य था वह स्वयसेवकोके पूरा करनेके लिए छोड दिया गया था। अबतक रोगने अपना घातक पजा रोगियोपर जमा लिया था, इसलिए उन स्वयसेवकोको एक प्रकारका नरक-कुण्ड ही मॅझाना पडा।

मुझे अस्वच्छ क्षेत्रके उस सजीव, यद्यपि काल्पनिक, वर्णनकी याद दिलानेकी जरूरत नही, जो १९०२ के मध्यमे मेजर ओ'मियाराने किया था और जिसे १९०३ में डॉ० पोर्टरने दुहराया था। लोक-स्वास्थ्यके लिए उस समय भी खतरा इतना तात्कालिक समझा गया था कि नगर-परिषदको सलाह दी गई थी कि वह अधिग्रहणकी कार्रवाईके लिए उस समयतक प्रतीक्षा न करे जबतक जोहानिसबर्गको निर्वाचित परिषद प्राप्त नही हो जाती। १९०३ में

१. इस आवरकपत्रके साथ गांधीजीने डॉ० पोर्टरके नाम लिखे गये अपने ११, १५ तथा २० फरवरी और १८ मार्चके पत्रोंकी नकलें जोहानिसबर्गके अखबारोंको भेजी थीं। ये पत्र इस खण्डमें पहले तिथि-क्रमसे दिये गये हैं।

२. लोक-स्वास्थ्य समितिके अध्यक्ष।

३० अप्रैलके दिन परिषदको अधिग्रहणका अधिकार मिला था। उस समय उसे अधिकार था और उसका स्पष्ट कर्त्तव्य भी था कि वह, जिन लोगोंको बेदखल किया जाना था उनके बसानेके लिए कोई स्थान निश्चित करती। वह अपने कर्तव्यमें चूक गई। उसने ६ जून १९०३ को अधिग्रहणके इरादेकी सूचना दी, परन्तु वह अस्वच्छ क्षेत्रके लोगोंके बसानेके स्थानकी व्यवस्था फिर भी न कर सकी। २६ सितम्बर १९०३ को उसने कब्जा ले लिया। उस दिन वह अगर हरएक किरायेदारकी मालिक-मकान न बन जाती और दस्तूरी (कमीशन) पानेवाले अपने कर-संग्राहकोंको यह अधिकार न दे देती कि जितने भी किरायेदार अर्जी दें उन सबको वे मकान किरायेपर दे सकते हैं, और जैसा वह अब दबावमें आकर कर रही है, उसी तरहका व्यवहार उस इलाकेके साथ करती, तो क्या करदाताओंको यह २० हजार पौंडका जुर्माना देना पड़ता? क्या भारतीयोंकी ही सही, कीमती जानें जातीं? क्या स्मृतिके रूपमें बचे सिर्फ एक सदस्यको छोड़कर एक सारेके-सारे परिवारका सफाया हो जाता?

इतनेपर भी खास तौरसे बाहरी जिलोंमें, कष्टोंकी उग्रता भारतीयोंको ही महसूस कराई जा रही है। उनको मंडियोंमें काम करनेसे वंचित किया जाता है और अपनी रोजी कमानेसे रोका जाता है। अगर वहाँ प्लेग न हो तो भी उन्हें सूतक (क्वारंटीन) में रखा जाता है या, कमसे-कम, शहरोंसे बहुत दूर एकान्त शिविरोंमें भेज दिया जाता है। उनके सब कामोंको मैं उचित नहीं बताना चाहता। इसके विपरीत, मैं स्वीकार करता हूँ कि मेरे देश-वासियोंमें से गरीब तबकेके लोग देखरेखके बिना, सफाईके नियमोंका पालन नहीं करते। परन्तु मेरा यह निवेदन जरूर है कि वे लोक-स्वास्थ्यके रक्षक नहीं हैं। वे अपने कर्तव्य-पालनमें चूके हैं, तो व्यष्टिगत रूपमें, और उसी रूपमें उन्होंने कष्ट भी भोगे हैं। लोक-स्वास्थ्य समितिका काम है कि वह स्वास्थ्यके नियमोंका पालन कराये, न कि उन्हें बुरी तरहसे तोड़े, जैसा कि उसने पिछले २६ सितम्बरसे किया है।

मैंने आपकी शिष्टताका लाभ सत्य, लोक-कल्याण और अपने देशवासियोंके तिहरे हितोंके नामपर उठाया है।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९-४-१९०४

१२६. पत्र: ई० एफ० सी० लेनको

[जोहानिसबर्ग]
अप्रैल ८, १९०४

श्री अर्नेस्ट एफ० सी० लेन
गृह-कार्यालय (ऑफिसेज ऑफ दि इंटीरियर)
केप टाउन

प्रिय श्री लेन,

मैंने सघ-सरकारके *गज़टमें* विवाह-सम्बन्धी घोषणा देखी है, जिसके मुताबिक उन लोगोके लिए, जो अपना विवाह-सस्कार अपने मुस्लिम या यहूदी विवाह-अधिकारियो द्वारा कराना चाहते है, अपने इस विचारकी सूचना प्रकाशित करना लाजिमी है। मुझे पता नही कि यह घोषणा जान-बूझकर की गई है और सरकारकी भावी नीतिका पूर्व-सकेत करनेवाली है, अथवा यहूदियोके लिए जरूरी हुई है और उसमे जिस नेटाल विवाह-कानूनका उल्लेख किया गया है उसके अनुसार मुसलमानोका उल्लेख करना आवश्यक हो गया है। अगर पहली बात है, तो मैं जनरल स्मट्सका[1] ध्यान इस तथ्यकी ओर खीचना चाहता हूँ कि मैंने भारतीय समाजकी ओरसे जो-कुछ निवेदन किया है, सो यह है कि, भारतीय धार्मिक रीति-रिवाजोके अनुसार जो एक-पति-पत्नी विवाह हो चुके है उन्हे कानून-सम्मत करार दिया जाये और भविष्यमें भी ऐसे विवाह वैध माने जायें। विचाराधीन विवाह-सम्बन्धी घोषणासे विवाहके निर्णय, विधि इत्यादिके प्रकाशनका ऐसा दौर शुरू हो जायेगा, जो हिन्दू और मुस्लिम दोनोके रीति-रिवाजोके सर्वथा विरुद्ध है। और न ऐसे प्रकाशनकी आवश्यकता ही है, क्योकि उक्त दोनो मजहबोमे विवाह-सस्कार अत्यन्त उपचारपूर्वक किये जाते है, जिसके फलस्वरूप धोखाधड़ीवाले विवाह असम्भव-हो जाते हैं। मुझे लगता है कि जब आयोगकी सिफारिशोको अमली शक्ल देनेके लिए कानूनका मसविदा बनाया ही जा रहा है, तभी मुझे यह बात जनरल स्मट्सके ध्यानमें ला देनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त, श्री मेलरको श्री बर्टनने जो उत्तर दिया है उसमें मैंने देखा है कि रेलवे विभागमे काम करनेवाले गिरमिटिया भारतीयोने तीन पौंडी करकी किस्तोके रूपमें अपनी मजदूरीमे से कुछ रकम कटवा दी है। मेरा नम्र निवेदन है कि आयोगने इस करके बारेमें जो रुख जाहिर किया है उसका तथा अदायगीकी इस प्रणालीको जारी रखनेका मेल नही बैठता। जिन विषयोंपर आयोगको सिफारिशे करनी थी उनमे से एक मुख्य विषय ३ पौंडी कर था। निवेदन है कि कमसे-कम आयोगका विवरण प्राप्त होनेके समयतक सरकार यह कटौती रोके रहती तो अच्छा होता। और चूंकि आयोग इस करको खतम कर देनेके बारेमें ऐसी जोरदार सिफारिशे पेश कर चुका है, मै पूरी आशा करता हूँ कि सम्बन्धित अधिकारियोको अगर अभीतक हिदायतें नही दी गई है तो अब दे दी जायेंगी कि वे कटौतीपर आग्रह न करे, क्योकि मेरी यह धारणा है कि यदि सरकारने इस करको रद करनेका विधेयक पेश किया तो पिछला कर वसूल न किया जायेगा।

आपका सच्चा,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ५९५७) से।

१. जॉन क्रिश्चियन स्मट्स (१८७०–१९५०) लोकदलके एक संस्थापक, उपनिवेश सचिव और शिक्षा-मन्त्री (१९०६), प्रतिरक्षा, खान और गृहकार्य मन्त्री (१९१०) और प्रधान-मन्त्री (१९१९–२४ और १९३९)।

१२७. ट्रान्सवालमें प्लेग[1]

यद्यपि इस अभिशापने उपनिवेशका पूरी तरह पिण्ड नही छोडा है, फिर भी अब इसकी भयानकता हट गई है और सरकारी तौरपर विज्ञापित किया गया है कि चूँकि निमोनियावाला प्लेग अब गिल्टीवाले प्लेगमे बदल गया है, इसलिए प्लेगकी जो थोड़ीसी घटनाएँ हो सकती है उनके इतनी घातक होनेकी आशका नही है। इस कारण आतकित होनेकी तो जरूरत नही है; किन्तु फिर भी जोहानिसबर्गके बाहर ऐसे कदम उठाये जा रहे हैं जो दो बातोके आधार-पर ही उचित कहे जा सकते है — या तो प्लेग बढ रहा है या जो गैर-मामूली पाबन्दियाँ खास तौरपर एशियाइयोपर ही लागू की जा रही हैं उनके पीछे कोई छिपा हेतु है। स्पष्ट ही डॉ० पेक्सने जब यह कहा था कि दूरस्थ जिलोमें जो कदम उठाये जा रहे है उनका हेतु प्लेगको रोकनेकी अपेक्षा भारतीयोका उन्मूलन करना अधिक है, तब उन्होने सच ही कहा था। मिसालके तौरपर क्रूगर्संडॉर्पमे, जहाँ प्लेगकी एक भी घटना नही हुई और जहाँ पृथक बस्तीमें रहनेवाले भारतीयोंका स्वास्थ्य उत्तम था, अधिकारी अचानक इस निर्णयपर पहुँच गये कि उन्हे बस्तीके तमाम निवासियोको शहरसे दूर किसी स्थानपर हटा देना चाहिए। स्वभावत: उन गरीब लोगोने ऐसी मनमानी कार्रवाईपर रोष प्रकट किया। परन्तु यह देखते हुए कि भारतीयोको बहुत बड़ा द्वेष-भाव सहना पड़ रहा है और उनमे सबसे पहले प्लेग फैल जानेके कारण वह और भी बढ गया है, उस वक्त यह उचित समझा गया कि लोग अधिकारियोकी इच्छाके अनुसार चले। इसलिए श्री रिच क्रूगर्संडॉर्प गये और उन्होने लोगोको स्थिति समझाई। फलत अब थोड़ेसे दूकानदारोको छोड़कर वे सभी शहरसे दूर एक अस्थायी शिविरमे चले गये है। परन्तु बात इतनी ही नही है। बस्तीके अधिकाश निवासी, जिन्हे इस तरह हटाया गया है, फेरीवाले है। वे इस द्वेषके कारण बिलकुल बरबाद हो गये है और इस समय मित्रोके दानपर गुजर कर रहे है, क्योकि नगरपालिकाने लोगोको खिलाने-पिलानेका भार नही लिया है। व्यक्तिगत रूपमे लोग फेरीवालोंसे वास्ता न रखे तो इसमे किसीका जोर भले ही न हो, लेकिन नगरपालिकाकी उनके लिए मडीके दरवाजे बिलकुल बन्द करनेकी कार्रवाईके लिए क्या कहा जाये? वह कठोर, अनावश्यक और गैरकानूनी मालूम होती है। पीटर्सबर्गमे भी स्थिति बहुत-कुछ ऐसी है। परन्तु भारतीयोके विरुद्ध युद्ध छेड़नेवालोकी सूचीमे पॉचेफस्ट्रूम सबसे आगे है। जब दो या तीन भारतीय जोहानिसबर्गसे रेलगाड़ी द्वारा वहाँ पहुँचे तो उन्हे पॉचेफस्ट्रूमके अधिकारी पृथक बस्तीमें ले गये। फिर, बस्तीके लोगोके बीच उनकी उपस्थितिको बहाना बनाकर सारी बस्तीको सूतक (क्वारटीन) मे रखा गया, और इस प्रकार भारतीय व्यापारको पूरी तरह उखाड़ दिया गया। याद रहे कि काफिर लोगोको अछूता छोड़ दिया गया है, क्योकि

१. दादाभाई नौरोजीके नाम गाधीजीके जिस बिना तारीखके पत्रके साथ इस टिप्पणीकी अग्रिम प्रतिलिपि नत्थी की गई थी, उसकी पूरी प्रति उपलब्ध नहीं है। परन्तु दादाभाई नौरोजीने इसे भारत-मन्त्रीके पास भेजते हुए २५ अप्रैलको लिखा था: "मेरे संवाददाताने अपने पत्रमें लिखा है कि इसके साथ जो स्मृतिपत्र नत्थी किया जा रहा है उसमें ट्रान्सवालकी स्थितिका काफी अच्छा सक्षिप्त विवरण है। उसने यह भी लिखा है कि प्लेगका यह आक्रमण भारतीयोंपर और भी नियन्त्रण लगानेके लिए काममें लाया जायेगा। 'इसलिए बहुत आवश्यक है कि दोष सही लोगोंपर मढा जाये। यदि जोहानिसबर्गके अधिकारियोंने घोर उपेक्षा न की होती तो वहाँ कभी प्लेग फैलता ही नहीं।'" (सी० ओ० २९१, जिल्द ७५, इंडिया ऑफिस)

यूरोपीय गृहस्थोके लिए उनकी जरूरत है। जब सरकारसे अपील की गई तब उसने कहा कि इस मामलेमे कोई सहायता देनेकी सत्ता उसके पास नही है। हाइडेलबर्गमें नगरपालिकाने मसजिदमे नमाजकी मनाही करके बहुत ही खतरनाक रवैया इख्तियार किया था। खुशीकी बात यह है कि अब उसकी अक्ल ठिकाने आ गई है और उसने बड़ी कठिनाईके बाद अब मनाही वापस ले ली है। परन्तु इन उदाहरणोसे ट्रान्सवालकी भारतीय आबादीके कष्टोकी कुछ कल्पना हो सकती है। सिर्फ जोहानिसबर्ग और प्रिटोरियामे ही अधिकारी कुछ विवेकशील और विचारवान रहे है।

जोहानिसबर्गमे पृथक बस्तीकी सारी आबादी अब क्लिपस्प्रूटमें हटा दी गई है। वह जोहानिसबर्गसे १२ मीलसे भी ज्यादा दूर है। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे स्थान मोहक है, और तम्बुओमे रहनेसे लोगोको फायदा भी बहुत होगा। सारा शिविर श्री टॉमलिन्सनकी देखरेखमे है। श्री बर्जेस उनके सहायक है और लोगोको नगरपालिकाके खर्चसे भोजन दिया जाता है। जो भोजन-सामग्री दी जाती है उसकी मात्रा निम्नलिखित है। कुछ चीजोको छोड़कर इसे काफी ठीक समझा जा सकता है:

१ डबल रोटी या १ पौंड आटा
¾ पौंड चावल
½ पौंड मास या मछली, दालके साथ
३ पेन्सकी तरकारी दालके साथ (अन्नाहारियोके लिए)
१½ पेन्सकी तरकारी (मांसाहारियोके लिए)
१ डिब्बा दूध, प्रति बालिग, प्रति पखवारा
½ औंस चाय या काफी
३ औंस दाल
३ औंस घी या सरसोका तेल
१ औंस नमक रोज
१ औंस चीनी
१ औंस मसाला
½ औंस इमली
¼ औंस मिर्च
६ पौंड लकड़ी और कोयला
१ मोमबत्ती, फी तम्बू, रोज
१ पट्टी साबुन, फी तम्बू, रोज
२ डिब्बियाँ दियासलाई, फी तम्बू, फी सप्ताह

शिविरमे सोलह सौ भारतीय रह रहे है, जिनमे स्त्रियाँ और बच्चे भी शामिल है। एक मील दूर काफिरोका शिविर है। यह ध्यान देने लायक है कि जब लोगोको बस्तीसे हटाया गया उस समय वहाँ नियमोके विरुद्ध लगभग डेढ़ हजार काफिर पाये गये और वे सब नगरपालिकाके किरायेदार थे। इस तरह लोगोको अचानक हटानेसे हजारो पौंडका नुकसान हुआ है। इसमे अतिशयोक्ति नही है, क्योकि सभी लोग रोजाना मजदूरी कमानेवाले श्रमिक हरगिज नही है। खासी हैसियतके लगभग बीस दूकानदार है और धोबियोकी दूकानें भी है, जिनके ग्राहकोकी संख्या बहुत बड़ी है। प्लेग समितिने प्लेग फैलनेके समय सात सौ पौंड धुलाईके कपड़े बस्तीसे बाहर निकाल कर साफ — छूत-रहित — किये थे और ग्राहकोको पहुँचाये थे। दूकान

दारोके लिए उनका हटाया जाना और उनका व्यवसाय बन्द हो जाना एक तरहसे बरबादी ही है, क्योंकि जब शिविरका सूतक (क्वारटीन) खतम हो जायेगा तब उनके जानेके लिए कोई स्थान नही होगा, और इसमे शंका है कि स्थायी स्थानके मुकर्रर होनेतक अधिकारी उन्हे नगरकी सीमाके भीतर दूकाने खोलनेकी इजाजत देगे। इसके सिवा उनका सारा माल नगरपालिकाने अपने गोदाममे रख दिया है और यद्यपि गोदाम बहुत अच्छा है फिर भी जिन्हे व्यापारका कुछ भी ज्ञान है वे तुरन्त समझ जायेगे कि जो चीजे हवा लगाये बिना बहुत समय-तक एक जगह बिखरी रखी जायेगी उन्हे कितनी हानि पहुँचेगी। समाज इन सारे कष्टोको स्थितप्रज्ञ बनकर सह रहा है और आशा इतनी ही है कि जब प्लेग बिलकुल मिट जायेगा तब उनका धीरज उनको लाभ पहुँचायेगा।

भारतीयोमे प्लेग केवल नगर-परिषदकी गफलतके कारण फैला। यह इस बातसे प्रमाणित है कि दूरस्थ जिलोमे भारतीय लगभग अछूते रहे हैं। प्रिटोरियामे जो थोडे लोग बीमार हुए वे यूरोपीयो और वतनियोमे हुए। बेनोनीमे दो वतनियोपर रोगका आक्रमण हुआ है। जर्मिस्टनमे भी वतनियोपर ही प्लेगका हमला हुआ है, और इन सब स्थानोमे भारतीय अपने ही मकानो-दूकानोमे रहते रहे है। जबसे जोहानिसबर्गमे नगरपालिका एक-एक किरायेदारकी सीधी मालिक-मकान बनी, उसके बादसे ही अत्यधिक भीड़ और गन्दगीकी खराबी पैदा हुई, जिसके साथ यह भयकर अभिशाप आया।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९–४–१९०४

१२८. तिब्बतको प्रेषित मिशन

तिब्बत भेजे गये ब्रिटिश मिशनका तिब्बतियोसे सघर्ष हो गया है। तिब्बतियोकी हानिका सरकारी अन्दाजा यह है कि ३०० तिब्बती मारे गये और २०० बन्दी बनाये गये। रायटरने तार द्वारा उस दृढता और साहसकी शानदार तफसील भेजी है, जिसके साथ जोडीमे कमजोर और हथियारोके गरीब तिब्बती नवीनतम शस्त्रोसे सज्जित अनुशासनबद्ध ब्रिटिश सेनासे लड़े। पीछे हटनेमे भी शत्रुका ढग बडा ही गौरवास्पद रहा। यहाँतक कि, जिन लोगोको उसे देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ उनके मनपर उसके पीछे हटनेके ढगकी स्थायी छाप भी मालूम होती है। ऐसे धीर और ऐसे वीर लोगोके साथ सहानुभूति न हो, यह असम्भव है। मिशनके राजनीतिक स्वरूप अथवा उसकी आवश्यकताके बारेमे हमे अभी कुछ नही कहना है। यह उचित हो सकता है और नही भी। परन्तु यह सोचकर बहुत बडा अफसोस होता है कि ऐसे जीवट-वाले राष्ट्रको ब्रिटिश सेनाके साथ युद्ध करना पडा है। हम इतनी ही आशा रख सकते है कि ब्रिटिश नीतिके निर्माताओने मिशन भेजनेकी जरूरतके बारेमे पूरी तरह अपना इतमीनान कर लिया होगा और जब सब मामला खतम हो जायेगा तब वे जनताके सामने अपनी कार्रवाईको ठीक साबित कर सकेंगे। रायटरने बताया है कि शायद सिख सेनाके महान साहसने मिशनको विपत्तिसे बचा लिया। यह खुशखबरी है, यद्यपि इससे आश्चर्य बिलकुल नही होता, क्योंकि यह भारतीय सेनाकी परम्पराओके सर्वथा अनुरूप है। परन्तु इस समाचारसे अनेक विचार उत्पन्न होते हैं। साम्राज्यके अंग होनेके नाते उपनिवेश सिखोकी वीरताके परिणामोके भागी बननेके लिए तैयार हो जायेगे और अगर यह पता चले कि तिब्बतके विशाल पठारोमे सोना

भरा है तो वे उस देशकी तरफ बेतहाशा दौड़ पड़ेंगे। परन्तु यह दुःखकी बात है कि वे अपने उपनिवेशोंमें आकर बसनेवाले सिख सिपाहियों या उनके देशवासियोंका स्वागत करनेके लिए बिलकुल तैयार नही है। औपनिवेशिक नेताओंको यह खयाल होना वांछनीय है कि उनका यह असगत रवैया कुछ ऐसा है जिसमे सुधार होना चाहिए। सब लेते ही रहना और बदलेमे कुछ देना नही, यह लेनेवालेके लिए बहुत सन्तोषजनक हो सकता है; परन्तु इसे न्यायपूर्ण अथवा उचित तो नही माना जा सकता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९-४-१९०४

१२९. पत्र: "रैंड डेली मेल" को

जोहानिसबर्ग
अप्रैल १४, १९०४

सेवामे
सम्पादक
रैंड डेली मेल

महोदय,

प्लेग फैलनेके बारेमे मैंने जो वक्तव्य दिये थे उनका खण्डन करते हुए लोक-स्वास्थ्य समितिने अपने प्रतिवेदनमें[1] कुछ ऐसी बाते कही है, जिनके कारण थोड़ा-सा स्पष्टीकरण करनेके लिए आपसे स्थान माँगनेकी जरूरत है।

ध्यान देनेकी बात है, अब इससे इनकार नही किया जाता कि मैंने प्लेग फैलनेके बारेमें १ मार्चको सूचना दे दी थी।

उक्त रिपोर्टमे मेरे इस बयानका खण्डन करनेकी कोशिश की गई है कि श्मशानके कागजातसे १ मार्चको दी गई मेरी रायका भीषण रूपमे समर्थन हुआ है। जुलाई १९०३ से इस वर्षके फरवरी मासतक की अवधिके आँकडे पेश किये गये है, जिनसे प्रकट होता है कि किसी भी अकेले मासमे निमोनियासे अधिकतम मृत्यु-संख्या सात थी; और उसी कारणसे औसत मृत्यु-सख्या प्रतिमास ४.७५ थी।

पिछले मार्च मासके पहले १७ दिनोमे इसी कारणसे चौदह मृत्युएँ हुई थी, अर्थात् मौतकी दर २५.३५ प्रतिमास थी। दूसरे शब्दोमे, मेरे पत्रकी तारीखके बादके पहले पखवारेमे मृत्युसंख्या पिछले आठ मासोकी सबसे अधिक मृत्युसख्याकी साढ़े तीन गुनी थी, और उसी कालकी औसत मासिक मृत्युसख्याकी छः गुनी थी।

इसलिए मैं फिर पूछनेका साहस करता हूँ कि पिछले १ मार्चको प्रकट किये गये मतका इससे भीषण रूपमे समर्थन होता है या नही? यह तो ख्वामख्वाह मान लिया गया है कि मैंने जो मृत्यु-सख्या बताई है उसका १ मार्चसे पहलेके कालसे कोई सम्बन्ध है। फरवरीमें

१. यह जोहानिसबर्गकी नगर-परिषदको ११ अप्रैलको दिया गया था और २० अप्रैलको उसकी विशेष बैठककी कार्यवाहीमें शामिल किया गया था। (कालोनियल ऑफिस रेकर्ड्स: साउथ आफ्रिका, जनरल, १९०४)।

डॉ० पोर्टरको लिखे गये पत्रोमें तो केवल आनेवाली विपत्तिकी चेतावनी दी गई थी, परन्तु एक बार भी यह कभी नही कहा गया था कि प्लेग वास्तवमे फैल गया है।

श्री मैककैनने[1] सन्दिग्ध मृत्युओका ब्योरा देनेकी मेरी असमर्थताका जिक्र करते हुए एक ही मुलाकातका[2] हवाला दिया है। बात यो हुई थी। मेरे सामने बाडोके नाम और नम्बर नही थे। मैंने उस मुशीको फोन किया जिसे इस मामलेमे कुछ जानकारी थी, और उसी समय वही श्री मैककैनको कमसे-कम तीन आदमियोके नाम बताये गये जो मेरी रायमे प्लेगसे मरे थे। बाडोके नम्बर भी बताये गये थे।

मैंने कभी नही कहा है कि काफिरोको भारतीय बस्तीमे पहले-पहल उस समय लाया गया, जब कि बस्तीपर परिषदका अधिकार हो गया था; और मैं मुक्त रूपसे स्वीकार करता हूँ कि मेरे कुछ देशवासियोंने काफिरोको किरायेदारके रूपमे रखा था। परन्तु मैंने कहा है, और उसे दुहरानेका साहस करता हूँ, कि २६ सितम्बरके बाद उनसे बस्तीको पाट दिया गया, और मैं यह सिद्ध कर सकता हूँ कि कई बाडोमे, जिनमे उस तारीखसे पहले काफिर कभी नही रहे थे, उस तारीखके बाद वे भर दिये गये। यदि उस तारीखको जो अधिक भीड़ थी उसे परिषद दूर नही कर सकती थी तो, मेरी रायमे, उसमे कुछ भी बढती करना अक्षम्य था। और यह बात कि बस्तीमे भारतीय और काफिर दोनोकी संख्यामे वृद्धि हुई, साबित की जा सकती है। बस्तीमे ९६ बाडे थे। मान लीजिये कि छ बाड़े खाली थे। उन्हें घटा दिया जाये तो २० मार्च १९०४ को बस्तीमे प्रति बाड़े ३५ निवासीसे ऊपर थे। और यदि इनमें आप कमसे-कम १,००० और जोड़ दें (यह मेरे खयालसे उन लोगोकी सख्या है जो मार्च मासमे बस्ती छोड़ गये थे), तो प्रति वाड़ा ४५ हो जाते है।

मेरी सबसे बडी शिकायत यह नही है कि लोक-स्वास्थ्य समिति प्लेग फैलनेकी घोषणा करनेमे चूक गई, परन्तु यह है कि वह या नगर-परिषद आगेकी बात सोच कर उस विपत्तिका उपाय करनेका अपना फर्ज अदा न कर सकी, जिसकी चेतावनी उसे १९०२ मे मिल चुकी थी, १९०३ मे दुहराई गई थी और पिछली फरवरीमे और जोरके साथ दोहराई गई थी, यद्यपि कमसे-कम पिछले २६ सितम्बरको वह कारगर तरीकेपर अपना कर्तव्य पालन करनेकी स्थितिमे थी।

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३–४–१९०४

१. स्वास्थ्य-निरीक्षक।

२. यह मुलाकात गांधीजी द्वारा १ मार्चको डॉ० पोर्टरको पत्र लिखनेके शीघ्र बाद हुई थी।

१३०. प्लेग

यद्यपि प्लेगने जोहानिसबर्गका पिण्ड लगभग छोड़ दिया है, फिर भी भारतीयोके विरुद्ध पाबन्दियाँ अभी पूरी सख्तीसे लगी हुई है। इस कार्रवाईमें पॉचेफस्ट्रूम अगुआ मालूम होता है, जैसा कि नीचे लिखी बातोसे स्पष्ट होगा:

१. उन एशियाइयो और रगदार लोगोको, जो प्लेग-पीड़ित इलाकोसे पॉचेफस्ट्रूम पहुँचें, दोमें से एक बात पसन्द कर लेनेको कहा जाये — या तो वे छूत-निवारणके लिए दस दिनोतक अलग रहे, या जहाँसे आये है वहाँ लौट जाये।

२. एशियाइयो और भारतीयोको शहर-खाससे हटा दिया जाये।

३. पुलिस अधिकारियोसे अनुरोध किया जाये कि वे एशियाइयो और वतनियोंको मुख्य सड़कोसे नगरमें घुसनेसे रोके।

४. पॉचेफस्ट्रूम और जोहानिसबर्गके बीचके स्टेशनों और जोहानिसबर्गके उत्तरके स्टेशनोसे सभी प्रकारके फलोका आना बन्द कर दिया जाये।

५ लोक-स्वास्थ्य उपनियमोकी धारा ७ छः महीनेके लिए लागू कर दी जाये।

६ अपने मालिकोके साथ आनेवाले अथवा मवेशियोकी देखभाल करनेवाले वतनियोको इधरसे उधर गुजरने दिया जाये, बशर्ते कि उनके पास अपने मामूली मासिक पास मौजूद हों, जिनसे यह साबित हो कि वे इसी जिलेके निवासी है।

इस प्रकार भारतीयोकी गति-विधि वतनियोकी अपेक्षा कही अधिक कठोरतासे नियन्त्रित है, हालाँकि जोहानिसबर्गसे बाहरके जिलोमें अन्य जातियोंकी अपेक्षा भारतीयोंमें प्लेगकी प्रमुखता हरगिज ज्यादा नही रही है। सच तो यह है कि भारतीय प्लेगसे अधिक मुक्त रहे प्रतीत होते है। स्वय जोहानिसबर्गके बारेमें भी, हमने पिछले सप्ताह जो पत्र-व्यवहार छापा था उससे बिलकुल साफ जाहिर होता है कि प्लेग फैलनेका सारा दोष नगर-परिषदका है। २६ सितम्बरके बाद — जिस दिन नगर-परिषद मालिकके रूपमे वहाँ आई — वहाँ बहुत ज्यादा भीड-भाड हुई। यदि यह अत्यधिक भीड-भाड़ रोक दी जाती तो शायद उपनिवेशभर में कही भी बिलकुल प्लेग न हुआ होता। बस्तीमे रहनेवाले भारतीयोने इस लज्जाजनक स्थितिपर आपत्ति की थी। उन्हे हालातसे मजबूर होकर ही बस्तीमे रहना पडा था। वे नगर-परिषदके किरायेदार नही बनना चाहते थे और उन्होने कानूनके अनुसार बस्तीके बदलेमें दूसरे स्थानकी बार-बार माँग की थी। इसलिए यह बिलकुल स्पष्ट है कि जोहानिसबर्गमे जो भयंकर प्लेग फैला, वह ऐसी परिस्थितियोमें फैला जो भारतीयोके काबूसे बिलकुल बाहर थी। इन तथ्योकी शृंखलासे यह स्वाभाविक निष्कर्ष निकलता है कि भारतीयोपर जो विशेष प्रतिबन्ध लगाये गये है वे सर्वथा अनुचित और अनावश्यक है। केन्द्रीय सरकार लाचारीकी स्थिति बता सकती है और कह सकती है कि जबतक स्थानीय अधिकारियोकी कार्रवाई प्लेगके नियमोके विरुद्ध नही है तबतक वह उसमें दखल नही दे सकती। परन्तु हमारी शिकायत तो स्वयं नियमोके विरुद्ध है, खास तौरपर जब कि उन नियमोके अनुसार दी गई सत्ताका परिषद और स्थानीय निकाय दुरुपयोग करते है और उनको व्यापारिक ईर्ष्याकी तृप्तिका साधन बनाते है। हमने अनेक बार स्वीकार किया है कि प्लेगके आतकके दिनोमें कुछ कष्ट अनिवार्य होते है और इस अभिशापको दूर करनेके लिए स्थानीय अधिकारियोको पर्याप्त सत्ता देनी चाहिए, परन्तु जब पॉचेफस्ट्रूमकी भाँति स्थानीय अधिकारी सारी मर्यादाओका

उल्लंघन करके ब्रिटिश भारतीयोको अनावश्यक पाबन्दियोका शिकार बनाये, तब यह कहना पड़ता है कि "अब बस करो"। ब्रिटिश भारतीयोकी स्थिति अनिश्चित तो है ही, प्लेगके फैल जानेके कारण और भी अधिक कठिन हो गई है। और, हमारा खयाल है कि लॉर्ड मिलनरका, जो उनकी अपनी ही उपमाके अनुसार "पहरेके बुर्जपर बैठे है" और जिन्हे अपनी आँखोके आगे होनेवाली सब बातोको एक विशाल दृष्टिसे देखनेका अवसर प्राप्त है, साफ फर्ज है कि वे निर्दोष भारतीयोको प्लेगकी सावधानियोके बहाने और अधिक सताये जानेसे बचाये।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६–४–१९०४

१३१. गल्पका महत्त्व

ट्रान्सवाल उपनिवेशके स्वास्थ्य-अधिकारी डॉ० टर्नरने प्लेगके विषयमे अखबारोके नाम प्रेषित अपने पत्रमे कहा है कि बीमारीको रोकने या उसका सफाया करनेके लिए सीधी-सादी और साधारण पाबन्दियोसे अधिक और कुछ करनेकी जरूरत नही है। उन्होने अपनी यह राय दी है कि जो असाधारण कदम उठाये जा रहे है वे केवल लोगोकी भावनाको ही तृप्ति देते है। इस कथनकी पूरी-पूरी परख पिछले सप्ताह जोहानिसबर्गकी भारतीय बस्तीमे लगाई गई आगसे हो गई। असलमे वह एक नाटकीय प्रदर्शन था, जिसका उद्देश्य लोगोकी कल्पनाको उत्तेजित करना था। हाँ, मकान निस्सन्देह जलाकर खाक कर दिये जाने चाहिए थे; किन्तु यह सोचना तथ्योके बिलकुल विपरीत है कि, चूँकि वे जला दिये गये है, इसलिए छूतका एक-मात्र उद्गम नष्ट हो गया है। और जैसा हमारे संवाददाताने बताया है कि, बस्तीके चारो ओरके घेरे और उसके निवासियोकी हलचलोपर नियन्त्रणकी बात एक निरी गल्प है, जिसका पोषण किया जा रहा है — सफाईकी जरूरते पूरी करनेके लिए नही, बल्कि जनताकी भावनाको सन्तुष्ट करनेके लिए। बस्तीके बाहरके झोंपड़े इस बुरी तरह कोसे गये स्थानके बुरेसे-बुरे हिस्सोसे कही ज्यादा खराब है। प्लेगकी अत्यन्त घातक घटनाएँ जोहानिसबर्गके बर्गसंडॉर्पमे स्टेशन रोडपर हुई है। दूसरी घटनाएँ भी जोहानिसबर्गके अस्वच्छ क्षेत्रके भीतर, परन्तु बस्तीके बाहर हुई है। उन स्थानोको छूत-रहित बनानेके सिवा कुछ नही किया गया। और शायद करना जरूरी भी नही था। वहाँ रहनेवाले लोगोकी हलचलोमे हस्तक्षेप नही किया गया। फिर भी, डॉ० पेक्स चाहे कितना ही तर्क करते और कितनी ही ठडी दलीले देते, उनसे जनताका मन इतना शान्त न होता जितना बस्तीको इस तरह जला देने और उसमे रहनेवाले लोगोको अलग रख देनेसे हुआ। किन्तु अब चूँकि ये दोनो कार्रवाइयाँ की जा चुकी है, हम विश्वास रखे कि, कमसे-कम, जहाँतक जोहानिसबर्गका सम्बन्ध है, ब्रिटिश भारतीय आबादी उचित रूपसे स्वतन्त्र छोड़ दी जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १६–४–१९०४

१३२. ऑरेंज रिवर उपनिवेश और प्लेग

यह उपनिवेश अगर एशियाइयोके प्रति घृणासे लबालब नही, तो कुछ नही है। २५ मार्चके *गवर्नमेंट गज़टमें* ये दो विनियम छपे है.

(१) इन विनियमोंकी तारीखसे और उसके बाद किसी एशियाईके लिए उस वक्ततक ट्रान्सवालसे आकर इस उपनिवेशमें प्रवेश करना जायज नहीं होगा, जबतक ये विनियम लागू रहेंगे। कोई एशियाई इन विनियमोका उल्लंघन करेगा तो, अपराध साबित होनेपर, उसपर जुर्माना किया जा सकेगा, जो ५ पौंडसे अधिक नहीं होगा; या, जुर्माना अदा न करनेपर उसे कैदकी सजा दी जा सकेगी, जो एक माससे अधिक नहीं होगी; और इस प्रकार दण्डित व्यक्ति उक्त जुर्माना देने या अपनी कैद पूरी करनेपर तुरन्त इस उपनिवेशकी सीमाओके परे निर्वासित कर दिया जायेगा।

(२) प्रत्येक रंगदार व्यक्तिकी, जो रेलसे या और किसी तरह इस उपनिवेशमें प्रवेश करेगा, परीक्षा ली जायेगी; और अगर किसी बाकायदा योग्यताप्राप्त डॉक्टरकी रायमें उस पुरुष या स्त्रीमें प्लेगके कोई वास्तविक या सन्दिग्ध लक्षण प्रकट होंगे अथवा वह प्लेगके वास्तविक अथवा सन्दिग्ध रोगीके सम्पर्कमें रहा होगा, तो उसे रोक लिया जायेगा और तबतक एक शिविरमें अलग रखा जायेगा जबतक स्वास्थ्य-अधिकारी यह राय नहीं देगा कि उसे सफर करने देनेमें खतरा नहीं है।

इस प्रकार, एशियाईके अलावा और कोई भी रगदार व्यक्ति तो प्रतिबन्धोके अधीन उपनिवेशमे प्रवेश कर सकता है, परन्तु एशियाई, भले ही वह कोई भी हो, जबतक प्लेगका आतक मौजूद है तबतक ऑरेज रिवर उपनिवेशकी पवित्र भूमिपर पैर नही रख सकेगा; अगर रखेगा तो उसे जुर्मानेकी सजा दी जायेगी। और जुर्माना अदा कर देने या सजा भुगत लेनेके बाद भी उसे "तुरन्त इस उपनिवेशकी सीमाके परे निर्वासित कर दिया जायेगा"। हम लड़ाईका मौका याद रखेंगे और उसे बराबर याद किये बिना नही रह सकते। उस समय क्वीन्सटाउनमें सेनाके साथ जो लोग भारतसे आये थे उनमेंसे एकको दरअसल प्लेग हो गया था। इससे आम लोगोमे थोडी बेचैनी फैली; मगर हमे मालूम है कि ब्रिटिश भारतीय सईसो, भिश्तियो और डोलीवाहकोके प्रवेशपर न तो ऑरेज रिवर उपनिवेश कोई रोक लगानेको तैयार था और न दक्षिण आफ्रिकाका कोई अन्य भाग ही। सच तो यह है कि प्लेग फैल जानेपर भी, जितनी जल्दी सवारीका बन्दोबस्त हो सका, इन अनुचरोंको दक्षिण आफ्रिकाके सब हिस्सोमें भेज दिया गया। लेकिन अब समय बदल गया है। अब उपनिवेशियोकी जरूरतोके लिए भारतीयोकी आवश्यकता नही रही और इसलिए उन्हे अनिश्चित कालतक बाहर रखा जा सकता है। वे ऑरेज रिवर उपनिवेशमे आना चाहते है या नही, यह बहुत छोटी बात है और सत्ताधारियोका इससे कोई सरोकार नही।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६-४-१९०४

१३३. रंगके खिलाफ लड़ाई

मार्च ३१ के ऑरेंज रिवर उपनिवेशके *गज़टमें* रजिस्टर्ड गाड़ियोके लिए सयुक्त स्वास्थ्य-निकायके ये विनियम छपे है:

> **कोई गाड़ीका मालिक जो अपनी गाड़ीको केवल रंगदार यात्रियोंको ही ले जानेके लिए इस्तेमाल करना चाहता है, टाउन क्लार्कसे एक तख्ती प्राप्त कर सकता है जिसपर 'रंगदार यात्रियोंके लिए' शब्द साफ तौरपर छपे होंगे और जो बाहरकी तरफ प्रमुख रूपमें गाड़ीके पीछे या बाईं और लगाई जायेगी।**
>
> **किसी रंगदार व्यक्तिको सिवा उन रजिस्टर्ड गाड़ियोंके, जो इसी कामके लिए अलग की गई हों और जिनपर पहचानके लिए पहले बतायी हुई रंगीन तख्ती हो, किसी रजिस्टर्ड गाड़ीमें सफर नहीं करने दिया जायेगा।**

हमने रगदार लोगोके विरुद्ध ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी सरकारके जिद-भरे विरोधी रवैयेकी इतनी बार चर्चा की है कि हम अपनी बातपर जोर देनेके लिए उपर्युक्त अशोंकी ओर अपने पाठकोका केवल ध्यान आकर्षित कर देते है। अधिक टिप्पणीकी जरूरत नही है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६-४-१९०४

१३४. शिविरका जीवन[1]

अप्रैल २० [१९०४]

प्लेगका आजतकका लेखा-जोखा यह है:

प्लेगके प्रमाणित रोगी — १५ गोरे, ४ रंगदार (जिनमे मलायी भी शामिल है); ५४ एशियाई, ३५ वतनी। इनमेसे मृत्युएँ — ७ गोरे; ५१ एशियाई; १४ वतनी।

सन्दिग्धोमे ३ गोरे, १ एशियाई और २५ वतनी है। ये आँकड़े जोहानिसबर्गके है। जर्मिस्टनमे प्लेगके प्रमाणित रोगी ५ वतनी और १ एशियाई हुए है। सन्दिग्धोमे एशियाई कोई नही और वतनी १३ है। इनमें से एकमात्र बीमार एशियाई मर गया है। बेनोनीमे प्रमाणित प्लेगका रोगी केवल एक वतनी हुआ है और वह मर गया है। क्रूगर्सडॉर्पमे एक वतनी प्लेगका मरीज था, और ५ सन्दिग्ध। सन्दिग्ध भी वतनी थे। उनमे से तीन प्लेगके रोगी सिद्ध नही हुए। इस प्रकार, देखा जायेगा कि, एशियाई रोगी एक तरहसे वे ही थे जो पहले दौरमें बीमार हुए। वृद्धि ज्यादातर वतनी बीमारोमे और थोडी-सी गोरे बीमारोमें भी हुई। जोहानिसबर्गसे बाहरके जिलोमे, क्रूगर्सडॉर्पमें और बेनोनीमे कोई एशियाई बीमार नही हुआ। जर्मिस्टनमे एक हुआ। इस प्रकार, लिखते समयतक पहले दिया हुआ बयान, कि यह बीमारी एशियाईको ही खास तौरपर नही होती, अब भी सही है। किन्तु क्लिपस्प्रूटके शिविरमें अभीतक अत्यन्त

१. यह "हमारे जोहानिसबर्ग सवाददातासे प्राप्त" रूपमें प्रकाशित हुआ था।

झुझलाहट पैदा करनेवाले नियम कायम हैं। शिविर इस महीनेकी ११ तारीखसे खुला घोषित किया गया है। शिविरके उद्घाटनके वादसे किसीको भी प्लेगकी वीमारी नही हुई। कहने लायक कोई दूसरी बीमारी भी नही हुई। फिर भी शिविर-निवासियोंकी गतिविधि बड़े असुविधाजनक ढंगसे नियंत्रित है। वे परवानोके विना शिविर छोड नही सकते। और परवाने रोजाना नये लेने पड़ते हैं। और ये परवाने तभी जारी किये जाते हैं जब शिविर-निवासी अपने पजीकरणकी सनदें पेश कर सकें, जो केवल यह सावित करनेवाली रसीदें होती हैं कि उन्होने ३ पौड चुका दिये हैं। शिविर और जोहानिसवर्गके वीच रेलगाडी आती-जाती है। सुवहकी गाड़ी ६ वजे चलती है और शामकी गाड़ी जोहानिसवर्गसे शिविरके लिए ६-१५ वजे रवाना होती है। इसके लिए रविवारको छोड़कर सप्ताहभरके लिए ३ शिलिंगकी रकम वसूल की जाती है। सिर्फ तीसरे दर्जेके डिव्वे रखे जाते है और शामकी गाड़ीमें रोशनी नही होती। जो लोग जोहानिसवर्गके अलावा ट्रान्सवालके और किसी शहरको जाना चाहें, उन्हे शिविर-व्यवस्थापकको इसकी सूचना और जिस मकानमें जाकर रहना है उसका विवरण देना पड़ता है। तव स्वास्थ्य-अधिकारी उस नगरके अधिकारीसे पत्र-व्यवहार करता है, जिसका नाम प्रार्थी वताता है; और यदि मकान रहने लायक और साफ-सुथरा प्रमाणित कर दिया जाता है तो शिविरसे विलकुल चले जानेकी इजाजत दे दी जाती है। जो जोहानिसवर्गमे रहना चाहे उन्हे भी इसी ढर्रेका पालन करना होता है, और यदि वताया हुआ मकान स्वास्थ्य-अधिकारी द्वारा मजूर कर लिया जाता है तो जानेका पास दे दिया जाता है। अगर किसी आदमीके पास जानेका पास न हो तो उसे शामके साढे आठ वजे या इससे पहले, शिविरमें हाजिरी देनी पड़ती है। ऐसा न करनेपर पहले अपराधके लिए उसे जुर्मानेका दण्ड दिया जा सकता है, जो १५ पौंडसे अधिक नहीं होगा; जुर्माना अदा न करनेपर तीन महीनेका कारावास दिया जा सकता है। दुवारा जुर्म करनेवालेपर ५० पौडतक जुर्मानेकी या, जुर्माना न देनेपर, छ मास-तक सख्त कैदकी सजा दी जा सकती है। स्त्रियों और वच्चोंके सिवा और लोगोंको गत सोमवारसे खूराक देना बन्द कर दिया गया है। कामके नामपर उन्हे खुदाई या पत्थर फोड़नेमें लगाया जाता है, जिसकी मजदूरी २ शिलिंग रोज होती है और यदि मजदूर प्रथम श्रेणीका साबित हो तो वह वढ़ाकर ३ शिलिंग कर दी जाती है। लौटनेपर शिविर-निवासियोंकी जाँच की जाती है और तलाशी भी ली जाती है। यह थोडा या बहुत जेलका-सा जीवन है, जिसके योग्य ये लोग नही हैं, क्योकि अधिकारियोने स्वीकार किया है कि इनका व्यवहार उत्तम रहा है। यदि शिविर वास्तवमे आने-जानेके प्रतिवन्धोसे मुक्त है तो कोई कारण दिखाई नही देता कि शिविरमें रहनेवाले एशियाइयो और जोहानिसवर्गमे रहनेवाले एशियाइयोके वीच इतना तीव्र भेद किया जाये। अव तो शिविरका केवल एक ही काम होना चाहिए कि, जिन लोगोको कही रहनेको जगह न मिले उन्हे आश्रय-स्थान दिया जाये। यह समझना कठिन है कि उन्हे अपने रहनेकी जगहे सूचित करने और अर्जियाँ देनेपर ऊपर वताये हुए तमाम कष्टप्रद क्रमसे निकलनेको क्यों मजबूर किया जाये। अवश्य ही, यदि अधिकारी निवास-स्थानोकी पड़ताल करना चाहे तो लोगोको उपर्युक्त पावन्दियोका शिकार वनाये विना भी कर सकते है। यह एक अपराध है, और नही है तो होना चाहिए, कि कोई व्यक्ति ऐसे निवास-स्थानोमें रहने लगे जो सफाईके नियमोकी जरूरत पूरी न करते हो। और रैड प्लेग-समितिको, जो गन्दगीकी हमेशा खोज करती रहती है, इस लायक होना चाहिए कि जो भारतीय गन्दे घरोमें रहने लगे हो उनका पता लगा ले। परन्तु उसका प्रजाजनोकी स्वतन्त्रतापर ऐसे प्रतिवन्ध लगाना, जो आखिरकार तो नाजायज ही है, ठीक नही है। शिविरके वाहर भी ब्रिटिश भारतीयोंकी

स्थिति बहुत कठिन है। विटवाटर्सरैंड जिलेके बाहर कोई एशियाई तबतक सफर नही कर सकता जबतक उसके पास स्वास्थ्यका प्रमाणपत्र न हो। कई स्थानोमें एशियाइयोके लिए मंडीका उपयोग वर्जित है। पॉचेफस्ट्रूम तो ट्रान्सवालसे किसी भारतीयको अपने यहाँ आने ही नही देता। परिणाम यह है कि रेलवे-अधिकारी टिकट देनेसे ही इनकार कर देते हैं। १,६०० आदमियोके बस्तीसे निकाल दिये जानेके कारण भारतीय व्यापारी और दूकानदार भारी कष्ट पा रहे है, क्योकि उनमें से बहुतसे इन व्यापारियो और दूकानदारोके कर्जदार हैं और अब वे अपना ऋण चुका नही सकते। जोहानिसबर्ग नगर-परिषदकी बैठक आज यह विचार करनेको हुई थी कि भारतीयो और दूसरे एशियाइयोपर नियन्त्रण रखनेके लिए और अधिकार माँगना और खास तौरपर काफिर बस्तियोकी तरह ही भारतीय बस्तियोपर भी पूरा नियन्त्रण रखना वांछनीय होगा या नही। स्पष्ट ही इसका उद्देश्य अस्वच्छ क्षेत्र-अधिग्रहण अध्यादेश (इनसेनिटरी एरिया एक्सप्रोप्रिएशन ऑर्डिनेन्स) के अनुसार अस्वच्छ क्षेत्रके भीतर, या उसके ठीक पड़ोसमे, उपयुक्त स्थान तलाश कर देनेकी जिम्मेदारीसे बच निकलना है। इस सारी भारतीय-विरोधी प्रवृत्तिका क्या परिणाम होगा, यह अभीसे कोई नही कह सकता। समय ही बतायेगा कि अन्तमें न्यायकी विजय होती है या नही।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३-४-१९०४

१३५. प्लेग

यद्यपि ट्रान्सवालमे प्लेग खतम हो रहा है, क्रूगर्सडॉर्पके एक खान-क्षेत्रमें कुछ बीमार मिले है। इससे प्रकट होता है कि अभीतक बहुत सचेत रहनेकी जरूरत बनी है। और यदि प्लेगकी जैसी दुःखद घटनाओसे जरा भी सन्तोष ग्रहण करना उचित हो तो, ब्रिटिश भारतीयोंके सौभाग्यसे, क्रूगर्सडॉर्पकी घटनासे सिद्ध होता है कि प्लेग व्यक्तियोंका लिहाज नही करता और ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंको जिन असाधारण पाबन्दियोंका शिकार बनाया गया है वे गैरजरूरी हैं; क्योंकि जोहानिसबर्ग-खाससे बाहरकी घटनाएँ अधिकतर बतनियोमे हुई हैं और उनमे यूरोपीय लोग भी शामिल हैं। इसलिए यह नही कहा जा सकता कि यह रोग खास तौरपर भारतीयोमे ही फैला है। असलमे, मालूम होता है, प्लेगका आरम्भ खानोमे हुआ और वह वहीसे लाया गया; क्योकि भारतीय बस्तीमें पहले-पहल प्लेगकी जो घटनाएँ हुईं वे उन्ही लोगो तक सीमित थी जो खानोंमे काम करते थे। और शुरू-शुरूमे वह महज निमोनियावाला प्लेग था, यह तथ्य शायद खानोके काम और प्लेगके बीच कुछ सम्बन्ध स्थापित करता है। कुछ भी हो, जिस केन्द्रीय तथ्यकी ओर हमने ध्यान आकृष्ट किया है और जिसे कभी नही भूलना चाहिए, यह है कि भारतीयोंको बिना किसी उचित कारणके प्लेग फैलानेका दोषी ठहराया जा रहा है। यह बात साफ तौरसे याद रखना जरूरी है, क्योंकि हमे बहुत डर है कि ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोपर अधिक और स्थायी कानूनी निर्योग्यताएँ थोपनेकी और इस मामलेमे भारत-सरकार और ट्रान्सवाल-सरकारके बीच इस समय चालू बातचीतपर रग चढ़ानेकी कोशिश की जा सकती है। प्लेग फैलनेका कारण अब उस पत्र-व्यवहारमे[1] साफ-साफ जाहिर कर दिया गया है, जो हमने किसी पिछले सप्ताहमे प्रकाशित किया था, और उससे भी, जो हम इस अकमे प्रकाशित कर रहे है। जोहानिसबर्गमे

१. देखिए "पत्र: डॉ० पोर्टरको," फरवरी ११, १५ और २०, १९०४।

प्लेग फैलनेका असली और मुख्य कारण था — जोहानिसबर्ग नगर-परिषदकी ब्योरेकी बातोपर ध्यान देनेकी पूर्ण असमर्थता। नगर-परिषद द्वारा प्रकाशित आँकड़ोसे स्पष्ट है कि मार्चमें निमोनियाके कारण मृत्युसंख्या इतने असाधारण रूपमे अधिक थी कि इस जबरदस्त हकीकतके बावजूद नगर-परिषदकी अकर्मण्यताका कारण बिलकुल समझमें नही आता। हाँ, अगर सारी परिषदको यह विश्वास रहा हो कि जोहानिसबर्गमें प्लेग कभी हो ही नही सकता, तो बात दूसरी है। जैसी निश्चित और जल्दीकी चेतावनियाँ बिना माँगे जोहानिसबर्गमें अधिकारियोको मिली वैसी अक्सर नही मिलती। स्वच्छताके प्रारम्भिक सिद्धान्तोंपर ध्यान देकर प्लेगको रोकना नगर-परिषदके लिए सदा सम्भव था, फिर भी उसने लगभग अठारह महीनेतक कागजपर बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनानेके सिवा कुछ नही किया। इसलिए अब स्वास्थ्य-समितिका यह कहना थोथे उपहासके सिवा कुछ नही है कि उससे जो कुछ हो सकता था वह सब उसने किया और जनताके विरोधके कारण अस्वच्छ क्षेत्रके बजाय कोई नया स्थान निश्चित करना उसके लिए सम्भव नही था — मानो ऐसे किसी विरोधके कारण सारे समाजके स्वास्थ्य और प्राणोको खतरेमें डालना, जैसा कि बेशक उसने डाला, उचित हो सकता था। ध्यान रखना चाहिए कि परिषदके अस्वच्छ क्षेत्रको अपने कब्जेमें लेनेके पाँच महीने बाद प्लेग फैला था। तब प्रश्न उठता है दखल करनेसे पहले परिषदने स्थानके चुनावके बारेमें लोक-भावनाको क्यो नही टटोला? जब वह ऐसा नही कर सकी, तब केवल कानूनी अधिकार करके ही सन्तुष्ट क्यो नही हो गई? जो लोग मकान-मालिकोका काम करते रहनेके लिए तैयार थे उन्हे उसने वैसा क्यो नही करते रहने दिया? इस प्रस्तावको अस्वीकार करनेके बाद, परिषदने उस जायदादसे किराया वसूल करना क्यो नही बन्द किया, जिसे खुद उसने मनुष्योके रहनेके अयोग्य करार दे दिया था और जहाँ उसने या तो, जैसा हम कहेगे, घोर लापरवाहीके कारण लोगोको रहने दिया या, जैसा वह कहेगी, इसलिए रहने दिया कि जनता अस्वच्छ क्षेत्रके बजाय परिषदके चुने हुए दूसरे स्थानके विरुद्ध थी? परिषदने, उस क्षेत्रके प्रत्येक किरायेदारकी मकान-मालिक बन बैठने और उन सबसे आमदनी करनेका निर्णय कर चुकनेके बाद, वहाँ इतनी भीडभाड और ऐसी भयकर गन्दगी क्यो की? एक भी नये किरायेदारको उसने उस इलाकेमे आकर रहने क्यो दिया? भारतीय बस्तीमें काफिर क्यो भर दिये गये? बाडोमें कूड़ा-कचरा क्यो पडा रहने दिया गया? फरवरीमें श्री गाधीने डॉ० पोर्टरको पत्र लिखकर जो बड़ा ही माकूल सुझाव दिया था, उसे समय रहते हुए भी, परिषदने क्यो नही स्वीकार किया? हमारी रायमे, इन बहुत ही उचित प्रश्नोके निर्णयात्मक उत्तर मिलने चाहिए। हम ऐसी कोई मिसाल याद नही कर पाते, जिसमे कोई सार्वजनिक सस्था भूलपर-भूल करती गई हो, पिछले अनुभवसे लाभ उठानेसे इनकार करती रही हो और स्वाभाविक निष्कर्षो तथा अपने ही प्रस्तावोको ध्यानमें रखनेसे इनकार करती रही हो। नगर-परिषद गन्दगीकी बिनापर उक्त क्षेत्रपर दखल करनेका अधिकार माँगनेके लिए लॉर्ड मिलनरके पास गई थी और उसने वहाँ बहुत अधिक गन्दगी बताते हुए कहा था कि व्यक्तिगत सम्पत्तिको पूरी तरह कब्जेमें लेनेके सिवा और किसी मार्गसे बुराईका इलाज ही नही हो सकता। क्या यह केवल आँखोमें धूल झोकना था? अगर नही, तो अवश्य ही उसका स्पष्ट कर्त्तव्य था कि दखल करनेका अधिकार पानेके बाद वह सबसे पहला कदम इलाकेके लोगोंको हटाकर अधिक आरोग्यप्रद मकानोमे रखनेका उठाती। दुर्भाग्यवश भारतीय बस्तीके निवासियोको हटाकर क्लिपस्प्रूटमे एक अस्थायी शिविरमें ले जानेके सिवा हमें अब भी किसी स्थायी स्थानके चुनावकी ओर प्रगतिका कोई चिह्न दिखाई नही देता। उपर्युक्त बातोसे यह अवश्य स्पष्ट हो जाना चाहिए कि जोहानिसबर्गमें पहले-पहल भारतीयोमें प्लेग फैलनेका कारण असाधारण परिस्थितियाँ थी, जिनके लिए केवल परिषद ही जिम्मेदार है। जैसी सफाई रखना

गरीब तबकेके भारतीय जानते है, वैसी सफाई रखनेकी सत्ता उनसे २६ सितम्बरको छीन ली गई थी। यह इतनी बुरी बात थी कि उन्होंने इसके विरुद्ध जोरदार आवाज उठाई और २६ सितम्बरके बाद बस्तीमे नगर-परिषदकी सीधी देखरेख और नियन्त्रणमे जो भीड़-भाड़ हुई वह ऐसी थी जिसके वे आदी नही थे और यद्यपि वे खुद उससे बच निकलना चाहते थे, फिर भी परिषदने उनके लिए कोई प्रबन्ध नही किया, इसलिए वे लाचार थे। परिषद सचमुच प्लेग फैलनेका पता लगनेके बाद चेती — इसपर यहाँ विचार करना अप्रासगिक है, जब हम प्रथम कारणपर विचार कर रहे है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३-४-१९०४

१३६. क्रूगर्सडॉर्प और ब्रिटिश भारतीय

क्रूगर्सडॉर्प नगर-परिषदने सामान्य प्रयोजन-समिति (जनरल परपजेज कमिटी)की इस सिफारिशको मजूर कर लिया है कि किसी रगदार व्यक्तिको रातके ९ बजेसे ४ बजेके बीचके समयमें घरसे बाहर निकलनेकी इजाजत नही होनी चाहिए और न ऐसे किसी व्यक्तिको पक्की या कच्ची पैदल-पटरीपर चलने, जाने या रहनेकी आज्ञा ही होनी चाहिए। "रगदार व्यक्ति" सज्ञाके प्रयोगसे क्रूगर्सडॉर्प नगरपालिकाका मतलब ब्रिटिश भारतीयोसे ही हो सकता है, क्योकि वतनियोके अतिरिक्त क्रूगर्सडॉर्पमे एकमात्र रगदार लोग शायद मुट्ठीभर ब्रिटिश भारतीय ही हैं। हम मानते है कि यह सिफारिश ट्रान्सवालमे प्लेग फैलनेका एक परिणाम है। नगरपालिकाके तत्सम्बन्धी कार्य-विवरणसे, जिसे हम अन्यत्र उद्धृत कर रहे हैं, मालूम होता है कि इस सस्थाकी रायमे प्लेगका प्रकोप जोहानिसवर्गकी नगर-परिषदकी गफलतसे हुआ। फिर भी परिषदके सदस्य अपराधी पक्षको तो दण्ड देना नही चाहते, जो निश्चय ही उनके लिए बहुत बलवान है, परन्तु निर्दोषोको सजा देना चाहते हैं, जो सर्वथा शक्तिहीन है। हम चिन्ताके साथ देखेगे कि परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरका इस सिफारिशपर क्या खयाल होता है। और इस बीच क्या हम यह आशा कर सकते है कि ऐसे स्पष्ट रूपमे अन्यायपूर्ण नियमपर परमश्रेष्ठकी स्वीकृति नही मिलेगी?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३-४-१९०४

१३७. प्रिटोरिया नगर-परिषद और ब्रिटिश भारतीय

प्रिटोरियाकी नगर-परिषद वतनी बस्तियोंपर पूरा नियन्त्रण चाहती है। जाहिरा तौरपर यह प्रस्ताव बिलकुल निर्दोष मालूम होता है और हम नहीं जानते कि नगर-परिषदके अधीन भारतीयोंकी दशा पहलेसे बहुत बुरी हो जायेगी। साथ ही, इस समय एक केन्द्रीय सत्ता है और उसकी कठोरतामें भी एक-सी कार्रवाईकी सम्भावना है। लेकिन प्रिटोरियाकी नगर-परिषदके प्रस्तावपर यदि अमल हुआ, तो भारतीय न सिर्फ पूरी तरह उसकी दयापर निर्भर हो जायेंगे, बल्कि जो नियम वतनियोंपर लागू होते हैं उन सबके भी शिकार होंगे। यह हो सकता है कि वतनी बस्तियोंके नियन्त्रणके लिए जो नियम बनाये गये हैं वे आवश्यक हों, क्योंकि सभी या लगभग सभी वतनी मजदूर-वर्गके होते हैं; लेकिन ब्रिटिश भारतीयोंके लिए वे बहुत कष्टप्रद होंगे। इस प्रस्तावका उपनिवेश-सचिवने यह उत्तर भेजा है:

> **मुझे आपको सूचित करनेका सम्मान प्राप्त है कि चूँकि दोनों बस्तियाँ नगर-परिषदके अधिकारक्षेत्रमें स्थित हैं, इसलिए उनपर परिषदका उतना ही नियन्त्रण है, जितना कि नगरके किसी और भागपर। सरकार कोई असाधारण नियन्त्रण नहीं रखती; जहाँतक सिर्फ एशियाई बस्तीका सम्बन्ध है, वह मकान-मालिक है, जो विभिन्न अर्जदारोंके बीच बाड़ोंका बँटवारा करती है। मुझे विश्वास है, आप जानते होंगे कि ये पट्टे इस शर्त पर दिये जाते हैं कि पट्टेदार नगरपालिकाके सब उपनियमोंका पालन करेंगे और नगरपालिकाके सब कर अदा करेंगे। जहाँतक केपकी बस्तीका सम्बन्ध है, मुझे पता नहीं है कि किस सिद्धान्तपर बाड़ोंके पट्टे दिये जाते हैं और मेरा सुझाव है कि आप इस विषयमें वतनी मामलोंके विभागसे लिखा-पढ़ी करें। यह अर्जी, कि एशियाई और केपवालोंकी बस्तियोंसे होनेवाली आमदनी नगरपालिकाको हस्तान्तरित कर दी जाये, मैंने अर्थसचिवके पास विचारार्थ भेज दी है और उनसे कहा है कि वे इस विषयमें सीधे आपको लिखें।**

नगर-परिषदने प्रत्युत्तरमें कहा है कि वह भारतीय बस्ती और केपकी बस्तीका उन्हीं शर्तोंपर नियन्त्रण करना चाहती है, जो वतनी बस्तीके लिए हैं। यह ध्यानमें रखना चाहिए कि नगर-परिषदको वतनी बस्तियोंके बारेमें नियम बनानेका विशेष अधिकार प्राप्त है और स्पष्टतः, ठीक वही अधिकार वह भारतीयोंके सम्बन्धमें चाहती है। जब नगर-निगम अध्यादेश पास हुआ तब यह मुद्दा उठाया गया था, परन्तु सरकारने इसे स्वीकार न करनेका फैसला किया था। और जबतक कानूनकी किताबमें १८८५का कानून ३ मौजूद है तबतक यह समझना कठिन है कि विशेष कानून बनाये बिना नगर-परिषदको वांछित अधिकार कैसे मिल सकता है। एक ओर ब्रिटिश भारतीयोंकी तरफसे १८८५के कानून ३ पर घोर आपत्ति की जा रही है, और हमारे खयालसे वह ठीक ही है, दूसरी ओर उसके पूरी तरह लागू होनेसे प्रिटोरिया नगर-परिषद और ट्रांसवालकी अन्य नगर-परिषदोंको भी सन्तोष नहीं होता। लॉर्ड मिलनर बखूबी कह सकते हैं कि वे दुतर्फा गोलाबारीके बीचमें हैं। हम तो सिर्फ इतनी आशा ही कर सकते हैं कि वे उन नगर-परिषदों और दूसरे भारतीय-विरोधी महाशयोंके सामने घुटने नहीं टेकेंगे जो, अगर उनका वश चले तो, ट्रान्सवालसे सारी ब्रिटिश परम्पराओंको मिटा कर ही रहेंगे और प्रिटोरियामें ब्रिटिश झंडे यूनियन जैकको केवल थोथा दिखावा ही रह जाने देंगे और

उससे कुछ काम लेंगे तो इतना ही कि वह स्वशासित जनताके अधिकारोंकी आड़में तमाम ब्रिटिश भारतीय-विरोधी कार्रवाइयोंके लिए एक पनाह बन जाये।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३-४-१९०४

१३८. प्लेगसे एक सबक

प्लेगने ब्रिटिश भारतीयोंको ऐसे पाठ सिखाये हैं जो, हमें विश्वास है, भुलाये नहीं जायेंगे; और आशा है, समाज उनसे लाभ उठायेगा। भारतमें एक आम कहावत है कि मनुष्यके लिए सुयश खोनेसे लाखों रुपया खो देना अच्छा है। इस कहावतसे यह निष्कर्ष निकलता है कि एक बार जब आदमी बदनाम हो जाता है तब उस बदनामीका असर मिटाना और लोगोंकी नजरमें फिरसे अच्छा बनना उसके लिए कठिन हो जाता है। जो व्यक्तियोंके लिए सही है, वह समुदायोंके लिए भी उतना ही सही है। फ्रान्सीसी लोग कला-प्रियताके लिए प्रसिद्ध हैं, अंग्रेज व्यक्तिगत शौर्यके लिए, जर्मन कर्मठताके लिए, रूसी मितव्ययिताके लिए, और दक्षिण आफ्रिकाके उपनिवेश स्वर्ण-लिप्साके लिए, इसी तरह दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय, सही या गलत, आरोग्य-शास्त्रके प्रथम सिद्धान्तोंके अज्ञान और गन्देपनके लिए बदनाम हो गये हैं। फलत जिन लोगोंके विरुद्ध यह आरोप जरा भी साबित नहीं किया जा सकता, उन्हें अक्सर केवल इस कारण कष्ट भोगने पड़ते हैं कि वे भारतीय हैं। और कोई बात हो भी नहीं सकती थी। यह ट्रान्सवालमें प्लेग फैलनेके कारण उदाहरणोंसे सिद्ध किया जा चुका है। सारे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंकी स्वतन्त्रतापर ऐसे प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं जिनके लिए, यदि शान्ति और न्याय-पूर्वक विचार किया जाये तो, कोई कारण नहीं मिलेगा। ट्रान्सवालमें भूतपूर्व भारतीय बस्तीके निवासियोंके साथ वस्तुत. कैदियोंका-सा बर्ताव किया जा रहा है। बस्तीमें जो कुत्ते, बिल्ली और अन्य पशु पाये गये, उन्हें भी मार डाला गया है, क्योंकि कहीं भारतीयोंके संसर्गसे उनमें प्लेगके कीटाणु न पहुँच गये हों! वहाँ विभिन्न नगरोंके स्थानिक निकायोंने भारतीयोंके खिलाफ कँटीले तारोंकी बाढ़ खड़ी करनेके नियम बना दिये हैं। ऑरेंज रिवर उपनिवेशने ट्रान्सवालसे आनेवाले भारतीयोंके लिए अपने द्वार बिलकुल बन्द कर दिये हैं। केप और नेटाल ऐसी कड़ी पाबन्दियोंके साथ प्रवेश करने देते हैं, जिनका कोई वैज्ञानिक अर्थ नहीं है। उदाहरणार्थ, कोई भारतीय भले ही किसी काफिरके साथ एक ही डिब्बेमें सफर कर रहा हो, ज्यों ही उन मुसा-फिरोंकी गाड़ी नेटालकी सीमापर पहुँचती है, त्यों ही भारतीयको तो उपनिवेशमें प्रवेश करनेसे पहले पाँच दिनतक सूतक (क्वारंटीन) में रहनेको मजबूर किया जाता है, परन्तु काफिरको आने देनेमें कोई रोकटोक नहीं की जाती।

ये नियम बेशक कठोर हैं, तो भी हमें इनसे क्रोध नहीं आना चाहिए। लेकिन हमें अपना आचरण ऐसा व्यवस्थित करना चाहिए कि इनकी पुनरावृत्ति न हो। और इस दृष्टिसे हमें अपने घरोंको अक्षरश. और आलंकारिक रूपमें भी व्यवस्थित करनेमें लग जाना चाहिए। हममें से छोटेसे-छोटेको भी सफाई और तन्दुरुस्तीका मूल्य जानना चाहिए। हमारे बीचसे अधिक भीड़ करनेकी आदत मिट जानी चाहिए। हमें धूप और हवाको मुक्त रूपसे अन्दर आने देना चाहिए। संक्षेपमें, हमें यह अंग्रेजी कहावत हृदयांकित कर लेनी चाहिए कि भगवद्भक्तिके बाद स्वच्छताका ही दर्जा है।

और उसके बाद क्या? हम यह वादा नहीं करते कि हम पूर्वग्रहके पाशसे तुरन्त ही मुक्त हो जायेंगे। नेकनामी एक बार चली जाती है तो आसानीसे वापस नहीं मिलती। सुयशकी हानि

एक रोगकी तरह है — वह होती तो पल भरमे है, परन्तु उसके हटानेकी बडी कीमत चुकानी पडती है। परन्तु पूर्वग्रहके दमनके रूपमे पुरस्कारकी बात ही हम क्यो सोचे? क्या स्वच्छता स्वयं अपना पुरस्कार नही है? क्या प्लेगके दुबारा हमलेको रोक देना एक अमूल्य वरदान नही होगा? क्या हमारा सफाई-निरीक्षको और उनके नियमोसे पीडित किया जाना बन्द नही हो जायेगा, क्योकि उनका कोई उपयोग ही नही रहेगा? धीरे-धीरे जब हम सफाई और तन्दुरुस्तीको केवल जबानी जमाखर्च नही, बल्कि अपने जीवनका अग बनाकर अपनी स्थिति मजबूत कर लेंगे, तब पूर्वग्रह — जहाँतक इसका आधार वह लाछन है — जाता रहेगा। और फिर, स्वास्थ्यके नियमोका पालन करनेकी हमारी इतनी ख्याति हो जायेगी कि वह हमेशा हमारा साथ देगी।

हम चाहते हैं, हमारे देशवासी हालमे जिस परीक्षणसे गुजरे है, उससे यह सबक ले। अत्युक्तिपूर्ण दोषारोपणका विरोध करना हमारे लिए अच्छा है। उनके आधारपर कानूनोका बनाया जाना रोकनेके लिए एडी-चोटीका जोर लगाना हमारा कर्त्तव्य है। परन्तु हमारा उतना ही फर्ज यह भी है कि हम उन आरोपोकी बारीकीसे जाँच करे, उनमे जो आशिक सत्य हो, उसे स्वीकार करे और हममे जो बुराई हो उसे सुधारनेकी कोशिश करे। इस तरह, और केवल इसी तरह, हम अपने पड़ोसियोकी दृष्टिमें ऊँचे उठ सकते है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३०-४-१९०४

१३९. क्लिपस्प्रूट फार्म[1]

जोहानिसबर्गकी नगरपालिकाने प्लेगकी रोकथामके लिए बहुत खर्च करके पृथक बस्तीमें रहनेवाले भारतीयोके लिए एक महीने पहलेसे क्लिपस्प्रूट शिविर नियत किया है। इस शिविरकी शुरुआतमें लोगोको कई तरहकी कठिनाइयाँ उठानी पड़ी थी। लेकिन वे कठिनाइयाँ केवल खाने-पीने और रहने सम्बन्धी थी। अब खानेके लिए दी जानेवाली खूराक गरीब आदमीको ही दी जाती है, और सब लोगोके लिए शहरमे आनेको छूट मिली है, लेकिन उसके कारण आदमीको कुछ निश्चिन्तता हुई हो, ऐसा मालूम नही होता। क्योकि जो लोग शहरमें भारी किराया देनेका सामर्थ्य रखते हैं, उन्हीको इस छूटका लाभ मिल सकता है। हरएक आदमीको शहरमें जगह मिल जाये, यह सम्भव नही है। भारतीयोकी स्थितिसे लाभ उठाकर घर-मालिक असाधारण किराया माँगते है। उतना किराया गरीब आदमी दे ही नही सकता, फिर भी गरीबोने पैसेकी तंगी बरदाश्त करके कुछ घर किरायेसे लिये है। लेकिन नगरपालिका उन घरोकी जाँच करके उन्हे पास करे, तभी शहरमें रहने आया जा सकता है। तबतक क्लिपस्प्रूटका कारावास भोगनेकी जरूरत रहेगी, ऐसा मालूम होता है।

घरको पास करनेकी बात कोई ऐसी-वैसी नही है। आदमी जब इस गोरखधधेमें से बाहर निकलता है, तो ऐसा लगता है, मानो पूरी तरह निचोड़ लिया गया हो। हालत ऐसी मालूम होती है, मानो किसीने मुँहपर तमाचा मारा हो, पर समयको देखकर आदमी खामोश रह जाता है। वह मन-ही-मन परेशान होता है, पर मुँहसे कुछ कह नही सकता। जब वह अपने पाँवपर खुद ही कुल्हाड़ी मारता है, तो उससे उत्पन्न दु:ख दूसरोके सामने कैसे कह सकता है? घरके पास हो जानेपर वह दौड़ता-दौड़ता क्लिपस्प्रूट जाता है। लेकिन पूछताछ करनेपर पता चलता

१. देखिए, *आत्मकथा* (गुजराती) पृष्ठ २९५।

है कि अभी उसकी अर्जी शिविरके अधीक्षक (सुपरिटेंडेट) के पास पहुँची नही है। वह वापस जोहानिसवर्ग आता है, और इस बारेमे जाँच करनेपर मालूम होता है कि इसके मामलेमे अधीक्षकका कोई कसूर नही है। लेकिन जब मनुष्यका मन चिन्तातुर होता है तब उसके मनमे कल्पनाएँ उठती है। और यद्यपि यह कहा नही जा सकता कि वे कल्पनाएँ विलकुल खोटी होती है, तो भी मालूम ऐसा होता है, कि अधिकाश मामलोमे वे वेबुनियाद होती है। एक ओर पैसे पास नही होते, दूसरी ओर शिविरसे छुटकारा पा जानेकी इच्छा रहती है। एक तरफसे घर-मालिक जेबमे पेशगी पैसे लेकर बैठा है, इसलिए किराया चढ रहा है, दूसरी तरफ नगर-पालिकाने प्लेगकी रोक-थाम की है। इस कारण सन्तोष मानकर तृप्त मनुष्यकी तरह पेटपर हाथ फिराते हुए वह अपना कर्त्तव्य धीमे-धीमे पूरा करती है, और उतावलीमे आये हुए आदमीको 'उतावला सो बावला' कहकर धीरज बँधाती है। जब गरीब लोगोमे धीरज नही होता, तब वे धीरज धरे कैसे? हकीकत ऐसी है, इसमे दोष किसे दिया जाये, कुछ सूझ नही पड़ता। लेकिन इतना तो स्पष्ट है कि आदमीको दुःखके समय एकदम आकुल होकर दूधको पानी समझकर फेंक नही देना चाहिए, और दूधके फेंक दिये जानेपर कुम्हार जिस तरह अपने गधेपर रिस उतारता है उस तरह नगरपालिकाको दोष नही देना चाहिए। सही रास्ता पकड़ा न जाये, और गलत रास्ता पकडनेसे गड्ढेमे गिरा जाये, तो तकदीरको दोष देकर रोनेसे दूसरेको दया नही आती। हम जानते है कि शहरमे रहनेकी जगह मिलना मुश्किल है, तो अपने लिए खास जगह निश्चित करनेकी अर्जी नगरपालिकासे करनी चाहिए। अगर इसपर भी नगरपालिका न माने, तो सरकारसे मुनासिब रोजी देनेकी माँग करके रेलवेमे काम करनेके लिए अर्जी देनी चाहिए। और अगर सरकार रोजके पाँच-छः शिलिंग देना कबूल करे, तो रेलवेका काम क्यो नही करना चाहिए, सो कुछ समझमे नही आता। जो मालदार लोग है, उन्हे तो आजकी हालतमे थोडी भी चिन्ता करनेकी जरूरत नही है। परन्तु पृथक बस्तीमें रहनेके कारण मालदार लोग भी कम किराया देनेके आदी हो गये है। इसलिए उन्हे भी अधिक भाडा देना शायद महीने-दो-महीनेके लिए ही पुसायेगा, अधिक समयतक वे भी उसे सहन नही कर पायेगे। फिर भी पैसेवाले लोग तो अपनी-अपनी मर्जीके मुताबिक घर खोजकर अपना काम चलायेगे, लेकिन गरीबका वली कौन है? ऐसे गरीबोके लिए सिर्फ दो उपाय है:

(१) नगरपालिकासे प्रार्थना की जाये, कि वह भारतीयोके लिए जगह निश्चित करे; और तबतक दुःख उठाकर राह देखी जाये।

(२) अगर सरकार मुनासिब रोजी दे, तो कुछ समयके लिए रेलवेमे काम करने जाये। बादमे शिविरसे छुटकारा पानेपर तो सब ठीक ही होगा।

हमे तो यही उपाय उचित मालूम होता है, क्योकि जितने कम खर्चसे पृथक बस्तीमे रहनेको मिला उतने खर्चसे आजकी हालतमे रहना सम्भव नही है। फिर हम अधिक भाड़ा देनेके अभ्यासी नही है। तिसपर भी अगर लोग अधिक भाड़ा देनेको राजी हो, तो भी जब घर ही नही है, तो क्या हो?

इन गोरे लोगोके देशमे भारतीयोपर दुःखके बादल तो सदा ही रहेगे, और जहाँ हम कसूरवार हो, वहाँ तो समझ लीजिए कि हमारे सिर घनघोर बादल घिरेंगे। प्लेगके इस आरोपसे छूटनेमे समय लगेगा। जिस तरह हमने लड़ाईमे[1] मदद की थी उसी तरह दूसरे किसी समय

१. यह इशारा भारतीय आहत-सहायक दलकी ओर है, जिसे गांधीजीने बोअर-युद्धके दिनोंमें संगठित किया था।

मदद करके हम अपनी राजभक्ति प्रकट करेंगे, तभी प्लेगके पापसे हमें छुटकारा मिलेगा। और यद्यपि हमें पूरी नसीहत मिल चुकी है, फिर भी ऐसा नही लगता कि हमने उसमेंसे कुछ भी सार ग्रहण किया है। उदाहरणार्थ, लोग शराब पीनेके लिए शिविरमें भी शहरसे बोतलें ले जाते है। शिविरके अधीक्षकको ऐसा शक हो जानेसे उसकी जाँचके लिए आज हर रोज आदमीको रातके समय शिविर-स्टेशनके सामने कैदीकी तरह एक कतारमें खडे होकर अनुचित चौकसीके अधीन होना पडता है। एकके कारण सबको दु ख सहन करना पडता है। यही हाल दूसरी सब बातोमे है। पाँच-पचास लोगोको रहनेके लिए घर मिलेंगे। पाँच-पचास आदमी नेटालमे चले जाये, लेकिन क्या इससे छ हजार भारतीय भाइयोका दुःख दूर हो जायेगा?

डॉक्टर नेटाल जानेवाले लोगोकी जाँच बहुत बारीकीसे करते है। और कुछ लोगोका तो यह कहना है कि स्त्रियोकी जाँच अनुचित रीतिसे, लाजकी मर्यादा न रखते हुए, की जाती है। लोगोका यह कहना बिलकुल बेबुनियाद है। लोग जो चाहे, कहे, उन्हें कोई रोक नही सकता। समूचे गाँवका मुँह तोपा नही जा सकता। ऐसा मालूम होता है कि रजको गज बनाना, यह तो भारतीयोको कुदरतसे मिली एक देन है। कोई भी आदमी सच क्या है और झूठ क्या है, इसकी जाँच किये बिना कानसे सुनी बातको सच मान लेता है।

आखिर हमे यह तो कबूल करना ही होगा कि शिविर आरामसे सोनेकी जगह नही है, वह एक जगल है, और वहाँ लोगोका दुःखी होना स्वाभाविक है, क्योकि तम्बूमें रहनेसे पेचिशकी बीमारी एक मामूली बीमारी बन गई है। और अगर लोगोको रहनेके लिए अच्छी जगह नही मिलेगी, तो अनुमान यह होता है कि लोग अधिक दु.खी होंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३०-४-१९०४

१४०. ईस्ट लन्दन[1]

ईस्ट लदनकी नगरपालिका भारतीयोके विरुद्ध लड़ाईमें सलग्न है और अनेक सम्पन्न भारतीयोको सूचना भेज दी गई है कि वे अपने कब्जेके मकान खाली कर दे और पृथक बस्तीमें चले जाये। इन सूचनाओका उद्देश्य भारतीयोको केवल जलील करना और उन्हे प्रमाणपत्र लेनेको विवश करके धीरे-धीरे शहरसे बाहर निकाल देना है। नगरपालिकाके अधिकार बहुत व्यापक है। १८९५ के कानून १२ की धारा ५, जो ईस्ट लन्दनकी नगरपालिका और शासनकी व्यवस्था करनेवाले कानूनोमें संशोधन और वृद्धि करनेके लिए है, ऐसी बातें करनेकी सत्ता देती है जिनमें ये भी है:

१. इस वक्तव्यकी एक प्रति भारतमन्त्रीके पास भेजते हुए दादाभाई नौरोजीने अपने २५ मईके पत्रमें लिखा था: "मेरे पत्र-प्रेषकने सर मंचरजी मेरवानजी भावनगरीके लोकसभामें २० अप्रैलको किये गये प्रश्नोंका हवाला देते हुए लिखा है कि जिन दो मुद्दोंपर ध्यान रखना है वे ये हैं:

(१) यह कानून वस्तुतः भविष्यके अनुमानके आधारपर पास किया गया था, क्योंकि सन् १८९५ में भारतीयोंकी आबादी बहुत थोड़ी थी।

(२) यह कानून पहले कभी लागू नही किया गया था और यह भारतीयोंकी इच्छापर छोड़ दिया गया था कि वे बस्तियोंमें रहें या न रहें।"

(इंडिया ऑफिस, ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स: १२३६)

वतनी और एशियाइयोंके रहनेके लिए बस्तियोंके रूपमें नगरपालिकाके भाग निर्दिष्ट करना और अलग कर देना, और समय-समयपर बदलना और इन बस्तियोंको खतम कर देना। जिन शर्तोंपर एशियाई और वतनी इन बस्तियोंमें रह सकते हैं और इस प्रकार रहनेके लिए उन्हें जो शुल्क, किराया और झोंपड़ी-कर देना है उनकी व्यवस्था करना और ऐसे निवासस्थानोंकी और उनमें कोई घोड़े, मवेशी, बैल, भेड़ें या चीजें हों तो उनकी रजिस्ट्रीका इन्तजाम करना; और पशुओंकी चराईके लिए आम चरागाहका उपयोग विनियमित या निषिद्ध करना। इन बस्तियोंके लिए अधीक्षकों और मुखियोंकी नियुक्तिका प्रबन्ध करना और उनके कर्त्तव्यों और अधिकारोंका विनियमन करना और इन अधिकारियोंके कर्त्तव्यपालनमें बाधा डाली जाये तो उसे रोकना। इन बस्तियोंके भीतर दूकानों, मंडियों और व्यापारका विनियमन करना, इजाजत देना या मनाही करना। इन बस्तियोंमें रहनेके लिए वतनियों और एशियाइयोंको परवाने देना या न देना और उस प्रणालीका विनियमन करना, जिसके अनुसार उन लोगोंको हटाया जा सके जो रहनेके हकदार न हों। और उन सीमाओंको मुकर्रर करना और समय-समयपर बदलना जिनके भीतर वतनियों और एशियाइयोंके लिए अपने मालिक या निरीक्षक या पुलिसके कप्तान या बस्तीके व्यवस्थापकके लिखित परवाने या प्रमाणपत्रके बिना उन सीमाओंके भीतरके रास्तों, सार्वजनिक स्थानों या आम सड़कोंपर जाना जायज नहीं होगा; और सड़कों या खुली जगहों या उनकी पक्की पैदल-पटरियोंको नियुक्त करना जिनपर वतनी और एशियाई चल न सकें या जा न सकें। नदियों और समुद्रके उन भागोंका विनियमन और पृथक्करण करना, जहाँ वतनी और एशियाई स्नान न कर सकें।

इस असाधारण धाराके नियममें कहा गया है:

> **बस्ती, कर्फ्यू और पैदल-पटरीके व्यवस्था-सम्बन्धी विनियम नगरपालिकाकी सीमामें स्थित उस भू-सम्पत्तिके रजिस्टर्ड स्वामी या अधिकारीपर लागू नहीं होंगे, जिसका मूल्य नगरपालिकाके मतलबके लिए ७५ पौंडसे कम न हो; और यह शर्त होगी कि इस आशयका एक प्रमाणपत्र टाउन क्लार्कसे प्राप्त कर लिया गया हो, और यह प्रमाणपत्र मुफ्त दिया जायेगा।**

इस प्रकार, इन सूचनाओंका उद्देश्य यह है कि ब्रिटिश भारतीयोको ऐसे प्रमाणपत्र प्राप्त करनेके लिए बाध्य किया जाये। स्वभावत. जो लोग समझते हैं कि ब्रिटिश प्रजाजन होनेके नाते उन्हे नागरिकताके वही अधिकार होने चाहिए जो दूसरोको है, वे अपनी स्वतन्त्रतामे कोई हस्तक्षेप किया जानेका विरोध करते हैं और प्रमाणपत्र प्राप्त करनेके बारेमे प्रबल आपत्ति करते है। सर मचरजीने, जो मानवीय भावनाओसे प्रेरित होकर दक्षिण आफ्रिका निवासी ब्रिटिश भारतीयोंकी सेवा कर रहे है, श्री लिटिलटनसे सहायताकी प्रार्थना की है और अब इस मामलेकी स्थानीय सरकार द्वारा जाँच की जा रही है। हमे विश्वास है कि जाँचके परिणाम-स्वरूप ईस्ट लन्दनमें बसे भारतीयोके साथ पूरा न्याय होगा और उन्हे पृथक बस्तियोके बाहर रह सकनेके लिए परवाने लेकर चलनेका अपमान नही सहना पड़ेगा। हमे मालूम हुआ है कि जिन निवासियोको मकान छोड़नेकी सूचनाएँ मिली है, उनके मकान हर तरहसे अच्छे और साफ-सुथरी हालतमें है। इसके अतिरिक्त ईस्ट लन्दनकी भारतीय आबादी बहुत थोड़ी है और हमे यह परले सिरेकी

वेइन्साफी मालूम होती है कि किसी भी माकूल वजहके विना मुट्ठीभर शान्तिप्रिय और कानूनका पालन करनेवाले निवासियोको तग किया जाये।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–५–१९०४ और इडिया ऑफिस : ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, १२३६।

१४१. केपका प्रवासी अधिनियम

डॉ० ग्रेगरीने केपके प्रवासी-अधिनियमके अमलपर जो रिपोर्ट पेश की है उसका सार, जैसा कि *स्टारमें* प्रकाशित हुआ है, हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे है। वह पढ़नेमें एक दिलचस्प चीज है। उसके अनुसार पिछले सालके मई और जून मासोमें विदेशी प्रवासियोकी संख्या २,०३३ थी और अक्तूवरसे दिसम्बरतकके तीन महीनोमे ४,७१५ थी। ब्रिटिश यात्रियो और विदेशी प्रवासियोके वीच अनुपात मई और जूनमे २०.२, जुलाईसे सितम्बरके वीच २२७ और अक्तूवरसे दिसम्बरके वीच २५.२ प्रतिशत था और डॉ० ग्रेगरीका खयाल है कि, यह विचार करनेपर ब्रिटिशोका प्रवास विलकुल भिन्न प्रकारका है, यह ऊँचा अनुपात भी काफी ऊँचा नही ठहरता। रिपोर्टके अनुसार, ४६,९३३ ब्रिटिश यात्रियोंमे से ३,९४७ उपनिवेशके नागरिक वन गये थे, ११,०९३ स्त्रियाँ थी, ७,२०३ नावालिग वच्चे थे और ६,९६९ पहले दर्जेके मुसाफिर थे। इस-लिए, यदि केवल वास्तविक ब्रिटिश प्रवासियोका ही विचार किया जाये तो उनका अनुपात इससे वहुत ऊँचा होगा। इन विदेशियोमें से वहुत वड़ी संख्या रूसियो और यहूदियोकी है जो, रिपोर्ट वताती है, अधिकतर महत्त्वपूर्ण वातोमें असन्तोषप्रद है — क्योकि उनके पास गुजर-वसरकी व्यवस्था नही है, वे अल्पशिक्षित है, यहूदी भाषा छोड़कर और कोई भाषा न वोल सकते है और न समझ ही सकते है; काठीके गरीव है; अक्सर अपनी आदतो, अपने शरीर और अपने कपड़ोकी दृष्टिसे गन्दे पाये जाते है; और उनकी कही वातें वहुत ही अविश्वसनीय होती है। डॉ० ग्रेगरीने यह प्रश्न भी उठाया है कि यदि यहूदी भाषा कोई भाषा है भी, तो उसे यूरो-पीय भाषा समझा जाये या नही। उनका सुझाव है कि यह सिद्ध करनेका भार कि वह एक यूरोपीय भाषा है, स्वय प्रवासियोंपर डाला जाना चाहिए। इस तरह, जैसी हमने अवतक आशा की है, दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपीय उपनिवेशी ज्यों ही भारतीयोसे निपट चुकेंगे त्यो ही यूरोपीय प्रवासियोके विरुद्ध कार्रवाई शुरू कर देंगे; और जव यूरोपीय विदेशियोंसे निपट चुकेंगे तव, जैसा कि आस्ट्रेलियामें अंग्रेज खनकोके साथ हुआ, गरीव अंग्रेजोके प्रति विरोव खड़ा किया जायेगा। हमारी दृष्टिसे तो यह सारी भावना ही वुरी है और जहाँ अपराधियो और गम्भीर रोगोसे पीड़ित लोगोंके प्रवासपर पावन्दी लगानेका कुछ औचित्य हो सकता है, वहाँ प्रतिवन्ध लगानेकी सत्ता एक ऐसी सत्ता है जिसे वहुत ही नरमीसे साथ काममें लाना चाहिए। हम देखेंगे कि केपकी विधान परिषद डॉ० ग्रेगरीके सुझावोका कैसा स्वागत करती है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–५–१९०४

१४२. क्रूगर्सडॉर्पकी भारतीय बस्ती

क्रूगर्सडॉर्पकी लोक-स्वास्थ्य समितिकी रिपोर्टसे विदित होता है — जिसके लिए हम अपने सहयोगी *क्रूगर्सडॉर्प स्टैंडर्डके* ऋणी है — कि नगर-परिषदने अब भारतीय बस्तीके मकानोकी बेदखली न करानेका फैसला किया है। इसका एकमात्र कारण यह है कि परिषदके अपने ही मूल्य-निर्धारकने उन मकानोकी कीमत नगर-परिषदकी लगाई कीमतसे अधिक बताई है, और श्री वार्नेटने, जिन्होंने भारतीयोकी तरफसे मूल्याकन किया है, और भी ज्यादा मूल्य बताया है। इसलिए जो मकान कुछ ही दिन पहलेतक "लज्जाके योग्य अस्वच्छ" और नगरके सार्वजनिक स्वास्थ्यके लिए खतरनाक माने जाते थे, वे अब अचानक वैसे नही रहे और अब उन्हे जहाँ है वही रहने दिया जायेगा। इसलिए यह निरा रुपयेका सवाल है। परन्तु, यद्यपि अब उनको ब्रिटिश भारतीयोकी जायदाद बना रहने दिया जायेगा और नष्ट नही किया जायेगा, फिर भी नगर-परिषदने निर्णय किया है कि भारतीय उनमे फिर तबतक नही रह सकेंगे जबतक वे उन्हे नगरके निर्माण-सम्बन्धी नियमोके अनुसार न बना ले। हमे नही मालूम कि इसका क्या अर्थ है। अगर मतलब यह है कि भारतीय उन मकानोको गिराकर नये सिरेसे बनाये तो अवश्य ही नगर-परिषदके लिए उनको एक धेला भी मुआवजेमे दिये बिना उनकी सम्पत्तिसे वंचित कर देनेका यह एक आसान तरीका है इस प्रकार अनुचित साधनोसे काम बना लेना न्यायपूर्ण होगा या नही, इससे स्पष्टत नगर-परिषदका कोई वास्ता नही। किन्तु नगर-परिषदके निर्णयसे एक गम्भीर प्रश्न पैदा होता है ये मकान गन्दे है, तो वास्तवमे कहाँतक गन्दी हालतमे है? परिवर्तनो या सुधारोकी किस हदतक जरूरत है, और भारतीयोपर जो प्रतिबन्ध लगाये गये है, उन्हे लगानेका, आम तौरपर, नगर-परिषदको क्या अधिकार है? क्योकि, हमे मालूम हुआ है कि सम्पत्तिसे वंचित किये गये भारतीयोंको अब भी नगरसे बहुत दूरके स्थानपर तम्बुओमे रहनेको मजबूर किया जा रहा है। लेकिन चूँकि क्रूगर्सडॉर्पमे प्लेग बिलकुल नही है, और आम तौरपर ट्रान्सवालमें भी वह मिट गया है, इसलिए हमे आशा है कि यह विषम स्थिति अब खतम कर दी जायेगी, और भारतीयोको अपने मकानोमे फिर रहने दिया जायेगा, और वह नौबत न आने दी जायेगी कि नगर-परिषदने स्पष्ट ही जो मनमाना तरीका अपनाया है उसे अपनानेके अधिकारको किसी कानूनी अदालतमे चुनौती दी जाये।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–५–१९०४

१४३. ट्रान्सवालमें परवानोंका मामला

ब्रिटिश भारतीयोंको व्यापारिक परवाने देने सम्बन्धी परीक्षात्मक मुकदमेकी सुनवाई हो चुकी और, जैसी कि आशा की थी, निर्णय सुरक्षित रखा गया है। दोनो ओर बडेसे-बडे वकील रखे गये थे। ब्रिटिश भारतीयोकी ओरसे सर्वश्री लियोनार्ड, एसेलेन, ग्रेगरोवस्की और डक्सबर्ग थे; ट्रान्सवाल सरकारकी तरफसे सर्वश्री वार्ड, मैथ्यूज और बर्न्स बेग नियुक्त थे। मुख्य प्रश्न "निवास" शब्दकी व्याख्या करनेका था। ब्रिटिश भारतीयोका कहना था कि सरकार द्वारा नियत की गई बस्तियो अथवा विशेष गलियोमे ही सीमित "निवास" में व्यापार शामिल नही है — खास तौरसे इसलिए कि कानूनके अनुसार बस्तियोमे रहनेकी पाबन्दी केवल सफाईके उद्देश्यसे लगाई गई है। इसके विपरीत, सरकारकी दलील यह थी कि "निवास" मे व्यापार भी शामिल है, खास तौरसे इस बिनापर कि *तैयब* बनाम *लीड्स*[1] मुकदमेमें भूतपूर्व दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके उच्च न्यायालयने इस शब्दका यही अर्थ किया था। याद रखना चाहिए कि वह फैसला सर्वसम्मत नही था। यह भाग्यकी विडम्बना है कि जब भूतपूर्व गणराज्यके उच्च न्यायालयके सामने उस मामलेमें बहस हुई थी तब न्यायाधीशोके सामने ब्रिटिश सरकारके प्रतिनिधि उपस्थित थे और उन्होने ब्रिटिश भारतीयोके कथनका समर्थन करनेकी कोशिश की थी, परन्तु, अब समय बदल गया है और साथ ही ब्रिटिश सरकार भी बदल गई है। अब वह उसी मचपर है, जिसपर श्री क्रूगरकी सरकार थी। ब्रिटिश सरकारकी माँग है कि मामला खारिज कर दिया जाये और खर्च वादियोको देना पडे। भारतीयोके लिए मामला अत्यन्त महत्त्वका है, असलमे जिन्दगी और मौतका है, और यह शुभ है कि वे अपनी ओरसे सबसे बड़े कानून-पण्डितोको खड़ा करनेमे समर्थ हो गये है। इसलिए, अब यदि उन्हे मुकदमेमे हारना ही पडा तो उसका कारण सर्वोत्तम कानूनी सलाहका अभाव नही होगा। इस समय ट्रान्सवालमें बड़ा अनुकूल अवसर है। विधानका जो प्रश्न भूतपूर्व उच्च न्यायालयके सामने नही उठाया जा सका था, उसे अब भारतीयोकी ओरसे श्री लियोनार्डने निर्भीकताके साथ उठा दिया है। सर रिचर्ड सॉलोमनने खुद स्वीकार किया है कि वे गणराज्यके न्यायाधीशोके फैसलेको समझ नही सके। इसलिए भारतीयोके पक्षमे बहुत कुछ है, और हम आशा करे कि निर्णय ऐसा होगा, जिससे यह दुःखदायी सवाल हमेशाके लिए निपट जायेगा — और ऐसे ढगसे कि ट्रान्सवालके सैकडो ब्रिटिश भारतीय व्यापारी फिरसे स्वच्छन्द होकर साँस ले सकेंगे। लेकिन अगर ब्रिटिश न्यायाधीश अपनेको पिछले उच्च न्यायालयके बहुमतके निर्णयसे बँधा हुआ समझें, तो ब्रिटिश भारतीयोको निराशामे भी एक मौका और है, अर्थात् वे ब्रिटिश साम्राज्यकी सर्वोच्च अदालत — सम्राटकी न्याय-परिषद (प्रीवी कौन्सिल) मे अपील कर सकते है। आशा है कि इस तरहका कदम गैर-जरूरी होगा, लेकिन अगर दुर्भाग्यसे अनिवार्य हो गया, तो हमे कोई सन्देह नही कि ब्रिटिश भारतीय पीछे न हटकर मामलेको अन्ततक ले जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७-५-१९०४

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १०।

१४४. नेटालमें प्लेग फैला तो?

मैकईवानके मकान और यूनियन कैसिल दफ्तरके बीच पॉइटके गृह-समूह (ब्लॉक) में चूहे मरते पाये गये है। कहा जाता है कि वे प्लेगसे मरे है। अधिकारियोने नेटालमे प्लेग न फैलने देनेके लिए तत्परतासे कार्रवाई की है और हम सच्चे दिलसे आशा करते है कि उनके प्रयत्न सफल होगे। लेकिन अगर प्लेग फैला तो भारतीय समाजके लिए यह एक दुर्भाग्य होगा। वह ट्रान्सवालमे इस रोगके आक्रमणके परिणामसे मुक्त होनेके लिए सघर्ष कर रहा है और ऐसे मौकेपर प्लेग फैलनेसे उसके दु खोका प्याला लबालब भर जायेगा। परन्तु हम भारतीयोको चेतावनीके दो शब्द कहे बिना नही रह सकते। मामूली बीमारीकी भी, खासकर बुखार या निमोनियाकी, अविलम्ब देखभाल होनी चाहिए और जरूरी हो तो, अधिकारियोको सूचना दे दी-जानी चाहिए। इस प्रकारकी बीमारियोका इलाज करनेमे कदाचित् बडी ढिलाई की जाती है, परन्तु खासकर आजके जैसे समयमे बुखार या निमोनियाको मामूली बात समझना बडी मूर्खता होगी। हम उनसे यह भी कहेंगे कि ऐसे सब रोगियोको बिलकुल अलग रखा जाये, ताकि छूतकी जोखिम कमसे-कम हो जाये। लेकिन सबसे अधिक आवश्यक यह है कि गरीब-से-गरीब घरोमे भी रोशनी और हवाको पूरी तरहसे आने दिया जाये। प्रत्येक घरका सारा कचरा निकाल दिया जाये। और यदि ये प्रारभिक सावधानियाँ प्रत्येक व्यक्ति बरते तो हमें कोई सन्देह नही कि मुसीबत टल जायेगी। भारतीय निवास-स्थानोको सुधारनेकी दिशामे पहले ही बहुत कुछ किया जा चुका है और हमे सभी दिशाओमे सुधार दिखाई दे रहे है। किन्तु रोगके आक्रमणके खतरेको देखते हुए प्रयत्नोको दुगुना कर देना जरूरी है और हमे आशा है कि उपनिवेशका प्रत्येक भारतीय हमारी बातको हृदयाकित कर लेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७–५–१९०४

१४५. सुयोग्य विजय

सो, सर्वोच्च न्यायालयने भारतीयोके परीक्षात्मक मुकदमेका[1] फैसला खर्चसहित वादीके पक्षमें कर दिया है। मामलेके सफलतापूर्ण अन्तपर हम अपने ट्रान्सवालवासी देशभाइयोको हार्दिक बधाई देते है। यह विजय महँगी कीमत चुकाकर प्राप्त की गई है और इसके वे सुयोग्य पात्र है। हम इतनी ही आशा रख सकते है कि सरकार भारतीय समाजको विजयके फलोका उपभोग करने देगी। हमारे खयालसे इस महान और असमान संघर्षमे ब्रिटिश भारतीयोका आचरण उनकी परम्पराओके अनुरूप रहा है। उन्हे अधिकार था कि वे ब्रिटिश अधिकार जमनेके बाद जल्दी ही यह मामला पेश कर देते और हमे मालूम है कि उस समय ट्रान्सवालके उत्तम वकीलोने यही मार्ग अपनानेकी सलाह दी थी, परन्तु उन्होने दूसरी ही तरह सोचा। उन्हे खयाल

१. *हबिब मोटन* बनाम *ट्रान्सवाल-सरकार* फैसलेमें कहा गया था कि भारतीय व्यापारियोंको पृथक् बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेके परवाने न देनेके जो आदेश परवाना-अधिकारियोंको दिये गये थे वे गैर-कानूनी थे और वादीको प्रिटोरिया तथा पीटर्सबर्ग शहरोंमें सामान्य वस्तुओंके विक्रेताके तौरपर व्यापार करनेका परवाना पानेका हक है।

हुआ कि सरकारको चुनौती देनेके बजाय पहले उनका फर्ज उससे न्याय प्राप्त करना और उन वादोंको पूरा करनेका अनुरोध करना है, जो डाउनिंग स्ट्रीटके अधिकारियोंने किये थे। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि उन्हे व्यापार-संघो (चैम्बर्स ऑफ कॉमर्स) और दूसरी सार्वजनिक संस्थाओके पास पहुँचना चाहिए, जिन्होंने भारतीय व्यापारियोके प्रति वैर-वृत्ति अपनाई है, और उन्हे विश्वास दिलानेकी कोशिश करनी चाहिए कि परवाने देनेसे इनकार करके भारतीयोके साथ अन्याय किया जा रहा है। वे बहुत ही उचित समझौता स्वीकार करनेको तैयार थे और इसलिए उन्होंने सुझाव दिया था कि तमाम मौजूदा परवाने अछूते छोड दिये जाये, पृथक् बस्तियोके बाहर व्यापार करनेके परवाने समय-समयपर नये किये जाये और दूसरे प्रार्थियोके मामले पात्रताके आधारपर निपटाये जायें। यह सुझाव अस्वीकार कर दिया गया और पिछले दिसम्बरमें, जब वस्तुत प्रत्येक भारतीय व्यापारीपर विनाशका खतरा छा गया तब मामला हदको पहुँच गया। जब किसी समझौतेपर पहुँचनेके सभी उपाय समाप्त हो गये तब समाजने यह परीक्षात्मक मुकदमा दायर किया। परिणाम तो और कुछ हो ही नही सकता था, हालाँकि इतना कष्ट भोग चुकनेके कारण लोग उसके बारेमे जबरदस्त चिन्तासे ग्रस्त थे। खैर, अन्यायके इस शोकपूर्ण चित्रका एक उज्ज्वल पहलू भी है, और वह यह है कि, ब्रिटिश राज्यमे, द्वेषभाव कितना ही तीव्र क्यो न हो, सर्वोच्च न्यायालयोके रूपमे सुरक्षाका एक आश्रयस्थान हमेशा उपलब्ध है। परम्परा ऐसी है कि ब्रिटिश न्यायाधीश पूर्वग्रहो अथवा भावनाओके वशीभूत लगभग होते ही नही और छोटेसे-छोटे प्रजाजनको भी, यदि उसके पास पर्याप्त साधन हो और कानूनमे गुजाइश हो तो, विशुद्ध न्याय मिल सकता है। ट्रान्सवालके सर्वोच्च न्यायालयके न्याया-धीशोने भूतपूर्व उच्च न्यायालयके निर्णयको रद कर देनेमे सकोच नही किया और सरकारी वकीलके रवैयेके बावजूद उन्होने फैसला दिया कि १८८५ के कानून ३ मे १८८६ मे हुए सशोधनके अनु-सार प्रत्येक भारतीयको, जहाँ उसका जी चाहे, व्यापार करनेकी स्वतन्त्रता है। इससे भारतीय परवानेदारोके सम्बन्धमे सरकारकी सारी सूचनाएँ और सारी कार्रवाइयाँ रद हो जाती हैं। परन्तु अपने देशवासियोको चेतावनी दे देना हमारा कर्तव्य है कि वे इस सफलतापर खुशीसे बहुत ज्यादा फूल न जाये। कदाचित् इसका इतना ही अर्थ है कि यह एक दूसरे सग्रामका श्रीगणेश है। उनके विरुद्ध देशभरमें विरोध खडा किया जायेगा और सरकार सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयोके प्रभावको विफल करनेके लिए एक विधेयक पेश कर सकती है। इसलिए उन्हे फिर भी काम करना और धीरज तथा दूरदर्शितापूर्ण सयम रखना पड़ेगा। दुर्भाग्यसे सरकार एक चीज है और सर्वोच्च न्यायालय बिलकुल दूसरी चीज है। सरकार सब प्रकारके पूर्वग्रहो और भावनाओंसे प्रभावित होकर उनमें बह जाती है और ट्रान्सवालमे तो वह खुद इतनी कमजोर है कि श्री डकनके शब्दोमे, जो "शुद्ध प्रारम्भिक न्याय" है वह भी नही कर सकती। लॉर्ड मिलनरके मजबूत शासन और उससे भी मजबूत इरादेके बावजूद, परमश्रेष्ठ भारतीय विरोधी आन्दोलनके आगे दब गये और दुर्बल पक्षकी रक्षा करनेमे असफल रहे। परन्तु परीक्षात्मक मुकदमेके फैसलेने सरकारके लिए १८८५के कानून ३ की शरण लेना असम्भव बना दिया है। अब वह श्री लिटिलटनसे यह नही कह सकती कि उपनिवेशियोकी पुराने नियमको लागू करनेकी माँगका विरोध नही किया जा सकता। अब हम जानते है कि पुराना कानून भारतीय व्यापारपर कोई प्रतिबन्ध नही लगाता, और सरकारपर यह सिद्ध करनेका दुहरा भार है कि भारतीय व्यापारपर कोई विशेष प्रतिबन्ध लगानेके लिए, कैसा भी क्यो न हो, कोई कारण मौजूद है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १४-५-१९०४

१४६. ईस्ट लन्दनके ब्रिटिश भारतीय

अन्यत्र हम इसी मासकी २ तारीखके ईस्ट *लन्दन डेली डिस्पैचका* एक अग्रलेख उद्धृत कर रहे हैं। उसका विषय वह प्रश्नोत्तर है जो श्री लिटिलटन और सर मचरजीके बीच हुआ है। यह प्रश्नोत्तर उन सूचनाओंके बारेमें था जो ईस्ट लन्दन नगरमें रहनेवाले अनेक ब्रिटिश भारतीयोंको दी गई थीं और जिनमें उन्हें एक निश्चित समयके भीतर पृथक् बस्तीमें जाकर बसनेका आदेश दिया गया था। हमारा सहयोगी ईस्ट लन्दन नगरपालिकाकी कार्रवाईको दी गई प्रसिद्धिको नापसन्द करते हुए इस गलत परिणामपर पहुँचा है कि सर मचरजी उग्रदलके व्यक्ति हैं। क्या हम अपने सहयोगीको याद दिलायें कि सर मचरजी कट्टरसे-कट्टर विचारोंके हैं और वे तबतक किसी मामलेमें हाथ नहीं डालते, जबतक उन्हें उसके न्यायपूर्ण होनेका यकीन नहीं हो जाता। स्वभावतः ही वे बहुत अच्छे कारणके बिना अपने ही दलकी सरकारको किसी परेशानीमें डालना पसन्द नहीं करेंगे। अग्रलेखको ध्यानसे पढ़नेके बाद हम स्वीकार करते हैं कि हमें सर मचरजीके बताये हुए हालातमें और ईस्ट लन्दनकी वास्तविक स्थितिमें कोई फर्क दिखाई नहीं देता। हम कहना चाहते हैं कि सहयोगी यह कहनेमें सत्यको घटाकर बताता है और नगरपालिका तथा भारतीयों — दोनोंके साथ बराबर अन्याय करता है कि, "नगर-पालिकाने भारतीयों [की स्थितिका मुकाबला करनेके लिए वतनी बस्तियोंसे अलग जनवास (बोर्डिंग हाउस) बनाये और नियमोंके अनुसार उन] से वहाँ जाकर रहनेका अनुरोध किया है।[1] या, कमसे-कम, उसने नगरके आसपास रहनेवाले भारतीयोंको सूचना दे दी है कि वे वहाँसे चले जायें।" इससे पाठकके मनपर यह असर पड़ता है मानो कोई जबरदस्ती नहीं की जायेगी। परन्तु भारतीयोंके नाम जारी की गई सूचनाकी इबारत यह है:

सूचना दी जाती है कि सफाई-अफसरने मालूम किया है, आप उपर्युक्त मकानमें, जो नगरकी सीमाके भीतर है और जहाँ एशियाई लोग नहीं रह सकते, रहकर संशोधित नियम नं० ३२, अध्याय १८ (*ईस्ट लन्दन डेली डिस्पैच*, २९ अगस्त १९०३ में प्रकाशित नगर-निगम की १९०३ की सूचना नं० ३ और उल्लिखित नियम) का उल्लंघन कर रहे हैं।

परिषद इस सूचना द्वारा ताकीद करती है कि आप इस सूचनाके मिलनेसे १४ दिनके भीतर उपर्युक्त नियमकी शर्तोंके मुताबिक अमल करें और इसके लिए ऊपर बताया हुआ मकान खाली कर दें और एशियाइयोंके शिविरमें जाकर रहें।

शिविर-अधीक्षक यह सूचना दिखानेपर आपको रहनेके लिए उपयुक्त स्थान दे देंगे।

और यह भी कि, इस आज्ञाका पालन न करने पर मुकदमा चलाया जायेगा।

ईस्ट लन्दन, तारीख १२ अप्रैल १९०४।

आर० ई० डाउडिंग
टाउन क्लार्क
टॉमस बीथम
सफाई-निरीक्षक

१. उद्धरणका यह भाग अपूर्ण है। कोष्ठकके शब्दोंसे उसकी पूर्ति होती है। देखिए "ईस्ट लंदन ऐंड एशियाटिक्स", *इंडियन ओपिनियन*, १४-५-१९०४।

आज्ञा न माननेके साथ भारी दण्ड जुड़ा हुआ है। तब क्या सर मंचरजीने जिस ढंगसे प्रश्न पूछा, वह उचित नही था? और फिर, हमारे सहयोगीने सर मंचरजीके मुँहमे वे शब्द भी रख दिये है जो उन्होने कभी कहे ही नही। उनके कहनेका यह अर्थ कदापि नही था कि भारतीय ईस्ट लदनसे निकाले जानेवाले है, परन्तु उन्होने निश्चयपूर्वक कहा था कि उन्हें बस्तियोमे चले जानेकी सूचनाएँ मिली है। और यह सत्य-मात्र है। नगरपालिकाने जिस ढगकी कार्रवाई अपनाई है, उसे उचित बतानेमे *ईस्ट लन्दन डिस्पैच* उतना प्रसन्न नही है। *डिस्पैचके* कथनानुसार हकीकत यह है कि ईस्ट लदनमें कुल मिलाकर भारतीयोकी आबादी छ सौ है, जिनमे से केवल एक सौ नगरमे रहते है। हमारा सहयोगी आगे कहता है "नगरपालिकाका उनपर कोई नियन्त्रण नही है।" तो क्या भारतीय नगरपालिकाके नियमोंसे मुक्त है? हमने सारे नियम पढे है और हमें उनमे भारतीयोको नगरपालिकाके नियमोसे मुक्त होनेकी कोई बात नही मिली। क्या बारह हजारसे अधिक यूरोपीय आबादीमे रहनेवाले मुट्ठीभर भारतीयोको हटानेकी जरूरत जरा भी है? यह भी याद रखना चाहिए कि ये लोग वहाँ कई वर्षोसे रह रहे है। जहाँतक हम जानते है, इन लोगोके विरुद्ध अस्वच्छताका कोई आरोप नही लगाया जा सकता। बस्तीमे चार सौसे अधिक भारतीय रह रहे है, यह बात भी ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिको मजबूत करती है कि, जो लोग सुख-चैनके पाश्चात्य मानदण्डके अनुसार नही रहना चाहते वे अपने आप बस्तीमें रहते है। इसलिए यह निष्कर्ष बहुत उचित है कि जो थोडे-से लोग नगरमे रह रहे है वे अच्छी साफ-सुथरी हालतमे रहते है। इस तर्कमें ट्रान्सवालके प्लेगको भी शामिल कर लिया गया है, परन्तु जैसा कि हम पिछले अकोमे पहले ही बता चुके है, भारतीयोमे बडी सख्यामे बीमारीके होनेका कारण जोहानिसबर्ग नगरपालिकाकी पूरी-पूरी गफलत है और जोहानिसबर्ग तथा भारतीय बस्तीके बाहर भारतीयोकी स्थिति अन्य समुदायोसे किसी भी तरह बुरी नही रही है। हमारा सहयोगी स्वीकार करता है कि भारतीय कानूनका पालन करनेवाले है और उसने यह मजूर करनेकी भी कृपा की है कि "बौद्धिक दृष्टिसे वे सभ्य लोग है, और इस नाते उनकी मान-प्रतिष्ठाके बारेमे गम्भीरतापूर्वक शका नही की जा सकती।" तब यदि वे सफाईके पाश्चात्य स्तरको नही पहुँच पाते तो क्या, आखिरकार, उन्हे, पृथक् बाड़ोमे खदेडे बिना सुधारकी ओर झुका देना बहुत कठिन बात है? और क्या केप टाउन, डर्बन और अन्य स्थानोका अनुभव, जहाँ भारतीयोने मौका मिलनेपर यूरोपीयोसे सबक लेनेमे कसर नही रखी है, हमारे सहयोगीकी शकाओको गलत साबित नही करता? हम यह खयाल किये बिना नही रह सकते कि यदि *ईस्ट लन्दन डिस्पैच* निर्विकार होकर स्थितिका अवलोकन करता, वस्तुस्थितिको सही दृष्टिसे देखता और नगरपालिका भारतीयोको जिस तरह अनावश्यक रूपसे जलील करना चाहती है उसके विरोधमें भारतीय समाजके कार्योका समर्थन करता, तो वह जिस समाजके हितके लिए प्रकाशित होता है उसकी अधिक अच्छी सेवा करता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४-५-१९०४

१४७. जोहानिसबर्गमें प्लेग

जोहानिसबर्गकी जनताको यह सूचना दी गई है कि २९ अप्रैलको जोहानिसबर्गके मंडीघरमें दो यूरोपीय गिल्टीवाले प्लेगसे ग्रस्त हुए। रैंड प्लेग-समितिने बीमारोको रिएटफॉटीनके छुतहे रोगोके अस्पतालमे भेज देनेके सिवा इस महीनेकी ४ तारीखतक और कुछ नही किया। उसने मडी-घरको सन्देहका लाभ दिया और यह निष्कर्ष निकाला कि यदि विपरीत बात प्रमाणित न हो तो छूत बाहरी जरियोसे ही आई होगी। इस प्रकार, साधारण नियमको उलट दिया गया। क्योकि, जनसाधारणके नाते, हमने सदा यह समझा है कि यदि किसी खास स्थानमे प्लेग या और किसी छूतकी बीमारीसे कोई ग्रस्त होता है, तो उस स्थानको ही छूतसे ग्रस्त मानने और फिर उस स्थानमे ही छूतका कारण ढूँढ़नेकी कोशिश सबसे पहले जरूरी होती है। इस प्रकार डर्बन, केप टाउन और दक्षिण आफ्रिकाके दूसरे भागोमे ही नही, बल्कि संसारके शेष भागमे भी, जहाँ-कही ऐसी घटनाएँ हुई है, उन स्थानोमें ताला लगा दिया गया है, उन्हे सूतक (क्वारटीन)में रख दिया गया है और उनकी छूत नष्ट की गई है। परन्तु तेजदम जोहानिसबर्गमे, अतिप्रश-सित रैंड प्लेग-समिति उलटी गंगा बहाती है और छूतका और कही पता लगानेमे असमर्थ होने पर यह खोज करने लगती है कि कही वह स्वय मडीघरके भीतर ही तो नही है; और चार दिनकी खोजके बाद यह पता लगानेमे सफल होती है कि वहाँके चूहोपर प्लेगका असर था। उसके बाद अचानक, नाटकीय ढगसे समिति इस महीनेकी ४ तारीखको दुपहरमें मडीके गिर्द पुलिसका घेरा डलवा देती है और मकानोको कुछ हलके सूतकमे रख देती है। इससे बेशक लोगोके मनपर असर होता है, काफी हलचल पैदा हो जाती है और शायद प्रशसा भी प्राप्त होती है, परन्तु हमारा खयाल है, यह बहुत कुछ वैसा ही दिखाई देता है जैसे घोड़ा निकल जानेके बाद अस्तबलमे ताला लगाना। क्योकि इन दो घटनाओंका पता लगनेके बाद पूरे चार दिनतक मंडीके द्वारा नगरमे छूत फैलने दी जाती है। बेशक, ताज्जुबकी बात तो यह है कि इस समय सारा जोहानिसबर्ग प्लेगसे पीडित नही हो उठा। लेकिन कमसे-कम इस मामलेमे प्लेगसे आम मुक्तिके लिए बधाईकी हकदार समिति नही है, परन्तु इसका श्रेय उस शानदार मौसम और जोहानिसबर्गकी बड़ी ऊँचाईको है जो समितिकी बड़ी भूलोके बावजूद प्लेगके कीटाणुओको पनपने नही देती।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४-५-१९०४

१४८. परीक्षात्मक मुकदमेका फैसला[1]

जोहानिसबर्ग
मई १६, १९०४

निःसन्देह आप परीक्षात्मक मुकदमेमें प्रधान न्यायाधीशका दिया हुआ फैसला देख चुके है। एक मात्र प्रश्न था "निवास" शब्दकी व्याख्याका जो १८८५ के कानून ३ में आता है। और उसपर प्रधान न्यायाधीशने यह निर्णय दिया कि "निवास" के अन्तर्गत व्यापार-व्यवसायका स्थान नही आता। और उनकी इस व्याख्यासे उनके दो साथी न्यायाधीशोने सहमति प्रकट की है। इस प्रकार पन्द्रह वर्षतक कठिन सघर्ष करनेके पश्चात भारतीय स्थिति उचित सिद्ध हुई है और अब भारतीयोको ट्रान्सवालके किसी भी भागमें व्यापार करनेका अधिकार प्राप्त है। इस सम्बन्धमें सरकारने अपनी युद्धसे पूर्वकी स्थिति त्याग दी। आप फैसलेमें यह देखेंगे कि प्रधान न्यायाधीशको स्थानीय सरकारके इस कठोर और असगत रुखके सम्बन्धमें, जिसका समर्थक उपनिवेश-कार्यालय भी था, कुछ बहुत ही कडी बाते कहनी पडी है। आप यह भी देखेंगे कि प्रधान न्यायाधीशकी सम्मतिमें भारतीय व्यापारियोको ले जाकर पृथक बस्तियोमे डाल देनेका अर्थ है उन्हें आजीविकाके साधनोसे वचित कर देना। यह तो, जैसा उन्होने कहा, एक हाथसे देकर दूसरेसे छीन लेना ही हुआ।

इस प्रकार ब्रिटिश भारतीय सघकी वे सभी शिकायतें, जो उसने १८८५ के कानून ३ के अमल और पृथक् बस्तियोकी स्थापनाके सम्बन्धमें की थी, पूरी तरह उचित सिद्ध हो गई है। किन्तु इस सबका परिणाम क्या होगा, यह एक बहुत ही गभीर प्रश्न है। सामान्यत भारतीयोकी स्थिति अब यह होनी चाहिए कि वे कठिनाइयोका सामना करते जायें और बाकी काम करनेके लिए उपनिवेश कार्यालयपर निर्भर रहें। परन्तु दुर्भाग्यसे यहाँकी सरकार इतनी कमजोर है कि न्याय कर ही नही सकती। भारतीयोको यह जीत बहुत ही महँगी पडी है। वे इसका लाभ न भोग पाये, ऐसी आवाज़ अवश्य ही उठाई जायेगी और उसकी अस्पष्ट प्रतिध्वनि हमे सुनाई भी देने लगी है। और यदि सरकार भारतीयोंसे उनकी इस विजयका फल फिर छीननेके लिए एक विधेयक विधान-परिषदसे मजूर करा लेनेकी उतावली करे तो यह कोई आश्चर्यकी बात न होगी।

किन्तु एक बात निश्चित है। पुराना कानून भारतीय-व्यापारकी दृष्टिसे भारतीयोके प्रतिकूल है, इस आधारपर नया कानून बनाना कतई उचित नही ठहराया जा सकता। हम अब यह जानते है कि पुराने कानूनसे भारतीयोपर प्रवास और व्यापारके सम्बन्धमें कोई प्रतिबन्ध नही लगता। भारतीयोका यहाँ प्रवेश तो कारगर रूपमें शान्ति-रक्षा अध्यादेशसे रुका है। और यदि भारतीय व्यापारपर प्रतिबन्ध लगाना हो तो साम्राज्यीय उपनिवेशमे एक नया कानून बनाना पडेगा। इसका अर्थ यह है कि भारतीयोपर एक नई निर्योग्यता लगाई जायेगी जो पुराने शासनमें उनपर कानून द्वारा कभी लागू न थी। ऐसी निर्दयतापूर्ण है यह भाग्यकी विडम्बना! लड़ाईसे पहले ब्रिटिश सरकार, तब यद्यपि शासन विदेशी था फिर भी, भारतीयोको सरक्षण देती थी। अब

१. यह गांधीजीके एक वक्तव्यका मजमून है जो *इंडियामें* सम्पादनके बाद "एक सवाददातासे प्राप्त" रूपमें प्रकाशित किया गया था। इसकी एक प्रति दादाभाईको भी भेजी गई थी जिन्होंने उसके अश उपनिवेश-मन्त्री और भारत-मन्त्रीके नाम अपने जून ७, १९०४ के पत्रमे उद्धृत किये थे। (सी० ओ० २९१, खण्ड ७९, इंडिविजुअल्स — एन)

लड़ाईके पीछे सर्वशक्तिमान ब्रिटिश सरकार ब्रिटिश प्रजाके एक भागको संरक्षण देनेसे महज इसलिए इनकार करती है कि वह अपेक्षाकृत दुर्बल पक्ष है। अब ब्रिटिश भारतीयोंपर और अधिक निर्योग्यताएँ लागू करनेका कोई प्रयत्न किया जाये तो क्या उपनिवेश-कार्यालय उसे मजबूतीसे अपने पैर तले कुचलेगा? क्या भारत-सरकार अपना कर्तव्य पूरा करेगी?

[अंग्रेजीसे]

इंडिया, १-७-१९०४

१४९. अभिनन्दनपत्र: लेफ्टिनेंट गवर्नरको[1]

हाईडेलबर्ग
मई १८, १९०४

सेवामें
परमश्रेष्ठ सर आर्थर लाली
लेफ्टिनेंट गवर्नर
ट्रान्सवाल उपनिवेश

परमश्रेष्ठकी सेवामें निवेदन है कि,

हाइडेलबर्ग-निवासी ब्रिटिश भारतीयोंके हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले प्रतिनिधि इस नगरमें आपका समादरपूर्वक स्वागत करते हैं और इस अवसरका लाभ उठाते हुए यह तथ्य परमश्रेष्ठके ध्यानमें लाते हैं कि हाइडेलबर्गमें जो एशियाई *बाजार* स्थापित किया जा रहा है वह नगरसे बहुत ही ज्यादा दूर है।

यद्यपि परीक्षात्मक मुकदमेके निर्णयको देखते हुए दूरीका बहुत अधिक महत्त्व नहीं है, फिर भी हम आदरपूर्वक निवेदन करते हैं कि फेरीवालों और दूसरे लोगोंके लिए वह जगह असुविधाजनक होगी।

हम यह विश्वास करनेकी धृष्टता करते हैं कि स्वच्छताके जो नियम आवश्यक समझे जायेंगे, उनका पालन करनेपर सरकार हमें भारतीय परवाना-सम्बन्धी सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयके फलका लाभ उठाने देगी।

हम यह तथ्य भी आपके ध्यानमें लाना चाहते हैं कि जिस बाड़ेमें मसजिद बनायी गई है वह अभीतक मुस्लिम-समाजके नाम पंजीकृत नहीं किया गया है।

अन्तमें हम कामना करते हैं कि हमारे बीच आपका समय आनन्दसे बीते, हम परमश्रेष्ठसे प्रार्थना करते हैं कि महामहिम सम्राट तथा सम्राज्ञीसे सिंहासनके प्रति हमारी वफादारी और भक्ति-भावना निवेदित करनेकी कृपा की जाये।

परमश्रेष्ठके आज्ञाकारी सेवक,
ए० एम० भायात
तथा अन्य

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८-५-१९०४

१. यह अभिनन्दनपत्र सर आर्थर लालीको हाइडेलबर्गके भारतीय समाजकी ओरसे उनके वहाँ पधारनेपर दिया गया था।

१५०. परीक्षात्मक मुकदमा

ट्रान्सवालके सर्वोच्च न्यायालयके मुख्य न्यायाधीशका व्यापक और विशद निर्णय ट्रान्सवाल सरकार और भारतीयो–दोनोके अध्ययन करनेके लायक है। सरकारके लिए इस कारण कि मुख्य-न्यायाधीशने सिद्ध कर दिया है — जैसा कि इतने अधिकारके साथ और कोई मनुष्य नही कर सकता था — कि ब्रिटिश भारतीयोके प्रति सरकारका रवैया कितना हृदयहीन और असगत रहा है। भारतीयोंके लिए इस कारण कि उससे साबित होता है, स्थानीय अधिकारियोके थोडी देरके लिए गुमराह हो जानेपर भी ब्रिटिश सविधान और ब्रिटिश शासनमे कितनी बाते श्रेय है। ये अधिकारी — स्वार्थ, दुर्बलता या द्वेष, किसी भी कारणसे क्यो न हो — सामने आनेवाली विविध परिस्थितियोपर ठीक-ठीक विचार करने और समान रूपसे न्यायके वितरण करनेमे असमर्थ है। विद्वान मुख्य न्यायाधीश चाहते तो प्रश्नके अलग-अलग पहलुओंपर ध्यान न देते। वे सरकारकी भावनाओका लिहाज रख सकते थे। परन्तु उन्हें ऐसी दया नही आई। स्पष्ट है कि, उन्होने महसूस किया, न्याय और सत्यकी माँग है कि वे साफ-साफ कहें और उस शिकायतपर जो ब्रिटिश भारतीय संघ द्वारा लगातार दुहराई जाती रही है, कानूनी स्वीकृतिकी मुहर लगा दे। शायद उन्होने यह भी महसूस किया हो कि ट्रान्सवालके कानून-विभागमे ब्रिटिश राष्ट्रके मुख्य प्रतिनिधिकी हैसियतसे उनसे अपेक्षा की जाती है कि सरकारकी अपनाई असगत स्थितिसे वे अपने-आपको पूरी तरह अलग कर ले।

कानूनकी व्याख्या करते हुए सर जेम्स रोज इन्सने कहा.

> यह बिलकुल साफ है कि विधानमण्डलके ध्यानमें उन एशियाइयोंका मामला था जो व्यापार करनेके स्पष्ट हेतुसे बसने आये थे। और अगर उसका इरादा यह होता कि इस प्रकार बसनेवालोंका व्यावसायिक काम-काज पृथक् बस्तियोंकी सीमाओंमें मर्यादित रखा जाये, तो इस आशयका कोई निश्चित विधान अवश्य कर दिया गया होता। क्योंकि, यह मामला यूरोपीय और एशियाई, दोनोके लिए छोटा नहीं, समान रूपसे बड़े महत्त्वका था। यदि भारतीयोंको इस देशमें बे-रोकटोक आने देने और जहाँ चाहे वहाँ व्यापार करने देनेका मंशा था, तो वे गोरे दूकानदारोंके लिए निहायत जबरदस्त प्रतिद्वन्द्वी हो जानेवाले थे; और यदि इसके विपरीत, उनका व्यापारिक कार्य उन बस्तियोंमें ही सीमित रखा जानेको था, जिनमें वे रहते हैं, जो मुख्य शहरसे बाहर स्थित हैं और जिनमें उनके सजातीय लोग ही रहते हैं, तब तो व्यावहारिक कारणोंसे यही अच्छा होता कि वे व्यापार करते ही नहीं। जबकि कानून उनका व्यापारके प्रयोजनसे देशमें बसनेका हक स्वीकार करता है और पहुँचनेपर उनसे रजिस्ट्रीकी फीस वसूल करता है, तब यदि वह ऐसी व्यवस्थाएँ करता है जिनसे उनका व्यापार करना अव्यावहारिक और अलाभदायक हो जाता है, तो वह असंगत होगा। यह तो एक हाथसे देना दूसरेसे ले लेना हो जायेगा।

भारतीयोने इतने जोरोसे अपनी बात कभी नही कही। अब हमें इस शिकायतका, जिसका सरकारने इतने जोरोसे खण्डन किया है, समर्थन प्राप्त हो गया है कि पृथक बस्तियाँ व्यापार

के कामके लिए बिलकुल वेकार है और उनका उद्देश्य केवल भारतीयोको भूखो मारकर उपनिवेशसे निकाल देना है।

परन्तु असली डंक तो थोडा आगे चलकर आता है। "निवास" शब्दकी व्याख्या करनेके वाद विद्वान न्यायाधीश कहते है:

> **किन्तु खरीतोसे एक बात स्पष्ट है और वह यह कि, ट्रान्सवालके अधिकारी कानूनका जो अर्थ अब करना चाहते है वह वही है जिसकी दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यकी सरकार सदा हिमायत किया करती थी और जिसका ब्रिटिश सरकार बराबर विरोध करती रही है। ऐसी हालतमें यह बात विलक्षण लगती है कि नया कानून बनाये बिना ट्रान्सवालमें सम्राटके कर्मचारी एक ऐसा दावा पेश करें जिसे इंग्लैंडमें सम्राटकी सरकार हमेशा कानूनकी पुस्तकके अनुसार नाजायज बताती रही है और जिसका उसने भूतकालमें दृढ़तासे विरोध किया है।**

ब्रिटिश अधिकार हो जाने पर इस तरहका रवैया इख्तियार करना और श्री क्रूगरके शासन-कालमे ब्रिटिश सरकारके नामपर जो वचन दिये गये थे उन सवपर पानी फेर देना जाहिर करता है — और यह हम अत्यन्त आदरके साथ कहते है — कि यह ब्रिटिश परम्पराओका शोचनीय अज्ञान है। या, उससे भी बुरा, उन सब वातोसे जानवूझकर हटना है जो बिटिश राज्यमे अवतक पवित्र मानी गई है और जिन्होने भिन्न-भिन्न भागोको एक सूत्रमे बाँधकर रखा है। फैसला अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और निर्णयसे भारतीय दावेका पूर्ण समर्थन हो जाता है। परन्तु इस परिणामका हमारे ट्रान्सवालवासी देशभाई पूरा लाभ उठा सके, इसके लिए अब एक बातकी जरूरत है, जो यह है कि, समाजके प्रतिनिधि अपने सदस्योके जोशको काबूमे रखे और व्यापार करनेके अधिकारका सौम्य उपयोग ही करे। यह फल अब, पिछले पन्द्रह सालकी जबरदस्त बाधाओसे लगातार जूझनेके वाद, प्राप्त हुआ है। हम जानते है कि इस उपदेशपर अमल करना बहुत कठिन है। हमेशा यह नही कहा जा सकता कि परवानेके लिए कौन अर्जी देगा और कौन नही, क्योकि अधिकार सभीको है। परन्तु ऐसी कठिनाइयाँ आनेपर ही किसी समाजके वास्तविक सत्त्वकी परख होती है। अगर लोग इस विजयसे उन्मत्त होकर यत्र-तत्र-सर्वत्र व्यापारके परवानोके लिए प्रार्थनापत्र देने लगे तो बडी हानि होगी, और उनके निन्दक लोग अधिक प्रहार करनेके लिए ऐसी स्थितिको हथियार बनानेमे देर नही लगायेंगे। परिस्थिति नाजुक है, मगर पूरे फलका उपभोग करना है तो नेताओको उसका सामना करना ही होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-५-१९०४

१५१. नेटालके प्लेग-नियम

नेटालके इस महीनेकी १० तारीखके *गवर्नमेंट गज़टमें* प्रकाशित प्लेग-नियमोंसे भारतीयोके वारेमे अकारण भय प्रकट होता है कि वे ट्रान्सवालसे प्लेग ले आयेंगे। ट्रान्सवालसे आनेवाले वतनियो, भारतीयों और दूसरे रगदार व्यक्तियोको वे उपनिवेशके सिर्फ एक स्थान — चार्ल्स-टाउनमे आने देते हैं। चार्ल्सटाउनसे आगे वे तबतक नही बढ़ सकते, जबतक उनके पास ट्रान्स-वाल-सरकारका दिया हुआ यात्राका परवाना न हो, और यह परवाना तबतक नही दिया जाता जवतक कडी डाक्टरी जाँच न हो जाये और जबतक वे चार्ल्सटाउनके स्वास्थ्य-अधिकारीसे यात्रा आगे जारी रखनेका अधिकार देनेवाला परवाना प्राप्त न कर ले। ट्रान्सवालके अधिकारियोकी कार्रवाईपर यह दोहरी सावधानी या अविश्वास क्यो होना चाहिए, सो स्पष्ट नही हैं। और यह देखते हुए कि इतना अविश्वास है, ट्रान्सवालका प्रमाणपत्र पेश करनेकी जरूरत ही क्यो होनी चाहिए ? साथ ही, जो लोग विटवाटर्सरैंड जिलेसे आते है, उनके पास ट्रान्सवालका परवाना हो या न हो, वे पाँच दिनके लिए चार्ल्सटाउनमें रोक रखे जाते हैं। उपनिवेशमें रोगके अभि-शापका प्रवेश रोकनेके काममें हम सरकारके प्रयत्नोकी कद्र करने और उसके साथ सहयोग करनेके लिए सदा तैयार है; परन्तु हमारा खयाल है कि उपर्युक्त नियम बडे कष्टप्रद हैं और उचित नही हैं। वर्षके इस समयमें चार्ल्सटाउनमे रोक रखा जाना बहुत ही तकलीफ देनेवाली वात है और रेलगाडीमे ही सब यात्रियोकी अथवा केवल रंगदार मुसाफिरोकी ही डाक्टरी जाँच काफी होनी चाहिए। अगर ऐसी जाँचमें किसी व्यक्तिमें रोगके कोई लक्षण पाये जाये, तो उसे अलग करके सूतकमे रखा जाना चाहिए। यह जरूरी नही कि उसे चार्ल्सटाउनमें ही रखा जाये; बल्कि डर्बन या ऐसे ही किसी अन्य स्थानमें रखा जा सकता है। निश्चय ही, किसी ऐसे सन्दिग्ध व्यक्तिके प्रवेशसे तो, जो डाक्टरी निरीक्षण-परीक्षणमें रखा जाता है, उपनिवेशमें प्लेग नही आ सकता। परन्तु सरकारको धन्यवाद है कि चार्ल्सटाउनके स्वास्थ्य-अधिकारीको उसने यह अधिकार दे दिया है कि वह उपर्युक्त जाब्तोंसे गुजरे बिना भी किसी पहले या दूसरे दर्जेके रगदार मुसाफिरको अपने नियत स्थानपर जानेकी इजाजत दे दे; और यद्यपि, जैसा हमने दिखाया है, नियम बडे असुविधाजनक हैं, फिर भी इस प्रकार दिये गये अधिकारके उदारतापूर्ण प्रयोगसे नियमोका शातिके साथ निर्वाह हो सकता है। अन्तमें तो, नियम वहुत कष्टप्रद साबित होते हैं या नही, यह बहुत कुछ चार्ल्सटाउनसे सम्बन्धित स्वास्थ्य-अधिकारी और उसके मातहतोंके स्वभाव पर निर्भर रहेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१–५–१९०४

१५२. "कुली" क्या है?

नगर-निगम विधि आयोग (म्यूनिसिपल कॉरपोरेशन लॉज़ कमिशन)की रिपोर्ट, आयोग द्वारा तैयार किये हुए विधेयकके मसविदेके साथ, आम लोगोकी जानकारीके लिए इस मासकी ३ तारीखके *ट्रान्सवाल गवर्नमेंट गज़टमें* प्रकाशित कर दी गई है। विधेयक स्वय एक सावधानीसे तैयार किया हुआ अभिलेख है, जिसमे अनुसूचियोके अलावा ३२६ उपधाराएँ है। उसके कुछ खण्ड ऐसे है, जिनका भारतीय समाजपर अत्यन्त मार्मिक असर पडता है और जिनसे उपनिवेशकी नगरपालिका-सम्बन्धी नीति गम्भीर रूपसे भग होती है। एक दूसरे स्तम्भमे हम विधेयकके वे अंश छाप रहे है जिनका उपनिवेशमे बसे ब्रिटिश भारतीयोपर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव पडता है। व्याख्यात्मक उपधारामे "रगदार व्यक्ति" शब्दोकी व्याख्या इस तरह की गई है, जिससे "कुली" शब्दको सरकारी आधार मिल जाता है, और वह इतनी अस्पष्ट है कि उससे भविष्यमे बहुत परेशानी होगी। सभीका खयाल यह था कि कुछ वर्ष पहले श्रीमती विन्दनके मामलेमें[1] सर वाल्टर रैगने जो आक्षेप किये थे, उनके बाद विधेयकके निर्माता इस बातकी बहुत सावधानी रखेगे कि इस शब्दका प्रयोग किस प्रकार करते है। इस व्याख्याके अनुसार दूसरे अर्थोके साथ-साथ रगदार व्यक्तिका एक अर्थ "कुली" भी होगा। कुली क्या होता है? यह ठीक-ठीक कोई नही जानता। अगर उसे भारतीय अर्थमे लिया जाये तो वह सिर्फ मजदूर या सामान ढोनेवाला होता है। अगर आम भद्दा अर्थ लगाया जाये तो फिर प्रत्येक भारतीय — भले ही कुछ भी हो या कोई भी हो — कुली है। अगर इसका अर्थ मर्यादित रखना हो, जो उपनिवेशके अधिक जानकार लोग लगाते है, तो वह होता है गिरमिटिया भारतीय। अब, ऐसी व्याख्या सहज ही की जा सकती थी, जिसे देखते ही तुरन्त प्रकट हो जाता कि आयुक्तोका इरादा "रगदार व्यक्ति" शब्दोमे किस वर्गके भारतीयोको सम्मिलित करनेका है। "असभ्य जातियाँ" शब्दोकी व्याख्या भारतीयोके लिए अत्यन्त असंतोषजनक और सतापकारी है। हम नम्रतापूर्वक कहना चाहते है कि गिरमिटिया भारतीय भी असभ्य जातिके लोग नही है, परन्तु उनकी सन्तानोको असभ्य कहकर बहिष्कृत कर देना तो समझमे ही नही आता। हमे उन सैकड़ो भारतीय बच्चोका खयाल आता है जो, जैसा सर हैनरी मैं'कैलमने कहा है, अत्यन्त चतुर और विनम्र है, परन्तु गिरमिटिया भारतीयोसे उत्पन्न होनेके कारण असभ्य वर्गमे गिने जायेंगे। इसे हम ब्रिटिश भारतीयोके असयत अपमानके सिवा और कुछ नही समझते। किन्तु विधेयकका सबसे आपत्तिजनक पहलू है उसकी नागरिकोकी योग्यताएँ। अबतक सामान्य कानूनके अनुसार नगरपालिकाओका मताधिकार भारतीयोको प्राप्त था; परन्तु इस विधेयकमे यह व्यवस्था की गई है कि जो लोग १८९६ के अधिनियम ८ के अनुसार ससदीय मताधिकारके अयोग्य है वे नागरिक होनेके भी अयोग्य होगे। स्वर्गीय श्री एस्कम्बने निश्चित रूपसे कहा था कि वे नगरपालिका-मताधिकारको छूना नही चाहते, और उन्होने नागरिक मताधिकारको उसी आधारपर रखनेसे इनकार कर दिया था जिसपर राजनीतिक मताधिकार स्थित है। फिर भी, हम आयुक्तोको गम्भीरतापूर्वक यह प्रस्ताव करते देखते है कि भारतीयोको मताधिकारसे — नगरपालिका-चुनाव-सम्बन्धी मताधिकारसे भी — सर्वथा वचित कर दिया जाये! उन्होने इस

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ९।

बातपर कोई ध्यान नही दिया कि अबतक भारतीयोने बहुत आत्मसयमसे काम लिया है, क्योकि उन्होने उपनिवेशकी नागरिक सूचीमे रखे जानेके अधिकारका उपयोग नही किया, बल्कि अधिकारको काममें लाये बिना अधिकारकी प्राप्ति-मात्रसे ही सतोष कर लिया है। आयुक्तोने इस तथ्यसे भी अपनी आँखे बन्द रखी है कि भारतमे लाखो लोग नगरपालिका-मताधिकारका प्रयोग कर रहे है। यदि यह दलील भी दी जाये कि भारतमे भारतीयोको कोई राजनीतिक मताधिकार प्राप्त नही है -- जिसे हम चुनौती देते है -- तो भी उक्त तथ्यके बारेमें तो तर्ककी गुजाइश है ही नही। सारे भारतमे जहाँ-तहाँ सैकडो नगरपालिकाएँ है, जिनमे से अधिकतरकी शासन-व्यवस्था भारतीयोके ही हाथमें है। यदि वे "रगदार व्यक्तियो" और "असभ्य जातियो" की व्याख्या करनेके बाद अपने विधेयकके निर्माणमे इन शब्दोका प्रयोग न करते तो यह आश्चर्यकी ही बात होती। वे नगर-परिषदोको ऐसे उपनियम बनानेका अधिकार देना चाहते है जिनके अनुसार रगदार व्यक्तियो द्वारा पक्की पटरियो और रिक्शागाड़ियोका व्यवहार वर्जित होगा और वे "रगदार व्यक्ति" के लिए नगर-परिषद द्वारा निर्धारित घटोमे घरसे बाहर निकलना भी जुर्म करार देंगे। विधेयकमे नगरपालिकाओको ऐसे उपनियम बनानेका अधिकार देनेकी बात भी है जिनसे "असभ्य जातियो" के व्यक्तियोके पजीकरणकी प्रणाली कायम हो जायेगी और चूँकि धारामे ऐसी कोई बात नही है जिससे यह प्रकट हो कि वह केवल घरेलू नौकरोपर ही लागू होती है, इसलिए उसका अर्थ यह है कि उन भारतीय कारकुनो और इसी तरहके दूसरे कर्मचारियोको भी अपना पंजीकरण कराना पड़ेगा, जो गिरमिटिया भारतीयोकी सन्तान है। जो वतनी काम नही करना चाहते और जिन्हें गैरहाजिर होनेपर ढूँढना बड़ा मुश्किल होता है, उनकी रजिस्ट्री करना एक बात है, और जो भारतीय विनम्र, परिश्रमी और प्रतिष्ठित है, जिनका एकमात्र कसूर यह है कि वे हदसे ज्यादा काम करते है, उनसे यह आशा रखना बिलकुल दूसरी बात है, और वह अत्यन्त अपमानजनक है, कि वे अपना पजीकरण करायेंगे और अपने साथ पजीकरणके बिल्ले लिये फिरेंगे। अन्तमे, आयुक्तोने नगर-निगमकी तमाम बिक्रियोपर नगर-परिषदोकी मजूरी जरूरी कर दी है और नगर-परिषदोंको यह अधिकार दे दिया है कि वे कोई कारण बताये बिना किसी भी ऐसी बिक्रीको स्वीकार या अस्वीकार कर दे। इससे अंगुली पकड़कर पहुँचा पकड़नेका अवसर उपलब्ध हो गया है। इस प्रकार जो बात श्री लिटिलटनको सीधी भेजनेपर शायद मजूर होनी सभव न थी वही, यदि सरकारने विधेयक मंजूर कर लिया तो, उनके सम्मुख इस रूपमे प्रस्तुत की जायेगी कि उनके पास उसे स्वीकार करनेके सिवा कोई दूसरा चारा ही नही हो सकता। ऐसी हालतमे हमें यह कहनेमें कोई सकोच नही कि विधेयक अत्यन्त प्रतिगामी ढगका है और यदि सरकार उसको अपनाना चाहती है तो ब्रिटिश भारतीयोको अपनी स्वतन्त्रतामे कटौतीके इस नये प्रयत्नको विफल बनानेके लिए बहुत बड़ी कोशिश करनी पड़ेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-५-१९०४

१५३. पूर्वी ट्रान्सवालके पहरेदार

पूर्वी ट्रान्सवाल पहरेदार सघ (ईस्ट रैंड विजिलैंट्स)के सज्जनोकी सतर्कतामे कोई भूल-चूक नही है। परीक्षात्मक मुकदमेका फैसला जिस कागजपर था उसपर अभी स्याही भी नही सूखी है कि हमारे इन मित्रोने उसके विरुद्ध हथियार उठा लिये है और वे सरकारसे तुरन्त ऐसा कानून बनानेका अनुरोध कर रहे है, जिससे सरकारको एशियाई-विरोधी प्रस्तावोके द्वारा प्रेषित उनके विचार अमलमे आ जाये। उनकी नीति सक्षेपमे इन शब्दोमे प्रकट है. "बस्तियोके सिवा अन्यत्र न एशियाई रहे, न उनका व्यापार।" वे नेटालके व्यापार-सघसे भी आग्रह कर रहे है कि वे अपनी बैठक बुलाये और सोचे कि उस खतरेके विरुद्ध क्या कदम उठाये जाये जो, उनके मतानुसार, सभीके सामने सामान्यरूपसे मौजूद है। हमारा उनसे उचित व्यवहार या ब्रिटिश न्यायके नामपर अपील करना व्यर्थ है, क्योकि उनका दोनोमे ही विश्वास नही है। उन्हे एशियाइयोकी सगति नही, उनका स्थान चाहिए और जबतक वे यह फल प्राप्त नही कर लेते तबतक उपाय और साधन कैसे है, यह विचार नही करेगे। अगर खबरे सही है तो उनको एक ऐसा राजस्व-अधिकारी मिल गया है जो उनके इशारोपर नाचनेके लिए काफी तैयार है, क्योकि समाचार मिले है कि उसने एशियाइयोको परवाने देनेसे इनकार कर दिया है और मामला अधिकारियोको विचारार्थ भेज दिया है। ऐसे रवैयेको देखते हुए हमने ऊपर जो चेतावनी दी है उसे ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोको हृदयगम कर लेना चाहिए। यह जानना दिलचस्प होगा कि सरकार अब क्या करना चाहती है। अबतक वह अपने व्यवहारमे भूतपूर्व उच्च न्यायालयकी व्याख्याके अनुसार १८८५के कानून ३ की आड़ लेती रही है। अब चूँकि यह ढाल उसके हाथोसे छूट चुकी है, इसलिए क्या वह ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोके मुँहका कौर छीननेका कोई और बहाना ढूँढेगी? लॉर्ड मिलनरने श्री लिटिलटनको आश्वासन दिया है कि पुराने कानून हर प्रकारसे भारतीयोकी भावनाओका लिहाज रखकर लागू किये जा रहे है और इसमे पहलेके मुकाबले आधी भी कठोरता नही बरती जा रही। निस्सन्देह, जैसा कि हम कह चुके है, यह बात तथ्योसे सिद्ध नही है। परन्तु अब लॉर्ड महोदय क्या कहेगे? पुराने कानूनसे तो भारतीय व्यापारपर कोई बन्धन लगता ही नही! तब वे क्या नये बधन तैयार करेगे? नही; किसी अन्य कारणसे नही तो लॉर्ड महोदयकी राजनीतिज्ञताके कारण ही सही, हम सच्चाईके साथ आशा करते है, वे ऐसा नही करेगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-५-१९०४

१५४. क्रूगर्सडॉर्प और ब्रिटिश भारतीय

क्रूगर्सडॉर्प नगर-परिषदने सर्वसम्मतिसे अपनी पूर्वगामी परिषदके एशियाई *बाजार*के स्थान-सम्बन्धी चुनावको व्यवहारत. रद करनेका फैसला किया है। उसका खयाल है कि वह स्थान. केवल भारतीय व्यापारियोंके लिए चुना गया था और एक अन्य बस्ती बसाई जानेवाली थी, जिसमे फेरीवाले और दूसरे भारतीय रहते। क्या अज्ञान इससे अधिक गहरा हो सकता है? फिर भी लॉर्ड मिलनर और उनके सलाहकारोंने भारतीयोका भाग्य व्यवहारत ऐसे सज्जनोके हाथोमे सौप दिया है जिन्हे ब्रिटिश भारतीयोकी परवाह नही के बराबर है और उतनी ही परवाह स्वयं अपनी कार्रवाइयोकी भी है। वर्तमान नगर-परिषद नामजद किये हुए भूतपूर्व निकायके निश्चयको रद करना चाहती है और सरकारसे दूसरे स्थानके चुनावका अनुरोध कर रही है। अब चूंकि परवाने देनेका सवाल कमसे-कम फिलहाल तो खत्म कर दिया गया है, इसलिए यह मामला बडे महत्त्वका है। साथ ही, इससे यह प्रकट होता है कि क्रूगर्सडॉर्प नगर-परिषदके सदस्योके हाथो भारतीय हितोकी कैसी गति होनेकी सभावना है। और हमें बडा अन्देशा है कि जो बात क्रूगर्सडॉर्पपर लागू होती है वही शेष ट्रान्सवालपर भी होती है। महापौरने कृपापूर्वक यह सुझाव दिया था कि जो लोग इस समय तम्बुओमें रह रहे है, उन्हे कड़ाकेकी सर्दीके कारण अपने-अपने घरोको लौट आने दिया जाये, या नगर-परिषद पुरानी बस्तीपर तुरन्त कब्जा कर ले और लोगोको नये *बाजार* या नयी बस्तीमें स्थान ग्रहण करने दे। दु ख यही है कि महापौरमें इतना साहस नही था कि वे उन लोगोके प्रति मानवोचित व्यवहारकी वकालत जारी रखते और उनके साथ न्याय करनेका आग्रह करते, जो कष्ट पा रहे है इसलिए नही कि यह सार्वजनिक-स्वास्थ्यका मामला है और उसको खतरा होनेके कारण इसकी जरूरत है, बल्कि इसलिए कि क्रूगर्सडॉर्प नगर-परिषदके सदस्योके दिलोमे गहरा रग-विद्वेष और व्यापारिक ईर्ष्या जमी हुई है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-५-१९०४

१५५. एशियाई व्यापारी-आयोग

जोहानिसबर्गके पत्रोमे इस आशयकी एक सक्षिप्त सूचना निकली है कि परीक्षात्मक मुकदमेके परिणामके कारण इस आयोगकी बैठके स्थगित कर दी गई है। अधिकारियो द्वारा लापरवाहीसे रुपया खर्च करनेका यह एक और उदाहरण है। जो बात उन्हे पहले करनी चाहिए थी, वह अब हालातसे मजबूर होकर सैकडो पौड बरबाद करनेके बाद की गई है। ब्रिटिश भारतीय सघने ज्यो ही परीक्षात्मक मुकदमा दायर किया गया त्यो ही सरकारसे आयोगकी बैठके मामलेका फैसला होनेतक स्थगित रखनेकी प्रार्थना की थी, परन्तु वह किसी भी दलीलसे कायल न की जा सकी। सरकारको जो जवाब देना था वह कुल इतना ही था कि चूँकि आयोग विधान-परिषद द्वारा नियुक्त किया हुआ है, इसलिए सरकार उसके मामलेमे दखल नही दे सकती। परन्तु अब चूँकि परीक्षात्मक मुकदमेका निर्णय सरकारके विरुद्ध हो गया है, इसलिए वह एकाएक अपने-आपको आयोगकी बैठके स्थगित करनेकी सत्तासे सज्जित पाती है। यह तो लाल फीताशाहीकी अति-जैसी है। सघकी प्रार्थना बहुत ही सयत और तर्कसगत थी और उसके पीछे खयाल था कि उससे सरकारकी सहायता होगी और खर्च बचेगा। फिर भी चूँकि उसका अर्थ यह लगाया जा सकता था कि सरकार ब्रिटिश भारतीय सघकी इच्छाओके आगे झुक गई, इसलिए उसको माननेसे साफ इनकार कर दिया गया। अगर कोई सदस्य विधान-परिषदके अगले अधिवेशनमें यह प्रश्न पूछे तो बड़ी दिलचस्प बात होगी कि, परीक्षात्मक मुकदमा दायर हो जानेपर भी आयोग क्यो कायम रखा गया था, अथवा, क्या यह बात थी कि सरकारको भारतीयोपर विजय-प्राप्तिका पूरा भरोसा था?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१–५–१९०४

१५६. पत्र : मंचरजी मेरवानजी भावनगरीको[1]

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
मई २३, १९०४

सेवामें
सर मचरजी भावनगरी, संसद-सदस्य,
१९६, क्रामवेल रोड
लन्दन, इग्लैंड

प्रिय महोदय,

परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर, सर आर्थर लालीने हाइडेलबर्गसे गुजरते हुए एक भारतीय शिष्टमण्डल द्वारा दिये गये अभिनन्दनपत्र[2] के उत्तरमे जो कहा उसका आशय यह था कि परीक्षात्मक मुकदमेके फैसलेके बलपर भारतीय व्यापारियोकी अबाध व्यापार करनेकी स्वतन्त्रता बरदाश्त नही की जायेगी। और यह भी कि, इस दिशामे कानून बनानेकी अनुमतिके लिए श्री लिटिलटनसे निवेदन किया जा चुका है।

१८८५ के कानून ३ में, जिसका सशोधन १८८६ मे किया गया, जो भारतीय स्थिति बताई गई थी, और परीक्षात्मक मुकदमेके फैसलेके अनुसार, जिसकी व्याख्या की गई थी, वह इस प्रकार है :

(१) भारतीय बेरोक-टोक उपनिवेशमें आकर रह सकते है।
(२) वे उपनिवेशमें जहाँ चाहे व्यापार कर सकते हैं। उनके लिए पृथक बस्तियाँ निर्धारित की जा सकती है, किन्तु कानून उन्हे केवल बस्तियोमे रहनेको बाध्य नही कर सकता। कानूनमे इसके लिए कोई व्यवस्था नही है।
(३) वे नागरिक नही बन सकते।
(४) वे बस्तियोके अलावा और कही भी अचल सम्पत्ति नही रख सकते।
(५) उपनिवेशमे आनेपर उन्हे ३पौंड पजीयन (रजिस्ट्रेशन)-शुल्क देना पडेगा।

इसलिए, उपर्युक्त कानूनकी रूसे भी, अचल सम्पत्ति रखनेपर रोकके अतिरिक्त, भारतीयोकी परिस्थिति अभी एकदम चिन्ताजनक नही है।

तथापि, शान्ति-रक्षा अध्यादेश (पीस प्रिजर्वेशन ऑर्डिनेन्स)का अनुचित उपयोग करके आने-जानेकी स्वतन्त्रता बिलकुल छीन ली गई है। अध्यादेशका ऐसा उपयोग आखिरकार अन्यायपूर्ण है। यह अध्यादेश कानूनके अनुसार चलनेवाली ब्रिटिश प्रजाके लिए नही, विद्रोही और राजद्रोही लोगोकी हलचलोपर रोकथाम लगानेके विचारसे बना था।

विधान किस रूपमे पेश करनेका विचार है, अभी यह कहना कठिन है, किन्तु यह देखते हुए कि उसको पेश करनेके भी पहले श्री लिटिलटनकी मजूरी जरूरी है, मुझे भरोसा है कि आप उनसे मिलकर इस प्रश्नपर चर्चा कर लेगे। यदि एक बार उन्होने किसी खास कार्रवाईके लिए अपनी अनुमति दे दी तो फिर राहत पाना बहुत कठिन हो जायेगा।

१. सर मचरजी भावनगरीने इस पत्रकी एक नकल उपनिवेश-कार्यालयको भेजी थी। *इंडियाने* अपने १ जुलाई १९०४ के अकमें इसको "निजी सवाददाता द्वारा" प्रेषित पत्रके रूपमें प्रकाशित किया था।

२. देखिए "अभिनन्दनपत्र: लेफ्टिनेंट गवर्नरको", मई १८, १९०४।

मै यह सुझानेकी धृष्टता करता हूँ कि १८८५ का कानून ३ पूरा-पूरा रद कर दिया जाये। साथ ही, पैदल-पटरियोसे सम्बन्धित नगर-नियम और एशियाइयोपर विशेष रूपसे निर्योग्यताएँ लादनेवाले तमाम कानून भी रद कर दिये जाये। केपकी तरहका एक प्रवासी-अधिनियम बनाया जाना चाहिए, किन्तु भारतीय भाषाओको शैक्षणिक योग्यताकी कसौटीमे अछूत नही मानना चाहिए। और, नेटालकी तरह एक विक्रेता-परवाना अधिनियम बनाया जाना चाहिए। शर्त यह है कि, उसमे परवानेकी अर्जियो पर स्थानीय अफसरोके निर्णयोके खिलाफ सर्वोच्च न्यायालयमे अपीलका अधिकार हो, और वर्तमान परवाने उससे अछूते रहे — हाँ, अगर दूकाने स्वच्छता और शोभाके आवश्यक मानको पूरा न करती हो तो इसमे अपवाद किया जा सकता है।

इस प्रकार प्रवासका जबरदस्त हौआ हमेशाके लिए हट जायेगा, और व्यापारमे अनुचित भारतीय स्पर्धाका प्रश्न भी न रहेगा। स्थानीय अधिकारी परवानोकी सख्याका नियमन कर सकेंगे।

भारतीयोका इतना ही दावा है कि जबतक वे पाश्चात्य ढगकी जरूरतोके मुताबिक चलते है तबतक उन्हें व्यापार करने, अचल सम्पत्ति रखने, नागरिकताके अधिकारोको भोगने आदिका अधिकार उपनिवेशके सर्वसामान्य नियमोके अनुसार मिलना चाहिए।

मै आपको यह भी याद दिला दूँ कि लॉर्ड मिलनर ऐसे ही किसी विधानके लिए प्रतिज्ञा-बद्ध है, ब्रिटिश भारतीयोपर विशेष रूपसे निर्योग्यताएँ लादनेवाले विधानके लिए नही। और वे इसके लिए भी प्रतिज्ञाबद्ध है कि शिक्षित और आसूदा भारतीय किसी भी प्रकारके प्रतिबन्धक विधानसे एकदम मुक्त रखे जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स. सी० ओ० २९१, जिल्द ७८, इडिविजुअल्स—बी।

१५७. ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय

अच्छा ही हुआ कि, हाइडेलबर्गके ब्रिटिश भारतीयोने ट्रान्सवालके परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेट गवर्नरको वफादारी-भरा मानपत्र दिया और, ऐसा करते हुए, उनका ध्यान हालमे ही निर्णीत परीक्षात्मक मुकदमेकी तरफ खीचा। उसके कारण परमश्रेष्ठको सरकारी नीतिके सम्बन्धमे एक महत्त्वपूर्ण घोषणा करनी पड़ी। सर आर्थर लालीने शिष्टमण्डलको जो उत्तर दिया था उसका फोक्सरस्टके उस भाषणमे विस्तार किया जो उन्होने अपने सम्मानमे फ़ोक्सरस्टके लोगो द्वारा आयोजित भोजमे दिया था। परमश्रेष्ठने भारतीयोकी वफादारी और परिश्रमशीलताकी उचित सराहना की। ट्रान्सवालमे भारतीयोके दर्जेके बारेमे परमश्रेष्ठ बहुत सभल-सभल कर बोले। उन्होने कहा कि जबतक उपनिवेश-मन्त्रीसे स्वीकृति न मिल जाये तबतक सरकार कुछ नही कर सकती। परन्तु उन्होने यह कहनेमे कोई संकोच नही किया कि उन्हे गोरे निवासियोसे बहुत ज्यादा सहानुभूति है जो एशियाई व्यापारियोसे मात नही खाना चाहते। उन्होने फोक्स-रस्टके लोगोको वचन भी दिया कि वे अपने स्वदेशवासियोंकी इच्छा-पूर्तिका भरसक प्रयत्न करेंगे। अलबत्ता उनका यह वचन शर्तके साथ था। उन्होने कहा कि सरकारकी कार्रवाई पूर्णत. न्यायके अनुसार होगी। निहित स्वार्थोकी रक्षा करनी होगी, जो लोग उपनिवेशमे पहलेसे बसे है उनकी स्थितिकी व्याख्या ठीक-ठीक करनी होगी और यह भी बताना पड़ेगा कि जो लोग भविष्यमे इस देशमे प्रवेश करेंगे उन्हे किन-किन अयोग्यताओके मातहत काम करना होगा। ये सारी बाते बहुत सतोषजनक है। वर्तमान अनिश्चित स्थितिके स्थानमे जो भी व्यवस्था

होगी हम उसका स्वागत करेंगे और यदि "निहित स्वार्थ" शब्दोंकी व्याख्या न्यायोचित की जाती है तो जो लोग ट्रान्सवालमें इस समय कारोबार कर रहे हैं उन्हें चिन्ता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु दुर्भाग्यसे भूतकालको देखते हुए भविष्यके बारेमें आशा नहीं बँधती। दुर्भाग्य-ग्रस्त एशियाई व्यापारी आयोगने स्पष्ट कर दिया है कि 'निहित स्वार्थो" से सरकारका मतलब क्या है। वह उन्हीं ब्रिटिश भारतीयोंके व्यापारको मान्यता देगी, जो "लड़ाई छिड़नेके समय और उसके ठीक पहले" ट्रान्सवालमें बस्तियोंके बाहर वस्तुतः व्यापार कर रहे थे। हम जानते हैं कि इसका अर्थ क्या है। और, हम यह भी जानते हैं कि इस अभिव्यक्तिकी आयुक्तोंने क्या व्याख्या की थी। इससे केवल उन दर्जनभर एशियाइयोंकी रक्षा होगी, जो लड़ाईके समय अपना समूचा व्यापार छोड़कर डरके कारण इस देशसे चले गये थे। और यदि "निहित स्वार्थ" शब्दोंकी व्याख्या यही की जायेगी तो ट्रान्सवालके मुख्य न्यायाधीशके अर्थपूर्ण शब्दोंमें इसका मतलब यह होगा कि वह जो-कुछ एक हाथसे देगी, जैसा वह दावा करती है, उसको फिर दूसरे हाथसे छीन लेगी। परमश्रेष्ठने स्वयं यह कहकर खतरेका पूर्वाभास दे दिया है कि सरकार ब्रिटिश भारतीयोंके व्यापारकी रक्षा केवल मौजूदा परवानेदारोंके जीवनकालतक ही करेगी। जो आदमी व्यापार करता है वह जानता है कि इसका मतलब क्या है। तमाम व्यापारिक लेन-देनमें निश्चितता बहुत आवश्यक होती है और कानून बताता है कि जो भारतीय व्यापारी माल उधार माँगते हैं, उनके व्यापारकी अवधि बिलकुल सुनिश्चित नहीं है, और उनकी मृत्यु होते ही उनका कारोबार एकाएक बन्द हो जायेगा। फिर मानव-जीवन बड़ा अस्थिर होता है: तब क्या ऐसे गोरे व्यापारी मिलेंगे, जो यह सब जानते हुए भी भारतीय व्यापारियोंको कुछ भी माल उधार दे दें? यह समझना मुश्किल है कि परमश्रेष्ठ भारतीयोंको न्यायमात्रका जो दान करना चाहते हैं उसके साथ इस प्रकारके सिद्धान्तका मेल कैसे बैठ सकता है। इसलिए हमें न्याय करनेके सरकारी इरादोंका स्वागत इच्छा न होनेपर भी कुछ संयम और सावधानीसे करना पड़ता है। परमश्रेष्ठने गोरोंके व्यापारपर भारतीयोंके व्यापारके असरके बारेमें जो राय बनाई है उससे भी सान्त्वनाका कोई आधार नहीं मिलता। परमश्रेष्ठने बड़ी संख्यामें एशियाइयोंके प्रवेशकी बात कही है। हम उसके विरुद्ध आदरके साथ अपनी आपत्ति प्रकट करते हैं। वे अवश्य ही अच्छी तरह जानते हैं कि शान्ति-रक्षा अध्यादेश ब्रिटिश भारतीयोंतकको उपनिवेशसे बाहर रखनेके साधनके रूपमें कितनी सख्तीसे काममें लाया जा रहा है। जब चीनी मजदूर-आयात अध्यादेश विधान-परिषदमें पास हो रहा था तब सरकारको यह सिद्ध करना परम आवश्यक हो गया था कि शान्ति-रक्षा अध्यादेशका प्रयोग प्रामाणिक एशियाई शरणार्थियोंके सिवा और सबको बाहर रखनेके लिए कारगर तरीकेपर किया जा रहा है। मुख्य परवाना-सचिवने एक प्रतिवेदन तैयार किया था, जिससे प्रकट होता था कि किसी भी नवागन्तुकको उपनिवेशमें प्रवेश नहीं करने दिया जाता और शरणार्थियोंतकको बहुत ही कम परवाने दिये जाते हैं। इसलिए अब परमश्रेष्ठका बड़ी संख्यामें एशियाइयोंके प्रवेशकी बात करना बहुत कठोर और असंगत मालूम होता है। परमश्रेष्ठने कहा कि,

> जिन लोगोंने अपनी आँखोंसे देख लिया है वे ही यह अनुभव करते हैं कि भारतीय यहाँ रह सकते हैं — इंग्लैंडकी जैसी सर्द आबोहवामें नहीं — और गोरोंसे आगे बढ़कर उन्हें व्यापार और व्यवसायके अनेक क्षेत्रोंसे खदेड़ सकते हैं।

यदि यह कथन सत्य होता तो बड़ा हानिकारक होता, क्योंकि यह लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदयकी जबानसे निकला है। परन्तु क्या यह सत्य है? क्या व्यापार अथवा व्यवसायका

कोई भी विभाग ऐसा है जिसमे से एशियाइयोने गोरोको खदेडा हो? व्यापारकी दो ही ऐसी शाखाएँ है जिनमे दोनोके बीच कोई स्पर्धा है। वे हैं, फेरी और छोटी दूकानदारी। अब फेरीके बारेमे सत्य यह है कि गोरे, विशेष वर्गके सिवा, इस कष्टप्रद कामको करनेके लिए बिलकुल तैयार नही होते। जैसा कि हमारे सहयोगी *स्टारने* बताया है, गोरे फेरीवालोने अनेक बार प्रयत्न किये है, परन्तु हर बार छोड दिये — भारतीयोकी स्पर्धाके कारण नही, बल्कि इसलिए कि वे इसकी परवाह ही नही करते। परन्तु गोरोका एक वर्ग है, जो इस कामको सफलतापूर्वक और भारतीयोके मुकाबलेमे कर रहा है। हमारा आशय सीरिया-निवासियो और रूसी यहूदियोसे है। वे परिश्रमी है और भारी बोझा रखकर दूर-दूरतक चलनेमे आपत्ति नही करते और हम उन्हे यह व्यापार सफलतापूर्वक करते हुए देखते है। इसके अतिरिक्त, यह नही भूलना चाहिए कि शहरोके गिर्द फेरी लगाकर भारतीय एक बहुत महसूस की जानेवाली आवश्यकताकी पूर्ति करते हैं, और दुहरी भलाई करते है। वे गृहस्थोके दरवाजोपर ही साग-भाजी और दूसरी चीजे पहुँचा देते है, और उनसे गोरे थोक व्यापारी आसानीसे मुनाफा भी कमा सकते है। चूँकि वे इस प्रकार लाभदायक सिद्ध हुए हैं, इसी कारण उन्हे थोक यूरोपीय कोठियोसे हमेशा माल मिला है। अगर वे भारतीयोको माल उधार देना स्थगित कर दे तो उनका दक्षिण आफ्रिकामे फेरीवालोके रूपमे रहना बिलकुल असम्भव हो जायेगा। और हमने जो कुछ फेरीवालोके सम्बन्धमे कहा है वही छोटे दूकानदारोपर लागू होता है, और वह भी ज्यादा प्रबलतासे। वस्तुत छोटे भारतीय दूकानदार जोहानिसबर्ग, प्रिटोरिया और कुछ दूसरे शहरोके अलावा अन्यत्र कही नही मिलते। और छोटे यूरोपीय दूकानदारो तथा भारतीय दूकानदारोके बीच तीव्र स्पर्धा है, जिसमे भारतीयोके मुकाबले यूरोपीय हमेशा मुनाफेमे रहते है। परन्तु यदि इन दो व्यवसाइयोको छोड़ दिया जाये तो इन दोनो जातियोमे कोई स्पर्धा नही रह जाती। उदाहरणार्थ, केप उपनिवेशमे, जहाँ स्पर्धा सर्वथा मुक्त है और भारतीयोको लगभग सभी अधिकार प्राप्त है, भारतीय व्यापारी किसी गोरे दूकानदारको नही खदेड सके है। और न नेटालमे ही, जहाँ इतनी बड़ी भारतीय आबादी है, वे ऐसा कर सके है। इसलिए परमश्रेष्ठके प्रति उचित आदर व्यक्त करते हुए हम कहेगे, उनका यह कथन कि भारतीय गोरोको व्यापारसे खदेडते हैं, अत्यन्त सीमित दायरेको छोडकर, उचित नही मालूम होता। और जहाँ भारतीय किसी गोरेको खदेड़ता दिखाई देता है वहाँ भी वह उसे अपने-आपसे एक सीढ़ी ऊँचा ही उठा देता है, क्योकि वह बीचका व्यापारी बन जाता है और गोरेको फुटकर व्यापारीके बजाय थोक व्यवसायी बना देता है।

परन्तु परमश्रेष्ठका भाषण इतना ही बताता है कि अभी कितना काम करना बाकी है, जिसके बाद ट्रान्सवालके भारतीय इस स्थितिमे होगे कि जो व्यापार परीक्षात्मक मुकदमेके निर्णयके अनुसार अधिकारके तौरपर उनका होना चाहिए उसपर वे कुछ कब्जा बनाये रखे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८-५-१९०४

१५८. परीक्षात्मक मुकदमेपर "ईस्ट रैंड एक्सप्रेस"

ट्रान्सवालके परवाना-सम्बन्धी परीक्षात्मक मुकदमेके बारेमे इतना अधिक कहा जा चुका है और हमे खुद अपनी ओरसे उसके सम्बन्धमे इतना ज्यादा कहना पडा है कि हमारे सामने जो विभिन्न कतरने पडी है उन्हे हम निपटा नही सके है। किन्तु उनमेसे एकको जल्दीसे निपटा देना जरूरी है, क्योकि वह पूर्वी ट्रान्सवाल (ईस्ट रैंड)-वासियोके आवेशकी सूचक है। किन्तु हमें यह देखकर घोर दुःख होता है कि हमारे सहयोगी *ईस्ट रैंड एक्सप्रेसने* एक अत्यन्त खतरनाक सिद्धान्तका समर्थन किया है। और यद्यपि यह सिद्धान्त इस महीनेकी १४ तारीखके अकमें बहुत सावधानीसे बताया गया है, फिर भी अनुक्त बातोसे यह निष्कर्ष निकले बिना नही रहता कि पूर्वी ट्रान्सवालके लोगोको कानून अपने हाथोमे लेने और अगर भारतीय उस जिलेके भीतर दूकानें खोलनेका कोई प्रयत्न करे तो उन्हे ऐसा करनेसे जबरदस्ती रोकनेका प्रच्छन्न परामर्श दिया गया है। ये हथकडे और तरीके ब्रिटिश पत्रकारो और उन लोगोके अनुरूप नही है जो अपनेको ब्रिटिश कहते है। यदि हमारा सहयोगी क्षणिक झुँझलाहटमे इतना नीचा उतर आता है तो इसका अर्थ यह होगा कि वह एक तुच्छ-सी वस्तुके लिए उन सब बातोको त्याग देता है जिन्हे अग्रेज लोग पवित्र मानते है। हम चाहते है कि सहयोगी अपना पक्ष स्वय पेश करे और हमारे कथनमें अत्युक्ति है या नही, यह तय करनेका काम पाठको-पर छोड दे। फैसलेपर विचार करनेके बाद, जिसकी व्याख्या उसने गलत की है, वह आगे कहता है:

> यह माना जा सकता है कि एशियाई इस अवसरसे लाभ उठानेकी कोशिश करेंगे। अबतक कुली पूर्वी ट्रान्सवाल (ईस्ट रैंड)के नगरोंमें नहीं आने दिये गये है; परन्तु ऐसा मालूम होता है कि आयन्दा कानूनन उनका विरोध नहीं किया जा सकेगा। तब हमें क्या करना है? हम सदाकी तरह ही कृत-संकल्प है कि एशियाइयोंको *बाजारोंके* बाहर व्यापार न करने देंगे। *बाजार* नगरोंसे उचित दूरीपर स्थित है। अबतक सामान्य रूपमें राज्य जो संरक्षण देता था, क्या उसका स्थान अब ऐच्छिक कार्रवाई ले सकती है? जहाँतक पूर्वी ट्रान्सवालका सम्बन्ध है, हमारा खयाल है, उसपर सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयका कोई असर नहीं होगा। इतिहास बताता है कि जब कानून किसी समाजकी रक्षा नहीं कर सकता तब आम तौरपर वह समाज ही अपनी रक्षा आप करनेका कोई मार्ग ढूँढ़ लेता है। तथापि, जनता द्वारा कानून अपने ही हाथोंमें लेनेपर हमें दुःख होना चाहिए। *परन्तु यदि भारतीय अथवा चीनी लोग इस फैसलेके अनुसार इस जिलेके गोरोंमें व्यापार करनेका प्रयत्न करेंगे, तो हमें डर है, वही होगा जो सेनापतिकी भाषामें 'एक खेदजनक घटना' माना जायेगा। एशियाई कानून बोअर-राज्यके पिछले कुछ वर्षोंमें जितना कठोर था उतना ही कठोर फिर बनाये जानेके पूर्व, बारबर्टनमें कुछ एशियाइयोंने व्यापार करनेका प्रयत्न किया था। परन्तु दूसरे दिन तड़के ही उन्हें अपना माल-असबाब छोड़कर भागना पड़ा और इस तरह उनकी जानें फाँसीसे बचीं।* अवश्य ही बारबर्टन वासियोंके इस कृत्यकी घोर निन्दा की जानी चाहिए। परन्तु इस घटनासे हमारे एशियाई मित्रोंको

एक शिक्षा भी मिलती है। और वह है — नगरपालिकाओं और पुलिसके तमाम प्रयत्नोंके बावजूद अन्यत्र भी कदाचित् ऐसी घटनाएँ हो सकती हैं। ऐसी हालतोंमें व्यवस्था कायम रखनेका भार स्थानीय अधिकारियोंपर रखना उनके प्रति न्याय नहीं होगा और, इसलिए, हमें विश्वास है कि सरकार जनताकी इच्छाओंके, अनुकूल कानून बनानेमें विलम्ब न करेगी।

ऐसे लेख लिखनेका अर्थ है या तो खाली धमकी देना या अपना अभिप्राय गंभीरतासे बताना। यदि पहली बात सही हो तो उस अवस्थामे हमारे सहयोगीने भारतीयोको सही रूपमे नही समझा है। किन्तु यदि दूसरी बात सही हो तो ईस्ट रैंडमे भारतीयोकी दूकाने खुलनेपर हम ईस्ट रैंडवासी गोरोके हाथो एक-दो भारतीयोके फाँसीपर चढा दिये जानेका स्वागत करेगे। हम साम्राज्य-हितके खयालके अलावा भारतीयोके हितके लिए यह चाहेगे। इससे यह समस्त प्रश्न उभर आयेगा और भारतीय भी यह जान सकेगे कि जो ब्रिटिश झडा अबतक सामान्य स्वतन्त्रताकी पूरी रक्षा करता रहा है वह अब भी काफी है या नही। इससे यह भी जाहिर हो जायेगा कि क्या भारतीय इतने कायर है जो ऐसी कार्रवाइयोसे लडखडा जायेगे और इस देशसे खिसक जायेगे। इसलिए जहाँतक भारतीयोका सम्बन्ध है, हमें इसमे कोई शक नही है कि यदि ईस्ट रैंडका गोरा-समाज हमारे सहयोगीकी सलाह मान लेगा तो भारतीयोकी स्थिति अत्यन्त मजबूत हो जायेगी। परन्तु हम उसे ऐसी ही एक घटनाकी[1] याद दिला दे, जो कुछ वर्ष पहले उमतलीमे हुई थी। वहाँ एक भारतीयको व्यापारका परवाना मिला था। इसपर शहरके सब यूरोपीय चढ़ आये। उन्होने भारतीयको धमकी दी कि यदि वह दूकान बन्द न करेगा तो वे उसकी दूकानको जला देंगे और खुद उससे भयकर बदला लेगे। सौभाग्यवश उसने, अकेला होनेपर भी, भीड़का सामना किया और दूकान बन्द करने या भाग जानेसे इनकार कर दिया। इतनेमें ही पुलिसकी मदद आ पहुँची। इसपर भीड़ अपनेको लाचार पाकर वहाँसे हट गई और वह भारतीय उससे छूटकर शान्तिपूर्वक अपना व्यापार जारी रख सका। हम अपने सहयोगीके विचारके लिए यह घटना पेश कर रहे है और उससे एक बार फिर पूछते है कि एक प्रतिष्ठित पत्रका कर्तव्य क्या है — जिस समाजके लिए वह प्रकाशित होता है उसमे कानून-भगकी उत्तेजना फैलाना या उसको व्यवस्था और सद्व्यवहारकी शिक्षा देना?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८-५-१९०४

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ६१।

१५९. श्री डैन टेलर

जिस समय श्री मेक्-ऑर्टीका प्रस्ताव स्वीकृत हुआ उसी समय श्री डैन टेलरने एक बहुत ही जोरदार भाषण दिया, जिससे सभी लोग चकित रह गये। उन्होंने सूचना दी कि वे भारतीयोंके बजाय चीनियोंको नेटालमें लानेका पूरा प्रयत्न करेंगे। १८९६ के श्री डैन टेलर[1] आजके श्री डैन टेलरसे बिलकुल भिन्न थे। वे उस समय सभी प्रकारके रंगदार मजदूरोंके विरुद्ध प्रधान आन्दोलनकारी थे। वे बाग-मालिकोंके विरुद्ध जहर उगलते थे और जो लोग तभी भारतसे आये थे उनको नेटालके किनारे उतरनेके हकका दावा करनेपर समुद्रमें फेंक देनेके लिए कृतसंकल्प थे। ये सब इतिहासकी बातें है।[2] परन्तु समयके साथ ढंग बदलते हैं और उसी तरह आदमी भी। और अब श्री डैन टेलरका खयाल है कि उपनिवेशकी खुश-हालीके लिए किसी-न-किसी रंगदार मजदूर-वर्गकी नितान्त आवश्यकता है। अगर वे अपना प्रस्ताव स्वीकृत करा सके तो हम अवश्य सुझाव देंगे कि भारतीय समाज एक प्रस्ताव स्वीकार करके उनको धन्यवाद दे। वे भारतीय मजदूरोंके विरुद्ध इसलिए हैं कि वे जानते हैं, भारत-सरकार भारतीयोंसे गुलामोंकी तरह उतना काम नहीं लेने देगी जितनेसे उनको सन्तोष हो सके। हम भारतीय मजदूरोंको गिरमिटिया बनानेका विरोध इसलिए करते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि जिस रूपमें वे इस उपनिवेशमें लाये जाते हैं, वह स्वर्गीय सर विलियम विल्सन हंटरके शब्दोंमें, खतरनाक रूपसे दासताके निकट है। हम ३ पौंड सालाना व्यक्तिकरको कभी मंजूर नहीं कर सकते। यह कानून तो भारतीयोंसे उनकी आजादीका मूल्य वसूल करता है — उस आजादीका, जो स्वर्गीय श्री एस्कम्बके शब्दोंमें, उसे तब दी जाती है जब वह तुच्छ-सी मजदूरीके बदलेमें अपने जीवनके सर्वोत्तम पाँच वर्ष उपनिवेशको दे चुकता है। इसलिए यद्यपि हमारे दृष्टिकोण भिन्न है, फिर भी हमें अपने-आपको श्री डैन टेलरसे पूर्णतः सहमत पाकर बड़ा संतोष होता है और हम सचमुच उस दिनका स्वागत करेंगे जब मौजूदा हालतोंमें भारतीयोंको गिरमिटिया मजदूरोंके रूपमें लाना बन्द कर दिया जायेगा। साथ ही, इससे उपनिवेशियोंकी आँखें खुल जायेंगी और वे देख लेंगे कि स्वतन्त्र भारतीयोंकी उपस्थितिसे भी उपनिवेशकी समृद्धिमें कितनी वास्तविक वृद्धि हुई है। भारतीयोंको थोड़ी-सी मिल्क मुतलक जमीन मिल जानेपर कोसना तो बड़ा आसान है, मगर जो सज्जन इसके विरुद्ध चिल्लाते हैं वे यह बिलकुल भूल जाते हैं कि जो जमीन भारतीयोंके हाथोंमें आ जाती है उसका चप्पा-चप्पा सचमुच बागके रूपमें परिणत हो जाता है। हमारी समझमें नहीं आता कि जिस जमीनको यूरोपीय छूना भी नहीं चाहते उसको यदि भारतीय उपयोगी बना देते हैं तो उसमें आपत्तिकी क्या बात हो सकती है। मगर हाथ-कंगनको आरसी क्या? अगर श्री डैन टेलर भारतीयोंका उपनिवेश-प्रवास बन्द करानेमें सफल हो जाते हैं, तो जो बात हम एक रायके तौरपर कहते रहे हैं वह भारतसे गिरमिटिया मजदूरोंके प्रवासकी मनाहीके बाद पूर्ण सार्थक हो जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८-५-१९०४

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ २२६।

२. यह किस्सा विस्तारसे "प्रार्थनापत्र: श्री चेम्बरलेनको" में बताया गया है, देखिए खण्ड २, पृष्ठ १९७ और आगे।

१६०. स्वर्गीय सर जॉन रॉबिन्सन[1]

लन्दनसे प्राप्त एक समुद्री तारमें बताया गया है कि स्वर्गीय सर जॉन राबिन्सनके स्मारकके लिए चन्दा इकट्ठा करनेके उद्देश्यसे इस उपनिवेशके समान लन्दनमें भी एक समिति बनाई गई है। यह उचित ही हुआ है — भले इसका कारण सिर्फ यही क्यों न हो कि वे उत्तरदायी शासनमें उपनिवेशके पहले प्रधानमन्त्री थे और उपनिवेशको जिम्मेदार हुकूमत दिलानेका प्रयत्न करनेवालोंमें प्रमुख थे। परन्तु लोक-कल्याणके प्रति उनकी निष्ठा तथा आत्मत्यागके कारण उन्हें जनताके सम्मानका इससे कहीं ज्यादा हक है। स्वर्गीय सर जॉन बिलकुल अपने प्रयत्नोंसे बड़े हुए थे। उन्होंने पत्रकारके रूपमें जो काम किया उसे प्रत्येक व्यक्ति अच्छी तरह जानता है और शिक्षाशास्त्रीकी हैसियतसे भी वे दक्षिण आफ्रिकामें शायद किसीसे दोयम नहीं थे। उनके लिए पत्रकारिता रुपये-आने-पैसेकी चीज नहीं थी, वे उसका उपयोग लोकमतको शिक्षित करनेके साधनके रूपमें करते थे और उसके द्वारा समाजको हितकर बल प्रदान करते थे। असलमें वे अपनी प्रतिभाका उपयोग बुद्धि-विलासके लिए नहीं, वरन् देश-हितके लिए करते थे। सार्वजनिक वक्ताके रूपमें भी वक्तृत्व-कलामें उनका स्थान शायद स्वर्गीय श्री एस्कम्बके ही बाद था, यद्यपि शैली शायद उनकी ही अधिक सुसंस्कृत थी। हमें आशा है कि इस दिवंगत राजनयिककी स्मृतिको चिरस्थायी बनानेके कार्यमें भारतीय समाज अपना योग प्रदान करेगा। उन्हें एक विशेष दृष्टिकोणसे भी भारतीयोंका ध्यान आकर्षित करनेका हक है, और यहाँ हम कृतज्ञतापूर्वक उस अवसरका स्मरण कर सकते हैं, जब स्वर्गीय सर जॉनने, बीमार होनेके कारण बहुत असुविधा होनेपर भी, उस सभाकी अध्यक्षता करना मंजूर किया था जो भारतीयोंने लेडीस्मिथ, मेफेकिंग और किम्बर्लेकी मुक्तिकी खुशी मनानेके लिए आयोजित की थी। उन्होंने उस समय जो भाषण[2] दिया था वह प्रोत्साहनसे पूर्ण था और युद्ध-कालमें भारतीयोंने जो काम किया था उसको उसमें उदारतापूर्वक मान्यता दी गई थी। इससे उनकी विशालहृदयता और सहानुभूतिका परिचय मिलता था और साथ ही यह भी प्रकट होता था कि कमसे-कम वे तो मौजूदा द्वेषभावसे अछूते थे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८–५–१९०४

१-२. देखिए "स्वर्गीय सर जॉन रॉबिन्सन", १२–११–१९०३।

१६१. गिरमिटिया भारतीय

हमको प्रवासी भारतीयोके सरक्षककी ३१ दिसम्बर १९०३ तकके सालकी रिपोर्टकी एक प्रति मिली है। इसके अनुसार उपनिवेशमें गिरमिटिया भारतीयोकी आबादी, जिसमें उनकी सन्ताने भी शामिल हैं, सालके अन्तमें ८१,३९० थी, जब कि १८९६ मे वह ३१,७१२ और १९०२ मे ७८,००४ थी। पिछले सालकी पैदाइशकी दर ३२ ११ और मौतकी दर २० ७८ थी। सबसे कम मौतकी दर १८९८ में रही, यानी १४.३०। और विलक्षण बात यह है कि उसी सालमे सबसे कम पैदाइशकी दर भी दिखाई देती है, यानी १९ ०९। आलोच्य वर्षमे ५२ आदमी प्लेगसे, ३२८ निमोनिया और फेफडोकी अन्य शिकायतोसे और २६२ राजयक्ष्मासे मरे। ये आँकडे कुछ अशान्तिजनक है और इसलिए इनको सावधानीसे जाँचनेकी जरूरत है। जैसा कि रिपोर्टमे बताया गया है, कोयलेकी खानोमें भारतीयोकी मौतकी दर अधिक ऊँची रही है। खान-खुदाईके इलाकेमे जो थोडेसे भारतीय है उनमे ४० मौतें हुई। इनमे से १६ राजयक्ष्माकी और ८ निमोनियाकी थी। और यह उम्मीद है कि संरक्षक तबतक चैनसे नही बैठेगा जबतक कि इस मृत्यु-संख्यामें भारी कमी न हो जाये। सरक्षकके दफ्तरमे गतवर्ष १,०५३ विवाह दर्ज किये गये जिनमें २ बहुविवाह थे। पिछले साल भारतको लौटनेवाले २,०२९ भारतीयोकी बचत, रुपया और जेवर मिलाकर, ३४,६९० पौंड थी, अर्थात् प्रति व्यक्ति १७ पौडसे कुछ ज्यादा। इसमे अक्सर पेश किये जानेवाले इस खयालसे विपरीत एक निर्णायक तर्क मिलता है कि भारतीय लोग बड़े मजेमे भारत वापस जा सकते है और अपनी कमाईसे अपनी बाकी जिन्दगी बिना कुछ किये बिता सकते है, या अपनी बची पूँजीको किसी अन्य व्यवसायमे लगा सकते है, जिससे अच्छी रोजी कमा सके। भारत जैसे गरीब देशमें भी सजीदगीसे यह नही कहा जा सकता कि १७ पौडसे एक आदमीका गुजारा बहुत दिन हो सकता है। २,०२९ लौटे भारतीयोंमें से १,५४२ मद्रासी और ४८७ कलकत्तावाले थे। मद्रासियोकी बचतकी रकम थी २७,४१७ पौंड अर्थात् १८ पौंड प्रति व्यक्ति और कलकत्तावालोकी बचतकी रकम थी ७,२७३ पौंड अर्थात् १५ पौड प्रति व्यक्ति। सरक्षकने प्रवासियोकी बचतका जो वर्गीकरण दिया है वह बड़ा दिलचस्प है। इसके अनुसार ४७ मद्रासियोमे से प्रत्येकके पास २,००० रुपयेसे अधिक थे जब कि कलकत्तावालोमें से ५ के पास ही इतने रुपये थे। २५ मद्रासियोके पास २,००० रुपयेसे कम थे जब कि इतने रुपये ६ कलकत्तावालोके पास थे। २२ मद्रासियोके पास ५० रुपयेसे कम थे जब कि इतने रुपये ११ कलकत्तावालोके पास थे। इस तरह, कलकत्तावाले शुरूसे आखिर तक कमजोर उतरे हैं। इससे यह भी जाहिर है कि वे मद्रासियोके बराबर न तो मेहनती है और न किफायती। अच्छा हो कि हमारे कलकत्तावाले भाई इस जरूरी तथ्यको अंकित कर ले और जो उनमें प्रभावशाली है वे उनको अधिक दूरदर्शिताकी आवश्यकता समझाये। ८१,३९० भारतीयोंमें से ३०,१३१ गिरमिटिया थे और बाकी मुक्त हो गये थे। "मालिक और नौकर" शीर्षकके अन्तर्गत हमको बताया गया है कि आम तौरपर मालिक और गिरमिटिया भारतीयोके बीच सम्बन्ध अच्छे रहे हैं और परिणामस्वरूप भारतीयोके साथ अच्छा व्यवहार किया जाता है।

जो भारतीय सरक्षकके पास शिकायते करनेके लिए जानेके इच्छुक हो उनके सम्बन्धमे नये नियम बना दिये गये है। पहले अगर कोई भारतीय यह साबित कर देता था कि वह संरक्षकके पास शिकायत पेश करने जा रहा है तो वह गिरफ्तारीसे मुक्त रहता था। लेकिन

नये नियमोके अनुसार वह गिरफ्तारीसे तवतक मुक्त नही रह सकता जवतक कि अपने डिवीजनके न्यायाधीशसे इस आशयका कोई पास न प्राप्त कर ले। यह पास मिल भी सकता है और नही भी। इस प्रकार वास्तवमे उसको सरक्षकके कार्यालयतक पहुँचनेके लिए अपना अभियोग प्रारम्भिक रूपमे न्यायाधीशके सामने प्रमाणित करना पडता है। हम यह कहे वगैर नही रह सकते कि यह एक ऐसी नई बात है जिसकी कोई खास आवश्यकता नही थी। इससे तो कही अच्छा होता अगर उस भारतीयको, जो शिकायते करना चाहता हो, शिकायते करनेकी अवाध रूपसे स्वतन्त्रता होती। निस्सन्देह उनमे कुछ निरर्थक शिकायते भी होती, परन्तु हमारे विचारमे सच्ची शिकायतोके रास्तेमे कठिनाई पैदा करनेके वजाय उन निरर्थक शिकायतोकी उपेक्षा करना अधिक अच्छा है।

भारतीय मजदूरोकी माँग भयानक गतिसे वढ रही है। सालके अन्ततक १५,०३३ प्रार्थना-पत्र ऐसे थे जिनपर कोई कार्रवाई ही नही की गई थी। भारत-स्थित प्रतिनिधि इस असाधारण माँगको पूरा करनेमे विलकुल असमर्थ है। इससे स्पष्ट है कि गिरमिटिया भारतीय मजदूरोके वगैर इस उपनिवेशका काम विलकुल नही चल सकता और फिर भी हम लोगोको इसके विरोध मे चिल्लाते और यह तर्क देते हुए सुनते है कि गिरमिटिया भारतीय मजदूरोने उपनिवेशको वरवाद कर दिया है।

आत्महत्याओके विषयमे संरक्षकका कहना यह है:

> आत्महत्याओंकी संख्या, जो इन आँकड़ोंमें शामिल नहीं है, इस सालमें ३१ रही। इनमें २० मर्द और ३ औरतें गिरमिटिया थीं जब कि ६ मर्द, १ औरत और १ लड़का स्वतंत्र भारतीय थे। आत्महत्याकी प्रत्येक घटना किन स्थितियोंमें हुई उसकी जाँच न्यायाधीश करता है और जब कभी सबूतसे ऐसा लगता है कि मौत किसी भी रूपमें मालिक या किसी नौकरके बुरे बरतावके परिणामस्वरूप हुई है तब मैं स्वयं उस खेती में जाता हूँ और घटनाकी स्थितियोंकी जाँच करता हूँ। केवल एक ही उदाहरण इस तरहका है, जिसमें सबूत इस ओर संकेत करता था; परन्तु मेरी खुदकी जाँचसे इस सन्देहकी पुष्टि नहीं हुई। यह सन्देह मृत व्यक्तिके जहाजी साथियोंने पैदा किया था। मृत व्यक्ति भारतमें एक दूकानमें सहायक था और मालिकका बही-खाता रखता था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि उसने वास्तवमें आत्महत्या इसलिए की, कि गन्नेकी खेतीका काम उसके अनुकूल न था। एक औरतने एक ऐसे सम्पन्न पुरुषसे शादी कर ली थी जिसकी गिरमिटकी पहली मियाद पूरी हो चुकी थी। उस औरतके साथ व्यवहार भी अच्छा किया जाता था; किन्तु उसने इसलिए आत्महत्या कर ली, कि विवाहसे नौ महीने पीछे उसे एक निम्न जातिके पुरुषसे सम्बन्ध कर लेनेपर पछतावा हुआ। एक आदमीने इसलिए आत्महत्या की, कि उसकी पत्नी उसे छोड़कर चली गई थी। एक दूसरे व्यक्तिने अपनी पत्नीको जानसे मारनेकी कोशिशकी थी, और उसने ऐसा क्यों किया यह खयाल आनेपर अपने-आपको फाँसी लगा ली। इस रहस्यका पता अभीतक नहीं लगा है कि एक नौ वर्षके स्वतंत्र भारतीय बालकने, जो अपने पिताके भारतीय स्वामीके पशु चरा रहा था, आत्महत्या क्यों कर ली। साधारणतः गवाहोंका कहना है कि वे आत्महत्याका कोई कारण नहीं बता सकते। और जिनके बारेमें माना जाता है कि वे जानते है, वे ही अगर कोई सूचना देनेसे इनकार करें तो बहुत-सी घटनाओंका सम्भावित कारण जानना भी असम्भव है।

इस दु:खजनक विषयमे हमने सरक्षकका पूरा कथन पेश कर दिया है और हम इस बात-पर आश्चर्य प्रकट किये बिना नही रह सकते कि यह मामला गम्भीर विचार किये बिना यो ही खतम कर दिया गया। गिरमिटिया भारतीयोमे आत्महत्याएँ आये सालकी चीज बन गई है और हमारे विचारमे इसके कारणकी जाँच गहराईसे की जानी चाहिए। भारतीयोके सरक्षकका यह उत्तर कोई उत्तर नही है कि जिनके बारेमे माना जाता है कि वे जानते है वे ही अगर कोई सूचना देनेसे इनकार करे तो बहुत-सी घटनाओका सम्भावित कारण जानना भी असम्भव है। अंग्रेजीकी एक सीधी-सादी कहावत है, "जहाँ चाह वहाँ राह।" और अगर सरक्षक हमारी ही तरह अनुभव करे तो चूँकि उसको एक निरकुश शासकके अधिकार प्राप्त है, इसलिए उसे आत्महत्याके कारण ढूँढनेमे रत्ती-भर भी कठिनाई नही होनी चाहिए। सरक्षकके बयानसे इस बातका काफी पता लग जाता है कि कही न कही खराबी जरूर है। स्वतन्त्र भारतीयोकी ५१,२५९ जनसख्यामें ८ आत्महत्याएँ हुई और ३०,१३१ गिरमिटिया भारतीयोमें २३। दोनोके अनुपातोमे यह इतनी बड़ी विषमता क्यो है? पेरिस इस बारेमें सबसे बदनाम माना जाता है। वहाँ आत्महत्याओकी सबसे अधिक सख्या अर्थात् दस लाखमे ४२२ पाई जाती है। परन्तु गिरमिटिया भारतीयोमे यह सख्या दस लाखमें ७४१ है। ये आँकडे गम्भीर विचारके लिए काफी कारण उपस्थित करते है। हमारा खयाल है इस विषयमे रिपोर्टमें दी गई जानकारी बहुत ही थोडी है। आत्महत्याओकी सख्या किस खेतीमें सबसे ज्यादा है, यह बतानेके लिए एक विवरण दिया जाना चाहिए और न्यायाधीशकी जाँचमें जिस प्रकारका सबूत आदि दिया गया है, कमसे-कम उसका सार भी होना चाहिए। हम इन भयकर आँकड़ोसे मालिकोके विपक्षमें कोई परिणाम निकालना नही चाहते। परन्तु हम भारतीयो और मालिकोके हितमे पूरी तरह जाँच करनेके लिए जोर अवश्य देते है और हमारे विचारमें कारणकी जाँचके लिए एक निष्पक्ष आयोगसे कम कोई चीज न्यायके उद्देश्यको पूरा नही कर सकेगी। एक आदर्श आयोगमे एक प्रतिष्ठित डॉक्टर, एक प्रवासी-निकायका नामजद व्यक्ति, संरक्षक और, अगर यह सुझाव देना धर्म-विरुद्ध नही है तो, उपनिवेशका एक सम्मानित भारतीय सम्मिलित किये जाने चाहिए। ऐसा आयोग सच्चाईतक पहुँचे बिना नही रह सकता। इस विषयपर जितना प्रकाश डाला जायेगा सब सम्बन्धित लोगोंके लिए उतना ही अधिक अच्छा होगा। और हम आशा करते है कि हमने जो बाते कही है उनपर अधिकारी अनुकूल विचार करेगे।[1]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–६–१९०४

१. इस सम्बन्धमें गांधीजीने दादाभाई नौरोजीसे पत्र-व्यवहार किया था, जैसा उस पत्रसे प्रकट है जो उन्होंने २९ जूनको भारत-मन्त्रीको लिखा था: "... मेरा ट्रान्सवाल-स्थित संवाददाता नेटालकी खेतियोंमें गिरमिटिया भारतीयोकी आत्महत्याओंकी अस्वाभाविक संख्याका उल्लेख करता है और कहता है कि "इन आत्महत्याओंका बहुत ऊँचा औसत साल-ब-साल चला आता है"। उसने ऑरेंज रिवर उपनिवेशके सख्त एशियाई-विरोधी कानूनोंका भी जिक्र किया है जो वहाँ अब भी लागू हैं।" (इंडिया ऑफिस: ज्युडिशियल एंड पब्लिक रेकर्ड्स, १५६७) गांधीजीका पूरा पत्र उपलब्ध नही है।

१६२. प्रिटोरिया नगर-परिषद और सरकार

मालूम होता है, सरकार और प्रिटोरिया नगर-परिषद सभी महत्त्वपूर्ण विषयोपर असहमत होनेमे प्रवीण है; और हर मामलेमे परिषद ही बुरी तरह गलतीपर होती है। सबसे ताजा उदाहरण उसके अपने सविधानके सम्बन्धमे ही है। परिषद-करदाताओकी अधिक सेवा करनेमे तवतक असमर्थ है जबतक कि वह नगर-निगमोकी व्यवस्थासे सम्बन्धित १९०३ के ५८ वे अध्यादेशको माननेके लिए तैयार नही हो जाती। परन्तु परिषद ऐसा करनेके लिए, परिषद-सदस्य श्री फेन वोइष्टनके शब्दोमे, तवतक रजामन्द नही है जबतक कि "उसको रगदार लोगोको पैदल-पटरियोपर चलनेसे रोकनेका अधिकार न मिल जाये।" और ऐसा कोई अधिकार उक्त अध्यादेशमे रखा नही गया है। इसलिए सरकारने परिषदको सूचित कर दिया है कि वह या तो अध्यादेशको मानने का निश्चय कर ले, या बिलकुल न माननेका, क्योकि मामला कई महीनोसे घिसट रहा है। उसने परिषदको बताया है कि,

> **जबतक वह अध्यादेशको नहीं मानती तबतक ट्रामगाड़ियाँ नहीं चला सकती, आग बुझानेके दस्तेपर या अन्य अनेक आवश्यक कामोंपर रुपया खर्च नहीं कर सकती। विशेष रूपसे वह सरकारके अतिरिक्त अन्य लोगोसे रुपया उधार नहीं ले सकती, और सरकार उसे कर्ज देनेकी स्थितिमें है नहीं।**

सरकारकी इस सूचनापर परिषदने रोष प्रकट किया है और यह प्रस्ताव स्वीकार करके इस मामलेको फिर ताकमे रख दिया कि "पैदल-पटरियोसे सम्बन्धित उपनियमोके स्वीकार हो जानेके बाद परिषद १९०३ के ५८ वे अध्यादेशको माननेके लिए तैयार हो जायेगी।" यह परिषदकी दी हुई एक चुनौती है — चुनौतीसे जरा भी कम नही। यदि विरोधी पक्ष ट्रान्सवालकी राजधानीकी नगर-परिषद न होता तो यह कारवाई बहुत ही लड़कपन-भरी समझी जाती। एक ओर है परिषदके कानूनी अस्तित्वका प्रश्न और, स्थानीय सरकारके सहायक उपनिवेश-सचिवके कथनानुसार, करदाताओको हजारो पौड सालका घाटा, दूसरी ओर है रगदार लोगोको पैदल-पटरियोपर चलनेसे वंचित करनेका प्रश्न। एक मामूली कामकाजी निगम (कारपोरेशन) तो, किसी भी हालतमे, सबसे पहले अध्यादेशके अनुसार विपुल अधिकार प्राप्त कर लेता और फिर, यदि आवश्यक समझा जाता तो, अपने पटरी-सम्बन्धी उपनियमोको बनानेका आग्रह आरम्भ करता। लेकिन प्रिटोरिया नगर-परिषदने क्रम ही उलट दिया है और उस जिद्दी बालककी तरह, जो टबमे बैठकर मचल जाता है, वह तबतक प्रसन्न नही होगी जबतक कि उसे रंगदार लोगोको पटरियोपर चलनेसे रोकनेका अधिकार न मिल जाये। सरकार और परिषदके बीचमे इस सघर्षकी प्रगतिको हम दिलचस्पीके साथ देखेगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–६–१९०४

१६३. श्री लवडे और ब्रिटिश भारतीय

श्री लवडे प्रिटोरियामे नगराध्यक्षके सम्मानमे आयोजित भोजके अवसरपर ब्रिटिश भारतीयोके खिलाफ फिर उभड पड़े हैं। प्रतीत होता है, माननीय सदस्य अपने दिमागसे भारतीयोके भयको दूर करनेमें बिलकुल असमर्थ है। उन्होने इस प्रश्नपर यह कहा है:

> मैं मानता हूँ कि युद्धकालसे पहले ब्रिटिश भारतीयोंकी जो स्थिति थी वह तबतक अपरिर्वातत, अनुल्लंघनीय और सुरक्षित रहनी चाहिए जबतक उत्तरदायी शासन नहीं आ जाता (तालियाँ)। यह तमाम लोगोंकी आवाज है और इसका हेतु है आत्मरक्षा। भारतकी तरफसे कुछ भी आवेदन-निवेदन हों, उनका एक ही जवाब हो सकता है। इससे अधिक काले आदमियोंके लिए दक्षिण आफ्रिकामें अब स्थान नहीं है (जोरसे तालियाँ)। भारतीय इस देशसे जो रुपया खींच कर ले जाते हैं उसके बदलेमें वे इस देशमें लाते क्या हैं? अभीतक तो वे बीमारियोंके सिवा कुछ लाये नहीं हैं। इन बीमारियोंपर हमें थोड़े-थोड़े समय बाद कुछ लाख पौंड खर्च करने पड़ते हैं। और, इससे बीमारियाँ नष्ट नहीं होतीं, कुछ समयके लिए रुक भर जाती हैं। ऐसी है इस देशमें भारतीयोंकी स्थिति। और फिर भी वे समुद्रपारीय भावुक सज्जन कहते हैं कि हम यह स्थिति चुपचाप स्वीकार कर लें। मैं अपनी तरफसे — और सारे देशकी तरफसे भी — कह सकता हूँ कि अगर दक्षिण आफ्रिकाके द्वार पूर्वी लोगोंके हमलेके लिए खोल दिये गये तो हमारे लिए आफ्रिकाको पूर्णतः श्वेत लोगोंका देश रखना — जिसमें श्वेत लोगोंकी प्रभुता हो — असम्भव हो जायगा (तालियाँ)। इस देशमें बड़ा भय है कि समुद्रपारकी दलगत राजनीतिके हेतु हमारा उपयोग किया जा रहा है और आगे किया जायेगा। मैं इस देशमें बहुत वर्षोंसे रहता हूँ। मुझे स्मरण है, सन् १८८१ में भी हम इसी हालतमें से गुजरे थे और एक खास वर्गके राजनीतिज्ञोंने — मैं उन्हें राजनयिक नहीं कह सकता — इंग्लैंडकी दलीय राजनीतिके हेतु दक्षिण आफ्रिकी मामलोंका उपयोग किया था और उसके लिए इस देशका बलिदान किया था (तालियाँ)। हम नहीं चाहते कि हमारे घरेलू मामले इंग्लैंडकी दलीय राजनीतिके खेलकी गेंद बनाये जायें (तालियाँ)।

इस प्रकार श्री लवडे चाहते हैं कि युद्धकालसे पहले भारतीयोकी जो स्थिति थी वह "अपरिर्वातत, अनुल्लघनीय और सुरक्षित" बनी रहे। इसलिए क्या वे सरकारसे यह कहनेकी कृपा करेंगे कि वह भारतीयोको लड़ाईसे पहलेकी तरह परवानोके बिना जहाँ वे चाहे वह व्यापार करने दे और उन्हे बिलकुल किसी रुकावटके बिना उपनिवेशमे प्रविष्ट होने दे? हम उनसे आँकड़े देकर यह भी बतानेका अनुरोध करेंगे कि भारतीय इस देशसे कितना रुपया खीच ले गये है, और यदि वे अनुमति दे तो हम उन्हे यह बता सकते हैं कि भारतीयोकी अधिकाश कमाई थोक यूरोपीय व्यापारियो और मकान-मालिकोकी थैलियोमें पहुँच गई है। जोहानिसबर्ग नगर-परिषदकी गफलतका जो पर्दाफाश हुआ है उसे देखते हुए यह कहना कि भारतीय इस देशमें बीमारीके सिवा और कुछ लाये ही नही, ऐसा ही है जैसा कि "सच्चाईके अडोस-पड़ोसमे चक्कर लगाना।" और, आखिरकार, क्या श्री लवडे प्लेगको छोड़कर ऐसी कोई भी दूसरी बीमारी

वता सकते है, जिससे भारतीयोका थोड़ा भी सम्बन्ध हो? उदाहरणके लिए, मोतीझराको ही लीजिए, जो डॉक्टर टर्नरके मतानुसार प्लेगसे कही अधिक घातक और सक्रामक है। क्या यह सही नही है कि भारतीय इस बीमारीसे खास तौरसे मुक्त है और इसकी छूत और मृत्युएँ अधिकतर यूरोपीयोतक ही सीमित है? क्या इसीलिए माननीय सदस्य यूरोपसे लोगोका यहाँ प्रवास वन्द कर देगे? परन्तु ऐसे आदमीसे, जो शका-समाधान चाहता ही न हो, वादविवाद करना वेकार है और यदि हमने भारतीय प्रश्नपर श्री लवडेके विचारोकी चर्चा करनेका कष्ट किया है तो केवल इसीलिए कि हम चिन्तित है, उनका भाषण पढनेवाले लोग उस सवसे भ्रमित न हो जाये जो उन्होने आर्थिक शोषण और प्लेगके सम्बन्धमे कहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–६–१९०४

१६४. फोक्सरस्ट और ब्रिटिश भारतीय

भारतीय परवानोसे सम्बन्धित परीक्षात्मक मुकदमेमे सर्वोच्च न्यायालयने जो फैसला दिया है उससे फोक्सरस्टके गोरे लोग वहुत ज्यादा उत्तेजित है। हमे यह बताया गया है कि उन्होने पिछली २७ मईको ऐबनर्थी हॉलमे एक सभा की थी; यह "सभा वेहद सफल रही, सभा-भवन खचाखच भरा था।" उन्होने सभामे कई प्रस्ताव पास किये, जो वड़े उग्र थे। उनमे से एक प्रस्ताव द्वारा "सारे देशसे अपील की गई है कि वह जनमतकी माँग करे जिससे लोगोको इस देशमे भारतीय व्यापारकी शुरुआत और स्थिरताके विरोधका मौका मिले।" और फोक्सरस्टके लोगोसे कहा गया कि वे भारतीय व्यापारको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई प्रोत्साहन न दे। इन सब वातोसे हमारा कोई झगडा नही; यह कार्रवाई बिलकुल वैधानिक है और अगर आम बहिष्कार किया जाये तो भारतीय उसकी शिकायत नही कर सकते। मगर यह आन्दोलन बिलकुल मिथ्या मालूम होता है, क्योकि आन्दोलनकारियोको लोगोसे इस कार्यक्रमपर अमल करानेके अपने सामर्थ्यपर विलकुल विश्वास नही है। कारण यह है कि, एक ही साँसमे जहाँ वे पूरे वहिष्कारका प्रस्ताव करते है वही सरकारसे यह भी कहते है कि वह भारतीयोसे वह अधिकार छीन लेनेके लिए कानून वनाये, जो सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयके अनुसार उन्हे इस देशके कानूनकी रूसे प्राप्त है। नगर-निकायके सभापति श्री फिशरने सुझाव दिया कि "जबतक कानून न बने तबतक उन्हे, सीधे या टेढे, अगले कुछ महीने निकालने ही चाहिए।" हम नही जानते कि इस वाक्याशका क्या अर्थ है; परन्तु हम वडे आदरपूर्वक इतना कह सकते है कि अगर इसका मतलब वैधानिक उपायोका परित्याग है तो यह श्री फिशर जैसे जिम्मेदार पदपर आसीन सज्जनके अयोग्य है। और हम आशा करते है कि ट्रान्सवालके भारतीयोकी स्थिति जिन अयोग्य कठिनाइयोसे घिरी हुई है, सरकार उनपर ध्यान देगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४–६–१९०४

१६५. जोहानिसबर्ग नगर-परिषद और ब्रिटिश भारतीय

जोहानिसबर्ग नगर-परिषदने सूचना दी है कि वह विधान-परिषदमें एक गैरसरकारी विधेयक पेश करना चाहती है। इस विधेयकमे अन्य बातोके साथ-साथ परिषदके लिए ये अधिकार माँगे जायेंगे :

> वह नगरपालिकाकी हदके बाहर वतनी और रंगदार लोगोके लिए बस्तियाँ और एशियाइयोंके लिए *बाजार* कायम कर सके और इन बस्तियों या *बाजारोंमें* अपने बनाये उपनियम लागू कर सके। और वतनी, एशियाई या रंगदार लोगोंके रहनेके लिए किसी भी बस्ती या *बाजारमें* मकानात बना सके।

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि नगर-परिषद फिलहाल उस अधिग्रहण अध्यादेशकी शर्तोको पूरा करनेका कोई इरादा नही रखती, जिसके अनुसार अधिगृहीत क्षेत्रसे बेदखल किये हुए लोगोको उसके पडोसमे ही जगह देना उसका फर्ज है। जो सोलह सौ भारतीय बस्तीसे हटाकर क्लिपस्प्रूट भेजे गये थे उनको अभीतक उचित घर नही मिले है। उनमे से कुछ अभीतक क्लिपस्प्रूटमे तम्बुओमे ही रहते है और मजबूरीकी बेकारीसे सन्तोष करते है। जिन्हे शहरमे वापस आनेकी इजाजत दी गई है उन्हे जोहानिसबर्गमे रहनेके अधिकारके बदले भारी किराया चुकाना पडता है और वह भी सिर्फ इसलिए कि नगर-परिषद अपना कानूनी फर्ज अदा नही कर सकी है। यह विचार तो है ही, परन्तु इसके अलावा भी, यदि विधान-परिषद नगर-परिषदको उपर्युक्त सत्ता दे देगी तो उससे ब्रिटिश भारतीयोंका मामला बडा गम्भीर हो जायेगा और यह भारतीयोके खिलाफ एक ऐसा कदम होगा जो पुराने गणतन्त्री कानूनसे बहुत आगे बढ जायेगा। क्योकि मौजूदा हालतोमे तो सफाई-सम्बन्धी मामलोके सिवा भारतीय *बाजारों* या बस्तियोंपर नगर-परिषदका कुछ भी नियन्त्रण नही है। इन स्थानोको निश्चित करनेका अधिकार सरकार और केवल सरकारको ही प्राप्त है। और कमसे-कम उस सीमित इलाकेमे लोगोको स्थायी सम्पत्ति रखने और अपने खुदके घर बनानेका अधिकार है। अगर नगर-परिषदके इरादे पूरे हो जाते है तो भारतीय भी उसी स्तरपर आ जायेंगे जिसपर वतनी लोग है और पूरी तरह नगर-परिषदकी दयापर निर्भर हो जायेंगे। वे निरे किरायेदार होगे जिन्हे हटानेके लिए सूचना देनेकी भी जरूरत न होगी और लगातार हटाये जा सकेंगे। फिर इन बस्तियोमे जमीनकी मिल्कियत खत्म हो जायेगी। ऐसी स्थितिकी कल्पना भी भयकर है। और सत्य यह है कि स्थानीय सरकार कमजोर पक्षकी रक्षा करनेमें असमर्थ सिद्ध हुई है। यदि यह बात न होती तो हम कभी यह विश्वास न करते कि नगर-परिषद ब्रिटिश भारतीयोके सम्बन्धमें जो अधिकार लेना चाहती है वे उसे मिल भी सकते है। हम आशा ही कर सकते है कि परिषदके सदस्य लड़ाईसे पहलेके दिनोको और अपने उन वचनोको याद रखेंगे जो उन्होने तब विदेशी (एटलांडर) होनेकी अवस्थामे ब्रिटिश भारतीयोको दिये थे और ईमानदार व्यक्तिके रूपमे उन्हे पूरा करके अपने कर्त्तव्यका पालन करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–६–१९०४

१६६. ट्रान्सवालका प्रस्तावित नया एशियाई कानून

सहायक उपनिवेश-सचिव श्री मूअरने ईस्ट रैंड पहरेदार संघको उत्तर दिया है कि सरकार एशियाइयोसे सम्बन्धित मौजूदा कानूनमे अर्थात् १८८६ मे संशोधित १८८५ के कानून ३ मे, परिवर्तन करनेका विचार गम्भीरतासे कर रही है। हमे मालूम है कि सरकार पिछले अठारह महीनेसे ऐसा विचार कर रही है — गम्भीरतासे कर रही है या नही, यह विवादास्पद है। परन्तु हम इसका कारण भी खूब समझते है। अब चूँकि न्यायालयने १८८५ के कानून ३ की सरकारी व्याख्या और सरकारी नीति अमान्य कर दी है, इसलिए वह इस मामलेमे गम्भीर हो गई है। श्री लिटिल-टन अनेक मामलोमे यह दिखा चुके है कि वे मजबूत इरादेके व्यक्ति है। रोडेशियामे खानोके मालिकोने चीनी मजदूर लानेकी माँग की थी, किन्तु उन्होने बेझिझक यह तय किया कि वे उनकी माँगपर तबतक ध्यान न देगे जबतक इस दक्षिण आफ्रिकी प्रदेशकी विधान-परिषद इस मामलेमे अपना दृष्टिकोण न बता दे। अब फिर उन्होने सही या गलत यह निश्चय किया है कि ट्रान्सवालमे चीनियोको लाना देशके लिए अच्छा है और ट्रान्सवालके लोग इसके पक्षमे है। इस सम्बन्धमे वे इंग्लैंड और ब्रिटिश साम्राज्यके अन्य भागोके प्रबल विरोधका सामना करनेमे भी नही झिझके है। तब क्या वे ट्रान्सवालके भारतीय कानूनके सम्बन्धमे भी अपने मतपर ही दृढ रहेगे? उन्होने सर मंचरजी भावनगरीको आश्वासन दिया है कि वे इस मामलेपर अत्यन्त गम्भीरतासे विचार करेगे। चीनियोको लानेका प्रश्न साम्राज्यसे सम्बन्धित प्रश्न नही है। ब्रिटिश प्रजाजनोके दर्जेपर उसका कोई प्रभाव नही पड़ता। लेकिन यह माना जा चुका है कि भारतीयोका प्रश्न साम्राज्यसे सम्बन्धित प्रश्न है और वह बहुत महत्त्वपूर्ण भी है। इसके सम्बन्धमे बहुत कुछ कहा और लिखा जा चुका है। दक्षिण आफ्रिकाके बाहरके देशोमे लोगोंका बहुत बड़ा बहुमत भारतीयोकी माँगका समर्थक है। इसके अतिरिक्त साम्राज्य सरकार गणराज्य शासनके समयसे ही ब्रिटिश भारतीयोके पक्षकी नीतिसे बँधी है। प्रिटोरियामे जब श्री क्रूगर शासन करते थे तब उसने भारतीयोके अधिकारोकी लड़ाई लड़ी थी। उसके प्रतिनिधियोने सोच-समझकर यह वक्तव्य दिया था कि युद्धके अनेक कारणोमें से एक था ट्रान्सवाली ब्रिटिश भारतीयोकी शिकायते। ये सब बाते बहुत-कुछ श्री लिटिलटनका सही मार्गदर्शन कर सकती है। साम्राज्य-हितैषी होनेके नाते वे भारतीय हितोकी रक्षा अवश्य करेगे। फिर वे अपने पूर्व अधिकारियो द्वारा ब्रिटिश भारतीयोको दिये गये वचनोसे भी बँधे है और हम केवल यही आशा कर सकते है कि १८८५ के कानून ३ के स्थानमे जो नया कानून बनाया जायेगा वह साम्राज्य-निष्ठा और उक्त वचनोके अनुकूल होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११-६-१९०४

१६७. ईस्ट लन्दनकी नकल

शुभाशा अन्तरीप (केप ऑफ गुड होप) की ससदमे स्वीकृत कानूनोको, जो पिछली ३१ मईके *गज़टमें* प्रकाशित हुए है, सरसरी नजरसे पढनेपर हमे मालूम होता है कि यूटीनेज नगरपालिका और उसकी व्यवस्थाके नियामक कानूनोके सशोधन, एकीकरण और परिवर्धनके लिए बनाये गये कानूनकी धारा १२५ द्वारा नगर-परिषदको कुछ अधिकार दिये गये है। इनमे इन बातोके सम्वन्धमे उपनियम बनानेकी सत्ता भी शामिल है:

> **नगरपालिकाके कुछ हिस्सोंको वतनी और एशियाई लोगोंकी रिहाइशके लिए बस्तियोंके रूपमें निर्धारित और पृथक् करना और समय-समयपर उनमें परिवर्तन करना और उनको उठाना; वतनी और एशियाई लोग इन बस्तियोंमें जिन शर्तोंपर रहें और अपने निवास और अपने घोड़ों, मवेशियों, बैलों अथवा भेड़-बकरियोंके सम्बन्धमें जो फीस, किराया और झोंपड़ी-कर दें उसका नियमन करना और शामिलात जमीनको पशुओंके लिए काममें लानेका नियमन या निषेध करना। इन बस्तियोंकी हदमें दूकानों, व्यापारिक स्थानों और व्यापारका नियमन करना, उनकी इजाजत देना या मनाही करना। जिन सीमाओके भीतर एशियाई और वतनी लोगोंका रहना जायज नहीं होगा उन्हें निश्चित करना और समय-समयपर बदलना।**

ये पाबन्दियाँ ऐसे "किसी वतनी या एशियाईपर लागू नही होगी जो नगरपालिकाकी सीमाके भीतर अचल सम्पत्तिका पजीकृत मालिक या काबिज होगा और जिसकी सम्पत्तिका नगर-पालिका-सम्वन्धी कार्योकी दृष्टिसे निर्धारित मूल्य ७५ पौडसे कम नही होगा।"

ये अधिकार बहुत कुछ उसी ढँगके है जो ईस्ट लन्दनकी नगरपालिकाको प्राप्त है। मालूम होता है कि केपके ब्रिटिश भारतीयोका ध्यान इनकी तरफ नही गया और हमे भय है कि इसीलिए समयपर इनका विरोध नही किया गया। इस प्रकारकी उपेक्षापर आश्चर्य करनेकी भी जरूरत नही है, क्योकि एक व्यवसायी समाजसे सरकारी गजटोको पढनेकी अपेक्षा नही की जा सकती। और केप ससदमें इस कानूनको पास करनेकी समस्त कार्रवाई किसी महत्त्वपूर्ण स्थानीय अखबारमे प्रकाशित भी हुई हो — इसकी जानकारी हमें नही है। लेकिन हम उस सरकारके बारेमें क्या कहे जो नगरपालिकाको इतनी दूरगामी सत्ता देती है। और उस उपनिवेश-कार्यालयको भी क्या कहे जो सम्राटको ऐसे कानूनपर स्वीकृति देनेकी सलाह देता है, क्योकि वर्ग-सम्बन्धी कानून होनेसे, देशका कानून घोषित करनेके पूर्व, इसपर उनकी मजूरी जरूरी है। हम ईस्ट लदनके इसी तरहके कानूनकी चर्चा करते समय इतना अधिक कह चुके है कि यूटीनेज नगरपालिकामे उसको लागू करने पर कोई टीका-टिप्पणी करना आवश्यक नही समझते। परन्तु हम आशा करते है कि हमारे कथनकी ओर लन्दन और भारत दोनोमे ब्रिटिश भारतीयोके हितैषियोका ध्यान आकर्षित होगा और कुछ राहत दी जायेगी।

हम यह भी देखते है कि चीनी अध्यादेश विशेष स्वीकृतिके लिए सुरक्षित रखा गया है। हम नही जानते कि यह विधेयक भी इसी तरह क्यो नही सुरक्षित रखना चाहिए था, विशेषत. जब यह सभी एशियाइयो पर लागू होता है, चाहे वे ब्रिटिश प्रजाजन हों अथवा न हो। क्या इसका कारण यह है कि हमने जिन धाराओका उल्लेख किया है उनकी तरफ गवर्नर और उपनिवेश-

कार्यालय दोनोंका ध्यान नही गया ? और अगर ऐसी बात है तो इससे सिद्ध होता है कि शासन-सम्बन्धी अधिकारपत्रमें किसी ऐसे अधिकारकी जरूरत है जिससे सब प्रकारके वर्ग-सम्बन्धी कानून तबतक अवैध माने जायें जबतक कि उनका एक अलग कानूनमें समावेश न हो जाये और उस कानूनका सम्बन्ध केवल ऐसे भेदभावपूर्ण कानूनोसे ही हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–६–१९०४

१६८. भारतीय दुभाषिये

श्री हिस्लॉपने उपनिवेश-सचिवसे पूछा कि मुझे बताया गया है कि भारतीय दुभाषिये सन्तोषजनक नही है, इसलिए क्या उन्हे हटा कर उनके स्थानपर यूरोपीय दुभाषिये न रखे जायेंगे ? उपनिवेश-सचिवने माननीय सदस्यके विचारसे सहमति प्रकट की, परन्तु कहा कि यूरोपीय दुभाषिये मिलनेमे कठिनाइयाँ हैं। और यह भी कहा कि एक भारतीय दुभाषिया उमगेनीकी अदालतसे हटा दिया गया है, क्योकि वहाँ एक यूरोपीय मिल गया था।

इस घटनासे एक शिक्षा मिलती है। भारतीय दुभाषिये सिर्फ इसीलिए बरदाश्त किये जाते हैं कि उपनिवेशमें ऐसे यूरोपीय नही मिलते जिन्हे भारतीय भाषाओका थोड़ा-सा भी ज्ञान हो। यदि उपनिवेशभरके भारतीय दुभाषिये इस तथ्यको ध्यानमे रखेंगे तो अच्छा होगा। अगर अ-भारतीय मिल सकते तो सरकार भारतीयोको तुरन्त बर्खास्त करके उनके स्थानपर अ-भारतीय रखनेमे बिलकुल न हिचकी होती। परन्तु हम अत्यन्त परिश्रमी सार्वजनिक सेवकोपर लगाये गये श्री हिस्लॉपके इस आरोपके विरुद्ध आपत्ति प्रकट किये बिना नही रह सकते कि वे सन्तोषजनक नही हैं। इसके विपरीत हमारी यह बहुत इच्छा है कि माननीय सदस्य हमे अपनी इस जानकारीका सूत्र बतायें। जिन लोगोको उन्होने बदनाम किया है उनके साथ न्याय तभी होगा। हमें यह कहनेमे कोई झिझक नही कि अगर भारतीय दुभाषिये सन्तोषजनक नही हैं तो यह बदनामी सरकारको जल्दीसे-जल्दी दूर कर देनी चाहिए। दूसरी तरफ, अगर वे योग्य, परिश्रमी और ईमानदार हैं तो यह सत्य स्वीकार किया जाना चाहिए और उनपर जो आरोप लगाया गया है उससे वे मुक्त कर दिये जाने चाहिए। सही बात तो यह है कि हमने बहुत-से भारतीय दुभाषियोके प्रमाणपत्र देखे हैं, वे अपने अफसरोके लिए नितान्त अपरिहार्य बन गये हैं। उन्होने सिर्फ अपने ही कामसे पूर्ण सन्तोष प्रदान नही किया है, बल्कि मुशीगीरीका और दूसरा काम भी सँभाला है, जिसे करनेके लिए वे किसी भी तरह बाध्य नही हैं। श्री हिस्लॉपको यह मालूम नही है कि भारतीय दुभाषियोको एक भारतीय भाषामे नही, बल्कि आम तौरपर तीन भाषाओमे दुभाषियेका काम करना पड़ता है। इस तरह वे बहुत अधिक दिक्कतमें काम करते हैं। और यह सचाई सभी जानते हैं कि अगर आप प्रथम कोटिके दुभाषिये चाहते हैं तो आप एक ही व्यक्तिमे चार भाषाओका ज्ञान सयुक्त नही कर सकते। दुभाषियोको बहुत ही कम वेतन दिया जाता है; यह बदनामी भी आम है। इसलिए कमसे-कम इतना तो कहना ही पड़ेगा कि श्री हिस्लॉप उनके विरुद्ध यह आरोप न लगाते, बल्कि केवल अपने पक्षके हितोका समर्थन करके सन्तोष कर लेते, जिसके विरुद्ध हमे कुछ भी कहना नही था, तो यह शोभाकी बात हुई होती।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–६–१९०४

१६९. "मर्क्युरी" और गिरमिटिया मजदूर

हमारे सहयोगी *नेटाल मर्क्युरीको* जो कुछ कहना होता है, वह प्राय· अच्छी जानकारीके आधारपर कहता है। परन्तु ट्रान्सवालके चीनी प्रवासी सम्बन्धी अध्यादेश और ट्रिनिडाड तथा ब्रिटिश गियानामे लागू गिरमिटिया मजदूरोके लाये जानेका विनियमन करनेवाले अध्यादेशकी तुलनाके सम्बन्धमे उसकी जानकारी गलत है। शायद हमारे सहयोगीसे यह भूल इस कारण हुई है कि श्री वालफरने राजनीतिक कारणोसे यह कहना उचित समझा है कि ब्रिटिश गियाना अध्यादेश और चीनी प्रवासी अध्यादेश एक समान हैं। जो लोग इस तरहकी दलीलें देते है उनकी जानकारीके लिए हम यह बता दे कि इन दोनो अध्यादेशोमे उतना ही अन्तर है जितना काले और सफेदमें। ब्रिटिश गियानाके अध्यादेशमे गिरमिटियोको अपनी बुद्धिके प्रयोगसे वंचित करनेका विधान नही है। उसमे यह आग्रह नही है कि गिरमिटिये अपने गिरमिट खत्म होनेपर देशसे चले जाये, और उसमे उनको महज अनाड़ी मजदूरोका दर्जा भी नही दिया गया है। उनके लिए अनाडी मजदूरके कामके अलावा दूसरा काम करना वर्जित नही है और न दूसरोके लिए उनसे इसके अलावा दूसरा काम लेना वर्जित है। साथ ही, वहाँ उनको निश्चित अहातोमे रखनेकी प्रणाली[1] नही है, जैसी चीनियोके खिलाफ लागूकी जानेवाली है। ब्रिटिश गियानाके मजदूर अपना गिरमिट खत्म होनेके बाद देशमें बसने और स्वाधीन मनुष्योकी हैसियतसे काम करनेके लिए स्वतन्त्र है। चीनियोके बारेमे ऐसा नही। हमे पता नही, दोनोमें इस बुनियादी भेदके बावजूद क्या हमारा सहयोगी अब भी इसी रायपर अडा रहेगा कि फर्क सिर्फ यह है कि "राजनीतिक दलोके कुछ लोग ट्रान्सवालमें उस प्रणालीको गुलामी कहते हैं और उसकी निन्दा करते है, जो दूसरे उपनिवेशोमें खुशीसे गिरमिटिया मजदूर प्रथा मानी जाती है।"

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–६–१९०४

१. इसका उद्देश्य चीनियोंको उसी स्थानमें रखना, जहाँ वे काम करते थे और उनकी हलचलोंको पासों द्वारा उनके स्थानसे एक मीलके घेरेमें सीमित कर देना था।

१७०. इकरंगा ऑरेंज रिवर उपनिवेश

ऑरेंज रिवर उपनिवेशके ३ जूनके सरकारी *गज़टमें* विनबर्ग नगरके सशोधित और नये नियम दिये गये हैं। उनके नीचे लिखे अश हम उद्धृत कर रहे है.

परिषदकी मंजूरीके बगैर किसी रंगदार व्यक्तिको नगरपालिकाकी हदमें कहीं भी रहनेको इजाजत नही होगी।

प्रत्येक रंगदार व्यक्तिको, जो नगरपालिकाकी हदमें रहता है, टाउन क्लार्क अथवा अन्य किसी नगरपालिका-अधिकारीके पूछनेपर अपनी आजीविकाका साधन बताने और उसका प्रमाण देनेमें समर्थ होना चाहिए और वह उसके लिए बाध्य है। और अगर टाउन क्लार्क या दूसरे नगरपालिका-अधिकारीको यह प्रतीति हो कि आजीविकाके उचित साधनोंका सन्तोषजनक प्रमाण नहीं दिया जा सकता तो उस रंगदार व्यक्तिके साथ विधि-संहिताके अध्याय १३३, खण्ड २ के अनुसार व्यवहार किया जायेगा।

उक्त कानूनमे यह व्यवस्था है कि,

ऐसा कोई रंगदार व्यक्ति किसी गोरे मालिक या सरकारी अधिकारीके परवानेके बगैर मिलेगा तो उसपर ५ पौंड जुर्माना किया जा सकता है, अथवा जुर्माना न देनेपर उसको सादी या सख्त कैदकी सजा दी जा सकती है, जो ३ महीनेसे अधिक नहीं होगी; अथवा (मजिस्ट्रेटकी मर्जी हो तो) वह राज्यके किसी गोरे निवासीके साथ उसके शर्तबन्द नौकरके रूपमें रखा जा सकता है। यह शर्तबन्दी एक सालसे अधिककी न होगी और अपराधीको हक होगा कि जिस जिलेमें अपराध किया गया हो उसके भीतर अपना मालिक चुन ले।

यदि कोई रंगदार व्यक्ति दैनिक या मासिक नौकरके रूपमें कामके बिना मिलेगा तो उसे, टाउन क्लार्कसे चौबीस घंटेकी सूचना मिल जानेके बाद नगरकी शामिलात भूमिसे चला जाना पड़ेगा और वह परिषदकी अनुमतिके बिना वापस नहीं आ सकेगा।

किसी रंगदार व्यक्तिको नौ बजेकी घंटी बजनेके दस मिनट बाद विनबर्ग नगरके किसी सार्वजनिक स्थान या रास्तेपर नहीं रहने दिया जायेगा, जबतक वह उस समयके लिए अपने मालिकका पास न लिये हो।

किसी रंगदार परवानेदारको परवानेके मातहत दोसे अधिक रंगदार मनुष्योंको नौकर रखनेका अधिकार नहीं होगा।

टाउन क्लार्ककी लिखित अनुमतिके बिना बस्तीमें रातके दस बजे बाद कोई नाच, चाय-पान अथवा दूसरे सभा-समारोह नहीं करने दिये जायेंगे।

सोलह वर्षकी अनुमानित आयुसे अधिकके वे तमाम रंगदार व्यक्ति जिन्हें परिषदसे नगरपालिकाकी हदमें रहनेकी इजाजत मिल गई है, नौकरी करनेके लिए बाध्य होंगे। और उन्हें टाउन क्लार्कके दफ्तरमें हर महीने अपना नाम दर्ज कराना पड़ेगा और ६ पेंस फी-पास देकर रिहायशी पास लेना पड़ेगा।

यदि मूल भाषा या पाठमें इसकी मनाही या रुकावट न हो तो "रंगदार व्यक्ति" अथवा "रंगदार व्यक्तियों" शब्द-समुच्चयका स्पष्ट अर्थ यह किया जाना चाहिए, और उससे यह समझना चाहिए कि वह दक्षिण आफ्रिकाके तमाम वतनी मर्दों और औरतोंपर लागू है और उसमें वे सब रंगदार लोग और किसी भी नस्ल या राष्ट्रके वे तमाम व्यक्ति भी शामिल है जो कानून या रिवाजके अनुसार रंगदार या रंगदार व्यक्ति कहे जाते हैं या व्यवहारमें ऐसे माने जाते है।

यह एक ऐसा निर्लज्जतापूर्ण भेदभाव है, जिसका आधार केवल रग है और वह भी अत्यन्त उग्र रूपमे। हम दावेसे कह सकते हैं कि अगर जबरदस्तीकी नौकरी गुलामी मानी जा सकती है तो यह नियम भी इतना दूरगामी है कि इसके भीतर अस्थायी गुलामी आ जाती है। विनबर्गकी नगरपालिकाकी हदमे रहनेका मूल्य है किसी गोरे मालिककी नौकरी करना। यह स्पष्ट है कि इन नियमोमे ब्रिटिश प्रजाजन अथवा बाहैसियत रगदार व्यक्ति भी अपवाद नही माने गये है। असलमे उनमें रगदार व्यक्तियोकी कोई हैसियत मानी ही नही गई है। हम इस अखबारमें अनेक बार ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी नगरपालिकाओके इसी प्रकारके नियम उद्धृत कर चुके है। हमने उनके विरुद्ध आपत्ति प्रकट की है, परन्तु व्यर्थ। और कारण कुछ भी हो, लन्दनमें भी कुछ नही किया गया है। शासकीय अधिकारपत्रोमे उपनिवेश-कार्यालयकी स्वीकृतिके बिना इस प्रकारके कानून बनानेकी मनाही की गई है। यद्यपि खयाल यह था कि बडेमें छोटा समाया हुआ माना जायेगा, फिर भी ऐसा मालूम होता है कि उपर्युक्त ढगके नगरपालिका-कानूनसे बचावकी कोई सूरत है नही। और स्थानीय सरकार ऐसे कानूनको अपने विशेषाधिकारसे नामजूर कर देगी, इसकी कोई आशा दिखाई नही देती। हम आशा करते है कि उपनिवेश-कार्यालयका ध्यान इन नियमोकी ओर आकर्षित होगा और, कमसे-कम, रगदार लोगोके विरुद्ध जो नीति ब्रिटिश झंडेके नीचे और सम्राटके नामपर ऑरेंज रिवर उपनिवेशमे अपनाई जा रही है, उसके सम्बन्धमे कोई घोषणा तो कर ही दी जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–६–१९०४

१७१. ट्रान्सवालका परवाना दफ्तर

लॉर्ड मिलनरने आन्तर उपनिवेश परिखदकी बैठकमे, जो अभी हालमे प्रिटोरियामे हुई थी, अध्यक्षकी हैसियतसे परवाना-विभागके बजटपर बोलते हुए यह कहा था

> **अध्यक्षने परवाना-दफ्तरके लिए ९,५०० पौंडकी मंजूरीकी चर्चा करते हुए कहा कि मेरे अपने खयालसे इस विभागकी जरूरत एक सालतक और होगी। परवाना-कार्यालयके तन्त्रका उपयोग जैसा शुरूमें सोचा गया था उससे कुछ भिन्न कामोंके लिए किया गया है। लेकिन फिर भी ये काम समाजके लिए बड़े लाभदायक रहे हैं। परवाना-प्रणाली, प्रथमतः, बेशक राजनीतिक है; परन्तु जिन लोगोंको राजनीतिक कारणोंसे परवाने नहीं दिये गये है उनकी संख्या बहुत ही थोड़ी है। फिर भी अवांछित प्रवासियोंकी — जिनमें कुछ यूरोपीय हैं, परन्तु अधिकतर एशियाई हैं — बाढ़से बचनेका हमारा एकमात्र साधन परवाना-कार्यालय ही रहा है। अगर सन्तोषजनक ढंगका स्थायी कानून बननेसे पहले ही हम इस हथियारको छोड़ दें तो मैं नहीं जानता कि हमारे जीवनका क्या मूल्य रह जायेगा (हँसी)। अलबत्ता, यह एक अस्थायी प्रणाली है; परन्तु मैं यह सम्भव नहीं समझता कि इसे तुरन्त नामशेष किया जा सकता है। अगर खर्चकी यह मद जरूरी नहीं है तो हम इसका रुपया खर्च नहीं करेंगे।**

जो बात हम बराबर कहते आये है उसका — यानी इस बातका कि, शान्ति-रक्षा अध्यादेशका प्रयोग ऐसे कामोके लिए किया जा रहा है, जिनके लिए वह कभी अभिप्रेत नही था — ट्रान्सवालके सर्वोच्च अधिकारी द्वारा समर्थन हो गया है। और स्पष्टतः परमश्रेष्ठको हर्ष है कि "अवाछनीय लोगोकी — जिनमे कुछ यूरोपीय है, परन्तु अधिकतर एशियाई है — बाढ" को रोकनेके लिए उनके हाथोमे ऐसा एक हथियार आ गया है। और लॉर्ड महोदय नही जानते कि यदि इस हथियारका त्याग कर दिया जाये तो उपनिवेशके लोगोके जीवनका क्या मूल्य रह जायेगा। यदि ऐसी बाते कोई राजनीतिक आन्दोलनकारी कहता तो वे हमारी समझमे आ सकती थी, परन्तु चूँकि ये राज्यके प्रमुखकी जबानसे निकली है — और सो भी एक ऐसे व्यक्तिकी जबानसे, जो ब्रिटिश साम्राज्यके अग्रगण्य राजनयिक और पूरे-पूरे साम्राज्य-भक्त माने जाते है — इसलिए हृदय दुःख और विस्मयसे भर जाता है। पहले तो, यहाँ अवाछनीय प्रवासियोकी बाढ़ आ गई है, यह कथन ही अत्युक्तिपूर्ण है और यह लॉर्ड महोदयके लिए अशोभनीय है। दूसरे, यह कहना निपट दुर्बलता स्वीकार करना है कि यदि यह हथियार न होता तो उपनिवेशमे लोगोके जीवनका कोई मूल्य ही न रह जाता। और क्या, आखिरकार, देशमे आबादी इतनी ज्यादा हो गई है? लॉर्ड महोदयने ट्रान्सवालमे जिस साधनका उपयोग किया है वह साधन जिन ब्रिटिश उपनिवेशोंमे नही है, क्या उनमे से किसीमे, या केपमें, या नेटालमे उसके न होनेसे लोगोके जीवन निकम्मे हो गये है? यह सत्य है कि प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम कुछ वर्षसे नेटालमे और एक वर्षसे केपमे लागू है। किन्तु वह ट्रान्सवालके शान्ति-रक्षा अध्यादेशके मुकाबले कुछ भी नही है। इसके अन्तर्गत तो कानूनी शरणार्थियोका भी उपनिवेशमे प्रवेश करना अत्यन्त कठिन है, यद्यपि वे ब्रिटिश प्रजाजन है और ट्रान्सवालमे उनकी ऊँची हैसियत है और बहुत बड़ी जमीन-जायदाद है। और यदि लॉर्ड महोदयने जो-कुछ कहा है वह प्रवासके सम्बन्धमे उनके गम्भीरतापूर्वक व्यक्त

किये गये विचारोका द्योतक है तो वह ट्रान्सवालमे ब्रिटिश भारतीयोके अत्यन्त अशुभ भविष्यका आभास देता है। फिर भी हम आशा करते है कि लॉर्ड महोदयने परिषदकी शुष्क कार्रवाईको सरस बनाने और विभिन्न विभागोके कामको बहुत भोडे ढगसे चलानेवाले विद्रोही सदस्योको खुश करनेके खयालसे ही ये बाते कह दी है। क्योकि हम देखते है कि लॉर्ड महोदयने इस हथियारके बारेमे जो बाते कही उनपर खूब हँसी हुई थी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–६–१९०४

१७२. सिपाहीकी शूरता

हमें *ट्रान्सवाल लीडरसे* तिब्बतमें एक झडपका हूबहू वर्णन देते हुए बडी प्रसन्नता हो रही है। *लीडरको* प्रेषित रायटरके विशेष लेखमे कहा गया है,

> हमला अरुणोदयके समय शुरू हुआ। खून जमा देनेवाली चीखोंके साथ दुश्मनके दो मजबूत दल, तेजीके साथ पहाड़ीसे उतर कर हमारे मोर्चेपर टूट पड़े। अंग्रेज फुर्तीसे किलेबन्दीकी आड़में चले गये — अविचलित रहा अकेला एक सिपाही। तब धर्मान्धोंका वह उमड़ता हुआ समूह — जिसमें १०० जवान थे — उस निष्ठावान सिपाहीपर टूट पड़ा। किन्तु वह सिपाही तिब्बतियोंपर धीरजके साथ निशाना साधते हुए अपनी जगहपर अटल रहा। उसने दुश्मनके पाँच जवानोंको गोलीसे मार गिराया, किन्तु इतनेमें दो तलवारियोंने उसके टुकड़े कर दिये। अब हमलावरोंका वह दस्ता अंग्रेज फौजोंको छुपा रखनेवाली दीवारोंपर चढ़नेकी कोशिश करने लगा और दीवारके छेदोंमें व्यर्थ तलवारें घुसेड़ने लगा। किन्तु अब तो वे छेद गोलियोंकी निरन्तर बौछार उगल रहे थे।

इस अकेले सिपाहीकी शूरताकी स्मृति कौन-सा विक्टोरिया क्रॉस कायम रख सकता है, और बहादुरीके ऐसे कितने कारनामे बिना उल्लेखके रह जाते है? इसी प्रकारकी बहादुरी होनी चाहिए, जिसने लॉर्ड रॉबर्ट्सको बार-बार मुक्त हृदयसे सराहना करनेके लिए प्रेरित किया। विगत साठ वर्षोंमे अंग्रेजोने शायद ही ऐसी कोई लडाई लडी है, जिसमें भारतीय सिपाहियोने शानदार हिस्सा न लिया हो; फिर चाहे वह सशस्त्र सिपाहीकी हैसियतसे हो या पिछले बोअर युद्धके नि शस्त्र डोलीवाहक या भिश्तीकी तरह हो। लॉर्ड टेनिसनके दो शब्दोमें :

> तर्क नहीं जानते वितर्क नहीं जानते
> सिर्फ एक कायदा करो मरोका मानते

ये विस्मरणीय शब्द प्रसिद्ध "चार्ज ऑफ दि लाइट ब्रिगेड" के बारेमें लिखे गये थे; किन्तु, ढिठाई माफ हो, इस भारतीय सिपाहीपर भी ये वैसे ही लागू होते है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–६–१९०४

१७३. नेटालके सहयोगियोंसे अपील

इस मासकी ४ तारीखके अकमे हमने नेटालके गिरमिटिया भारतीयोकी आत्महत्याओका जो प्रश्न उठाया था[1] उसे फिर उठानेके लिए हम क्षमा-याचना नही करते। हमें दु:ख होता है कि *नेटाल-मर्क्युरीको* छोड़कर अन्य दैनिक पत्रोने इस प्रश्नको नही उठाया। यह तो सीधा-सादा मानवताका प्रश्न है और इसमें, सार्वजनिक समाचार-पत्रोकी हैसियतसे, उनकी दिलचस्पी न हो, यह हो नही सकता। आयोगकी मॉग करनेमे हमारा उद्देश्य सत्यको प्रकट कराना मात्र है, और हम महसूस करते है कि यदि स्वय मालिक लोग भी इस बातको तटस्थतासे सोचे तो जॉच-आयोगकी नियुक्तिका स्वागत ही करेगे। यदि एक निष्पक्ष आयोग इस निर्णयपर पहुँचे कि प्रतिवर्ष भयानक सख्यामे होनेवाली गिरमिटिया भारतीयोकी आत्महत्याओका मालिकोसे कोई सम्बन्ध नही है तो इससे उन्हे और सर्वसाधारण जनताको भी बडी राहत मिलेगी। दूसरी ओर, अगर वे कुछ ऐसा कर सके, जिससे ये अस्वाभाविक मौतें रुक जायें तो यह उनके लिए, और जो अभागे लोग शर्तबन्द होकर काम कर रहे हैं उनके लिए भी, एक उचित दिशामे बढा हुआ कदम होगा। यह कोई ऐसी बात नही है, जिसे एक ब्रिटिश उपनिवेशमे लाचार रुख जाहिर करनेवाली कतिपय पक्तियाँ लिखकर आई-गई कर दिया जाये। हमे कोई सन्देह नही कि इस खराबीका कोई-न-कोई इलाज होगा ही, शर्त इतनी ही है कि उसे चिन्तापूर्वक सही ढगसे खोजा जाये। इसलिए हम आशा करते है कि हमारे सहयोगी हमारे सत्य-शोधके नम्र प्रयत्नोको दृढ करेगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८-६-१९०४

१. देखिए "गिरमिटिया भारतीय," ४-६-१९०४।

१७४. सर मंचरजीकी सेवाएँ[1]

लोकसभामें सर मंचरजी द्वारा पूछे गये प्रश्न और श्री ब्रॉड्रिक अथवा श्री लिटिलटन द्वारा दिये गये उनके उत्तर हम अन्य स्तम्भमें पूरे-पूरे दे रहे हैं। उनसे जाहिर होता है कि ये माननीय सदस्य क्या दक्षिण आफ्रिका, क्या अन्य सुदूर राज्यों और क्या स्वयं भारतमें रहनेवाले अपने देशवासियों — सबकी कैसी अमूल्य सेवा कर रहे हैं। उक्त प्रश्नोत्तर यह भी बताते हैं कि ये सुयोग्य महानुभाव कैसी लगनसे दक्षिण आफ्रिकावासी ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिके बारेमें पूछताछ करते रहते हैं। जब कभी कोई बात उठानेका अवसर आता है, वे उसे नहीं चूकते। वे अपना कर्त्तव्य जिस तरह करते हैं उसका सम्बन्धित मन्त्रियोंपर ऐसा प्रभाव पड़ा है कि उन्होंने प्रस्तुत परिस्थितियोंमें जितनी विस्तृत जानकारी दी जा सकती है, उतनी विस्तृत जानकारी उन्हें देते रहनेका नियम-सा बना लिया है। उनके प्रश्नोंके उत्तर भी वे प्राय. सहानुभूतिपूर्ण रुखसे देते हैं। दक्षिण आफ्रिकाके प्रत्येक भारतवासीकी हार्दिक प्रार्थना है कि वे दीर्घायु हों और अपनी उपस्थितिसे लोकसभाका मान बढ़ाते हुए अपने देशवासियोंकी सेवा करते रहें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–६–१९०४

१७५. बस्तियोंके बाहर भारतीय व्यापार[2]

उपनिवेश-मंत्रीसे पूछना है कि क्या वे जानते हैं, सर आर्थर लालीने गत १८ मईको हाइडेलबर्गमें ब्रिटिश भारतीयोंके एक शिष्टमण्डलके अभिनन्दनका[3] उत्तर देते हुए यह कहा था कि सर्वोच्च न्यायालयने *हबीब मोटन* बनाम *ट्रान्सवाल-सरकार* परीक्षात्मक मुकदमेमें जो यह घोषित किया है कि परवानेदार व्यापारियोंको बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेकी स्वतन्त्रता बाकायदा है, उसे बरदाश्त नहीं किया जायेगा, और यह भी कि, इस निर्णयको रद करनेका कानून पास करनेके लिए उपनिवेश-मंत्रीसे अनुमति देनेका अनुरोध भी किया जा चुका है। यदि ऐसा हो और यदि उनसे ऐसा निवेदन किया गया हो, तो क्या वर्तमान अधिकारोंमें हस्तक्षेप न करनेके लॉर्ड मिलनर द्वारा बार-बार दिये गये वचनोंको ध्यानमें रखते हुए उपनिवेश-मन्त्री महोदय ऐसा कोई भी कानून बरदाश्त करनेसे इनकार करेंगे?

[अंग्रेजीसे]

इंडिया, २४–६–१९०४

१. मंचरजी मेरवानजी भावनगरी।

२. ब्रिटिश भारतीय संघ, जोहानिसबर्गकी ओरसे गांधीजी द्वारा सर मंचरजी भावनगरीको भेजे गये प्रश्नका पाठ।

३. देखिए "अभिनन्दनपत्र : लेफ्टिनेंट गवर्नरको," मई १८, १९०४।

१७६ पत्र : रैंड प्लेग-समितिको

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग

जून २४, १९०४

सेवामे

सहायक-मन्त्री
रैंड प्लेग-समिति
पो० ऑ० बॉक्स १०४९
जोहानिसबर्ग

महोदय,

मै विनम्रतापूर्वक आपका ध्यान अपने २९ अप्रैलके पत्रकी[1] ओर आकर्षित करता हूँ, जो ऑरेंज रिवर उपनिवेश और डेलागोआ-बेके प्लेग-सम्बन्धी नियमोके बारेमे लिखा गया था। शायद आप जानते हो कि अनुमतिपत्र दफ्तरके प्रमाणपत्रोके बावजूद केप कालोनी जाते हुए ब्रिटिश भारतीय रेलगाडीमे बैठकर भी ऑरेंज रिवर कालोनीसे नही गुजर सकते, और डेलागोआ-बेमे तो, इन अनुमतिपत्रोके होते हुए भी, उन्हे प्रवेश ही नही करने दिया जाता।

यदि आप कृपापूर्वक इन दोनो स्थानोमे सुविधा प्राप्त करा दे तो मेरा सघ बहुत आभारी होगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष, ब्रिटिश भारतीय संघ

प्रिटोरिया आर्काइव्ज : एल० जी० ९२/२१३२

१. यह उपलब्ध नहीं है।

१७७. नेटाल प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम और उसका अमल[1]

इस अधिनियमके अन्तर्गत हालमे दो काफी महत्त्वपूर्ण मुकदमे मैरित्सवर्गमे चलाये गये हैं। वे दोनो ब्रिटिश भारतीयोके खिलाफ थे। मुकदमोकी कार्यवाहियोके पूरे विवरण हम दूसरे स्तम्भमें दे रहे है। दयाल ऊका का मामला हमें बहुत सख्त जान पडता है। यह देखते हुए कि अपील दर्ज कर ली गई है, हम उसपर कोई लम्बी टीका-टिप्पणी नही करेगे। किन्तु गवाहीसे जो तथ्य प्रकट होते है उनके अनुसार प्रतिवादी पाँच वर्षसे अधिक उपनिवेशमें रह चुका है और भारतसे अपनी वापसीके समय जमीनपर पाँव धरनेके पहले उसने जहाजपर किसीको आठ पौंड अदा किये है। इस्तगासेकी ओरसे इस गवाहीके खिलाफ कुछ पेश नही किया गया; किन्तु न्याया-धीशने अपराधी द्वारा दिये गये प्रमाणपर भरोसा नही किया और उसे दो महीनेकी कैदकी सजा दे दी — अगर अपराधीको इसके पहले देशसे निकाल दिया जाये तो बात अलग है। इसलिए यदि न्यायाधीशका फैसला बरकरार रखा जाता है तो, केवल शपथपूर्वक ही नही बल्कि किसी अन्य प्रमाणके बलपर, जबतक कोई यह सिद्ध नही कर सकता कि वह अधिनियम स्वीकृत होनेके पहले उपनिवेशमे रह चुका है तबतक, जान पडता है, हरएक ब्रिटिश भारतीय नवागन्तुक माना जायेगा। यदि ऐसी दृष्टि अपनाई गई तो उपनिवेशमें किसी भी भारतीयकी स्थिति निरापद नही रहेगी। खैर, जबतक अपीलका फैसला नही हो जाता, हमें इन असाधारण मामलोपर और कुछ कहना स्थगित रखना चाहिए। फिलहाल हम सरकारसे इन मुकदमोको रोकनेकी प्रार्थना करके सन्तोष मानेंगे क्योकि यह उसका कर्त्तव्य है कि वह उपनिवेशमे निषिद्ध प्रवासियोका चोरी-चपाटीसे घुसना रोके। हमारी नम्र सम्मतिमें जो लोग पहलेसे उपनिवेशमे है और जो पूर्व-निवास सम्बन्धी प्रतिबन्धके रहते हुए भी प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत नियुक्त अफसरोकी सावधानीके बावजूद यहाँ उतर चुके है उन्हे सताना सरासर ज्यादती करना होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २–७–१९०४

१. *इंडियन ओपिनियनका* जून २५, १९०४का अंक उपलब्ध नहीं है। इसलिए यदि उसमें गाधीजीका कोई लेख रहा हो तो उसको देना सम्भव नहीं है।

१७८. प्रिटोरिया नगरपालिका और रंगका प्रश्न

पैदल-पटरी उपनियमोके सवाल पर सरकार और प्रिटोरिया नगरपालिकाके बीच आगे और पत्रव्यवहार हुआ है। इसे हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे है। इस मामलेमे सरकारने जो मजबूत रुख इख्तियार किया है उसपर वह बधाईकी पात्र है। उधर, प्रिटोरिया नगरपालिका जिस दृढ़तासे सरकारसे लड रही है उसकी भी तारीफ न करना असम्भव है। इसमे खेदकी बात यही है कि ट्रान्सवालकी राजधानीकी नगरपालिका यह दृढ़ता एक ऐसे काममे दिखा रही है जो प्रत्येक समझदार आदमीको अकीर्तिकर और अयोग्य प्रतीत होगा। गम्भीरतापूर्वक यह दलील नही दी जा सकती कि रंगदार लोगोको पटरियोपर चलने देनेसे कोई सिद्धान्त खतरेमे है। निश्चय ही इसका अर्थ यह नही होगा कि नगरपालिका अन्य बातोमे भी दोनो जातियोकी समानताका सिद्धान्त स्वीकार करती है। वह तो एक बड़ा सवाल है और उसे पटरियोके प्रश्नसे बिलकुल अलग रखा जा सकता है। प्रिटोरियाके नगराध्यक्ष अब प्रत्यक्ष देखते है कि नगरपालिका सरकारका विरोध जारी रख कर खुदको हास्यास्पद बना रही है, परन्तु दूसरे सदस्य, जिनके श्री लवडे नेता है, उनकी दलीले नही सुनते और उन्होने सरकारसे एक पत्र द्वारा माँग की है कि वह एक विशेष अध्यादेश बना दे, जिससे प्रिटोरिया नगरपालिकाको जोहानिसबर्ग नगरपालिकाके समान अधिकार मिल जाये। सरकार और परिषदके बीच जो द्वन्द्व-युद्ध चल रहा है वह बहुत ही मनोरंजक है। हम इतनी ही आशा रख सकते है कि सरकार उस सिद्धान्तपर जमी रहेगी जो खुद उसीने स्थिर किया है और ऐन मौकेपर नगरपालिकाके निर्देशके आगे झुक नही जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २–७–१९०४

१७९. भारतीयोंके ऋणपत्र

सरकार भारतीयोके लिए लेनदेनके कानूनी कागजातपर दस्तखत करनेके विनियमनके लिए एक विधेयक पेश कर रही है। हम सरकारको इसपर हृदयसे बधाई देते है। यह इस बातका सबूत है कि सरकार उनकी भलाईके लिए चिन्तित है। साफ धोखेबाजीके कुछ मामले हमारे देखनेमे आये है। इनमे आवश्यक रूपसे भारतीयोको भारतीयोने ही नही ठगा, बल्कि कुछ यूरोपीयोने भी ठगा है। और इसका कारण यह रहा है कि ये भारतीय अंग्रेजी अक्षरोमे दस्तखत नही कर सकते थे। बहुत बार ये ऋणपत्र (प्रॉमिसरी नोट) ऐसे तैयार कर लिये जाते है कि हस्ताक्षर करनेवालोको मजमून मालूम ही नही होता। इसलिए यह विधेयक भोले-भाले लोगोको बहुत सहायता पहुँचानेवाला होगा, इसमे कोई सन्देह नही है। विधेयकको पूर्ण बनानेके खयालसे क्या हम यह सुझाव दे सकते है कि यदि ऋणपत्रपर हस्ताक्षर करनेवाले व्यक्तिके अँगूठेकी निशानी लेनेपर भी जोर दिया जाये तो यह ज्यादा अच्छा होगा। यह देखा गया है कि किसीके अँगूठेकी जाली निशानी बनाना असम्भव है। इसलिए कोई भी व्यक्ति अपनेको दूसरा व्यक्ति बता कर धोखा न दे सके, इससे बचनेका सबसे सुरक्षित उपाय उसके अँगूठेकी निशानी लेना ही है। क्योकि, यह हो

सकता है कि जो व्यक्ति साधारण न्यायाधीश या शान्ति-रक्षक न्यायाधीश (जस्टिस ऑफ दि पीस) के सामने अपने अँगूठेकी निशानी लगाये वह वही व्यक्ति न हो जिसपर कर्जका दावा करनेका मंशा हो। यदि न्यायाधीश या शान्ति-रक्षक न्यायाधीशके सामने दस्तावेजपर हस्ताक्षर किये जायेंगे तो उनका महत्त्व बहुत बढ जायेगा, और यदि एक व्यक्तिने अपनेको दूसरा व्यक्ति बताकर धोखा दिया तो इस धोखेबाजीको साबित करना बहुत कठिन होगा। किसी न्यायाधीश या शान्ति-रक्षक न्यायाधीशसे हमेशा यह जाँच करनेकी आशा रखना उचित नही होगा कि उसके सामने ऋणपत्रपर हस्ताक्षर करनेके लिए उपस्थित लोगोकी शिनाख्त सही है या गलत। इसलिए हमे आशा है कि सरकार कृपा करके अपने विधेयकमे हमारा सुझाव शामिल कर लेगी और उसे पूर्ण और वास्तविक अर्थमे कारगर बनायेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २–७–१९०४

१८०. ट्रान्सवालकी पैदल-पटरियाँ

वॉक्सबर्ग नगर-परिषदने ट्रान्सवालकी नगर-परिषदो और नगरपालिकाओको नीचे लिखा परिपत्र भेजा है:

सज्जनो,

निःसन्देह आप पूरी तरह जानते हैं कि 'यातायात-सम्बन्धी उपनियमों' में एक उपधारा है, जिसमें यह व्यवस्था है कि कोई वतनी तबतक पैदल-पटरीपर नहीं चलेगा जबतक कि वह किसी सड़कको पार न कर रहा हो, या किसी निजी जायदादमें प्रवेश न कर रहा हो। देखिए उपधारा १९, अध्याय २।

आप देखेंगे कि इस उपनियम-संहिताकी २० वीं उपधारामें 'व्याख्याओं' के अन्तर्गत 'वतनी' शब्दका अर्थ है, कोई भी ऐसा व्यक्ति जिसके माता-पिता किसी आफ्रिकी आदिम जाति या उपजातिके हों।

मुझे इस पत्रके द्वारा यह बतानेका आदेश हुआ है कि मेरी परिषद चाहती है, मौजूदा कानूनके ऐसे ढंगसे संशोधित करानेमें, कि उसमें सब रंगदार कौमें बिना किसी भेदके शामिल हो जायें, विभिन्न नगर-परिषदों और शहरी जिला-निकायोसे सहयोग और सहायताकी याचना की जाये।

मेरी परिषदका कहना यह है कि सार्वजनिक पैदल-पटरियोंपर दूसरी रंगदार जातियोकी उपस्थिति भी उतनी ही आपत्तिजनक है जितनी इस देशकी आदिम जातियो की; और (जहाँतक इस परिषदका सम्बन्ध है), उसने कानूनको संशोधित और सब रंगदार जातियोंपर लागू करवानेकी दृष्टिसे स्थानीय सरकारके सहायक उपनिवेश-सचिवको 'यातायात उपनियमों' में शामिल करनेके निमित्त निम्न संशोधन भेजा है:

'किसी सड़कको पैदल-पटरियों या किसी मकानके सामने या बगलमें बने चबूतरेपर, जो पैदल-पटरीका काम देता हो, तमाम रंगदार लोगोंका चलना वर्जित है।'

और कहा गया है कि दूसरी नगरपालिकाओंको भी उस विशेषाधिकारका उपभोग करनेकी सुविधा हो जो जोहानिसबर्ग नगरपालिकाको है।

सहायक उपनिवेश-सचिव इसके उत्तरमें कहते हैं :

'नगर-निगम अध्यादेश जोहानिसबर्ग नगर-परिषदपर लागू नहीं होता, अतः वह परिषद रंगदार लोगों द्वारा पैदल-पटरियोंके उपयोग-सम्बन्धी उपनियमको लागू कर सकती है। फिर, वह परिषद जिस घोषणाके अनुसार बनाई गई है उसकी रूसे उक्त उपनियम पुराने नगर-नियमोंके अन्तर्गत आ जाता है। मुझे अफसोस है कि आपने जो उपनियम भेजा है उसकी मंजूरीकी सिफारिश मैं नहीं कर सकता, क्योंकि बॉक्सबर्ग परिषदको उसे लागू करनेकी अनुमति देनेके लिए कानूनको बदलना जरूरी होगा।'

इस प्रकार यह विदित हो जायेगा कि जो अधिकार जोहानिसबर्गको प्राप्त है उनके उपयोगके लाभसे दूसरे सब नगर वंचित रखे जानेवाले है, सिर्फ इसलिए कि उस नगरमें अब भी एक पुराना नगर-नियम मौजूद है और वह अभीतक वापस नहीं लिया गया है।

मेरी परिषद जोर दे रही है कि स्थानीय सरकारके सहायक उपनिवेश-सचिव इस व्यवस्थाकी जरूरतपर तुरन्त और गम्भीर रूपमें ध्यान दें और अगर इस बातपर आपकी परिषदका समर्थन प्राप्त हो जाये तो हमारे उद्देश्यकी पूर्तिका सबसे अच्छा उपाय यह होगा कि आपकी परिषद भी प्रस्ताव स्वीकार करके इसी तरहका आवेदनपत्र भेजे।

मैं इस बारेमें सहयोगके लिए आपको पेशगी धन्यवाद देता हूँ।

एक हदतक बॉक्सबर्ग-परिषदसे सहानुभूति प्रकट न करना कठिन है। ये लोग अपनी पैदल-पटरियोपर किसी भी रंगदार आदमीको चलता देखना नही चाहते। जोहानिसबर्गमे तमाम रग-दार लोगोको उन्हे इस्तैमाल करनेसे रोकनेका अधिकार नगर-परिषदको प्राप्त है; तब दूसरी नगर-परिषदोको भी जोहानिसबर्ग-परिषदके समान आधारपर क्यो न माना जाये। यह स्थिति काफी तर्कसगत मालूम होती है। जो कुछ हुआ है, यह है. अपना निजी सविधान प्राप्त हो जानेसे, जोहानिसबर्गके लिए आम नगर-निगम अध्यादेशको मानना जरूरी नही है। और मसविदा बनाने-वाले व्यक्तिने जोहानिसबर्गके विशेष अध्यादेशमे पुरानी हुकूमतके नगर-नियमोका ध्यान नही रखा। लेकिन पीछे जब नगर-निगम अध्यादेश स्वीकृत हो गया तव "वतनी" गब्दकी उचित व्याख्या करके यह मामला कारगर तरीकेसे निपटाया गया। निश्चय ही सरकारके लिए अधिक साहसपूर्ण और ईमानदारीकी नीति तो यह होती कि वह विधि-सहितामे से नियमका वह हिस्सा ही निकाल देती, जिससे "वतनियो" के अलावा दूसरे रगदार लोग खामखाह अपमानित होते है। परन्तु सही हो या गलत, जब सीधा रास्ता छोडा जा चुका है तब ट्रान्सवालकी नगर-परिषदोका, जिन्हे यह कदम अकस्मात् उठाये जानेकी शिकायत है, अब अपने दृष्टिकोणसे इसके खिलाफ आन्दो-लन करना स्वाभाविक है। नि सन्देह यह एक कठिन स्थिति है। इसका एकमात्र माकूल हल यही मालूम होता है कि इस मामलेमे और नगर-परिपदोकी जैसी स्थिति है वैसी ही स्थितिमे जोहानिस-बर्ग-परिषदको भी रख दिया जाये। तभी पूरा न्याय होगा और तब दूसरी नगर-परिषदोको अपने प्राप्त अधिकारोसे सन्तोष करना पडेगा। परन्तु यह बात आश्चर्यजनक और कुछ दु खजनक भी दिखाई देती है कि ट्रान्सवालकी नगर-परिपदो सरीखी प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण सस्थाएँ तिलका ताड बना दे और ऐसे लोगोंपर, जिन्होने उनका कुछ नही बिगाड़ा है, अनावश्यक अपमानपर अपमान लादनेमे खुशी हासिल करे। ये लोग अगर किसी चीजके हकदार है तो अच्छे बरतावके ही, क्योकि फिलहाल ब्रिटिश भारतीयोका विचार छोड़ भी दे तो भी यह नही भूल जाना चाहिए कि उन लोगोने ही, जो कलतक डचेतर गोरे कहे जाते थे, और आज नगर-परिषदोके गरीफ

सदस्य बने बैठे है, केपके सैकड़ो रगदार लोगोका उपयोग अपने लाभके लिए किया था। तब तो उनके साथ बहुत प्यार दिखाया गया, उनकी आँखोके सामने अग्रेजी झंडा हमेशा लहराता रखा गया, जोशीली जबानमे उन्हे बताया गया कि उसमें रक्षा करनेकी शक्ति कितनी है, जिससे वे भाग कर उनकी गोदमे आश्रय ले, बोअर अधिकारियोके जुल्मके बारेमे हलफिया बयान दें और उनके साथ एक हो जाये, ताकि उपनिवेश-कार्यालय मजबूर हो जाये और श्री क्रूगरपर दबाव पडे। निश्चय ही इन लोगोको यह अधिकार है कि वे कमसे-कम ट्रान्सवालके किसी भी मार्गकी पैदल-पटरियोपर किसी तरहकी छेड़छाड़के बिना चल सकें, क्योकि इनकी सार-सँभालमें दूसरे करदाताओकी तरह वे भी अपना भाग प्रदान करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९-७-१९०४

१८१. ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय

पिछले मगलवारकी शामको ट्रान्सवाल विधान-परिषदमे श्री बोर्कके प्रस्तावपर बहस हुई थी। इस प्रस्तावमे सरकारसे भारतीयोकी स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगानेके सम्बन्धमे कानून बनानेका अनुरोध किया गया है। माननीय प्रस्तावक महोदयने हमेशाकी-सी मामूली बाते कही। उन्होने सदस्योके सामने छोटे-छोटे गोरे व्यापारियोके भावी विनाशका चित्र खीचा और जोर देकर कहा कि इस मामलेमें ट्रान्सवालको कोई भी कानून बनानेका अधिकार है। उन्होने साथ ही देशमें भारतीयोके प्रवेशके बारेमे कई बाते कही। परन्तु श्री हॉस्केन और डॉ० टर्नरने पूरी तरह साबित कर दिया कि श्री बोर्क अपने कथनोके सम्बन्धमें जमानेसे बेहद पीछे हैं। श्री हॉस्केनने आँकडोसे प्रमाणित किया कि भारतवासी नेटालके लिए एक वरदान रहे हैं और अब भी हैं, एवं नेटाल भारतीयोके कारण ही समृद्ध है। एक सदस्यने भारतीयोपर घोर आक्षेप करते हुए कहा कि उनकी आदतें बहुत गन्दी होती हैं। इसके उत्तरमें डॉ० टर्नरने अकाट्य रूपमें सिद्ध किया कि जोहानिसबर्गकी जो भारतीय बस्ती अब जला दी गई हैं उसकी स्थितिके सम्बन्धमे दोषी एकमात्र अधिकारी ही थे। भारतीय समाजको लायक डॉक्टरका बहुत आभारी होना चाहिए कि उन्होने सच कहनेमे सकोच नही किया और इन अनुचित आक्षेपोसे भारतीयोकी इस प्रकार रक्षा की। श्री डकनने अकाट्य रूपमें प्रमाणित किया कि बहुत कम भारतीयोको ट्रान्सवालमें प्रवेशकी अनुमति दी गई है और चारके सिवा बाकी सब वास्तविक शरणार्थी हैं। परन्तु श्री डकनने सदनको अपनी सहानुभूतिका विश्वास दिलाया है और इस सारे मामलेको उपनिवेश-कार्यालयके सामने पेश करनेका वचन दिया है। अन्तमें श्री सॉलोमनका सशोधन स्वीकार कर लिया गया और उपनिवेश-सचिवके इस आश्वासनपर सन्तोष प्रकट किया गया कि मौजूदा अधिवेशनमें ही ऐसा कानून पेश किया जायेगा, जिससे श्री बोर्कके भाषण और प्रस्तावमें व्यक्त इच्छाओपर थोडा-बहुत अमल किया जा सकेगा। श्री डंकनको स्वीकार करना पडा कि ब्रिटिश सरकार लडाईसे पहले दिये गये वचनोसे बँधी हुई है, हमें देखना है कि ये वचन कैसे पूरे किये जाते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९-७-१९०४

१८२. गिरमिटिया भारतीयोंकी आत्महत्याएँ

तारसे खबर मिली है कि श्री लिटिलटनने सर मंचरजी भावनगरीसे कहा है, गिरमिटिया भारतीयो द्वारा की जानेवाली आत्महत्याओकी सख्या बहुत नही है, फलत वे कोई जाँच नही करायेगे। यदि यह खबर सही है तो हमें बेहद आश्चर्य है।

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिकाके अनुसार : "इसके अस्तित्वको राज्यागमे रोगोंकी उपस्थितिका लक्षण मानना ठीक ही है। ये रोग साध्य हो चाहे न हो, इस लक्षणपर बारीकीसे विचार होना चाहिए।" इस तरह, आत्महत्याओ द्वारा होनेवाली मृत्यु-संख्याके अधिक होनेके सिवा भी यह एक ऐसी बात है, जिसकी छानबीन की जानी चाहिए। प्रवासी-सरक्षक भी अपने विवरणमे उस हृदतक नही गये, जहाँतक श्री लिटिलटन गये हैं। वह मानता है कि मृत्यु-सख्या इतनी बडी तो है ही कि उसपर मामूली चर्चासे कुछ ज्यादा किया जाये।

मगर हम आँकडोको मिलाकर देखें। स्वतन्त्र भारतीयोकी आबादी ५१,२५९ है; उसमे आठ आत्महत्याएँ हुई। गिरमिटिया भारतीयोकी आबादी ३०,१३१ है, उसमे तेईस हुई। ठिठक कर सोचनेके लिए यही काफी है। *एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिकामें* दी हुई तालिकाके अनुसार यह संख्या सेक्सनीमें सबसे अधिक थी — अर्थात् १८८२ मे ३७१ प्रति दस लाख। गिरमिटिया भारतीयोमे यह ७४१ प्रति दस लाख है। क्या यूरोपकी और नेटालमे गिरमिटिया भारतीयोकी अधिकतम आत्महत्याओके आँकड़ोका यह जबरदस्त अन्तर बिलकुल विचारणीय नही है? और इतनेपर भी, जैसा कि हम पहले कह चुके है, फिलहाल हम किसीको भी दोष नही देते, हमने फैसला मुलतवी रख छोडा है। शायद इसका कोई सीधा-सादा कारण हो और आसानीसे स्पष्टीकरण किया जा सके। श्री लिटिलटनके प्रति अधिकसे-अधिक आदर रखते हुए हमारी इतनी ही माँग है कि न्याय और मानवताके भलेके लिए इस मामलेकी तहतक जाकर सफाई की जानी चाहिए। हमें यह आशा इसलिए है कि जब सर मचरजीने मामलेको हाथमे उठाया है तब वे उसे यो ही छोड़ नही देंगे, बल्कि अपनी जाँच-पड़तालमे आग्रहपूर्वक लगे रहेगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९-७-१९०४

१८३. और भी निर्योग्यताएँ

वर्जित-भूमिपर ईंटे बनाने, पत्थरकी खाने खोदने और चूनेके भट्टे लगानेके उद्योगोका नियमन करनेके लिए जुलाई १ के ट्रान्सवाल *गवर्नमेंट गज़टमें* एक अध्यादेशका मसविदा प्रकाशित हुआ है। अध्यादेशकी धारा ३ मे कहा गया है.

> इस उपनिवेशका निवासी, अठारह वर्षसे ऊपरका कोई भी गोरा पुरुष, किसी भी जिलेके रजिस्ट्रारके दफ्तरसे ईंटें बनाने, चूनेके भट्टे लगाने और पत्थरकी खानें खोदनेका परवाना लेनेके लिए स्वतन्त्र होगा।

अभीतक रोक सोनेकी खदानोतक ही लागू थी, और उसके बारेमे हमने कुछ नही कहा। किन्तु अब भारतीयोके लिए ईंटें बनाना भी गैर-कानूनी हो जायेगा, क्योकि उन्हे ऐसा करनेका परवाना नही मिल सकेगा। अभी कुछ ही दिनो पहले श्री लिटिलटनने सर मचरजी भावनगरीके प्रश्नका उत्तर देते हुए उन माननीय सज्जनको आश्वासन दिया था कि जो ब्रिटिश भारतीय उपनिवेशमे बस चुके है उनके अधिकारोंकी रक्षा पूर्ण रूपसे की जायेगी। हमारे सामने अध्यादेशका जो मसविदा है वह इस इरादेको पूरा करनेवाला नही दीखता। इसलिए क्या हम यह बात तय मान ले कि सरकार अध्यादेशको बदल देगी या, यदि वह अपने वर्तमान रूपमें पास हुआ तो, श्री लिटिलटन उसपर अपने निषेधाधिकारका प्रयोग करेगे?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९-७-१९०४

१८४. प्लेगकी खूँटी

प्लेगने ट्रान्सवालमे एक ऐसी खूँटीका काम दिया है जिसपर भारतीयोके प्रति अनेकानेक निर्योग्यताएँ अटका दी जायें। अब सुनाई दे रहा है कि प्लेगसे सावधानीकी आडमे भारतीय शरणार्थियोको दक्षिण आफ्रिकी उपनिवेशोसे यहाँ आनेके परवाने देना बन्द कर दिया गया है। यह सबसे ताजी निर्योग्यता है, जो उनपर लगाई गई है। इसका एकमात्र कारण यह मालूम होता है कि जोहानिसबर्गके कुछ स्थानोमे प्लेग-ग्रस्त चूहे पाये गये है। और वे भी भारतीयोके मुहल्लोमें नही, परन्तु गरीब यूरोपीयोके मुहल्लोमे। डर्बनमे प्लेगकी एक दो घटनाएँ होनेके बाद फिर परवानोपर रोक शुरू की गई थी। परन्तु अब प्लेग डर्बनमें अचानक बन्द हो गया है, यह देखते हुए कोई-न-कोई बहाना आवश्यक था और उसका काम प्लेगके चूहोसे ले लिया गया है। हमे पता नही कि ट्रान्सवाल-सरकारके इरादे क्या है। परन्तु यदि उसे प्रस्तावित कानून द्वारा अपनी मन्द उत्पीडन नीति दुहरानी है तो ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोकी स्थिति नितान्त दयनीय हो जायेगी। इस सम्बन्धमें नगरके स्वास्थ्यके बारेमे डॉ० म्यूरिसनकी रिपोर्टका एक अनुच्छेद उद्धृत कर देना अच्छा होगा। इससे प्रकट हो जायेगा कि डर्बनसे ट्रान्सवालमे आनेके परवाने कितने लचर बहानेपर बन्द किये गये थे।

जून मासमें डर्बनमें प्लेगसे दो व्यक्ति बीमार हुए और वे दोनों वतनी मर्द थे। दोनों मरे हुए पाये गये — एक हार्वर बोर्डकी बारकोंमें और दूसरा क्वीन्स स्ट्रीटके काफिर मुहल्लेमें। और चूँकि दोनोंमें से एककी भी चिकित्सा पहले किसी डॉक्टरने नहीं की थी इसलिए उनकी बीमारीका निदान उनकी शव-परीक्षाके बाद ही किया गया। जून मासमें प्लेगकी छूतसे बीमार कोई नया रोगी नहीं मिला है, क्योंकि मेरी मई महीनेकी रिपोर्टमें जिन मकानोंका जिक्र है उनके बाहर प्लेगकी छूतका एक भी चूहा नहीं पाया गया, यद्यपि डॉ० फरनांडिस और मैं भिन्न-भिन्न मुहल्लोंके बहुतसे चूहोंकी जाँच-पड़ताल कर चुके हैं। अलेग्जेंड्रा रोड स्थित चुंगी-गोदाममें प्लेगकी छूत लग गई थी। इसके मामलेमें जाँचसे अच्छी तरह साबित हो गया है कि चूहोंमें प्लेगकी बीमारी अत्यन्त तीव्र रूपसे संक्रामक और घातक होती है। चूँकि इस मकानसे चूहोंके निकासके सब सम्भावित मार्ग अच्छी तरह बन्द कर दिये गये थे, इसलिए उनमें बड़ी तेजीसे बीमारी फैली और ४० मरे चूहे तो एक दिन ही मिले। करीब-करीब प्रत्येक चूहा इसी रोगसे मरा था। गोदाममें बड़ी मात्रामें जई भरी थी। यह हटाकर जला दी गई, क्योंकि चूहोंको इसीमें आश्रय मिलता था और इसीसे वे भोजन भी पाते थे। और उसमें अवश्य ही प्लेगकी छूत थी। साथ ही गोदाम और उसकी चीजोंको पूरी तरह छूत-रहित कर दिया गया।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६–७–१९०४

१८५. स्वर्गीय श्री क्रूगर

भूतपूर्व राष्ट्रपति क्रूगर अब इस ससारमे नही रहे। और उनके गुजर जानेसे उन्नीसवी शताब्दीका एक अत्यन्त प्रभावशाली पुरुष चला गया और ससारको अपने लाभसे वंचित कर गया। वे दृढ चरित्रके धनी थे, जिसमे शायद अनेक बाते परस्पर-विरोधी थी। परन्तु, निस्सन्देह, विशुद्ध नतीजा उनके अनुकूल था। जिन लोगोको अपना कहनेमे उन्हे गर्व होता था उनके प्रति उनकी निष्ठा अनुपम थी। उन्होने अग्रेज जैसी बलशाली जातिका विरोध करने और उसे अपनी जगत-प्रसिद्ध चुनौती भेजनेमे जो भूल की थी वह भी उनके विरुद्ध नही, बल्कि उनके पक्षमे ही गिनी जायेगी। उन्होने वह घातक कदम देश और देशवासियोके प्रति अपने गहरे प्रेमसे प्रेरित होकर ही उठाया था। उसके पीछे कोई शेखी नही थी। वे अनुभव करते थे कि वे उचित कर रहे है। बाइबिलके पुराने धर्मनियम (ओल्ड टेस्टामेंट) की शिक्षामे उनकी श्रद्धा बहुत गहरी थी और उनका विश्वास था कि ईश्वर उनके साथ है और इसलिए उनकी हार कभी नही हो सकती। वस्तुत. मामलेका आखिरी फैसला होनेके बाद भी उन थोडेसे दिनोमे, जबतक वे इस पृथ्वीपर रहे, उनका यह विश्वास कभी डिगा नही और वे तब भी अनेक बोअरोकी भाँति यही विश्वास करते रहे कि अग्रेजोका अधिकार हो जानेसे भी उनका कल्याण ही होगा। और बेशक ऐसा ही होगा; शायद उस तरहसे नही जिस तरह वे चाहते। परन्तु ईश्वर तो वैसे काम नही करता जैसे हम करते है और भविष्य बतायेगा कि इस राष्ट्रकी किस्मत क्या होगी। अक्सर यह कहा गया है कि परलोकवासी राष्ट्रपति प्रिटोरियासे कायरताके कारण भागे थे। परन्तु हमने यह आरोप कभी सत्य नही माना है। उनका खयाल था कि

वे दूर रहे और दूरसे सब व्यवस्था करें तो अपने देशवासियोंकी अधिकतम सेवा कर सकते हैं। और इसलिए वे वहाँसे चले गये। यह खयाल गलत है कि जो बहादुर शेर द्वारा घायल कर दिये जानेपर अपने ही हाथसे अपनी अंगुली काटकर और अपने घावपर पट्टी बाँधकर अपने कामकाजमे इस तरह लग गया था मानो कुछ घटित ही न हुआ हो, वही खतरेकी जगहसे भागनेवाला व्यक्ति होगा। यूरोपमें भी उनकी वृत्ति एक महान और ईश्वरपरायण पुरुषके योग्य रही। उन्होने कोई अनुचित क्षोभ नही दिखाया, अनिवार्यको मजूर किया और अपने लोगोको सलाह देकर रास्ता दिखाते रहे। वे अपने पीछे एक महत्त्वपूर्ण सबक छोड गये है और वह है उनकी एकनिष्ठ देशभक्ति, यद्यपि वह कभी-कभी गलत दिशामें चली जाती थी। हमारा खयाल है कि आगामी पीढ़ियोके लिए उनका सर्वोत्तम परिचय एक कट्टर देशभक्तके रूपमें होगा। खुद ब्रिटिश भारतीयोके पास ऐसा कुछ नही, जिसके लिए वे उक्त दिवंगत राजपुरुषको धन्यवाद दे सकें। ट्रान्सवालमे उनके बनाये कानूनकी पीड़ासे हम अब भी कराह रहे है। परन्तु इस कारण यह जरूरी नही कि हमारे देशवासी उनके महान गुणोको स्वीकार न करे और जो लोग ऐसे महान पुरुषकी मृत्युपर शोक मना रहे हैं उनके साथ शरीक न हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३-७-१९०४

१८६. आयोजित आन्दोलन

ब्रिटिश भारतीयों और दूसरे एशियाइयोको व्यापारिक परवाने देनेके विरुद्ध बॉक्सबर्गके व्यापारियोकी हलचले जारी हैं। उन्होने संयुक्त कार्रवाईकी दृष्टिसे उपनिवेशके सब व्यापारी-सघोके नाम एक घोषणापत्र भेजा है। बॉक्सबर्गसे छन-छनकर जो कागजात यहाँ आ जाते हैं उनमे बहुत ही असयत बातें कही जाती हैं। उदाहरणके लिए, दूसरे संघोसे ठंडे दिलसे कहा गया है कि "एशियाई व्यापारको उपनिवेशमे अबाध रूपसे जमनेकी अनुमति देकर गोरे समाजपर अन्याय किया जा रहा है और उसके लिए खतरा पैदा किया जा रहा है।" यदि सुझाये गये प्रस्तावपर ध्यान दिया गया तो उससे विधान-परिषद दुनियाकी नजरोमे बिलकुल हास्यास्पद दिखाई देगी। क्योकि, प्रस्तावमे परिषदसे गम्भीरतापूर्वक माँग की गई है कि "जबतक एशियाइयोके सम्बन्धमें स्थायी कानून अमलमे नही आता तबतक एशियाइयोको परवाने देना बन्द कर दिया जाये।" इतनेपर भी हमसे कहा जाता है कि उन्होने इतना अच्छा एका कर लिया है कि अबतक चीनी अहातेके पास एक भी चीनी व्यापारी पैर नही जमा सका है। समझमें नही आता कि तब इतनी भोंडी जल्दबाजी क्यो की जाती है। परन्तु हमे अपने सहयोगी *स्टार*के द्वारा मालूम हुआ कि उपनिवेश-कार्यालयको प्रेषित निवेदनोमे स्थानीय सरकारके हाथ मजबूत करनेके उद्देश्यसे ऐसा जोरदार आन्दोलन चलाना अत्यावश्यक है। इस दृष्टिसे देखनेपर हमारी समझमे इस बातका अर्थ आ जाता है, यह तो आतंकित करना ही है। अमली तौरपर इस तरह लोग साम्राज्य-सरकारसे कहते है कि, "अगर तुम हमे वह चीज नही दोगे जो हम चाहते है तो हम तुमसे झगड़ेंगे", क्योकि यह कहा गया है कि "इस आशयका एक और प्रस्ताव भी रखा जायेगा। अगर साम्राज्य-सरकार मजूरी नही देगी, तो उत्तरदायी शासनके लिए आन्दोलन शुरू कर दिया जायेगा, ताकि ट्रान्सवाल अपने भीतरी मामलोका

नियन्त्रण करनेका हक प्राप्त कर सके।" यह बिलकुल स्पष्ट है कि जबतक सरकार इस प्रश्नको टालती जाती है और पूरा न्याय करनेके बजाय दोनो पक्षोको खुश करनेका विचार करती है तबतक यूरोपीय और एशियाई प्रजाजनोके बीच शान्ति-स्थापनामें बाधा देनेवाला यह हानिकारक और अवांछनीय आन्दोलन जारी रहेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३–७–१९०४

१८७. चीनी पहेली

चीनी व्यापारकी लड़ाई, जो अनिवार्य थी, पूरी तीव्रता और तत्परतासे शुरू हो गई है। बॉक्सबर्गके लोग चीनी दूकानदारोका अपने गिरमिटिया देशबन्धुओसे कोई लेनदेन हो इस विचारके ही खिलाफ उठ खड़े हुए हैं। इतना काफी नही कि उनके तमाम नागरिक अधिकार छीन लिये जाने है और उनको गुलाम जैसा बना दिया जाना है। और, जैसा एक चीनीने भेंटमे *स्टार*के प्रतिनिधिसे कहा था, यह भी काफी नही कि उन्हे मजदूरी इतनी थोड़ी दी जानी है कि बचत बहुत थोड़ी ही होगी, यद्यपि गिरमिटके अन्तमे उनके सामने भविष्य होगा — आवश्यक रूपसे चीनको लौट जाना। इसके अलावा बॉक्सबर्गके यूरोपीय दूकानदारोको चीनी व्यापारसे अनाप-शनाप मुनाफा भी मिलना ही चाहिए। और गिरमिटिया लोग अपनी मजदूरीमे से जो भी खर्च करे वह यूरोपीय दूकानदारोकी जेबोंमें जाना चाहिए। बॉक्सबर्गके ये शरीफ लोग वस्तुत: तभी समझेंगे कि उनके साथ कुछ थोड़ा-सा न्याय किया गया है; अन्यथा वे कहेंगे कि चीनी मजदूरोंको यहाँ आनेकी जरूरत ही नही थी। और अगर चीनी दूकानदारोको अपने देशबन्धुओकी आवश्यकताओकी पूर्ति करनेकी अनुमति दे दी जाये तो यह अन्यायकी पराकाष्ठा और यूरोपीय दूकानदारोकी हकतल्फी होगी। वे स्वीकार करते है कि चीनी दूकानदारोके साथ वे बिलकुल स्पर्धा नही कर सकते। सीधी-सादी भाषामें इसका अर्थ यह है कि वे इन गरीब गुलामोसे उसकी अपेक्षा बहुत अधिक दाम लेंगे जितना चीनी दूकानदार लेनेका कभी विचार करते। और इसलिए वे अपना सारा सामर्थ्य, प्रभाव और बल इस बातपर खर्च कर रहे है कि एक भी चीनी या यो कहिये कि, भारतीय व्यापारी चीनी ग्राहकोमें से जरा भी हिस्सा न बँटा सके। उन्होने लेफ्टिनेंट गवर्नरको प्रार्थनापत्र दिया है और तमाम व्यापारी सघोंसे अनुरोध किया है कि वे उनके गुटमे शरीक हो और उनके हकमे चीनी व्यापारकी एक बड़ी कोठी बनवानेमे उनका साथ दे।[1] वे बहुत साफ-साफ कहते रहे है कि अगर सरकार उनकी मदद नही करेगी तो वे कानून अपने हाथोमे ले लेंगे और टेढ़े-सीधे तरीके काममें लाकर भी एक भी चीनी दूकानदारको बॉक्सबर्गमें अपना व्यापार नही जमाने देंगे। इससे इस समाजकी मनोदशा विदित होती है और यह भी प्रकट होता है कि जो अधिकार केवल उन्हींके नही है, उनपर जोर देने या, यो कहिए कि, उन्हे हड़पनेके इरादेसे वे किस हदतक आगे बढ़नेके लिए तैयार है। बिगड़ैल और लाडले बच्चोकी तरह, वे चूँकि अबतक अपनी ही जिद पूरी करते रहे है इसलिए अब वे सारी मर्यादाएँ ही लाँघ गये है और सिर्फ यही समझते है कि वे जिस प्रश्नपर चाहे सरकारसे अपनी शर्तें मनवानेका हक रखते है। क्या श्री लिटिलटन इनके आगे घुटने टेक देंगे?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २३–७–१९०४

१. इससे अभिप्राय चीनी मजदूरोंके साथ व्यापारपर गोरोंका एकाधिकार है।

१८८. बॉक्सबर्गके पहरेदार

बॉक्सबर्गमे भारतीय व्यापारके सम्बन्धमे जो सभा की गई थी हम उसका विवरण नीचे उद्धृत करते हैं। इससे हमें १८९६ का डर्बनका ऐसा ही आन्दोलन[1] बहुत तीव्रतासे याद आता है। और इस सभामे प्रस्तुत और स्वीकृत दूसरे प्रस्तावमे भी बहुत तेज डर्बनी बू आती है। प्रस्ताव यों है:

> बॉक्सबर्ग नगरपालिकाके निवासी इस आम सभामें प्रतिज्ञा करते हैं कि वे मौजूदा एशियाई कानूनके सिद्धान्तोंको, ट्रान्सवालके लोगों द्वारा हमेशाके लिए गये अर्थके अनुसार, कायम रखेंगे और एशियाई दूकानदारोंको पृथक् बस्तीके बाहर बॉक्सबर्ग नगरपालिकामें व्यापार करने या रहनेसे रोकनेके लिए सब सम्भव उपाय काममें लेंगे; वे सरकारसे यह अनुरोध करते हैं कि जो पेचीदगियाँ पैदा हो गई हैं उन्हें देखते हुए नये कानूनमें एशियाई व्यापारकी बिलकुल मनाही कर दी जाये।

तब हम देखते हैं कि इसमें एशियाई व्यापारकी पूरी मनाहीकी प्रार्थनाके रूपमे साफ तौरपर सर्वोच्च न्यायालयका विरोध किया गया है और धमकी दी गई है कि अगर कोई एशियाई बॉक्सबर्गमें पृथक् बस्तीके बाहर बसनेका इरादा करेगा तो हिंसाका आश्रय लिया जायेगा। प्रस्तावकने उदाहरण देकर बताया कि सब सम्भव उपायोसे उनका मतलब क्या है। यह है उसका अर्थपूर्ण कथन:

> अबतक शानदार एकता और सार्वजनिक भावनाके बलपर लोगोंने नगरमें एशियाइयोंको कोई दूकान या बाड़ा किरायेपर देनेसे इनकार किया है, यद्यपि एक चीनीने ड्रीफाँटीनमें परवाना हासिल कर लिया है। मगर मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि, आशा है, कल सुबहतक खतरा दूर हो जायेगा और पृथक् बस्तीके बाहर सारी नगरपालिकाकी सीमामें किसी भी बाड़ेका किसी एशियाईके नाम परवाना बिलकुल नहीं रहेगा (तालियाँ)। अबतक जो 'नैतिक दबाव' इतनी सफलतापूर्वक डाला गया, उसमें ऐसी ताकत है। किन्तु हमें और हमलोंके लिए तैयार रहना होगा और इसलिए प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हम एशियाइयोंको प्रोत्साहन देनेका हर *सम्भव उपायसे विरोध* करेंगे। — *स्टार*

हमें यह कहनेकी जरूरत नही कि "नैतिक दबाव" का क्या अर्थ है।

सभामे उपस्थित कुछ संजीदा लोगोको यह सहन नही हो सका और हमें उनमे ईस्ट रैंड एक्स्प्रेसके श्री कॉन्स्टेबलको देखकर खुशी हुई। हमारा खयाल है कि वे एशियाइयोके कट्टर विरोधी हैं, फिर भी उनको अपनी वैधानिक बुद्धिमें यह प्रस्ताव बड़ा घिनौना मालूम हुआ और उन्होंने सुझाव दिया कि इसमे ["हर सम्भव उपाय" शब्द निकालकर] "प्रत्येक सम्भव वैधानिक उपाय" शब्द जोड दिये जाये और मनाहीकी पूरी धारा निकाल दी जाये। परन्तु श्री कॉन्स्टेबल और उनके समर्थकोकी आवाज अरण्यरोदन ही सिद्ध हुई और वहाँ विवेकको क्रोध और द्वेषसे हार माननी पड़ी।

जैसा हमने अनेक बार कहा है, यदि बॉक्सबर्गवासी महानुभाव यह समझते हो कि कायरता-भरी धमकियोसे वे किसी एक भी ब्रिटिश भारतीयको, जो अपने अधिकारपर जोर देना चाहता

१. यह संकेत यूरोपीयों द्वारा भारतीयोंको डर्बनमें उतरने देनेके विरोधकी ओर है। देखिए खण्ड २, पृष्ठ १९९ और आगे।

हो, डरा-धमका सकेंगे, तो यह उनकी बड़ी भूल है। और हम उन्हे फिर डर्बन और अमतलीकी घटनाओकी[1] याद दिलाते है। डर्बनमे स्वयंभू प्रदर्शन-समितिकी चुनौती भारतीयोको डराने-धमकानेमे अशक्त रही और उससे वे जहाँसे आये थे वहाँ वापिस नही गये। और अमतलीमे भीड अकेले निर्दोष भारतीय व्यापारीको भी डराकर उसको अपनी दूकानसे नही हटा सकी। उसने उन लोगोको चुनौती दी कि वे जो-कुछ बुरासे-बुरा कर सकते है वह कर गुजरे और वह अपनी जगहपर उस वक्ततक डटा रहा जबतक पुलिसकी मदद न आ गई और पुलिस सुपरिंटेंडेंटने भीडको तितर-बितर नही कर दिया।

परन्तु बॉक्सवर्गके महापौरने जो कुछ कहा वह कही अधिक खौफनाक था। उन्होने सभामे उपस्थित लोगोको समझाया कि वे उत्तरदायी शासन जल्दी ही देनेकी मॉगके प्रस्तावसे सरकारको दी गई धमकी निकाल दे। उन्होने सभामे बिलकुल स्पष्ट कहा कि उपनिवेश-सचिव श्री डंकन पूरी तरह उनके साथ मिलकर काम कर रहे है। हम अपने विचार पेश नही करना चाहते, क्योकि हम उपनिवेश-सचिवके प्रति अनजानमें भी कोई अन्याय नही करना चाहते। उनके शब्द ये है :

> **महापौरने तब कहा : मै आज प्रिटोरिया गया था और आपको बता सकता हूँ कि वहाँ भी एशियाई प्रश्नपर उतनी ही तीव्र चर्चा होती है, जितनी ईस्ट रैंडमें। आपको एक क्षणके लिए भी यह नहीं सोचना चाहिए कि सरकारको जो खबरें दी जा रही हैं उनके प्रति वह उदासीन है। परन्तु सरकार यह महसूस करती है कि मौजूदा कानून जबतक है, वह एशियाइयोंको परवानोंका दिया जाना रोक नहीं सकती। परन्तु वह भरसक कोशिश कर रही है कि ऐसा कानून तुरन्त बनानेकी अनुमति ले ली जाये, जिससे अब और परवाने देना रुक जाये। मुझे भय है कि अगर श्री मैक'क्यूको सभाके सामने यह प्रस्ताव पेश करने दिया जाता है तो इससे सरकारका उद्देश्य व्यर्थ हो जायेगा। मै उपनिवेश-सचिव श्री डंकन और सर जॉर्ज फेरारके कथनके आधारपर कह सकता हूँ कि गोरे लोगोंके साथ सरकारकी पूरी सहानुभूति है और इसके प्रमाणस्वरूप मुझसे कहा गया है कि यहाँ आज शामको जो प्रस्ताव पास हों, वे इंग्लैंडको प्रेषित करनेके लिए तारसे प्रिटोरिया भेज दिये जायें। मुझे कहा गया है कि इस प्रस्तावसे सरकारके हाथ मजबूत होंगे और मुझे आशा है कि हमें जल्दी ही राहत मिलेगी। उपनिवेश-सचिवने मुझसे साफ-साफ कहा है कि तीन-चार दिन पहले ही इस प्रश्नके सम्बन्धमें इंग्लैंडको समुद्री तार भेजे गये हैं और सरकार इस प्रश्नको अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझती है (तालियाँ)। —*स्टार***

हमने पिछले सप्ताह जो कुछ कहा था उसके समर्थनमे हम इससे अधिक प्रबल या अच्छा प्रमाण दूसरा नही दे सकते। हमने तब कहा था कि यह सारा आन्दोलन आयोजित है। यह दृश्य अपमानजनक है कि हम उपनिवेश-सचिवको सरकारी प्रतिनिधि होते हुए भी ऐसा पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाते हुए और ताकत वगैरा मॉगते हुए आन्दोलनके पीछे खडा पाते है। इस तरहका व्यवहार तो स्वर्गीय राष्ट्रपति क्रूगरकी सरकारने भी नही किया था। उन्होने भी यह नही कहा था कि नगर-निवासी अथवा डचेतर यूरोपीय उनके हाथ मजबूत करे। उन्होने अपनी लड़ाई सीधी और न्यायपूर्वक लड़ी थी। तब परदेके पीछे कुछ नही होता था और भारतीय जानते थे कि उन्हे किस चीजका सामना करना है। इस समय जैसी स्थिति है, उसमे उन्हे कुछ भी पता नही है कि परदेके पीछे क्या हो रहा है। महापौरने हमे भीतरी स्थितिकी

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ६१।

जरा-सी झलक ही देखने दी है; परन्तु वह झलक हमें स्तब्ध और निराश करनेके लिए काफी है। जब सभाकी ये खबरें तारसे श्री लिटिलटनको भेज दी जायेंगी, तब वहाँ उन्हें यह बतानेके लिए कोई नहीं होगा कि ये सभाएँ प्रायः सरकारने ही बुलाई हैं और उसीने उन्हें प्रोत्साहन दिया है और सरकारकी नीति सभाकी नीति है। हजारों ब्रिटिश मंचोंसे यह घोषणा की गई है कि कुछ भी हो, न्याय होना ही चाहिए। ट्रान्सवालमें अब इस कहावतमें परिवर्तन करना पड़ेगा, ताकि यहाँ जो नई व्यवस्था कायम हुई है उसके साथ इसका मेल बैठ जाये; और बॉक्सबर्गके महापौरने जो बात कही है उसको देखते हुए हमें महसूस होता है कि सर जॉर्ज फेरारके एशियाई व्यापारी-आयोगकी नियुक्तिसे सम्बन्धित प्रस्तावपर श्री डंकनने भारतीय व्यापारियोंकी जो शानदार वकालत की थी वह सच्चे दिलसे नहीं की गई थी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३०-७-१९०४

१८९. गिरमिटिया भारतीयोंमें आत्महत्याएँ

गिरमिटिया भारतीयोंमें आत्महत्याओंकी असाधारण संख्याके बारेमें हमने पिछले ४ जूनके *इंडियन ओपिनियनमें* जो प्रश्न उठाया था उसपर सर मंचरजीने ब्रिटिश संसदमें सवाल पूछा था और उसका जवाब श्री लिटिलटनने दिया था। अब हमें इस प्रश्नोत्तरको विस्तारसे यहाँ छापनेका सुयोग प्राप्त हुआ है:

> सर मंचरजी भावनगरीने उपनिवेश-मन्त्रीसे पूछा: क्या आपका ध्यान उक्त वक्तव्यकी ओर गया है जो नेटाली प्रवासी भारतीयोंके संरक्षककी १९०३ की सालाना रिपोर्टमें दिया गया है? उसमें कहा गया है कि उस वर्षमें आत्महत्याओंकी घटनाएँ कमसे-कम ३१ अर्थात् दस लाखमें ७४१ हुईं। क्या गिरमिटिया मजदूरोंने बहुत बड़े अनुपातमें आत्म-हत्याएँ कीं; और क्या स्थानीय अधिकारियोंने इस प्रकार स्वेच्छापूर्वक प्राण-त्यागके कारणोंका पता लगाया?
>
> श्री लिटिलटनने कहा: मैंने उल्लिखित रिपोर्ट देखी है। भारतीयोंमें मृत्यु-संख्या प्रति दस लाखमें ७४१ नहीं हुई जैसा कि कहा गया है, बल्कि ३८२ हुई। स्वतन्त्र भारतीयों और गिरमिटिया भारतीयोंमें मृत्यु-संख्याकी दर क्रमशः १५७ और ७६६ थी। मुझको बताया गया है कि आत्महत्याकी प्रत्येक घटना किन परिस्थितियोंमें हुई, इसकी जाँच न्यायाधीशसे कराई गई और जब कभी प्रमाणोंसे यह प्रगट हुआ कि मृत्यु किसी भी तरह किसी मालिक या नौकरके दुर्व्यवहारसे हुई है तब भारतीय प्रवासी-संरक्षक उस खेतीमें खुद गया और उसने उन परिस्थितियोंकी जाँच की। केवल एक ही मामलेमें गवाहीसे इस प्रकारका सबूत मिला। आम तौरपर गवाहोंने यह बयान दिया कि वे आत्महत्याका कोई कारण नहीं बता सकते। और अगर जिन लोगोंको जानकारी है वे ही कुछ न बतायें तो बहुतसे मामलोंमें सम्भावित कारण मालूम करना भी असम्भव है। मालूम होता है नेटालके भारतीयोंमें १९०२ में सामान्य मृत्यु-संख्याकी दर ३३३ रही

और १९०१ में ३८३। इस लिहाजसे १९०३ में मृत्यु-संख्याकी दर बिलकुल असाधारण तो नहीं थी। इस संख्यासे पेरिसकी संख्या अधिक रही है।

सर मचरजीके आँकड़े इस अखबारसे[1] लिये गये हैं। और श्री लिटिलटनने सर मचरजी-पर ऐसी बात आरोपित की है जो हम समझते हैं उन्होंने कभी नही कही। और फिर उन्होंने उनके आँकड़ोकी प्रामाणिकतासे इनकार किया है। सर मचरजीने पूछा था कि क्या गिरमिटिया भारतीयोमे आत्महत्याओकी सख्या प्रति दस लाखमे ७४१ नही है। इसमें जरा-सी भूल यह है कि सर मचरजीका आशय ३१ घटनाओसे है। जो आत्महत्याओकी पूरी सख्या है। इसमें से २३ आत्महत्याएँ गिरमिटिया भारतीयोमे हुईं, परन्तु उनका अनुपात बिलकुल सही है। इसलिए मचरजीके आँकड़े बिलकुल असन्दिग्ध रहते हैं और जैसा कि *डेली न्यूज़ने* बताया है, जो आँकडे श्री लिटिलटनने खुद पेश किये है उनसे भारतीय सदस्यके कथनकी और अधिक पुष्टि होती है। क्योकि, श्री लिटिलटनके अनुपातके अनुसार, सख्या ७४१ नही बल्कि ७६६ है, जब कि स्वतन्त्र भारतीयोमे १५७ ही है। ये आँकड़े बहुत जोरदार और साथ ही दर्दनाक भी हैं। और इन भयानक आँकडोके होते हुए भी श्री लिटिलटनने सरक्षककी रिपोर्टमें इस मामलेका जरा-सा जिक्र आनेपर ही अपना सन्तोष प्रकट कर दिया है। हमारी विनीत रायमें उन्होंने ऐसा करके उस मुद्देको ही भुला दिया जो हमने उठाया है। हम अभीतक मालिकोके दुर्व्यवहारको आत्महत्याओका कारण नही मानते, जैसा श्री लिटिलटनने खयाल कर लिया है। परन्तु हम यह जरूर कहते है कि जिस स्थितिके कारण आत्महत्याओसे इतनी अधिक मृत्युएँ होती है वह ऐसी है जिसकी जाँच होना मालिक और नौकर दोनोके हितमे जरूरी है। हम जानते हैं कि विचारणीय वर्षकी संख्या असाधारण नही है। परन्तु वह साल-दर-साल चली आ रही है और यही स्थिति सबसे बुरी है। इसलिए हम समझते हैं कि पूरी और निष्पक्ष जाँच करनेका समय आ पहुँचा है। सम्भव है कि मालिकोके वास्तविक दुर्व्यवहारके बजाय उस स्थितिका ही दोष हो जिसमे गिरमिटिया लोग रखे जाते हैं। यह भी हो सकता है कि उन लोगोसे जो काम कराया जाता है वह उनके लिए जरूरतसे ज्यादा सख्त हो या जलवायु-सम्बन्धी स्थितियाँ ऐसी हो जिनसे वे ऐसे काम करनेके लिए बाध्य होते हो, अथवा उन्हे सिर्फ घरकी याद ही सताती हो। कारण कुछ भी हो, यह अत्यावश्यक है कि जनता ठीक-ठीक कारण जाने और इस मामलेपर भारतीयोके मनमे जो भारी बेचैनी है उसका भी समाधान हो। इसलिए हमारी समझमे नही आता कि जाँचकी उचित माँगमें कदाचित् खर्चके सिवा और क्या आपत्ति हो सकती है। परन्तु हम इस बातका तो बिलकुल विचार ही नही करते, क्योकि हम जानते हैं कि इससे कही कम महत्त्वके मामलेमे भारी खर्च करके भी जाँचपर जाँच मजूर की जाती हैं। इसलिए हमे विश्वास है कि इस प्रश्नको यो ही नहीं छोड़ दिया जायेगा और योग्य ससद-सदस्य सर मचरजी उपनिवेश-कार्यालयको साफ तौरपर बता देंगे कि प्रस्तावित जाँचका मतलब पहलेसे ही मालिकोके दुर्व्यवहारका अस्तित्व मान लेना नही है और न उसका हेतु मालिकोपर जरा भी आक्षेप करना है। आवश्यकता इतनी ही है कि सत्यकी खोज कर ली जाये और कुछ नही।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३०-७-१९०४

१. देखिए "गिरमिटिया भारतीय" ४-६-१९०४; गाधीजीने इस लेखकी एक नकल मंचरजी भावनगरीको भी भेजी हो तो असम्भव नहीं।

१९०. दर-दरके धक्के

जोहानिसबर्ग नगर-परिषदकी बैठक वतनी और एशियाई लोगोके लिए घरोंकी व्यवस्थाके बारेमे हुई थी। उसका विवरण दिलचस्प है जिसे हम अन्य स्तम्भमे छाप रहे है। सभीको यह स्मरण होगा कि प्लेगके प्रकोपके दिनोमे पुरानी भारतीय बस्ती जला दी गई थी और उसके निवासी हटाकर क्लिपस्प्रूट शिविरमें भेज दिये गये थे। परिषदके कुछ सदस्योकी यह राय थी कि अच्छा पिण्ड छूटा और उन्होने यह भी सोच लिया था कि शिविर स्थायी बस्ती है। परन्तु उन्होने पीछे देखा कि पृथक् वासकी अवधि बीतनेके बाद शिविर-वासियोको नगरमे लौटनेकी इजाजत दे दी गई है, बशर्ते कि वे रैंड प्लेग-समितिको सन्तोषप्रद निवास-स्थान बता सके। यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि इस प्रकार निवास-स्थानोसे वंचित भारतीयोके पास जमीनका टुकडा जैसी कोई चीज नही है, जिसपर वे स्थायी रूपसे रह सके। जो बस्ती जला दी गई है उसके स्थानपर कोई दूसरी अभीतक निश्चित नही की गई है और चूँकि उन्हें अचल सम्पत्ति रखनेका अधिकार नही है इसलिए वे असमंजसकी स्थितिमे रहनेके लिए लाचार है। अब विवरणसे जाहिर है कि नगर-परिषद क्या करना चाहती है, यह वह खुद नही जानती। वह अभीतक उपयुक्त स्थानके चुनावके सम्बन्धमे जहाँ थी वहाँ ही है और स्थिति यह है कि इस बीचमे किसी भी [क्षण][1] भारतीयोको दर-दर धक्के खाने पड सकते है। मलायी बस्ती पहलेसे ही घिचपिच है और उसमें उन्हे अनाप-शनाप किराया देना पड़ता है। उनका व्यापार चौपट हो गया है। उनके पास माल नही है, वह जला दिया गया है और उनको उसका कोई मुआवजा नही दिया गया है। उनकी हालत सचमुच दयनीय है और उपनिवेश-सचिवने, जो उनके लिए उपयुक्त स्थानकी व्यवस्थापर जोर देनेके लिए कर्त्तव्यबद्ध है, अभी अँगुली भी नही उठाई है। उधर नगर-परिषद तरह-तरहकी योजनाओपर बेकार वादविवाद कर रही है। इस अन्यायका अन्त कब होगा?

नगर-परिषद और स्थानीय सरकारके इस उदासीनता-भरे रुखके बिलकुल विपरीत यह समुद्री तार है जो हमारे सम्मानित सहयोगीने अपने स्तम्भोमें छापा है। कहते है, इसमें श्री लिटिलटनने यह कहा:

> हम ट्रान्सवाल-वासियोंपर भारतीय मजदूरोंको देशमें लानेकी इजाजत देनेके लिए दबाव नहीं डाल सकते, परन्तु हम उन्हें समझाने-बुझानेका प्रयत्न कर सकते हैं।
>
> पृथक्करणकी नीति अदूरदर्शितापूर्ण और अमानुषिकता-भरी है।
>
> परन्तु यदि ट्रान्सवाल ब्रिटिश भारतीयोंके उपनिवेशमें प्रवेशके रास्तेमें कठिनाइयाँ पैदा करनेका निर्णय करता है तो यद्यपि मुझे उस निर्णयसे गहरा दुःख होगा, फिर भी मैं यह खयाल नहीं करता कि जो भारतीय प्रवासी गणराज्यके कानूनके अन्तर्गत वहाँ आये थे उनके मामलेमें वह विरोध कर सकता है, क्योंकि वह कानून बिलकुल भिन्न है।
>
> मेरा खयाल है कि सर्वोच्च न्यायालयका निर्णय कायम रखा जाना चाहिए, क्योकि हमारे लिए अपने राष्ट्रीय गौरव और सम्मानसे असंगत स्थिति अपनाना और

१. यह मूलमें कटा हुआ है।

उन विशेषाधिकारोंको देनेसे इनकार करना, जिनकी पुष्टि न्यायालयसे हो चुकी है, असम्भव है।

यह कहना असम्भव है कि इन भारतीयोंको ब्रिटिश झंडेके नीचे वे अधिकार प्राप्त नहीं हैं जो उन्हें बोअर-कानूनके अन्तर्गत दिये गये थे।

मुझे पूरा निश्चय है कि ट्रान्सवालके नागरिक, जो साम्राज्यसे सम्बन्ध रखनेका महत्त्व समझते हैं, अंग्रेजोंके नामके गौरवकी रक्षा उतनी ही करेंगे जितनी कोई दूसरा करता है; और ऐसे अधिकार मुक्तहस्तसे प्रदान् करेंगे।

श्री लिटिलटनका कथन उत्साहजनक है। सवाल सिर्फ यह है कि क्या उनमे इसपर अमल करनेकी शक्ति और स्थानीय सरकारके विरोधका सामना करनेकी दृढता होगी? हम बराबर कहते आ रहे है कि ब्रिटिश अधिकारके बाद ब्रिटिश भारतीयोंके साथ किया गया व्यवहार ब्रिटिश गौरव और ब्रिटेनके राष्ट्रीय सम्मानसे मेल नही खाता। अब हम उपनिवेश-मन्त्रीको लोकसभामे अपने स्थानसे उस विचारका समर्थन करते हुए पाते है। आशा है वे जैसा कहते है वैसा करेंगे भी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३०-७-१९०४

१९१. सिंहावलोकन

हमें यह घोषणा करते हुए बहुत प्रसन्नता होती है कि ट्रान्सवालके भीतर भी ब्रिटिश भारतीयोकी गतिविधिपर रैंड प्लेग-समिति द्वारा लगाई गई प्लेग-सम्बन्धी पाबन्दियाँ अब हटा ली गई है और जो भारतीय उपनिवेशमे एक जगहसे दूसरी जगह सफर करना चाहे उन्हे अब अपनी डाक्टरी जाँच करवाने और यात्राके परवाने साथ रखनेकी जरूरत नही होगी। हम ट्रान्सवालमे आबाद अपने देशवासियोको उनकी इस कष्ट-मुक्तिपर और उससे भी अधिक उनके अनुकरणीय धैर्यपर बधाई देना चाहते है। हमारी हमेशा यह राय रही है कि प्रतिबन्ध सर्वथा अनावश्यक थे, यद्यपि हमने साथ-साथ यह सलाह भी दी है कि इस सबको सहन करना ही उनके लिए सबसे अच्छी बात है। सरकारी कथनके अनुसार प्लेग पिछले मार्चके मध्यमे शुरू हुआ था और पहले जोरदार दौरके बाद उसका प्रकोप खतरनाक रूपमे कभी नही हुआ है। पिछले तीन महीनेमे कुछ इक्की-दुक्की प्लेगकी घटनाएँ हुई है और वे भी ज्यादातर वतनी लोगोतक ही सीमित रही है। फिर भी साढे चार महीनेतक भारतीयोने अपनी हलचलोके सम्बन्धमे कष्टप्रद असुविधाओका सामना किया है। आँकड़े निश्चित रूपसे बताते है कि भारतीय बस्तीके बाहर प्लेगने किसी व्यक्तिका लिहाज नही किया है और जोहानिसबर्गके बाहर शायद ही किसी भारतीयको प्लेग हुआ हो। कुछ जिलोमे तो प्लेगसे एक भी भारतीय बीमार नही हुआ। इसके अलावा अधिकारी उनके विरुद्ध एक भी शिकायत पेश नही कर सके हैं। वे अधिकारियोकी इच्छाओके अनुसार चलनेके लिए तैयार और उत्सुक रहे है और जब उनके मकान और असबाब जला दिये गये और उनको नगरसे तेरह मील दूर शिविरमे जानेका आदेश दिया गया, तब वे बड़बडाये बिना वहाँ चले गये। उपनिवेशके चिकित्सा-अधिकारी डॉ० टर्नरने विचारपूर्वक अपनी राय दी है कि जोहानिसबर्गकी वस्तीमे प्लेगके प्रकोपका दोष भार-

तीयोपर किसी भी तरह नही आता है और जो हालत हुई है उसके लिए अधिकारी ही जिम्मेदार है, क्योकि उन्होने उस स्थानको स्वच्छ हालतमें रखनेके अपने प्रथम कर्त्तव्यकी अवहेलना की थी। सैकडो भारतीयोको, जो बेघर-बार हो गये है और जिनका माल नष्ट कर दिया गया है, अभीतक कोई मुआवजा नही दिया गया है और न उनके पास रहनेके लिए कोई निश्चित स्थान है। हम कहना चाहते है कि ससारमे ऐसे बहुत कम समाज पाये जायेंगे जो उसी तरहका व्यवहार करेगे जैसा भारतीयोने इस अग्नि-परीक्षामे और अत्यन्त कष्टदायक कठिनाइयोके बीच किया है। क्या सरकार इसपर ध्यान देगी? क्या रैड प्लेग-समिति, जो लोगोके निकट सम्पर्कमे आई है, भारतीयोको उचित श्रेय देनेका साहस करेगी? क्या श्री लिटिलटन किसी भी प्रतिबन्धक कानूनपर मजूरी देते समय इन तथ्योपर विचार करेगे? और क्या भारतीयोके इग्लैंड-स्थित मित्र अधिकारियोको इनके सम्बन्धमे विश्वास दिलायेंगे और यह ध्यान रखेंगे कि जो काम इतनी अच्छी तरह किया गया है वह व्यर्थ न चला जाये?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ६-८-१९०४

१९२. सर फीरोजशाह

डाकसे आये पत्रोसे यह अत्यन्त आनन्ददायक समाचार मिला है कि माननीय श्री फीरोजशाह मेहताको[1] 'सर' की उपाधि प्रदान की गई है। अगर कोई व्यक्ति इस सम्मानका पात्र था तो वे निश्चय ही सर फीरोजशाह है। उनकी गिनती सबसे पुराने लोक-सेवकोमें है। वे बम्बई नगर-निगमके अध्वर्यु है और शायद उस महान निगमका कोई एक भी अन्य सदस्य उतनी बैठकोमें शामिल नही हुआ जितनीमें वे शामिल हुए है। उतने लम्बे समयतक निगमकी सेवा भी किसी अन्य सदस्यने न की होगी, जितने समयतक सर फीरोजशाहने की है। वे बम्बई प्रान्तके बेताजके बादशाह है और प्रथम नेता माने जाते है। भारतके अन्य किसी प्रान्तमें किसी भी अन्य व्यक्तिको यह सम्मान प्राप्त नही है। उनको अपनी बेमिसाल योग्यता और तजुर्बेकारी, प्रभावपूर्ण भाषण-शक्ति, व्यवहार-कुशलता और विरोधियोके प्रति अचूक शिष्टताके फलस्वरूप जनतामें बड़ी लोकप्रियता और सरकारमें प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। उन्होने बम्बई विधानसभाके कई कानूनोपर अपनी छाप डाली है और कलकत्ता-स्थित इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौन्सिलमें सेवाका जो थोड़ा-सा मौका मिला उसमें भी अपने लिए एक अनोखा स्थान बना लिया है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि सर फीरोजशाह राष्ट्रीय कांग्रेसके साथ हमेशा सम्बद्ध रहे है और दो बार उस सस्थाके अध्यक्ष भी बने है। इसलिए उनका 'सर' बनाया जाना उन माननीय महानुभावका जितना सम्मान है उतना ही कांग्रेसका भी है। हमारा खयाल है कि सरकारने उनका सम्मान करके खुद अपना सम्मान किया है। इस तरह किसी कांग्रेस नेताका ऐसा सम्मान पहली ही बार नही किया गया है। माननीय श्री गोखलेको भी अभी हालमें सी० आई० ई० का खिताब दिया गया है। जैसा कि पाठकोको मालूम है, माननीय गोखले इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौन्सिलमें महत्त्वपूण सेवा करते आ रहे है। हम देखते है कि हाल ही में खिताब

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९५।

पानेवालोमे माननीय शकरन् नायरका[1] भी नाम है। ये सब शायद समयके सूचक चिह्न है। मगर साथ ही इनसे यह भी प्रकट होता है कि सरकार उस अच्छे कामसे पूरी तरह परिचित है जो भारतीय समाजके नेताओ द्वारा भारतके भिन्न-भिन्न भागोमे उसके लिए किया जा रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ६-८-१९०४

१९३. लॉरैंसो मार्क्विसके ब्रिटिश भारतीय

कुछ समय पूर्व "फेयरप्ले" (इन्साफ) नामसे एक सवाददाताने हमारे सहयोगी *स्टारमें* लेख लिखकर लॉरैंसो मार्क्विसके ब्रिटिश भारतीयोकी स्थितिकी तुलना ट्रान्सवालके भारतीयोकी स्थितिसे की थी। सवाददाताके कथनानुसार डेलागोआ-बेके भारतीय यह कहते है

> **हम यहाँ पुर्तगाली शासनमें पूरी तरह और बिलकुल आजाद है और यद्यपि हम सब ब्रिटिश प्रजाजन है तो भी ट्रान्सवालकी अपेक्षा यहाँ हमारी हालत सौ गुनी अच्छी है।**

इसपर *स्टारका* नियमित सवाददाता लॉरेन्सो मार्क्विससे हमारे सहयोगीको लिखता है:

> **सम्भव है, लेखकको यह बात नयी ही मालूम हो कि संसद (कॉरटिस) की पिछली बैठकमें एक कानून समयाभावसे छोड़ दिया गया था। और अब वह अगली बैठकमें लाया जाना है। इसके अनुसार नवागन्तुक भारतीयोंपर प्रति व्यक्ति ८० पौंड वार्षिक कर लगाया जाना है। कहा जाता है कि यह कानून सरकारने मंजूर कर लिया है। अगर माननीय सदस्य श्री कारवेलोका उक्त प्रस्ताव कानून बन जाता है, तो 'फेयरप्ले' महाशय अपने मित्रोंकी भर्तीके लिए पुर्तगाली इलाकेके अलावा कोई अन्य स्थान तलाश करेंगे।**

अब अगर यह जानकारी, जो *स्टारके* सवाददाताने दी है, सही है तो इससे एक बार और जाहिर होता है कि डेलागोआ-बेके पुर्तगाली लोग नही, बल्कि वे आम यूरोपीय व्यापारी भारतीयोके विरुद्ध है, जिनसे कि डचेतर गोरोका दल बना है। वे ही लोग पुर्तगाली सरकारसे अपनी बात मनवानेमे सफल हो गये है, ताकि व्यापारमें उन्हे एकाधिकार मिल जाये। ट्रान्सवालमे पिछली हुकूमतके जमानेमे उन्होने ऐसा ही किया था और भूतपूर्व राष्ट्रपति क्रूगरको कानून मजूर करनेके लिए मना लिया था। यूरोपीय डेलागोआ-बेमे अभी हालमे ही बड़ी सख्यामें आवाद हुए है और यदि उन्होने ब्रिटिश भारतीयोपर पाबन्दियाँ लगानेके लिए पुर्तगाली सरकारको राजी कर लिया हो, तो हमे इसमे कोई आश्चर्य नही होना चाहिए। यदि श्री लिटिलटन कुछ भी दक्षिण आफ्रिकी ब्रिटिश भारतीयोके अधिकारोकी रक्षा करना चाहते हो तो उन्हें वहुत सावधान रहना पडेगा। और एक दफा पुर्तगाली सरकारने ब्रिटिश भारतीयो-पर प्रतिवन्ध लगाना शुरू कर दिया तो समस्या वेशक कही अधिक पेचीदा वन जायेगी।

१. सर चेट्टूर शकरन् नायर (१८५७-१९३४), मद्रास उच्च न्यायालयके न्यायाधीश और १८९७ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष।

क्योंकि डेलागोआ-बे ब्रिटिश उपनिवेश नहीं है और पुर्तगालियोंके तौर-तरीके अक्सर अत्यन्त रहस्यमय होते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ६–८–१९०४

१९४. पुलिस सुपरिंटेंडेंट और ब्रिटिश भारतीय

सुपरिंटेंडेंट अलेग्जेंडरने डर्बन नगर-परिषदमें एक रिपोर्ट पेश की है जो बहुत ही दिलचस्प है। उन्होंने भारतीयोंके बारेमें बहुत संतोषजनक बातें कही हैं। इस सम्बन्धमें वे लिखते हैं

> मुझे अपनी (लगभग १६,००० की) बड़ी आबादीसे बरतनेमें बहुत कम परेशानी हुई। ये लोग कानून और व्यवस्थाका पालन सबसे ज्यादा करते हैं। केवल एक ही उदाहरण ऐसा है, और वह है उनके पिछले मुहर्रमके सालाना त्यौहारके दिनोंका, जब उनमें से कुछ लोगोंने मेरी आज्ञाका विरोध करनेकी कोशिश की थी। लेकिन ज्यों ही उन्हें मालूम हुआ कि मेरी आज्ञाका उद्देश्य उन्हे शराबखानोंसे दूर रखना है त्यों ही उन्होंने तुरन्त माफी माँग ली।

शराबखोरीके बारेमें उनके निम्नलिखित विचारोंसे जाहिर होता है कि इस दिशामें सुपरिंटेंडेंटने जो काम किया है, उसके लिए नगर उनका कितना ऋणी है। और हम यही आशा कर सकते हैं कि वे जिस तरह पिछले पच्चीस सालसे अधिक समयसे समाजकी सेवा करते आये हैं उसी तरह समाजकी सेवा करते रहनेके लिए दीर्घकालतक जीवित रहेंगे।

> इस वर्षके दौरानमें आपकी पुलिसने १५,४३८ अपराधों और जुर्मोंका पता लगाया और उनका निपटारा किया, जैसा कि आँकड़ोंसे जाहिर है। मुझे कहते खुशी होती है कि यद्यपि यहाँ एक बड़ी संख्यामें (लगभग ३००) यूरोपीय बेकार हैं, आधी आबादी कई जातियोंके असभ्य काले लोगोंकी है और हमारे बीचमें यूरोपीय विदेशियोंकी भी एक बड़ी संख्या है, फिर भी, कुल मिलाकर, समाजका आचरण अच्छा रहा है। मुझे यह कहते हुए हर्ष होता है कि यूरोपीयोंमें शराबखोरी बहुत कम हो गई है। बेशक, इसका आंशिक कारण व्यापारिक मंदी भी है; परन्तु निरन्तर अवलोकनसे मेरा यही खयाल ज्यादा बनता है कि शहरमें अब (नशीली चीजोंके सिवा) दूसरी तरहके जलपानोंकी व्यवस्था बहुत ज्यादा हो गई है, और यही इसका बड़ा कारण है। क्योंकि अब कोई भी अपने ऐसे मित्रको, जो शराबखानेमें जाना नहीं चाहता, जलपान-गृहमें ले जाता है। और जब किसीको ऐसा जलपान मिल जाता है तो उसे शराबकी इच्छा नहीं होती। मुझे ज्ञात है, शराबखानेका मालिक शिकायत करता है कि उसकी आमदनी कम हो जानेसे किराया वगैरह चुकाना कितना कठिन हो गया है। इसका एकमात्र उपाय यह है कि जायदादके मालिक अपने किराये कम कर दें, जो इस समय बहुत ऊँचे हैं, और जिनके कारण शराबखानेके मालिक अपने ग्राहकोंके साथ उतनी ईमानदारी नहीं बरत सकते जितनी कि, कदाचित् वे बरतना चाहते हैं। केवल इसी कारण मैंने शराब-

खानोंके परवानोंकी संख्या कम रखनेकी बराबर कोशिश की है। और मेरे खयालसे नगर इस बातके लिए बधाईका पात्र है कि यहाँ ब्रिटेन या उसके उपनिवेशोंके इसकी बराबरीके किसी भी बन्दरगाही नगरकी तुलनामें शराबकी बिक्रीके परवाने कम हैं, क्योंकि हमारे यहाँ सिर्फ ५ होटल, १८ होटल और शराबखाने मिले-जुले, १७ शराब-खाने और ७ बोतल-भण्डार हैं। मुझे यह कहते हुए भी खुशी होती है कि ब्रिटेनके नगरोंकी अपेक्षा इस नगरमें बहुत कम यूरोपीय स्त्रियाँ मदिरापान करती हैं। पिछले साल शराबखोरीके अपराधमें १,३१७ यूरोपीय गिरफ्तार किये गये थे। उनमें सिर्फ २४ औरतें थीं और १९ वर्षसे कम आयुका सिर्फ एक लड़का था। इसकी तुलनामें ब्रिटेनके बन्दरगाही नगरोंके बारेमें पुलिसके आँकड़ोंसे पता चलता है कि उनमें से कुछ नगरोंमें शराबखोरीमें पकड़े गये लोगोंमें ६० प्रतिशत स्त्रियाँ थीं और १९ वर्षसे कम उम्रके लड़कोंकी संख्या एक हजारमें ५० थी। शराबखोरीके जुर्ममें पकड़े गये भारतीय और वतनी लोगोंमें स्त्रियोंकी संख्या क्रमशः ९ और १० फीसदी है।

परन्तु आज हमारा सारा जोर रिपोर्टके एक छोटे वाक्यपर ही रहेगा, जिसमे सुपरिं-टेडेट कहते है कि "शराबखोरीमे गिरफ्तार भारतीयोमे स्त्रियाँ ९ फीसदी है।" यह कोई नयी बात नही है। फिर भी यह सोचकर हृदय विदीर्ण होता है कि जिन भारतीय स्त्रियोने अपने देशमे कभी यह नही जाना कि मदिरापान क्या होता है, वे यहाँ सड़कोपर नशेकी हालतमे पाई जाये। कुछ मामले बेशक ऐसे होते है जिनपर किसीका काबू नही होता, और पतिता स्त्रियोकी दुर्बलताकी सफाईमे बहुत-कुछ कहा जा सकता है। परन्तु हमारी धारणा है कि जबतक नगरमे एक भी भारतीय स्त्री नशेकी हालतमे पाई जायेगी तबतक अवश्य ही भारतीय समाजपर लाछन रहेगा। हमे समाजके अधिकारोकी हिमायत करनेका फर्ज अक्सर अदा करना पड़ा है। आज हमारा विशेष अधिकार हो गया है कि हम भारतीय समाजका ध्यान एक बहुत प्रत्यक्ष कर्तव्यकी ओर आकर्षित करे, जिसका उसको स्वय अपने प्रति और अपनी नारी जातिके प्रति पालन करना चाहिए। हम खुद तो चाहते है कि भारतीय स्त्रियोको नगरके किसी भी शराबखानेमे शराब देना जुर्म करार दे दिया जाये, परन्तु इससे भी अधिक सन्तोषजनक यह होगा कि जहाँतक भारतीय स्त्रियोका सम्बन्ध है, समाज खुद इस अभिशापके विरुद्ध लड़ाई छेडे, और हमे कोई शक नही कि इसमे सफलता आसानीसे प्राप्त की जा सकती है। नगरमे भारतीय सस्थाये है और काफी भारतीय युवक है, जिनके पास बहुत समय है। वे मद्य-निषेधका अत्यावश्यक कार्य कर सकते है और इस कार्यमे सब धर्मोके लोग उपयोगी ढगसे उनका हाथ बँटा सकते है, क्योकि उनके पास काम करनेकी सब सुविधाये है और उपयुक्त संगठन भी है। फिर शिक्षित भारतीय महिलाये भी है जो इस मामलेमे बहुत सहायक हो सकती है। यह बिलकुल सम्भव होना चाहिए कि छोटी-छोटी टोलियाँ हरएक भारतीय शराबखाने-पर जाये और स्त्रियो और शराब बेचनेवालोसे बात करे। क्योकि हम नही समझते कि शराब बेचनेवाले भी, जो ज्यादातर भारतीय है, औरतोके हाथ शराब बेचनेसे इनकार करनेके लिए राजी क्यो न किये जाये। हमे इस प्रश्नके गुणावगुणपर विचार करनेकी जरूरत नही है, क्योकि इस बारेमे तो राय एक ही हो सकती है। खास तौरपर स्त्रियोमे शराबखोरीके जो भयकर परिणाम होते है उन्हे बताना जरूरी नही है। इस अपराधसे (क्योकि यह अपराधसे कुछ भी कम नही है) आगामी सन्ततिपर जो प्रभाव पड़ जाता है वह अक्सर अमिट होता

है और यह एक बात ही हममें इस सुधारकी पूर्तिकी अदम्य शक्ति जागृत करनेके लिए काफी समझी जानी चाहिए। हमने जो सुझाव यहाँ दिया है उसपर यदि हमारे नौजवान पाठक गौर करेंगे और उसे अविलम्ब हाथमें लेंगे तो हमे प्रसन्नता होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १३-८-१९०४

१९५. पीटर्सबर्गकी क्या-खूब बातें

पीटर्सबर्गमें एक एशियाई-विरोधी सभा की गई थी। इसके बारेमे अन्यत्र हम एक समाचार छाप रहे हैं, जो २९ जुलाईके *जूटपान्सबर्ग रिव्यू ऐंड माइनिंग जरनलसे* लिया गया है। कहा जाता है कि सभामें दो सौसे तीन सौतक आदमी उपस्थित थे। उसमे जो मुख्य प्रस्ताव स्वीकार किया गया वह वैसा ही था जैसा बॉक्सबर्गमें स्वीकार किया गया था और उसमें सदाकी भाँति भ्रान्तिपूर्ण बाते कही गईं। हाँ, सभाके लिए रुचिकर बनानेके उद्देश्यसे उसमे मिर्च-मसाला भी ज्यादा मिलाया गया था। उदाहरणार्थ, एक वक्ताने कहा कि भारतीयोमे "वे गुण नही हैं जो नगर-निवासियोमे वाछनीय हैं", क्योकि उनसे "कोई स्थायी और प्रगतिशील ढगकी बात" नही बन पडती। एक दूसरे वक्ताने कहा, "वे गाडियाँ नही रखते, माल नही खरीदते और रुपया खर्च नहीं करते।" एक तीसरे वक्ता बोले, "अगर कोई भारतीय दिनभरके कामसे ५ शिलिंग कमाता है तो वह भोजन किये बिना रह जाता है, और अगर ५ पौंड कमा ले तो भी चिडिया ही हलाल करता है।" ये वक्तव्य उन लोगोके हैं जो साधारण व्यावसायिक मामलोमें सजीदा माने जाते हैं। एक वर्गके लोगोको जानबूझकर गिराना, उन्हे बाडोमें बन्द करना, उन्हे जमीन खरीदनेके अधिकारसे वंचित करना और फिर पलटकर उन्हींपर यह आरोप लगाना कि उनमे नागरिकताके वांछित गुणोका अभाव है, बहुत बढिया मजाक है। अगर इन योग्य वक्ताओमें से किसीने जूटपान्सबर्ग जिलेकी सीमासे बाहर यात्रा की हो तो हम उसका ध्यान उस कामकी ओर आकृष्ट करनेका साहस कर सकते है जो केपटाउन, डर्बन और दूसरे स्थानोंमें, जहाँ उन्हे कुछ अधिकार दिये गये हैं, प्रगतिशील नागरिकोके रूपमें भारतीयोने किया है। उन्होने इनमें से प्रत्येक नगरमें ऐसी व्यापारिक कोठियाँ बनाई हैं जिनकी तुलना किसी भी अभारतीय कोठीसे की जा सकती है और इन स्थानोके निर्माणमें उन्होने यूरोपीय शिल्पकारो, यूरोपीय ठेकेदारो, यूरोपीय निर्माण-व्यवस्थापको, ईंट पाथनेवालो और खातियों वगैराको नौकर रखा है। इनमें से कुछ इमारतें यूरोपीयोने भी किराये पर ले रखी हैं। हम एक यूरोपीयका उदाहरण जानते है, जो लगभग बीस सालतक किरायेदार रहा। इस अर्सेमे भारतीय मकान-मालिकने कभी उसका किराया नही बढाया। वह किरायेदार गरीब हो गया था और किराया नही चुका सकता था। उदारमना मकान-मालिकने उसपर कई वर्षोका किराया माफ कर दिया और मकान खाली करानेके लिए कार्रवाई नही की। यह बात सच्ची है, कोई किस्सा कहानी नही। किसी सच्चे जिज्ञासुको हम फरीकोंके नाम भी खुशीसे बता देंगे। हम पूछ सकते हैं कि क्या ये सब बातें नागरिकताके सद्गुणोका अभाव प्रकट करती हैं? एक वक्ताने यह भी कहा कि "एशियाई सवालका सही हल है, 'अधिकसे अधिक लोगोंकी अधिकसे अधिक-भलाई' का आम सिद्धान्त लागू किया जाना।" हमें स्वीकार

करना होगा कि हम इस सिद्धान्तपर आख मूदकर विश्वास करते है। हमारा खयाल है कि अनेक मामलोमें इससे वेहद खरावी हुई है और ससारकी प्रगतिके इतिहासमे आगे भी इससे ऐसा होनेकी सम्भावना है। परन्तु दलीलकी खातिर इसे सही मानकर इसके उपयोगकी परीक्षा करके देखें। उस सभामे जो सज्जन बोले वे व्यापारियोके प्रतिनिधि थे। भारतीयोका अपराध यह है कि वे उनसे स्पर्धा करते हैं। वे जीवनकी आवश्यक वस्तुओके दाम घटा देते है और चूंकि उनके पास धीरजकी पूँजी है, अत उनके मालकी विक्री अच्छी होती है, खास तौरपर उन लोगोमें जिनके पास ज्यादा पैसा नही होता, चाहे वे यूरोपीय हो या वतनी। उस दशामें अगर भारतीय व्यापारियोसे यूरोपीय सौदागरोको नुकसान भी पहुँचता हो, जिसे हम नही मानते, तो भी उनसे कुल मिलाकर ट्रान्सवालके अधिकसे-अधिक लोगोको तो फायदा ही पहुँचता है। इसके सवूतमे यह तथ्य खण्डनका भय छोड़कर पेश किया जा सकता है, कि उन्हे अपने व्यवसायके लिए गरीब गोरो, जिनमें डच भी है, और वतनी लोगोकी सहायतापर निर्भर रहना पड़ता है। और आश्चर्य है कि, स्वय इस सभामें यह आवश्यक समझा गया कि "एशियाइयोके साथ व्यापारको अनुत्साहित करनेके उपाय खोजनेके उद्देश्यसे" एक काम-चलाऊ श्वेत-सघ-समिति स्थापित की जाये। इसके विधानका मसविदा तैयार करनेका काम महापौर और दूसरे लोगोके हाथोमे छोड़ दिया गया है। अव हम देखते है कि स्थानीय निकाय इस प्रकारके मामलेमे भी पक्ष ले रहा है। परन्तु हम जानते हैं कि इस सम्वन्धमे हम व्यर्थं तर्क करते हैं। जिन लोगोकी नस-नसमें विद्वेप भरा हुआ है उनकी विवेक-बुद्धिसे अपील बिलकुल बेकार है। हम इतनी आशा ही रख सकते हैं कि जो काम शायद विवेक-बुद्धिसे नही हो सकता वह समय गुजरनेके साथ-साथ खुद पूरा हो जायेगा, क्योकि समय घावोको भरनेवाली सबसे बड़ी औषधि है। और भारतीय धैर्यसे प्रतीक्षा कर सकते है क्योकि न्याय उनके पक्षमे है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १३-८-१९०४

१९६. डर्बनके महापौर

हमे श्री एलिस ब्राउनको तिवारा मुख्य-नगर-न्यायाधीश चुने जानेपर बधाई देनी है। यह शहर प्रगतिशील है और दिनपर दिन वढ रहा है। चूंकि इसमे अनेक देशोके लोग रहते है जिनके स्वार्थ अक्सर परस्पर-विरोधी होते है, महापौरका पद कोई पका-पकाया हलवा नही है। श्री एलिश ब्राउन ऐसे सज्जन है जिनमे विभिन्न प्रकारकी योग्यताएँ है और जो वडे परिश्रमशील है। जहाँतक ब्रिटिश भारतीयोका सम्वन्ध है वे उन्हे अच्छी तरह जानते है, वे खुद इस समाजके सब वर्गोसे अक्सर सम्पर्कमे आये है और *बाजारके* प्रश्नपर अपनी रायके कारण वे जरूर बदनाम है, किन्तु दूसरी बातोमे उनकी ख्याति न्यायपरायण और निष्पक्षकी ही रही है। *बाजारके* मामलेमें वहुतसे अन्य लोगोकी तरह वे भी क्यो विवेक खो बैठे, यह आसानीसे समझमे आ जाता है। उस समय वे लॉर्ड मिलनरके प्रभावमे काम कर रहे थे। भारतीयोंपर परमश्रेष्ठकी पिछले सालकी सूचना ३५६का[1] प्रभाव बम गोलेके जैसा हुआ। उससे सरकारकी भारतीय-सम्वन्धी नीति पुष्ट हो गई और उसका अर्थ यह हुआ कि परम-

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ३१४।

श्रेष्ठको पुराना गणराज्य-कानून स्वीकार है। स्वभावतः हमारे सुयोग्य महापौरने सोचा कि इस-पर अवश्य ही ब्रिटिश मन्त्रालयसे मंजूरी मिल गई होगी। इसके अलावा उनका खयाल था कि जो बात एक शाही उपनिवेशमे की जा सकती है, जहाँ उस सूचनाका विषय ही युद्धका एक कारण था, उसकी अनुमति नेटाल जैसे स्वशासन-भोगी उपनिवेशमें तो अवश्य ही होनी चाहिए। अस्तु, इसी कारण उन्होंने अपना मसविदा भारतीय समाजके विरुद्ध तैयार किया था। फिर भी हमें आशा है कि वह अब भुला दिया गया होगा और अगर हमने इस गड़े मुर्देको फिरसे उखाड़ा है तो सिर्फ यह दिखानेके लिए कि वह एक अस्थायी भूल थी और उससे श्री एलिस ब्राउनका आम रुख हरगिज जाहिर नही होता। हम चाहते है कि उनके महापौर-कालमे उन्हे और भी सफलता मिले और नगर खुशहाल हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १३-८-१९०४

१९७. हमारे पितामह

पिछली डाकसे *इंडियाका* जो अक मिला है उससे भारत-पितामह श्री दादाभाई नौरोजीकी[1] सतत क्रियाशीलताका पता चलता है। यदि कोई बात उनके करोड़ो स्वदेशवासियोके लिए जरा भी फायदेकी हो तो वे उससे नही चूकते। उन्होने ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोके दर्जेके प्रश्नपर श्री लिटिलटनसे पत्र-व्यवहार किया था, जो *इंडियामें* छपा है और जिसे हम अन्यत्र उद्धृत कर रहे है। यह उनकी क्रियाशीलताका केवल एक उदाहरण है। उनकी उम्रमे बहुतसे लोग सार्वजनिक जीवनसे छुट्टी लेने और विश्रामके अधिकारका उपभोग करनेके हकदार हो जाते है। परन्तु श्री नौरोजी बुढापेमें भी देशके लिए काम करनेवाले बहुतेरे नौज-वानोसे बाजी मार सकते है। वे अपने स्वेच्छासे अगीकृत देश-निकालेमे एक ही सुख जानते है और वह है उन कामोको करनेका सुख, जिन्हे वे अपने देशवासियोके प्रति कर्त्तव्य समझते है। हम किसी अतिशयोक्तिके बिना कह सकते है कि केवल भारतमें ही नही, बल्कि ससारके किसी भी भागमे जीवनकी निष्कलक शुद्धता, पूर्ण स्वार्थहीनता और पुरस्कार या प्रशसाकी परवाह किये बिना अखण्ड सार्वजनिक सेवाकी दृष्टिसे श्री नौरोजीके जोडका दूसरा व्यक्ति मिलना कठिन होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १३-८-१९०४

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९३।

१९८. ट्रान्सवालकी पैदल-पटरियाँ

विधान परिषदमें पिछले सप्ताह उपनिवेश-सचिव द्वारा नगर-निगम अध्यादेशमे प्रस्तावित सशोधनपर दिलचस्प बहस हुई। सशोधनमे नगरपालिकाओको यह अधिकार दिया गया है कि,

> उन वतनी लोगोको, जिनके पास १९०१ की रंगदार व्यक्तियोको राहत देनेवाली घोषणाके मातहत मुक्तिपत्र न हों और उन रंगदार लोगोंको भी, जिनका वेष सभ्योचित और आचरण अच्छा न हो, सार्वजनिक मार्गकी पैदल-पटरियोंका इस्तेमाल करनेसे रोक दिया जायेगा।

इस सशोधनका विरोध श्री ब्रिकने किया और, जैसी कि आशा की जा सकती थी, समर्थन श्री लवडेने। माननीय सज्जनने कहा कि पुराने नियमोको छेडा न जाये। अब, पुराने नगर-नियमोमे रंगदार लोगो द्वारा पैदल पटरियोके इस्तेमालकी बिलकुल मनाही है। और उन्होने कहा कि पुराने कानूनमे कुछ भी परिवर्तन करना सरकार द्वारा लोगोके अधिकारो और विशेषाधिकारोका अतिक्रमण करना होगा। महान्यायवादीने कहा कि पुराने कानूनके अनुसार तो यदि काफिर पटरीपर होकर दूकानमे घुस भी रहा हो तो वह इसपर भी गिरफ्तार किया जा सकता है। उन्होंने यह भी कहा कि इस कानूनपर अमल नही किया जाता था और गणराज्य सरकारके दिनोमे भी सभ्योचित कपडे पहने हुए रगदार लोगोसे छेड़खानी नही की जाती थी। इसमे हम एक भारतीयकी मिसाल जोड़ सकते है, जिसे धक्का देकर पटरीसे हटाया गया था और जिसने उस समयके ब्रिटिश एजेटसे शिकायत की थी। ब्रिटिश एजेंटने भारतीयकी रक्षाका काम तुरन्त हाथमे लिया और राज्य-सचिव डॉ० लीड्सको एक कड़ा विरोध-पत्र भेजा। उन्होंने उत्तरमे क्षमा-याचनाका पत्र भेजा और कहा कि पुलिसने भूल और गलत-फहमीसे ही पटरीपर चलनेवाले भारतीयसे छेड़खानी की है। उन्होने ब्रिटिश एजेंटको विश्वास दिलाया कि आयन्दा ऐसी घटनाएँ नही होगी। उस समय कानूनकी ऐसी शिथिलतापर श्री लवडेने कोई आपत्ति प्रकट नही की थी। परन्तु अब जब सरकार उस शिथिलताको मान्यता देना चाहती है तब श्री लवडे और उनके मित्र कुपित हो रहे हैं। फिर भी अवश्य ही सभीको यह स्पष्ट हो जायेगा कि यद्यपि सरकारी सशोधनका उद्देश्य राहत दिलाना है, तथापि यह स्थिति खुले अपमानसे कम नही है। क्योकि पटरियोके उपयोगके बारेमे भेदभाव बरतना ब्रिटिश परम्पराओके बिलकुल विपरीत है। ऐसी बात इस बीसवी सदीके जागृत युगमे, वह भी ट्रान्सवालमे और इस सरकारके नाम पर ही सम्भव हो सकती है। और सभ्योचित पोशाक और अच्छे आचरण सम्बन्धी व्यवस्था इतनी लचीली है कि अगर पुलिसको खास हिदायते न हो तो उसके अन्तर्गत बहुत बुराई हो सकती है। डॉ० टर्नर यद्यपि सरकारी सदस्य हैं, तथापि उन्होने भी महसूस किया है कि यह सारी बात हास्यास्पद है और उन्होने एक गोरेका अत्यन्त उपयुक्त और विनोदात्मक उदाहरण दिया, जिसे उन्होने प्रिटोरियाके सरकारी भवनके बाहर देखा था। वह अपनी "जेबोमे हाथ डाले और मुँहमे पाइप लगाये इधरसे उधर घूम रहा था और पूरे छः फुटके घेरेमे सब तरफ थूक रहा था।" इसलिए यह सवाल रगका नही, सफाई और तन्दुरुस्तीके कायदोका है। वाजिब बात यह होगी कि जो पटरियोको खराब करे उन सबको सजा दी जाये और यही एक बुद्धि-सगत, सुरक्षित और निर्दोष उपाय है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २०–८–१९०४

१९९. भारत ही साम्राज्य है

हमारे सहयोगी *स्टारमें* "भारत और साम्राज्य" पर एक अग्रलेख है। उसका आधार है लॉर्ड कर्जनका गिल्डहॉलका भाषण[1] और उसमे भारतके महत्त्वके सम्बन्धमे लॉर्ड कर्जनके विचारोका समर्थन किया गया है। पत्रने उनके मुँहसे निकले हुए निम्न विचार उद्धृत किये है एव उनसे अपनी सहमति प्रकट की है।

वे कहते है

> अगर आप अपने नेटालके उपनिवेशको किसी जबरदस्त दुश्मनके हमलेसे बचाना चाहते है तो आप भारतसे मदद माँगते हैं और वह मदद देता है; अगर आप पीकिंगके गोरे कूटनीतिक प्रतिनिधियोंको कत्लेआमसे बचाना चाहते हैं और जरूरत सख्त होती है तो आप भारत-सरकारसे सैनिक-दल भेजनेको कहते है और वह भेज देती है; अगर आप सोमालीलैंडके पागल मुल्लासे लड़ रहे है तो आपको जल्दी ही पता लग जाता है कि भारतीय सेना और भारतीय सेनापति उस कामके लिए सबसे ज्यादा योग्य है और आप उन्हें भेजनेके लिए भारत-सरकारसे अनुरोध करते है; अगर आप साम्राज्यकी अदन, मॉरिशस, सिंगापुर, हांगकांग, टीनसिन या शान-हाई-क्वान जैसी किसी सबसे बाहरी चौकी या जहाजी कोयला-चौकीकी रक्षा करना चाहते है तो भी आप भारतीय सेनाकी ओर ही देखते है; अगर आप युगांडा या सूडानमें कोई रेलमार्ग बनाना चाहते है तो आप भारतसे ही मजदूरोकी माँग करते है।[1]

परन्तु हमारे सहयोगीको ट्रान्सवालमे बसे हुए भारतीयोकी ओरसे उपनिवेशियोको एक शब्द भी नही कहना है। उपनिवेशोमे अंग्रेजोके जो वशज है उन्हे अपने ब्रिटिश जातीय होनेपर गर्व तो है और उनमे ब्रिटिश साम्राज्यसे प्राप्त विशेष अधिकारोको भोगनेकी लालसा भी है, परन्तु खास तौरपर जहाँतक ब्रिटिश भारतीयोका सम्बन्ध है, वे उस जिम्मेदारीसे बचना चाहते हैं, जो साम्राज्यकी सदस्यतासे उनपर आ जाती है। वे भारतके साथ ब्रिटिश सम्बन्धसे मिलनेवाले गौरवको अपनाने और भारतीय सैनिकोकी बहादुरीकी तारीफ़ दूरसे करनेके लिए तो तैयार हैं; परन्तु जब उन्ही सैनिकोके भाईबन्दोके साथ अच्छे बरतावका मामला आता है तब वे अपनेको अलग रखना चाहते है। इसलिए यह बड़ी दयनीय बात है कि हमारे सहयोगीने लॉर्ड कर्जनके भाषण-पर विचार करते समय अपने बहुसंख्यक पाठकोके सामने 'भलाईके बदले भलाई' का बहुत ही प्रारम्भिक और सरल कर्त्तव्य स्वीकार करनेका सिद्धान्त नही रखा। और इस तरह उसे जो अव-सर मिला था उसने उसका उपयोग नही किया। जैसा सर मचरजीने कहा है, यह नही हो सकता कि उपनिवेशी लोग अनिश्चित कालतक गुस्ताखीसे ३० करोड़ भारतीयोको अपमानित करते रहे और उनकी भावनाओको कटु बनाते रहे। धीरे-धीरे, किन्तु निश्चित रूपसे उपनिवेशोकी बहिष्कार-नीति भारतीय लोगोके मानसपर गहरा असर कर रही है। और, जब यह पता चल जायेगा कि भारतीयोके लिए ब्रिटिश-नागरिकता या ब्रिटिश सम्बन्धके विशिष्ट अधिकारका

१. जुलाई २०, १९०४को दिये गये भाषणसे।

भारतसे बाहर कोई अर्थ नहीं है और चाहे उनकी प्रतिष्ठा अथवा योग्यता कुछ भी हो, उपनिवेशोंमें वे अवांछनीय हैं, तब भारत-सरकारका काम अधिकाधिक कठिन हुए बगैर नहीं रह सकेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २०-८-१९०४

२००. गिरमिटिया भारतीयोंमें आत्महत्याएँ

हमने गिरमिटिया भारतीयोंमें आत्महत्याओंकी ऊँची दरके बारेमें कुछ बातें लिखी थीं। उनके सम्बन्धमें अभी कुछ समयसे कुछ संवाददाता *नेटाल मर्क्युरीको* पत्र लिख रहे हैं। इन पत्र-लेखकोंने गुमनाम रहना पसन्द किया है और यद्यपि हम प्रायः इस अखबारमें छपी बातोंके बारेमें दूसरे अखबारोंमें — खास तौरपर बनावटी नामोंसे — प्रकाशित पत्रोंकी ओर ध्यान नहीं देते, फिर भी हमारी इच्छा होती है कि सचाईके स्पष्टीकरणके लिए कुछ बातें लिखें। इनमेंसे एक पत्र-लेखकने अपनेको "एक गोरा" बताते हुए एक पत्र लिखा है, जिसकी कोई तुक नहीं है। वह इस पत्रके सम्पादकीय विभाग और प्रबन्ध-विभागके कर्मचारियोंकी चर्चा करता है और अपने मनमें हिन्दुओं और मुसलमानोंके भेदभावोंकी कल्पना करता है और अपनी यह राय देता है कि यह पत्र भारतीय समाजका प्रतिनिधित्व नहीं करता। हम इनमेंसे किसी भी आरोपका जवाब देना नहीं चाहते। यह पत्र किसीका प्रतिनिधित्व करता है या नहीं, इससे उन बातोंकी सचाईमें कोई फर्क नहीं पड़ता जो हमने आत्महत्याओंके बारेमें लिखी हैं। लेकिन इस बीचमें हम "एक गोरे" का ध्यान उस विज्ञापनकी[1] तरफ खींचना चाहते हैं जो इस पत्रके सम्बन्धमें, शुरू-शुरू के अंकोंमें निकला था। उसपर समाजके तमाम प्रभावशाली नेताओंके हस्ताक्षर थे और अगर पत्र-लेखक सूचीको देख जानेका कष्ट करेगा तो उसे अपने अधिकांश आरोपोंका उत्तर मिल जायेगा। इससे वह उस पत्रके उद्देश्योंका भी अध्ययन कर सकेगा। लेकिन जब वह लेखक यह कहता है कि भारतीयोंकी आत्महत्याओंके विषयमें भारतीय संरक्षककी रिपोर्टपर चर्चा करनेका हमारा उद्देश्य गोरोंको बदनाम करना है तब हम ऐसे किसी भी लांछनके विरुद्ध आपत्ति प्रकट करना उचित समझते हैं। हम अपने इस विषयके[2] पहले अग्रलेखसे निम्नलिखित अंश देते हैं और इस बारेमें निर्णय "एक गोरे" और उसीकी तरह सोचनेवाले दूसरे लोगोंपर छोड़ देते हैं:

> **हम इन भयंकर आँकड़ोंसे मालिकोंके विपक्षमें कोई परिणाम निकालना नहीं चाहते। परन्तु हम भारतीयों और मालिकोंके हितमें पूरी तरह जाँच करनेके लिए जोर अवश्य देते हैं और हमारे विचारमें कारणकी जाँचके लिए एक निष्पक्ष आयोगसे कम कोई चीज न्यायके उद्देश्यको पूरा नहीं कर सकेगी।**

हमने खेत-मालिकोंपर किसी भी प्रकारसे कोई लांछन नहीं लगाया है। हमें तो सब सम्बन्धित जनोंके हितमें सिर्फ जाँचकी ही जरूरत है। जो आँकड़े हमने पेश किये हैं वे भयंकर हैं। इससे कोई इनकार नहीं करेगा। परन्तु "आंग्लभारतीय" ने इनपर शंका की है।

१. देखिए, *इंडियन ओपिनियन* ११-६-१९०३। यह विज्ञापन गुजराती, हिन्दी और तमिलमें प्रकाशित हुआ था और उसपर इन भाषाओंको बोलनेवाले प्रतिनिधि भारतीयोंके हस्ताक्षर थे। देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ३३७ के सामने दिया गया चित्र।

२. देखिए, "गिरमिटिया भारतीय" ४-६-१९०४।

इसलिए हम तो उसका ध्यान केवल उपनिवेश-मन्त्री श्री लिटिलटनके उस वक्तव्यकी ओर आकृष्ट कर सकते है जो उन्होने इसके समर्थनमें दिया है। उन्होने कहा है कि गैर-गिरमिटिया भारतीयोमे आत्महत्याओकी सख्या १० लाखमे १५७ है और गिरमिटिया भारतीयोमें ७६६। इसलिए यदि हमने भूल की है तो उसमे हमारे साथी अच्छे-अच्छे लोग है और "आग्लभारतीय" तथा "एक गोरे" के कथनोके बावजूद हम अपने कथनपर कायम है और यह आग्रह करते है कि इस बारेमे जाँच करायी जानी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २०-८-१९०४

२०१. श्री लिटिलटनका खरीता

ट्रान्सवाल विधान-परिषदमें भारतीय व्यापारियोके प्रश्नपर चर्चा और श्री लिटिलटनके खरीतेका प्रकाशन — इस अति दुखदायी विवादके इतिहासमे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मजिलके सूचक है। एक तरफ ब्रिटिश सरकार देखती है कि उसने ब्रिटिश भारतीयोके जिन अधिकारोकी रक्षा बोअर-राज्यमे इतनी जागरूकताके साथ की थी उन्हे वह अपने राष्ट्रीय सम्मानकी रक्षा करते हुए छोड़ नही सकती। दूसरी तरफ स्थानीय सरकार और उपनिवेशी लोग भारतीयोको जड़से उखाड फेकनेपर तुले दिखाई देते है। सर जॉर्ज फेरारने अनेक बार जोरदार शब्दोमे कहा है कि जब-कभी उत्तरदायी शासन आयेगा तब शायद उसका पहला काम होगा — भारतीय व्यापारियोको मुआवजा देकर मिटा देना। हम सब जानते है कि मुआवजा देनेका मतलब क्या होता है। तो इस तरह साम्राज्यके हितों और स्थानीय गोरोके विद्वेषमें सीधी टक्कर है — हम इस विद्वेषको स्थानीय हितोका नाम देकर गौरवान्वित नही करेंगे, क्योकि हमारा खयाल है कि भारतीयोंकी मौजूदगीसे गोरे समाजको किसी भी तरहका खतरा नही है। हमने इन स्तम्भोमे अनेक बार कहा है कि भारतीयोने केप और नेटाल दोनोमे कहीसे भी, जहाँ उनको ट्रान्सवालकी अपेक्षा कुछ अधिक अधिकार प्राप्त है, गोरे व्यापारियोको खदेड़ा तो नही है; प्रत्युत वे गोरोके साथ-साथ ईमानदारीसे अपनी रोजी कमा रहे है। निरर्थक द्वेष करनेवाले लोग इस बातपर विचार ही नही करते कि कई बातोमें यूरोपीयोको अपरिमित रूपसे अच्छी सुविधाएँ मिली हुई है और भारतीयोमें संगठन-शक्तिका अभाव है। इन दो बातोसे भारतीयोंकी जो हानि होती है वह उनके तथाकथित सस्ते रहन-सहनके लाभसे बहुत भारी बैठती है। परन्तु सच बात तो यह है कि कभी किसीने भी भारतीयोकी तरफसे व्यवसायके असीमित अधिकार नही माँगे है। जरूरत सिर्फ इतनी ही है कि निहित स्वार्थोकी पूर्ण रूपसे रक्षा की जाये और भारतीयोको भावी व्यापारमे उचित हिस्सा दिया जाये। जब सर जॉर्ज फेरार और श्री बोर्क जैसे लोग जोर-जोरसे यह भाषण देते है कि भारतीयोको व्यापार करते रहने देनेकी अवस्थामें उपनिवेशका सत्यानाश हो जायेगा, तब हमे वह दृश्य ऐसा अपमानजनक दिखाई देता है, जो, हमे कहना चाहिए, ब्रिटिश परम्पराओपर चलनेका दावा करनेवाले लोगोके अयोग्य है — खास तौरसे तब, जब उन्हे जरूर मालूम है कि उनके मुकाबलेमें भारतवासियोकी सख्या नगण्य है, और उनमे से कोई-एक अकेला ही उपनिवेशके सारे भारतीयोंके व्यवसायको तीन-तीन बार खरीद सकता है। अगर इतनी बात विधानपरिषदके गैर-सरकारी सदस्योके बारेमे न्यायपूर्वक कही जा सकती है तो हम सरकारी रवैयेके बारेमे क्या सोचें? हम उन लॉर्ड मिलनरके बारेमें क्या खयाल करे जो आज श्री लिटिलटनसे कहते है कि भारतीयोका लगभग सब कुछ छीन लिया जाये और जो लड़ाईसे पहले भारतीयोके हितोका समर्थन इतने जोरके

साथ करते थे और ब्रिटिश प्रजाजनोके एक वर्गके अधिकार प्राप्त करनेके लिए दूसरे वर्गके अधिकार वेच देनेके लिए तैयार नही थे? लॉर्ड मिलनरको अपने कट्टर साम्राज्य-प्रेमी होनेपर गर्व है, किन्तु क्या परमश्रेष्ठका साम्राज्य-प्रेम केवल दक्षिण आफ्रिकातक ही सीमित है? श्री लिटिलटनका खरीता पढ कर प्रसन्नता भी हुई और परेशानी भी। स्थानीय सरकार १९०२ के शुरूमें जो-कुछ देनेके लिए तैयार थी, उससे अव पीछे हट गई है। पिछले सालकी बदनाम *बाजार*-सूचना ३५६ को उचित वताते हुए लॉर्ड मिलनरने जो कुछ करनेका वचन दिया था वह भी अव वापस ले लिया गया है। परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर एक निष्पक्ष ढग अपनानेके बजाय अव एशियाई-विरोधी नीतिके व्याख्याता बन बैठे है। यह सब दु खद है। इसलिए श्री लिटिलटन भारतीयोके पक्ष, साम्राज्य-नीति और ब्रिटिश राजनयिको और मन्त्रियोके दिये हुए वचनोका समर्थन जोरोसे करते है। वे निश्चित रूपसे वताते है कि इस प्रश्नका एकमात्र हल ब्रिटिश भारतीयोको वाजिब अधिकार देना ही है। परन्तु जब हम उनके अन्तिम प्रस्तावोको देखते है तब हमें उनका खरीता पढ कर फिर दु ख होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन प्रस्तावोसे उन्हे सिर्फ मौजूदा व्यापारिक परवानोकी रक्षा ही अभीष्ट है और अनिवार्य पृथक्करणके सिद्धान्त और रंगके आधारपर कानून बनानेके बड़े उसूल उनसे अछूते रह जाते है। परन्तु यह सब बादकी बात है, क्योकि उपनिवेश-मन्त्रीको जो छोटी-सी चीज अभीष्ट है ट्रान्सवाल सरकार वह भी देनेको तैयार नही है। हमे कोई शक नही है कि विधान-परिषदका प्रस्ताव तार द्वारा ब्रिटिश सरकारको भेज दिया गया है और वह जो रुख इख्तियार करेगी उसपर बहुत कुछ निर्भर होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २७–८–१९०४

२०२. प्रार्थनापत्र : उपनिवेश-सचिवको

[सितम्बर ३, १९०४के पूर्व][1]

सेवामे
माननीय उपनिवेश-सचिव
प्रिटोरिया

महोदय,

परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरने परमश्रेष्ठ गवर्नरको ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोके दर्जेके बारेमें इस साल १३ अप्रैलको जो ख़रीता भेजा है उसमे कुछ ऐसी बाते है जिनसे मेरे सघको घोर दु ख हुआ है। इसलिए मुझे गवर्नर महोदयकी सेवामें नम्रतापूर्वक निम्न प्रार्थनापत्र पेश करने और यह निवेदन करनेका आदेश मिला है कि यह महामहिम सम्राट्के मुख्य उपनिवेश-मन्त्रीको भेज दिया जाये।

खरीतेमे सिफारिश की गई है कि उसमें ब्रिटिश भारतीयोसे सम्बन्धित मौजूदा कानूनमे जो परिवर्तन सुझाये गये है वे तुरन्त स्वीकार कर लिये जाये। ये सुझाव दो घटनाओके आधार पर दिये गये है। पहली घटना हबीब मोटन और सरकारके बीचका परीक्षात्मक मुकदमा है जिसकी जड़मे, परमश्रेष्ठके शब्दोमे, आत्मरक्षाकी समस्या है। और दूसरी वह प्रमुखता है जो इस प्रश्नको गिल्टीका प्लेग फैलनेसे प्राप्त हुई है।

१. जिस तारीखको प्रार्थनापत्र दिया गया वह उपलब्ध नही है।

दूसरी घटनाको पहले ले तो मेरा संघ निवेदन करना चाहता है कि यह बात अत्यन्त निश्चित रूपसे सिद्ध की जा चुकी है कि बस्तीके निवासी भारतीय प्लेगके-आरम्भके लिए किसी भी तरह जिम्मेदार नही थे। मेरा संघ बखुशी इस मामलेमें जबान बन्द रखता, परन्तु वह उन वक्तव्योके लिए जिम्मेदार है जो इस मामलेमें सर मंचरजी भावनगरीको भेजे गये हैं, और चूँकि परमश्रेष्ठने उनकी जानकारीका खण्डन किया है, इसलिए मेरे लिए अपने संघके प्रति न्याय करनेकी दृष्टिसे एक संक्षिप्त स्पष्टीकरण देना जरूरी हो गया है।

यहाँ यह स्मरणीय है कि सरकारी तौरपर पिछली १८ मार्च प्लेग शुरू होनेकी तारीख घोषित की गई है। पिछले साल २६ सितम्बरको जोहानिसबर्ग नगर-परिषदने यह बस्ती अधि-कृत कर ली थी। उस तारीखसे पहले बस्तीमे प्रत्येक बाडेका मालिक उसकी उचित सफाईके लिए जिम्मेदार था। इसलिए मालिकोने बाडोको साफ-सुथरी हालतमे रखनेके लिए नौकर रखे थे, और ऐसा मालूम हुआ है कि उस तारीखतक बस्तीमे कोई सक्रामक रोग पैदा नही हुआ था और भारतीय समाज छूतकी या उडनी बीमारियोसे खास तौरसे मुक्त था। २६ सितम्बर १९०३ से सफाईका नियन्त्रण नगर-परिषदके हाथोमें चला गया। मालिकोको कुछ कहनेका अधि-कार न तो इस बारेमे रह गया था कि बाडोकी व्यवस्था किस तरह रखी जाये और न इस बारेमे कि किरायेदार कौन रखे जायें। हर बाड़ेकी सफाईके लिए एक या अधिक आदमी रखनेके बजाय नगरपालिकाने सारे इलाकेकी देखभालके लिए चन्द आदमी नौकर रख लिये। नतीजा यह हुआ कि वे इस कामको बिलकुल नही सँभाल सके। आबादी भी बहुत बढ गई, क्योकि नगर-परिषदने बस्तीकी गुंजाइशकी परवाह न करके किरायेदार रख लिये। इस असन्तोषजनक स्थितिके बारेमें बहुत बार शिकायतें की गईं, मगर किया कुछ नही गया। डॉक्टर पोर्टरको आवश्यक चेतावनी देते हुए यह पत्र लिखा गया:

२१ से २४ कोर्ट चेम्बर्स
फरवरी १५, १९०४

सेवामें
डॉ० सी० पोर्टर
स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारी
जोहानिसबर्ग

प्रिय डॉ० पोर्टर,

आप पिछले शनिवारको भारतीय बस्ती देखने गये और उसकी ठीक-ठीक सफाईके काममें दिलचस्पी ले रहे है, इसके लिए मै आपका बहुत ही आभारी हूँ। मै वहाँकी स्थितिके बारेमें जितना अधिक विचार करता हूँ वह मुझे उतनी ही बुरी मालूम होती है। और मेरा खयाल है कि यदि नगर-परिषद असमर्थताका रवैया अपना लेती है तो वह अपने कर्तव्यसे च्युत होती है; और मैं यह भी जरूर आदरपूर्वक कहता हूँ कि लोक-स्वास्थ्य समितिका यह कहना किसी भी तरह उचित नहीं हो सकता कि वहाँ न तो भीड़-भड़क्का रोका जा सकता है और न गन्दगी। मुझे विश्वास है कि इस मामलेमें बरबाद किया गया एक-एक पल विपत्तिको जोहानिसबर्गके नजदीक लाता है, और उसमें ब्रिटिश भारतीयोंका कोई भी दोष नहीं है। जोहानिसबर्गके सब स्थानोंमें से भारतीय बस्ती ही शहरके सारे काफिरोको भरनेके लिए क्यों चुनी जाये, यह मेरी समझमें ही नहीं आता। जहाँ लोक-स्वास्थ्य समितिकी सफाई-सम्बन्धी सुधारकी बड़ी-बड़ी योजनाएँ

बेशक बहुत प्रशंसनीय और कदाचित् आवश्यक भी है वहाँ, मेरी नम्र रायमें, भारतीय बस्तीकी गन्दगी और अत्यधिक भीड़-भाड़के मौजूदा खतरेका सामना करनेके स्पष्ट कर्त्तव्यकी भी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। मैं महसूस करता हूँ कि इस समय कुछ सौ पौंड खर्च कर देनेसे शायद हजारों पौंडकी बचत होगी, क्योंकि यदि दुर्भाग्यवश बस्तीमें कोई छूतकी बीमारी फैल गई तो लोगोंमें घबराहट पैदा हो जायेगी और इस समय जो बुराई बिलकुल रोकी जा सकती है उसके इलाजके लिए तब तो रुपया पानीकी तरह बहाया जायेगा।

मुझे आश्चर्य नहीं है कि आपके अमलेको बहुत काम करना पड़ता है, इसलिए वह बस्तीकी सफाईका पूरा काम करनेमें असमर्थ है; क्योंकि आपको जो चीज चाहिए और जो मिल नहीं सकती वह है हरएक मकानके लिए एक सफैया। जो काम सब पर छोड़ दिया जाता है, वह किसीका भी नहीं होता। आप बस्तीके प्रत्येक निवासीसे सफाईकी देखभाल करनेकी आशा नहीं रख सकते। जब्तीसे पहले हरएक बाड़ेका मालिक अपने बाड़ेकी ठीक सफाईके लिए जिम्मेदार माना जाता था और वह बहुत स्वाभाविक भी था। मैं स्वयं जानता हूँ कि इसके परिणामस्वरूप प्रत्येक बाड़ेके साथ एक सफैया लगा रहता था और जो उसकी बराबर देखभाल रखता था; और मैं निस्संकोच कह सकता हूँ कि बाड़ोंकी जो हालत इस समय है उसके मुकाबिलेमें वे अच्छी और आदर्श अवस्थामें रखे जाते थे।

आप मुझसे उपाय सुझानेके लिए कहते हैं। मैंने तो इस मामलेको टाला था और अगर नगर-परिषद कोई उचित ढंग अपना ले तो मुझे सन्देह नहीं कि स्थितिमें तुरन्त सुधार हो सकता है। और उसके लिए नगर-परिषदको कुछ खर्च भी न करना पड़े, और शायद कुछ पौंडकी बचत भी हो जाये। बाड़ोंके मालिकोंको थोड़े अरसेके लिए — छः महीने या तीन महीनेके लिए — पट्टे दे दिये जायें। पट्टोंमें ठीक-ठीक लिख दिया जाये कि हर बाड़ेमें या हर कमरेमें कितने आदमी रखे जायेंगे। पट्टेदार कीमत आँकनेवालों द्वारा आँकी गई कीमतका, मान लीजिए, ८ फीसदी चुकायें; और जिस बाड़ेका उन्हें पट्टा दिया गया हो, उसकी सफाईके लिए उन्हें सख्तीके साथ जिम्मेदार बनाया जाये।

तब सफाईके नियमोंपर कठोरतासे अमल कराया जा सकता है; एक या दो निरीक्षक बाड़ोंको रोज देख सकते हैं और नियम भंग करनेवाले लोगोंके साथ सख्तीसे पेश आ सकते हैं।

यदि यह विनम्र सुझाव मान लिया जाये तो आपको दो-तीन दिनमें बहुत सुधार दिखाई देगा और आप थोड़ी-सी कलम चलाकर गन्दगी और भीड़-भाड़का सफलतापूर्वक सामना कर सकते हैं। नगर-परिषद भी व्यक्तियोंसे किराया वसूल करनेकी झंझटसे बच जायेगी।

अवश्य ही, मेरे सुझावके अनुसार नगर-परिषदको बस्तीसे काफिरोंको हटा लेना होगा। मैं स्वीकार करता हूँ कि भारतीयोंके साथ काफिरोंको मिला देनेके बारेमें मेरी भावना बहुत ही प्रबल है। मेरे खयालसे यह भारतीय लोगोंके साथ बड़ा अन्याय है और मेरे देशवासियोंके सुप्रसिद्ध धीरजको भी बेजा तौरपर खपानेवाला है।

यद्यपि अस्वच्छ क्षेत्रमें शामिल किये गये दूसरे भागोंमें मैं स्वयं नहीं गया हूँ, फिर भी मुझे बड़ा अन्देशा है कि वहाँ भी वही हालत होगी, और मैंने ऊपर जो सुझाव दिया है, वह दूसरे भागोंपर भी लागू होगा।

मुझे भरोसा है कि आप इस पत्रको उसी भावनासे अंगीकार करेंगे जिस भावनासे यह लिखा गया है; और मुझे आशा है कि मैंने अवसरकी विकटताको देखते हुए आवश्यकतासे अधिक जोरदार भाषाका उपयोग नहीं किया है। कहनेकी जरूरत नहीं कि इस दिशामें मेरी सेवाएँ पूरी तरहसे आपके और लोक–स्वास्थ्य समितिके सुपुर्द हैं। और मुझे कोई शक नहीं कि सफाईके मामलेमें भारतीय समाज जो-कुछ कर सकता है वह कर दिखानेका, अगर नगर-परिषद उसे उचित मौका भर दे दे तो, मेरे मतसे, बहुत भूल न होगी।

आप इस पत्रका जैसा चाहें उपयोग कर सकते हैं।

अन्तमें, मै आशा करता हूँ कि समाजके सामने जो खतरा है उसका कोई उपाय तुरन्त खोज निकाला जायेगा।

आपका विश्वासपात्र,

मो० क० गांधी

डॉ० पोर्टरने जवाबमे यह पत्र लोक-स्वास्थ्य समितिको भेज दिया, किन्तु उसने कोई कार्रवाई नही की। अकस्मात् असाधारण वर्षा हो गई और उससे वहीं प्लेग फैल गया जिससे लोग इतने डर रहे थे।

इस प्रकार मेरे सघकी नम्र रायमें बस्तीमें रहनेवाले भारतीयोने कोई क़सर बाकी नही रखी थी। यह उनकी विशुद्ध लाचारी ही थी। दूसरी ऐसी कोई जगह नही थी जहाँ वे जाते। बस्ती छोडकर नगरपर धावा बोलना असम्भव था। तत्काल कार्रवाईकी प्रार्थना करनेपर भी अधिकृत बस्तीके बदलेमें उनके बसनेके लिए कोई स्थान मुकर्रर नही किया गया। बस्तीकी हालतके बारेमें डॉ० पोर्टरकी राय, जिसपर मेरे सघने आपत्ति की है, १९०२ में दी गई थी और फिर भी अधिग्रहणके समयतक (अर्थात् लगभग एक वर्षतक) बस्तीको उसी अवस्थामें रहने दिया गया और कोई छूतकी बीमारी न फैली।

इस प्रकार यहाँ डॉ० जॉन्स्टन और स्वर्गीय डॉ० मैरेसने[1] जो गवाही दी थी उसकी सचाईका प्रत्यक्ष प्रमाण मौजूद है। असल बात यह है कि डॉ० पोर्टरने इस बस्तीकी जो हालत बयान की है वह तभी हुई जब नगर-परिषदने उसको अपनी सम्पत्ति बना लिया और भारतीय उसकी देखभाल करनेमें असमर्थ हो गये।

इतना ही नही, कहते है कि ट्रान्सवालके स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारीने प्लेग फैल जानेके सिलसिलेमे निम्नलिखित बातें कही हैं और इस प्रकार बस्तीके भारतीयोको जिम्मेदारीसे मुक्त कर दिया है:

> जोहानिसबर्गकी कुली बस्ती शर्मनाक हालतमें है, और क्यों? इसलिए कि ये गरीब लोग दरबेमें मुर्गीके बच्चोंकी तरह वहाँ रहनेके लिए मजबूर हैं और अधिकारियोंने उसे बहुत ही गन्दी हालतमें रख छोड़ा है। अगर श्री रेट (विधान-परिषदके सदस्य) उसमें रहनेको विवश होते तो वे भी उतने ही गन्दे होते।

यह भी ध्यान देने लायक बात है कि ट्रान्सवालमें भारतीय इस बस्तीसे बाहर, अर्थात् जहाँ उनका अपने निवास-स्थानोपर नियन्त्रण है, दूसरी जातियोसे ज्यादा इस बीमारीके शिकार नही

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ४३२–३६।

हुए हैं। उदाहरणके लिए, प्रिटोरिया और पॉचेफस्ट्रूममें, जहाँ भारतीयोंकी अलग बस्तियाँ हैं, भारतीय प्रायः नगण्य संख्यामें प्लेगसे बीमार हुए हैं।

आवेदनपत्रके इस भागको समाप्त करनेसे पहले मेरा संघ परमश्रेष्ठका ध्यान दो पुराने डॉक्टरों, डॉ० वील और डॉ० स्पिककी नीचे लिखी रायकी तरफ खींचना चाहता है :

मैं इस पत्रके द्वारा प्रमाणित करता हूँ कि मैं गत पाँच वर्षोंसे प्रिटोरिया नगरमें साधारण चिकित्सकका धंधा कर रहा हूँ।

इस अवधिमें, और खास तौरसे तीन वर्ष पहले, जब भारतीयोंकी संख्या अबसे ज्यादा थी, उनके बीच मेरा धंधा खासा अच्छा रहा है।

मैंने उनके शरीरोंको आम तौरसे स्वच्छ और उन लोगोंको गन्दगी तथा लापरवाहीसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंसे मुक्त पाया है। उनके मकान साधारणतः साफ रहते हैं और सफाईका काम वे राजी-खुशीसे करते हैं। वर्गकी दृष्टिसे विचार किया जाये तो मेरा यह मत है कि निम्नतम वर्गके भारतीय निम्नतम वर्गके यूरोपीयोंकी तुलनामें बहुत अच्छे उतरते हैं। अर्थात्, निम्नतम वर्गके भारतीय निम्नतम वर्गके यूरोपीयोंकी अपेक्षा ज्यादा अच्छे ढंगसे, ज्यादा अच्छे मकानोंमें और सफाईकी व्यवस्थाका ज्यादा खयाल करके रहते हैं।

मैंने यह भी देखा है कि जिस समय शहर और जिलेमें चेचकका प्रकोप था — और जिलेमें अब भी है — तब प्रत्येक राष्ट्रके एक या अधिक रोगी तो कभी-न-कभी संक्रामक रोगोंके चिकित्सालयमें रहे, परन्तु भारतीय कभी एक भी नहीं रहा।

मेरे खयालसे, आम तौरपर भारतीयोंके विरुद्ध सफाईके आधारपर आपत्ति करना असम्भव है। शर्त हमेशा यह है कि, सफाई-अधिकारियोंका निरीक्षण भारतीयोंके यहाँ उतना ही सख्त और नियमित हो, जितना कि यूरोपीयोंके यहाँ होता है।

एच० प्रायरवील, बी० ए०, एम० बी०, बी० सी० (केंटब)

मैं प्रमाणित करता हूँ कि मैंने पत्र-वाहकोंके मकानोंका निरीक्षण किया है। वे स्वच्छ तथा आरोग्यजनक हालतमें हैं। वास्तवमें तो वे ऐसे हैं कि उनमें कोई भी यूरोपीय रह सकता है। मैं भारतमें रहा हूँ। मैं प्रमाणित कर सकता हूँ कि दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यमें उनके मकान उनके भारतके मकानोंसे कहीं बेहतर हैं।

सी० पी० स्पिक, एम० आर० सी० एस०, और एल० आर० सी० ए० (लंदन)।

परमश्रेष्ठने पहले मुद्देके बारेमें विचार करते हुए जोहानिसबर्ग, पीटर्सबर्ग और नेटाल तीन उदाहरण लिये हैं। जोहानिसबर्ग ब्रिटिश भारतीयोंके मुकाबिलेमें टिका रह सका है, यह बात मेरे संघकी विनम्र सम्मतिमें, यह जाहिर करती है कि भारतीय व्यवसायमें यूरोपीयोंसे स्पर्धा करनेमें असमर्थ हैं। हाँ, फुटकर व्यापारमें भले ही कर सकते हैं। इसमें भी वे यूरोपीयोंको खदेड़नेमें सफल नहीं हुए हैं, क्योंकि सभीको यह मालूम है कि ज़ोहानिसबर्गमें फुटकर व्यापार अधिकतर यूरोपसे आये हुए विदेशियोंके हाथोंमें है। परमश्रेष्ठके प्रति अत्यन्त आदरसहित कहना होगा कि पीटर्सबर्गमें भी थोक और फुटकर दोनों ही व्यापार ज्यादातर यूरोपीयोंके हाथोंमें हैं। यूरोपीय कोठीदार, जिनके लिए परमश्रेष्ठने कहा है कि वे पीटर्सबर्गमें केवल थोक व्यवसाय ही करते हैं, मेरे संघकी जानकारीके अनुसार, फुटकर व्यवसाय भी कर रहे हैं, जब कि वहाँके भारतीयोंका व्यापार फुटकर कारोबारतक ही सीमित है।

मेरा संघ सादर निवेदन करता है कि नेटालकी स्थितिसे तुलना करना ब्रिटिश भारतीय समाजके प्रति बड़ा अन्याय है, क्योंकि नेटाल और ट्रान्सवालमें कोई समता नहीं है। नेटाल ३० सालसे अधिक समयसे भारतीय मजदूर बुला रहा है और वहाँकी अधिकांश भारतीय आबादी गिरमिटिया है। इस उपनिवेशमें जिन स्वतन्त्र भारतीयोंने प्रवेश किया है उनकी संख्या दस हजारसे कम है। परन्तु वहाँ भी, मेरा संघ निवेदन करता है कि, फुटकर व्यापार सर्वथा भारतीयोंके हाथोंमें नहीं आया है। तमाम महत्त्वपूर्ण नगरोंमें वह अब भी यूरोपीयोंके नियन्त्रणमें है।

भारतीय नेटालके लिए कितने मूल्यवान है इसकी गवाही पिछले साल सर जेम्स हलेटने इन शब्दोंमें दी थी :

> **अरब लोग सीमित संख्यामें हैं और प्रायः सभी व्यापारी हैं। साधारण छोटा व्यापारी अरबके साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता। उपनिवेशका काफिरोंके साथ फुटकर व्यापार प्रायः सारा-का-सारा अरबोंके हाथमें है। देहाती क्षेत्रोंमें मुझे इसपर आपत्ति नहीं है, क्योंकि मैं सोचता हूँ कि साधारण गोरे युवक या युवती देहाती काफिर बस्तियोंमें वस्तु-भण्डारोंकी देख-रेखके बजाय कोई और अच्छा काम कर सकते हैं। साधारण गोरे आदमीकी आवश्यकताओंकी अपेक्षा अरब लोगोंकी आवश्यकताएँ कम हैं। वे कम मुनाफेपर माल बेचते हैं और एक खास हदतक वतनियोंके साथ यूरोपीयोंकी अपेक्षा अधिक अच्छा व्यवहार करते हैं। देहाती वस्तु-भण्डारोंमें यूरोपीय बहुत अधिक मुनाफा चाहते हैं। मोटे तौरपर देखनेपर यह खयाल बनता है कि अरब व्यापारियोंका व्यापार देहाती क्षेत्रोंके अलावा नगरोंमें भी दिनों-दिन बढ़ रहा है। उन्हें किसी हदतक गोरे-निवासियोंका समर्थन मिलता है। गोरे निवासी अरबोंकी शिकायत तो करते हैं, और वह कुछ-कुछ वाजिब भी है; किन्तु फिर भी वे उन्हें मदद देते हैं, क्योंकि उन्हें किसी अन्य स्थानकी अपेक्षा अरबोंसे सस्ता माल मिल जाता है। परन्तु इन सब बातोंका यह अर्थ नहीं है कि गोरे लोग व्यापारसे बिलकुल निकाल दिये गये हैं। (यह बात गवाहने जोर देकर कही)।**

वहाँके अधिकांश सार्वजनिक कार्यकर्ताओंका विश्वास है कि नेटालकी समृद्धि भारतीयोंकी उपस्थितिके कारण है। कुछ वर्ष पहले विशेष आयुक्तोंने सारे प्रश्नकी, खास तौरपर ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंके सम्बन्धमें, जिनके विरुद्ध परमश्रेष्ठने बहुत-सी दलीलें पेश करनेकी कृपा की है, जाँच करके कहा था :

> **सूक्ष्म निरीक्षणके आधारपर हमें अपनी यह पक्की राय दर्ज कराते हुए सन्तोष होता है कि इन व्यापारियोंकी मौजूदगीसे सारे उपनिवेशको लाभ पहुँचा है और उनको क्षति पहुँचानेके लिए कानून बनाना बे-इन्साफी नहीं तो नासमझी जरूर होगी।**
>
> **वे लगभग सभी मुसलमान हैं जो शराबसे या तो बिलकुल परहेज करनेवाले हैं या संयमके साथ पीते हैं। स्वभावसे वे मितव्ययी और कानून-पालक हैं।**

जिन ७२ यूरोपीय गवाहोंने आयोगके सामने अपनी गवाहियाँ दी उनमें से लगभग प्रत्येकने, जहाँ भारतीयोंकी उपस्थितिसे उपनिवेशपर होनेवाले असरका जिक्र आया है, यह कहा है कि वे उपनिवेशकी भलाईके खयालसे अनिवार्य हैं।

परन्तु शायद सबसे ज्यादा चकित करनेवाला उदाहरण, जिससे यह सिद्ध होता है कि भारतीय गोरोंके प्रभुत्वके लिए वैसे खतरनाक नहीं हैं जैसे आम तौरपर समझे जाते हैं, केप उप-

निवेशमें मिलता है। उस उपनिवेशमे भारतीय मजदूर कभी नही लाये गये, परन्तु पिछले सालतक जो भी भारतीय वहाँ जाना चाहता था, जा सकता था। वहाँ भारतीयोको जमीनका मालिक बननेका अधिकार है, वे बिना किसी रोक-टोकके व्यापारिक परवाने ले सकते हैं और सम्राट्के दूसरे प्रजाजनोको प्राप्त लगभग सभी अधिकारोका उपभोग कर रहे हैं। फिर भी उनकी स्पर्धासे यूरोपीय समाजपर किसी भी प्रकारका विपरीत प्रभाव नही पडा है। हाँ, उनकी मौजूदगीसे स्वस्थ स्पर्धाको प्रोत्साहन मिला है। ट्रान्सवालकी अपेक्षा केपमे कही अधिक भारतीय है, परन्तु जमीनके स्वामित्वपर उनका कोई खास असर नही पडा है।

इसलिए मेरा सघ निवेदन करना चाहता है कि जहाँतक भूतकालीन स्थितिसे इस प्रश्नपर प्रकाश पडता है, परमश्रेष्ठ द्वारा प्रकट किये हुए अन्देशे सही साबित नही होते।

ब्रिटिश भारतीयोका विरोध ट्रान्सवालके व्यापारी वर्गतक ही सीमित है और इसलिए विशुद्ध रूपसे स्वार्थजनित है। यह मेरे संघकी नम्र सम्मतिमे इस बातसे स्पष्ट है कि भारतीयोका बहुत-कुछ कारबार यूरोपीयोकी सहायतापर निर्भर है। यूरोपीय बैंक उन्हे विश्वास-योग्य पाकर ही रुपया उधार देते है। यूरोपीय कोठियाँ उन्हे उधार माल बेचती है और यूरोपीय ग्राहक उनसे चीजे खरीदते है। उनके सबसे अच्छे ग्राहक डच लोग है। यहाँ यह उल्लेख किया जा सकता है कि बोअरोके शासन-कालमे भी एक प्रार्थनापत्र स्वर्गीय राष्ट्रपति क्रूगरको दिया गया था जिसपर बडी सख्यामे डचो और अग्रेजो दोनोके हस्ताक्षर थे और भारतीयोकी उपस्थितिका समर्थन किया गया था।

यह सही है कि बोअरोके शासन-कालमे गोरो और रगदार लोगोकी सामाजिक और राजनीतिक समानता कभी स्वीकार नही की गई थी, परन्तु यह प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया जायेगा कि भारतीय इन दोनोमें से किसी भी क्षेत्रमे नही पड़े हैं और इससे सावधानीसे बचते रहे है।

परमश्रेष्ठने जो प्रस्ताव किये है और जिन्हे उन्होंने "रियायतें" कहा है, मेरा सघ उन प्रस्तावोकी चर्चा करनेकी अनुमति माँगता है। परन्तु ये प्रस्ताव मेरे संघके विनम्र मतसे उस थोड़ीसी स्वतन्त्रता पर भी नया आघात करते हैं जो १८८५ के कानून ३के मातहत, जिसका स्थान ये लेना चाहते है, ब्रिटिश भारतीयोको प्राप्त है।

(१) आज उस समयके कानूनका जो अर्थ लगाया जाता है 'उसके अनुसार भारतीय जहाँ चाहे वहाँ व्यापार करनेको स्वतन्त्र है। और वे रिवाजमे भी हमेशा स्वतन्त्र रहे है।

(२) यद्यपि उस कानूनमे एक ऐसी धारा है जिससे खास बस्तियो-मुहल्लो या सडकोमे ही निवास सीमित किया जा सकता है तथापि, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालयने माना है, उसपर अमल नही होता, क्योकि कानूनमे उसकी मजूरी नही है। इसलिए ब्रिटिश भारतीय जहाँ चाहे वहाँ रहनेके लिए स्वतन्त्र है। वे अचल सम्पत्तिके मालिक नही हो सकते, परन्तु पट्टे लेनेके अधिकारी है।

(३) एशियाइयोके स्वतन्त्र प्रवासपर कानूनमे किसी भी तरहकी पाबन्दी नही है।

परमश्रेष्ठके प्रस्तावोके अनुसार *बाजारोंसे* बाहर व्यापार करनेके परवाने सिर्फ उन्ही लोगोको देना जारी रखा जायेगा जो लडाई छिड़नेके समय व्यापार कर रहे थे और वे भी उपनिवेशमे परवानेदारके निवास-कालतक ही चलेगे। यह शर्त ऐसी है जिससे उन थोडेसे आदमियोका व्यापार बढ़नेकी सम्भावना भी बहुत कम हो जाती है, जो युद्धारम्भके समय व्यवसाय कर रहे थे। इसलिए इस प्रस्तावका अन्तिम परिणाम यही होगा कि पृथक् बस्तियोके अलावा सब स्थानोमे ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोका पूरा खातमा हो जायेगा।

बस्तियोमे रहनेकी बाध्यतासे मुक्तिकी गुंजाइश तो सोची गई है। परन्तु, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, बस्तियोमे रहनेकी बाध्यताका अस्तित्व है ही नही; वह पैदा करनी पड़ेगी, इसलिए वह एक नई पाबन्दी होगी।

पंजीकरणसे मुक्ति नाममात्रकी होगी, क्योकि ट्रान्सवालके लगभग सभी पुराने निवासियोने लॉर्ड मिलनरकी सलाह मानकर पंजीकरणकी फीस अदा कर दी है और प्रस्तावित प्रवास-अध्यादेशके अनुसार नये आदमियोको अल्पतम संख्यामें उपनिवेशमे आने दिया जायेगा। असलमे प्रत्येक भारतीयको, जो शरणार्थी नही है, भले ही उसकी बौद्धिक योग्यता, सामाजिक गुण या रहन-सहनकी आदते कुछ भी हो, उपनिवेशमें प्रवेश करनेसे रोकनेके लिए शान्ति-रक्षा अध्यादेश काममें लाया जाता है।

इसलिए सादर निवेदन है कि जिन प्रस्तावोकी चर्चा की जा रही है उनसे किसी भी बातमें ब्रिटिश भारतीयोको कोई रियायत नही मिलेगी, बल्कि वे अबतक जिन अधिकारोका उपभोग कर रहे थे उनमें भी बहुत कमी हो जायेगी।

मेरा संघ परमश्रेष्ठकी इस सलाहके लिए आभारी है कि भारतीयोको धार्मिक कामोके लिए अपने नामसे जमीन खरीदने दी जा सकती है। लेकिन मेरे संघको यह कहनेके लिए क्षमा किया जाये कि जब भारतीय आबादीका बड़ा भाग जबरन अलग बस्तियोमे रख दिया जायेगा तब इस रियायतका कोई उपयोग नही रहेगा, या बहुत थोड़ा रहेगा; और अगर वह जमीन धार्मिक संस्थाओके संचालनके लिए आमदनी करनेके उद्देश्यसे काममे नही लाने दी जायेगी तो उस रियायतका लाभ नही उठाया जा सकेगा। फिर यह प्रस्ताव बिलकुल नया भी नही है, क्योकि स्वर्गीया सम्राज्ञीके प्रतिनिधियोने स्वर्गीय राष्ट्रपति क्रूगरका ध्यान इस मामलेकी तरफ बार-बार आकर्षित किया था और उन्होने भी राहत देनेका वचन दिया था।

परमश्रेष्ठने यह कहनेकी कृपा की है कि "ब्रिटिश भारतीय संघकी रायमे ये स्थान (नई बस्तियोके लिए अंकित स्थानोसे मतलब है) सर्वथा अनुपयुक्त है, परन्तु मेरी रायमे संघने अपना मामला पेश करनेमे अत्युक्ति की है।" परमश्रेष्ठके प्रति अत्यन्त आदर व्यक्त करते हुए मेरा संघ अर्ज करता है कि उसका प्रयत्न सदा तथ्योको जरा भी रंग चढाये बिना पेश करनेका रहा है और बस्तीके नये स्थानोके बारेमें निवेदन करते समय उसने हर बातमे अपने ऐतराजोकी हिमायतमे निष्पक्ष प्रमाण दिये है। मेरे संघके ज्यादातर सदस्य बहुत पुराने अनुभवी व्यापारी है; इसलिए वे इन स्थानोके बारेमे विश्वासपूर्वक बात करनेका दावा भी करते है और सुदूर भविष्यमें वे स्थान चाहे कितने भी कीमती बन जाये, मगर फिलहाल उद्देश्य-पूर्तिकी दृष्टिसे वे एक-दोको छोडकर सभी बिलकुल बेकार है। क्योकि वे ऐसे एकान्त और निर्जन हिस्सोमे है जहाँ आवागमनकी कोई सुविधा नही है। उदाहरणके लिए पीटर्सबर्गमे नया स्थान शहरसे कोई दो मील पर रखा गया है। चूँकि वह एक छोटा-सा गाँव है, इसलिए वहाँ आवागमनका कोई साधन नही हो सकता। फलत यह सिर्फ एक बिलकुल नया भारतीय गाँव बसानेका ही प्रश्न है। वहाँ जो आधे दर्जन दूकानदार जायेंगे वे ही आपसमें व्यापार कर सकेंगे। यह कहना ठीक नही कि किसी ऐसी पृथक् बस्तीमें जाना ऐसा ही होगा जैसा लन्दनमें चीपसाइडसे हैम्स्टेड हीथमें जाना। इस कथनसे मेरे संघकी रायमें इस मामलेमें पूरी स्थिति व्यक्त नही होती। और ये स्थान इतनी दूर-दूर मुकर्रर किये गये है इस तथ्यसे ही १८८५ के कानून ३ के अन्तर्गत सरकारको दी गई सत्ता में कमी हो जाती है। उस कानूनमे बस्तियोके अलावा "सड़कें और मुहल्ले" अलग करनेकी कल्पना भी है।

किन्तु सारे प्रश्नका मर्म यह है कि भविष्यकी बात सोचकर पेशगी कानून बनाया जाय और मेरा सघ यह कहे विना नही रह सकता कि चूँकि भविष्यकी रक्षा नेटाल या केपके ढगपर प्रवासी-अधिनियम बनाकर की जा रही है इसलिए जीवनके किसी भी क्षेत्रमे इस भयका कोई कारण दिखाई नही देता कि भारतीय यूरोपीयोपर छा जायेंगे। सतत वर्द्धमान यूरोपीय आबादीके मुकाबलेमें भारतीय आबादी, जो अनुमानसे १२,००० होगी, सदा एक जैसी रहेगी। इस सख्यामे केवल थोडीसी वृद्धि उन लोगोसे होगी जो शिक्षा-सम्बन्धी कसौटीके अनुसार ट्रान्सवालमे प्रवेश कर सकेंगे। उदाहरणार्थ नेटालमे प्रवासी-अधिनियम पाँच सालसे लागू है। इस कालमें इस परीक्षाके अनुसार, जब कि उसका एक सीधा और निश्चित रूप था, केवल १५८ नये आदमी उपनिवेशमे प्रवेश पा सके हैं। जैसा परमश्रेष्ठको मालूम है, अब यह परीक्षा बहुत कड़ी और केप कानूनकी जैसी कर दी गई है। इसलिए उन लोगोके सिवा, जिन्हे अंग्रेजी भाषाका बहुत अच्छा ज्ञान हो, अन्य किसीका उपनिवेशमे प्रवेश असम्भव है। और यद्यपि आम लोगोके विद्वेषका खयाल रखते हुए मेरा सघ उन आशकाओसे सहमत नही है जो परमश्रेष्ठने प्रकट की है, फिर भी वह तबतक इस पाबन्दीको लगानेकी बात मंजूर करनेके लिए तैयार है जबतक मौजूदा कारोबार चलानेके लिए बिलकुल जरूरी नौकरो और विक्रेताओको उपनिवेशमे प्रवेशकी उचित सुविधाएँ दी जाती रहे।

जो लोग लड़ाईसे पहले ट्रान्सवालमें परवानोसे या उनके बिना कभी व्यापार नही करते थे उनके नाम व्यापारके नये परवाने जारी करनेके सम्बन्धमे, मेरा सघ आम लोगोका द्वेष शान्त करने और यथासम्भव यूरोपीय उपनिवेशियोकी इच्छाएँ पूरी करनेकी दृष्टिसे एक आम कानून माननेके लिए तैयार है और ऐसे परवाने देना या न देना सरकार या स्थानीय निकायोपर छोड़ता है। परन्तु शर्त यह होगी कि स्पष्ट अन्याय होनेकी दशामे, उदाहरणार्थ, जहाँ नये प्रार्थीका समर्थन अधिकांश यूरोपीय करे वहाँ, सर्वोच्च न्यायालयमे अपील की जा सके। इस सबके लिए भी शर्त यह होगी कि मौजूदा परवानोमे कोई दखल नही दिया जायेगा। इसमें जहाँ मकान-दूकान साफ-सुथरी हालतमे न रखे जाये और परवानेदार हिसाब-किताब सम्बन्धी नियमो आदिका पालन न करे वहाँ अपवाद हो। इस प्रकार नये परवाने जारी करनेकी व्यवस्था रग-भेदके आधारपर कोई अन्यायपूर्ण कानून बनाये बिना नियमित की जा सकेगी।

मेरा संघ सादर निवेदन करता है कि अचल-सम्पत्तिके स्वामित्वकी मनाही जितनी अकारण है उतनी ही अन्यायपूर्ण भी। और उपनिवेशके मुट्ठी-भर भारतीयोको स्वतन्त्रतापूर्वक जमीन खरीदनेसे रोकना स्पष्ट रूपमे ब्रिटिश परम्पराओके विपरीत है।

मेरे संघने सरकारके उस वचनके सम्बन्धमे कुछ नही कहा है, जो उसने ४० वर्ष पहले दिया था, क्योकि उसकी नम्र सम्मतिमे ब्रिटिश भारतीयोका मामला अपनी पात्रताके आधारपर ही बहुत जोरदार है। परन्तु मैं कह सकता हूँ कि यदि सर चार्ल्स नेपियरकी १८४३ की घोषणाके समय स्थिति आजसे भिन्न थी, तो भी जब स्वर्गीय लॉर्ड रोजमीड और स्वर्गीय लॉर्ड लॉक और इसी तरह लॉर्ड मिलनरने बोअर-राज्यके दिनोमे ब्रिटिश भारतीयोके पक्षमे जोरदार कोशिशे की थी और स्वर्गीय राष्ट्रपति क्रूगरके अतिक्रमणसे उनके अधिकारोकी थोड़ी या बहुत सफलताके साथ रक्षा की थी, उस समय वह इतनी भिन्न नही थी। जब लड़ाई छिड़ी और स्वर्गीया सम्राज्ञीके मन्त्रियोने यह घोषणाकी कि ब्रिटिश भारतीयो पर लगाई गई निर्योग्यताएँ भी लड़ाईका एक कारण है, तब भी परिस्थिति आजसे बहुत भिन्न नही थी।

इसलिए मेरा सघ महसूस करता है कि इन तथ्योकी उपेक्षा की गई है और इस प्रकार भारतीय समाजके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार नही किया गया। मेरे संघका सम्मानपूर्ण निवेदन यह है कि ब्रिटिश भारतीय सम्राट्की प्रजा है और ट्रान्सवालके कानून-पालक और शान्ति-प्रिय निवासी

है। दूसरी ओर परमश्रेष्ठ सम्राट्के प्रतिनिधि और राज्यके प्रधान हैं। अत भारतीयोका अधिकार है कि परमश्रेष्ठ उनकी स्थितिपर निष्पक्ष रूपसे विचार करे।

इसके सिवा ब्रिटिश भारतीयोने एक जातिके रूपमे सदा ही सम्राट्की विनम्र सेवाएँ की हैं। वे इस तथ्यकी ओर परमश्रेष्ठका ध्यान आकर्षित करनेपर क्षमा चाहते है। सोमालीलैंड हो या तिब्बत, चीन हो या दक्षिण आफ्रिका — सभी जगह भारतीय सिपाहियोंने ब्रिटिश सैनिकोके साथ कधेसे-कधा मिलाकर लड़ाईमें सख्त मोर्चा लिया है। लॉर्ड कर्जनने अभी भारतकी साम्राज्य-सेवाओका उल्लेख इन सुन्दर शब्दोमे किया था·

> अगर आप अपने नेटालके उपनिवेशको किसी जबरदस्त दुश्मनके हमलेसे बचाना चाहते हैं तो आप भारतसे मदद माँगते हैं और वह मदद देता है; अगर आप पीकिंगके गोरे कूटनीतिक प्रतिनिधियोंको कत्लेआमसे बचाना चाहते हैं और जरूरत सख्त होती है तो आप भारत-सरकारसे सैनिक-दल भेजनेको कहते हैं और वह भेज देती है; अगर आप सोमालीलेंडके पागल मुल्लेसे लड़ रहे हैं तो आपको जल्दी ही पता लग जाता है कि भारतीय सेना और भारतीय सेनापति उस कामके लिए सबसे ज्यादा योग्य हैं, और आप उन्हें भेजनेके लिए भारत-सरकारसे अनुरोध करते हैं; अगर आप साम्राज्यकी अदन, मारिशस, सिंगापुर, हांगकांग, टीनसिन या शान-हाई-क्वान जैसी किसी बाहरी चौकी या जहाजी कोयला-चौकीकी रक्षा करना चाहते हैं; तो भी आप भारतीय सेनाकी ओर देखते हैं; अगर आप युगांडा या सूडानमें कोई रेल-मार्ग बनाना चाहते हैं तो आप भारतसे ही मजदूरोंकी माँग करते हैं। जब स्वर्गीय श्री रोड्स आपके नव-प्राप्त रोडेशिया प्रदेशके विकासमें लगे हुए थे तब उन्होंने मुझसे सहायता मांगी। डेमरारा और नेटाल दोनोंके बगानसे लाभ उठानेके लिए भी आप भारतीय कुलियोंसे ही काम लेते हैं। मिस्रमें सिंचाई और नील नदीके बाँधका काम भी आप भारतके प्रशिक्षित अधिकारियोंसे ही कराते हैं। भारतके वन-अधिकारियोंकी सहायतासे ही आप मध्य आफ्रिका और स्यामके वन-साधनोंका लाभ उठाते हैं और भारतके सर्वेक्षण अधिकारियोके द्वारा पृथ्वीके तमाम गुप्त स्थानोंकी खोज कराते हैं।
>
> हम जबतक करोड़ों भारतवासियोंसे यह नहीं मनवा लेते कि हम उन्हें मनुष्य-मनुष्यके बीचमें उचित पूर्ण न्याय, कानूनके सम्मुख समानता और अत्याचार, अन्याय तथा सब प्रकारके उत्पीड़नसे स्वतंत्रता देते हैं, तबतक हमारा साम्राज्य उनके हृदयोंको स्पर्श नहीं करेगा और विलीन हो जायेगा।[1]

सर जॉर्ज व्हाइटने कर्त्तव्य-परायण प्रभुसिंहकी सेवाएँ उदारतापूर्वक स्वीकार की थी। यह व्यक्ति लेडीस्मिथके घेरेके वक्त बहुत जोखिम उठाकर भी बोअरोकी गोलियोकी बौछारमे एक पेड़पर बैठा रहा और अम्बुलवानाकी पहाड़ीपरसे बोअरोकी तोपोकी गोलाबारीके बारेमे एक बार भी चूके बिना चेतावनी देता रहा। जोहानिसबर्गमें वेधशालाकी पहाड़ीपर बना भारतीय स्मारक भी दक्षिण आफ्रिकाकी लड़ाईमे भारतके योगदानका सबूत है। मेरे सघकी नम्र सम्मति है कि ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय, जो इसी जातिके है, खास तौरपर अपने निहित

१. लॉर्ड कर्जनके गिल्डहॉलके भाषणके इस उद्धरणमें पहले दिये गये उद्धरणसे कुछ शाब्दिक परिवर्तन थे। ये ठीक कर दिये गये हैं। देखिए, "भारत ही साम्राज्य है", २०-८-१९०४।

स्वार्थो और ट्रान्सवालमे गौरव और आत्मसम्मानके साथ ईमानदारीसे रोजी कमानेके अपने अधिकारके बारेमे विशेष विचारके पात्र है। उन्हे हमेशा यह बात खटकती नही रहनी चाहिए कि ब्रिटिश शासनमे उनकी चमडीका रंग राजनैतिक आजादीसे भिन्न मामूली नागरिक स्वतन्त्रताकी प्राप्तिमे भी बाधक है।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय सघ

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, ३–९–१९०४

२०३. पत्र : "स्टार"को[1]

कोर्ट चेम्बर्स
जोहानिसबर्ग
सितम्बर ३, १९०४

सेवामे
सपादक
स्टार

महोदय,

ब्रिटिश भारतीय संघके आवेदनपत्रके बारेमे अपने सम्पादकीय लेखके सम्बन्धमे, मुझे विश्वास है, आप मुझे कुछ शब्द कहने देंगे। मुझे भय है कि आपने आवेदनपत्रके सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्देपर ध्यान नही दिया और मेरी नम्र रायमे इस देशके पत्रकार जनताका ध्यान इस बातकी तरफ दिलाकर उसकी सेवा करेंगे कि आवेदनपत्रसे उन यूरोपीयोके सबसे जोरदार ऐतराजोका पूरा समाधान हो जाता है, जो भारतीयोका अमर्यादित प्रवास नही चाहते और उन्हे नये परवाने दिये जानेके विरुद्ध है। संघ केपके नमूनेपर एक प्रवासी-अध्यादेश जारी करनेके सर आर्थर लालीके प्रस्तावको स्वीकार करता है और एक ऐसा सुझाव देता है जिससे स्वयं आपत्ति करनेवालो, अर्थात् स्थानीय अधिकारियोको नये परवाने जारी करनेपर नियन्त्रण प्राप्त होगा। क्या भारतीय इससे आगे जा सकते थे? यह नही भूलना चाहिए कि जब स्वर्गीय श्री क्रूगरने विधानसभाके प्रस्तावो द्वारा पिछले उच्च न्यायालयके फैसलेको रद करना चाहा था तो उनका जबरदस्त विरोध हुआ था। वे ही उपनिवेशी, जो उस समय विरोधी थे, अब वही माँग रहे है जिसका उन्होने विरोध किया था, क्योकि एशियाइयोको परवाने देना बन्द या स्थगित करके वे सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयको ही ठुकरा देना चाहते है। अगर स्वार्थने ब्रिटिश न्यायकी सुन्दर भावनाको अस्थायी रूपसे अन्धा न बना दिया होता तो ऐसी बात किसी ब्रिटिश देशमे असम्भव होती। और फिर भी ब्रिटिश भारतीय सघ आम लोगोंके द्वेषभावको मान्यता देकर, जबरदस्त सघर्षके बाद महँगी कीमत चुकाकर प्राप्त की हुई विजयके फलको बहुत कुछ छोड देनेके

१. यह *इंडियन ओपिनियनमें* इस शीर्षकके साथ पुनः छापा गया था: "ब्रिटिश भारतीय संघ : श्री गांधीका पत्र"।

लिए तैयार है। [मैं खुद किसी भी आयोगके, जो नियुक्त किया जाये, फैसलेसे नही डरता, क्योकि मेरा विनम्र, किन्तु दृढ, विश्वास है कि भारतीयोके विरुद्ध उठाई गई बहुत-सी आपत्तियाँ वास्तवमे निराधार है। [ट्रान्सवालमे फुटकर भारतीय व्यापारियोकी संख्या यूरोपीयोकी तुलनामे बहुत थोडी है। परन्तु मेरी समझमे आयोगकी नियुक्ति अनावश्यक है और उससे प्रश्नका निपटारा अनिश्चित कालके लिए स्थगित हो जायेगा। यह बडे आश्चर्यकी बात होगी, यदि श्री लिटिलटन अपने खरीतेसे मुकर जायें और आयोगका फैसला मालूम होनेतक भारतीय परवानोके प्रश्नको मुल्तवी रखे। ब्रिटिश भारतीय सघने यूरोपीयोकी इच्छाओकी पूर्तिका सदा प्रयत्न किया है। उन्होने फिर एक महान प्रयत्न किया है और मेरा निवेदन है कि विशेषत उन कडे कानूनोको ध्यानमे रखते हुए, जो पॉचेफ़स्ट्रूममे और अन्यत्र सुझाये जा रहे है, इस तथ्यपर जोर देकर आप देशकी सेवा करेगें। इस समय वक्त ही महत्त्वपूर्ण है; विवाद एक ऐसी स्थितितक पहुँच गया है जहाँ कोई निश्चित निर्णय ही एकमात्र उपाय हो सकता है। विधानसभाकी बैठकपर बैठक हुई और अनेक कानून पास हुए, मगर हर बार यह सवाल ताकपर रख दिया गया। सघने निश्चित प्रस्ताव किये है जिनसे मेरे खयालमे माकूल हल निकल आता है और वे कमसे-कम, परीक्षाके योग्य है। साथ ही उन प्रस्तावोमे यह विशेषता है कि प्रश्नका निपटारा स्थानीय स्तरपर हो जाता है।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०–९–१९०४

२०४. ट्रान्सवालके भारतीय

अगर हमारे सहयोगियोको मिले हुए समुद्री तारोमें लॉर्ड मिलनरके विचारोका ठीक-ठीक सार दिया गया है तो हम स्वीकार करते है कि हम इस प्रश्नपर परमश्रेष्ठके रुखको नही समझते क्योकि हमे बताया गया है, लॉर्ड महोदयका खयाल यह है.

> **दक्षिण आफ्रिकामें रंगदार लोगोंको गोरोंके साथ समान स्तरपर रखनेकी कोशिश बिलकुल अव्यावहारिक और उसूलन गलत है। लेकिन मेरी राय है कि जब किसी रंगदार आदमीमें एक निश्चित दर्जेकी ऊँची सभ्यता उपलब्ध हो तब उसे रंगका लिहाज किये बिना गोरोंके-से विशेषाधिकार मिलने चाहिए।**

अगर परमश्रेष्ठ सिर्फ इतना ही चाहते हैं तो हमे श्री लिटिलटनके खरीतेमे इससे असगत बात कुछ भी दिखाई नही देती, क्योकि उन्होने प्रस्ताव किया है कि उन लोगोके सिवा, जो परमश्रेष्ठकी बताई हुई कसौटीपर खरे उतरे, अन्य ब्रिटिश भारतीयोका आगे प्रवास रोक दिया जाये। जो लोग पहलेसे ही इस देशमे मौजूद है उनके लिए परमश्रेष्ठकी तजवीज यह है कि व्यापारके लिए तो नही, परन्तु सफाई-सम्बन्धी कारणोसे उनके पृथक्करणकी अनुमति हो तो व्यापार करनेका प्रश्न फिर भी अनिर्णीत रह जाता है। परन्तु लॉर्ड मिलनरने स्वय इस प्रश्नका उत्तर इन शब्दोमें दिया है:

> जहाँ देशमें पहलेसे मौजूद भारतीयोंके निहित स्वार्थोकी रक्षाके लिए लोकमतके विरुद्ध जाकर भी कानून बनाना हमारे लिए उचित होगा वहाँ, समूचे रूपमें लें तो, एशियाई प्रश्नके सम्बन्धमें इस तरीकेका कानून बनाना उचित नहीं होगा जो बहुसंख्यक यूरोपीय आबादीकी आवाजके विरुद्ध हो।

तो यदि निहित स्वार्थोंकी रक्षा करनी है तब तो श्री लिटिलटनने सचमुच इससे ज्यादा किसी चीजकी माँग नही की, क्योकि हमारा दावा है कि जो भी भारतीय अब ट्रान्सवालमे आवाद है उन्हे गणराज्यकी हुकूमतमे स्वतन्त्र व्यापार करनेकी इजाजत थी। इसलिए इस प्रकार व्यापार करनेकी योग्यता उनका निहित स्वार्थ है, भले ही वे दरअसल व्यापार करते हो या न करते हो। और जो आयन्दा आयेंगे वे तो केवल वे लोग ही होगे जो सभ्यताका एक निश्चित दर्जा प्राप्त कर चुके है। इस तरह परमश्रेष्ठकी ओरसे किया गया सारा [वि]रोध[1] बेकार [हो जाता] है। परन्तु दु[र्भाग्]यसे दो पिछले [वर्षो]मे हमने ऐसी बाते सीखी हैं [जिनसे] हम कह सकते है, [यद्य]पि [यह कहना] दु खदायी हो सकता है, कि लॉर्ड मिलनर जो कुछ कहते है वह चाहते नही है। वे ज्यादा अच्छे वर्गके एशियाइयोको विशेष अधिकार देनेका कोई इरादा नही रखते। और निहित अधिकार घटते-घटते उस व्यापारतक आ गये है जो वास्तवमें ११ अक्तूबर १८९९ को भारतीयोके हाथोमे था। क्योकि क्या एशियाई व्यापारी आयोगका यह कहना नही था कि उसे केवल उन्ही भारतीयोके मामलोकी जॉच करनेका अधिकार है, जो लडाई छिड़नेके समय और उसके तुरन्त बाद व्यापार कर रहे थे; और वह अपने अधिकारके अनुसार उन्ही लोगोके मामले निपटा सकता है जो अक्तूबर १८९९ मे व्यापार करते थे? अगर सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयके रूपमे भगवानकी दया न होती तो इस समयतक उपर्युक्त अधिकारके अनुसार ७५ फी सदीसे ज्यादा भारतीय व्यापारियोका अस्तित्व मिट गया होता और शायद उपनिवेश-कार्यालयने भी कुछ न किया होता। इसलिए हमारी माँग है कि नीति साफ-साफ बता दी जाये। यूरोपीय विरोधके बारेमे भी परमश्रेष्ठ इतना जोर दे रहे हैं। हमें इसपर भी आपत्ति है। इसके दो कारण है: (पहला) ब्रिटिश प्रजाजनोके किसी एक समूहकी ओरसे किये गये विरोधका प्रयोग किसी दूसरे समूहके अधिकारोको छीननेके लिए नही किया जा सकता; (दूसरा) वह विरोध स्वय सरकार द्वारा पोषित किया जाता है। इस बारेमे श्री लिटिलटनके खरीतेसे भ्रम बिलकुल दूर हो गया है। यद्यपि जब सर जॉर्ज फेरारकी प्रेरणासे एशियाई व्यापारिक आयोग नियुक्त किया गया तब कमजोर पक्षकी तरफसे श्री डंकन और सर रिचर्ड सोलॉमनने सफाई पेश की थी और वह हमे न्यायसंगत प्रतीत हुई थी। किन्तु जैसा खरीतेसे मालूम होगा, वे दोनो ही श्री लिटिलटनसे अधिकसे-अधिक जोरके साथ यह माँग कर रहे है कि वे भारतीयोसे लगभग सब कुछ छीन ले। हम देखते है कि उसी तरह विधान-परिषद भी यूरोपीय भावनाकी पूर्तिका साधन है। सर जॉर्ज फेरारने प्रस्ताव रखा था कि इग्लैंड एक आयोग नियुक्त करे और इस बीचमे भारतीयोको नये परवाने देना बिलकुल बन्द कर दिया जाये। सरकारने उसे खुशीसे मंजूर कर लिया है। जब स्वर्गीय श्री क्रूगरने अपने ही उच्च न्यायालयके फैसलोको निकम्मा करनेके लिए प्रस्ताव पास किये तब उनपर भीषण दोषारोपण किये गये। उनका आचरण पाशविक और अदूरदर्शितापूर्ण समझा गया और उन्हे भद्दीसे-भद्दी गालियाँ, जो दी जा सकती थी, दी गईं। लेकिन जब वही वात ब्रिटिश ताजके नुमाइन्दोकी तरफसे प्रस्तावित की जाती है तव विरोधमे एक भी आवाज नही उठाई जाती। ट्रान्सवालके स्वतन्त्र न्यायाधीशोने उपनिवेशमे भार-

१. मूलमें जहाँ-तहाँ कट-फट जानेसे कोष्ठकोंमें दिये गये शब्दों और शब्दांशोंकी पूर्ति की गई है।

तीयोंका व्यापार करनेका हक अपने सर्वसम्मत निर्णयमें जोरदार शब्दोंमें स्वीकार किया है। किन्तु अब उसीको छीननेका प्रस्ताव किया जा रहा है। इसलिए हम आशा करते हैं कि श्री लिटिलटन उस स्थितिको महसूस करेंगे जिसमें ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय हैं और यह भी अनुभव करेंगे कि स्थानीय सरकारने राग-द्वेषमें आम लोगोंके साथ पूरी तरह तादात्म्य स्थापित कर लिया है। इस कारण वह इस स्थितिमें नहीं है कि कोई निष्पक्ष राय दे सके। असल बात यह है कि सही या गलत, किसी भी तरह, वह बहुत बदनाम हो चुकी है। बहुत-से दूसरे मामलोंमें भी उसकी नीतिसे ट्रान्सवालके लोग गम्भीर रूपसे असन्तुष्ट हैं। इसलिए वह भारतीयोंके मामलेमें न्याय करनेसे डरती हैं। क्योंकि यह मामला उन लोगोंका है, जिनकी कोई आवाज नहीं है और जिनके पास सरकारको तंग करनेकी कोई ताकत भी नहीं है। हमारी हार्दिक प्रार्थना है कि श्री लिटिलटनको यथेष्ट बल प्राप्त हो, जिससे वे भारतीय प्रश्नके सम्बन्धमें, जिसे वे "राष्ट्रीय सम्मान" कहते हैं, उसकी रक्षा कर सकें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३-९-१९०४

२०५. पत्र: दादाभाई नौरोजीको[1]

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
सितम्बर ५, १९०४

सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी
२२, केनसिंगटन रोड
लन्दन, इंग्लैंड

महोदय,

भारतीय प्रश्नसे सम्बन्धित मामले अब नाजुक हालतमें पहुँच चुके हैं। *इंडियन ओपिनियनसे* आपको आज तककी सारी जानकारी मिल जायेगी। उसमें प्रकाशित ब्रिटिश भारतीय संघके निवेदनसे, मेरी समझमें, परिस्थिति स्पष्ट हो जायेगी। संघके प्रस्ताव जितने नरम हो सकते थे उतने नरम हैं, और उनमें ब्रिटिश भारतीयोंके कमसे-कम हक — जिनमें और कमी हो ही नहीं सकती — पेश किये गये हैं। आप देखेंगे कि उनमें उपनिवेशियोंकी सभी उचित आपत्तियोंको मिटा दिया गया है। शैक्षणिक कसौटीका मुद्दा भी मान लिया गया है। किन्तु परवानोंके प्रश्नपर

१. दादाभाई नौरोजीने इस पत्रकी बातें, पीछे जोड़े गये शब्दोंके साथ, एक वक्तव्यके रूपमें उपनिवेश-मन्त्रीको (सी० ओ० २९१, खण्ड ७९, इंडीविजुअल्स-एन) और भारत-मन्त्रीको (सी० ओ० २९१, खण्ड ७५, इंडिया ऑफिस) भेजी थीं। उक्त वक्तव्य ७-१०-१९०४ को *इंडियामें* जोहानिसबर्ग-संवाददाताके ९ सितम्बरके संवादके रूपमें छपा था।

सर्वोच्च न्यायालयमें पुनर्विचार कराने और अचल सम्पत्तिकी मिल्कियतका अधिकार बिलकुल जरूरी है। यदि आवश्यक हो तो दूसरी बातकी हदतक कुछ जमीनें केवल यूरोपीयोंकी मिल्कियतके लिए सुरक्षित रखी जा सकती है। मैं परवानोंकी स्थिति, पुनरुक्तिकी जोखिम उठाकर भी स्पष्ट कर दूँ। कोई परवाना-अधिनियम हो, उससे वर्तमान परवानोंको अछूता छोड़ देना चाहिए और जो लोग परवानो या बिना परवानोंके युद्धके पहले व्यापार कर रहे थे, किन्तु जिन्होंने ब्रिटिश अधिकारके बाद मुख्यत इसलिए परवाने नही लिये कि उन्हे उपनिवेशमें लौटने ही नही दिया गया है, उन्हे भी अछूता छोड़ना चाहिए। परवानोंकी बाड़ोंको नियमानुसार साफ-सुथरा रखने और हिसाब-किताब अंग्रेजीमें रखनेकी शर्तका पालन न हो तो बात अलग है। नये परवानोंके बारेमें सरकार अथवा नगरपालिकाके अधिकारियोंको पूरा विवेकाधिकार रह सकता है। हाँ, अपीलका अधिकार तो रहेगा। इस तरह सारा प्रश्न सुलझ जायेगा। यह प्रस्ताव नेटालके ढगका है — केवल इसमें सर्वोच्च न्यायालयको उसके स्वाभाविक अधिकारसे वंचित करनेवाली अत्यन्त अन्यायपूर्ण धाराको छोड़ दिया गया है। इस तथ्यसे वहाँके हर भारतीय व्यापारीकी स्थिति अनिश्चित हो गई है। यदि सघके प्रस्ताव स्वीकार कर लिये जाये तो किसी आयोगकी नियुक्ति अनावश्यक जान पड़ेगी। विधान-परिषदका प्रस्ताव जैसा सुझाता है, उसके अनुसार परवाने मुल्तवी नही किये जा सकते। और यदि परवाने मुल्तवी नही किये जाते तो मेरी समझमें लॉर्ड मिलनर आयोगकी नियुक्ति शायद ही स्वीकार करें। वास्तवमें आयोगकी माँगके द्वारा मंशा परोक्ष रूपसे वही प्राप्त करनेका है, जिसे श्री लिटिलटन प्रत्यक्षत अस्वीकार कर चुके हैं। इससे परवानोंका प्रश्न भी एक लम्बे और अनिश्चित कालके लिए टल जायेगा और यदि श्री लिटिलटनने परवानोंको मुल्तवी करनेकी बात मान ली तो भारतीय-विरोधियोंकी ओरसे किसी निश्चित विधानके लिए जल्दी नही मचाई जायेगी।

मैं देखता हूँ, ऑरेंज रिवर कालोनीका प्रश्न अभीतक नही उठाया गया है। मेरा खयाल है कि इसे प्रमुखताके साथ ध्यानमें रखना चाहिए, क्योंकि मेरी रायमें यह एक कलकसे कम नही है कि कालोनीको अबतक भारतीयोंके लिए अपने द्वार बिलकुल बन्द रखनेकी सुविधा प्राप्त है।

आपका सच्चा,

मो० क० गांधी

पुनश्च . सर आर्थर लाली और उपनिवेश-सचिव श्री डंकन पिछले हफ्ते लन्दनके लिए रवाना हुए हैं। क्या मैं सुझाव दे सकता हूँ कि एक मिला-जुला शिष्टमण्डल उनसे मिले और उनके साथ इस प्रश्नकी चर्चा कर ले? सम्भवत उनपर इसका बहुत ज्यादा प्रभाव हो सकता है और कुछ नही तो वे यह तो जान ही जायेंगे कि अलग-अलग मतोंके प्रभावशाली लोग इस प्रश्नपर बिलकुल एकमत हैं।

टाइप किये हुए मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २२६०) से।

२०६. ट्रान्सवाल

हम लॉर्ड मिलनर और सर आर्थर लालीके महत्त्वपूर्ण खरीते छाप चुके हैं। श्री लिटिलटनका खरीता भी, जो इनका जवाब था, इन स्तभोमे पहले ही छापा जा चुका है। इन दस्तावेजोसे ट्रान्सवालमे ही नही, परन्तु दक्षिण आफ्रिकाभरमें भारतीय प्रश्नका महत्त्व प्रकट होता है। ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय सघने उपनिवेश-सचिवके नाम एक आवेदनपत्र प्रिटोरिया भेजा है। (इसे हम पिछले सप्ताह उद्धृत कर चुके है)[1]। इसमे परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरके खरीतेमे कही गई कुछ निश्चित बातोका खण्डन किया गया है। खरीतेमे उन्होने साफ तौरपर अपनेको एक निष्पक्ष शासककी अपेक्षा पक्षपाती ही अधिक सिद्ध किया है। उस खरीतेमे आदिसे अन्ततक वे सब मुद्दे सामने लानेकी उत्सुकता है, जिनकी कल्पना परमश्रेष्ठ इस रूपमें कर सके है कि वे यूरोपीयोके ऐतराजोके अनुकूल हैं। उन्होने श्री लिटिलटनको यह सलाह देनेमे भी सकोच नही किया है कि वे जिस सरकारके नुमाइन्दे है उसके नामपर ब्रिटिश भारतीयोको बार-बार दिये गये वचन भी तोड दिये जाये। हमारा खयाल यह नही है कि राज्यके कारोबारमें ऐसे हालात हो ही नही सकते जिनमे एक बार दिये गये वचन भग करना उचित हो। परन्तु इस मामलेमें ऐसा करनेके लिए जरा भी औचित्य नही है। सर आर्थर लालीने सर चार्ल्स नेपियरकी १८४३ की घोषणाका विवेचन किया है और उनका विचार है कि उस समयकी स्थिति आजकी स्थितिसे बिलकुल भिन्न थी। किन्तु, जैसा ब्रिटिश भारतीय संघने परमश्रेष्ठको याद दिलाया है, उस वचनपर १८९९ तक अमल किया गया था। बहुत दिन नही हुए, जब लॉर्ड रिपन उपनिवेश-मन्त्री थे, उन्होने अपने खरीतेमें सरकारकी जोरदार नीति यह निर्धारित की थी कि सम्राज्ञी सरकारकी यह इच्छा है कि उनके तमाम प्रजाजनोके साथ बराबरीका बरताव किया जाये। हमें स्वीकार करना चाहिए कि हमें कोई भी परिस्थिति ऐसी दिखाई नही देती जिससे गम्भीरतापूर्वक किये गये और दुहराये गये वादे जानबूझकर तोडना वाजिब माना जाये। इस बातका भी कोई कारण नही है कि पहले प्रश्नको बेहद बढा-चढ़ा कर बताया जाये और फिर अन्याययुक्त और भेदभावपूर्ण कानून बनानेकी बातको उचित कहा जाये। अगर ट्रान्सवालका दरवाजा भारतसे लाखो लोगोके आनेके लिए बिलकुल खुला रखनेकी तजवीज हो तो ऐसा ढग समझमें आ सकता है। परन्तु जिस साँसमें सर आर्थर लाली यह भयावह चित्र खीचते है कि अगर इस देशमे भारतके लाखो लोगोको भर जाने दिया गया तो ट्रान्सवालकी स्थिति बड़ी भयकर हो जायेगी, उसी साँसमें वे केप-कानूनको अपनानेकी वकालत भी करते हैं, जिससे भारतीयोका प्रवास समाप्तप्राय हो जायेगा। १० लाख गोरोकी आबादीमें, जो सतत बढ रही है, कुछ हजार भारतीयोको अपमानजनक पाबन्दियोमे रखना ऐसा कृत्य है जिसे किसी ब्रिटिश उपनिवेशमे पल-भर भी बरदाश्त नही किया जाना चाहिए। सर आर्थर लालीने अपनी प्रातिनिधिक हैसियतसे इस तरहके कानूनकी वकालत करना उचित माना है, यह स्थिति एक अशुभ महत्त्वकी सूचना देनेवाली है। आज भारतीय प्रश्नके बारेमे जो-कुछ हुआ है वह कल किसी और प्रश्नके सम्बन्धमें भी हो सकता है। भविष्यके लिए चिन्ताका विषय वह सिद्धान्त होना चाहिए, जो इसकी तहमे निहित है। अगर परमश्रेष्ठके विचार ब्रिटिश शासकोको जरा भी प्रिय है तो हमारी विनम्र सम्मतिमे वे उन सर्वोच्च ब्रिटिश परम्पराओसे पतित होनेकी निशानी है, जिनके कारण साम्राज्यका वर्तमान रूप बना है। और जिस समय साम्राज्य-भरमे तथाकथित "साम्राज्य-भावना" लहरा रही है उसी समय शायद उसके अवच्छेदके बीज भी बोये जा रहे है। उपनिवेशियोके साथ नाममात्रका सम्बन्ध रखनेके लिए

१. देखिए "प्रार्थनापत्र: उपनिवेश-सचिवको", "सितम्बर ३, १९०४ से पूर्व"।

इंग्लैंडको अपने तमाम उदात्त और उत्तम आदर्शोंका बलिदान करना पड रहा है। ब्रिटिश भारतीय संघका आवेदनपत्र देखते है तो हम वह अकाट्य मालूम होता है और यदि सरकार उसमें किये गये प्रस्तावोको मान लेती है तो इस कठिन प्रश्नका हल बहुत ही आसान हो जाता है। हमारे खयालसे हालके परीक्षात्मक मुकदमेमे दिये गये निर्णयसे जो लाभ हुआ है सघ उसको अपना आधार बना सकता था, लेकिन चूँकि जीवन स्वय समझौतोका समूह है और राजीनामेकी नीति किसी अन्य नीतिसे अच्छी होती है, इसलिए सघने प्रवासी और विक्रेता-परवानोके मामलेमे भी बहुत ही माकूल और समझौतेके सुझाव पेश करके अच्छा ही किया है। परन्तु एक बात याद रखनी चाहिए कि वह उनकी ऐसी न्यूनतम माँग है — और होनी भी चाहिए — जिसमे और कमीकी कोई गुजाइश नही है। यही स्वीकार करनेकी भारतीय समाजसे आशा रखी जा सकती है। हम शिक्षाकी कसौटीमे भारतीय भाषाओके निषेधके विचारसे कभी सहमत नही हो सके है। यह निषेध अकारण है और यह बात हमेशा खटकती रहेगी कि लॉर्ड मिलनर और सर आर्थर लाली दोनोने श्री लिटिलटनके भारतीय भाषाओको मान्यता देनेके सर्वथा न्याय-पूर्ण प्रस्तावको नही माना। किन्तु शान्तिको खरीदनेके लिए और यह दिखानेके लिए कि भारतीय अत्यन्त विकट परिस्थितियोमे भी कितने विवेकशील है — जैसे कि वे हमेशा ही रहे है — ब्रिटिश भारतीय सघ केपके ढगका प्रवासी कानून स्वीकार करने और नये विक्रेता-परवानोके मामलेमे सर्वोच्च न्यायालयमे अपील करनेका अधिकार रख कर पूरा नियन्त्रण सौपनेको तैयार है। एक तरहसे इसका अर्थ भारतीयो द्वारा अपना व्यापारका अधिकार छोड़ना है। फिर भी सघने बिलकुल यही किया है। इसके बदलेमे सघ केवल अचल सम्पत्तिके स्वामित्वका अधिकार माँगता है। फिर भी हमे निश्चय नही है कि यह कोई नई बात होगी, क्योकि यह एक प्रश्न है कि १८८५ के कानून ३ मे स्वामित्व-सम्बन्धी धारापर प्रहार किया जा सकता है या नही। सघने जबर-दस्ती अलग बसानेके सिद्धान्तका भी विरोध किया है और जैसा कि सर्वोच्च न्यायालयने सिद्ध कर दिया है, १८८५ के कानून ३ के अनुसार कोई जोर-जब्र वाछनीय नही है। इस हकीकतके होते हुए यदि सर आर्थर लाली अपने प्रस्तावोको "रियायते" बताये और फिर श्री लिटिलटनसे कहे कि उनपर अमल करानेमे उन्हे कठिनाई हो सकती है तो यह दरअसल अजीब बात है। असल बात यह है कि परमश्रेष्ठका प्रत्येक प्रस्ताव ब्रिटिश भारतीयोकी स्वतन्त्रतापर नया प्रतिबन्ध है। परन्तु यदि ब्रिटिश भारतीयसघके आवेदनपत्रपर न्यायपूर्ण भावनासे विचार किया जाये तो सारा विवाद कमसे-कम फिलहाल तो खतम हो सकता है और इग्लैंडसे कोई खर्चीला आयोग भेजना गैर-जरूरी किया जा सकता है। अक्सर यह दलील दी जाती है कि स्वशासनभोगी उपनिवेशोको कुछ कानून बनानेकी इजाजत दी गई है, यह देखते हुए ट्रान्सवालको भी उसी आधारपर रख दिया जाये। इसलिए हम सयोगवश इस हकीकतका जिक्र कर सकते है कि ब्रिटिश सरकार कही भी ऐसे असाधारण प्रस्तावोसे सहमत नही हुई है जैसे सर आर्थर लालीने रखे है। यह याद होगा कि आस्ट्रेलियाने एशियाइयोपर लागू करनेके लिए एक प्रवासी-कानून पास किया था। उस कानूनको विशेषाधिकार द्वारा रद करा दिया गया और उस उपनिवेशको नेटालके ढगका एक सामान्य कानून पास करना पड़ा। स्वय नेटालने जब एशियाइयोके विरुद्ध विशेष कानून पास करनेका प्रयत्न किया तब उसे भी अपने प्रयत्नमे असफलता ही हुई थी। इसलिए यदि सर आर्थर लाली द्वारा प्रस्तावित कानून मजूर किया ही गया तो ब्रिटिश अधिकारियोकी तरफसे यह एक बिलकुल नये मार्गका अनुसरण होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०-९-१९०४

२०७. उत्पीड़न-यंत्र

जहाँ ट्रान्सवालमें प्रवेश करनेवाले भारतीयोपर परवाने-सम्बन्धी प्रतिवन्ध दिनपर-दिन कठोर होते जा रहे है, वहाँ यूरोपीयोंको अधिकाधिक सुविधाएँ दी जा रही है, फिर चाहे वे ब्रिटिश प्रजाजन हो या अन्य कोई। अब ऐसे अधिकारी नियुक्त किये गये हैं जो ज्यो ही जहाज आयेंगे त्यो ही उनमें चले जाया करेंगे ताकि जो यूरोपीय ट्रान्सवाल जाना चाहते हो उन्हे प्रतीक्षा किये बिना परवाने मिल सके। इसके विपरीत भारतीय चाहे केपमें हो, या नेटालमें या डेलागोआ-बेमें, प्लेगके आधारपर ट्रान्सवालमें प्रवेश करनेसे रोके जा रहे हैं। और यह सब होता है, इसका पूरा प्रमाण देनेपर भी कि वे शरणार्थी हैं। सबसे स्पष्ट उदाहरण, जो हमारी जानकारीमे आया है, किम्बरले और डर्बनसे आनेवाले फुटबॉलके भारतीय खिलाड़ी-दलोसे सम्बन्धित है। हम यह सब पत्र-व्यवहार अन्यत्र छाप रहे है। उसको पढ़नेसे सारी वात स्वत ही स्पष्ट हो जाती है। कार्यवाहक मुख्य सचिव यह नही समझ सके कि ब्रिटिश भारतीय खिलाडियोको अस्थायी परवाने क्यो दिये जाये? यह स्मरणीय है कि ये सब प्रतिष्ठित लोग है और यूरोपीय ढगसे रहनेका कोई महत्त्व हो तो यूरोपीय ढग से रहते हैं। फुटवॉल एक प्रधान अंग्रेजी खेल है और हम समझते है कि श्री रॉबिन्सनके लिए उसका उल्लेख व्यंग्यपूर्वक करना उचित नही था, जैसा कि उन्होने इस पत्र-व्यवहारमें किया है। भारतीय खिलाड़ियोको श्री सी० वर्ड, मुख्य उपसचिवके प्रति बहुत ही कृतज्ञ होना चाहिए, क्योकि उन्होने परवाना-सचिवको एक आवश्यक तार भेजा था। किन्तु उसपर भी ट्रान्सवालके अधिकारियोने कोई शिष्टता नही दिखाई। श्री बर्ड बहुत दृढ़ थे। उन्होने कहा: "नेटालके खिलाडी-दलमें सभी प्रतिष्ठित लोग है जो मुख्यत. मुन्शियोका काम करते है और इनको जोहानिसबर्ग जाने देनेमे उससे अधिक खतरा मुझे दिखाई नही देता, जितना और किसीसे हो सकता है।" इससे ज्यादा कडाईसे कुछ और कहना सम्भव न था। और चूँकि यह सिफारिश जिम्मेदार हलकोसे हुई थी, इसलिए इसपर ध्यान देना उचित था। परन्तु कदाचित् ट्रान्सवालमें लोग मध्ययुगमें रह रहे है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०-९-१९०४

२०८. पाँचेफस्ट्रूमके भारतीय

पाँचेफस्ट्रूममे जो थोड़ेसे भारतीय दूकानदार अपनी रोजी कमा रहे है उनसे इस नगरके लोग बहुत परेशान मालूम होते है। पाँचेफस्ट्रूमसे प्रत्येक भारतीयको निकाल बाहर करनेकी उत्सुकतामे वे *आतकका आश्रय* ले रहे है। अभी उस दिन एक भारतीय वस्तु-भण्डारमे आग लग गई थी। खयाल किया जाता है कि वह किसी आग लगानेवालेका काम था। अखबारोका कहना है कि भारतीय डर गये है और बीमा-कम्पनियाँ भारतीयोके जोखिमके बीमे स्वीकार नही करती। भारतीय भण्डारोके पडोसमे रहनेवाले गोरे लोग भी बेचैन हो गये है। खुशीकी बात है कि पुलिस सतर्क मालूम होती है और इस बारेमे बहुत चिन्ता करनेका कोई कारण दिखाई नही देता। परन्तु हमे यह देखकर दु ख होता है कि पाँचेफस्ट्रूम नगर-परिषद भी बहावमे बह गई है और उसने ऐसा प्रस्ताव पास किया है, जो एक प्रतिनिधि-सस्थाके अयोग्य है। नगर-परिषदकी स्वास्थ्य-समितिने निम्नलिखित सिफारिश की है.

> इस बातको देखते हुए कि सरकार एशियाइयोको *बाजारोंमें* अलग बसानेकी कोई कार्रवाई नहीं कर रही है, यह परिषद नगरके तमाम एशियाइयोंको आज्ञा देती है कि वे रातको भारतीय बस्तीमें चले जाया करे और वहीं रहा करें। उक्त एशियाई व्यापारियोंको स्थानीय पत्रोंमें विज्ञापनके रूपमें एक महीनेकी सूचना दी जाये और इस अवधिमें वे परिषदके आदेशका पालन करें। और इसके अतिरिक्त अगर आवश्यक सिद्ध हो तो परिषदके प्रस्तावपर अमल करानेमें मदद देनेके लिए ५० गोरे पुलिस सिपाही भरती किये जायें और परिषद स्थानीय मजिस्ट्रेटसे आग्रहपूर्वक अनुरोध करती है कि वे इस मामलेमें भरसक सहायता दें।

जैसा कि हम पिछले अंकोमे पहले ही बता चुके है, १८८६ मे सशोधित १८८५ के कानून ३ मे ब्रिटिश भारतीयोको बलपूर्वक अलग बसानेकी कोई सत्ता नही दी गई है। इसलिए यदि उपर्युक्त प्रस्तावपर अमल करानेका प्रयत्न किया गया तो परिषदका यह काम बिलकुल गैर-कानूनी होगा। मुख्य-न्यायाधीशने *हबिब मोटन* बनाम *सरकारके* परीक्षात्मक मुकदमेमे इस धाराके सम्बन्धमे अपने फैसलेमे जो राय जाहिर की है उसके होते हुए पाँचेफस्ट्रूमकी नगर-परिषदके सदस्योने यह सुझाव देना कैसे ठीक समझा कि भारतीयोको शायद जबरदस्ती अलग बस्तीमे रखवानेके लिए ५० विशेष गोरे पुलिस सिपाही भरती किये जाये — यह हमारी समझमे नही आता। हम आशा ही रख सकते है कि सरकार उक्त प्रस्तावपर ध्यान देगी और ऐसी किसी भी कार्रवाईके विरुद्ध नगर-परिषदको सचेत कर देगी। भारतीयोको कानून द्वारा पूरा अधिकार है कि वे जहाँ भी चाहे वहाँ व्यापार करे और रहे, और उन्हे यह भी हक है कि वे उस अधिकारके अमलमे हर तरहकी हिंसासे बचावकी आशा रखें, फिर भले ही वह हिंसा पाँचेफस्ट्रूमकी नगर-परिषद जैसी कानून द्वारा निर्मित सस्थाकी तरफसे ही क्यो न हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०-९-१९०४

२०९. केपके भारतीय

शुभाशा अन्तरीप् (केप ऑफ गुड्होप) के पिछले ३० अगस्तके सरकारी *गजटमें*, उपनिवेशके स्थानापन्न प्रशासक परमश्रेष्ठ मेजर जनरल एडमंड स्मिथ ब्रुककी जारी की हुई निम्नलिखित घोषणा छपी है:

> मैं इस घोषणा द्वारा यह घोषित और प्रकट करता हूँ कि इसकी तारीखसे किसी अरब, भारतीय या और अन्य एशियाईका, चाहे वह किसी भी राष्ट्रका क्यों न हो, पूर्वोक्त इलाकों (अर्थात् गीलेकालैंड सहित ट्रान्सकाई; प्रवासी टैम्बूलैंड और बॉम्वानालैंड सहित टैम्बूलैंड; पूर्वी और पश्चिमी भागों सहित पॉडोलैंड; पोर्ट सेंट जॉन्स; पूर्व ग्रीक्वालैंड) – में से किसीमें भी प्रवेश करना तबतक कानून-सम्मत नहीं होगा जबतक कि उसको स्थानीय मजिस्ट्रेटका हस्ताक्षरयुक्त विशेष परवाना या आदेश न मिला हो और उसपर ट्रान्सकाई इलाकेके मुख्य मजिस्ट्रेटकी मंजूरी न हो। कोई ऐसा व्यक्ति किसी ऐसे परवानेके बिना उक्त इलाकोंमें से किसीमें प्रवेश करेगा तो वह अपराध सिद्ध होनेपर जुर्मानेका, जो २० शिलिंगसे ज्यादा न होगा, या जुर्माना न देनेकी सूरतमें सादी या कड़ी कैदकी सजाका पात्र होगा, जिसकी अवधि एक महीनेसे अधिक नहीं होगी और उसे उस इलाकेसे तुरन्त चले जानेका हुक्म दिया जायेगा। और यदि ऐसा व्यक्ति ऐसा हुक्म नहीं मानेगा तो वह कसूर साबित होनेपर और जुर्मानेका देनदार होगा जो २० शिलिंगसे अधिक नहीं होगा और ऐसे इलाकेकी सीमासे तुरन्त हटा दिया जायेगा।

हम नही जानते कि भारतीयोंने केप उपनिवेशमे यह प्रतिबन्ध लगाने लायक क्या काम कर डाला है। सही बात यह है कि केपमे भारतीयोंकी आबादी थोड़ी है और केपके राजनीतिज्ञोने अक्सर यह शेखी बघारी है कि उन्होंने उस उपनिवेशमें जो कुछ किया है वह रंगद्वेषसे प्रेरित होकर नही। श्री स्क्रीनरने वतनी मताधिकारके प्रश्नपर *ब्लूमफ़ॉटीन पोस्टको* जो उत्तर लिखा है, अभी तो उसकी स्याही भी नही सूखी है, फिर भी हमे केपके सरकारी *गजटमें* उक्त घोषणा पढ़नेको मिल गई है। श्री स्क्रीनर कहते हैं कि केपके लोग इस बातके लिए बिलकुल राजी हैं कि इस देशके वतनियोको मताधिकार प्राप्त हो और उसके लिए व्यक्तिकी योग्यता उसकी चमड़ीके रंगसे नहीं, परन्तु उसकी सभ्यताकी मात्रासे परखी जाये। यदि यह सच है तो केपके मातहत इलाकोमें भारतीयोंके प्रवेशकी यह मनाही समझमें नही आती। अगर केपवासी भारतीयोके लिए केपमे रहना जुर्म नही है तो उनके लिए उसके मातहत इलाकोंमें प्रवेश करना क्यो जुर्म होना चाहिए? बेशक ऐसी विशेष परिस्थितियोकी कल्पना की जा सकती है जिनमे ऐसा व्यवहार उचित समझा जाये; परन्तु निश्चय ही घोषणामें इस बारेमें बिलकुल कुछ नही कहा गया है। इसलिए हमारा यह नतीजा निकालना बिलकुल ठीक ही है कि यह मनाही केवल भारतीयोके विरुद्ध की गई है। हम इसे भारतीय समाजका विचारहीन अपमान समझते हैं और वह केप प्रायद्वीपके द्वार नये प्रवासी भारतीयोंके लिए लगभग बन्द कर देनेसे गम्भीरतर हो गया है। दरअसल, ब्रिटिश प्रजाजनोके नाते भारतीयोंके अधिकारोंपर किये गये इस ताजा हमलेमें उस रंग-विरोधी लहरकी तीव्र गन्ध है, जो इस समय दक्षिण आफ्रिकामे चल रही है और जिसका प्रारम्भ पिछले साल ट्रान्सवाल-सरकारकी १९०३ की

बाजार-सूचना ३५६ से हुआ था। हमें आशा है कि केपके ब्रिटिश भारतीयोंने इस घोषणाका विरोध किया होगा और वे तबतक चैन नही लेगें जबतक यह रद न कर दी जाये या किसी असाधारण परस्थितिके आधारपर उचित सिद्ध न कर दी जाये। ऐसी घोषणाएँ कुल मिलाकर इतनी हुई हैं कि हम उनसे ऊब गये है और उनके विरुद्ध कोई कारगर उपाय भी दिखाई नही देता। अगर निर्धारित मार्गसे — जैसे विधान-परिषद द्वारा — कानून पास करनेका सवाल होता तो अधिकार-पत्रके अधीन ब्रिटिश सरकारकी मजूरी लेनी पडती; परन्तु जैसा इस मामलेमे हुआ है, घोषणा द्वारा कानून बनानेपर ऐसा कोई नियन्त्रण नही है। गवर्नर विधान-मण्डलकी सहायताके बिना कारवाई करता है और उनके आदेशोमे कानूनकी शक्ति होती है। ये घोषणाएँ जारी होनेसे पहले ब्रिटिश सरकार (डाउनिंग स्ट्रीट) के अधिकारियोके सामने पेश नही की जाती। इसलिये इसका अर्थ यह है कि कभी-कभी सम्राटसे सीधे नियन्त्रित इलाकोमे भारतीयोके उत्पीडनके यन्त्रको कसना जितना आसान होता है उतना वहाँ नही, जहाँ उचित रूपसे निर्मित कानूनी सगठन है। यह एक सवाल है। हम इसे इग्लैडके उन राजनीतिज्ञोके विचारार्थ प्रस्तुत करते है, जिन्हे भारतके बाहर ब्रिटिश भारतीयोके दर्जेके साम्राज्यीय सवालमे दिलचस्पी है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७-९-१९०४

२१०. स्वर्गीय श्री प्रिस्क

श्री प्रिस्ककी मृत्युने हमारे बीचसे एक विनम्र सत्पुरुष और बहुत ही योग्य पत्रकारको उठा लिया है। परलोकगत महानुभावने अपने विशिष्ट क्षेत्रमे शान्तिपूर्ण और निरभिमान तरीकेसे समाजके लिए बहुत-कुछ किया था। पत्रकारका जीवन कभी सुख-चैनका जीवन नही होता। उसपर वे जिम्मेदारियाँ होती है जिनका शायद जनताको समुचित खयाल भी नही होता। एक तरफ तो उसे अपने मालिकोको खुश रखना पड़ता है और दूसरी ओर लोकमतका प्रतिनिधित्व करना होता है। ऐसा करनेमे उसे बडा त्याग करना पड सकता है। उसको अक्सर परस्पर-विरोधी स्वार्थोसे निबटना पडता है और उसके सामने जो मामले आते है उनपर जनताके दृष्टिकोणसे ही नही, बल्कि अपने दृष्किोणसे भी विचार करना पडता है और जब उसके अपने ही शुद्ध अन्त करणसे मान्य विचार किसी खास मामलेमे लोकमतके विपरीत होते है तब स्थिति बडी नाजुक हो जाती है। किन्तु श्री प्रिस्क पत्रकारोके रास्तेमे आनेवाली सभी विघ्न-बाधाओको सुरक्षित रूपसे पार कर जाते थे और अपना कर्तव्य दृढतासे पालते थे। हमें अच्छी तरह याद है कि जब नेटालमे भारतीय अकाल-पीडितोके लिए चन्दा शुरू किया गया था तब उन्होने किस उत्साहवर्धक ढगसे हमारी सहायता की थी। हमारे अनेक पाठकोको उन विशेष व्यग्य-चित्रोका स्मरण होगा जो *नेटाल मर्क्युरीमें* परिशिष्टाकके रूपमे निकाले गये थे और यह भी स्मरण होगा कि उस अखबारमे अकाल-सम्बन्धी साहित्यको कितना अधिक स्थान दिया गया था। हम श्री प्रिस्कके परिवारके प्रति अपनी आदरपूर्ण समवेदना प्रकट करते है और आशा रखते है कि उनका कार्य योग्य व्यक्तिको सौपा जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७-९-१९०४

२११. पीटर्सबर्गके भारतीय

हमारे सहयोगी *स्टारमें* यह सूचना छपी है कि "एशियाई प्रश्नपर कार्रवाई करनेके लिए पीटर्सबर्गमे एक श्वेत-सघ स्थापित किया गया है। इसकी कार्य समितिमे तीन नगर-परिषदके प्रतिनिधि है, चार स्थानीय बोअर-वीरीनिगिग (फ्रेनिखन) के और चार अन्य प्रमुख नागरिक है। और यह कि नगर-परिषदकी बैठकमे यह निर्णय किया गया है कि नगरपालिकाओको काम-काजके घटे नियमित करनेका अधिकार दिलानेके सम्बन्धमें सरकारसे प्रार्थना की जाये। पीटर्सबर्ग जैसे रंगविद्वेषके अड्डेमे श्वेत-सघ बनानेका विचार पैदा हुआ, इसपर हमें कोई आश्चर्य नही। हम इतना ही कह सकते है कि इन प्रवृत्तियोके कारण हमारी समझमें नही आते, क्योकि लॉर्ड मिलनरने अत्यन्त सख्तीसे उन थोडेसे भारतीय शरणार्थियोका प्रवेश भी रोक दिया है जिन्हे हर महीने अपने घरोको लौट आनेकी इजाजत थी। जैसा कि हमारे पाठकोने अवश्य देखा होगा, परमश्रेष्ठने तो एक भारतीय फुटबॉल खिलाडी-दलको ट्रान्सवालकी पवित्र सीमामें प्रवेश करनेकी अस्थायी अनुमति भी नही दी। तब यदि श्वेत-सघ पॉचेफस्ट्रूमके पहरेदार-सघकी तरह ट्रान्सवालवासी भारतीयोको आतंकित करना नही चाहते तो ये अपने अस्तित्वका औचित्य सिद्ध करनेके लिए और क्या करेगे? नगर-परिषदकी काम-काज बन्द करनेके घटोको नियमित करनेकी प्रस्तावित कार्रवाईके साथ हमारी सहानुभूति है। हमें मालूम हुआ है कि पॉचेफस्ट्रूमके भारतीय इस मामलेमे अगुआ बने है और उन्होने फैसला किया है कि उनकी दूकाने उसी समय बन्द की जायेगी जिस समय यूरोपीय दूकानें बन्द होती है। हम इतनी ही आशा रख सकते है कि पीटर्सबर्गके भारतीय अपने पॉचेफस्ट्रूमके भाइयो द्वारा उपस्थित किये गये बढिया उदाहरणका अनुसरण करेगे और नगर-परिषदके लिए ऐसे कोई उपनियम बनाना अनावश्यक कर देगे। उनके लिए ऐसी कार्रवाई शोभास्पद और सामयिक होगी और शायद इससे यह सिद्ध करनेमें बडी सहायता मिलेगी कि वे प्रस्तावित श्वेत-सघके भावी सदस्योकी भावनाओसे यथासभव समझौता करनेके लिये उत्सुक है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७-९-१९०४

२१२. पाँचेफस्ट्रूमके भारतीय

अन्यत्र हम एक प्रशंसनीय पत्र छाप रहे है जो पाँचेफस्ट्रूमके भारतीय संघके मन्त्री श्री अब्दुल रहमानने *ट्रान्सवाल लीडरको* भेजा है। इस पत्रसे स्पष्ट मालूम होता है कि पहरेदार-संघका जोश कितना गलत है और भारतीय लोग गोरोकी इच्छाओकी पूर्ति करनेके लिए किस सीमातक तैयार है। परन्तु उस पत्रका सबसे महत्त्वपूर्ण अश उसमें दी गई यह जानकारी है कि पाँचेफस्ट्रूमके भारतीय व्यापारियोने अपनी दूकाने उसी समय बन्द करनेका फैसला किया है जिस समय यूरोपीय करते है। यह कदम किसी दबावके विना उठाया गया है और हमारा खयाल है कि वह ठीक दिशामें है और दूसरे नगरोके ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोके लिए अनु-करणीय है। असलमे उनका मामला तो वैसे ही बहुत मजबूत है, लेकिन पाँचेफस्ट्रूमके भारतीयोकी इस ताजी कार्रवाईसे उनकी स्थिति और भी मजबूत हो गई है। हमे आशा है कि श्री अब्दुल रहमानने यूरोपीय ब्रिटिश प्रजाजनोसे इस सद्भावके बदलेमे कुछ-न-कुछ सद्भाव दिखानेकी जो प्रार्थना की है उसका समुचित उत्तर मिलेगा, क्योकि हर हालतमे उन्हे भी रक्षाके लिए उसी झडेपर निर्भर रहना है जिसके संरक्षणमे ब्रिटिश भारतीय रहते है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–९–१९०४

२१३. पत्र:-दादाभाई नौरोजीको[१]

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
सितम्बर १९, १९०४

सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी
२२, केनसिंगटन रोड
लन्दन द०-पू०, इग्लैड

प्रिय महोदय,

भारतीय परिस्थितिके बारेमे इस हफ्ते जो सरकारी रिपोर्ट प्राप्त हुई है उसमे मैंने देखा है कि श्री लिटिलटनने भारतीय-*बाजारों*के लिए जगहोके प्रश्नपर जोर दिया है।

आपने देख ही लिया होगा कि सर आर्थर लालीके खरीतेके उत्तरमे दिये गये ब्रिटिश भारतीयोके निवेदनमे[२] यह बात दुहरायी गई है और मामला आँखोसे ओझल न हो जाये

१. दादाभाई नौरोजीने इस पत्रका पूरा पाठ एक पत्रमें उपनिवेश-मन्त्री और भारत-मन्त्रीको भेजा था। (सी० ओ० २९१, खण्ड ७९, इंडीविज्युअल्स-एन और सी० ओ० २९१, खण्ड ७५, इंडिया ऑफिस)।

२. देखिए "प्रार्थनापत्र: उपनिवेश-सचिवको", "(सितम्बर ३, १९०४ के पूर्व)"।

इसलिए मैं इस तथ्यपर फिर जोर देता हूँ कि चुनी गई अधिकतर जगहे, निश्चय ही, व्यापारके अयोग्य हैं। यह वक्तव्य प्रतिष्ठित यूरोपीयोकी बिलकुल स्वतन्त्र साक्षीके बिना नही दिया गया और वे सारी रिपोर्टें परमश्रेष्ठकी सेवामें भेज दी गई है। अगर कही चुनी गई जगहे जरा भी अच्छी है तो केवल क्रूगर्सडार्पमें; इसलिए जिन्हे बाड़े चाहिए थे उन्होने वहाँ बिना किसी जोर-जबरदस्तीके अर्जियाँ दे दी हैं। दूसरे स्थानोमें, जहाँ नयी जगहे तय की गई है, अर्जियाँ लगभग दी ही नही गईं।

तथापि, मुख्य बात तो अनिवार्य पृथक्करणको टालनेकी है। जहाँतक *बाजारोंके* सिद्धान्तका सवाल है, उपयुक्त स्थानोमे *बाजारोंके* लिए जगह निश्चित करके लोगोको जमीनें लेने पर राजी किया जा सकता है। और समस्या अपने आप हल हो जायेगी।

मुझे उम्मीद है कि आप केपके प्रशासक (ऐडमिनिस्ट्रेटर) की घोषणापर, जो बिना अनुमतिपत्रके ट्रान्सवाअन क्षेत्रमे भारतीयोके प्रवेशका निषेध करती है, *इंडियन ओपिनियनका* अग्रलेख देखेंगे। यह एक नया प्रतिबन्ध है जिसका कारण समझमे आना कठिन है। सूचीमें जिन क्षेत्रोका उल्लेख है वे केपके मातहत हैं।

आपका सच्चा,

मो० क० गांधी

टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० २२६१) से।

२१४. कुछ और बातें : सर आर्थर लालीके खरीतेके विषयमें

लन्दनसे इस सप्ताह प्राप्त सरकारी रिपोर्टसे बहुत स्पष्ट मालूम होता है कि परमश्रेष्ठने ब्रिटिश भारतीयोकी स्थितिके बारेमे कैसा अन्यायपूर्ण रवैया इख्तियार किया है। सर मचरजीने दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोको घटिया दर्जेके एशियाई बतानेपर रोष प्रकट किया है। इसलिए उत्तरमे परमश्रेष्ठने अपने खरीतेके साथ वह पत्रव्यवहार जोड दिया है जो प्लेगके दिनोमें रैंड *डेली मेलमें* छपा था और जिसपर कुछ भारतीयोने हस्ताक्षर किये थे। जब भारतीय बस्तीके चारो तरफ घेरा डाल दिया गया तब इसमें कोई आश्चर्य नही है कि बस्तीके कुछ भारतीयोने अपने रहन-सहनको बाकी लोगोके रहन-सहनसे ज्यादा अच्छा समझकर यह सोचा कि बाकी लोगोपर कीचड़ उछालकर वे अपने लिये कुछ फायदा हासिल कर लेंगे और इसलिए उक्त पत्र लिखा। परन्तु परमश्रेष्ठ जो सही स्थिति स्वय जानते हैं, जानकारीका उपयोग करके भयभीत पत्रप्रेषकोकी अतिशयोक्तियाँ ठीक कर सकते थे। परमश्रेष्ठको मालूम होना चाहिए था कि पत्रमे उन भारतीयोका उल्लेख था जो पृथक बस्तीमे रह रहे थे और जो आम तौरपर बस्तीसे बाहर रहनेवालोसे बेशक नीचे दर्जेके हैं। उन्हे मालूम होना चाहिए था कि वे सारे भारतीय समाजके प्रतिनिधि नही थे और न हो ही सकते थे; और स्वय पत्र-व्यवहारसे प्रकट होता है कि पत्र लिखनेवालोको भी, जो पृथक् बस्तीमें रह रहे थे, निम्नतम वर्गके कुछ भारतीयोकी श्रेणीमें रखे जाने और पृथक् बस्तीमें घेर दिये जानेके विचारपर रोष था। इस दृष्टिकोणसे उनका खयाल बिलकुल ठीक था क्योकि हमने उस बस्तीमे अच्छे ढगसे रहनेवाले कई लोगोको देखा है और हम उन्हे जानते हैं। उनमे से कुछके पास खासे अच्छे बने हुए पक्के मकान हैं। इसलिए परमश्रेष्ठके प्रति उचित आदर रखते हुए भी यह कहा जा सकता है कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोको "घटिया दर्जेके एशियाई" बताना "दुर्भाग्यपूर्ण" है।

हमारे सहयोगी *नेटाल ऐडवर्टाइज़रने* सर आर्थर लालीके नेटाल-सम्बन्धी इस वर्णनका खण्डन किया है कि "ज्यो ही कोई नेटालकी सीमाको लाघता है, उसका यह खयाल मिट जाता है कि वह एक यूरोपीय देशमे ही यात्रा कर रहा है।" हमारा सहयोगी इसे "अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन" बताता है और हम भी उसके इस भावको प्रतिध्वनित किये बिना नही रह सकते। पाइनटाउन और चार्ल्सटाउनके बीचके रेलवे स्टेशनोके सिवा आपको मुख्य लाइनपर बहुत थोड़े भारतीय चेहरे दिखाई देगे और अगर आपको स्टेशनोपर कुछ कुली दिखाई देते है तो इसका कारण यह है कि रेलवेके अधिकारियोको गिरमिटिया भारतीय मजदूर रखनेमे सुभीता रहता है। इसलिए यदि यह कोई बुराई है तो उपनिवेशने इसे स्वय ही स्वीकार किया है और परम-श्रेष्ठके तिरस्कार करने पर भी वह ऐसा करता रहेगा।

दादाभाई नौरोजीको जो यह बयान भेजा गया था कि "एशियाई-*बाजारोंकी* जगहे व्यापारके लिए बिलकुल निकम्मी है' उसपर श्री लिटिलटनने निश्चित सम्मति माँगी थी। परमश्रेष्ठने इस मामलेको कुछ ही पक्तियोमे इस तरह टाल दिया है·

> **ब्रिटिश भारतीय संघका कहना है कि ये जगहें बिलकुल अनुपयुक्त हैं। परन्तु मेरी रायमें उसने अपना पक्ष प्रस्तुत करनेमें अत्युक्ति की है। नगर निवासियोने जो आपत्तियाँ उठाई हैं वे भी अयुक्तिसंगत हैं। मेरे खयालसे चुनाव अच्छा हुआ है।**

हम कहना चाहते है कि परमश्रेष्ठने अधिकाश नये स्थानोको देखा नही है। ब्रिटिश भारतीय संघने आरोप दुहराया है और कमसे-कम यह बात बहुत अन्यायपूर्ण है कि परमश्रेष्ठ उन स्थानोको देखे बिना ही ऐसा बयान दे जैसा उन्होने दिया है। यह उन प्रत्यक्षदर्शियोकी गवाहीके खिलाफ है जो अपने नगरोके प्रतिष्ठित यूरोपीय व्यापारी या डॉक्टर है और निष्पक्ष निर्णय देनेके लिए सर्वथा अधिकारी है। ये लोग है जिन्होने अधिकाश स्थानोको व्यापारके लिए बिलकुल अयोग्य और सफाईके खयालसे भी प्राय: अनुपयुक्त कहकर निकम्मा करार दिया है। कुछ भी हो, इससे इनकार नही किया जा सकता कि किसी एक उदाहरणमे भी *बाजारोंके* लिए सड़के या मुहल्ले निर्धारित नही किये गये है, बल्कि हर जगह बस्तियाँ अलग कर दी गई है और उन्हे *बाजारोंका* गलत नाम दे दिया गया है।

अगर हमने परमश्रेष्ठके खरीतेपर फिर कुछ विस्तारसे चर्चा की है तो यह दिखानेके लिए ही कि राज्यके प्रधान द्वारा स्थितिके बारेमे पक्षपातपूर्ण रुख इख्तियार कर लेनेके कारण भारतीयोकी स्थिति कितनी विषम हो गई है। अभीतक महत्त्वपूर्ण बातचीत चल रही है। प्रश्नका निर्णय नही हुआ है और हम इस हकीकतपर जोर देना ठीक समझते है कि ब्रिटिश भारतीयोने कभी स्थितिके बारेमे अतिशयोक्ति नही की है और जहाँ-कही उनसे बन पड़ा है उन्होने यूरोपीयोकी भावनाके सामने झुकनेकी रजामन्दी दिखाई है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४-९-१९०४

२१५. पत्र: दादाभाई नौरोजीको

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
सितम्बर २६, १९०४

सेवामें
माननीय श्री दादाभाई नौरोजी
२२, केनसिंगटन रोड
लन्दन द०-पू०, इंग्लैंड

प्रिय महोदय,

मुझे आपके दो पत्र मिले। मैं उनके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ। श्री उमरने भी, आपने जो सलाह अपने पत्रोंमें दी है, मुझे बताई। अबसे जब जरूरत जान पड़ेगी, मैं अपनी खत-किताबत अलग-अलग करनेका प्रयत्न करूँगा। आपके सुझावके मुताबिक निशान लगाकर *इंडियन ओपिनियन* आपके पास सीधा भेजा जाये, ऐसा मैंने श्री नाजरको लिख दिया है। सरकारने लिख भेजा है कि वह ब्रिटिश भारतीय संघके सबसे ताजा निवेदनके मुताबिक विधान बनानेका इरादा नहीं रखती। इससे मालूम होता है कि सरकार अब अपने उद्देश्यकी पूर्तिसे ही सन्तुष्ट नहीं होगी, अर्थात् भविष्यमें होनेवाले भारतीय प्रवासपर प्रतिबंध लगाने और नये अर्जदारोंको परवाना देनेका नियमन करके ही नहीं मान जायेगी। साफ है कि उसका इरादा ब्रिटिश भारतीयोंपर लागू होनेवाले कानून बनानेका सिद्धान्त स्थापित करनेका है। यदि ऐसा हो तो यह बहुत ही भयानक बात है और इससे श्री चेम्बरलेनकी नीति उलट जायेगी। अगर ट्रान्सवालके लिए भेदभावपूर्ण कानून बनानेकी मंजूरी दे दी गई तो केप और नेटाल भी निस्सन्देह उसका अनुसरण करेंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २२६२) से।

२१६. भारतके पितामह

इंडियाका जो अंक पिछली डाकसे प्राप्त हुआ है उसमें हाल ही में ऐम्स्टर्डम अन्त-र्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलनमें किये गये श्री नौरोजीके स्वागतका सुन्दर वर्णन है।

इंडियाका विशेष संवाददाता कहता है:

> अध्यक्ष हर वान कोलने सम्मेलनमें उपस्थित लोगोंसे अनुरोध किया कि वे अपने स्थानोंसे उठकर सम्मान व्यक्त करनेके लिए मौन खड़े हो जायें। उसके बाद एक अद्भुत और अत्यन्त प्रभावोत्पादक दृश्य उपस्थित हुआ। जब श्री दादाभाई नौरोजी धीरे-धीरे चलकर मंचके बीचमें पहुँचे तब वह महान श्रोता-समुदाय, जो उस विशाल भवनमें भरा हुआ था, उनके सम्मुख मौन और नग्नशिर खड़ा हो गया। यद्यपि यह कार्य सीधा-सादा था तथापि जिस गम्भीरता और सर्वसम्मत रूपसे यह किया गया उससे यह अत्यन्त प्रभावशाली बन गया था, खास तौरसे यह स्मरण करते हुए कि यह सम्मान इतनी भिन्न जातियों और राष्ट्रोंके इतने अधिक प्रतिनिधियों द्वारा किया गया था। तब श्री नौरोजी जिन लोगोंके प्रतिनिधि थे उनके प्रति इस प्रकार शोकपूर्ण सम्मान प्रदर्शित करनेके बाद, स्वयं उस प्रतिनिधिके सम्मानमें एक जबरदस्त और उत्साहपूर्ण प्रदर्शन किया गया। उस विशाल श्रोता-समुदायका ध्यान भारतकी जनतासे हटकर श्री दादाभाई नौरोजीके गौरवपूर्ण व्यक्तित्वपर केन्द्रित हो गया। उनके जीवन-भरके प्रयत्नोंके सम्बन्धमें जो-कुछ कहा गया था वह सब श्रोताओंने याद किया और अपने हृदयकी भावना अपनी हर्षध्वनियों, तालियों और स्वागत तथा प्रशंसासूचक नारोंके द्वारा प्रतिध्वनित की। यह अभिनन्दन देरतक और संजीदगीके साथ जारी रहा। जिन लोगोंने अन्तर्राष्ट्रीय एकताके इस महान प्रदर्शनको देखा उन सबपर उसकी अमिट छाप पड़ी। यह एकता एक राष्ट्रसे दूसरे राष्ट्रतक ही नहीं, बल्कि एक महाद्वीपसे दूसरे महाद्वीपतक फैल गई है।

प्रत्येक भारतीयको यह जानकर गर्व होना चाहिए कि श्रद्धेय श्री दादाभाईकी, जिन्हे भारतवासी प्रेमपूर्वक भारतका पितामह कहते हैं, यूरोपके लोग कितनी इज्जत करते हैं। श्री दादाभाईका जन्म ४ सितम्बर १८२५ को हुआ था। पिछले ४ सितम्बरको उनकी उन्यासीवी वर्षगाँठ मनाई गई। भगवान् करे, वे अभी और बहुत वर्ष जीवित रहे और नौजवान पीढीको देशके लिए त्याग और सेवाके कार्योंकी प्रेरणा देते रहे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–१०–१९०४

२१७. ट्रान्सवाल श्वेत-संघ

एक दूसरे स्तम्भमे हम पीटर्सबर्गमें स्थापित ट्रान्सवाल श्वेत-सघकी नियमावली छाप रहे है। उसके उद्देश्य है ·

> **एशियाइयोंके विरुद्ध इस देशके समस्त श्वेत निवासियोंका संयुक्त मोर्चा बनाना, एशियाई व्यापारियोंको परवाने देने या नये करनेका काम नियमित और नियन्त्रित करनेके लिए कानून बनवाना और उन्हें नगरों और देहाती क्षेत्रोंको खाली करने और खास तौरपर अलग किये गये *बाजारोंमें* रहने और व्यापार करनेके लिए मजबूर करना।**

अन्य तीन उद्देश्योका अभिप्राय उन दोनो उद्देश्योकी पूर्ति करना है जो हमने अभी उद्धृत किये है। सघ नाराज होकर शोरगुल-भर मचायेगा। इसके सिवा, उसके सब प्रयत्न व्यर्थ होंगे, क्योंकि देशमें एशियाइयोकी भरमार हो ही नही रही। यह बात दूसरी है कि सघ हजारो चीनी गिरमिटिया गुलामोका, जिनकी देशमे बाढ आ रही है, प्रवेश रोकनेके लिए कुछ उछल-कूद करे। क्योंकि एशियाइयोका, चाहे वे ब्रिटिश प्रजाजन हो या और कोई, स्वतन्त्र प्रवास लॉर्ड मिलनरने कारगर रूपमे रोक दिया है। यहाँतक कि, जिन लोगोने पुरानी हुकूमतको उपनिवेशमे रहनेकी इजाजतके मूल्यके रूपमे ३ पौंडकी रकम चुका दी है उनका प्रवेश भी बन्द कर दिया गया है। जहाँतक परवानोके नियमन और नियन्त्रणका सम्बन्ध है, ब्रिटिश भारतीय सघने स्वय इन दोनो बातोके बारेमे प्रस्ताव किया है। अब रही एशियाइयोको शहरो और देहाती क्षेत्रोसे हटाने और *बाजारोंमें* रहनेके लिए मजबूर करनेकी बात, सो हम यह कल्पना नही कर सकते कि यदि इन महाशयोके हाथोमे परवानोका पूरा नियन्त्रण आ जायेगा तो इसकी गम्भीरतापूर्वक जरूरत पडेगी। यह ध्यान देने लायक बात है कि श्वेत-सघमे पीटर्सबर्गकी नगर-परिषदके प्रतिनिधियोकी बहुत प्रमुखता है। जोहानिसबर्गके पत्रोका कहना है कि ट्रान्सवाल श्वेत-सघकी स्थापनाके साथ-साथ उस प्रार्थनापत्रपर हस्ताक्षर करानेकी तैयारियाँ भी की जा रही है जो पॉचेफस्ट्रूम पहरेदार-सघकी ओरसे भेजा गया है और वह इस पत्रमे पहले ही छप चुका है। मान लीजिए कि उसपर ट्रान्सवालके प्रत्येक बालिग यूरोपीय मर्दके हस्ताक्षर हो जाते है तो क्या इससे जब्तीका प्रस्ताव — और उसका अर्थ इसके सिवा दूसरा कुछ नही है — कानून-सम्मत या न्याय-सगत हो जायेगा? अथवा क्या सम्राटकी सरकारका यह स्पष्ट कर्तव्य नही होगा कि वह इस प्रार्थनापत्रके बावजूद ब्रिटिश भारतीयोके निहित स्वार्थो और अधिकारोकी रक्षा करे?

ब्रिटिश अखबार और ब्रिटिश भारतीयों सम्बन्धी सरकारी रिपोर्ट

उपर्युक्त बातोके बिलकुल खिलाफ सरकारी रिपोर्टपर इग्लैडके अखबारोकी लगभग सर्वसम्मत राय पढकर हर किसीको बडी प्रसन्नता होती है।

> **उन्हें क्रूगर-शासनमें अलग बस्तियोसे बाहर व्यापार करनेका जो अधिकार प्राप्त था, उसको उनसे छीन लेना दुनियाकी नजरोंमें अपने आपको गिरा देना और उन लोगोके प्रति एक अन्यायपूर्ण कृत्यकी मंजूरी देना होगा जिन्हे ट्रान्सवालके गोरे निवासियोंकी तरह ही साम्राज्य-सरकारसे न्यायपूर्ण व्यवहार प्राप्त करनेका हक है।**

यह अनुदार दलीय पत्र *मॉर्निंग पोस्टका* कहना है। पत्र आगे कहता है कि,

लॉर्ड मिलनरके प्रस्तावकी स्वीकृतिसे सम्राट्के ३० करोड़ भारतीय प्रजाजनोंको जिनके अधिकारों और भावनाओंकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, रोष करनेका उचित कारण मिलेगा।

टाइम्सने भी उतना ही जोर दिया है। इसलिए इससे जाहिर होता है कि बाहरका निष्पक्ष लोकमत सर्वथा ब्रिटिश भारतीयोंके पक्षमें है। असलमें ऐसे बहुत कम मामले हैं जिनमें किसी सन्निमित्तके विरुद्ध इतने जोरोंसे सत्ताका प्रयोग किया गया हो और फिर भी विजय न्यायकी हुई हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–१०–१९०४

२१८. पाँचेफस्ट्रूमके अग्निकाण्डका मूल

पाँचेफस्ट्रूमकी भारतीय दूकानमें आग कैसे लगी, यह बतानेके लिए हम *ट्रान्सवाल लीडरसे* यह समाचार देते हैं।

स्पष्ट है कि नगर-पुलिस एक कुली-भण्डारके बरामदेमें हालमें लगी आगके बारेमें परेशान है और व्यापारमण्डलसे कहा गया है कि वह आग लगानेवाले लोगोंसे सम्पत्तिकी रक्षा करनेमें सहायता करे। कप्तान जॉन्सके पत्रमें कहा गया है:

'इस मामलेमें बरामदे, किवाड़ों और दरवाजों पर पैराफीन छिड़ककर उनमें मोमिया दियासलाइयोंसे आग लगानेकी तरकीब काममें लाई गई है।'

पैराफीनके कोई निशान अन्दर नहीं पाये गये हैं और कप्तान जॉन्सको पक्का विश्वास है कि यह प्रयत्न किसी द्वेषी व्यक्तिने बाहरसे किया है। वह व्यक्ति अभीतक मुक्त है और इस मामलेमें अपनी कोशिशोंमें निराश होनेसे अपनी शक्तिका प्रयोग नगरके दूसरे भागोंमें कर सकता है।

पत्रमें आगे कहा गया है:

'इस विचारको ध्यानमें रखते हुए, मैंने रातके पहरेमें पुलिसके सिपाहियोंकी संख्या बढ़ा दी है; परन्तु मेरा सुझाव है कि आप अपने सदस्योंको निजी चौकीदार रखनेकी सलाह दे दें, क्योंकि मेरे पास इतने थोड़े आदमी हैं कि मेरे लिए आग लगानेपर तुले हुए व्यक्तिसे पूरी तरह सुरक्षाका आश्वासन देना असम्भव है।'

इसका यह उत्तर भेज दिया गया था कि गोरे व्यापारियोंकी दूकानोंको कोई खतरा होनेका खयाल नहीं है।

अग्निशामक दलके कप्तान जॉन्स इस सावधानीके लिए समाजकी ओरसे धन्यवादके पात्र हैं, परन्तु व्यापारमण्डलने उस पत्रका, जिसमें उससे निगरानी रखनेका अनुरोध किया गया था, जो जवाब दिया है, उसके बारेमें हम क्या कहें? मण्डल खूब अच्छी तरह जानता है कि गोरे व्यापारियोंकी दूकानोंको कोई खतरा नहीं है और इसलिए उसका खयाल है कि

भारतीय दूकानोमे द्वेषभावपूर्ण इरादोसे आग लगाई जाये तो भी उसके बारेमे दौड़-धूप करना मण्डलका काम नही।

हमें मालूम हुआ है कि पीटर्सबर्गमे भी एक ऐसी ही घटना हुई है। वहाँ एक भारतीय दूकान जला दी गई है। हमारे पास अभीतक पूरे तथ्य नही आ पाये है, परन्तु हम ट्रान्सवाल सरकारका ध्यान इस विचित्र बातकी तरफ खीचना चाहते है कि दोनो स्थानोपर ये घटनाएँ एक साथ हुईं। पॉचेफस्ट्रूममे पहरेदार-सघकी क्रियाशीलताके साथ-साथ एक भारतीय दूकानमे आग लगती है। पीटर्सबर्गमे श्वेत-सघकी रचनाके बाद तुरन्त ही एक भारतीय दूकान जलती है और हमारे खयालसे इन दोनो स्थानोकी यह प्रवृत्ति सर आर्थर लाली और लॉर्ड मिलनरके खरीतोका सीधा परिणाम है। उनसे शरारतियोको असाधारण प्रोत्साहन मिला है।

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, १–१०–१९०४

२१९. ट्रान्सवालके गरम स्नानागार

ट्रान्सवालके वार्मबाथ्स [गरम स्नानागारो]–से एक भाईने हमे गुजरातीमे शिकायत भेजी है कि अधिकारी ब्रिटिश भारतीयोको इस प्रसिद्ध रोग-निवारक जलके उपयोगकी सुविधाएँ नही देते। वह कहता है कि यदि कोई भारतीय उसका उपयोग करना चाहता है तो उसे सिर्फ काफिरोके लिए अलग रखे गये स्नानागारोमे चले जानेका निर्देश कर दिया जाता है। यह मालूम होता है कि उसने भारतीयोके लिए एक स्थान बनानेका प्रस्ताव रखा था, लेकिन उसका स्वागत नही किया गया। हमें विश्वास है कि अगर हमारे सवाददाताके कथनमे कुछ भी सचाई है तो सरकार इस कठिनाईका तुरन्त उपाय करेगी और जो भारतीय इस जलका उपयोग करना चाहें उनको उचित सुविधा प्रदान करेगी।

हम ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय सघका ध्यान इस पत्रकी ओर आकर्षित करते है।

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, १–१०–१९०४

२२०. केपके भारतीय

हम एक अन्य स्तम्भमे केप-सरकार द्वारा केप टाउनके ब्रिटिश भारतीय सघके मन्त्री श्री ए० कादिरको लिखित पत्र छापते है। यह उस शिकायतके सम्बन्धमे है जो सघने प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके अमलके बारेमे की थी। पत्र काफी शिष्टतापूर्ण है, परन्तु उसके पक्षमे इससे अधिक कुछ नही कहा जा सकता। सरकारने एक भी महत्त्वपूर्ण बातमे कोई रियायत नही दी है और उसी कानूनकी आड ली है जिसके विरुद्ध राहत माँगी गई थी। सघने एक बहुत ही युक्त प्रार्थना की थी कि स्थानीय भारतीय व्यापारियोको अपने नौकर भारत लौट जानेपर बदलेमें दूसरे नौकर भारतसे लानेकी कुछ सुविधा दी जाये। उत्तर यह दिया गया है कि ऐसा नौकर, यदि कोई यूरोपीय भाषा नही जानता तो, उपनिवेशमे प्रविष्ट नही हो सकता। ऐसा ही उत्तर उपनिवेशमे बसे हुए व्यक्तियोको उनके नाबालिग भाइयोके सम्बन्धमें दिया गया है, परन्तु उत्तरमें प्रश्नको केवल टाला ही गया है। जैसा कि पत्रके प्रारम्भिक

अनुच्छेदमे कहा गया है, [यदि सरकार वास्तवमें इस वातके लिए उत्सुक है कि "कानूनका अमल इस तरह हो जिससे किसी व्यक्ति या समाजके किसी विशेष समूहको, चाहे वह किसी भी वर्ग, रग या धर्मका हो, अनावश्यक कष्ट न हो" तो सरकारको वांछित दिशामे राहत देनेकी काफी सत्ता प्राप्त है।] केपके कानूनकी एक धारामें विशेष छूटकी गुजाइश रखी गई है और निश्चय ही हमारा यह विचार है कि अगर यहाँ वसे हुए व्यापारियोका कुछ भी खयाल किया जाये तो उन्हे वाहरसे नौकर लानेका हक होना चाहिए। नौकरोको किसी यूरोपीय भापामे लिखना आता हो या न आता हो, उन्हे प्रतिवन्धोके साथ और नागरिकताके पूरे अधिकार दिये विना उपनिवेशमे प्रवेशकी इजाजत दी जा सकती है। परन्तु यदि पूरा निपेध लागू किया जाता है तो उसका यह अर्थ होता है कि यहाँ वसे हुए भारतीयोकी स्थिति दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक विपम होती जायेगी और चूँकि देशी नौकर मिलना वन्द हो जायेगा, जैसा कुछ समयमे होना निश्चित है, हम आशा करते है कि ब्रिटिश भारतीय सघके मन्त्री इस मामलेको तवतक न छोडेंगे जवतक पूरा न्याय नही किया जाता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–१०–१९०४

२२१. एक अच्छा उदाहरण

हम श्री उमर हाजी आमद झवेरीका हार्दिक स्वागत करते है जो देशसे लम्बे अरसेतक दूर रहने और यूरोप तथा अमेरिकाके लम्बे भ्रमणके वाद लौटे है। हमारे खयालसे श्री उमरने इन महाद्वीपोका दौरा करके वहुत वुद्धिमानी की है। हमारे व्यापारी इन देशोमे जितना अधिक जायेंगे, वे व्यापार और जीवनके दूसरे क्षेत्रोमे उतनी ही अधिक सफलता प्राप्त कर सकेंगे। केवल तफरीह करनेके लिए नही, बल्कि ज्ञानप्राप्त करने और विचारोको उदात्त वनानेके लिए यूरोप और अमेरिकाकी यात्रा करनेके वाद, मनुष्य अनेक कठिनाइयोका सामना कर सकता है, खास तौरसे ऐसी कठिनाइयोका जैसी दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोके सामने दरपेश है। और श्री उमरने इस वारेमें दूसरे व्यापारियोके लिए अनुकरणीय उदाहरण उपस्थित किया है। हमे आशा है, श्री उमर अपनी यात्रामे प्राप्त ज्ञानका पूरा उपयोग करेंगे और, जहाँ भी जरूरत होगी, उसपर अमल करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–१०–१९०४

२२२. एक बेअंग्रेजियत अंग्रेज मजिस्ट्रेट

एक विश्व-यात्री, जो अपनेको "एक अग्रेज मजिस्ट्रेट" कहते है, नेटालमे भ्रमण कर रहे है। उन्होने *नेटाल मर्क्युरीके* द्वारा जनताके सामने अपने सस्मरण पेश किये है। प्रशसात्मक स्वरमे डर्बनका वर्णन करनेके बाद "एक अग्रेज मजिस्ट्रेट" कहते है .

> लेकिन इसके बावजूद अपनी दृष्टिसे देखनेपर डर्बनकी जानकारीके साथ-साथ मुझे एक-दो खेदजनक बातोंकी जानकारी भी हुई है। इस गोरोंके शहरमें भारतीयों और अरबोंको इतना प्रमुख स्थान कैसे प्राप्त हो गया? अवश्य ही वे हमारी तरह सम्राटके प्रजाजन हैं, परन्तु फिर भी गोरा गोरा ही है और काला काला ही। कह नहीं सकता, यह कहानी है या सत्य — किन्तु मुझे बताया गया है कि डर्बनके एक अत्यन्त भव्य भण्डारका मालिक अपने कोनेपर स्थित एक छोटे अरब सौदागरकी दूकानको सम्मानपूर्वक प्राप्त करना चाहता था। उसने अपने वकीलको यह पूछनेके लिए भेजा कि क्या वह उसका व्यवसाय खरीद सकता है और यदि हाँ, तो किस कीमतपर। अरबने उत्तर दिया कि अभी उसकी इच्छा अपना कारोबार बेचनेकी नहीं है, परन्तु यदि पड़ोसी अपनी दूकानकी कीमत बताये तो वह उसे खरीदनेके बारेमें तुरन्त विचार करेगा।

दूसरी बात जिसपर लेखक खेद प्रकट करता है, यह है कि डर्बनकी पुलिसमें काफिर क्यो रखे जाये। अगर यात्रीने डर्बनके इतिहासकी काफी पूछ-ताछ की होती तो शायद उन्हे पता चल गया होता कि जैसा वे कहते हैं, डर्बन यद्यपि गोरोका शहर है, फिर भी भारतीयोकी उपस्थितिसे ही वह सुन्दर और भव्य बना है। उन्हे मालूम हो गया होता कि "एक अग्रेज मजिस्ट्रेट" जैसे यात्रियोको जीवनकी सारी आधुनिक सुविधाएँ प्राप्त हो सके, इसलिए डर्बन नगर-निगम गिरमिटिया भारतीयोको एक बहुत बड़ी सख्यामे नौकर रखता है। अब रही दूसरी खेदजनक बात। बेचारे काफिर सिपाहीके बचावमे हम यह कहे बिना नही रह सकते कि उसीकी उपस्थितिसे डर्बन अपराधोसे अपेक्षाकृत अधिक मुक्त है। इसका कारण यह नही कि काफिर पुलिस यूरोपीय पुलिससे अधिक दक्ष है, बल्कि यह है कि नगर कम वेतनके काफिरोको नियुक्त न करे तो उसके लिए आवश्यक सख्यामें पुलिस रखना असम्भव है। नगरकी पुलिसमें भारतीय और काफिर न होते तो शायद डर्बन ही न होता — फिर चाहे वह गोरोका हो या कालोका। तब ऐसी अब्रिटिश ईर्ष्या क्यो? अथवा दक्षिण आफ्रिकाके जलवायुमे ही कुछ ऐसा तत्त्व छिपा हुआ है, जिसके प्रभावसे मनुष्य अपनी परम्पराओको भूल जाता है?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–१०–१९०४

२२३. पत्र: गो० कृ० गोखलेको

२१-२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक व एंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
अक्टूबर ३, १९०४

प्रिय प्रोफेसर गोखले,

आपकी व्यस्तता जाननेके कारण मैंने जानबूझकर आपको समय-समय पर नही लिखा है, किन्तु कांग्रेस अधिवेशनकी निकटताके कारण अब ऐसा करना सम्भव नही है और मैं परिस्थितिके सम्बन्धमे लदनमे प्रकाशित सरकारी रिपोर्टकी एक प्रति इसके साथ भेज रहा हूँ। यह केवल ट्रान्सवालके बारेमें है और सारा जोर ट्रान्सवालकी स्थितिकी ओर ही लगाना है। समस्त आशाओके विपरीत लॉर्ड मिलनर, जो युद्ध प्रारम्भ होनेके समय ब्रिटिश भारतीय और अन्य पीड़ितोंके पक्षपाती थे, एकदम उलट गये हैं। यह उनके खरीतेसे स्पष्ट है। युद्धके पहले ट्रान्सवालमें भारतीयोंको जो थोडे-बहुत अधिकार प्राप्त थे, उनसे भी वे उन्हे वचित करनेके लिए बिलकुल तैयार है। मैं खरीतोंके उत्तरमे ब्रिटिश भारतीय सघका आवेदन नत्थी कर रहा हूँ। इससे प्रकट होगा कि भारतीय किस सीमातक जानेके लिए उद्यत है। उसमें आप देखेंगे कि वे अचल सम्पत्तिपर अधिकारके बदलेमे भारतीय प्रवासपर प्रतिबन्ध और स्थानीय अधिकारियो द्वारा परवानोंका नियमन माननेके लिए राजी है, जो यूरोपीयोकी लगभग समूची माँग है। चूँकि सरकार भेदपूर्ण विधानके सिद्धान्तको प्रतिष्ठित करना चाहती है, मुझे भय है कि केवल इसीलिए प्रस्ताव ठुकरा दिया गया है। ब्रिटिश भारतीय सघका यह कथन है कि विधान जैसा भी हो, सबपर लागू होना चाहिए। ट्रान्सवाल सरकार ऐसा नियम बनाना चाहती है जो सिर्फ एशियाइयोपर — भले ही वे ब्रिटिश प्रजा है, या नही है — लागू हो। जैसा कि आप जानते हैं, ऐसा विधान बनानेकी अनुमति स्वशासित उपनिवेशोको भी नही दी गई है, उदाहरणार्थ, केप और नेटाल; यद्यपि इन दोनो जगहोमे सरकारने ऐसा विधान बनानेका विचार किया था।

सरकारी रिपोर्टमे सर मचरजीके आवेदन (वक्तव्य–क)मे तीन पौडका पजीयन-शुल्क वार्षिक बताया गया है। वास्तवमे वह एक ही बार दिया जाता है।

परवानोके बारेमें, परीक्षात्मक मुकदमेके[१] बादसे भारतीयो और यूरोपीयोकी स्थिति एक हो गई है।

फोटोदार पासोका चलन खत्म कर दिया गया है।

ऑरेंज रिवर कालोनीमे कानून अत्यधिक कड़ा है और अभीतक उसे हटानेके लिए कुछ नही किया गया है।

नटालमें विक्रेता-परवाना अधिनियम बहुत अधिक कठिनाई उत्पन्न कर रहा है। वह स्थानीय अधिकारियोको मनमानी ताकत देता है किन्तु सर्वोच्च न्यायालयमे अपीलका अधिकार नही देता।

मुझे आशा है कि आप *इंडियन ओपिनियन* पढते रहे हैं जो एकदम ठीक-ठीक जानकारी देता है।

१. *हबीब मोटन* बनाम *ट्रान्सवाल सरकार:* देखिए "सुयोग्य विजय", मई १४, १९०४।

टाइम्स और लदनके दूसरे समाचारपत्रोका खयाल है कि ट्रान्सवालमे कठोर वरतावका असर भारतीयोके मनपर बहुत खराब होगा और उससे भारतीयोकी राजभक्तिपर बहुत दुष्प्रभाव पडेगा। इससे प्रकट है कि दक्षिण आफ्रिकामे ब्रिटिश भारतीयोके प्रति न्यायके लिए भारतमे मुखर और लगातार आन्दोलन होना चाहिए। अतएव मै सोचता हूँ कि अबतक इस विषयपर जितना ध्यान दिया गया है, कांग्रेसको उसपर उससे अधिक ध्यान देना चाहिए और दुर्व्यवहारको जारी रखनेका विरोध करते हुए सारे भारतमे आम सभाएँ भी होनी चाहिए।

आशा है, आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। आपका उत्तर पाकर बहुत प्रसन्नता होगी।

आपका सच्चा,

मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४१०३) से।

२२४. जोहानिसबर्गकी पृथक् बस्ती

हम अन्यत्र जोहानिसबर्गकी अलग बस्तीके अति विवादग्रस्त प्रश्नपर लोक-स्वास्थ्य समितिकी रिपोर्ट प्रकाशित कर रहे हैं। हमारे पाठकोको याद होगा कि यह लोक-स्वास्थ्य समितिकी चौथी रिपोर्ट है और इसमें समितिकी सारी मक्कारी खुल गई है और वह अपने असली रूपमें प्रकट हो गई है। यह रिपोर्ट अप्रत्यक्ष रूपसे सर आर्थर लालीके इस दावेका पूरा जवाव है कि एशियाई *बाजारोंके* स्थानोका चुनाव बहुत अच्छा किया गया है और उनमें वतनी और यूरोपीय दोनोके व्यापारिक विकासकी गुंजाइश है। पहले तो लोक-स्वास्थ्य समितिने मलायी वस्तीके बहुत पास ही एक स्थान निश्चित किया था। फिर उसने उस स्थानकी सिफारिश की जिसको बोअर-सरकारने चुना था और अब उसने वह जगह तय की है जो प्लेग फैलनेके समय पृथक्-शिविरके रूपमें इस्तेमाल की गई थी और जो जोहानिसबर्गसे तेरह मील दूर स्थित है। यदि समितिकी सिफारिशोपर अमल किया गया तो लगभग पाँच हजार भारतीय, जिनमें कुछ पुराने व्यवसायियोके अलावा सब फेरीवाले और व्यापारी शामिल हैं, उसी स्थानमे हटा दिये जायेंगे। और इसके कारण बताते हुए समितिका कहना है:

> यदि वर्तमान स्थितिको जारी रहने दिया गया तो कुछ प्रकारके उद्योग — उदाहरणार्थ छोटे व्यापारियों और दस्तकारोके उद्योग — जिनसे अन्यथा काफी बड़ी संख्यामें यूरोपीयोंको रोजगार मिलता, अनिवार्य रूपसे एशियाइयोंके हाथोमें चले जायेंगे और उसके परिणामस्वरूप स्वावलम्बी यूरोपीय आबादीके विकासमें बहुत बाधा आयेगी।"

यह आश्चर्य है कि जो दलीलें पहले कभी नही सोची गई, वे अव ढूँढ़-ढूँढ कर ऐसी नीतिके समर्थनमे पेश की जा रही हैं जो खुले शब्दोमे क्रमश जब्तीकी नीति है। हम खण्डनके जरासे भी भयके विना कहते हैं कि जोहानिसवर्गमे कोई भारतीय दस्तकारवर्ग है ही नही। यह सच है कि थोडेसे उपेक्षित बढई और उनसे भी कम ईंट-पथेरे हैं। परन्तु वे किसी भी तरहकी प्रतिस्पर्धामें नही पडना चाहते। जोहानिसवर्गके भारतीय वहाँ कमसे-कम १८९६ से रह रहे हैं, क्योंकि उसी समय जनगणना की गई थी और उनकी आवादी अब भी लगभग उतनी ही है जितनी कि उस समय थी। फिर भी भारतीय किसी भी क्षेत्रसे यूरोपीयोको निकालनेमे समर्थ नही हो सके

है। गोरोका जोहानिसवर्ग आज भी गोरोका ही है, और इतनेपर भी लोक-स्वास्थ्य समितिको अचानक पता लगा है कि भारतीय आवादीकी उपस्थितिसे "स्वावलम्वी यूरोपीय आवादीके विकासमे वहुत वाधा आयेगी," यद्यपि यूरोपीय आबादी सतत बढ रही है, जब कि शान्ति-रक्षा अध्यादेशके दुरुपयोगके कारण भारतीयोकी आवादी घट रही है और अवश्य ही घटती जायेगी। समितिके पक्षमे जनगणनाके जो आँकडे पेश किये गये है वे विलकुल भ्रमोत्पादक है, और इग्लैडमे ही प्रचारित करनेके उद्देश्यसे दिये जा सकते थे, क्योकि स्थानीय लोगोको तो शायद उनसे गुमराह नही किया जा सकता। यह बयान गलत है कि ट्रान्सवालकी रगदार आवादी गोरी आवादीसे पहले ही से ७७ ८३ और २२ १७ के अनुपातमे अधिक है। हमे मानना होगा कि जोहानिसवर्गकी लोक-स्वास्थ्य समिति जैसी प्रतिनिधि सस्थाकी तरफसे ऐसी गलत-बयानीके लिए हम तैयार नही थे। ट्रान्सवालकी विशाल वतनी आबादी और रगदार आवादीमे क्या सम्वन्ध हो सकता है, यह हमारी समझमे नही आता और अगर लोक-स्वास्थ्य समितिने केवल भारतीयोका ही विचार करनेका कष्ट किया होता, जिनके लिए अलग वस्ती कायम की जायेगी, तो यह निर्णयात्मक रूपमे सिद्ध किया जा सकता था कि भारतीयो द्वारा यूरोपीयोका स्थान ले लेनेका भय काल्पनिक है, क्योकि जोहानिसबर्गमे ८४,००० गोरोके मुकाबिलेमे भारतीय आवादी ७,००० से कुछ ही अधिक होगी। और ट्रान्सवालमे जहाँ भारतीयोकी आबादी १०,००० से कुछ ही अधिक है, वहाँ यूरोपीय आबादी ३,००,००० है। एक ओर भारतीय स्पर्धासे यूरोपीयोके विनाशकी वात करना और दूसरी ओर अग्रेज जनताके सामने वतनी आवादीको शामिल करके आँकड़े पेश करना और अनुपातकी भयकर विषमता दिखाना एक बडी सार्वजनिक सस्थाके योग्य नही है। और फिर समितिने एक ओर जोहानिसबर्गके और दूसरी तरफ नेटाल और पीटर्सबर्गके बीच तुलनाकी है। यह सर आर्थर लालीकी जैसी तुलनाका दूसरा उदाहरण है। हम विवादके[1] इस पहलूकी पहले ही चर्चा कर चुके है और हमने नम्रतापूर्वक यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि यह सारा विवाद भारतीयोके पक्षमे जाता है। अब समिति निडर होकर कहती है कि यूरोपीय व्यापारमे ब्रिटिश भारतीयोका बिलकुल कोई हिस्सा नहीं होना चाहिए और "*बाजार* यूरोपीयोसे आवाद वस्तीके पास-पड़ोससे बिलकुल *अलग* रखा जाये।" और इसी कारण समितिने भारतीयोको ले जाकर डाल देनेके लिए क्लिपस्प्रूटका जंगल चुना है, जहाँ वे आपसमे एक दूसरेसे और थोड़ेसे काफिरोसे ही *व्यापार* कर सकते है। इसके सिवा और कही फेरी या व्यापार नही कर सकते। परन्तु काफिर लोग भारतीयोके ग्राहक नही हो सकते, क्योकि वे ज्यादातर मजदूर है। इस कारण उन्हे सुबह जल्दी ही शहर जाना और रातको शायद आठ बजेके करीब लौटना होगा। ऐसी सूरतमें यह सम्भव नही होगा कि वे उस समय एशियाइयोके पास जाये और उनसे खरीददारी करे। वे स्वभावत अपनी जरूरी चीजे शहरसे खरीदेगे। गन्दगीका आरोप भी फिर पेश किया गया है। समिति कहती है, "किसी भी प्रकारके देखरेखके तरीकेसे इन लोगोसे सार्वजनिक स्वास्थ्यके उपनियमोका पालन कराना असम्भव है।" हम समितिको चुनौती देते है कि वह इस कथनका समर्थन आँकडे देकर करे। हम यह चाहते है कि भारतीयोके विरुद्ध लोक-स्वास्थ्य उपनियमोके मातहत कितने मुकदमे चलाये गये है और कितने मामलोमे उन्होने नियमोका पालन करनेमे गफलत की है, यह आँकडे देकर बताया जाये। जहाँतक हमे मालूम है, और हमे जोहानिसबर्गके भारतीयोकी कुछ जानकारी है, हमे बडा आश्चर्य होगा यदि पूरे सालमे ब्रिटिश भारतीयोके विरुद्ध छ. मुकदमे भी चलाये गये हो। और हम दावेसे कह

१. देखिए "ट्रान्सवाल", सितम्बर १०, १९०४ और "कुछ और बातें: सर आर्थर लालीके खरीतेके विषयमें," सितम्बर २४, १९०४।

सकते है कि शायद ही किसी मामलेमें एक ही आदमीपर दुबारा मुकदमा चलाया गया होगा। सफाई-दारोगोने दक्षिण आफ्रिकाभरमे यह बात जोर देकर कही है कि भारतीय सीधे होते है और कानूनी आज्ञाओके पालनके लिए तैयार रहते हैं। समिति कहती है. हालमें हुए प्लेगके प्रकोपसे और उससे सम्बन्धित घटनाओसे यह साबित हो गया है कि खुद शहरके भीतर स्थित बस्तीका कारगर तौरपर पृथक्करण मुश्किल है।" किन्तु डॉ० पेक्सने अपनी रिपोर्टमे कहा है कि भारतीय बस्तीके गिर्द सफलतापूर्वक घेरा डाल कर प्लेग जडसे मिटा दिया गया। इसलिए या तो उनका कहना गलत था या लोक-स्वास्थ्य समितिका कहना गलत है। डॉ० पेक्सको उनके शानदार कामपर बधाई दी गई है। और अब यह अप्रत्यक्ष अर्थ लगाना उनका अपमान करना है कि नगरके भीतर स्थित होनेके कारण बस्तीका कारगर तौरपर पृथक्करण असम्भव था। हम लोक-स्वास्थ्य समितिके इस लापरवाहीसे दिये गये बयानका भी खण्डन करते है कि भारतीय खास तौरपर चेचकके शिकार होते हैं। नेटालका अनुभव बताता है कि बात ऐसी नही है। और प्लेगके बारेमे भी हमें इस आरोपपर बहुत आपत्ति है कि "भारतीयोको अवश्य ही प्लेग अधिक होता है।" प्लेग, जो भारतीय बस्तीमे शुरू हुआ और जिसके लिए लोक-स्वास्थ्य समिति ही जिम्मेदार थी, उस बस्तीतक ही सीमित रहा और यदि उस बस्तीके बीमारोकी सख्याको निकाल दिया जाये तो पता चलेगा कि भारतीय दूसरोकी अपेक्षा प्लेगके अधिक शिकार नही हुए। लोक-स्वास्थ्य समितिका अन्तिम कारण — गरीब गोरो और गरीब भारतीयोके बीच सामाजिक सम्पर्क — एक तुच्छ तर्क है। प्रथम तो दोनोमे बिलकुल कोई सामाजिक सम्पर्क नही है। दूसरे, हम यह जानना चाहेगें कि गोरोके सामाजिक ह्रासमें भारतीयोकी उपस्थितिसे क्या मदद मिली है, भारतीय समाजका कौनसा खास दोष है जो गोरोंने पिछले १७ वर्षोमें उनसे ग्रहण किया है। और दोनों वर्गोके साथ-साथ रहनेकी घटना किसी भी तरह जोहानिसबर्गके लिए विशेष नही है। वे केप टाउन, किम्बरले, डर्बन, मॉरिशस, लका और भारतमें साथ-साथ रहते रहे है। भारतीयोके विरुद्ध यह आरोप कही भी नही लगाया गया; कही भी भारतीयोको बिलकुल अलग रख देनेके पक्षमे यह दलील नही दी गई। इससे अच्छा तो यही होगा कि इस तरह धीरे-धीरे उत्पीडनके बजाय, जैसा कि लोक-स्वास्थ्य समितिने प्रस्ताव किया है, एक बार ही कानून बनाकर भारतीयोको हमेशाके लिए जोहानिसबर्गके बाहर निकाल दिया जाये। यहाँ रहनेवाली आबादीके साथ या तो अच्छा बरताव किया जाये या उसे इस देशसे खदेड दिया जाये। उनको देशसे निकालनेकी कार्रवाई सख्त तो होगी, लेकिन वह सखियाका जहर जैसा देकर धीरे-धीरे, किन्तु निश्चित रूपसे प्राण लेनेकी क्रियाकी अपेक्षा कही अधिक सदय होगी। और यह जहर है, समाजको उसकी प्रवृत्तियोके क्षेत्रसे मीलो दूर एक बाड़ेमें खदेड़ देना और फिर पोषणके अभावमें मरने देना।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–१०–१९०४

२२५. विक्रेता-परवाना अधिनियम

नेटाल परवाना अधिनियम अभीतक नेटालके भारतीय दूकानदारोके सिरोपर डेमाक्लीजकी तलवारकी तरह लटक रहा है। जबतक यह अ-ब्रिटिश विधि उपनिवेश विधि संहिताको कलंकित कर रही है तबतक भारतीय दूकानोका व्यापारिक सम्पत्तिके रूपमे कोई मूल्य नही है। श्री हुडामलको, जो बड़े पुराने व्यापारी है और जिनका सारा व्यापार ऊँचे तबकेके यूरोपीयोमें है, डर्बनके एक प्रमुख बाजारकी दूकान खाली करनेकी सूचना दी गई। वे वेस्ट स्ट्रीटकी दूसरी दूकानमें चले गये। अगले ३१ दिसम्बरतक व्यापार करनेका बदस्तूर परवाना उनके पास है। इसलिए परवाना अधिकारी द्वारा स्थान-परिवर्तनका पजीयन करनेतक उन्होंने व्यापार बन्द नही किया। अधिकारीने स्थान-परिवर्तनके पजीयनसे इनकार कर दिया। तब भी वे व्यापार करते रहे और उन्होंने अपीलकी सूचना दायर की। न्यायालयमें ऐसी सूचना, स्थितिको जैसा-का-तैसा छोड़ देती है। किन्तु परवाना-अधिकारीको निरकुश सत्ता है; श्री हुडामलका व्यापार जारी रखना उसे अपनी शानके खिलाफ लगा। इसलिए उसने उन्हे न्यायाधीशके सामने पेश किया। हमारी विनम्र रायमें न्यायाधीशने एकदम अनुचित निर्णय किया कि प्रतिवादीने अधिकारियोकी उपेक्षा करके व्यापार जारी रखा है और उसपर २० पौडका अधिकतम जुर्माना कर दिया। अपील दायर की गई है और इसलिए हम इस असाधारण निर्णयपर और कुछ कहनेसे अपनेको रोक रहे है। हम इतना ही कहेगे कि यदि निर्णय सही है तो सम्राटकी किसी भी प्रजाको देशके कानूनपर अपनी समझके अनुसार चलनेका साहस नही हो सकता। हम सरकारका ध्यान इस ओर आकर्षित करते है क्योकि यह उदाहरण बताता है कि जबतक कानून नही बदला जाता तबतक नेटालके गरीब भारतीय व्यापारियोको चैन नही मिल सकता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८–१०–१९०४

२२६. प्रीतिभोजमें भाषण

यह उद्धरण गाधीजी और डर्बनके भारतीय समाजके अन्य नेताओंके सम्मानमें दिये गये एक प्रीतिभोजके विवरणसे लिया गया है:

[अक्टूबर १०, १९०४]

श्री गांधीने आत्म-बलिदानका विवेचन करके जापानके सम्राट और लोगोका उदाहरण देकर बताया कि किसी भी राष्ट्रकी उन्नति उसके व्यक्तियोके आत्मत्यागपर आधारित है।

उपस्थित सज्जनो द्वारा इस विषयपर कुछ प्रश्न पूछे जाने पर उन्होंने उनका खुलासा भी किया।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–१०–१९०४

२२७. हुंडामलका परवाना

इस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मुकदमेका अभीतक फैसला नही हुआ है। हमने अपने पिछले अंकमें इसके विषयमे लिखा था[1], तबसे अबतक वह दूसरे दौरमें पहुँच गया है। यह स्मरणीय है कि प्रतिवादी हुडामलपर जब न्यायाधीशके सामने परवानेके बिना व्यापार करनेका आरोप लगाया गया तो उसने दर्खास्त की कि इस मामलेको तबतक स्थगित कर दिया जाये जबतक नगर-परिषद उसकी अपीलका फैसला नही कर देती, किन्तु वह व्यर्थ गई। श्री हुडामलने अपना परवाना ग्रे स्ट्रीटसे वेस्ट स्ट्रीटमे बदलनेकी प्रार्थना की थी, जो परवाना अधिकारीने नामजूर कर दी थी। उक्त अपील उसी नामजूरीके विरुद्ध थी। शुक्रवार ७ अक्तूबरको अपील सुनी गई और रस्मी सुनवाईके स्वाग और प्रार्थीकी ओरसे श्री बिन्सके सुन्दर भाषणके बाद खारिज कर दी गई। परवाना-अधिकारीने अपनी इनकारीके ये दो सबब दिये कि प्रार्थीके पास पहलेसे ही पाँच परवाने है और वेस्ट स्ट्रीटमे एशियाई व्यापारियोकी सख्यामे वृद्धि करना अभीष्ट नही है। मालिकोकी नौकरी बजानेके उत्साहमे परवाना-अधिकारीने जो मिथ्याचार करना उचित समझा उसका श्री बर्नने, जो परिषदके एकमात्र वकील सदस्य है, हिम्मतके साथ परदा फाश किया। वे परवाना-अधिकारीसे यह कबूल करा सके कि पाँच परवाने दूकानोके परवाने नही, फेरीके परवाने थे। जब यह पूछा गया कि इस बातका उल्लेख कारण-वक्तव्यमें क्यो नही किया गया तो परवाना-अधिकारीने कहा कि उसे इसकी जरूरत महसूस नही हुई। श्री बर्नका विचार है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण तथ्यके उल्लेखको छोड़नेमे परिषद और जनताको गुमराह करनेके प्रयत्नकी तीव्र गध आती है। परवाना अधिकारीने जो दूसरा कारण दिया, हम अत्यन्त विनम्रभावसे कहते हैं कि वह कम लज्जाजनक नही था। वेस्ट स्ट्रीटमे लगभग १०० यूरोपीय भण्डारोके मुकाबिलेमें भारतीय भण्डार केवल आठ है। इसलिए यदि यह केवल अनुपातका प्रश्न हो तो यह कहना बहुत कठिन है कि उस सडक-पर भारतीय परवानोपर सम्पूर्ण निषेध लागू करनेकी घडी आ गई है। किन्तु परिषदके सामने श्री बिन्सने जो तथ्य असन्दिग्ध रूपसे सिद्ध किये उनसे स्पष्ट होता है कि इस मामलेमें कितनी बेदर्दीसे बेइन्साफी की गई है और कितने खुले तौरपर प्रश्न जातीय आधारपर तय किया गया है। क्योकि यह प्रमाणित कर दिया गया है कि प्रार्थीने सन् १८९५ से जब-तब डर्बनमे व्यापार किया है, वह भारतीय और जापानी रेशम तथा नफीस चीजें बेचता है, इस व्यापारकी यूरोपीय भण्डारोसे स्पर्धा नही है, उसकी सारी ग्राहकी यूरोपीयो और सो भी ऊँचे तबकेके यूरोपीयोमें है, जिस मकान या जायदादपर उसका कब्जा है, वह सुन्दरता और स्वच्छताकी दृष्टिसे सर्वथा ठीक है, वह स्वय सस्कृत है और भारतीय समाजमें ऊँचा दर्जा रखता है, लगभग एक दर्जन यूरोपीय पेढियोने उसे इस विवादास्पद क्षेत्रमें व्यापार करनेकी अनुमति पानेके योग्य और हर तरह ठीक व्यक्ति कहा, चालीससे अधिक यूरोपीय सज्जनोने उसके आवेदनका जोरदार समर्थन किया। यह प्रमाणित किया गया कि वह वेस्ट स्ट्रीटमें व्यापार करता भी था, किन्तु पट्टेकी अवधि समाप्त हो जाने और मालिकको स्वय मकानकी जरूरत होनेके कारण उसे वह छोडना पडा था। अतः जीविकोपार्जनका अवसर छीने जानेका एकमात्र आधार उसकी चमडीका रग हुआ। हमें आश्चर्य नही कि श्री बिन्सने इसका आवेगयुक्त विरोध किया कि जो बात किसी यूरोपीयमे होनेपर

१. देखिए "विक्रेता-परवाना अधिनियम," अक्टूबर ८, १९०४

प्रशंसनीय व्यापारिक जोखिम मानी जाती, वही उसके अर्जदारोके लिए अयोग्यताका कारण मानी गई। यहाँ यह ध्यानमें रखना है कि भारतीय गृह-स्वामीके हितका कोई विचार नही किया गया। अक्सर उसे यह ताना मारा जाता है कि वह समयकी गतिके साथ कदम नही रखता और केवल झोपडियाँ वनाता है। अव प्रस्तुत उदाहरणमे, उसने भण्डार वनानेमे कई हजार पौड खर्च किये और भण्डार आकृतिकी शोभनीयतामे भी वेस्ट स्ट्रीटके अच्छेसे-अच्छे भण्डारोसे होड़ कर सकता है। और आश्चर्य है, उसके इस साहसका नतीजा निकला सर्वनाशकी सभावना, और जो श्रेष्ठ पश्चिमीय स्तरके मुताविक रहनेका प्रयत्न कर रहा है उस अर्जदारके दिवालिया हो जानेकी सूरत। और यह उन मामलोमे से एक है जिनके वारेमे स्वर्गीय श्री एस्कम्वका खयाल था कि इन्हे परवाना अधिनियम कभी हाथ भी नही लगा सकता। उन्होने इसे पेश करनेके समय जो भाषण दिये थे, हम नीचे उनके अश और तत्सम्बन्धी स्वर्गीय सर हेनरी विन्सकी भविष्यवाणी उद्धृत कर रहे है। अन्यायकी इस कथाके अन्य पहलुओपर हमे आगामी अकमे विचार करना पडेगा क्योकि हमें मालूम हुआ है कि अपीलकर्त्ता सर्वोच्च न्यायालयमे परिपदके स्थानान्तरणको नियन्त्रित करनेके अधिकारका प्रश्न उठा रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–१०–१९०४

२२८. श्री मदनजीतका सम्मान

इंडियन ओपिनियन के मालिक श्री मदनजीतकी भारत-यात्राके समय उनको विदाई देनेके लिए डर्वनमें एक समारोह किया गया था। उसमें गाधीजीने एक भाषण दिया था, जिसकी सक्षिप्त रिपोर्ट यह है:

[अक्टूबर १५, १९०४]

श्री गाधीने १८९४ मे, जव श्री मदनजीत इस देशमे आये तबसे आजतकके उनके जीवनके वारेमे सक्षिप्त जानकारी दी और उनके धीरज और लगनका बखान किया कि वे किस प्रकार छापेखानेकी आर्थिक स्थितिके विषम होते हुए भी मुश्किले सहकर तन, मन, धनसे मेहनत करके भारतीयोके लाभके लिए निकलनेवाले पत्र *इंडियन ओपिनियनको* चलाते रहे है। इसके वाद उन्होने सबको छापेखानेकी कुछ परिस्थितियोसे वाकिफ किया।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–१०–१९०४

२२९. जोहानिसबर्ग नगर-परिषद

नगर-परिषदने लोक-स्वास्थ्य समितिकी बहुत महत्त्वपूर्ण रिपोर्टपर विचार कर लिया है और समितिके दिये हुए क्रियात्मक सुझाव सर्वसम्मतिसे मान लिये हैं। इस बारेमें उसकी यह सर्वसम्मति दु:खजनक है। इसके अन्तर्गत, अनिवार्य पृथक्करण-अध्यादेश स्वीकृत होनेकी अवस्थामें भारतीय और मलायी दोनों ही बतनी बस्तीके नजदीक क्लिपस्प्रूटकी खेतीपर, जो जोहानिसबर्गसे १३ मील दूर है, बसाये जायेंगे। श्री क्विनने प्रस्ताव नगर-परिषदको सौंपते हुए इन आधारों-पर उनको उचित बताया कि भारतीय सफाईके नियमोंका पालन नहीं करते; यदि काफिर क्लिपस्प्रूट भेजे जाते हैं तो भारतीयोंको भेजनेका तो और भी जोरदार कारण है, क्योंकि उनका पड़ोस काफिरोंसे भी बुरा है; और भारतीय व्यापार भारतीयों और काफिरोंतक सीमित है, इसलिए इतने ज्यादा फासले पर बसा दिये जानेपर भी उन्हें कोई कठिनाई न होगी।

पहली आपत्ति किन्हीं तथ्योंपर आधारित नहीं है। श्री क्विनने समर्थनमें कहा है कि भारतीयोंके खिलाफ मुकदमे भी चलाये जाते हैं तो भी वे फिर अपने पुराने अभ्यासपर वापस आ जाते हैं। हम इन महाशयकी बातका खण्डन करते हैं और सार्वजनिक रूपमें कहते हैं कि किसी भारतीयके खिलाफ सफाईका कोई ऐसा मुकदमा नहीं चला जिसका स्थायी असर नहीं हुआ हो। हम यह भी कहेंगे कि जहाँ भी ठीक तरहसे देखरेख रखी गई है वहाँ भारतीय नियमोंके निहायत पाबन्द साबित हुए हैं। दूर न जाकर हम प्रिटोरियाकी बस्तीका उदाहरण देंगे और हाइडेलबर्गके भारतीयोंकी अवस्था बतायेंगे। पहले मामलेमें निरीक्षण सहृदयतापूर्ण, किन्तु दृढ़ है। इस कारण बस्तीकी सफाई पूरी तरह वैसी है जैसी इन बस्तियोंमें आबाद भारतीयोंकी किस्मको देखते हुए वांछनीय कही जा सकती है। दूसरे मामलेमें भी शहरके बीचोंबीच रहनेवाले भारतीय दूकानदारोंकी सफाई इतनी ही अच्छी है। वक्ताकी उठाई दूसरी आपत्ति पहलीसे कम कमजोर नहीं। क्योंकि यदि भारतीय सफाई-सम्बन्धी नियन्त्रण माननेवाले हैं तो उनको पड़ोसी बनानेमें कोई ऐतराज नहीं हो सकता। उनमें न तो युद्धनृत्य ही होते हैं और न वे काफिर-बीयर ही पीते हैं। तीसरा आक्षेप तथ्योंकी निरी तोड़-मरोड़ है। यह कहना अन्यायपूर्ण है कि भारतीय व्यापार काफिरों और भारतीयोंतक सीमित है। ट्रान्सवालमें शुरू-शुरूमें आकर बसनेवाले भारतीय व्यापारी भारतीयोंमें व्यापार करनेकी दृष्टिसे इस देशमें नहीं आ सकते थे क्योंकि तब भारतीय यहाँ थे ही नहीं और यह सबको मालूम है कि डच लोगों और गरीब श्वेत लोगोंमें भारतीयोंका बड़ा व्यापार है। इस ऐतराजकी तहमें यह महत्त्वपूर्ण मान्यता है कि क्लिपस्प्रूटकी खेती श्वेत लोगोंके व्यापारके लिए बिलकुल उपयुक्त नहीं है। साथ ही यह भी याद रखना चाहिए कि काफिर बस्ती पास होनेका मतलब भारतीयोंको काफिरोंका व्यापार मिलना नहीं है। इसका और कुछ नहीं तो एक सीधा-सादा कारण यह है कि काफिर लोग बस्तीमें केवल रातके समय रहेंगे और शहरसे व्यवसायके समयके बाद लौटेंगे। इसलिए यदि भारतीयोंको इतनी बड़ी दूरीपर बसाना सर्वथा अन्यायपूर्ण है तो मलायी बस्तीके निवासियोंको छेड़ना तो और भी बड़ी बेइन्साफी होगी। सफाईकी दृष्टिसे पुरानी भारतीय बस्तीको रद करनेका कुछ कारण हो सकता है; परन्तु मलायी बस्तीके रहनेवालोंके खिलाफ तो कानोंकान कुछ नहीं कहा गया है। उनमें से अधिकांश लोग, जैसा कि नामसे प्रकट है, मलायी हैं और वे साफ-सुथरे रहनेवाले, परिश्रमी और पूरी तरह वफादार लोग हैं। उस स्थानपर अब कई सालसे उनका कब्जा है। बोअर-राज्यके दिनोंमें उनसे वह जगह छीन लेनेका प्रयत्न ब्रिटिश सरकारकी कोशिशोंके कारण विफल हो गया था; क्या अब ये गरीब लोग उसी ब्रिटिश सरकारके नामपर बातकी बातमें बेदखल कर दिये

जायेंगे और जगलमें रहनेको मजबूर किये जायेंगे? यह कल्पना ही घृणास्पद है और हम आशा करते हैं कि श्री लिटिलटन उन लोगोंके, जिनका एकमात्र अपराध उनकी भूरी चमडी है, अधिकारोंकी सामूहिक जब्तीमें शरीक नही होगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–१०–१९०४

२३०. डॉ० पोर्टरका निशाना ठीक ठिकानेपर

शक्तिशाली डॉ० पोर्टर जोहानिसबर्गके कई स्थानोकी गन्दी हालतपर विद्वत्तापूर्ण प्रतिवेदन लिखनेमे फिर व्यस्त है। पहले गन्दे इलाकेकी तरह ही मौजूदा मामलेमे भी उन्होने जोहानिसबर्गकी उस बस्तीका, जो फैरेरासके नामसे विदित है, अत्यन्त भयकर और सनसनीदार चित्र खीचा है। उन्होने नगर-परिषदको अत्यन्त जोरदार शब्दोमें सूचना दी है कि उनके द्वारा वर्णित इलाकेकी अविलम्ब पूरी सफाई की जानी चाहिए। वे कहते है

> **इन इलाकोंमें अनेक घर, झोंपड़ियाँ, कमरे, सहन और गलियाँ हैं जो खराब व्यवस्था, क्षेत्रकी घनी आबादी, ठीक-ठीक सफाईकी सुविधाओंके अभाव और अपनी बहुत बुरी और टूटी-फूटी अवस्थाके कारण आसपासके निवासियोंकी तन्दुरुस्तीके लिए न सिर्फ खतरनाक और हानिकारक है, बल्कि आम तौरपर नगरपालिकाके लिए एक बड़ा गम्भीर खतरा भी हैं।**

अब, यह स्वीकार किया गया है कि यह इलाका जैसा है वैसा कमसे-कम पिछले दो सालसे पडा है। अगर यह इतना गन्दा है, और हम इससे इनकार नही करते कि यह इतना गन्दा है, तो मामला इससे पहले हाथमे क्यो नही लिया गया? हमे बहुत बडा अन्देशा है कि महीनोतक यह प्रतिवेदन सिर्फ टाउन क्लार्कके दफ्तरकी अलमारियोमे पडा रहेगा और हालत बहुत कुछ वही बनी रहेगी जो आज है, यद्यपि हमें मौजूदा खतरेका सामना करनेके लिए जरूरत शब्दोकी नही, कार्यकी है। बेशक प्रतिवेदन दिलचस्प है और उसे पढकर दु ख भी होता है। शायद इसका उद्देश्य यह भी हो कि बूढी औरते डर जाये और अपने मकानो और आस-पासकी हालतोके बारेमें सावधान रहे। अगर यह बस्ती इतनी भयकर रूपमे गदी है तो इसके लिए अधूरे उपाय उपयुक्त नही हैं। इसमे जो इमारतें है उन्हे एक क्षणकी देर किये बिना जला देना चाहिए, किन्तु हमे बहुत अन्देशा है कि गन्दे इलाकेके बारेमे जो अनुभव हुआ है वह फैरेरास बस्तीके मामलेमें दुहराया जायेगा। यह जानकारी दिलचस्प होगी कि इस सारे इलाकेकी आबादी १,८१२ है जिसमे से २८८ भारतीय, ५८ सीरियाई, १६५ चीनी, २९५ केपवाले, ७५ काले और ९१९ (या आधेसे अधिक) गोरे है। गन्दे बाड़ोकी आबादीमे २५५ कुली, १७ सीरियाई, १२६ चीनी, १९२ केपवाले, ३१ काले और २४१ गोरे हैं।

इस प्रकार, इस इलाकेमे भारतीयोकी अपेक्षा गोरोका दोष अधिक है और नगर-परिषदका सबसे ज्यादा है। और यद्यपि किसी अन्य वर्गके लोगोकी अपेक्षा गोरोके विरुद्ध कार्रवाई ज्यादा जरूरी है, फिर भी हमारा क्षण-भरके लिए यह खयाल नही होता कि कोई ऐसी बात होगी। इस प्रतिवेदनका उपयोग ब्रिटिश भारतीयोपर और अधिक निर्योग्यताएँ लगानेके लिए किया जायेगा। लोक-स्वास्थ्य समितिने उनको जोहानिसबर्गसे लगभग १३ मील दूरके इलाकेमे रहनेके लिए मजबूर करनेके उद्देश्यसे इस प्रतिवेदनका उपयोग पहले ही शुरू कर दिया है। नगर-परिषदने

इस स्थानकी उचित सफाईकी ओर ध्यान नही दिया, प्रतिवेदनसे उसकी इस निष्क्रियताकी निन्दा होती है। जब अस्वच्छ क्षेत्र आयोग मुकर्रर किया गया था तब यह बस्ती सार्वजनिक स्वास्थ्यके लिए खतरनाक समझी गई थी। परन्तु चूँकि जोहानिसबर्गमें जो कुछ किया जाता है, गगनचुम्बी पैमानेपर ही किया जाता है, उसके नीचे कुछ नही, इसलिए स्वच्छता-सम्बन्धी उचित नियन्त्रण नगर-परिषदकी शानके खिलाफ था।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-१०-१९०४

२३१. लॉर्ड मिलनर

यह लगभग निश्चित मालूम होता है कि लॉर्ड मिलनर जल्दी ही दक्षिण आफ्रिकासे सदाके लिए विदा हो जायेंगे। कहना कठिन है कि इस महादेशमें परमश्रेष्ठके कार्यके सम्बन्धमें इतिहासका निर्णय क्या होगा। उन्होंने युद्धको सफलतापूर्वक समाप्त कराया, इससे परमश्रेष्ठका एक विनाशात्मक राजनीतिज्ञके रूपमें गौरव पानेका अधिकार सुनिश्चित हो गया है। अत्यन्त नाजुक समयमें तमाम लोगोंके बीच वे ही सबसे अधिक मजबूत आदमी निकले, और हारों और युद्ध-संचालक सेनापतियोंके चिन्ताजनक संवादोंके बावजूद वे बिलकुल दृढ़ और युद्धकी सफल समाप्तिके संकल्पमें अटल रहे। परन्तु हमें भय है कि उसके परिणामके सम्बन्धमें अपनी दूरदर्शितापर उनकी जो अजेय श्रद्धा थी, उससे उनको पुर्ननिर्माणके कठिनतर कार्यमें पथ-प्रदर्शन नही मिला। और वास्तवमें यह भी नही कहा जा सकता कि परमश्रेष्ठको भविष्यका सही अनुमान हो गया था। लॉर्ड मिलनरने ऐसी आशाएँ बाँधी जो कभी पूरी होनेवाली नही थी, और उन्होंने एक कमजोर बुनियादपर ऊपरसे भारी-भरकम इमारत बना डाली। नतीजा यह हुआ कि देशमें शासनका खर्च बहुत बढ़ गया और आय काफी नही हुई। लॉर्ड महोदयने शासनकी हर तफसीलपर बराबर ध्यान दिया और खूब परिश्रम किया। फिर भी यह नही कहा जा सकता कि मजदूरों, वतनी लोगों और एशियाइयोंकी जैसी कठिन समस्याएँ सन्तोषजनक ढंगसे हल हो गईं। चीनी मजदूर बुलानेका प्रश्न अभीतक प्रयोगकी स्थितिमें है और अभी इधर या उधर कोई निश्चित मत प्रकट करना बहुत असामयिक होगा। वतनी लोगों और एशियाइयोंके प्रश्नके बारेमें जो अस्थिर नीति अपनाई गई उससे दोनों ही पक्ष सन्तुष्ट नही हुए और लॉर्ड महोदयके हाथों एशियाइयोंके तो "राष्ट्रीय सम्मान" को भी क्षति पहुँची। इस प्रकार लॉर्ड मिलनरको प्रथम श्रेणीके रचनात्मक राजनीतिज्ञका दर्जा मिलना शंकास्पद है।

लन्दनके अखबारोंसे हमें पता चलता है कि इंग्लैंडमें बहुत जल्दी सत्तामें परिवर्तन होगा। अगर यह सच हो, तो यह जानना दिलचस्प होगा कि जानेवाली सरकार साम्राज्य और अनुदार दलके प्रति लॉर्ड मिलनरकी सेवाओंके बदले क्या करना चाहती है। हमें मालूम है कि कुछ महीने हुए, यह खबर उड़ी थी कि लॉर्ड महोदय सम्भवत कलकत्तेमें लॉर्ड कर्जनके उत्तराधिकारी होंगे। उस सूरतमें बेशक वे उदारदलीय मन्त्रियोंके हस्तक्षेपसे बिलकुल मुक्त हो जायेंगे, और साम्राज्यवादी दृष्टिसे इस प्रकारकी प्रतिष्ठा प्रदान करनेके अलावा अनुदारदलीय सरकारके पास लॉर्ड महोदयको देनेके लिए इससे अच्छी कोई चीज नही है। इसलिए यह अटकल दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंके लिए कुछ स्थायी दिलचस्पीकी चीज है। हम सोचते है कि ब्रिटिश भारतीय प्रश्नपर हाल ही में प्रकाशित सरकारी रिपोर्टमें श्री लिटिलटनके नाम भेजे गये खरीतेके लेखक

महोदय जब वाइसरायकी गद्दीपर स्थानान्तरित हो जायेंगे तब भी क्या उनमें यह प्रबल भारत-विरोधी द्वेष-भाव बना रहेगा जिससे वह दस्तावेज रगा हुआ है?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-१०-१९०४

२३२. लाइडनबर्गके भारतीय

लाइडनबर्गके अधिकारियोंने भारतीयोंको सूचना दी है कि वे सात दिनके भीतर सोनेके लिए *बाजारमें* चले जायें, अन्यथा उनपर आज्ञा-भंगका मुकदमा चलाया जायेगा। कुछ समय पूर्व इसी प्रकारकी धमकी पॉचेफस्ट्रममें दी गई थी, परन्तु उसका कुछ परिणाम नहीं निकला। ट्रान्सवालके मुख्य न्यायाधीशके जोरदार फैसलेको[1] देखते हुए हर किसीका खयाल यही होता कि भारतीयोंको छेड़ा नहीं जायेगा। मगर मालूम होता है कि बात ऐसी होनेवाली नहीं है। ऐसी परिस्थितिमें हमारे देशवासियोंके सामने एक ही उपाय है कि वे चुपचाप बैठे और घटनाओं पर निगाह रखें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-१०-१९०४

२३३. भारतीय दुभाषिये

भारतीय दुभाषियोंको उपनिवेशसे निकालनेके बहाने खोजनेमें नेटाल कृषक-परिषद एड़ी-चोटीका जोर लगा रही है। गिरमिटिया भारतीयोंकी तो उसे बुरी तरह जरूरत है, मगर सरकारी नौकरीमें वह इने-गिने भारतीय दुभाषियोंका रहना भी बर्दाश्त नहीं कर सकती। परिषदके इससे पहलेके प्रस्तावका सरकारने यह उत्तर दिया है कि एकसे अधिक भारतीय भाषाएँ बोल सकनेवाले यूरोपीय इन नौकरियोंके लिए नहीं मिल पाते और यह जरूरतको देखते हुए अपर्याप्त है। इसपर उसने नीचे लिखा प्रस्ताव पास किया है।

> **यह परिषद जोर देकर अपनी यह सम्मति दुहराती है कि अगर उचित वेतन दिये जायें तो ऐसे यूरोपीय मिल सकते हैं जो एकाधिक भारतीय बोलियाँ बोल सकते हैं; और यह कि सरकार उपनिवेशके तरुण यूरोपीयोंको भारतीय बोलियोंकी जानकारी हासिल करनेके लिए वैसा ही प्रोत्साहन दे जैसा जुलू भाषाके विद्यार्थियोंको दिया जाता है।**

सरकारने इसका भी उत्तर दिया है कि जहाँ-जहाँ मुमकिन है, यूरोपीयोंको रखनेका प्रयत्न हो रहा है; किन्तु बाधाएँ कम होती नहीं दिखती। इस तरह अपनी नौकरियोंकी सुरक्षितताके लिए भारतीय दुभाषियोंको सरकारका नहीं, भारतीय बोलियाँ जाननेवाले यूरोपीयोंकी कमीका अहसान मानना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-१०-१९०४

१. देखिए "परीक्षात्मक मुकदमा," २१-५-१९०४।

२३४. नेटाल परवाना कानून

श्री हुडामलका मामला अब केवल व्यक्तिगत प्रश्न नही समझा जा सकता, वह ऐसा मामला है जिसमे व्यापक हित निहित हैं। जबतक यह लेख छपेगा तबतक मजिस्ट्रेटके फैसलेके खिलाफ सर्वोच्च न्यायालयमे की गई अपीलका फैसला शायद हो जायेगा। परन्तु पिछले सप्ताहकी कार्रवाईपर मामूली नही, अधिक ध्यान देनेकी जरूरत है। नगर-परिषदके निर्णयके बावजूद, परन्तु वकीलोकी प्रमुख फर्मकी कानूनी सलाहके अनुसार, श्री हुडामल नगरमे व्यापार करनेके लिए दिये गये परवानेके बलपर कारोबार चलाते रहे। इसलिए परवाना-अधिकारीने उनके नाम फिर सम्मन जारी किया और उनपर वेस्ट स्ट्रीटके मकानके सम्बन्धमें परवानेके बिना व्यापार करनेका अभियोग लगाया। अभियुक्तने अपीलकी सुनवाई होनेतक कार्रवाई स्थगित रखनेकी अर्जी दी। मजिस्ट्रेटने वह स्वीकार कर ली और अभियोक्ता-पक्षके इस कथनको नही माना कि अभियुक्त अदालतका अपमान करके व्यापार कर रहा है। फिर भी मजिस्ट्रेटने एक अत्यन्त असाधारण आदेश दिया कि अगर अभियुक्त व्यापार करनेकी अनुमति प्राप्त न कर ले तो उसकी दूकान जबरदस्ती बन्द कर दी जाये।

इसलिए जो चीज उन्होने एक हाथसे दी उसे दूसरे हाथसे छीन लेनेकी कोशिश की; क्योकि अगर दूकान बन्द ही करनी थी तो कार्रवाईको स्थगित करनेका क्या महत्त्व हो सकता था? यदि मजिस्ट्रेटको सर्वोच्च न्यायालयके फैसलेके बारेमे इतना यकीन था तो उन्होने कार्रवाई स्थगित ही क्यो की? परन्तु यह मुद्दा महत्त्वपूर्ण होते हुए भी इस प्रश्नके सामने महत्त्वहीन हो जाता है कि मजिस्ट्रेटने जो आदेश दिया उसको उसे देनेका कोई अधिकार भी था या नही। हमे मालूम हुआ है कि श्री हुडामलके वकीलोने मजिस्ट्रेटको लिखित सूचना दी है कि उन्होने अपने अधिकारसे बाहर काम किया है और अगर दूकान जबरदस्ती बन्द कर दी गई तो उसके लिए वे व्यक्तिश: जिम्मेदार होगे। हमारा सदा यह खयाल रहा है कि श्री स्टुअर्ट एक निष्पक्ष, गम्भीर और न्यायपरायण न्यायाधीश है। परन्तु हमे बडे आदरके साथ कहना पडता है कि उन्हें जो अधिकार प्राप्त है, उनके सम्बन्धमे उनके ज्ञानपर हमारा विश्वास बहुत हिल गया है। हम यह कल्पना नही कर सकते कि उन्होने यह काम, जो हमारी नम्र रायमे निर्णयकी एक गम्भीर भूल है, जानबूझकर किया है। क्योकि, अगर उनके फैसलेपर अमल किया जाये तो उसका असर यह होगा कि हम फिरसे उस मध्य युगमे पहुँच जायेंगे, जिसमें प्रजाजनोकी स्वतन्त्रता केवल न्यायाधीशोकी सनकपर निर्भर रहती थी, और उन न्यायाधीशोके अधिकार और सत्ता केवल उनकी सद्बुद्धिसे ही मर्यादित होते थे।

किन्तु महान् नगर-परिषद और एक छोटेसे नागरिकके बीच यह अशोभनीय भाव क्यो होना चाहिए? थोड़े दिनतक उस गरीब व्यापारीको न छेड़ा जाये तो, अवश्य ही, इसमे किसी सिद्धान्तको खतरा नही है। रोज चन्द शिलिगकी बिक्री करके वह उतने ही समयमे वेस्ट स्ट्रीटके दूसरे व्यापारियोकी आमदनी बहुत नही घटा सकता। उन्होने उसके विरुद्ध कोई ऐतराज नही किया है। हम श्री एलिस ब्राउन और नगर-परिषदके दूसरे सदस्योसे पूछते हैं कि क्या एक गरीब आदमीको इस तरह सताना उस महान् संस्थाकी शानके अनुरूप है?

व्यापारको नियमित करनेके परिषद्के अधिकारपर हम आपत्ति नही करते। हमने, जब-कभी जरूरत हुई है, भारतीय लोकमतको रास्ता दिखाने और शान्त करनेमे विनम्र सहायता देना सदा अपना विशेष अधिकार समझा है। हमारा खयाल है कि विशेष व्यवसायोके लिए विशेष इलाके सुरक्षित करना परिषदके लिए सामान्यत. बिलकुल ठीक होगा। परन्तु इस

तरहके सारे सरक्षण, जबतक काफी लचकदार न रखे जायें, अपने ही उद्देश्यको विफल करनेवाले होते है। हम भारतीयोको इस विचारसे सहमत करनेमे परिषदके साथ सहर्ष सहयोग करेगे कि वेस्ट स्ट्रीट बहुत-कुछ यूरोपीय व्यापारियोके हाथोमे रहनी चाहिए। परन्तु एक महत्त्व-पूर्ण और आवश्यक शर्त यह है कि जो भारतीय वहाँ पहलेसे व्यापार कर रहे है उनकी, और भारतीय मकान-मालिकोकी भी, पूरी तरह रक्षा की जानी चाहिए; और जो भारतीय वेस्ट स्ट्रीटकी बढिया दूकानोकी प्रतिष्ठाके अनुरूप सफाई और सजावटकी आवश्यकताएँ पूरी करनेको तैयार है और जिनका व्यापार मुख्यत यूरोपीयोके साथ है, उनका वहाँ व्यापार करना निषिद्ध न किया जाये। अगर यह सच है कि आपत्ति रगके विरुद्ध नही है, और यदि भारतीय लोग यूरोपीयो जैसा स्तर रखे तो वाछनीय नागरिकके रूपमे उनका स्वागत किया जायेगा, तब तो, सचमुच, उन्हे प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। अब हकीकत यह है कि . . . . स्ट्रीट बहुत . है[1] और विचाराधीन मामलेमें उपर्युक्त सारी कसौटियोपर पूरे उतरते है। क्या हम नगर-परिषदसे यह अपील नही कर सकते कि वह अपने हाथ रोक ले और भारतीयोके इस सन्देहसे मुक्त हो जाये कि श्री हुडामलपर मुकदमा चलाकर वह उनको और उनके द्वारा भारतीय दूकानदारो और मकान-मालिकोको सता रही है। ये सब लोग उत्सुकतापूर्वक उन नाटकीय स्थितियोको देख रहे है जिनमे से यह मामला गुजर रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९–१०–१९०४

२३५. पीटर्सबर्गके भारतीय

पीटर्सबर्गसे इस आशयका समाचार मिला है कि पुरानी भारतीय बस्तीमें, जो अभी हाल ही मे वतनी बस्ती बना दी गई है, रहने और व्यापार करनेवाले भारतीय सरसरी तौरपर बेदखल किये जा रहे है। उन गरीबोंके सघर्षका इतिहास बहुत सीधा-सादा है, यद्यपि वह अत्यन्त वेदनापूर्ण है। पिछले साल ही उनके बरबाद कर दिये जानेकी नौबत आ गई थी। तब उन्होने मामला उच्चाधिकारियोतक पहुँचाया और पीटर्सबर्गके स्थानिक निकायने कार्रवाई रोक दी। निकायकी सत्ता सीमित थी और उन लोगोके प्रति और कुछ नही किया जा सका। इस सालके शुरूमें निकायने सरकारसे प्रार्थना की कि वह भारतीय बस्तीको उठा दे और उसकी जगह वतनी बस्ती बना दे। भारतीयोके अधिकारोका कोई खयाल किये बिना ऐसा ही किया गया। वतनी बस्तीके नियमोके अनुसार वहाँ वतनियोके सिवा कोई अन्य व्यक्ति न तो बस सकता है और न व्यापार कर सकता है। इस सत्ताके अधीन निकाय भारतीयोको बेदखल करनेकी कोशिश कर रहा है। एशियाई-सरक्षक श्री चैमनेके हस्तक्षेपसे निकायकी कार्रवाई अस्थायी रूपसे रोक दी गई थी। परन्तु मालूम होता है, अन्तमें निकायकी जीत हुई। और अब वह अप्रत्यक्ष कानून-निर्माणकी प्रक्रिया द्वारा निर्दोष व्यापारियोकी सम्पत्ति और अधि-कारोको जब्त कर लेनेकी स्थितिमें है। इस कार्रवाईको अच्छी तरह स्पष्ट करनेके लिए हमारे पास "जब्ती" के सिवा और कोई शब्द नही है। इन व्यापारियोने अच्छे भडार बनानेमे हजारो पौंड खर्च किये है। हम जानते है कि दक्षिण आफ्रिकामे मजदूरी कितनी महँगी है। लोगोंको

१. मूलमें खाली जगहोंमें कुछ शब्द छूट गये है। इससे अर्थ अस्पष्ट हो गया है।

कोई मुआवजा नही मिलनेवाला है। यह सच है कि वे अपनी इमारतें हटा सकते हैं। निरे नौसिखिये व्यापारी भी जानते हैं कि इस तरह हटाये जानेवाले लोह-लक्कड़की क्या कीमत होती है। निकायकी कार्रवाईसे ये लोग बरबाद हो रहे हैं। और सरकार कहती है कि वह लाचार है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९-१०-१९०४

२३६. स्वर्गीय श्री डिगबी, सी० आई० ई०[1]

श्री विलियम डिगबी, सी० आई० ई० के निधनसे भारतीयोका एक ऐसा समर्थक उठ गया जिसका स्थान भरना कठिन है। उनका भारतीय पक्षको सामने रखनेका तरीका श्रम और सम्यक् ज्ञानसे भरा हुआ होता था। भारत-विषयक उनका अद्वितीय अनुभव प्रतिद्वन्द्वियोको उत्तर देते समय सदा उनका अच्छा साथ देता था। वे इडियन पोलिटिकल एजेंसीके सस्थापक और *इंडिया* पत्रके, जो उत्तम सेवा कर रहा है, प्रथम सपादक थे। किसीका दर्जा कम बताये बिना हम कह सकते हैं कि उक्त पत्रिकाका सपादन दिवगत श्री डिगवीके मुकाबिलेमे कभी नही किया गया है। उन्होंने अपने विपुल लेखनके द्वारा सदा विभिन्न भारतीय प्रश्नोको जनताके सामने रखा। स्वर्गीय श्री डिगवीके कुटुम्बके शोकमें हम अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९-१०-१९०४

२३७, पत्र : दादाभाई नौरोजीको[2]

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
अक्टूबर ३१, १९०४

सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी
२२, केनिंगटन रोड
लदन, द० पू० इग्लैंड

प्रिय महोदय,

आपका १९ सितम्बरका पत्र मिला। उसके साथ आपने प्लेग फैलनेके बारेमें मेरे पिछले ४ अप्रैलके पत्र[3] से सम्बन्धित श्री लिटिलटनके पत्रकी प्रतिलिपि भी नत्थी की है। मैं जो

१. श्री विलियम डिगवी (१८४९-१९०४) भारतकी आर्थिक समस्याओंके प्रामाणिक जानकार, लेखक: *प्रॉस्परस ब्रिटिश इंडिया* ('समृद्ध ब्रिटिश भारत') और भारतकी राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश समितिके सदस्य थे।

२. दादाभाई नौरोजीने इस पत्रका बड़ा भाग उस पत्रमें उद्धृत किया है जो उन्होंने भारत-मन्त्रीको नवम्बर २२, १९०४को भेजा था (सी० ओ० २९१, खण्ड ७५, इंडिया ऑफिस)।

३. यह पत्र उपलब्ध नहीं है, किन्तु बहुत सम्भव है कि गांधीजीने अपने २-४-१९०४ के "प्लेग" शीर्षक लेखकी एक नकल दादाभाई नौरोजीको भेजी हो।

जानता हूँ उसे देखते हुए परमश्रेष्ठ लॉर्ड मिलनरका उत्तर पढकर बडा दु:ख होता है। इस विषयमें परमश्रेष्ठके नाम एक पत्र[1] लिखनेकी स्वतन्त्रता ले रहा हूँ, किन्तु तबतक यह कह दूँ कि मुझे अपने ४ अप्रैलके पत्रसे कुछ वापस नही लेना है। और यह लिखते हुए मुझे अपनी जिम्मेदारीका पूरा भान है और मैं यह सोच-समझकर लिख रहा हूँ। साथमे मैं *इंडियन ओपिनियनकी* वह प्रति[2] नत्थी कर रहा हूँ जिसमे डॉ० पोर्टर और मेरे बीचका सारा पत्रव्यवहार दिया हुआ है। मेरी नम्र सम्मतिमे उससे निर्णयात्मक रूपसे यह प्रकट हो जाता है कि प्लेग कैसे फैला। नगर-परिषदकी ओरसे बेदखली सितम्बर, १९०३ में की गई थी और प्लेगका फैलना सरकारी तौरपर २० मार्च, अर्थात् परिषदके कब्जा लेनेके छ: महीनेके बाद घोषित हुआ था। जैसा कि पत्रव्यवहारसे मालूम होगा, पहली चेतावनी ११ फरवरी[3] को दी गई थी। १५ फरवरी[4] को निश्चित सुझाव दिये गये ताकि आपत्तिसे बचा जा सके। और मैं अधिकसे-अधिक आदरपूर्वक, फिर भी जितना जोर देकर कह सकता हूँ, यह कहनेका साहस करता हूँ कि उस तारीखके बाद परिस्थितिको सुधारनेके लिए कुछ भी नही किया गया। सचमुच पिछली १८ मार्चके बाद भी बस्तीमें प्लेगके बीमार ला-लाकर पटके जा रहे थे और मैंने उसकी सूचना नगर-परिषदको दी थी। १९ मार्चको टाउन क्लार्कने खबर दी कि अस्थायी अस्पतालकी तरह काममे लानेके लिए वह सरकारी गोदाम और एक परिचारिका देनेके सिवा २१ मार्चके पहले न बीमारोकी जिम्मेदारी ले सकता है और न कोई आर्थिक जिम्मेदारी उठा सकता है। यह स्थान पहले चुगी-नाका था। तीस स्वयसेवक वहाँ लगा दिये गये। जगह भलीभाँति साफ की गई और भारतीय स्वयसेवक परिचारकोने, जो बीमार आ रहे थे, सबको भरती करके रात-दिन काम किया। जब डॉक्टर पेक्स और डॉक्टर मेकेंजी अस्पताल देखने आये तब उनकी समझमे परिस्थितिकी गम्भीरता आई और २० तारीखको उन्होने ज्यादासे-ज्यादा कारगर कार्रवाई की। इस बीच क्या खाट, क्या दवा-दारू, क्या भोजन — हर चीजका सारा प्रबध भारतीयोने किया था। यहाँ यह कहना न्यायोचित ही होगा कि उसके बाद नगर-परिषदने खर्च चुका दिया है। वैसे यह सब अप्रस्तुत है; और यदि मैंने भारतीयो द्वारा किये गये कामपर जोर दिया है तो वह यह दिखानेके लिए है कि मैं कटु अनुभवसे कह रहा हूँ और उसमे आवेगका अभाव नही है। यदि साथके पत्रव्यवहारमे पेश आँकडे सही हैं — भले ही मैंने जो नतीजे निकाले हैं उन्हे स्वीकार नही किया गया किन्तु आँकडोको किसीने गलत नही बताया — तो मैंने अपने पिछले ४ अप्रैलके पत्रमे जो कहा है, उससे कुछ कम कहता तो वह सत्यके पक्षकी सेवा न होती। मैंने उसमें कहा है कि यदि जोहानिसबर्गकी नगरपालिका घोर उपेक्षा न करती तो प्लेग कभी न फैलता। मार्चकी भयकर मृत्युसख्याके लिए हर हालतमें उसे ही जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए, और किसीको नही। परिस्थितिकी गम्भीरता समझने-पर उसने आपत्तिका मुकाबिला करनेमे पैसा पानीकी तरह खर्च किया, इसके लिए अशेप धन्य-वाद; किन्तु उस कामसे भूतकाल तो कदापि नही बदला जा सका। यह सत्य है कि बहुत पहले, सन् १९०१ में ही, बस्तीको गंदा घोषित करते हुए लम्बे सरकारी विवरण तैयार कर लिए गये थे, किन्तु फिर भी वह २६ सितम्बर, १९०३ तक उसी स्थितिमें बनी रहने दी गई और उस अवस्थामें प्लेग नही फैला। यह विचित्र लग सकता है कि प्लेग उस समय

१. देखिए, अगला शीर्षक।
२. ९-४-१९०४ का अंक; देखिए "पत्र: जोहानिसबर्गके अखबारोंको", अप्रैल ५, १९०४।
३. देखिए "पत्र: डॉ० पोर्टरको," फरवरी ११, १९०४।
४. देखिए "पत्र: डॉ० पोर्टरको," फरवरी १५, १९०४।

फैला जब बस्ती पूरी तरह नगर-परिषदके अधिकारमें आ गई, जब वह जो चाहती थी सो पा गई और साथ-साथ उसे बस्तीको नितान्त साफ-सुथरी रखनेका अवसर मिल गया। मुझे भय है कि परम माननीयको प्लेगके उद्भवके सम्बन्धमें एकदम गलत जानकारी दी गई है। मामला खतम हो गया है। भारतीयोंने नाहक कष्ट भोग लिया है; किन्तु मेरे द्वारा कही गई बातें आसानीसे जाँची जा सकती हैं। मेरा खयाल है डॉ० पेक्सका विरोध *इंडियन ओपिनियन*के सम्पादकीयके इस अशके सन्दर्भमें है: "स्पष्ट है कि डॉ० पेक्सने जब यह कहा था कि दूरस्थ जिलोमें जो कदम उठाये जा रहे हैं उनका हेतु प्लेगको रोकनेकी अपेक्षा भारतीयोंका उन्मूलन करना अधिक है, तब उन्होंने सच ही कहा था[1]।" डॉ० पेक्सने सचमुच ऐसा कहा हो चाहे नही, अखबारोंमें, उन्होंने ऐसा कहा, यह खबर थी। प्रस्तुत उल्लेख अखबारकी खबरके आधारपर किया गया है।

मैं आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर भी आकर्षित करना चाहता हूँ कि विधान-परिषदके सदस्य और उपनिवेशके स्वास्थ्य-अधिकारी डॉ० टर्नरके कथनसे इस दावेकी लगभग पुष्टि हो जाती है कि इस भयानक प्रकोपकी जिम्मेदारी नगर-परिषदपर है।

इस पत्रका आप जो उपयोग उचित समझें, करें।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २२६३)से।

२३८. पत्र: उच्चायुक्तके सचिवको

[जोहानिसबर्ग]
अक्टूबर ३१, १९०४

सेवामें
निजी सचिव
परमश्रेष्ठ उच्चायुक्त
जोहानिसबर्ग

महोदय,

यदि आप यह पत्र परमश्रेष्ठके सामने रखनेकी कृपा करें तो मैं बहुत आभार मानूंगा।

माननीय श्री दादाभाईने अपने पत्रके जवाबमें श्री लिटिलटनसे प्राप्त पत्रकी एक प्रतिलिपि मुझे भेजी है और उसके साथ, जोहानिसबर्गमें प्लेग फैलनेसे सम्बन्धित पिछली ४ अप्रैलको उन्हें लिखा गया मेरा पत्र भी नत्थी किया है। इस विषयमें परमश्रेष्ठके खरीतेका एक अश श्री लिटिलटनने उद्धृत किया है और चूंकि उसमें मेरे द्वारा दिये गये वक्तव्योंका जिक्र है, मैं उसके बचावमें अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करके परमश्रेष्ठका कुछ समय लेनेकी धृष्टता कर रहा हूँ।

परमश्रेष्ठने कहा है:

मैं इस वक्तव्यको पूर्णतः अनुचित मानता हूँ कि जोहानिसबर्ग नगरपालिकाकी उपेक्षाके बिना हालमें हुए प्लेगका फैलना सम्भव नहीं था। जोहानिसबर्ग परिषदने लापरवाही

१. देखिए "ट्रान्सवालमें प्लेग," ९-४-१९०४।

तो अलग परिस्थितिको पहलेसे भाँपकर सचमुच बीमारी होनेके एक वर्षसे भी पूर्व तैयारियाँ करके काफी दूरदर्शिताका परिचय दिया है।

बीमारीको भाँपकर रीटफॉटीनमे अस्पताल वगैरा बनाकर परिषदने तैयारी की, इससे कभी इनकार नहीं किया गया, किन्तु मै अत्यन्त नम्रताके साथ निवेदन करता हूँ कि एक प्रतिबन्धक उपाय, जो जरूरी था, बिलकुल छोड दिया गया, अर्थात् तथाकथित अस्वच्छ-क्षेत्रकी सफाईपर ध्यान नही दिया गया।

परमश्रेष्ठने अपने खरीतेमे भी कहा है,

बहुत बड़ी हदतक बस्तीके निवासियों और मालिकोंके विरोधके कारण ही उसपर कब्जे और उसकी सफाईमें देर होती गई, यहाँतक कि प्लेग फैल गया।

मै नम्रतापूर्वक परमश्रेष्ठका ध्यान इस तथ्यकी ओर खीचना चाहता हूँ कि सरकारी तौरपर प्लेगकी घोषणाके पाँच महीने पहले, अर्थात् पिछले वर्ष २६ सितम्बरको, कब्जा हो चुका था। और इसलिए [बस्तीको] खाली कराना पूरी तरह नगर-परिषदके हाथकी बात थी। सम्बन्धित भारतीयोका उस दिनसे कब्जा लेने या खाली करानेके प्रति कोई विरोध नही था, इतना ही नही, वरन् स्वय मैने कई बार उनकी ओरसे नगर-परिषद तथा उपनिवेश-सचिव दोनोसे नई जगहके लिए प्रार्थना की। परमश्रेष्ठको स्पष्टतया यह बताया गया है कि कब्जा प्लेग फैलनेके बाद लिया गया था। क्योकि परमश्रेष्ठ अपने खरीतेमे आगे कहते हैं:

कब्जा लेनेकी तिथितक भारतीय खुदमुख्त्यार थे, इसलिए यह बात, कि बस्तीमें भीड़भाड़ रहनेकी हालतका सबब जोहानिसबर्गकी नगर-परिषदकी लापरवाही थी, सत्यकी स्पष्ट तोड़-मरोड़ ही कही जा सकती है।

अगर कब्जा प्लेगके फैलनेके बाद लिया जाता तो सत्यकी तोड़-मरोड़ करनेका निमित्त बननेका आरोप मै स्वीकार कर लेता। किन्तु जैसा कहा जा चुका है, तथ्य यह है कि कानूनी और वास्तविक रूपमे भी परिषदने पिछले वर्ष पहली अक्टूबरको कब्जा लिया और अस्वच्छ क्षेत्रके निवासियोके सुझावके विपरीत तथा आदमियोकी कमीके कारण बस्तीकी समुचित स्वच्छता बनाये रखनेकी हालतमे न होनेके बावजूद परिषद एकदम हर किरायेदारकी मालिक बन गई। उसने किराया वसूल करनेके लिए दफ्तर खोल दिया और साराका सारा सूत्र-सचालन अपने हाथमे ले लिया।

नई सत्ताके हाथमे परिस्थिति इतनी असहनीय हो गई कि वे निवासी, जिनके खिलाफ परमश्रेष्ठ द्वारा उल्लिखित सरकारी विवरणोमे बार-बार गन्दगीका आरोप लगाया गया था, मेरे पास शिकायते लेकर आये और इसलिए मैने इस वर्षकी ११ फरवरीको — अर्थात् प्लेगकी बाकायदा घोषणाके एक महीनेसे भी पहले — उनकी ओरसे डॉ० पोर्टरको लिखा:

मै आपको भारतीय बस्तीकी भयंकर हालतके बारेमें लिखनेकी धृष्टता कर रहा हूं। कमरोंमें वर्णनातीत भीड़-भाड़ दिखाई पड़ती है। सफाई करनेवाले बहुत अनियमित रूपसे भेजे जाते है और बस्तीके अनेक निवासी मेरे दफ्तरमें आकर शिकायत कर गये है कि अब सफाईकी हालत पहलेसे भी बहुत बुरी है।

बस्तीमें काफिरोंकी भी बहुत बड़ी आबादी है, जिसका वस्तुतः कोई औचित्य नहीं है।

मैंने जो-कुछ सुना है, उससे मेरा विश्वास है कि बस्तीमें मृत्यु-संख्या काफी बढ़ गई है और मुझे लगता है कि आज जो हालत है वह यदि बनी रही तो, आज हो या कल, कोई संक्रामक बीमारी फैले बिना नही रह सकती।

१५ फरवरीको डॉ० पोर्टरके नाम दूसरें पत्रमे मैंने पहले पत्रमें उल्लिखित नुक्तोपर विस्तारसे लिखा और कुछ सुझाव देनेकी धृष्टता भी की, किन्तु १८ मार्चतक कुछ नही किया गया —यद्यपि १ मार्चको मैंने डॉ० पोर्टरको लिखी गई सूचनामें कहा था कि मेरी रायमें प्लेग वास्तवमें फैल चुका है।

मै, परमश्रेष्ठके अवलोकनार्थ, जो पत्रव्यवहार पत्रोंमें प्रकाशित हुआ था उसकी पूरी नकल नत्थी कर रहा हूँ। मुख्य तथ्योको आजतक चुनौती नही दी गई, और चूँकि मै, बस्तीके निवासी पिछले वर्षसे जिसमे से गुजरे है, ऐसी हर परिस्थितिको जानता हूँ, मुझे विनयपूर्वक यह कहनेपर बाध्य होनेकी जरूरत जान पड़ती है कि जोहानिसबर्ग नगरपालिकाकी अक्षम्य उपेक्षाके बिना प्लेग कभी नही फैल सकता था। अस्वच्छ क्षेत्रकी सारी आबादीको स्थानान्तरित करनेकी बड़ी-बडी योजनाओके मुकाबलेमें सामने पड़े हुए तात्कालिक कामकी पूरी उपेक्षा की गई।

अन्तमे मै यह कह सकता हूँ कि श्री नौरोजीको लिखनेमे सत्यकी सेवा और अपने देशवासियोकी अन्यायपूर्ण आरोपके समक्ष सुरक्षाके अतिरिक्त मेरी और कोई अभिलाषा नही थी।

मुझे विश्वास है कि इस पत्रके विषयकी महत्ताको परमश्रेष्ठका मूल्यवान् समय लेनेका पर्याप्त कारण माना जायेगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (सी० डब्ल्यू० २२६४—२,३,४,५) से।

२३९. तार: उपनिवेश-सचिवको

[जोहानिसबर्ग]
नवम्बर ३, १९०४

सेवामे
उपनिवेश-सचिव
[प्रिटोरिया]

श्री रॉबिन्सन सूचित करते हैं, लॉर्ड रॉबर्ट्स भारतीय समितिसे प्रिटोरिया मुकामके समय अभिनन्दनपत्र स्वीकार करेंगे। क्या कृपया लॉर्ड महोदयसे तारीख मालूम करेंगे।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइव्ज . ९२/२, एल० जी० ९३ : एशियाटिक्स १९०२-१९०६, फाइल स० २।

२४०. किसानोंका सम्मेलन

सम्मेलनमे अनेक प्रकारके मामलोकी चर्चा की गई, जिनमें से दोका सम्वन्ध भारतीयोसे था। कुछ समय हुआ, सम्मेलनने इस आशयका एक प्रस्ताव पास किया था कि सव भारतीयोंको पास रखने चाहिए। किस कारण, यह नही वताया गया। शायद गैर-गिरमिटिया भारतीय आवादीका अपमान करनेके सिवा अन्य कोई कारण नही था। सरकारने उत्तरमें कहा है कि सम्मेलन जैसा चाहता है वैसा कानून पास करनेके लिए सरकार तैयार नही है। इसलिए पादरी जे० स्कॉटने तजवीज पेश की कि वह प्रस्ताव सरकारके पास वापस भेजा जाये। अध्यक्षने वताया कि अगर भारतीयोपर बहुत अधिक पाबन्दियाँ लगाई गईं तो शायद भारत सरकार कोई आपत्ति करे। परन्तु श्री स्कॉटने कहा कि उस सूरतमे नेटाल मजदूर जुटानेके लिए दूसरे साधन काममे ला सकता है। हम चाहते है कि ऐसा हो। तभी यहाँ रहनेवाली भारतीय आबादीके बारेमे कोई ठीक समझौता हो सकेगा। इसके अलावा उपनिवेश भारतीय मजदूरोका आर्थिक मूल्य अनुभवसे जानेगा। [रस्किनने कही कहा है कि आर्थिक तत्त्वके रूपमें मनुष्यको केवल मशीन समझकर अध्ययन नही करना चाहिए, परन्तु उसके सम्बन्धमे विचार उसके सारे मानसिक गुणोको ध्यान रखकर करना चाहिए। इस दृष्टिसे देखा जाये तो हम मानते है कि [भारतीय मजदूर संसारमे सबसे अधिक दक्ष है। वे कदमे छोटे हो सकते है, सुस्त हो सकते हैं, कमजोर हो सकते हैं, परन्तु वे अत्यन्त सजीदा, शिकायत न करनेवाले, धैर्यवान, और दीर्घकालतक कष्ट सहनेवाले होते हैं। इसलिए, अपने मालिकोको तकलीफ नही देते और भरोसेका काम करनेवाले होते हैं।] अगर कोई दूसरे मजदूर लाये जायेंगे, चाहे अस्थायी तौरपर ही क्यो न हो, तो भी भारतीय मजदूरोके सभी विशेष गुणोकी, जिनको हमने गिनाया है, कद्र की जायेगी। और उनके गुणोके कारण उनका मूल्य ऊँचा आँका जायेगा। परन्तु जब-तक उपनिवेशके लिए भारतीय मजदूरोको रखना जरूरी है तबतक उपनिवेशियोको उन्ही पावन्दियोसे सन्तोष करना चाहिए जिन्हे पहलेसे लगाया जा चुका है; और उनमे प्रत्येक भारतीयको पास रखनेके लिए मजबूर करनेकी अपमानजनक पाबन्दी न बढ़ानी चाहिए। श्री मैक्क्रिस्टलने सयोगवश कहा था कि अधिकतर एशियाई ब्रिटिश प्रजाजन नही है, बल्कि अरव हैं। कुछ भारतीय बेशक अपनेको अरबी सौदागर कहते हैं, परन्तु इन महाशयके लिए इतना वड़ा अज्ञान प्रकट करनेका यह कोई कारण नही है। इस उपनिवेशमे "अरबी" शब्दका उपयोग मुसलमानके अर्थमें होने लगा है, क्योकि मुस्लिम धर्मका उदय अरबमे हुआ था।

दूसरा मामला, जिसपर सम्मेलनमे विचार किया गया, मजदूरोकी कमीका था। इस प्रकार सम्मेलनमे एक तरफ तो यह चाहा गया कि भारतीयोपर और अधिक पावन्दियाँ लगाई जायें और दूसरी तरफ मजदूरोकी कमीकी शिकायत की गई। भारतकी भी अपनी सीमाएँ है और हमें यह नही मान लेना चाहिए कि वह मजदूरोकी भरतीके लिए कोई अक्षय क्षेत्र है। स्वयं भारतमे आन्तरिक प्रवासकी एक व्यापक प्रणाली है और वहाँसे वर्मा और सिंगापुरकी तरफ एक अजस्र धारा बह रही है। उसमे लंका, मॉरिशस और फीजी–सहित दूसरे उपनिवेश भी मिला दीजिये। भारतीय मजदूरोको आकृष्ट करनेवाले अनेक प्रतिस्पर्धियोमे नेटाल सिर्फ एक है। इसलिए अगर मजदूरोपर अत्यधिक प्रतिवन्ध लगानेके कारण उसके मार्गमें बाधा आ जाये तो उसे आश्चर्य नही होना चाहिए। हमे कोई शका नही कि नये प्रवासी-कानूनसे मजदूरोकी

उपलब्धिपर बहुत असर पड़ेगा, क्योंकि उसके द्वारा गिरमिटिया लोगो और उनके बच्चोपर स्वतन्त्र होनेके बाद तीन पौंडका वार्षिक कर लगा दिया गया है। उपनिवेशको भारतीय मज-दूरोकी जरूरत है, और फिर भी वह उसके अनेक स्वाभाविक परिणामोसे बचना चाहता है। हमारे खयालसे यह असगत स्थिति रास्तेकी जितनी बड़ी रुकावट है उतनी जैसा सम्मेलनमें कुछ वक्ताओका खयाल था, यह समस्या नही कि नये प्रवासी पुरुषोके साथ प्रतिशत कितनी स्त्रियाँ हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५–११–१९०४

२४१. रंगमें भंग

ट्रान्सवालका तथाकथित एशियाई राष्ट्रीय सम्मेलन (एशियाटिक नेशनल कन्वेन्शन) अगर किया भी गया तो उसे जोहानिसबर्गके प्रतिनिधियोके बिना ही करना होगा। यह हैमलेट [नायक]-के बिना हैमलेट [नाटक]-के अभिनयके समान होगा। इस "स्वर्ण-नगरी" के वाणिज्य-सघ और व्यापार-सघ दोनोने किसी भी ऐसे सम्मेलनसे सम्बन्ध रखनेसे इनकार कर दिया है जिसका उद्देश्य, श्री मिचलके शब्दोमें, बेगुनाह लोगोकी सम्पत्ति जब्त करना हो। इन सघोका कहना है कि सम्मेलनके सयोजकोने जो प्रस्ताव रखे है वे इतने कड़े है कि कोई ब्रिटिश समुदाय उन्हे स्वीकार नही कर सकता। क्योंकि उनके पीछे नीयत यह है कि ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोको मुआवजा दिये बिना *बाजारोंमें* हटा दिया जाये और निहित स्वार्थोंकी कोई परवाह न की जाये। श्री बोर्क और श्री लवडेने जो इलाज सुझाया है वह पॉचेफस्ट्रूम पहरेदार सघके लिए भी अत्यन्त तेज है, यद्यपि, जैसा हमारे पाठक जानते है, यह संघ उस समय भी भारतीयोंका बुरी तरह विरोधी था, जब भारतीय प्रश्नपर सरकारी रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी। हम दोनो व्यापार-सघो और पॉचेफस्ट्रूम संघको बधाई देते है कि उन्होने न्यायपर आरूढ रहनेका साहस किया। अन्धे और विवेकरहित विद्वेषके बीचमें प्रतिनिधि-सस्थाओं द्वारा प्रकाशित गम्भीर विचारो और भावोकी सराहना करते हुए हमें राहत मिलती है। हमें सन्देह नही कि यदि ब्रिटिश भारतीय कुछ समय और देंगे, थोडा और धैर्य रखेंगे और पूर्णत शान्तचित्त रहेंगे तो बाकी सब काम अपने आप हो जायेगा। जैसा स्वर्गीय प्रोफेसर मैक्समूलर कहा करते थे, किसी नये सत्यको लोगोके गले उतारने और उनके पहलेसे बने हुए खयालोको मिटानेका एकमात्र उपाय यही है कि उसे अथक रूपमें बार-बार दुहराया जाये। इसलिए हमारा कर्तव्य स्पष्ट है। हमें मौका हो चाहे न हो, यह दिखाते ही रहना चाहिए कि भारतीयोका मामला मजबूत है और भारतीयोने कभी कोई ऐसी माँग नही की जो औचित्यके साथ स्वीकार न की जा सके और जिसका गोरे व्यापारियोके हितो और गोरे प्रभुत्वसे विरोध हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५–११–१९०४

२४२. ट्रान्सवालकी रेलोंमें रंगदार यात्री

जोहानिसबर्गके अखबारोमे परमश्रेष्ठ उच्चायुक्त और रैंड अग्रगामी सघ (रैंड पायोनियर्स) का एक दिलचस्प पत्रव्यवहार प्रकाशित हुआ है। उसका विषय है, ट्रान्सवालके वतनी लोगोका मध्य दक्षिण आफ्रिकी रेलोपर पहले और दूसरे दर्जोमे यात्रा करना। लॉर्ड मिलनरने रैंड अग्रगामी संघको विश्वास दिलाया है कि आयन्दा छूटके प्रमाणपत्र-प्राप्त लोगोके सिवा और किसी वतनीको रेलोमे पहले या दूसरे दर्जेमे यात्रा नही करने दी जायेगी और निरीक्षको और स्टेशनमास्टरोको हिदायत कर दी गई है कि रंगदार मुसाफिरोको गोरे मुसाफिरोसे अलग रखा जाये। रैंड अग्रगामी सघने अपनी माँग वतनी लोगोतक ही सीमित रखी है, परन्तु मुख्य व्यवस्थापक श्री प्राइसने जो हिदायतें जारी की है, उनके अन्तर्गत ब्रिटिश भारतीयो-सहित सब रगदार लोग आ जाते है। अलबत्ता, यह जानकर कुछ सन्तोष होता है कि प्रतिष्ठित ब्रिटिश भारतीयोको कठिनाईके बिना पहले या दूसरे दर्जेके टिकट मिल जाया करेंगे। प्रयोगके तौरपर प्रिटोरिया-पीटर्सबर्ग मार्गपर रगदार मुसाफिरोके लिए विशेष डिब्बे जोड़े जायेंगे। तिलका ताड़ कैसे बनाया जा सकता है, इसका यह एक उदाहरण है। और अगर अलग-अलग जातियोके लिए अलग-अलग डिब्बे रखने हैं तो तर्ककी दृष्टिसे वतनी लोगो, चीनियो, ब्रिटिश भारतीयो, केपके रगदार लोगो, बोअरो, अग्रेजो और जर्मनो वगैरा सबके लिए अलग डिब्बे होने चाहिए। उस सूरतमें बेशक यह सवाल होगा कि इस लाइनको कमाऊ कैसे बनाया जाये। परन्तु ट्रान्सवालकी भावनाका, चाहे वह उचित हो या अनुचित, सम्मान कैसे किया जाये, इसके मुकाबलेमे वह बहुत छोटी बात होगी। मगर, मजाककी बात छोड़िए। यदि भेद रखना है तो हमारे खयालसे तीन अलग तरहके डिब्बोकी जरूरत होगी, अर्थात्, यूरोपीयो, वतनियों और एशियाइयोके लिए। मुख्य व्यवस्थापकका जारी किया गया परिपत्र तो सचमुच भिड़का छत्ता है और हमें पूरा यकीन है कि हमने जो-कुछ सुना है वह अन्तिम बात नही होगी। रैंड अग्रगामी संघने पहले ही अपना असन्तोष जाहिर कर दिया है और वह नही मानता कि ट्रान्सवालके वतनी लोगोको पहले या दूसरे दर्जेमे जरा भी सफर करने दिया जाये। वह माननेसे इनकार करता है कि जिनके पास छूटके प्रमाणपत्र है और जिनके पास नही है, उनमे कोई भेद है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ५-११-१९०४

२४३. पत्र: दादाभाई नौरोजीको

21–24 कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक और एंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
नवम्बर ५, १९०४

सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी
२२, केनिंगटन रोड
लदन

प्रिय महोदय,

आपका १३ अक्टूबरका पत्र मिला। मैं आपको, सर विलियम, सर मंचरजी और पूर्व भारतीय सघको साप्ताहिक चिट्ठी अक्सर भेजता हूँ। प्लेग-सम्बन्धी पत्रव्यवहारपर लॉर्ड मिलनरको लिखे गये अपने पत्रकी[1] प्रति इसके साथ नत्थी कर रहा हूँ।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २२६४–१) से।

२४४. लॉर्ड रॉबर्ट्सको मानपत्र[2]

[नवम्बर ९, १९०४]

ब्रिटिश भारतीयो द्वारा लॉर्ड रॉबर्ट्सको मानपत्र भेंट करनेका सुखद समारोह शुक्रवार, ११ नवम्बरको तीसरे पहर पौने तीन बजे किया गया। उस पुराने अनुभवी सिपाहीने मानपत्रपर हस्ताक्षर करनेवाले लोगोका स्वागत बड़े सौजन्यसे किया और सारा आयोजन सन्तोषपूर्वक सम्पन्न हुआ। मानपत्रकी सलिपि यह थी·

सेवामें

फील्ड मार्शल परममाननीय कंदहार, वॉटरफोर्ड और प्रिटोरियाके अर्ल राबर्ट्स, के० जी०, के० पी०, जी० सी० बी०, जी० सी० एस० आई०, जी० सी० आई० ई०, ओ० एम० वी० जी०, प्रिटोरिया।

लॉर्ड महानुभाव,

हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले, ट्रान्सवाल-निवासी ब्रिटिश भारतीयोके प्रतिनिधि, इस देशमें, जहाँ आपने हाल ही मे साम्राज्यके लिए परिश्रम किया है, आपका, काउटेस रावर्ट्सका और देवी एलीन और एडविना रावर्ट्सका सादर स्वागत करते है।

१. देखिए "पत्र: उच्चायुक्तको" अक्टूबर ३१, १९०४।
२. यह "हमारे विशेष संवाददाता द्वारा" प्रेषित रूपमें छापा गया था।

हमारे लिए यह कम गर्वका विषय नही है कि भारतने ही साम्राज्यको आधुनिक कालका सबसे बड़ा सिपाही दिया है, जिसमे सिपाहीकी कठोरता और साधुकी कोमलताका सामजस्य है।

हम भगवान्से प्रार्थना करते है कि वह आपको, काउटेस रावर्ट्सको और परिवार भरको अपना अनुग्रह प्रदान करे और साम्राज्यको दीर्घ कालतक आपकी अनुभवी सलाहोका लाभ मिलता रहे।

प्रिटोरिया, नवम्बर ९, १९०४।

आपके विनम्र और आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
हाजी मुहम्मद हाजी जुसब
हाजी हबीब हाजी दादा
एम० एस० कुवाड़िया
इस्माइल आमद मुल्ला
अमृतलिग चेट्टी
आमद हाजी तैयब
अहमद लतीब
हाजी उस्मान हाजी अब्बा
मो० क० गांधी

यह चमडेके कागजपर सुन्दर–सुनहले अक्षरोमे लिखा गया था और कुमारी ऐडा एम० विसिक्सने, जिनके हाथोमे यह काम सौपा गया था, इसके लिए एक बिलकुल मौलिक नमूना सोचा था। मानपत्रका बाईं ओरका सारा भाग भारतके सुन्दर पक्षी मोरके हूबहू चित्रने घेर लिया है। अक्षर भी बहुत सुन्दर है और सारी सजावट एक कलाकृति है। मानपत्र ठोस चाँदीके डिब्बेमे बन्द था जिसपर कमलके फूल खुदे हुए थे। मानपत्र और डिब्बा दोनो ही उस विशिष्ट प्राप्तिकर्ता और भारतीय समाजके अनुरूप थे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९–११–१९०४

२४५. एशियाई राष्ट्रीय सम्मेलन

जबतक यह लेख छपेगा —ट्रान्सवालमे तथाकथित राष्ट्रीय सम्मेलन हो चुकेगा। जोहानिसबर्गकी प्रतिनिधि सस्थाओने अब अपने नुमाइन्दे भेजनेका निश्चय कर लिया है और श्री बोर्क और श्री लवडेने उन सस्थाओके सुझाये सशोधन स्वीकार कर लिये है। इसलिए प्रस्तावोमे मुआवजेका सिद्धान्त आ गया है। परन्तु हमारी रायमे सब संशोधनोको मिलाकर देखा जाये तो वास्तवमें उनका अर्थ बहुत थोड़ा निकलेगा। पिछले अनुभवसे हमें चेतावनी मिलती है कि ऐसे सिद्धान्तके अपना लिये जानेसे भी कोई आशा नही रखनी चाहिए। पाठकोको याद होगा कि उस एशियाई आयोगने, जो सरकार द्वारा नियुक्त किया गया था और जो सौभाग्यवश, *हबीब मोटन* बनाम *सरकार* नामक परीक्षात्मक मुकदमेके कारण निष्फल हो गया था, उन सब भारतीयोके दावे अस्वीकार कर दिये थे, जो लड़ाई छिडनेसे ठीक पहले व्यापारमे लगे हुए थे। पॉचेफस्ट्रूमके लोगोने काफी स्पष्ट कर दिया है कि उनके खयालके मुताबिक मुआवजा उन्हीतक सीमित रहना चाहिए जिनके पास लडाई छिडनेके समय पृथक् बस्तियोके बाहर व्यापार करनेके परवाने थे। इसलिए हमारे खयालसे मुआवजेका अर्थ या तो बहुत थोडा-सा है या कुछ नही है। तब इस सारे भारतीय-विरोधी आन्दोलनका क्या होगा? अगर राष्ट्रीय सम्मेलनकी ही विजय होनी है तो हम उसका परिणाम जानते है। उस हालतमें प्रत्येक स्वाभिमानी ब्रिटिश भारतीयको अवश्यम्भावीका सामना करने और इस देशसे चले जानेके लिए तैयार रहना चाहिए। कहनेका अर्थ यह है कि उसे अपने ही घरमे अन्त्यज होकर रहना पडेगा। भारतीयोको बचपनसे ही, बहुधा अंग्रेज शिक्षकको द्वारा और ब्रिटिश देखरेखमें छपी और प्रकाशित हुई पुस्तकोके माध्यमसे सिखाया गया है कि ब्रिटिश सरकारकी दीर्घ भुजा सबलसे निर्बलकी रक्षा करती है। जैसा कि गुजरातके स्वर्गीय राष्ट्रकविने[1] कहा है: "देखो, शत्रुता समाप्त हो गई, दुष्कर्मी सदाके लिए कुचल दिये गये और अब (अंग्रेजी राज्यमे) कोई मेमनेके भी कान, नही ऐंठता।" भारतीयोको यह भी सिखाया गया है कि जो देश ब्रिटिश नरेश और सम्राट्के राज्यमे शामिल है उनमें प्रत्येक प्रजाजनको पूरी स्वतन्त्रता और तमाम नागरिक अधिकार प्राप्त है — यहाँ तक कि, ब्रिटिश भूमिपर विदेशियोके भी बन्धन टूटकर गिर जाते है। हम कहते है कि अगर राष्ट्रीय सम्मेलनकी जीत हो गई तो भारतीयोको यह सब भूल जाना होगा। उन्हे पट्टी पोछ डालनी होगी और ब्रिटिश सविधानमे अबतक उन्होने जो-कुछ सुन्दर समझा है उस सबको विस्मृत कर देना होगा और अपनी रोजीका साधन छिनता हुआ देखकर सन्तोष करना पडेगा। परन्तु हमे यह विश्वास नही होता कि जबतक ट्रान्सवाल ब्रिटिश ध्वज (यूनियन जैक) की इज्जत करता है तबतक वहाँ ऐसी कोई घटना सम्भव है। हम कल्पना नही कर सकते कि श्री लिटिलटन अपने खरीतेमें उल्लिखित नीतिसे मुँह मोड लेगे और ऐसी बात मजूर करेगे जो भाषामे नही तो भावोमें अवश्य ही ब्रिटिश प्रजाजनोके अधिकारोको जब्त करनेकी कार्रवाई होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२–११–१९०४

१. गुजराती कवि श्री दलपतराम, जो एक वर्ष पूर्व मृत्युको प्राप्त हुए थे।

२४६. नेटालका भारतीय आहत-सहायक दल[1]

हमारा लन्दनसे प्रकाशित सहयोगी *इंडिया* इस दलके सम्बन्धमे सरकारी आँकडे स्वीकार करके गलतीका शिकार हो गया है, यद्यपि स्वय उसकी फाइलोमे सही आँकडे मौजूद है। दुर्भाग्यसे इस दलके बारेमे पदक देनेका सारा काम ही गड़बड़ हो गया है। इसलिए हम आम जानकारीके लिए सही बाते फिरसे बता दे। दलकी रचना पहले-पहल कोलेजोकी लडाईमे सेवा करनेके लिए की गई थी। उस समय उसमे २५ नायक — सरदार नही और ६०० डोलीवाहक थे। नायकोको कुछ भी वेतन नही मिलता था — उनकी वर्दियोकी लागत भी भारतीय व्यापारियोने दी थी। थोडे समयकी सेवाके बाद दल भग कर दिया गया। जब स्पियनकॉपकी तरफ बढनेकी पहली कोशिश की गई तब कर्नल गालवेने आज्ञा दी कि दल फिरसे बनाया जाये। उस समय लगभग ३० नायक और कमसे-कम १,१०० से १,२०० तक डोलीवाहक थे। इस बार दलने ६ सप्ताह सक्रिय सेवा की और इस बीच आश्चर्यजनक यात्राएँ की — यहाँतक कि, वह घायलोको लेकर प्रतिदिन २५-२५ मीलतक चला। जनरल बुलरने अपने खरीतोमे उसके कामका खास तौरसे उल्लेख किया है। यह किसीको पता नही कि सिर्फ आठ ही तमगे क्यो बाँटे गये। नायकोमे से प्रत्येक उनका हकदार है और अगर युद्ध-कार्यालयका इन लोगोमे पदक बाँटनेका इरादा है, जैसा कि अवश्य होना चाहिए, तो हम लगभग सभीका पता लगानेकी जिम्मेदारी ले लेगे। उस समय डोलीवाहकोके नाम-पते वगैराकी पूरी सूची रखी गई थी और वह दल-व्यवस्थापकके पास होनी चाहिए। जिस ढगसे पदक बाँटे गये है उसके बारेमे हमने बहुत नही कहा है, क्योकि हम चाहते है कि जिन नायकोने काम किया, वे किसी पुरस्कारसे अपना सम्बन्ध न रखे। उन्होने विशुद्ध कर्तव्य समझकर यह कार्य अपने जिम्मे लिया था; और उनकी योग्यताकी कद्र की जाती है या नही, इसकी परवाह न करके उन्हे यह कर्तव्य फिर भी हाथमें लेनेके लिए सदा तैयार रहना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२–११–१९०४

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १३८।

२४७. एडविन आर्नोल्ड-स्मारक

एडविन आर्नोल्ड-स्मारक समितिके जारी किये हुए परिपत्रकी एक प्रति हमें मिली है। समितिका —

> खयाल है कि सर एडविनके कामका सबसे उचित सम्मान वह होगा जिससे उनका नाम प्राच्य साहित्यके प्रति उनकी महान सेवाओंके साथ जुड़ जाये। यह उनका विशेषाधिकार था कि अपनी काव्य-प्रतिभा . . . और पूर्वी सभ्यता, रीति-रिवाजों और घटनाओंपर अपने सजीव और प्रदीप्त गद्य-लेखोंके द्वारा उन्होंने यूरोप और अमेरीकाके पाश्चात्य लोगोंको पूर्वके लोगोंका अधिक ज्ञान कराया और इस प्रकार उनमें आपसी दिलचस्पी और हमदर्दी पैदा की, जिससे दोनोंके कल्याण और सुखकी वृद्धि हुए बिना नहीं रह सकती। . . . इसलिए समिति ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयमें प्राच्य साहित्यमें प्रवीणता प्राप्त करनेके लिए छात्रवृत्ति या छात्रवृत्तियाँ देना अथवा पुरस्कारोंकी स्थापना करना चाहती है।

समितिमे परम माननीय लॉर्ड ब्रेसी, अध्यक्षके रूपमे है और सर आगा खाँ, सर मंचरजी मेरवानजी भावनगरी, सर जॉर्ज बर्डवुड, परममाननीय जोजेफ चेम्बरलेन, वायकाउट हयाशी, श्री रूडयार्ड किपलिंग और दूसरे लोगोके नाम भी है। चन्दा श्री हेनरी एस० किंग ऐंड क०, ६५ कॉर्नहिल, लन्दनके पतेपर भेजा जा सकता है। अगर हमारे कोई पाठक हमारे पास अपना चन्दा भेजेंगे तो हम *इंडियन ओपिनियनमें* खुशीसे उसकी प्राप्ति स्वीकार करेंगे और उसको समय-समयपर खजानचीको भेज देंगे। सर एडविनकी पूर्व और पश्चिमके प्रति सेवाओकी अभी-तक काफी कद्र नही की गई है। समय ही बतायेगा कि उनकी ये सेवायें कितनी बडी थी। पश्चिमी मानसपर अकेले एशियाकी ज्योति (*लाइट ऑफ एशिया*) ग्रन्थकी छाप ही सदाके लिए अमिट हो गई है। कहा जाता है कि अपने मानसके पूर्वी रुझानके कारण ही उन्हे राजकविका पद नही मिल पाया। इसलिए हमे आशा है कि हमारे पाठक, भारतीय और यूरोपीय दोनो, इस स्मारक-कोषमे बहुतायतसे चन्दा भेजेंगे।[1]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२-११-१९०४

१. इसमें खुद गांधीजीने ३ पौंड ३ शिलिंग चन्दा दिया था।

२४८. सम्राट चिरायु हों!

हम महामहिम सम्राट्को उनकी वर्षगाँठपर आदर और भक्तिपूर्वक अपनी बधाई अर्पित करते है। महामहिमने पिछले बुधवारको अपना ६३ वाँ वर्ष पूरा किया और साम्राज्यके एक सिरेसे दूसरे सिरेतक भगवान्से प्रार्थना की गई कि उनके जीवनमे इस दिनके अनेकानेक सुखमय प्रत्यावर्तन हो। यूरोपके तमाम राजाओमे से कोई ऐसा नही है जो सम्राट् एडवर्डकी तरह आदर्शकी पूर्ति करता हो। एक वैधानिक राजतंत्रकी मर्यादाओको मानते हुए भी उन्होने साबित कर दिया है कि वे अपनी कुशलता और सज्जनतासे साम्राज्यकी जबरदस्त सेवा कर सकते है। फ्रान्समे उनका कार्य, पोपसे उनकी भेंट, और कैसरसे उनकी मुलाकात — इन सबसे शान्तिके पक्षको बल मिला है। यह एक खुला रहस्य है कि बोअर युद्धकी समाप्ति करानेमे महामहिमका बड़ा हाथ था। अपने प्रजाजनोके प्रति उनकी उदारता और उनकी सहानुभूति सुप्रसिद्ध है। उन्होने हमेशा भारतीय राष्ट्रके कल्याणका बड़ा खयाल रखा है। और जब वे युवराज (प्रिंस ऑफ वेल्स) थे, तब अपनी भारत-यात्रासे उन्होने अपने प्रति भारतीय राष्ट्रका व्यक्तिगत आदरभाव प्राप्त किया था। सर्वशक्तिमान परमेश्वरसे हमारी विनीत प्रार्थना है कि वह साम्राज्यके लिए महामहिमको चिरायु करे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२-११-१९०४

२४९. ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें ब्रिटिश भारतीय

ऑरेंज रिवर उपनिवेशमे सरकार और लोग दोनो बराबर प्रतिक्रियावादी और भारतीय-विरोधी नीतिका अनुसरण कर रहे है। अन्यत्र हम कुछ उद्धरण छाप रहे है जिनसे जाहिर होता है कि भारतीय किस तरह खदेड़े जा रहे है। सरकार यह आग्रह करके सन्तुष्ट नही मालूम होती कि उपनिवेशमें बसनेका इच्छुक प्रत्येक भारतीय यह घोषणा करे कि जबतक वह वहाँ रहेगा तबतक सदा किसी-न-किसीकी नौकरीमे रहेगा। इसलिए अब उसका आग्रह यह है कि भारतीय जब अपना मालिक या कामका स्वरूप बदले तब हर बार इसकी नई घोषणा करे। और फिर भी यह बिलकुल अधिकारियोंकी मर्जीपर निर्भर रहेगा कि वह उपनिवेशमे ठहरे या नही। इस तरहकी परिस्थिति तुरन्त खतम होनी चाहिए या सुधरनी चाहिए। हमने उपनिवेशमे एशियाइयोके विरुद्ध कड़े कानूनोकी तरफ प्रायः ध्यान दिलाया है। परन्तु हमने अभीतक तो कोई राहत मिलती देखी नही है। क्या हम समझे कि ऑरेंज रिवर उपनिवेशमे ब्रिटिश भारतीयोके प्रति यह अपमानजनक व्यवहार हमेशा होता रहेगा और भारत-कार्यालय चुपचाप बैठा रहेगा?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १२-११-१९०४

२५०. लॉर्ड रॉबर्ट्स और ब्रिटिश भारतीय

हम लॉर्ड रॉबर्ट्सको रजत मंजूषासह मानपत्र भेंट करनेपर ट्रान्सवालवासी स्वदेश भाइयोको बधाई देते है। हम इस मानपत्रकी सलिपि और मजूषाका विवरण एक दूसरे स्तम्भमें छाप रहे है।[1] उनका यह कार्य बहुत ही शोभाजनक था। जैसा कि मानपत्रपर हस्ताक्षर करनेवालोने कहा है, भारतीयोके लिए यह कुछ कम गर्वकी बात नही कि साम्राज्यको इस जमानेका सबसे बडा सिपाही भारतने दिया है। अपनी कठोर सैनिकताके बावजूद लॉर्ड रॉबर्ट्समें दयालुता बहुत अधिक है। उन्होने बोअर युद्धके दिनोमे कैदियोके प्रति बरतावमे बहुत ज्यादा लिहाजसे काम लिया। भारतीय सिपाहियो और भारतसे सम्बन्धित सभी बातोमें उन्होने सदा सहानुभूतिपूर्ण रस लिया है; और ट्रान्सवालके भारतीयोने इस देशमें आनेपर लॉर्ड महोदयका सम्मान किया यह बिलकुल उचित ही था।

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, १२-११-१९०४

२५१. तार: दादाभाई नौरोजीको

[जोहानिसबर्ग
नवम्बर १८, १९०४]

सेवामे
इनकाज[2]
लदन

सारे ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोकी वृहद् सभा। एशियाई सम्मेलनकी कार्यवाहीके विरोधमे प्रस्ताव क्योकि ब्रिटिश प्रजाजनो और अन्यो — वतनियो और भारतीयो —, में अन्तर नही किया गया [और] सम्मेलनके प्रस्तावो पर अमलका अर्थ जब्ती और बरबादी, सम्मेलनके आरोपकी खुली जाँचकी माँग, सामान्य आधार पर — जातीयपर नही — प्रवास प्रतिबन्ध सिद्धान्त स्वीकृत, कानून सुझाया गया कि स्थानीय निकाय नये व्यापारिक परवाने दें जिनपर सर्वोच्च न्यायालयमे अपील की जा सके।

ब्रिटिश भारतीय

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स, सी०ओ० २९१, खण्ड ७९, इंडीविज्युअल्स-एन।

१. यह वस्तुतः नवम्बर १९, १९०४ के अंकमें इस टिप्पणीके साथ छापा गया था: "हमें खेद है कि निम्न रिपोर्ट हमारे पिछले अंकमें शामिल करनेसे छूट गई थी।" देखिए "अभिनन्दनपत्र : लॉर्ड रॉबर्ट्सको", नवम्बर १९, १९०४।

२. दादाभाई नौरोजीका तारका पता। दादाभाईने तारकी प्रति उपनिवेश-सचिवके पास भेजी। (सी० ओ० २९१, खण्ड ७९, इंडीविज्युअल्स-एन) *इंडियाने* अपने नवम्बर २५, १९०४ के अंकमें तारको निम्नलिखित सम्पादित रूपमें प्रकाशित किया था:

जोहानिसबर्ग
नवम्बर १८, १९०४

ट्रान्सवालके सब भागोंसे आये हुए ब्रिटिश भारतीयोंकी जोहानिसबर्गमें एक विशाल सभा हुई है और

२५२. मुख्य न्यायाधीश और ब्रिटिश भारतीय

उस दिन सर हेनरी वेलने कहा कि अदालत भवनमे आनेवाले भारतीयोका व्यवहार जाहिरा तौरपर अनादरपूर्ण होता है, क्योकि उससे अदालतके प्रति सम्मानका कोई वाहरी लक्षण प्रकट नही होता। वे अपनी पगडी या टोपी नही उतारते, क्योकि उनका रिवाज इसके विपरीत है, और जूते उतारे नही जा सकते, क्योकि ऐसा करना असुविधाजनक होता है। महानुभावने निर्णय दिया कि प्रत्येक भारतीयको अदालतमे घुसनेपर सलाम करना होगा। अगर यह नही किया जायेगा तो इसे अदालतका अपमान समझा जायेगा। हम महानुभावका ध्यान आदर-पूर्वक इस तथ्यकी ओर आर्काषित करते है कि पगडी बाँधना या भारतीय टोपी लगाना ही आदरका चिह्न है। क्योकि जैसे यूरोपीय रिवाजके अनुसार किसी स्थानमे प्रवेश करने पर टोप उतारना आवश्यक होता है, वैसे ही भारतीय रिवाजके अनुसार पगड़ी बाँधे रखना या टोपी पहने रहना, जैसी भी स्थिति हो, आवश्यक होता है। आदरका अभाव भारतीयोकी विशेषता नही है, और हम महानुभावको विश्वास दिलाते है कि सलाम न करनेमे उनका आशय अनादर करना नही हो सकता। सलाम तभी होता है जब सलाम करनेवाले और लेने-वाले दोनोकी आँखे मिले और यह अदालत-भवनमे सम्भव नही, क्योकि वहाँ तो न्यायाधीश अपने सामने पेश मामलेमे व्यस्त होता है। हमारी रायमे केवल यह एक बात सम्भव है कि गवाहके कठघरेमे जानेपर भारतीयसे बेशक सलाम कराया जाये। मगर हमारे खयालसे यह चेतावनी आवश्यक नही है, क्योकि गवाहके कठघरेमे प्रवेश करनेपर प्रत्येक भारतीय स्वभावसे ही अदालतके प्रति समुचित सम्मान व्यक्त करता है। फिर भी भारतीय मुकदमेबाजोके लिए यह अच्छा ही है कि जब अदालतोंमे जानेका मौका पड़े तब वे महानुभावकी हिदायतोको ध्यानमे रखे। हमें किसी भी हालतमे किसीको इस सन्देहका भी अवसर नही देना चाहिए कि हम न्यायाधीशो अथवा दूसरे अधिकारियोका कोई अनादर करते है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९–११–१९०४

उसमें ११ नवम्बरको प्रिटोरियामें हुए "सम्मेलन" की ट्रान्सवालमें एशियाई-प्रवास सम्बन्धी कार्यवाहीके विरोधमें प्रस्ताव पास किये गये हैं।

विरोधका आधार यह है कि उक्त "सम्मेलन" ने दक्षिण आफ्रिकाके वतनियों और भारतीयोंमें, जो ब्रिटिश सम्राट्की प्रजा हैं, कोई अन्तर नहीं किया।

सभाने घोषित किया कि यदि "सम्मेलन" के प्रस्तावोंपर अमल किया गया तो उसका अर्थ जब्ती और भारतीय व्यापारियोंका सर्वनाश होगा।

इसके अतिरिक्त सभाने "सम्मेलन" के आरोपोंकी खुली जाँचकी माँग की और सामान्य आधारपर — जातीयपर नहीं — प्रवासपर प्रतिवन्ध लगानेका सिद्धान्त स्वीकार किया। यह सुझाया गया कि एक कानून बनाया जाये जिसके अनुसार स्थानीय निकाय नये व्यापारिक परवाने दे; किन्तु उनके वारेमें सर्वोच्च न्यायालयमें अपील की जा सके।

२५३. ऑरेंज रिवर उपनिवेश और ब्रिटिश भारतीय

८ तारीखको ब्लूमफॉटीनमें जो किसान-सम्मेलन हुआ था उसमें ऑरेंज रिवर उपनिवेशके परमश्रेष्ठ गवर्नरने उस उपनिवेशके भारतीय-विरोधी कानूनके बारेमें निम्नलिखित विचार प्रकट किये :

> **इस उपनिवेशमें एशियाइयोंके आगमनके बारेमें बात यह है कि मेरे लिए इस सवालको थोड़ा छेड़ना भी बहुत खतरनाक है। क्योंकि ब्रिटिश भारतीयोंके बारेमें हमारे इंग्लैंडवासी लोगोंकी भावना बहुत तीव्र है, परन्तु मैं इतना कह सकता हूँ कि कानूनमें पिछली सरकारके मंजूर किये हुए कानूनसे फिलहाल कोई परिवर्तन नहीं होगा और न अभी कोई परिवर्तन करनेका हमारा खयाल है।**

तो अब हमें उपनिवेशके ब्रिटिश भारतीयोंकी निर्योग्यताओंके बारेमें राज्यके प्रधानकी तरफसे एक निश्चित घोषणा मिल गई है। इसलिए जाहिर है कि ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें प्रवेश करते ही भारतीयोंपर जो अपमानजनक प्रतिबन्ध लगा दिये जाते हैं, उनसे कोई राहत नहीं मिलेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९-११-१९०४

२५४. लॉर्ड नॉर्थब्रुककी मृत्यु

बुधवारकी दोपहरको माननीय लॉर्ड नॉर्थब्रुककी[1] मृत्युका समाचार पढ़कर हमें अत्यन्त खेद हुआ। वर्षोंसे हम लोग लॉर्ड नॉर्थब्रुकका नाम सुन रहे हैं। लॉर्ड मेयोका खून होनेके बाद लॉर्ड नॉर्थब्रुक भारतके वाइसराय और गवर्नर जनरल बने। उनके समयमें हमेशा याद रखने लायक दो ऐतिहासिक घटनाएँ हुई — हमारे युवराज (प्रिन्स ऑफ वेल्स) ने भारतकी यात्रा की[2] और बड़ौदा-नरेश श्री मल्हारराव गायकवाड़ गद्दीसे उतारे गये[3]। हमारे लिए विशेष दुःखका कारण यह है कि हम लोगोंके प्रति उनकी बहुत सद्भावना थी। १८९७-९८ में, जब दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय प्रतिनिधि लन्दनमें थे, इन माननीय महोदयने अनेक प्रसंगोंपर उन्हें उत्तम परामर्श दिया था और आवश्यकता प्रतीत होनेपर खासी सहायता भी दी थी। इतना ही नहीं, बल्कि यह भी कहा था कि यदि हमारा प्रश्न कभी लॉर्ड-सभामें उठाना पड़े तो वे पूरी सहायता देंगे। इसके बाद उनकी सहानुभूतिके पत्र डर्बन भी आया करते थे। हमारा विश्वास है कि यहाँकी कांग्रेस उपयुक्त प्रस्ताव स्वीकृत करके अपने कर्तव्यका पालन करेगी। जोहानिसबर्गमें ट्रान्सवालके भारतीयोंने उपयुक्त प्रस्ताव स्वीकृत किया, यह बड़ा अच्छा किया है, इसमें हमारी पूरी सहमति है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९-११-१९०४

१. सन् १८७२ से ७६ तक भारतके वाइसराय।

२. सन् १८७५ में।

३. ब्रिटिश रेजिडेंटकी हत्याका प्रयत्न करनेके आरोपमें; यद्यपि जाँच-अदालत उनके अपराधके सम्बन्धमें सर्वसम्मत निर्णयपर नहीं पहुँच सकी।

२५५ हुंडामलका परवाना

जैसी कि हमे आशा थी, श्री हुडामल अपीलमें जीत गये है और इस विजयपर हम उन्हे और उनके वकील श्री विन्स दोनोको बधाई देते हैं। किन्तु विद्वान मुख्य न्यायाधीशके फैसलेसे यह बिलकुल स्पष्ट है कि सघर्ष किसी प्रकार खतम नही हुआ है। अपीलका फैसला करीब-करीब एक गौण मुद्देपर हुआ है। न्यायाधीशने यह राय दी है कि श्री हुडामलको परवानेके बिना व्यापार करनेके आरोपमें सम्मन भेजनेमे भूल की गई है, क्योकि उनके पास परवाना था। परन्तु उन्होंने अपीलमे उठाये गये इस मुद्देपर निर्णय देनेसे इनकार किया है कि परवाना-अधिकारीको किसी खास स्थानमे व्यापारको सीमित करनेका हक है या नही। इसलिए भारतीय समाजको काफी चिन्ता और भयके साथ नये सालको शुरू करना है। ब्रिटिश उपनिवेशमे ऐसी हालत नही रहने दी जानी चाहिए और हमें भरोसा है कि जल्दी ही इस कानूनमें सशोधन कर दिया जायेगा। स्वर्गीय श्री एस्कम्बने कहा था कि उन्होने नगर-परिषदको व्यापक सत्ता इसलिए दी थी कि उन्हे उसकी सौम्यतापर भरोसा था। हमें यह कहते हुए दुख होता है कि डर्बन नगर-निगमने अनेक अवसरोपर उन अपेक्षाओको गलत साबित किया है और यदि इस उपनिवेशका प्रमुख नगर-निगम उन्हे उचित सिद्ध नही कर सका तो उससे छोटी संस्थाओसे क्या अपेक्षा रखी जा सकती है? सभी मानते हैं कि विक्रेता-परवाना अधिनियम दमनका एक भयकर साधन है। तब क्या हम अपने विधानमण्डल-सदस्योसे यह अपील नही कर सकते कि वे स्थानीय अधिकारियोसे यह प्रलोभन छीन ले? तभी परवानोके जारी करनेके कामको नियमित और नियन्त्रित रखना पूरी तरह सम्भव होगा, और शायद कही अधिक सन्तोषजनक ढगसे। अपीलसे दूसरा विचार यह उत्पन्न होता है कि अपनी जीतके बावजूद श्री हुडामलकी हार ही हुई है। केवल अभियोग-पक्षकी सनकों और, हम आदरपूर्वक कह सकते है, मजिस्ट्रेटके उतावलीमें दिये गये फैसलेके कारण ही उन्हे भारी खर्च उठाना पडा है। यह मान लिया गया है कि मुकदमा गलतीसे चलाया गया था। फिर भी श्री हुडामलको इस गलतीका नुकसान उठाना पड़ा है। यह सघर्ष असमान है और इसके आर्थिक पहलूको कभी नजरअन्दाज नही करना चाहिए। नगर-परिषदसे कमसे-कम इतना करनेकी तो अपेक्षा रखी ही जा सकती है कि उसकी गलतियोके कारण इन गरीब लोगोको जो खर्च उठाना पडे वह उन्हे वापस कर देगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६-११-१९०४

२५६. एशियाई-विरोधी सम्मेलन और ब्रिटिश भारतीयोंकी सभा

इसी मासकी १० तारीखको प्रिटोरियामें हुए एशियाई-विरोधी सम्मेलनके कुछ उल्लेखनीय परिणाम हुए हैं, जिनकी कल्पना सयोजकोंने शायद कभी नही की थी। कुछको छोड़कर बाकी सब दक्षिण आफ्रिकी समाचारपत्रोंने भी उसकी कार्रवाई मनमानी और अन्यायपूर्ण बताई है और उसकी निन्दा की है। लन्दन *टाइम्सने* इस बारेमें अगुआई की है और कहा है कि कार्रवाईसे प्रतिनिधियोंमें राजनयिक चतुरताका अभाव प्रकट होता है। उसने यह भी कहा है कि इस प्रकारके आन्दोलनसे, चाहे वह कितना ही तीव्र हो, साम्राज्य-सम्बन्धी कर्त्तव्योंकी अवहेलना नही करने दी जा सकती और श्री लिटिलटनने अपने खरीतेमें इस प्रश्नपर जो प्रस्ताव रखे हैं उनका त्याग नही किया जा सकता एव ब्रिटिश भारतीयोंको हानि नही पहुँचाई जा सकती। हमने सम्मेलनके बारेमें सब समाचार पढ़े हैं। हमें जिस बातसे सबसे अधिक दु.ख हुआ है, वह यह है कि अगर कार्रवाईका यह सार ठीक है तो, हमारे खयालसे, उससे वक्ताओंका निपट अज्ञानी होना प्रकट होता है। ब्रिटिश भारतीयोंके बारेमे और साम्राज्य-सरकारके इरादोंके बारेमें भी अनर्गल बातें कही गई हैं। हमने सुना है कि जो भाषण दिये गये वे अत्यन्त उत्तेजक थे और सवाददाताओंने उनको बहुत नरम बना दिया है। हमें बताया गया है कि कुछ वक्ताओंने तो साम्राज्य-सरकारको भी चुनौती दी। जैसे, जहाँतक यूरोपीयों और भारतीयोंका सम्बन्ध है, यह मान लिया गया है कि यूरोपीय प्रमुख हिस्सेदार रहेंगे; वैसे ही क्या यह तथ्य नही है कि जहाँतक साम्राज्य-सरकार और उपनिवेशोंका सम्बन्ध है, साम्राज्य-सरकारकी आवाज प्रमुख है? एक बोअर प्रतिनिधिने कहा था, वे जो चाहे सो सब उन्हे मिलना ही चाहिए। यदि सम्मेलनके सदस्योंका यही दावा हो, तो एक अत्यन्त गम्भीर प्रश्न उपस्थित होता है कि उस सम्बन्धका क्या महत्त्व है जिसमे एक पक्षको सब-कुछ लेना जरूरी हो और दूसरे पक्षको सब-कुछ देना। साम्राज्यका वर्तमान रूप न्याय और औचित्यकी नीवपर बना है। उसने सबलसे निर्बलकी रक्षा करनेकी चिन्ता और क्षमताके सम्बन्धमें ससारव्यापी ख्याति प्राप्त की है। युद्धकी अपेक्षा शान्ति और दयाके कामोंसे ही उसने अपना वर्तमान रूप प्राप्त किया है। और, हम कहना चाहते है, यदि सम्मेलनके सदस्य यह समझते हो कि उनके स्वार्थोंकी पूर्तिके लिए साम्राज्य-सरकारकी निश्चित नीति अचानक बदल दी जायेगी और उनके कहनेसे ही, श्री क्विनके शब्दोंमे, साम्राज्य-सरकार यह लूटपाट कर डालेगी, तो वे बड़ी भूल कर रहे हैं। इसलिए यद्यपि सम्मेलनकी हिंसापूर्ण कार्रवाईसे ब्रिटिश भारतीयोंमे डर पैदा होनेकी जरूरत नही है, फिर भी यह अच्छा ही हुआ कि ब्रिटिश भारतीय सघने सम्मेलनकी कार्रवाईपर विचारके लिए तुरन्त उपनिवेश-भरके भारतीयोंकी सार्वजनिक सभा[1] बुला ली। हमने पिछले सप्ताह जो पूरा विवरण प्रकाशित किया था उससे जाहिर होता है कि सभामें बहुत लोग उपस्थित थे। उसमे उपनिवेशके तमाम हिस्सोंसे प्रतिनिधि आये थे और उसकी कार्रवाई बिलकुल सौम्य, किन्तु साथ ही काफी जोरदार हुई थी। श्री अब्दुल गनीने अपने भाषणमे स्पष्ट किया कि प्रिटोरियाके सम्मेलनमें उन हालतोंकी कल्पना कर ली गई थी जो कभी थी ही नही, और फिर उनका इलाज शुरू कर दिया गया था। यह भी अच्छा हुआ कि उन्होंने इस तथ्यपर जोर

१. १७ नवम्बरको एशियाई-विरोधी सम्मेलनकी कार्रवाईपर आपत्ति प्रकट करनेके लिए बुलाई गई सभा।

(*इंडियन ओपिनियन*, नवम्बर १९, १९०४)

दिया कि सम्मेलनने ब्रिटिश प्रजाजनो और गैर-ब्रिटिश प्रजाजनोके भेदकी और, साथ ही दक्षिण आफ्रिकाके देशी लोगो और ब्रिटिश भारतीयोके भेदकी भी बिलकुल उपेक्षा की है। इन दो मौलिक तथ्योकी अवहेलनासे भारतीयोकी जितनी हानि हुई है उतनी और किसी बातसे नही हुई। जिन सज्जनोका भारतीयोको ट्रान्सवालसे निकाल देनेमे स्वार्थ है उन्हे यह अनुकूल हो सकता है कि वे भारतीयोको पहले तमाम एशियाइयोमे शामिल करे और फिर एशियाइयोको दक्षिण आफ्रिकाके देशी लोगोके साथ मिलाये एव इस प्रकार असली मुद्देको गडबडीमे डाल दे। उनके लिए ऐसा करना कुछ उचित है, क्योकि सर आर्थर लाली भी अपने खरीतेमे इस विचारके शिकार हो गये हैं। परन्तु हमे विश्वास है कि अब, जब कि सम्मेलनमें उपस्थित अधिकतर लोगोके असली इरादे साफ-साफ मालूम हो गये है, हम चाहेगे कि श्री अब्दुल गनीने जिन भेदोपर जोर दिया है, ब्रिटिश सरकारके अधिकारी भी उन्हे स्वीकार करे। ब्रिटिश भारतीय संघने जिन प्रस्तावोको सभामे दुहराया है हम उनकी तरफ भी अधिकारियोका ध्यान खीचते हैं। यदि हमे यह कहनेकी अनुमति हो तो हम कहेगे कि उन्होने इस पेचीदा सवालका पूरा और साथ ही राजनीतिज्ञतापूर्ण हल सुझाया है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६-११-१९०४

२५७. रोगका घर

हम फेरेरास बस्तीके बारेमें डॉ० पोर्टरका सजीव विवरण उद्धृत कर रहे हैं। इससे मालूम होगा कि यह स्थान जोहानिसबर्गकी पुरानी भारतीय बस्तीकी अपेक्षा सफाईकी दृष्टिसे बेहद खराब है। यह ब्रिटिश सविधानकी ताकत भी है और साथ ही कमजोरी भी कि उसके अन्तर्गत कानूनी अधिकारके बिना कुछ भी नही किया जा सकता, भले ही वह साफ तौरपर सार्वजनिक हितमे ही क्यो न हो। जोहानिसबर्ग प्लेग-समितिको पता चला है कि इस स्थानमे प्लेग फैले या न फैले, उसे कानूनन वह उपाय अमलमे लानेका अधिकार नही है जिसे श्री क्विनने अग्नि-चिकित्सा कहा है। और, इसलिए, जोहानिसबर्गको बरसातके मौसममे दुबारा प्लेग फैलनेकी जोखिम उठानी ही होगी। हमे आशा है कि इस विषम स्थितिका कोई उपाय ढूँढा जायेगा और जल्दी ही फेरेरास बस्तीकी सीमाके भीतरके इलाकेका योग्य सुधार किया जायेगा। डॉ० पोर्टरके दिये हुए आँकडोसे अध्ययनकी रोचक सामग्री मिलती है। सारे इलाकेकी आबादीमे २८८ भारतीय, ५८ सीरियाई, १६५ चीनी, २९७ केपवाले, ७५ काफिर और ९२९ गोरे हैं। इनमें से डॉक्टर पोर्टरके कथनानुसार सही तौरपर गन्दे इलाकेकी आबादीका बँटवारा यहाँ देते है। भारतीय २५५, सीरियाई १७, चीनी १२६, केपवाले १९२, काफिर ३१ और गोरे २४१। इस प्रकार हम देखते हैं कि नीचे दर्जेके लोग सभी जातियोमे लगभग समान हैं। किन्तु हमारे खयालसे असली अपराधी मकान-मालिक हैं। जबतक उनको भारी किराया मिलता है तबतक उन्हे इस बातकी जरा भी परवाह नही होती कि बेचारे किरायेदारोपर क्या बीतती है या वे कैसे रहते हैं। और, मकान-मालिक खून चूसनेकी कार्रवाई इसीलिए कर सके है कि जोहानिसबर्ग नगर-परिषद बहुत ज्यादा लापरवाह है। परिषद बहुत पहले ही इस स्थानका मामला तय कर सकती थी। यहाँ ध्यान देनेकी बात यह है कि इस मामलेमे मकान-मालिक भारतीय बिलकुल नही है, बल्कि यूरोपीय है। मगर इस कथनसे हमारा यह अभिप्राय नही है कि इन यूरोपीय

मकानमालिकोसे, जो फेरेरास बस्तीमें भरे है, उसी वर्गके भारतीय मकान-मालिकोमें कोई खास गुण ज्यादा है। यह तो सिर्फ इस बातका सबूत है कि मानवका स्वभाव लगभग एक-सा ही होता है, चाहे उसकी चमड़ी गोरी हो या भूरी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६-११-१९०४

२५८. बॉक्सबर्गके ब्रिटिश भारतीय

बॉक्सबर्गकी भारतीय बस्तीमें रहनेवाले ब्रिटिश भारतीयोंको नीचे लिखी सूचना मिली है:

सूचना

बॉक्सबर्गकी एशियाई बस्तीमें रहनेवाले एशियाइयोंको याद दिलाया जाता है कि उनकी किरायेदारी केवल अस्थायी और १९०३ की सरकारी आज्ञा सं० १३७९ के अनुसार एक महीनेकी पूर्व सूचनापर समाप्य है। इसलिए जो व्यक्ति स्थायी इमारतें बनायेंगे वे अपनी ही जोखिमपर बनायेंगे और यदि किसी समय बस्तीका स्थान बदला गया तो उन्हें उससे जो भी हानि होगी उसका मुआवजा पानेका हक नहीं होगा।

निवासियोको यह याद दिलाना आवश्यक नही था कि उनकी किरायेदारी अस्थायी है, परन्तु सूचनासे कुछ ऐसा अर्थ निकलता है जो अशुभ-सूचक है। यह समझना कठिन है कि ये गरीब लोग इधरसे उधर क्यो खदेड़े जायें। बस्तीकी स्थितिपर कोई ऐतराज नही किया जा सकता, उसमे आवश्यकतासे अधिक भीड़ नही है और वह शहरसे पृथक् है। लोगोको लड़ाईके पहलेसे वहाँ रहने दिया जा रहा है और जो बात गणराज्य सरकारने कभी नही की या जिसे वह कभी नही कर सकी, वही अब ब्रिटिश सरकारके शासनमें की जा रही है या करनेकी धमकी दी जा रही है। यद्यपि स्वर्गीय श्री क्रूगरके शासनमे ऐसी सब किरायेदारियाँ अस्थायी थी, तथापि किसीने कभी किरायेदारोके कब्जेमें हस्तक्षेपका विचारतक नही किया था। सूचनामें यह नही कहा गया है कि लोगोको किसी निश्चित समयपर हट जाना होगा; परन्तु स्थायी इमारतें बनानेके विरुद्ध चेतावनी दी गई है। बहुतसे भारतीय अच्छे ढगसे रहनेकी इच्छासे उपयुक्त मकान बनाने लगे है और यह सूचना इसीका परिणाम है। इस प्रकार कृत्रिम रूपसे अधिक अच्छे ढगके जीवनके प्रतिकूल परिस्थितियाँ पैदा की जाती है और फिर उनसे जो परिणाम होते है उनके लिए दोष दिया जाता है उन लोगोको, जिन्हे ऐसी निर्योग्यताओका भार उठाना पडता है। बॉक्सबर्गके 'पहरेदार' लोग फिर भी तिरस्कारपूर्वक अँगुली उठाकर कह सकेंगे कि भारतीय भवन-निर्माणपर खर्च नही करते और सभ्योचित ढंगसे नही रहते। वे लोग यह भूल जायेंगे कि भारतीयोंकी यह दशा परिस्थितियोंकी मजबूरीके कारण है। इस अशुभ अवस्थाका अन्त कब होगा? यदि सरकार इन लोगोको हटाना ही चाहती है तो उन्हे स्पष्ट दीर्घकालीन और निश्चित सूचना देना असम्भव क्यो होना चाहिए? और जिन लोगोंने सूचनासे पहले ही कीमती इमारतें बना ली है उनके सम्बन्धमें वह क्या करना चाहती है? हम सरकारसे न्याय और उचित व्यवहारकी अपील करते है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६-११-१९०४

२५९. दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंके सम्बन्धमें "आंग्ल भारतीय"

हमारी मेजपर समीक्षाके लिए एक रोचक लेख पडा है। वह १० नवम्बरके रैंड *डेली मेलमें* छपा था। उसका शीर्षक था: "असली भारतीय खतरा" इसका लेखक एक "आग्ल भारतीय" है। लेखकने भारतीयोको बिलकुल बहिष्कृत करनेके पक्षमें बडी ही अजीव दलीले दी है। वह कहता है:

> **गोरोंके देशके रूपमें ट्रान्सवालके भविष्यकी खातिर यह आशा की जानी चाहिए कि भारतीय व्यापारियोंको दूर रखनेके लिए मूर्ख-नगरीकी-सी प्रतिबन्ध-प्रणाली काफी नहीं समझी जायेगी।**

फिर वह कहता है:

> **इसका कारण कोई भारतीय भावना या सफाई, तन्दुरुस्ती या सदाचारका खयाल या कोई अन्य अर्द्धभावुकता नहीं है। जो एशियाइयोंको जानते हैं उनका विश्वास है कि उनका बाहर रहना ही दक्षिण आफ्रिकाके लिए बेहतर है। यह सावधानी आत्मरक्षाकी स्वाभाविक भावनासे प्रेरित है।**

फिर लेखक वह कारण बताता है जिससे वह भारतीयोको खतरनाक समझता है, और कारण यह है:

> **एक लाख भारतीयोंको दक्षिण समुद्रके किसी बीरान टापूमें रख दीजिए और दूसरे टापूमें एक लाख काफिरोंको। दोनोंको एक शताब्दीतक अपने-अपने उद्धारके उपाय करनेके लिए छोड़ दीजिए। इस अवधिके अन्तमें आप देखेंगे कि काफिर तो मिट्टीकी झोपड़ियोंवाले गाँवमें बैठे जौकी शराब पी रहे हैं, और भारतीयोंने एक राज्य कायम कर लिया है, कुछ शहर बना लिये हैं, जहाजोंका बेड़ा तैयार कर लिया है और दूसरे देशोंके साथ व्यापार स्थापित कर लिया है एवं ऐसी संस्कृति तथा ऐसे धर्मका विकास कर लिया है जो कई बातोंमें पश्चिममें उपलब्ध किसी भी संस्कृति और धर्मकी बराबरीके हैं।**

इस तरहका तर्क बड़ा भ्रामक है। लेखकने स्पष्ट ही कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्योकी, और इतिहासके अनुभवकी भी, अवहेलना की है। हमें श्री लिटिलटन बताते हैं कि दक्षिण आफ्रिका गोरोका देश नही है और जबतक यूरोपीयो और काफिरोके बीच सख्याकी बड़ी असमानता काफिरोके पक्षमें रहती है तबतक, यह बहुत आश्चर्यकी बात है, कोई व्यक्ति दक्षिण आफ्रिकाको गोरोका देश कैसे कह सकता है। अभी उस दिन श्री लिटिलटनने कहा था कि ऐसा न होता तो वे चीनियोंको ट्रान्सवालमे लानेकी मंजूरी कभी न देते। इससे इनकार नही किया जा सकता कि, गलत हो या सही, गोरे लोग दक्षिण आफ्रिकामे आदिसे अन्ततक मालिक बनकर रहना चाहते है। वे शारीरिक काम नही करना चाहते। ऐसी परिस्थितियोमे दक्षिण आफ्रिकाकी अर्थ-व्यवस्थामे अवश्य ही काफिरोंका बहुत महत्त्वपूर्ण भाग रहेगा और जबतक दक्षिण आफ्रिकामें ऐसी परिस्थि-तियाँ रहेगी तबतक भूरे लोगोका स्थान भी यहाँ अवश्य रहेगा। अगर ऐसा न होता तो

निश्चय ही वे दक्षिण आफ्रिकामें कभी न आये होते। लेखकने पूर्वी आफ्रिकाका उदाहरण देकर यह बताना चाहा है कि किस प्रकार वहाँ भारतीय छा गये हैं। यह बयान भ्रमोत्पादक है; क्योंकि इसमें जो कुछ कहना अभीष्ट है, उसको देखते हुए यह सही नहीं है। अर्थात्, पूर्वी आफ्रिकामें भारतीयोंने गोरोंकी जगह नहीं ली है। वहाँ जिस तरहकी जलवायु और जमीन है उससे गोरे निवासी आकर्षित नहीं हो सके हैं और इसलिए देशका विकास करनेके लिए भारतीयोंको प्रोत्साहन दिया गया है। लेखक द्वारा भारतीयोंकी यह प्रशंसा भारतीय मानसके लिए हर्षप्रद है, परन्तु वह सर्वथा भ्रामक है। वस्तुतः हम चाहते थे कि हम इस सारी स्तुतिके पात्र होते। जहाँ इसमें बहुत-कुछ सचाई है वहाँ हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि जब-जब यूरोपीय और भारतीय पारस्परिक सम्पर्कमें आये हैं तब-तब यूरोपीयोंने ऊँचे दर्जेकी संगठन-शक्ति, कदाचित् ऊँचे दर्जेकी साम्प्रदायिक वृत्ति और उत्कृष्ट दूरदर्शिताका परिचय दिया है। परिणाम यह है कि एक वर्गके रूपमें भारतीयोंका दर्जा नीचा रहा है। लेखकने यूरोपका उदाहरण पहले क्यों नहीं दिया? वहाँ भारतीयोंके प्रवासपर बिलकुल पाबन्दी नहीं है, तो भी वहाँ भारतीय एक भी गोरेको अपदस्थ करनेमें समर्थ नहीं हो सके हैं। इसका कारण स्पष्ट है। वहाँ न उनका कोई उपयोग है और न उनकी कोई माँग है। इसके विपरीत दक्षिण आफ्रिकामें ऐसे काम हैं जिन्हें गोरे करना नहीं चाहते और काफिर कर नहीं सकते। इसी कारण भारतीयोंके लिए दक्षिण आफ्रिकामें रहना सम्भव हो सका है। कुछ उदाहरणोंमें एक-दूसरेके क्षेत्रमें हस्तक्षेप हो सकता है। लेकिन आम तौरपर प्रत्येक जातिको अपना स्तर और अपना धंधा मिल गया है। हमारे खयालसे किसीका यह कहना दुस्साहस ही है कि गोरोंका स्थान भारतीयों द्वारा ले लेनेका कोई गम्भीर खतरा है। इस तर्ककी तरह ही, जिसपर हम विचार कर रहे हैं, चौंकानेवाले तर्कोंका उद्देश्य यह है कि असली मुद्दा गड़बड़में पड़ जाये और समस्याका उचित हल रुक जाये। दूरदर्शिताका काम यह है कि आगेकी बात सोचकर उसके पक्ष या विपक्षमें व्यवस्था की जाये। परन्तु जहाँ कोई खतरा न हो वहाँ खतरेकी कल्पना कर लेना पागलपन-भरी दूरदर्शिता है। किसीका यह कहना नहीं है कि दक्षिण आफ्रिकामें एशियासे या, यों कहिये कि, संसारके किसी भागसे आनेवाले प्रवासियोंपर बिलकुल पाबन्दी ही न लगाई जाये। उचित प्रतिबन्ध प्रस्तावित हुए हैं और यदि उनपर अमल नहीं हुआ तो इसमें केवल उन लोगोंका कसूर है जो "आंग्ल भारतीय" के विचारोंसे सहमत हैं। यह "आंग्ल भारतीय" भारतमें रह चुका है इसलिए संसारमें अन्य किसीकी भी अपेक्षा उसे ज्यादा मालूम होना चाहिए कि उसके लेखमें जिस खतरेकी भविष्यवाणी की गई है वह केवल भ्रम है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३–१२–१९०४

२६०. प्रार्थनापत्र : लेफ्टिनेंट गवर्नरको

जोहानिसबर्ग
दिसम्बर ३, १९०४

सेवामें
परमश्रेष्ठ स्थानापन्न लेफ्टिनेट गवर्नर
प्रिटोरिया

अब्दुल गनी, अध्यक्ष, ब्रिटिश भारतीय संघ, जोहानिसबर्गका आवेदनपत्र।

सविनय निवेदन है कि,

आपका आवेदक रैंड प्लेग-समितिके सामने पेश किये गये ब्रिटिश भारतीयोके कुछ दावोके सम्बन्धमे आदरपूर्वक महामहिमके समक्ष उपस्थित होना चाहता है। ये दावे उस माल-असबावसे सम्बन्ध रखते है, जो इस वर्ष उपनिवेशमे प्लेग फैलनेपर उक्त समितिके आदेशसे नष्ट कर दिया गया था।

जोहानिसबर्गकी पूर्व भारतीय बस्तीमे प्लेग फैलनेका पता लगनेके बाद उसके निवासियोको कुछ दिनोके लिए घेरेमे रखा गया था। बादमे उन्हे क्लिप्सप्रूटके एक पृथक शिविरमे हटा दिया गया था। क्लिप्सप्रूट ले जानेकी कार्रवाई बहुत थोड़े समयकी सूचनापर की गई थी। जब बस्तीके लोगोको क्लिप्सप्रूट हटाया गया, उन्हें आम तौरपर बिस्तरके अलावा कोई सामान ले जाने नही दिया गया। उन्हे आदेश दिया गया था कि वे अपनी सब कीमती चीजें, साज-सामान और यहाँ तक कि पलग भी वही छोड़ जाये।

उनके विरोध करनेपर विशेष प्लेग-अधिकारी डॉ० पेक्सने उन्हे आश्वासन दिया था कि समिति नष्ट किये जानेवाले सारे मालका मुआवजा चुकायेगी, इसलिए भारतीयोको कोई चिन्ता नही करनी चाहिए। इसी समझौतेपर भारतीय अपने साथ कोई सामान लिये बिना क्लिप्सप्रूट चले गये थे। मालिकोके विरोधके बावजूद कुत्ते-बिल्ली जैसे घरेलू जानवरोंको भी मार डाला गया था, और अधिकतर पक्षियोंकी भी यही हालत की गई थी। डॉ० पेक्सके आश्वासनके बावजूद रैंड प्लेग-समितिने अपनी जिम्मेदारीसे इनकार कर दिया है। इनकारी किस आधारपर की गई, यह दावेदारोको भेजे गये पत्रोमे स्पष्ट किया गया है। समितिके सहायक सेक्रेटरी दावोको अस्वीकार करते हुए लिखते हैं :

> **मुझे आपको सूचित करनेका निर्देश हुआ है कि, वकीलकी सलाहपर चलते हुए, समिति इस रकमका भुगतान करनेका दायित्व स्वीकार नहीं कर सकती। प्लेग-सम्बन्धी नियमोंके अनुसार, कोई भी ऐसी वस्तु, जिसमें गिलटीवाले अथवा पूर्वीय प्लेगकी छूत लग जानेकी सम्भावना हो, या जिससे गिलटीवाले अथवा पूर्वीय प्लेगकी छूत फैलनेकी आशंका हो, छूत रहित की जा सकती है, और यदि किसी कारणसे छूत रहित करना असम्भव हो तो उसे नष्ट किया जा सकता है। समितिको सलाह दी गई है कि इन विनियमों (रेगुलेशन्स) के अनुसार अपने अधिकारों या कर्तव्योंके पालनके लिए उसे जो काम करने पड़े उनके लिए उसपर मुआविजेका दायित्व नहीं है।**

मेरे संघका आदरपूर्वक निवेदन है कि समितिकी कानूनी स्थिति कुछ भी हो, वह अपने उस एकमात्र अधिकारीके, जो उस सकटके समय जनताकी सुरक्षाके लिए जिम्मेदार था, दिये हुए वचनका आदर करनेके लिए नैतिक दृष्टिसे बाध्य है। अगर ऐसा वादा न किया गया होता तो यह सन्देहजनक है कि वहाँके निवासियोंने जिस तरह बिना किसी शिकायतके अपना सामान छोड़ दिया था, उस तरह, प्लेग-अधिकारीकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिए, वे उसे छोडते। जो सामान नष्ट किया गया, उसमें सूखे अनाज और दालके भरे हुए बोरे और डिब्बोमे बन्द खाद्य-पदार्थ भी थे, जिन्हे वियेना-सम्मेलनने छूत न फैलानेवाला करार दिया है। लकडी और धातुकी घरेलू साज-सज्जाको भी नष्ट कर दिया गया था। यह तो नही कहा जा सकता कि ऐसी चीजें छूत रहित नही की जा सकती थी।

लम्बी वार्ताओके बाद समितिने उस सामानके दावोको मजूर कर लिया है, जिसे उसने बस्तीकी दूकानोसे निकालकर काममें ले लिया था। एक समय तो इन दावोको भी लगभग अस्वीकार कर दिया गया था। यह भी स्वीकार कर लिया गया है कि जो सामान काममें लाया गया, वह उसी किस्मका था, जिस किस्मका कुछ सामान नष्ट किया गया था। दूसरी खाद्य-वस्तुओंको काममें लानेके बदले नष्ट कर देनेका कारण यह बताया गया है कि समिति पृथक् शिविरोमें जरा-सी भी छूतकी जोखिमको टाल देना चाहती थी। सच तो यह है कि कुछ सामान क्लिपस्प्रूट भी भेजा गया था। वहाँके निवासी बस्तीकी दूकानोका सामान स्वय खपा लेनेको बिलकुल तैयार थे।

सामान खरीदीकी माँगे भी सबसे समान या निष्पक्ष रूपसे नही की गईं, यह उल्लेखनीय है। समितिकी खरीददारी कुछ गिने-चुने दूकानदारोतक ही सीमित रही। इस प्रकार, कुछ भाग्यशाली लोग अपनी दूकानोके सारे मालसे छुट्टी पा गये। और उनके दावे दूकानोतक ही सीमित होनेके कारण, उन्हे उसका पूरा भुगतान मिल गया। परन्तु उनके कम भाग्यशाली भाइयोंको बिलकुल ही कुछ नही मिला।

बहुतसे लोग अपना सामान इस तरह पूरा-पूरा नष्ट कर दिये जानेके कारण लगभग कगाल बन गये है।

इसलिए मेरा संघ महामहिमसे हस्तक्षेपका अनुरोध करता है। हमें विश्वास है कि रैंड प्लेग-समितिके आदेशसे जो माल नष्ट किया गया था उसके मूल्यके सम्बन्धमे पूर्व भारतीय बस्तीके निवासियोके दावोपर महामहिम अनुकूल विचार करानेकी कृपा करेगे।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी, कर्त्तव्य समझकर, सदा दुआ करेंगे।

(ह.) अब्दुल गनी,
अध्यक्ष,
ब्रिटिश भारतीय सघ

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, १०-१२-१९०४

२६१. पत्र: "स्टार" को[1]

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
[जोहानिसबर्ग]
दिसम्बर ९, १९०४

महोदय,

आपके ८ तारीखके अंकमे श्री टी० क्लाइनेनबर्गके नामसे जो पत्र प्रकाशित हुआ है, उसके सिलसिलेमे मै उनके वक्तव्यपर[2] विचार प्रकट करनेकी स्वतन्त्रता लेता हूँ। मैं श्री क्लाइनेनबर्गके दिये हुए आँकड़ोको स्वीकार नही करता। मै नही मानता कि इस समय पीटर्स-बर्गमे ४९ भारतीय व्यापारी है। भारतीय बस्तीसे अलग पीटर्सबर्ग नगरमे भारतीयोके केवल २८ वस्तु-भडार है और इनमें कुछके मालिक एक ही भारतीय है। मैने अपने पहले बयानमे सशोधन करनेका प्रयत्न किसी तरह भी नही किया। मैंने उसमे इस आरोपका खण्डन किया था कि युद्धके पहले और उसके बाद नगरमे कारोबार करनेवाले भारतीय व्यापारियोकी सख्याके अनुपातमें बहुत विषमता है। युद्धके पहले जो लोग परवानोके बिना व्यापार करते थे, वे कानून भग करनेवाले नही कहे जा सकते। और खास तौरसे श्री क्लाइनेनबर्ग तो ऐसा कह ही नही सकते, क्योकि वे ठीक-ठीक हालत जानते है और, उन्हे श्रेय देनेके लिए कहा जाये तो शायद उन्होने यह परिस्थिति पैदा करनेमे मदद भी की थी। यह सच है कि भारतीय परवानोके बिना व्यापार करते थे, परन्तु वे वकीलोकी सलाहसे, गणराज्य सरकारकी जानकारीमे, परवानोका शुल्क देनेका लिखित वादा करके और ब्रिटिश सरकारके सरक्षणमे ऐसा करते थे। अगर यह कानूनको भग करना था तो मुझे स्वीकार करना होगा कि मै इन शब्दोका अर्थ नही जानता। युद्धके पहले नगरके अन्दर कमसे-कम २३ भारतीय वस्तु-भण्डार थे। उनके नाम नीचे दिये जा रहे है।[3] सम्भवत उनकी सख्या इससे ज्यादा थी, परन्तु मै अभी जो सख्या और नाम दे रहा हूँ उनके बारेमें मेरे पास अकाटच प्रमाण मौजूद है। जिस मूल सूचीसे ये नाम लिये गये है वह सरकारके सामने पेश करनेके लिए मार्च, १९०३ मे बनाई गई थी। मै समझता हूँ कि मैंने श्री क्लाइनेनबर्गको जाँच-पडताल करनेके लिए काफी सामग्री दे दी है। अगर मेरे आँकड़े गलत हो तो मुझे उनमे सुधार स्वीकार कर लेनेमे खुशी होगी। इसके विपरीत, अगर

१. यह "श्री क्लाइनेनबर्ग और ब्रिटिश भारतीय संघ" शीर्षकसे छपे एक लेखके भागके रूपमें इस प्रारम्भिक टिप्पणीके साथ प्रकाशित किया गया था :

स्टारके साथ निम्न पत्र-व्यवहार हमारे इससे पहलेके अंकोंमेंसे सामग्रीकी अधिकतासे बच गया था। विलम्बसे ही सही, हम इसे श्री अब्दुलगनीके ब्रिटिश भारतीयोंकी सार्वजनिक सभामें, जो अभी जोहानिसबर्गमें हुई थी, दिये गये वक्तव्यकी सत्यता प्रमाणित करनेके लिए प्रकाशित करते है।

श्री क्लाइनेनबर्गके पत्रकी संलिपि, जिसका उत्तर इस पत्रमें दिया गया है, यहाँ छोड़ दी गई है।

२. उसमें ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षको चुनौती दी गई है कि वे श्री क्लाइनेनबर्ग द्वारा राष्ट्रीय सम्मेलनमें पेश किये गये अंकोको गलत साबित करनेके लिए प्रमाण दें।

३. देखिए अगला अनुच्छेद।

उनमे कोई गलती न निकाली जा सके और आप समझे कि मेरा वक्तव्य सही प्रमाणित हो गया है तो, मुझे आशा है, आप श्री क्लाइनेनबर्गसे ५० पौंड वसूल करके नासरत-हाउसको दे देंगे। एक बात और कहकर मैं समाप्त कर दूँगा। आपको कष्ट देनेमे मेरा उद्देश्य जनताके सामने सत्य और केवल सत्य पेश करना है। श्री क्लाइनेनबर्ग पीटर्सबर्गके ब्रिटिश भारतीयोके लिए सुपरिचित हैं। मुझे कोई सन्देह नही कि उनकी नीयत अच्छी है। और, मेरे सघने राष्ट्रीय सम्मेलनमे कही गई बातोको उठाकर जहाँ-कही भी आवश्यक हो, उनका प्रतिवाद करना जो अपना कर्तव्य समझा है, वह इसलिए कि मेरा विश्वास है, इस विवादमे जानकारीका अभाव सबसे ज्यादा उपद्रवकारी है।

ऊपर जिन वस्तु-भण्डारोका संकेत किया गया है वे है:

हासिम मोती ऐंड क० (३), तार मुहम्मद तैयब (२), अहमद मूसा भायात (२), अहमद इब्राहीम वाड़ी, अब्दुललतीफ अली, कासिम सुलेमान, कासिम तैयब, उस्मान मुहम्मद ऐंड क० (२), गनी हासिम, हाजी मुहम्मद, तैयब हाजी खान मुहम्मद (३), जमील अहमद उस्मान, हासिम मुहम्मद, अभेचन्द, इब्राहीम मुहम्मद और गडीत।

आपका, आदि,
अब्दुल गनी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३१-१२-१९०४

२६२. रैंड प्लेग-समिति

ब्रिटिश भारतीय सघने स्थानापन्न लेफ्टिनेंट गवर्नरके नाम जो आवेदनपत्र[1] भेजा है उसे हम दूसरे स्तम्भमे प्रकाशित कर रहे है। गत मार्चमे जोहानिसबर्गमें प्लेगकी बीमारी फैलनेपर रैंड प्लेग-समितिके निर्देशसे जो सामान नष्ट कर दिया गया था उसके सम्बन्धमे समितिके सामने कुछ दावे दायर किये गये है, सघका आवेदनपत्र इन्ही दावोके सम्बन्धमे है। उससे रैंड प्लेग-समितिकी क्षुद्रता और तमाम नैतिक दायित्वोकी हृदयहीन उपेक्षापर प्रकाश पडता है। आवेदकोके कथनानुसार, माल-असबाब जलानेके पहले डॉ० पेक्सने निश्चित वादा किया था कि सामानके मालिकोको मुआवजा दिया जायेगा; और अगर यह सच हो कि लकडीकी साज-सज्जा, धातुकी चीजे और सूखे खाद्य-पदार्थोसे भरे बोरेके-बोरे जला दिये गये थे, तो यह सत्यानाश अवश्य ही लोगोके स्वास्थ्यको खतरेसे बचानेके लिए उतना न किया गया होगा, जितना उनकी कल्पनाको प्रभावित करने और उनकी भावनाओको तुष्ट करनेके लिए किया गया होगा। यह मान लेना भयानक होगा कि लोहेका पलग या लकडीका साज-सामान भी ठीक तरहसे छूतसे रहित नही किया जा सकता था। यह स्मरणीय है कि जब पहले-पहल नेटालमे प्लेग फैला, तब नेटाल सरकारने भारत सरकारसे पूछा था कि क्या, उसके खयालसे, चावल तथा अन्य खाद्य पदार्थो द्वारा प्लेगकी छूत फैलनेकी सम्भावना है। भारत-सरकारने उसे विशेषज्ञोका यह अभिमत सूचित किया था कि भारतके प्लेग-ग्रस्त जिलोसे भी चावलके बोरे और ऐसे ही अन्य खाद्यपदार्थ मँगानेमे छूत फैलनेका कोई खतरा नही है।

१. देखिए "प्रार्थनापत्र: लेफ्टिनेंट गवर्नरको", दिसम्बर ३, १९०१।

फिर, बस्तियोंके लोग इसलिए तैयार थे कि वहाँ जो खाद्यपदार्थ पाये गये थे, वे उनको ही बाँट दिये जायें। इस सबके बावजूद सारेके-सारे सामानका जो विनाश किया गया उससे सार्वजनिक सुरक्षा जरा भी बढ़ी हो, इसमें हमें बहुत सन्देह है। कुछ भी हो, अगर रैंड प्लेग-समितिने गरीब लोगोंका माल जला डालनेका आनन्द लेना पसन्द किया था तो अब वह उसका मूल्य चुकानेकी जिम्मेदारीसे बच नहीं सकती। उपर्युक्त परिस्थितियोंमें कानूनी संरक्षणका सहारा लेकर भुगतानको टालनेकी कोशिश करना, हमारे नम्र विचारमें, नितान्त अपयशजनक है। हम यह बात दस बार दुहरायेंगे कि प्लेग जोहानिसबर्ग नगरपालिकाकी पूर्ण उपेक्षासे फैला था। यह स्वीकार किया जा चुका है कि उस संकटके समयमें भारतीयोंने अपना व्यवहार अत्यन्त आदर्श रखा। नगरपालिकाके उत्तरदायी अधिकारीके वादेपर विश्वास करके वे अधिकारियोंको जरा भी कष्ट दिये बिना जल्दीसे-जल्दी क्लिपस्प्रूट चले गये थे। ऐसे लोगोंके न्यायपूर्ण दावे माननेसे मुकरनेका अर्थ बिना किसी औचित्यके उनकी सम्पत्तिको जब्त कर लेना है। जब घेरा डाला गया तब बस्तीमें थोड़ेसे अभागे लोग बचे थे। उनका सारा माल-असबाब जला देना एक हृदयहीन और, रैंड प्लेग-समिति जैसी महान संस्थाके लिए अयोग्य कार्रवाई थी। जो लोग क्लिपस्प्रूट चले गये थे और जिन्हें लगभग प्रतिबन्धमें रखा गया था और अपना रोजमर्राका धंधा करनेसे रोक दिया गया था, वे सहानुभूति और ज्यादा अच्छे सलूकके पात्र हैं। हमें आशा है कि स्थानापन्न लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदय श्री अब्दुल गनीके आवेदनपत्रपर ध्यानपूर्वक विचार करेंगे और मुआवजा चुकानेका आदेश देकर ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति न्याय करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०-१२-१९०४

२६३. पीटर्सबर्गके भारतीय

श्री अब्दुल गनीने हाल ही में जोहानिसबर्गकी एक सार्वजनिक सभामें भाषण करते हुए पीटर्सबर्गमें युद्धके पहले और बाद व्यापार करनेवाले भारतीय व्यापारियोंकी जो संख्या बताई थी उसे पीटर्सबर्गके श्री क्लाइनेनबर्गने *स्टारमें* प्रकाशित एक पत्रमें चुनौती दी है। अपने कथनके समर्थनमें श्री क्लाइनेनबर्गने कुछ आँकड़े दिये हैं और गर्वपूर्वक घोषणा की है कि यदि उनके आँकड़ोंको गलत सिद्ध कर दिया जाये तो वे ५० पौंड दण्ड देंगे जो नासरत-हाउसको भेज दिया जायेगा। शर्त यह है कि अगर वे आँकड़े ठीक सिद्ध हो जायें तो दूसरा पक्ष भी उतनी ही रकम दण्डमें देनेके लिए तैयार हो। श्री अब्दुल गनीने तत्परताके साथ *स्टारको* पत्र लिखा है जिसमें यह चुनौती स्वीकार की गई है। हमें आश्चर्य है कि इतना अनुभव रखते हुए भी श्री क्लाइनेनबर्ग दूसरोंके दिये हुए आँकड़ोंसे भ्रान्त हो गये। वास्तवमें, अगर युद्धके पहले ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंको दिये गये परवानोंकी संख्या प्रत्यक्ष व्यापार करनेवालोंकी असली संख्या जाननेकी कोई कसौटी होती तो हमें मालूम होता कि सारे ट्रान्सवालमें मुश्किलसे १०० भारतीय व्यापारी थे। मगर असल बात दूसरी ही थी। इस देशके बारेमें जानकारी रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको मालूम है कि बस्तियोंके बाहर ट्रान्सवालमें १०० से बहुत अधिक ब्रिटिश भारतीय व्यापारी अपना कारोबार चला रहे थे। यह स्थिति इसलिए सम्भव हुई थी कि ब्रिटिश एजेंटने परवानोंसे रहित भारतीय व्यापारियोंको दृढ़तापूर्वक संरक्षण प्रदान किया था। इस तरह, भारतीयोंकी सभामें जो यह कहा गया था कि ट्रान्सवालकी इस

बस्तीके सर्वोच्च व्यक्ति भी सही जानकारी नही रखते और अपना मतामत बनानेके पहले अपने तथ्योका भलीभाँति अध्ययन नही करते, उसका, यह घटना, एक प्रमाण है। और श्री क्लाइनेनबर्ग यह भी भूलते हैं कि माल-दफ्तर (रेवन्यू ऑफ़िस)ने उन्हे भारतीय परवानोकी जो सख्या दी है, उसमे पीटर्सबर्गकी भारतीय बस्तियोमें रोजगार करनेवाले भारतीय व्यापारी भी शामिल हैं, जिनकी सख्या बड़ी है। इन भारतीय बस्तियोमे व्यापार करनेवाले लोग इस विवादमें बिलकुल शामिल नही हैं। सम्मेलनकी कार्रवाईका लक्ष्य वे रोजगार थे, जो भारतीय बस्तियो या बाजारोके बाहर स्थित हैं। इसलिए हम आशा करते हैं कि या तो श्री क्लाइनेनबर्ग औचित्य और न्यायके नाते अपनी गलती स्वीकार कर लेगे या, अगर वे श्री अब्दुल गनीका स्पष्टीकरण स्वीकार न करते हो तो, अपने कथनको प्रमाणित करनेका प्रयत्न करेगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०-१२-१९०४

२६४. पत्र: दादाभाई नौरोजीको

२१-२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक और एंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
दिसम्बर १०, १९०४

सेवामे
श्री दादाभाई नौरोजी
२२ केनिंगटन रोड
लंदन द. पू.
इग्लैड

प्रिय महोदय,

इंडियन ओपिनियनने अपने जीवन-कार्यकी तीसरी मजिलमे प्रवेश किया है। जो महत्त्वपूर्ण कदम[1] इसके सम्बन्धमें उठाया गया है उसकी बातसे आपको थकाऊँगा नही। इस महीनेमें सारी तफसील उसमे प्रकाशित होगी, तब आप देख लेगे।[2] ऐसा विचार किया गया है कि अब उसमें इग्लैडसे सार्वजनिक दिलचस्पीकी एक साप्ताहिक या पाक्षिक चिट्ठी हो, किन्तु उसमे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय प्रश्नकी लदनमें समय-समयपर होनेवाली प्रतिक्रियाका खास तौरपर जिक्र हो। क्या आप किसी ऐसे सज्जनका नाम सुझा सकेगे जो यह काम कर सकें और यदि कर सकें तो किस दरपर। इस सप्ताह प्रश्नसे सम्बन्धित मुझे कुछ विशेष नही कहना है।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० २२६५) से।

१. यह संकेत पत्रका कार्यालय फीनिक्समें ले जानेकी ओर है।
२. देखिए "अपनी बात", दिसम्बर २४, १९०४।

२६५. श्री हुंडामलका मुकदमा[1]

दिसम्बर १४, १९०४

श्री गाधीने दरखास्त की कि यदि अपीलमे श्री हुडामल खर्चसहित मुकदमा जीते तो जो-कुछ दूसरे खर्चे हो उन्हे वे चुकाये, नही तो कांग्रेस खर्च दे, शर्त यह है कि वह ५० पौडसे अधिक न हो और जो जुर्माना हुआ है उसे श्री हुडामल चुकाये।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–१२–१९०४

२६६. फिर हुंडामलका परवाना

एक प्रसिद्ध विज्ञापनके गगाल (टब)मे मचले बैठे बालककी भाँति नगर-परिषद तबतक खुश न होगी जबतक वह श्री हुडामलका परवाना छीन कर उसे बरबाद नही कर देती। इसलिए उस अभागे व्यापारीके नाम फिर सम्मन जारी कर दिया गया और हमारे राजनीतिक मजिस्ट्रेट श्री स्टुअर्टने एक असाधारण फैसलेमे उन्हे दोषी पाया और २० पौड जुर्मानेकी अधिकसे-अधिक सजा दे दी। श्री स्टुअर्टने यह बात भुला दी कि अभियुक्त कानूनी सलाहके अनुसार काम कर रहा है और उससे पूछा कि अगर यूरोपीय लोग कानूनका पालन करते है तो भारतीयो-को क्यो नही करना चाहिए? हमारी समझमे नही आता कि यूरोपीयो या भारतीयोके बीचके भेदका कानूनकी व्याख्यासे क्या वास्ता है। फिर श्री स्टुअर्ट यह सुझाव देते है कि भारतीयोको रोमकी इस कहावतका अनुसरण करना चाहिए कि "रोममे रहो तो रोमवासियोकी तरह चलो।" हम चाहते है, हमारे साथ इन सलाह देनेवालोका बरताव रोमवासियोका जैसा ही होता। मालूम होता है, यह बात कहते समय श्री स्टुअर्टको यह कभी नही सूझा कि यूरोपीयोको अपने परवाने बदलवानेमे कोई कठिनाई नही होती। किन्तु हमे मालूम हुआ है कि अपीलकी सूचना दे दी गई है; इसलिए जनताको यह निर्णय करनेका दुबारा मौका मिलेगा कि श्री स्टुअर्टके अन्त -करणमे राजनीतिकी भावना न्यायकी भावनापर कहाँ तक विजयी होती है। चूँकि मामला विचाराधीन है, इसलिए मुकदमेके गुण-दोषोका विचार हमे नही करना चाहिए।

हमारे सहयोगी *नेटाल मर्क्युरीने* इस मामलेपर ऐसे विचार प्रकट करना उचित समझा है जो उसकी न्यायपरायणताकी सामान्य ध्वनिके अनुरूप नही है। हमारा सहयोगी कहता है:

> हुंडामलके मामलेसे स्पष्ट हो जाता है कि परवानोंकी मंजूरीके मामलेमें भारतीयोंने स्थानीय अधिकारियोसे लड़नेका संकल्प कर लिया है। मामला अदालतके विचाराधीन है और उसपर आज सुबह फैसला दिया जायेगा, इसलिए मुझे उसके बारेमें कुछ नहीं कहना है। असलमें जबतक फैसला घोषित न कर दिया जाये, ऐसा करना निहायत बेजा होगा; लेकिन इस साधारण प्रश्नपर मैं कह सकता हूँ कि यह बहुत स्पष्ट है कि

१. श्री हुंडामलको परीक्षात्मक मुकदमेमें आर्थिक सहायता देनेके प्रश्नपर नेटाल भारतीय कांग्रेसने दिसम्बर १४ को विचार किया।

> नागरिक अवश्य ही मामला अपनी इच्छाओंके अनुसार निपटानेकी माँग करेंगे। अगर व्यापारके मामलेमें भारतीय लोग नागरिकोंकी इच्छाओंका विरोध करते है, जिसका उदाहरण क्वीन स्ट्रीटकी मनहूस काफिर-मंडी है, और तब उनपर पहलेसे कहीं अधिक कठोर ढंगकी पाबन्दियाँ लगा दी जाती है, तो उन्हें आश्चर्य न होना चाहिए। मुझे ब्रिटिश भारतीयोंके अधिकारोंका पूरा खयाल है। परन्तु भारतीयोंको आम तौरपर समझ लेना चाहिए कि अगर वे बाधक होगे और इस समाजपर अपनी इच्छाएँ थोपेंगे और इस नगरपर मॉरिशसकी तरह छा जाना चाहेंगे, तो वे देखेंगे कि सभी वर्गोंके गोरे लोग उनके खिलाफ एक हो गये है। यह अच्छा है कि यह बात साफ-साफ बता दी जाये। इस नगरके नागरिक, जिन्होंने इसे बनाया है और जिनपर इसकी जिम्मेदारी है, भारतीयोके नचाये नहीं नाचेंगे। वे ऐसा संगठन बनाकर सही रास्तेपर चल रहे है जो यह आग्रह करेगा कि नगर-परिषद इस ढंगपर काम करे या ऐसी सत्ता प्राप्त करे जिससे भारतीयोके लिए धोखेबड़ीकी गुंजाइश न रहे और भारतीय समाज बहुत-कुछ बँध जाये। क्वीन स्ट्रीटकी काफिर-मंडीके बारेमें जो रवैया इख्तियार किया गया है, अकेला वही समाजके क्रोधको भड़कानेके लिए काफी है और एकबार कानूनी अधिकार निश्चित हो जानेके बाद परवानोंके बारेमें विरोध करनेसे परिस्थितिमें सुधार नहीं होगा।

हमारे सहयोगीने क्वीन स्ट्रीटकी काफिर-मंडीको हुंडामलके मुकदमेसे मिला दिया है, जिससे उसका दूरका भी सम्बन्ध नही है। और उसने हुडामलके मुकदमेको भारतीय परवानोके सारे प्रश्नसे जोड दिया है और फिर नागरिकोको भारतीयोके खिलाफ भड़काया है।

काफिर-मंडी ऐसी खटकनेवाली चीज है, जिसके पक्षमे कुछ भी नही कहा जा सकता। इस मामलेको उसके गुण-दोषोके आधार पर निपटाना है। परन्तु एक व्यक्तिके दुराग्रहके लिए सारी जातिको दोष देना ठीक नही होगा। यह कहना भी ठीक नही है कि नागरिकोकी उचित इच्छाओका दृढ़तापूर्वक विरोध करनेका विचार बाँध रखा गया है। हम मानते है कि परवाने बदलनेके कामका नियमन होना चाहिए। परन्तु मौजूदा मामलेमें हमारा खयाल है कि नगर-परिषदकी कार्रवाई मनमानी, द्वेषपूर्ण, अत्याचारपूर्ण और अन्यायपूर्ण है। श्री हुंडामलका पक्ष औचित्यकी दृष्टिसे अत्यन्त सबल है। उनका मकान बढ़िया हालतमें है और अपनी श्रेणीमे वेस्ट स्ट्रीटके अच्छेसे-अच्छे मकानके मुकाबलेमें अच्छा ठहर सकता है। वे स्वय बहुत ही साफ-सुथरी आदतोके व्यक्ति हैं। उनका व्यापार ऊँचे दर्जेके यूरोपीयोमे है और उनपर बहुत-सी यूरोपीय कोठियोंका विश्वास है। कानून उनके पक्षमें दिखाई देता है। तब वे इनसाफकी रूसे जिस बातके हकदार हैं उसके लिए क्यो न लड़े? और यदि नगर-परिषदका सारा जोर उनके खिलाफ अन्यायपूर्ण ढंगसे लगा दिया जाता है और आम भारतीय इस पीड़ित व्यापारीके सहायतार्थ एक हो जाते है तो ऐसा करना उनका कर्त्तव्य ही है और हमारे खयालसे हमारे सहयोगीको भारतीयोके न्याय-प्राप्तिके प्रयत्नकी नुक्ताचीनी करनेके बजाय सराहना करनी चाहिए। जब इस सिद्धान्तपर अमल हो जाये तब भारतीयोंसे अपील करनेका समय आयेगा कि वे नगर-परिषदकी इच्छाओकी पूर्ति करे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७-१२-१९०४

२६७. राजनयिक श्री लवडे!

हमे अपने सम्पादकीय स्तम्भमे नीचेका विवरण देते हुए वडी प्रसन्नता होती है। इसके लेखक पाँचेफस्ट्रूमकी सभाका विवरण[1] देनेके लिए हमारे द्वारा विशेष रूपसे वहाँ भेजे गये थे, और श्री लवडेने, उस अन्यथा गम्भीर रह सकनेवाली सभाको जिस वातावरण और कटुतासे व्यजित करना ठीक समझा उसपर एक अंग्रेज होते हुए भी लेखकने वडी तीव्रतासे क्षोभ प्रकट किया है, और यद्यपि सिद्धान्त रूपसे हम अपने सम्पादकीय स्तम्भोमे तीखी, चुटीली शैलीके विरुद्ध है फिर भी इसे अपवाद मानकर देनेमे हमे हिचक नही है, क्योकि यह एक ऐसे व्यक्तिकी सच्ची भावनाओको प्रतिध्वनित करता है जो उन कार्यवाहियोका साक्षी था और जिसे उसकी सत्य-न्याय बुद्धिने अधेको अधा कहनेसे विरत नही किया।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७-१२-१९०४

२६८. क्वीन स्ट्रीटकी काफिर-मंडी

जिन लोगोका क्वीन स्ट्रीटकी शर्मनाक काफिर-मंडीकी व्यवस्थासे सम्वन्ध है उनके विरुद्ध चारो ओरसे निन्दाकी आवाज उठी है। हम उनका पूरी तरह साथ देते है। यह जितनी जल्दी हमारे बीचसे मिटा दी जाये, सब सम्बन्धित जनोके लिए उतना ही अच्छा होगा। हम इस चर्चामे भारतीय प्रश्नको बीचमे लानेकी प्रवृत्ति देख रहे है। परन्तु थोड़ा विचार करनेसे ही मालूम हो जायेगा कि उससे भारतीय प्रश्नका कोई सम्बन्ध नही है। यह सही है कि ऊपरी क्षेत्रका मकान-मालिक एक भारतीय है। पाठकोको याद होगा कि ऐसी मडियाँ दो थी। उनमेसे एकके मालिक श्री उमर हाजी आमदने अपनी मडी, ज्यो ही उनका ध्यान इस आपत्तिजनक वस्तुकी ओर दिलाया गया त्यो ही, तुरन्त बन्द कर दी। इससे भारतीयोके स्वभावका उज्ज्वल पक्ष प्रकट होता है। दूसरी मंडीका मालिक हठी है और नगर-परिषदको कठिनाईका सामना करनेका कोई रास्ता खोजना पड़ेगा। परन्तु सम्भवत यह याद रखना अच्छा होगा कि यह जगह यूरोपीयोको किरायेपर दी गई है और वे ही मंडीका प्रबन्ध कर रहे है। यह सवाल हरएक समाजके लिए मामूली सामाजिक दवाव डालनेका है और आवश्यकता हो तो इसमे कुछ कानूनी मदद ली जा सकती है। इस बुराईके साथ भारतीयोका वर्गके रूपमे उतना ही सम्वन्ध है, जितना यूरोपीयोका, और यदि यह हकीकत ध्यानमे रखी जाये और जिन दूसरे जातीय प्रश्नोका इस मामलेपर कोई प्रभाव नही पड़ता उनसे दूर रहा जाये तो इससे समाज तन्त्रके निर्विघ्न सचालनमे सुविधा होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७-१२-१९०४

१. इस सम्पादकीय टिप्पणीके वाद दिया गया सभाका विवरण यहाँ छोड़ दिया गया है।

२६९. कोयलेकी खानोंके गिरमिटिया मजदूर

नेटालकी कोयलेकी खानोके गिरमिटिया मजदूरोकी स्थितिपर हम अन्यत्र *विटनेसके* प्रतिनिधिकी रिपोर्ट छाप रहे है। यदि ये आरोप सच है तो उनसे पता चलता है कि स्थिति भयकर है। हमारे सहयोगीने जाँचकी माँग की है। हम उसके इस अनुरोधमे उसके साथ है। खान मालिकोको इसका स्वागत करना चाहिए। लेकिन अगर जाँच की जाती है तो, हमे विश्वास है कि, वह खुली, सार्वजनिक और पूर्णत निष्पक्ष होगी। विश्वास जमानेके उद्देश्यसे आयोगमें प्रमुखता गैर-सरकारी सदस्योकी होनी चाहिए; और, यदि हम यह कह सके तो, उनमे एक प्रतिष्ठित भारतीय भी हो। इस उपनिवेशमे गिरमिटिया मजदूरोंकी सामान्य स्थिति सन्तोषजनक है और यदि सन्देहके भी कारण दूर कर दिये जायें तो इससे उसकी नेकनामीमे वृद्धि ही होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७-१२-१९०४

२७०. पाँचेफस्ट्रूमकी सभा

प्रस्तावोंमें गलतबयानियाँ

अब हम पाँचेफस्ट्रूमकी आम सभामे पास किये गये प्रस्तावोको लेना चाहते है और बताना चाहते है कि वे गलतबयानियोसे कितने भरे हुए हैं।

हम एक-एक प्रस्ताव क्रमानुसार लेगे।

पहला इस वक्तव्यसे प्रारम्भ होता है·

> जब कि इस देशकी सरकार और इंग्लैडकी सरकारने निर्णय कर लिया है कि एशियाइयोको गिरमिटपर ही प्रवेश करनेकी अनुमति होनी चाहिए और एशियाइयोके प्रवासका नियमन करनेके लिए एक श्रमिक-आयातक अध्यादेश (लेबर इम्पोर्टेशन ऑर्डिनेन्स) पास हो गया है।

अब, न ब्रिटिश सरकारने और न ट्रान्सवाल सरकारने निर्णय किया है कि एशियाई प्रवास केवल गिरमिटपर ही हो सकता है। "एशियाइयोके प्रवासका नियमन करनेके लिए" भी कोई श्रमिक-आयातक अध्यादेश पास नही हुआ। जो वास्तवमे हुआ है सो यह है। इस वर्ष, ११ फरवरीको "ट्रान्सवालमे अकुशल अयूरोपीय श्रमिकोके प्रवेशके नियमनके लिए" एक अध्यादेश, सन् १९०४ का सं० १७ स्वीकृत किया गया। वास्तवमे यह बिलकुल ही अलग प्रस्ताव है और ऐसा है जिससे मामलेका समूचा रूप बदल जाता है। इसके अतिरिक्त इसी अध्यादेशके खण्ड ३४ मे हम पढते है:

> गवर्नर द्वारा स्वीकृत रेलमार्गोंके बनाने या अन्य सार्वजनिक कामोके लिए नियुक्त उन ब्रिटिश भारतीय मजदूरोंपर इस अध्यादेशमें कही गई कोई भी बात लागू नहीं होगी जिन्हें इस कालोनीमें लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा प्रवेश दिया गया है; सिवा इसके

कि यह प्रवेश सदा उन नियमोंके अनुसार होगा जिन्हें विधान-परिषद स्वीकार करे; और भी, सिवा इसके कि श्रमिकोंकी अपने मूल-देशमें वापसी आवश्यक परिवर्तनोंके साथ ऐसे ब्रिटिश भारतीयोंपर लागू होगी।

इस तरह इस अध्यादेशके मार्गदर्शक नियमोका न केवल सिर्फ "अकुशल" अयूरोपीय श्रमिकोसे ताल्लुक है, और ब्रिटिश भारतीय श्रमिक अध्यादेशकी कार्य-परिधिसे साफ तौरपर न केवल बाहर बताये गये है, बल्कि उनकी विशेष परिस्थितिसे निपटनेके लिए विधान-परिषद्में विशेष नियम बनाना आवश्यक होगा। और, "ब्रिटिश भारतीयोका निर्बाध प्रवेश"—इस वाक्यागमें यह गृहीत है कि देशमे भारतीय बडे पैमाने पर प्रवेश करते रहे है। तथ्य यह है कि वास्तविक शरणार्थियोको छोडकर ब्रिटिश भारतीयोका प्रवेश एकदम बन्द कर दिया गया है।

हमारे पाठकोको यह भलीभाँति याद होगा कि कुछ ही महीने पहले प्रमुख अनुमतिपत्र-सचिवने उच्चायुक्तको सूचित किया था कि किसी नये भारतीयको उपनिवेशमे प्रवेश नही करने दिया जाता और अनुमतिपत्र वास्तविक शरणार्थियोको इक्के-दुक्के दिये जाते है।

दूसरे प्रस्तावमे कहा गया है

जबकि एशियाइयोंको खुले हाथों व्यापार-परवाने दिए जानेसे पीटर्सबर्गमें गोरोंकी अपेक्षा एशियाइयोंको संख्या तिगुनी है।

पीटर्सबर्गमे युद्धके पहले २३ भारतीय भण्डार थे, तथ्य यह है। इस समय यह सख्या २८ है। हम कहनेकी स्वतन्त्रता लेते है कि पीटर्सबर्गमें गोरोके भण्डार १४ से अधिक है।

प्रस्ताव स० ३ एशियाइयो द्वारा किरायेपर लिये गये भण्डारो और जमीनोसे लगी हुई जायदादोकी कीमते गिरनेका उल्लेख करता है। तथ्य फिर यही है कि वास्तवमें भारतीयो द्वारा किरायेपर लिये गये भण्डारो और जमीनोसे लगी हुई जायदादोकी कीमते बढ गई हैं, कारण सीधा है कि उनका अच्छा किराया मिलता है।

और अधिक तफसीलमे जानेकी जरूरत नही है। यदि प्रस्तावोमें, जैसी हमने ऊपर बतायी है, ऐसी अतिशयोक्तियाँ है तो नतीजा साफ निकलता है कि उनपर बोलनेवाले वक्तव्योकी असावधानीमे पीछे नही रहे है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७-१२-१९०४

२७१. पत्र : "स्टार" को[1]

[जोहानिसबर्ग]
दिसम्बर २४, १९०४ के पूर्व

सेवामें
सम्पादक
स्टार

महोदय,

पिछले शनिवारको विधान-परिषदके सदस्य श्री लवडेने पाँचेफस्ट्रूममें आयोजित एक एशियाई-विरोधी सभामें जो भाषण किया उसमें उन्होने ब्रिटिश भारतीयोपर बड़ा जहरीला आक्रमण किया है। क्या मैं उसके सिलसिलेमें आपके सौजन्यका लाभ उठानेकी अनधिकार चेष्टा कर सकता हूँ? श्री लवडेने मेरे उस भाषणका जवाब देनेकी कृपा की, जो मैंने भारतीयोकी सार्वजनिक सभामें[2] किया था। और अपनी आलोचनाकी गर्मीमे वे गालियों और अंधाधुंध बयानोपर उतर आये। इससे अधिक अंधाधुंधी मैंने उनके जैसी उत्तरदायी स्थितिके किसी व्यक्तिमे नही देखी। उन्हे मुझपर "इरादतन निरंकुश, और दुष्टतामय असत्य वक्तव्य देने और पूर्वीय छल-कपटसे काम लेनेका" आरोप मढ़नेमें कोई संकोच नही हुआ है। परन्तु उनके स्तर-पर उतरनेकी मेरी कोई इच्छा नही है। फिर भी मैंने अपने भाषणमें जो-जो बाते कही थी, उनमे से हरएकको फिरसे दुहराता हूँ और कोई बात वापस नही लेता। आपकी अनुमतिसे मैं उनके अनेकानेक प्रमाणोमें से कुछ यहाँ देनेका प्रयत्न करूँगा। श्री लवडेने मेरे भाषणके उस हिस्सेपर नाराजगी जाहिर की है, जिसमें मैंने शिकायत की थी कि उन्होने राष्ट्रीय सम्मेलनमें १८८४ के समझौतेका इतिहास बताते हुए यह हकीकत प्रकट नही की कि उस समय उपनिवेशमें ब्रिटिश भारतीय मौजूद थे; और उन्होने यह भी नही बताया था कि १८८५ का कानून ३ वस्तुस्थितिके गलत रूपमें पेश किये जानेके कारण स्वीकार किया गया था। अगर आपने और आपके सहयोगियोने उक्त सम्मान्य महाशयके भाषणका विवरण जरा भी सही प्रकाशित किया था, तो मेरा कथन पूरी तरह सच है। *स्टारमें* प्रकाशित विवरणके अनुसार श्री लवडेने यह कहा था :

> जब १८८१ का समझौता हुआ था, उस समय ट्रान्सवालमें भारतीय थे ही नहीं; और इसमें जरा भी शक नहीं कि उस समझौता-पत्रके लेखकोंके सामने, जिनकी बैठक प्रिटोरियामें हुई थी, एशियाइयोंका प्रश्न कभी उपस्थित हुआ ही नहीं। उस समझौतेकी सब धाराओंके अध्ययनसे साफ जाहिर हो जाता है कि उसमें सिर्फ गोरी कौम और देशके वतनियोंका ही विचार किया गया था। रोक-थामके कानूनका प्रस्ताव तो सर्वप्रथम भारतीय व्यापारियोंके आने और १८८१ के समझौतेके बदलेमें १८८४ का समझौता स्वीकार होनेके बाद ही पेश किया गया था।

इस प्रकार, अगर श्री लवडेके भाषणका विवरण सही छापा गया है तो, उन्होंने दावा किया है कि चूँकि १८८४ के पहले यहाँ कोई भारतीय आये नही थे, इसलिए "वतनियोंके अलावा"

१. यह *इंडियन ओपिनियनमें* "श्री लवडे और ब्रिटिश भारतीय संघ" शीर्षकसे छापा गया था।

२. यह उल्लेख १७ नवम्बरकी जोहानिसबर्गकी सभाका है, देखिए *इंडियन ओपिनियन* १९-११-१९०४।

शब्द केवल यूरोपीयोके लिए ही लागू हो सकते थे। इसके उलटे, सच बात यह है कि १८८४ के समझौतेके स्वीकृत होनेके पहले ही भारतीय प्रवासी यहाँ मौजूद थे। मैंने आपके विवरणको दूसरे पत्रोके विवरणोसे मिला कर देखा है और सार रूपमे वह उनसे मिलता है। इसलिए, जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मेरी यह शिकायत पूरी तरह न्यायोचित है कि श्री लवडेने इस प्रश्नका इतिहास पेश करते हुए एक महत्त्वकी हकीकत छोड दी थी। अब, जहाँतक उस गलतबयानीका सम्बन्ध है, जिसके आधारपर १८८५ का कानून ३ पास किया गया, मै एक अर्जीका निम्नलिखित अश उद्धृत करता हूँ। यह अर्जी उन अनेकानेक अर्जियोमे से एक है, जिनके आधारपर हमारी पूर्वगामी सरकारने ब्रिटिश सरकारको उक्त धाराको कानूनी रूप देनेकी अनुमति प्रदान करनेके लिए राजी किया था। अर्जीके अश ये है:

> **सारे समाजपर इन लोगोंकी गन्दी आदतों और अनैतिक आचारसे अत्पन्न कोढ़, उपदंश तथा इसी प्रकारके अन्य घृणित रोगोंके फैलनेका जो खतरा आ खड़ा हुआ है।**

और भी,

> **चूँकि ये लोग पत्नियों या स्त्री-रिश्तेदारोंके बिना राज्यमें आते हैं, नतीजा साफ है। इनका धर्म सब स्त्रियोंको आत्मारहित और ईसाइयोंको स्वाभाविक शिकार मानना सिखाता है।**

इन अर्जियोपर उत्तरदायी लोगो और जनताके प्रतिनिधियोने हस्ताक्षर किये थे। और इन अधाधुध, अन्यायपूर्ण और असत्य बयानोंके कारण ही १८८५ का अधिनियम ३ मजूर किया गया था। श्री लवडेने अपना कथन फिरसे दुहरा देना उचित समझा है कि एक अरब व्यापारी ४० पौड सालानासे ज्यादा खर्च नही करता। उन्होने अपने समर्थनमे एशियाई व्यापारी आयोग (एशियाटिक ट्रेडर्स कमीशन) की कार्रवाईका हवाला दिया है। मगर उस आयोगके सदस्योने ऐसी कोई बात कही ही नही। पॉचेफस्ट्रूममें उन्होने और भी जोरोसे अपनी बात कही है। इसलिए मै फिरसे उस कथनका खण्डन करता हूँ और सिर्फ इतना कह सकता हूँ कि श्री लवडेकी अपेक्षा मुझे इस बातका ज्ञान ज्यादा होना चाहिए कि भारतीय व्यापारी कितना खर्च करता है। कुछ लोगोको तो सालमे नही, महीनेमे ४० पौडतक सिर्फ किराया ही दे देना पडता है। क्या श्री लवडे किसी एक भी भारतीय व्यापारीसे परिचित है? उन्होने कभी भारतीय व्यापारियोके बहीखाते देखे है? क्या उन्होने एशियाई आयोगकी रिपोर्ट पढ़ी है? मै खुशीके साथ उनके सामने २० भारतीय व्यापारियोके बहीखाते पेश करनेको तैयार हूँ; क्या अब वे उन्हे देखना पसन्द करेगे? मै इस बयानका खण्डन करता हूँ कि भारतीय व्यापारियोके कर्मचारियोको २० शिलिंग माहवारसे ज्यादा नही मिलता। मै उनके सामने ऐसे भारतीय कर्मचारियोके नाम रखनेको तैयार हूँ, जिन्हे भोजन और निवासके खर्चके अलावा १०० पौड सालाना वेतन मिलता है। श्री लवडेने मेरे इस वक्तव्यको, कि किसी भारतीयको देशमे आनेकी अनुमति नही दी जाती, "दुष्टतामय असत्य" बताया है। अगर मैंने गलती की है तो परवाना-विभागके मुख्य सचिवने भी वही किया है। आपको याद होगा, कुछ ही महीने पहले मुख्य सचिवने लॉर्ड मिलनरको रिपोर्ट दी थी कि किन्ही भी नये भारतीयोको उपनिवेशमे आनेकी अनुमति नही दी जाती। उन्होने यह भी कहा था कि परवाने सिर्फ बहुत कम सख्यामे प्रामाणिक शरणार्थियोको दिये जाते है। श्री लवडेने इस बयानके विरोधमे प्रिटोरिया और पॉचेफस्ट्रूमका उदाहरण देते हुए कहा है कि युद्धके बादसे प्रिटोरियामे भारतीय प्रवासियोकी आबादी दूनी हो गई है, युद्धके पहले जहाँ १५-२० व्यापारी ही थे वहाँ अब ९० से १०० तक है। यह बिलकुल निराधार है। प्रिटोरियामे भारतीयोकी आबादी बढी जरूर है, किन्तु वह दुगुनी नही हुई। इस बढतीका कारण यह है कि उपनिवेशके दूसरे हिस्सोके

लोग वहाँ आ गये है, क्योकि दूसरी जगहोमें उन्हे न तो परवाने मिले और न रोजी कमानेके कोई दूसरे साधन ही। परवाना-अधिकारीके कथनानुसार, उपनिवेशमे १०,००० से ज्यादा भारतीय नही है। १८९६ में ट्रान्सवालमे लगभग १०,००० भारतीय थे और निस्सन्देह १८९९ मे यह सख्या बहुत बढ गई होगी। माननीय सज्जनने आगे कहा है कि "युद्धके पूर्व पीटर्सबर्गमे १३ भारतीय दूकानें थी, आज उनकी ४९ दूकाने है।" इसके खिलाफ, मै यह कहनेकी ढिठाई करता हूँ कि युद्धके पूर्व सिर्फ शहरमे ही २३ दूकाने थी, आज २८ है। इसके बाद श्री लवडेने कहा है.

> **भारतीय हमसे कहते है कि उनके कुछ अधिकार है; उन्हें वे 'स्वतन्त्रताका घोषणा-पत्र' कहते है। परन्तु क्या भारतमें भारतीयों और गोरोंके बीच कोई भी सामाजिक व्यवहार होता है? वहाँ किसी तरहका कोई व्यवहार नहीं है।**

यह प्रश्न बेकार ही उठा दिया गया है। भारतीयोने यहाँ कोई सामाजिक व्यवहार शुरू करनेकी माँग नही की। उन्होने सिर्फ व्यापारकी उचित सुविधाओके प्राथमिक अधिकारका, सामान्य प्रतिबन्धोके अन्तर्गत प्रवासकी उचित सुविधाओका, सम्पत्ति रखने और आवागमनकी स्वतन्त्रता पानेका दावा किया है। परन्तु श्री लवडेकी जानकारीके लिए मै बता दूं कि भारतमें भारतीयो और अंग्रेजोके बीच कुछ हदतक सामाजिक सम्बन्ध भी है। कूचबिहारके महाराजा द्वारा आयोजित सहनृत्य (बॉल-डान्स) में सर्वश्रेष्ठ यूरोपीय समाज सम्मिलित होता है। वाइसराय और गवर्नरोके कार्यक्रमो और भोजोमे सब वर्गोंके भारतीयोको आमन्त्रित किया जाता है। भारतके मुख्य शहरोमे समय-समयपर जो दरबार हुआ करते है, वे शहशाहकी अंग्रेज प्रजाके बराबर ही भारतीय प्रजाके लिए भी खुले होते है। अगर मै यह सब कह रहा हूँ तो सिर्फ इसलिए कि हमारे सबसे पुराने परिषद-सदस्यका शोचनीय अज्ञान प्रकट हो जाये, अपने देशभाइयोके दिलोमे सामाजिक कार्योंमे भाग पानेकी जरा भी इच्छा जागृत करनेके लिए नही। उपनिवेशके गोरे आव्रजकोकी सामाजिक व्यवस्थामे अपने-आपको ठूँसनेकी हमारी कोई इच्छा नही है। यह विषय मेरे लिए बड़ा दर्दभरा है, इसलिए इसका अधिक विस्तार करनेकी आवश्यकता नही। पॉचेफस्ट्रूममे इन माननीय महाशयने जो भाषण किया उसे ललकारे बिना छोड देना असम्भव था। परन्तु रग-भेद सम्बन्धी प्रश्नपर विचारके समय अगर उन्होने सब बातोका सच्चा रूप देखनेमे अपने-आपको बिलकुल असमर्थ न बना लिया हो, तो मै उनसे अनुरोध करूँगा कि वे अपनी न्याय तथा औचित्यकी बुद्धिका प्रयोग करे। मै उनसे सिर्फ यह कहूँगा कि वे अपने इतिहास और तथ्योका अध्ययन करे। ब्रिटिश भारतीय सघके प्रस्तावोपर भी, जिन्हे मै बहुत ही नर्म और उचित समझनेकी धृष्टता करता हूँ, वे विचार करे। और बादमे वे अपने-आपसे पूछे कि क्या वे अपनी शक्तिका अपव्यय नही कर रहे है? जिन लोगोपर उनका इतना नियन्त्रण है उन्हे गलत रास्तेपर भटका नही रहे है? देशमे उनकी जो उत्तरदायी हस्ती है उसके प्रति अन्याय नही कर रहे है? और जिस साम्राज्यकी प्रजा होनेका, वे दावा करते है, उन्हे अभिमान है, उसकी कुसेवा नही कर रहे है?

आपका, आदि,
अब्दुल गनी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४-१२-१९०४

२७२. अपनी बात[1]

इंडियन ओपिनियन अपने जीवनके डेढ वरसके छोटेसे कालमे अपने कार्यकी तीसरी मजिलमे प्रवेश कर रहा है। इसके सचालकने देशभक्ति-पूर्ण उद्देश्योसे प्रेरित होकर, अत्यल्प साधनोके साथ, यह कार्य आरम्भ किया था। पत्रके सम्पादनके लिए उन्हे शुद्ध स्वैच्छिक और अवैतनिक सहायतापर निर्भर रहना पडा। यह सहायता उन्हे तत्परताके साथ मिली। सचालकका इरादा था कि साधारण छपाईसे जो लाभ हो उससे पत्रका अपेक्षित घाटा पूरा करके पत्रको स्वावलम्वी वना लिया जाये। मगर ऐसा हुआ नही। यद्यपि यह पत्र एक सच्ची जरूरत पूरी करता था, फिर भी जिसे व्यापारिक माँग कहा जा सकता है, उसको पैदा करनेकी जरूरत थी। दूसरे शब्दोमे, पत्रको न सिर्फ अपनी सामग्री जुटानी थी, वल्कि पाठक भी खोजने थे। इसके अलावा, पाँच सौ से अधिक प्रतियाँ भेटमें भेजनी पड़ती थी। यह बहुत वडी वाधा थी। इसलिए आर्थिक सहायता माँगनी पड़ी। नेटाल भारतीय काग्रेस और ब्रिटिश भारतीय संघने यह सहायता दी और भेंटकी प्रतियोकी छपाई तथा उनके भेजनेके खर्चकी मदमे कुछ रकमे देना स्वीकार किया।

फिर भी पत्र सर्वभक्षी मगर-मच्छकी भाँति जो भी आमदनी हुई, उसे खाता गया और अभी वह और माँगता ही था। स्थितिको सँभालना केवल पुरुपार्थमय उपायोसे सम्भव था। छुटपुट प्रयत्न बेकार थे। क्षणिक राहतकी दवाएँ खतरनाक थी। तब सिर्फ यह एक उपाय रह गया कि निष्ठावान कार्यकर्ताओ और मित्रोसे एक नवल और क्रान्तिकारी योजनाको इख्तियार करनेका अनुरोध किया जाये। उनको वर्तमानको नही, बल्कि भविष्यको देखना था; अपनी जेबोका नही, बल्कि पत्रका खयाल पहले रखना था। और वे ऐसा क्यो न करते? *इंडियन ओपिनियनका* ध्येय सम्राट एडवर्डकी यूरोपीय और भारतीय प्रजाओमे निकटतर सम्बन्ध स्थापित करना था। उसका ध्येय लोकमतको शिक्षित करना, गलतफहमीके कारणोको दूर करना, भारतीयोके सामने उनके अपने दोष रखना और उन्हे, जब कि वे अपने अधिकारोकी प्राप्तिका आग्रह कर रहे है, उनका कर्त्तव्य-पथ दिखाना था। यह समस्त एक साम्राज्यीय और शुद्ध आदर्श था और इसकी पूर्तिके लिए कोई भी व्यक्ति नि स्वार्थ भावसे प्रयत्न कर सकता था। इसलिए यह कुछ कार्यकर्ताओको अच्छा लगा।

सक्षेपमे योजना यह थी। अगर शहरके भीड़-भडक्केसे दूर जमीनका कोई काफी वड़ा टुकड़ा ऐसा मिल जाये, जिसपर मकान बनाकर छापेखानेकी कल और मशीने रखी जा सके, तो हरएक कार्यकर्ताको भी रहनेके लिए जमीन मिल सकती है। इससे वहुत खर्च उठाये विना ही स्वच्छ और आरोग्यप्रद अवस्थाओमे रहनेकी समस्या भी सरल हो जायेगी।

कार्यकर्ताओको हर महीने उतना रुपया पेशगीके तौरपर दिया जा सकता है, जितना कि उनके एक महीनेके जरूरी खर्चके लिए काफी हो और सालके अन्तमे सारा लाभ उनके वीच

१. यह वादमें ३१-१२-१९०४ के अंकमें इस परिचयात्मक टिप्पणीके साथ परिशिष्टके रूपमें पुनः छापा गया था:

"निम्न अग्रलेख हमारे दिसम्बर २४, १९०४ के अकमें प्रकाशित हुआ था और चूँकि हम तब इसकी माँगकी पूर्तिके लायक प्रतियाँ नही छाप सके थे, हम इसे अब परिशिष्टके रूपमें प्रकाशित करते हैं। हम अपने हमदर्दो और मित्रोको इसकी जितनी वे चाहें उतनी प्रतियाँ मुफ्त वितरणके लिए देंगे। (सं० - इं० *ओ*०)"

वाँटा जा सकता है। इस तरह प्रबन्धकोको हर सप्ताह बहुत बडी रकम जुटानेकी जरूरत न होगी। कार्यकर्ताओको यह भी सहूलियत दी जा सकती है कि अगर वे चाहे तो अपने मकानकी जमीन लागत-मूल्यपर खरीद ले।

ऐसी अच्छी अवस्थाओ और सुन्दर स्थितियोमें, जिनके कारण नेटालका नाम उद्यान-उपनिवेश (गार्डन कालोनी) पड़ा है, रहते हुए कार्यकर्ता अधिक सादा और प्राकृतिक जीवन बिता सकते है। साथ ही वहाँ रस्किन और टॉल्स्टायके विचारोका शुद्ध व्यापारिक सिद्धान्तोके साथ समन्वय भी किया जा सकता है। या, यह भी हो सकता है कि अगर कार्यकर्ता चाहे तो वे शहरी जिन्दगीकी कृत्रिमता फिरसे पैदा कर ले। फिर भी आशा तो यह की जा सकती है कि हमारी योजनाकी तहमे जो भावना है और कार्यकर्ता जिन परिस्थितियोमे रहेगे उनका उनके ऊपर शिक्षाप्रद प्रभाव होगा। वहाँ यूरोपीय और भारतीय कार्यकर्ता ज्यादा नजदीकी और भाई-चारेके साथ मिलजुलकर रहेगे। यह भी सम्भव है कि रोजाना काम करनेका समय घटाया जा सके। हरएक कार्यकर्ता खुद अपनी खेती कर सकता है। अंग्रेज कार्यकर्ता इस तानेको झूठा साबित कर सकेगे कि दक्षिण आफ्रिकामे रहनेवाले अंग्रेज जमीन जोतना और अपने हाथसे काम करना नही चाहते। यहाँ उन्हे ऐसे कामके लिए सब सहूलियते उपलब्ध होगी और कमियाँ कोई न होगी। भारतीय कार्यकर्ता जो अभी थोडेसे लाभके लिए निरन्तर गुलामोकी तरह परिश्रम किया करते है, अपने यूरोपीय भाईका अनुकरण करके स्वस्थ मनोरजनकी शान और उपयोगिता समझ सकेगे।

सब लोगोको प्रेरणा देनेवाली तीन बाते होगी — *इंडियन ओपिनियन*के रूपमे एक आदर्शके लिए काम करना; निवासके लिए पूरी तरहसे स्वास्थ्यप्रद वातावरण और अत्यन्त अनुकूल शर्तोपर तुरन्त जमीन पानेकी सम्भावना, और योजनामे सीधा ठोस स्वार्थ और हिस्सा।

सक्षेपमें, यही हमारे तर्ककी रूपरेखा थी, जो अब कार्यरूपमे परिणत की जा चुकी है। छापाखाना नॉर्थ कोस्ट लाइनके फीनिक्स स्टेशनके पास जमीनके एक बडे टुकडेपर ले आया गया है। वहाँ अंग्रेज और भारतीय कार्यकर्ता योजनाको कार्यान्वित करनेमें लगे हुए है। अभी उसके, नतीजेका अनुमान लगानेका समय नही आया है। क्योकि, प्रयोग बडा साहसपूर्ण है और उसमें बहुत महत्त्वके परिणाम सन्निहित है। हमे किसी भी ऐसे धार्मिकेतर सगठनका ज्ञान नही है, जो उपर्युक्त सिद्धान्तोके अनुसार चलाया जाता हो या चलाया गया हो। अगर यह सफल हुआ तो हम जरूर यही खयाल करेगे कि यह अनुकरणके योग्य होगा। हम अवैयक्तिक रूपसे लिख रहे है और इस पत्रके कार्यकर्ता-मण्डलमे से कोई भी सामग्रीके लिए विशेष श्रेयका दावा नही करता। इसलिए हम मानते है कि जनताके सामने सारी बात प्रकट कर देना ही उचित है। जनताका समर्थन हमें बहुत प्रोत्साहन देगा और निस्सन्देह योजनाकी सफलतामें बहुत सहायक होगा। हम दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले दोनो महान समाजोसे अनुरोध कर सकते है, और हमे विश्वास है कि वे इस योजनाको सफल बनानेमे व्यवस्थापकोंकी सहायता करेगे। हमारा विश्वास है कि योजना सफल बनाने योग्य है।

[अंग्रेजी से]

इंडियन ओपिनियन, २४-१२-१९०४

२७३. जाँचके योग्य मामला

भारतीय गिरमिटिया मजदूरोको मारने-पीटनेके सम्वन्धमे हाल ही लेडीस्मिथमें जो मुकदमे चले है उनकी कार्रवाइयाँ सहयोगी *नेटाल विटनेस* प्रमुखताके साथ प्रकाशित करता जा रहा है। रैमजे कोयला-खानके एक यूरोपीय भूगर्भ-प्रवन्धकके विरुद्ध खानके एक भारतीय गिरमिटिया मजदूरको मारने-पीटनेके आरोपमे जो मुकदमा चला, उसकी कार्रवाईके लिए *नेटाल विटनेसने* अपने इसी १६ तारीखके अंकमे डेढ़ कालम स्थान दिया है। इसके लिए वह वधाईका पात्र है। प्रवन्धक-को अपराधी करार दिया गया है। राजकी ओरसे सार्जेन्ट लेम्प्रियरने निर्भीकताके साथ जो वयान दिया उसके मुताविक मारपीट सगीन थी। साथ-साथ एक स्त्रीके वेचे जानेकी भी वात उठी थी। अगर वह सच है तो भारी कलंककी वात है। सन्तोप इस वातका है कि इस उपनिवेशमे इस सार्जेन्टके समान सरकारी वकील मौजूद है, जो अपने कर्त्तव्यसे विचलित नही होते। तथापि सरकार द्वारा इस सारे मामलेकी सावधानीके साथ जाँच की जानेकी जरूरत है। मुकदमेकी कार्र-वाई पढ़नेसे मनपर एक बुरा प्रभाव रह जाता है। निष्पक्ष जाँचसे सचाई प्रकट हो जायेगी और, जैसा कि हम पहले कह चुके है, कोयला-खान कम्पनीको इस जाँचका स्वागत करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४-१२-१९०४

२७४. पॉचेफस्ट्रूमके पहरेदार और ब्रिटिश भारतीय

पॉचेफस्ट्रूमके "पहरेदार" (पॉचेफस्ट्रूम विजिलैंट्स) फिर पागल हो रहे है। वे अपने शहरसे सब भारतीयोंको विलकुल निकाल देना चाहते है। अपने पहले जोश-खरोशके वाद, हमें याद होगा, वे वहुत-कुछ ठडे पड़ गये थे, और अपने वॉक्सवर्गके मित्रोके विरोध करनेपर भी उन्होने फैसला किया था कि जिन भारतीयोको *वाजारोंमें* खदेड़ा गया है, उन्हे मुआवजा दिया जाये। परन्तु अव साफ मालूम होता है कि उन्हे अपनी उस नर्मीपर पछतावा हुआ है। अव वे कानूनको अपने हाथमें लेना और पॉचेफस्ट्रूममें आतकका राज्य जमाना चाहते है। भारतीय किसीको हानि नही पहुँचाते और कानूनका पालन करनेवाले लोग है। फिर भी "पहरेदार" उनकी धार्मिक भावनाओकी अवहेलना करेगें। वे अपने शहरमे भारतीयोंको मसजिद नही वनाने देना चाहते। जो लोग भारतीयोके साथ किसी भी प्रकारका कारोवार करेगे वे उनका जीवन दूभर कर देंगे। गृहस्थोको सामाजिक वहिष्कारके द्वारा भारतीयोसे सौदा न खरीदनेके लिए वाध्य किया जायेगा। इसी प्रकार व्यापारी उनके साथ व्यापार न करेंगे। और भू-स्वामियोको अपने भारतीय किराये-दारोको वेदखल कर देना होगा। स्वार्थकी दृष्टिसे तो भारतीयोको इस प्रकारके उन्माद-पूर्ण विरोधका स्वागत ही करना चाहिए, क्योकि वह अपनी ही हिंसासे मर जायेगा। परन्तु साम्राज्य-सम्वन्धी दृष्टिसे पॉचेफस्ट्रूमके "पहरेदारो" की कार्रवाइयोकी जितनी भी निन्दा की जाये, थोड़ी होगी। ब्रिटिश शासनका इतिहास साविधानिक विकासका इतिहास है। ब्रिटिश झडेके नीचे कानूनकी इज्जत करना लोगोके स्वभावका हिस्सा वन गया है। हमारे "पहरेदार" दोस्त उस शानदार सविधानको ही कुचल रहे है और इस तरह वे व्रिटिश शासनके प्रति अपनी

वफादारीके दावेको झूठा साबित कर रहे हैं, जिसके बलपर ही वे वाणीकी इतनी स्वतन्त्रताका उपभोग कर रहे हैं, जितनी कि संसारमें और कहीं नहीं है। परन्तु उन्होंने इस वाणी-स्वतन्त्रताको वाणी-स्वैरता समझनेकी गलती की है। क्या हम उनसे अनुरोध कर सकते हैं कि वे थोड़ी संजीदगीसे काम लें?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४–१२–१९०४

२७५. एक नया साप्ताहिक

जोहानिसबर्गसे रैंड रेट पेयर्स रिव्यू नामके एक नये साप्ताहिक पत्रका प्रकाशन आरम्भ हुआ है। उसका मुद्रा-वाक्य है — "जनता सत्य है"। पत्रकी छपाई-सफाई अच्छी है। एशियाइयोंके प्रश्नपर उसने जो विचार प्रकाशित किये हैं उनसे मालूम होता है कि वह एक बहुत उपयोगी और स्वतन्त्र पत्र होगा। अलबत्ता शर्त यह है कि उसका आरम्भ जिस रूपमें हुआ है वह आगे जारी रहे। उसमें प्रकाशित विचार निम्नलिखित हैं —

> जोहानिसबर्ग डाकघरसे तीन मीलके अन्दर ही एक टेकरीपर एक स्तम्भ खड़ा हुआ है, जिसके नीचे अनेक बस्तियोंका शीघ्रताके साथ विकास हो रहा है। उस स्मारकस्तम्भके पास ही एक छोटा-सा कब्रिस्तान है। उसमें कब्रोंके कई बड़े-बड़े टीले हैं और एक पत्थरका कुतबा है जिसपर खुदा हुआ है — 'लाइलाही इल्लिल्लाह मुहम्मद रसूलिल्लाह' (अल्लाहके सिवा कोई परमात्मा नहीं, और मुहम्मद उसका पैगम्बर है)। उस कब्रिस्तानमें हमारे भारत-साम्राज्यके काले सैनिकोंकी लाशें दफन हैं। इन्होंने अपनी जानें ट्रान्सवालमें ब्रिटिश प्रजाजनोंकी स्वतन्त्रताके लिए लड़ते-लड़ते कुरबान की थीं। हम इसका खयाल अपनी नगर-परिषद्के सदस्योंकी २ नम्बरकी पहली बैठकमें दिये गये मतोंके और इससे अगले सप्ताह प्रिटोरियाके नाटकघर (ऑपेरा-हाउस) में हुई ट्रान्सवालके सब हिस्सोंके प्रतिनिधियोंकी बैठकके सिलसिलेमें कर रहे हैं। इस बैठकमें एकके बाद एक कई सदस्योंने खड़े होकर ऐसे प्रस्ताव पास करनेकी चीख-पुकार मचाई थी, जिनके अमलमें आनेसे हमारे भारतीय सह-प्रजाजन इस उपनिवेशमें कोई भी अधिकार पानेसे वंचित हो जायेंगे। उन्हें सिर्फ वे ही अधिकार रहेंगे जो गिरमिटिया मजदूर बनाकर लाये गये चीनी काफिरोंको प्राप्त हैं। हमें लगता है कि जो लोग प्रस्ताव बनानेके लिए विषय खोजनेका प्रयत्न करते हैं उनकी भाषामें कुछ सुधार और कुछ अधिक विचारशीलताकी जरूरत है। जब कि इस तरहके पूर्वग्रह मौजूद हैं, क्या ताज्जुब कि लॉर्ड कर्जनने लॉर्ड मिलनरके स्थानपर यहाँ आनेसे इनकार कर दिया। और अगर ब्रिटेनके अधिकारियोंके सामने ट्रान्सवालको 'उत्तरदायी शासन' देनेमें देरी करनेका कोई कारण है, तो वह कोई दूसरा नहीं, केवल यह भय है कि कहीं इस अधिकारका प्रयोग उन लोगोंके विरुद्ध न किया जाये जिन्होंने ब्रिटिश सरकारको यह उपनिवेश प्राप्त करनेमें मदद की है। सभी जानते हैं कि बोअर लोगोंने व्यापार करनेवाले एशियाइयोंको परवानोंके जरिये कुछ सहूलियतें दी थीं। परन्तु उन

सहूलियतोंको न तो न्यायोचित माना जाता था और न पूर्ण। यह तथ्य इंग्लैंडके सामने सशस्त्र हस्तक्षेपकी जरूरतके एक अतिरिक्त कारणके रूपमें जोरोंके साथ पेश किया गया था। उन तर्कोंको पेश करनेवाले लोग उन्हें भूल जानेके लिए भले ही उत्सुक दिखलाई पड़ते हों, मगर इंग्लैंड इन्हें इतनी जल्दी नहीं भूल सकता। और यूरोपीयोंके अलावा "किसीको कोई अधिकार नहीं" दिये जायें इस विचारहीन चिल्लाहटके बीचमें डचेतर गोरोंकी वह आवाज अब भी अनेक शोकाकुल ब्रिटिश परिवारोंमें साफ-साफ गूंज उठती है। रैंड (ट्रान्सवाल) का सौभाग्य है कि यहाँ बहुतसे योग्य और सम्पन्न व्यक्ति मौजूद हैं, जो पूर्वग्रहोंको न्यायकी खरी भावनापर हावी न होने देंगे।

हम अपने सहयोगीको उसकी निर्भीक विचार-स्वतत्रताके लिए और न्याय-परायणताके साहसके लिए बधाई देते है। हमारी कामना है कि उसे पूरी सफलता प्राप्त हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४-१२-१९०४

२७६. सालाना लेखा-जोखा

जो व्यापारी अपनी साल-ब-साल हालतका लेखा-जोखा नही करता, वह मूर्ख माना जाता है। मिशनरियोकी एक भजन-पुस्तकमे उपदेश किया गया है कि "अपने वरदानोको एक-एक करके गिनो" और देखो कि भगवानने हमारे लिए कितना किया है। इसलिए अगर हम दक्षिण आफ्रिकामे रहनेवाले अपने देशभाइयोकी स्थितिका, जिसके कारण हमारा अस्तित्व आवश्यक हुआ है, सक्षेपमें सिंहावलोकन करे तो यह एक अच्छे उदाहरणका अनुसरण होगा, और हमारा यह कार्य परिपाटीके बिलकुल अनुकूल होगा। तथापि हमें खेद है कि हम इस महाखण्डमे अपने देशवासियोके लिए "बहुतसे वरदानोकी गिनती" नही कर सकते। हमे अपने आसपास छाई काली घटाओके घोर रूपको, जहाँ-तहाँ दीखनेवाले शुभ चिह्नोकी ओर ध्यान खीचकर, मृदु मात्र बनाकर ही सन्तोष मान लेना होगा।

हम नेटालसे ही आरम्भ करे। जहाँतक नये कानूनका सम्बन्ध है, यहाँ स्थिति पहले जैसी ही है। परन्तु एशियाई-विरोधी कानूनोके अमलकी प्रवृत्ति निश्चित रूपसे ऐसी पाबन्दीकी ओर रही है जो अक्सर कठोरताकी हदतक पहुँचती है। नया प्रवासी-अधिनियम लोगोको अब भी बहुत अधिक कष्ट पहुँचा रहा है। भारतीय यात्रियोको लेकर आनेवाले जहाजोका निरीक्षण पहलेसे बहुत सख्त हो गया है। "अधिवासी" शब्दका अर्थ बहुत सकुचित कर दिया गया है और बहुतसे सुपात्र भारतीयोको, यद्यपि वे पहले इस बस्तीमे रह चुके है, बाहर रखा जा रहा है। विक्रेता-परवाना अधिनियमसे लोगोको बहुत कष्ट हुआ है, और अब भी हो रहा है। हुडामलके मुकदमेकी याद अभी ताजी ही है। एक पुराने व्यापारीको, जो अपने वस्तुभण्डारको साफ-सुथरा रख कर प्रथम कोटिके यूरोपीय ग्राहक-मण्डलको माल बेचा करता था, इसलिए सताया गया कि उसने अपने वस्तु-भण्डारको कुछ ही दूकानोके फासलेपर एक स्थानसे दूसरे स्थानमें हटा देनेका साहस किया। कारण यह है कि दूकान हटाकर वेस्ट स्ट्रीटमे ले जाई गई है, जिसे नगर-परिषद यूरोपीयोके साथ व्यापारके लिए नही, बल्कि सिर्फ यूरोपीय दूकानदारोके लिए सुरक्षित रखना चाहती है। नगर-परिषद और भारतीय-समाजके बीचके इस प्रश्नका निबटारा

अवतक नही हुआ है। यह मामला पुनर्विचारके लिए सर्वोच्च न्यायालयके अधीन है। परन्तु इतना तो बहुत साफ है कि अगर नेटाल परवाना-अधिनियमका मंशा भारतीयोको जरा भी शान्ति देनेका है, तो उसमें ऐसा परिवर्तन किया जाना चाहिए कि सर्वोच्च न्यायालयको न्याय-सम्बन्धी सब निर्णयोपर पुन. विचार करनेका स्वत. सिद्ध अधिकार फिर मिल जाये — भले ही वह निर्णय देनेवाला अफसर कोई भी क्यो न हो, वह मजिस्ट्रेट या परवाना-अधिकारी, कुछ भी क्यों न कहलाता हो। भारतीय गिरमिटिया मजदूरोकी हालतकी जब-तब समीक्षा करना जरूरी होता है। लेडीस्मिथमे हालमे हुए मुकदमोकी, जिनकी ओर हमारे सहयोगी *नेटाल विटनेसने* विशेष ध्यान आकर्षित किया है, जाँचकी आवश्यकता है। नेटालवासी भारतीयोके बच्चोकी शिक्षाका प्रश्न अत्यन्त महत्त्वका है। भूतपूर्व शिक्षा-अधीक्षक श्री बार्नेटने ठीक ही कहा है कि अगर केवल गोरे लोगोके हितका ही खयाल किया जाये तो भी उन बच्चोकी उपेक्षा करनेमे खैरियत नही हो सकती। भारतीय बच्चोको उपयुक्त शिक्षा देनेके लिए या तो साधारण स्कूलोके द्वार खुले रखने चाहिए, या नये स्कूलोकी स्थापना होनी चाहिए। यहाँ हम उल्लेख कर दे कि साधारण पाठ्यक्रममे भारतीय भाषाओकी शिक्षा जोड देना वाछनीय होगा। उपनिवेशमें दुभाषियोका काम जिस तरह चल रहा है, वह बिलकुल सन्तोषजनक नही है, फिर भी उसमे दुभाषियोका कोई दोष नही। अगर भारतीय नवयुवकोको भारतीय भाषाओंकी शिक्षा दी जाये तो योग्य दुभाषिये प्राप्त करनेका यह एक सस्ता तरीका होगा।

जहाँतक ट्रान्सवालकी बात है, वह अब भी भारतीय समाजके लिए सर्वाधिक चिन्ताका विषय बना हुआ है। वहाँ अभी किसी बातका फैसला नही हुआ। १८८५ का कानून ३ कठोरताके साथ कार्यान्वित किया जा रहा है। सच तो यह है कि वर्तमान सरकार कानूनकी मर्यादाको भी लाँघ गई है। भारतीयोको ट्रान्सवालसे बाहर रखनेके लिए उसने शान्ति-रक्षा अध्यादेशका, जो कि एक शुद्ध राजनीतिक कानून है, प्रयोग किया है। प्रामाणिक शरणार्थियोको भी देशमे आनेसे रोका जाता है। *हबीब मोटन* बनाम *महान्यायवादीके* मुकदमेसे भारतीय व्यापारियोको एक तरहकी राहत मिली है और वे बिलकुल नामशेष हो जानेके खतरेसे बच गये है। परन्तु उस मुकदमेकी जीतसे ट्रान्सवालमे ब्रिटिश भारतीयोके विरुद्ध एक हिंसात्मक, आक्रमणात्मक और अज्ञानमय आन्दोलनको जन्म मिला। उसकी परिसमाप्ति उस एशियाई-विरोधी समझौतेमे हुई, जो अब काफी बदनाम हो चुका है और जिसमें कठोर तथा ब्रिटिश आदर्श-विरोधी कार्रवाइयोकी सिफारिश की गई है। और, उत्तेजक भाषणो द्वारा उसका समर्थन किया गया। श्री लवडेने एक भाषण देकर ख्याति कमायी और उनके उस भाषणने ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षको एक तीखा प्रत्युत्तर देनेके लिए बाध्य कर दिया। श्री लवडेने श्री अब्दुल गनीके वक्तव्यका प्रतिवाद करनेका प्रयत्न किया; परन्तु श्री अब्दुल गनीने उन्हे फिर चकरा दिया है। उन्होने *स्टारको* एक पूर्ण, और बिना लाग-लपेटका प्रतिवाद[1] लिख भेजा है। इस तरह, यद्यपि ब्रिटिश भारतीय सघ सच्ची परिस्थितियाँ सामने रखकर बहुधा लोगोके अनर्गल वक्तव्योका मुकाबला कर सका है, फिर भी स्थिति तो उग्र बनी ही है। पॉचेफस्ट्रूम और अन्य स्थानोके लोग स्थानीय भारतीयोके बहिष्कारकी आवाजे उठा रहे है और भारतीयोकी धार्मिक भावनाओपर आघात भी कर रहे है। इसी बीच, सदा परिवर्तित होती रहनेवाली नीतिका अवलम्बन करके मूल्यवान समयका नाश किया जा रहा है। लॉर्ड मिलनर न्यायके पक्षमे दृढ़ रहनेमें असफल हुए है और उन्होने ब्रिटिश भारतीयोके अधिकार, चीख-पुकार भरे स्वार्थी आन्दोलनसे प्रभावित होकर, परार्पित कर दिये है।

१. देखिए "पत्र: *स्टारको*", दिसम्बर २४, १९०४ के पूर्व; पृष्ठ : ३४२-४४।

सौभाग्यसे भारत सरकारने दृढता दिखलाई है और आशा की जा सकती है कि शीघ्र ही कठिनाइयोका कोई उचित हल निकल आयेगा।

ऑरेंज रिवर उपनिवेश अपनी औपनिवेशिक नीतिमे सर्वथा अडिग रहा है। वह ब्रिटिश आदर्शोका विरोधी है, इसकी उसके निवासियोको कोई चिन्ता नही। युद्ध तो दूसरोके साथ-साथ भारतीयोके लिए भी लडा गया था। ब्लूमफॉटीनपर यूनियन जैक फहराता हुआ भी ब्रिटिश भारतीयोको कोई सरक्षण प्रदान नही करता। ब्रिटिश भारतीय अछूतोके समान दूर रखे जाते है।

केप उपनिवेशके भिन्न-भिन्न भागोके लिए भिन्न-भिन्न कानूनोका विचित्र नजारा दिखलाई पड़ता है। फलत केप टाउनमें रहनेवाले भारतीय तो नागरिक-जीवनकी साधारण स्वतन्त्रताका उपभोग करते है; परन्तु ईस्ट लन्दनमें उन्हे पैदल-पटरियोपर चलने और ट्रान्सकाईके अधीनस्थ राज्यमे प्रवेशकी भी अनुमति नही है। हमारा पक्का विश्वास है कि यह प्रतिक्रियावादी नीति ट्रान्सवालमे लॉर्ड मिलनरकी *बाजार*-सूचनाकी सीधी उपज है। उसके द्वारा उन्होने दुनियाको बता दिया कि ब्रिटिश भारतीयोके अधिकारोको सामान्य सरक्षण भी प्राप्त होनेवाला नही है। फिर अगर शुभाशा अन्तरीपके स्वशासित उपनिवेशने शीघ्रतापूर्वक और भरसक इस उदाहरणका अनुकरण किया, तो इसमे आश्चर्य ही क्या है।

वर्षके अन्तमे ब्रिटिश भारतीयोके लिए स्थिति ऐसी विषम है। परन्तु मुसीबतके फल मीठे होते है। मुसीबत उसका ज्यादा नुकसान करती है, जो उसे ढाता है, बनिस्बत उसके कि जिसपर वह ढाई जाती है। एक विद्वान धर्मात्मा पुरुषने कहा है:

> **इस भौतिक जीवनकी मुसीबत सहना मनुष्यके लिए अच्छा है, क्योंकि वह उसे हृदयके पवित्र एकान्तकी ओर वापस ले जाती है और केवल वहीं वह देखता है कि वह तो अपने ही मूल गृहसे निर्वासित है।**

इसलिए अगर हम अपनी मुसीबतका सही-सही उपयोग करे तो उससे हमें पता चलता है कि हमे वह पवित्र करेगी और सही रास्ता दिखायेगी। निराशाके लिए कोई कारण नही है। हमारा काम केवल यह है कि जिसे हम सही और न्यायपूर्ण समझते है उसे बराबर करते रहे और परिणाम भगवानपर छोड़ दे, जिसकी अनुमति या जानकारीके बिना पत्ता भी नही हिलता।

अगर हमे यह कहनेके लिए माफ किया जाये तो, हमारा विश्वास है कि *इंडियन ओपिनियन* समाजका एक ऐसा मित्र और वकील है, जो कभी पैर पीछे न हटायेगा। हमने शक्ति-भर अपने देशवासियोकी सेवा करनेका प्रयत्न किया है। और चूँकि हम विश्वास करते है कि आखिरकार सत्य और न्यायकी विजय होगी और चूँकि ब्रिटिश जनताकी सद्‌बुद्धिपर हमे आस्था है, इसलिए, यद्यपि आज घटाएँ काली दिखाई देती है, हम सफलताकी प्रत्येक आशाके साथ, अपने देशभाइयो और अपने अन्य सब पाठकोके लिए कामना करते है—

नव वर्ष मगलमय हो!

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३१-१२-१९०४

२७७. हमारी कसौटी

हम पिछले अंकमे अपनी स्थितिके विषयमे लिख चुके है। हमने उसमें यह भी लिखा था कि यहाँ जो लोग काम करते है उनमें तीन अंग्रेज है। अपने पाठकोको, हमने जो नया कदम उठाया है, उसका अधिक अन्दाज हो जाये, इस हेतुसे इन तीन अंग्रेजोने कौन-सा जोखिम उठाया है, वे कौन है और किसलिए प्रेसमें आये है, यह हम बताना चाहते है।

इनमे से एकका नाम श्री वेस्ट[1] है। वे छापाखानेके कामके खासे जानकार है। जोहानिसबर्गमे उनका छापाखाना था। वहाँ उनकी आमदनी ठीक थी और उनके अधीन कितने ही लोग थे। *ओपिनियनपर* जब वास्तविक सकट पड़ा उस समय वे २४ घंटेमे तैयारी करके अपना काम बन्द करके चले आये।[2] ये सज्जन इस समय खाने-पहनने लायक लेकर, अन्तमें लाभ होगा[3], ऐसा विश्वास रखकर रहते है और अपना ही काम मानकर सुबहसे शामतक मेहनत किया करते है।

दूसरे श्री किचन[4] है। वे बिजलीके ठेकेदार थे। उनकी अपनी पेढ़ी थी और वे अच्छी कमाई करते थे। नये परिवर्तनकी खबरसे उनका मन उत्साहित हुआ। उन्होने देखा कि *ओपिनियनका* ध्येय बहुत अच्छा है। पैसेका उन्हे लोभ नही है, और जिस पद्धतिसे फीनिक्समें रहना है वह सरल, सस्ती और सरस है, इसलिए वे अपना धधा छोड़कर केवल निर्वाहके योग्य मिलनेवाले पैसेमें सन्तोष मानकर प्रेसमे शामिल हो गये।

तीसरे श्री पोलक[5] है। वे अभी *क्रिटिक*[6] समाचारपत्रके सहसम्पादक है। उन्हे अच्छा वेतन मिलता है किन्तु अत्यन्त सादे विचारके होनेके कारण तथा यह मानकर, कि *इंडियन ओपिनियनमें* वे इच्छानुसार अत्याचारके विरुद्ध अपनी भावना प्रकट कर सकेंगे, उन्होने ऊपरकी नौकरी छोड़नेकी सूचना अपने प्रधानको देदी है और अगले वर्षके प्रारम्भमे यहाँ आ पहुँचेंगे। इस बीच अखबारके

१. अल्बर्ट वेस्टसे गाधीजीकी पहली मुलाकात जोहानिसबर्गके एक उपाहार-गृहमें हुई। वेस्टका जन्म लिकनशायरके एक कृषक-कुटुम्बमें हुआ था। उनकी शिक्षा-दीक्षा साधारण हुई थी। बादमें श्री वेस्ट फीनिक्स आश्रममें गाधीजीके साथ काम करने चले आये और उनकी माता, बहन कुमारी एडा और पत्नी भी आश्रममें रहने लगीं। श्री वेस्ट सत्याग्रह आन्दोलनमें गिरफ्तार भी हुए। देखिये *आत्मकथा* (गुजराती), भाग ४, अध्याय १६।

२. छापाखाना पहले डर्बनमें स्थापित हुआ था। फिर १९०४ में उसे फीनिक्समें हटाया गया।

३. पहले आधा लाभ और १० पौंड प्रतिमास वेतन निर्धारित हुआ था। किन्तु जब प्रेस आत्मनिर्भर नहीं हुआ और फीनिक्स ले जाया गया तब वर्ण या जातिके भेद-भावके बिना सबका वेतन ३ पौंड मासिक तय किया गया।

४. श्री हर्बर्ट किचन एक थियोसफिस्ट थे। उन्होंने श्री नाजरकी अकाल मृत्युके बाद *इंडियन ओपिनियनका* सम्पादन किया। कुछ दिनों गांधीजीके साथ रहे और बोअर युद्धमें उनके साथ काम किया।

५. श्री हेनरी एस० एल० पोल्कसे भी गाधीजीकी भेंट वेर्जीटेरियन रेस्तराँमें हुई थी। पोल्कने ही गाधीजीको रस्किनकी पुस्तक *अन टु दिस लास्टकी* प्रति दी थी जिससे प्रभावित होकर गाधीजीने फीनिक्स आश्रमकी स्थापना की। गाधीजीकी सलाहपर पोल्कने वकालतकी शिक्षा ली और उनके सहयोगीकी तरह काम करने लगे। किचनके बाद *इंडियन ओपिनियनके* सम्पादक हुए। दक्षिण आफ्रिकी सघर्षमें मदद करनेके लिए भारत और इंग्लैंड गये तथा सत्याग्रह आन्दोलनमें कारावास भोगा।

६. *ट्रान्सवाल क्रिटिक*।

लिए लिखना शुरू कर दिया है। पाँचेफस्ट्रूममें हम लोगोके विरुद्ध एक बड़ी सभा की गई थी। उसका समूचा विवरण इन्होंने भेजा था, वह बहुतोंने अंग्रेजीमें देखा होगा। भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री क्रूगरकी अन्त्येष्टि-क्रियाका अंग्रेजीमें विवरण भी श्री पोलकने ही लिखा था।

मेरे अनुभवके प्रमाणसे तीनो अंग्रेज सज्जन भले, बुद्धिमान और निःस्वार्थ व्यक्ति है। जब दूसरी कौमके लोग इतना अधिक करते है तो मनमें यह सवाल आना ही चाहिए कि हमें क्या करना चाहिए। हर व्यक्ति, जिसका इस साहसिक काममें मदद करनेका विचार हो, अपनी शक्तिके अनुसार मदद कर सकता है और उसमें उसका कुछ नही जाता। एक हाथसे ताली नही बजती। यह समाचारपत्र सब भारतीयोका है, ऐसा समझना चाहिए और हम जब ऐसा समझकर काम करेंगे, तभी पार लगेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३१-१२-१९०४

२७८. पाँचेफस्ट्रूमकी कुछ और गलतबयानियाँ

पाँचेफस्ट्रूमकी सभामें, जिसका विवरण[1] हाल ही में हमारे स्तम्भोमें छप चुका है, दिये गये कुछ वक्तव्योंपर हम चर्चा किये बिना नही रह सकते। क्योंकि, हम अपने यूरोपीय मित्रोके सामने सच्ची बाते पेश करना जरूरी मानते हैं, ताकि वे भारतीयोकी स्थितिको सही रूपमें समझ सकें।

हम ट्रान्सवालमें भारतीयोके प्रवेशके बारेमें श्री लवडेके शब्द ही उद्धृत करेंगे:

> **रोक-थामके कानूनका प्रस्ताव तो सर्वप्रथम भारतीय व्यापारियोके आने और १८८१ के समझौतेके बदलेमें १८८४ का समझौता स्वीकार होनेके बाद ही पेश किया गया था।**

अत, श्री लवडे यह बताना चाहते है कि १८८४ से पहले ट्रान्सवालमें कोई भारतीय व्यापार कर ही नही रहे थे और, इसलिए, जब समझौता तैयार किया गया तब भारतीयोका कोई खयाल किया ही नही गया था।

तथापि सत्य यह है कि समझौतेके अमलके बारेमें भारतीयोका खयाल किया गया था और १८८१ तथा १८८२ में और, फलत, १८८४ के पहले, भारतीय व्यापारी ट्रान्सवालमें व्यापार कर रहे थे। इस तरह, श्री लवडेके "तथ्य" कमसे-कम इस विषयमें तो सदोष है। इसके अलावा, जैसा कि श्री गनीने *स्टारको* लिखे एक पत्रमें[2] बताया है, १८८५ का कानून ३ गोरी आबादीके एक बहुत बड़े भागकी गम्भीर गलतबयानीके कारण पास किया गया था। कुछ वक्तव्य यहाँ उद्धृत किये जा रहे है:

> **सारे समाजपर इन लोगोंकी गन्दी आदतो और अनैतिक आचारसे उत्पन्न कोढ़, उपदंश तथा इसी प्रकारके अन्य घृणित रोगोके फैलनेका जो खतरा आ खड़ा हुआ है।**

१. देखिए "पॉचेफस्ट्रूमकी सभा", दिसम्बर १७, १९०४।

२. देखिए "पत्र: *स्टारको*", दिसम्बर २४, १९४० के पूर्व।

और भी

> चूंकि ये लोग पत्नियों या स्त्री-रिश्तेदारोंके बिना राज्यमें आते हैं, नतीजा साफ है। इनका धर्म सब स्त्रियोंको आत्मारहित और ईसाइयोंको स्वाभाविक शिकार मानना सिखाता है।

ये वक्तव्य, हम जिसे उचित और न्यायसंगत बयान मानते हैं, उससे मेल नही खाते। जिस तरहके आरोप हमने उद्धृत किये हैं, उनका प्रतिवाद करनेका कष्ट उठाना अनावश्यक है। तो फिर, जैसा कि हम कह चुके हैं, श्री लवडे कथनीयको न कहने और अकथनीयको कहनेके अपराधी हुए हैं। और व्यक्तिगत दुर्गुणोंका असम्बद्ध विषय छेड़कर असली मुद्देसे लोगोंका ध्यान बँटानेका प्रयत्न करना उनके लिए शोभास्पद न था।

अब रही अरब व्यापारियों द्वारा सालमे ४०पौंडसे ज्यादा खर्च न करनेकी बात। यह कहना गलत है कि भारतीय व्यापारी सालमे ४०पौंडसे ज्यादा खर्च नही करता। अगर श्री लवडेके कथनानुसार, उसके पास पाँच सहायक हो, जैसे कि बहुधा होते ही हैं, और प्रत्येकको २४ पौंड सालाना दिया जाता हो, तो यह आरम्भिक खर्च ही १२० पौंड हो गया। उसका अपना व्यापारका खर्च, व्यक्तिगत खर्च, भाड़ा और कर इसके अलावा हैं। किसी भी हालतमें, अनुभवके आधारपर हम यह अपेक्षा नही करते कि श्री लवडे श्री गनीकी चुनौती स्वीकार करेंगे।

ट्रान्सवालमे वर्तमान भारतीयोंकी संख्याके बारेमें और इस कथनके विषयमें, कि उपनिवेशमें उनका आना लगातार जारी है, हम एक अन्य लेखमें[1] अपने विचार व्यक्त कर चुके हैं। हमें सिर्फ इतना ही कहनेकी जरूरत है कि मुख्य परवाना-सचिवके प्रमाण हमारे पास मौजूद हैं, और उनके अनुसार श्री लवडेके "तथ्य" गलत हैं। *प्रिटोरियामें* वस्तु-भण्डारोंकी संख्याका जिक्र करते हुए श्री लवडेने यह कहकर अत्यन्त असावधानी दिखाई है कि उनकी संख्या बहुत बढ़ गई है। सच बात यह है कि *प्रिटोरियामें* युद्धके समयसे भारतीय वस्तु-भण्डारोंकी संख्या लगभग *३० फी सदी* घटी है, जब कि गोरोंके भण्डारोंकी संख्या इतनी ही बढ़ी है। बस्तीकी बात बिलकुल जुदा है, और झूठा असर पैदा करनेके उद्देश्यसे उसका यहाँ जबरदस्ती घसीट लाना उचित नही था। तो फिर, अगर श्री लवडे अपने ही शहरके बारेमें गलत जानकारी रखते हैं तो उनसे ट्रान्सवालके अन्य शहरों, दक्षिण आफ्रिकाके अन्य उपनिवेशों और स्वयं भारतके बारेमें सच्ची स्थितिकी जानकारी रखनेकी अपेक्षा कैसे की जा सकती है? भारतीयोंपर असत्यका जो आरोप लगाया गया है उसपर एक दूसरे लेखमें विचार करनेका हमारा इरादा है। हम यह बतानेका भी प्रयत्न करेंगे कि जो व्यक्ति इस प्रकारके विषयमें अपना मत देनेके पूर्णत. योग्य हैं, वे बहुत भिन्न विचार रखते हैं; और हम सब उचित सम्मानके साथ निवेदन करते हैं कि श्री लवडे उसके योग्य नही हैं।

श्री लवडेने कहा था कि भारतमें सरकारी वकीलको कैदियोंपर फिरसे मुकदमे चलाने, सजाओंको रद करने और मामलोंको ऊँची अदालतोंमें ले जानेके कतिपय अधिकार प्राप्त हैं, क्योंकि भारतमें झूठी गवाही देना उचित बात मानी जाती है। झूठी गवाहीका प्रश्न तो दूर रहा, श्री लवडेको यह जानकर आश्चर्य होगा कि भारतमे सरकारी वकीलको ट्रान्सवालके महान्यायवादीकी अपेक्षा ज्यादा अधिकार प्राप्त नही हैं और वास्तवमे उसके अधिकार इतने व्यापक हैं ही नहीं।

परन्तु अबतक श्री लवडेने अपनी जानकारीपर विचार नही किया है, क्योंकि उन्होंने इस मुख्य तथ्यका जिक्र ही नही किया कि इन सरकारी वकीलोंमें से बहुतसे भारतीय रहे हैं और हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण और अर्थगर्भित बात है जो छोड़ दी गई है।

१. देखिए "पत्र: *स्मट्सको*" दिसम्बर २४, १९०४के पूर्व।

अब कुछ भारतीयोंके मताधिकारके विषयमें। यह बात सत्य है कि उन्हें एक बहुत निश्चित मताधिकार प्राप्त है। भारतके प्राय प्रत्येक महत्त्वके कस्बेमें नगरपालिका या स्थानीय-निकाय मौजूद है। उसका चुनाव अशत या पूर्णत करदाता करते है, जिनमे बहुमत भारतीयोका है। इसलिए, वहाँ आरम्भ ही नगरपालिका-मताधिकारसे होता है। फिर विभिन्न प्रदेशोंकी धारा-सभाओके कुछ सदस्योका चुनाव निगमोके सदस्य करते है और ये निगम-सदस्य स्वय करदाताओ द्वारा प्रत्यक्ष रीतिसे चुने जाते हैं। इस तरह वहाँ एक अप्रत्यक्ष राजनीतिक मताधिकार भी है। अत "भारतीय मताधिकार" शब्दोके प्रयोगमे हम अपने अधिकारोकी मर्यादाके भीतर ही हैं। इसलिए सदाके समान श्री लवडेका यह कहना भी गलत ही है कि भारतमे "किसी तरहकी प्रातिनिधिक सस्थाएँ है ही नही, और सब उपस्थित लोगोको मालूम है कि भारतीय सैनिक सत्ता द्वारा शासित है, एवं इसमे भारतीयोके धर्म और जातिप्रथा सहायक है।" वहाँ भारतीयो और गोरोके बीच कोई सामाजिक व्यवहार नही है, यह कहते हुए श्री लवडे उन विशाल स्वागत-समारोहोको भूल जाते है जो वाइसराय और सरकारकी ओरसे किये जाते है और जिनमे समाजके दोनो पक्ष आपसमे मिलते-जुलते है। और कूच-बिहारके[1] राजा द्वारा आयोजित सहनृत्यो (बॉल डान्स) जैसे समारोहोकी स्मृति भी उन्हे नही रहती जिनमे गोरे और भारतीय दोनो बराबरीकी हैसियतसे शामिल होते हैं। परन्तु ये सब बाते यहाँ अप्रासगिक है, क्योकि दक्षिण आफ्रिकाका भारतीय समाज गोरोके साथ सामाजिक व्यवहार कतई नही चाहता, और न उसने कभी इसकी माँग ही की है। वह मानता है कि अनेक कारणोसे यह अनावश्यक और अनुचित है।

अफसरोके भोजनालयोमें तो भारतीयोका सत्कार होता ही है। सम्राटके निजी मित्र और अग-रक्षक कर्नल सर प्रतापसिहका उदाहरण इसका प्रमाण है। और, निस्सन्देह, गोरे सैनिक ऊँची श्रेणीके भारतीय अफसरोको सलाम भी करते हैं।

भारतीयो और गोरोके सम्बन्धसे वर्णसंकर जातिके उत्पन्न होनेका प्रश्न भी, स्पष्ट कारणोसे, सभामे पेश किया गया था। यह कहनेकी जरूरत नही कि जिसे भारतीय जीवन और भारतीय रीति-रिवाजोकी जानकारी न्यूनतम भी है वह व्यक्ति भी इस प्रकारका तर्क पेश करनेका कभी स्वप्न तक न देखता। अतएव हम इस विषयको तूल न देंगे।

तथापि श्री लवडेने सर मचरजी मेरवानजी भावनगरीका जिस तिरस्कारपूर्ण ढगसे जिक्र किया है, उसके बारेमे हमे एक बात कहनी है।

श्री लवडेने कहा

> **इंग्लैंडके लोग अपने-आपको इतना भूल गये है कि उन्होने एक काले आदमीको ब्रिटिश संसदका सदस्य चुन दिया है। इस देशके निवासी ऐसा कदापि न करेंगे। वे अपने रंगको इस हदतक नहीं भूलेंगे।**

परन्तु ऐसे अभद्र कथनका कोई क्या उत्तर दे सकता है? हम समझते है कि जिन निर्वाचकोने स्वर्गीय लॉर्ड सैलिसबरी द्वारा मखौल उडानेपर भी, दादाभाई नौरोजीको ससदका सदस्य चुना था, उन्होने लगभग ४ करोड़ ब्रिटिश जनताके सचित राजनीति-ज्ञानका उचित परिचय दिया था। हमें केवल एक और गलतीका खण्डन करना है। श्री सैम्सनने कहा था कि जोहानिसबर्गमे भारतीय घरोमे मेज-कुर्सियाँ बनाते और उन्हे गोरे कारीगरोकी स्पर्धामे खुले बाजारमे बेचते है। मुँहफट भाषामे कहे तो यह असत्य है। जोहानिसबर्गमे इस पैमानेपर काम करनेवाले कोई भारतीय कारीगर नही हैं। निश्चय ही ऐसे वक्तव्यकी बेहूदगी स्वत- ही काफी स्पष्ट है।

१. असमकी एक भूतकालीन छोटी रियासत।

इस वक्तव्यसे हमें उस व्यापारीकी कहानी याद आती है, जिसने एक दिन अपने गश्ती-गुमाश्तेसे कहा था . "काम लाओ, हो सके तो ईमानदारीसे लाओ; मगर काम लाओ।" मालूम होता है कि पाँचेफस्ट्रूमकी सभाके वक्ताओंके मनमें ऐसी ही कल्पना प्रबल थी। मानो, उन्होंने एक-दूसरेसे कहा था. "जोरदार भारतीय-विरोधी भावना पैदा करो, हो सके तो ईमानदारीसे पैदा करो, मगर पैदा करो।"

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७-१-१९०५

२७९. श्री क्लाइनेनबर्ग और श्री अब्दुल गनी

हमने अपने प्रतिष्ठित सहयोगी जोहानिसबर्ग *स्टार*के स्तम्भोको सावधानीके साथ देखा है, परन्तु उसमे हमे अभीतक यह दिखाई नही दिया कि श्री टी० क्लाइनेनबर्गने भारतीय सघके अध्यक्षकी चुनौती स्वीकार की हो। श्री गनीने अपन विरोधीको मौका दिया है कि वे भारतीयोकी आम सभामे कही गई बातोका खण्डन करे। अगर श्री क्लाइनेनबर्ग इस मौकेका लाभ उठाना चाहते है, तो हमे इसकी जानकारी प्राप्त करके खुशी होगी। हमें यह प्रतीत होता है कि श्री क्लाइनेन-बर्ग इस मामलेको जहाँका तहाँ छोड़ देनेसे सिर्फ श्री अब्दुल गनी और साधारण जनताके प्रति ही नही, बल्कि स्वयं अपने प्रति भी अन्याय करेगे। हम यह जानते है कि श्री क्लाइनेनबर्ग कितने इज्जतदार व्यक्ति है, अत. हमे यह विश्वास है कि उनका श्री गनीकी चुनौतीकी उपेक्षा करनेका कोई इरादा नही है। हमें कोई सन्देह नही है कि अगर श्री क्लाइनेनबर्ग यह देखते हैं कि श्री गनीके तथ्योका प्रतिवाद करनेके प्रयत्नमे वे एक गम्भीर गलती कर गये है, तो उनमें श्री गनीके दिये हुए आँकडोको सही मानने और अपने वक्तव्यको वापस लेनेका नैतिक साहस अवश्य होगा। स्वत श्री गनीने खुले तौरसे जाहिर कर दिया है कि अगर उनका दोष पाया जायेगा तो वे खुली और पूरी माफी माँगनेको तैयार हैं। ऐसी स्थितिमे हमे कोई कारण दिखलाई नही पडता कि जो बात एक-दूसरे पक्ष द्वारा उपस्थित तथ्योसे मण्डन और खण्डनके बाद इतनी सरलताके साथ तय की जा सकती है, उसका यथासम्भव शीघ्रसे-शीघ्र कोई अन्तिम फैसला क्यो न हो जाये।

[अंग्रेजी से]

इंडियन ओपिनियन, ७-१-१९०५

२८०. पाँचेफस्ट्रूमका ओछापन

पाँचेफस्ट्रूमके व्यापारी, जिनका उस स्थानसे केवल एक दूरका और अस्थायी सम्बन्ध है, या तो उसके तर्कहीन भारतीय-विरोधी पूर्वग्रहसे प्रभावित है, या आतंकित किये जा रहे हैं। फलत. वे ऐसे काम करते है जिनके लिए वे अपने अपेक्षाकृत मुक्त क्षणोमें पूरी तरह शर्मिन्दा हुए होते। एक सम्मान्य सवाददाताने हमे सूचना दी है कि बीमा-एजेंटोने एकाएक, किसी पूर्वसूचनाके बिना, भारतीय व्यापारियोकी आग-बीमेकी पालिसियाँ वापस ले ली है। इस तरहका उदाहरण हमने कभी, और कही भी, नही सुना है। हमे बताया गया है कि ये छोटे-छोटे एजेंट, जो हमारे उपर्युक्त कथनके अनुसार, स्थानिक पूर्वग्रह या आतंकके सामने झुक गये हैं, ससार-प्रसिद्ध बीमा कम्पनियोंके प्रतिनिधि हैं। अगर इन कम्पनियोंके प्रधान अधिकारी इन एजेंटोकी मूर्खतापूर्ण और अव्यापारिक कार्रवाईपर अपनी मंजूरीकी मुहर लगा दें तो हमें बहुत आश्चर्य होगा।

हम आशा करते है कि एजेंट और प्रधान कार्यालयोके प्रबन्धक दोनो इन पंक्तियोंको देखेंगे, और हम भारतीय व्यापारियोको भी जोरदार सलाह देते है कि वे प्रधान कार्यालयोको अपने आवेदन भेजे। इस विषयमे पॉचेफस्ट्रूमके लोगोकी जो नीति बनती जा रही है वह नितान्त अब्रिटिश है। अब यह देखना शेष है कि ट्रान्सवालके अन्य भागोंमे उसका समर्थन कहाँतक किया जाता है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७-१-१९०५

२८१. प्लेग

ईस्ट लदनसे खबर आई है कि वहाँ दो गोरोको प्लेग हो गया है। ऋतु गर्म और वर्षाकी है, इसलिए यह प्लेग फैलनेका वक्त है। हमारा एक सवाददाता जो लिखता है उसके अनुसार हम लोग अभी जागृत नही हुए। डॉ० म्यूरिसनकी[1] हमदर्दी पूरी है। वे हम लोगोको सहायता देना चाहते हैं। इसलिए हमारा कर्त्तव्य है कि उनके द्वारा दिये गये अवसरका लाभ लें। केवल स्वार्थमे अथवा आलस्यमे पडे रहकर हमें जो करना चाहिए वह न करेंगे तो हमें भय है कि भविष्यमे पछतानेका समय आयेगा। पहलेकी तरह एक समिति नियुक्त करके घरोमे जाँच करनेकी और जहाँ गन्दगी हो वहाँसे उसे हटानेका प्रयत्न करनेकी पूरी आवश्यकता है। और हमे आशा है कि अगुआ लोग इस दिशामे तुरन्त कदम उठायेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७-१-१९०५

२८२. डर्बनमें सार्वजनिक पुस्तकालयका उद्घाटन

नीचे दी हुई रिपोर्ट गांधीजीके एक भाषणकी है, जो उन्होंने नेटाल सनातन धर्म सभाके संस्थापक स्वर्गीय श्री लल्लूभाईकी स्मृतिमें स्थापित पुस्तकालयका उद्घाटन करते हुए दिया था।

[डर्बन
जनवरी १०, १९०५]

उन्होने अपने भाषणमे पुस्तकालयकी स्थापना करनेवालोको कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव देते हुए कहा कि डर्बन जैसे बडे शहरमे, जहाँ भारतीयोंकी खासी आबादी है, एक अच्छे पुस्तकालयकी निस्सन्देह ही जरूरत है, और इसे पूरा करनेके लिए कुछ समय पहले डर्बनके अग्रगण्य व्यापारियो और नागरिकोने प्रयत्न करके हीरक-जयन्तीकी यादगारमे उसी नामका एक पुस्तकालय[2] खोला था। किन्तु बादमे पर्याप्त सार-सँभाल और देखरेखके अभावमे वह बद हो गया। उन्होंने आशा प्रकट की कि इस पुस्तकालयकी हालत वैसी नही होगी बल्कि दिनपर-दिन अच्छी होगी

१. डर्बनके स्वास्थ्य – चिकित्सा अधिकारी।

२. देखिए खण्ड २ पृष्ठ ३५७। हीरक-जयन्ती पुस्तकालयका साज-सामान और पुस्तकें नये पुस्तकालयको दे दी गईं।

और इसके सस्थापक आज सरीखी उमंग सदा वनाये रखेंगे और पुस्तकालयको स्थायी बनानेका प्रयत्न करते रहेंगे।

इसके बाद, पुस्तके कौन-सी रखी जायें और वाचनका समय कौन-सा तय किया जाये — इस बारेमें श्री गाधीने अनेक महत्त्वके सुझाव दिये। उन्होने रविवारके दिन विशेष रूपसे पुस्तकालयमे आकर मूक सन्मित्र — पुस्तको — के बीचमें बैठकर उनसे लाभान्वित होनेका आग्रह भी किया।

फिर उन्होने उपस्थित सज्जनोसे हमारे *इंडियन ओपिनियन*के बारेमे दो शब्द कहकर भाषण समाप्त किया और पुस्तकालयका उद्घाटन सम्पन्न हुआ।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४-१-१९०५

२८३. पत्र: गो० कृ० गोखलेको

२१-२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक ऐंड ऐंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
जनवरी १३, १९०५

सेवामें
माननीय प्रो० गोखले
पूना

प्रिय प्रोफेसर गोखले,

इंडियन ओपिनियन निकल रहा है, यह आप जानते हैं। अब वह एक ऐसा कार्यक्षेत्र अपना रहा है जिसमें मैं अपने विचारसे आपकी सक्रिय सहानुभूतिके लिए औचित्यपूर्वक प्रार्थना कर सकता हूँ। मैं आपको सब-कुछ साफ-साफ लिखना चाहता हूँ, क्योंकि आप मुझे इतनी अच्छी तरह जानते हैं कि गलतफहमी नही हो सकती। जब मैंने देखा कि श्री मदनजीत बिना आर्थिक सहायताके पत्रको और नही चला सकते और चूंकि मैं जानता था कि वे पूर्णरूपेण देशभक्तिकी भावनासे प्रेरित हैं, मैंने अपनी बचतका अधिकाश उन्हे सौप दिया। किन्तु यह काफी नही हुआ, अतः तीन महीने पहले मैंने सारी जिम्मेदारी और व्यवस्था ले ली। अब भी श्री मदनजीत बरायनाम मालिक और प्रकाशक हैं, क्योंकि मेरा विश्वास है कि उन्होने समाजके लिए बहुत-कुछ किया है। फिलहाल मेरा अपना दफ्तर *इंडियन ओपिनियन*के काममे लगा है और मुझपर लगभग ३,५०० पौंडकी जिम्मेदारी आ चुकी है। कुछ अंग्रेज मित्रोके सामने, जो मुझे घनिष्ठ रूपसे जानते हैं, मैंने सलग्न पत्रमें वर्णित योजना रखी। उन्होने विचारको उठा लिया और इस समय उसपर पूरी तरह अमल किया जा रहा है। यद्यपि इसमें फर्ग्युसन कॉलेज पूनाके सस्थापकोके आत्मत्यागके मुकाबिलेका आत्मत्याग दिखायी नही पड़ता, फिर भी मैं कह सकता हूँ कि यह उसका बुरा अनुकरण नही है। अंग्रेज मित्रोको इस निर्भयतासे सामने आते देखना मेरे लिए एक बडी ही खुशीकी बात हुई है। वे साहित्यिक नही हैं किन्तु खरे, ईमानदार और स्वतन्त्र विचारके लोग हैं। इनमेंसे हरएकका — अपना काम या धन्धा था और वह ठीक तरह चल रहा

था। फिर भी उनमेसे किसीने केवल निर्वाह-खर्च लेकर, कार्यकर्ताकी तरह सामने आनेमें तनिक-सा भी आगा-पीछा नही किया — जिसका अर्थ यह है कि सुदूर भविष्यमे लाभ होनेकी आशासे तीन पौड प्रतिमास उन्होने अभी लेना स्वीकार किया है।

[यदि मुझे आमदनी होती रही तो मेरा यह भी इरादा है कि एक ऐसी पाठशाला खोलूँ जो दक्षिण आफ्रिकामे किसीसे कम न हो और जो मुख्यतया भारतीय बच्चोके, और फिर दूसरे बच्चोके, शिक्षणके लिए हो। ये सब बच्चे पाठशालाके अहातेमे बने छात्रावासमें रहेगे।] इसके लिए भी स्वेच्छासे सामने आनेवाले दो कार्यकर्ताओकी जरूरत है। यहाँ एक अथवा दो अग्रेज पुरुषो और स्त्रियोको इस काममे अपना जीवन लगानेको प्रेरित किया जा सकेगा। किन्तु भारतीय शिक्षकोकी आवश्यकता अनिवार्य है। क्या आप ऐसे किन्ही दो स्नातकोको प्रेरित कर सकेंगे, जिनमे पढानेकी योग्यता हो, जिनका चरित्र निष्कलक हो और जो केवल निर्वाह-खर्चपर काम करनेको तैयार हो जाये? जो आना चाहे वे पहले दर्जेके जाँचे-परखे व्यक्ति होने चाहिए। मुझे कमसे-कम दो या तीन व्यक्ति चाहिए। किन्तु ज्यादाकी गुजाइश भी निकाली जा सकती है। जब पाठशाला चलने लगेगी तब स्वच्छताके आधारपर खुलेमें चिकित्साके लिए एक आरोग्य-सदन जोड़नेका इरादा है। किन्तु मेरा तात्कालिक उद्देश्य *इंडियन ओपिनियनको* लेकर है। मैंने उसके बारेमे जो कहा है यदि आप उस सबको ठीक समझे तो कृपया सम्पादकके नाम प्रकाशनके लिए एक उत्साहवर्धक पत्र भेजे और यदि कुछ समय निकाल सके तो उसके लिए कभी-कभी, छोटा ही सही, लेख भेजते रहे। मै ऐसे अवैतनिक अथवा वैतनिक सवाददाताओके लिए भी चिंतित हूँ जो अग्रेजी, गुजराती, हिन्दी और तमिलमे साप्ताहिक टिप्पणियाँ दे। यदि यह महँगा हो जाता है तो मुझे कदाचित् केवल अग्रेजी टिप्पणियोसे सतुष्ट होना पड़े — उनका अनुवाद तीनों भारतीय भाषाओमे किया जा सकेगा। क्या आप ऐसा या ऐसे कोई सवाददाता सुझा सकेंगे? भारतीय प्रश्नको लेकर आपकी तरफ क्या कुछ किया जा रहा है — साप्ताहिक टिप्पणियोमे, समाचार-पत्रोसे तत्सम्बन्धी विज्ञप्तियोके अश लेकर, इसका अदाज देना चाहिए और उनमे ऐसी बाते होनी चाहिए, जो दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोको दिलचस्प लग सके। पत्रमें लिखे गये विषयके हितमे यदि आवश्यक जान पडे तो आप अपनी मर्जीके मुताबिक पत्रकी बाते पूरी या अशत. जाहिर कर सकते है। मै आशा करता हूँ कि आप स्वस्थ होगे।

आपका विश्वस्त,

मो० क० गांधी

१ सलग्न[1]

दफ्तरी अग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४१०४) से।

१. यह उपलब्ध नहीं है।

२८४. भारतीयोंकी सत्यपरायणता

यह खयाल आम तौरपर फैला दिखाई पडता है कि सत्यपरायणता — सत्यकी अनन्त खोजकी वाह्य अभिव्यक्ति — एक ऐसा सद्‌गुण है जो भारतीयोके स्वभावमे पाया ही नही जाता। इस मान्यतामे गलतफहमीकी सम्भावनाके लिए कोई गुजाइश ही नही। भ्रातिकी सम्भावनाके लिए कोई अवकाश नही। बस, भारतीयको एकदम ठग, बदमाश, झूठा, आवारा — साराश यह कि, ऐसा मनुष्य ठहरा दिया जाता है जो इज्जतके प्रत्येक चिह्नसे रहित है।

इस देशमे जो भारतीय आये है उनके बीच कोई फर्क नही किया जाता। सब आँख मूँदकर "कुली" या "अरब" की कोटिमें रख दिये जाते है और सबपर एक समान प्रत्यक्ष या सम्भाव्य झूठा होनेका कलक लगा दिया जाता है। यह भुला दिया जाता है कि दक्षिण आफ्रिकामे सामान्यत भारतीयोके दो मुख्य वर्ग है — एक तो गिरमिटिया मजदूरोका और दूसरा व्यापारियोका। गिरमिटिया भारतीयोमे लगभग आधे नीची जातियोके लोग है। वे भारतमे अपने अभ्यस्त वातावरण और अपने निवास-स्थानके नैतिक प्रतिबन्धोसे जुदा कर दिये गये हैं। फलत. भारतमे उन्होने अपने लिए चरित्रका जो मानदण्ड स्थिर कर रखा था, उससे उनका पतन हो जाना ठीक वैसे ही सम्भव है जैसे कि इसी प्रकारकी परिस्थितियोमे पड़े किन्ही भी दूसरे लोगोका। इस सम्बन्धमे एक बहु-प्रचारित पुस्तिकाके[1] निम्नलिखित अंश उद्धृत कर देना ज्यादा अच्छा होगा.

> इस उपनिवेशमें मै जिससे भी मिला हूँ, हरएकने भारतीयोंकी असत्यवादिताकी बात कही है। कुछ हदतक मै इस आरोपको स्वीकार भी करता हूँ। परन्तु अगर मै इस आपत्तिका उत्तर यह कहकर दूं कि दूसरे वर्ग भी, खास तौरसे इन अभागे भारतीयोंकी हालतोंमें रखे जानेपर, ज्यादा अच्छे नहीं ठहरते, तो यह मेरे लिए बड़े अल्प सन्तोषकी बात होगी। फिर भी, अन्देशा है कि मुझे उस तरहके तर्कका सहारा लेना ही होगा। मै चाहूँगा तो बहुत कि वे ऐसे न हों, परन्तु यह सिद्ध करनेमें अपनी पूरी असमर्थता कबूल करता हूँ कि वे मनुष्य नहीं, मनुष्यसे कुछ ज्यादा है। वे भुखमरीकी मजदूरीपर नेटाल आये है (मेरा मतलब सिर्फ गिरमिटिया भारतीयोंसे है)। वे अपने-आपको एक विचित्र स्थिति और प्रतिकूल वातावरणमें पाते है। *जिस क्षण वे भारतसे रवाना होते हैं*, उसी क्षणसे, अगर वे उपनिवेशमें बस जाते है तो, सारे जीवन उन्हें बिना किसी नैतिक शिक्षाके रहना पड़ता है। हिन्दू हों या मुसलमान, उन्हें नाम-लायक कोई नैतिक या धार्मिक शिक्षा बिलकुल ही नहीं दी जाती। और वे खुद इतने पढ़े-लिखे होते नहीं कि दूसरोंकी सहायताके बिना स्वयं शिक्षा प्राप्त कर लें। ऐसी हालतमें वे झूठ बोलनेके छोटेसे-छोटे प्रलोभनके भी शिकार हो सकते है। होते-होते उन्हें झूठ बोलनेकी लत पड़ जाती है, बीमारी हो जाती है। वे बिना किसी कारणके, बिना किसी फायदेकी आशाके, झूठ बोलने लगते है। सचमुच तो वे जानते ही नहीं कि हम क्या कर रहे है। वे जिन्दगीकी एक ऐसी मंजिलपर पहुँच जाते हैं, जहाँ कि उनकी नैतिक शक्तियाँ उपेक्षाके कारण बिलकुल मन्द पड़ जाती है . . . तब क्या उन लोगोंपर दया करनेकी अपेक्षा

१. "खुली चिट्ठी" दिसम्बर १८९४; देखिए खण्ड १, पृष्ठ १४२-६६।

उनका तिरस्कार करना उचित है? क्या उनके साथ दयाके अयोग्य बदमाशो जैसा बरताव किया जायेगा या उन्हें ऐसा असहाय प्राणी माना जायेगा, जिन्हे हमदर्दीकी बुरी तरहसे जरूरत है? क्या कोई ऐसा वर्ग देखनेमें आता है, जो इसी तरहकी परिस्थितियोंमें उनके समान ही व्यवहार नही करेगा? [१]

जहाँतक भारतीय व्यापारियोका सम्बन्ध है, हम दावेके साथ कहते है कि उनमे किसी भी दूसरी जातिके किसी भी व्यापारीसे ज्यादा झूठ वोलनेकी वृत्ति नही है। शायद दूसरे ज्यादातर लोगोसे उनमे झूठ वोलनेकी लत कम ही है। कारण यह है कि वे उतनी विलासी आदतोके लोग नही हैं, जितने कि उनके अधिक जटिल सभ्यतावाले प्रतिस्पर्धी। इसलिए "पेढीके हितके लिए" झूठ वोलनेकी प्रेरणा उन्हे इतनी ज्यादा नही होती।

और यहाँ हम वेधडक कह देना चाहते हैं कि [कम सस्कारी अग्रेजोकी एक दुर्भाग्यपूर्ण विशेषता यह है कि जब वे किसी ऐसी वस्तुके सम्पर्कमे आते है, जो उनके लिए अपरिचित हो और जिसके वे अभ्यस्त न हो, तब वे उसकी प्रकृतिकी छानबीन नही करते। परन्तु उसे जीवनके प्रति अपने दृष्टिकोणसे भिन्न चीज मानकर ठुकरा देते हैं और जितनी भी वुराइयोकी कल्पना कर सकते है, उन सबको उसमे आरोपित कर देते है।]

हम समझते है कि इस प्रसगमें यह जान लेना फायदेमन्द होगा कि कुछ प्रतिष्ठित अग्रेजोने भारतीयोकी सत्यपरायणताके बारेमे सार्वजनिक रूपसे क्या कहा है।

भारतीय जीवनका अच्छा-खासा अनुभव रखनेवाले एक अग्रेज सर जॉर्ज वर्डवुडका कथन है:

नैतिक सत्यनिष्ठा बम्बईके (ऊँचे) सेठिया वर्गका उतना ही बड़ा गुण है, जितना कि स्वयं ट्यूटॉनिक[२] जातिका। संक्षेपमें, भारतके लोग किसी असली अर्थमें हमसे ओछे नहीं है। कुछ झूठे—हमारे लिए ही झूठे—मापदण्डोसे, जिनपर विश्वास करनेका हम ढोंग करते है, नापी जानेवाली बातोंमें तो वे हमसे आगे ही है। [३]

श्री पिनकॉट कहते है:

तमाम सामाजिक बातोंमें अंग्रेज लोग हिन्दुओंके गुरु बननेके प्रयत्न करनेकी अपेक्षा उनके चरणोंके पास बैठने और शिष्य बनकर उनसे शिक्षा लेनेके ही वहुत अधिक योग्य है। [४]

और सत्य निस्सन्देह एक सामाजिक सद्गुण है।

एलफिन्स्टनने कहा है:

हिन्दुओंमें किसी समुदायके लोग इतने चरित्रहीन नहीं है, जितने कि हमारे अपने बड़े-बड़े नगरोके निकृष्ट लोग।

सर जॉन मालकॉमका कथन है:

मैंने देखा है कि जहाँ भारतीय हमारी भाषा जानते थे, या जहाँ उन्हे किसी सुविज्ञ और विश्वस्त व्यक्तिके द्वारा शान्तिपूर्वक बात समझा दी गई, वहाँ नतीजेसे

१. देखिए "खुली चिट्ठी" दिसम्बर १८९४, खण्ड १, पृष्ठ १६०–६१।
२. जर्मन, स्कैंडीनेवियन, डच, ऐंग्लो-सैक्सन आदि।
३. देखिए "खुली चिट्ठी" दिसम्बर १८९४; खण्ड १, पृष्ठ १५८।
४. देखिए "खुली चिट्ठी" दिसम्बर १८९४, खण्ड १, पृष्ठ १५९।

यही सिद्ध हुआ कि पहले जो झूठ बोला गया था उसका कारण भय था, या गलत-फहमी। मुझे इससे उलटा अनुभव शायद ही कभी हुआ हो। मेरा यह आशय हरगिज नही है कि हमारी भारतीय प्रजा दूसरे राष्ट्रोंकी अपेक्षा, जो समाजमें लगभग ऐसा ही स्थान रखते है, इस दुर्गुणसे अधिक मुक्त है; परन्तु यह तो मै निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि उसमें असत्यकी लत दूसरोंसे ज्यादा नहीं है।

सर चार्ल्स ई० ईलियट, के० सी० एस० आई० लेफ्टिनेंट गवर्नर, बंगालने अपनी पुस्तक *दि पीपल ऑफ इंडियामें* लिखा है:

अक्सर कहा जाता है कि भारतवासी सत्यसे बिलकुल परिचित नहीं। मैंने उन्हें ऐसा नहीं पाया। निस्सन्देह, अपने निजी गाँवोंके लोकमतसे दूर — अदालतोंमें — रिश्वत देनेपर या मामलेमें कोई दूसरी दिलचस्पी पैदा होनेपर गवाह झूठी गवाहीकी आश्चर्य-जनक उड़ानें भरते है और इस तरह अपराधी बनते है; परन्तु अपने ही गाँवोमें, अपने ही लोगोंके बीच, जब सत्यसे उनको ही हानि पहुँचती हो तब भी, मैंने शायद ही किसीको झूठ बोलते देखा है।

प्रोफेसर मैक्समूलरने कहा है कि अंग्रेज व्यापारियोने उनसे बार-बार कहा है कि:

व्यापारिक प्रतिष्ठा भारतमें दूसरे सभी देशोसे ऊँची है और वहाँ शायद ही कभी कोई पावनेकी हुंडी नकारी जाती है।

दूसरी जगह वे कहते है.

(कर्नल) स्लीमन बताते है कि लोग अपनी पंचायतोंमें स्वभाववश और धार्मिक श्रद्धासे सत्यपर दृढ़ रहते है। और, वे कहते है, 'मेरे सामने सैकड़ों मामले ऐसे आये जिनमें आदमीकी सम्पत्ति, स्वतन्त्रता और जान झूठ बोलनेपर निर्भर थी, और उसने झूठ बोलनेसे इनकार कर दिया। क्या कोई इंग्लैंडका न्यायाधीश भी यही बात कह सकता है?

कर्नल स्लीमनके साथ-साथ प्रोफेसर मैक्समूलर बताते है कि, जो भी व्यक्ति भारतीय ग्राम-सभाओके जीवनसे अनभिज्ञ है, जैसा कि लगभग प्रत्येक अंग्रेज होता है, वह भारतीयोके सामाजिक और आचार-सम्बन्धी सद्‌गुणोपर कोई भी मत देनेके बिलकुल अयोग्य है, क्योकि "हिन्दुओंके सब स्वाभाविक सद्‌गुण उनके ग्राम-जीवनके साथ सम्बद्ध है।"

हम समझते है कि हम ऐसे लोगोके काफी उद्धरण दे चुके जो अपने अनुभवके आधारपर सही राय देने और इस आरोपकी पूरी झुठाई सिद्ध करनेमे समर्थ है कि सभी भारतीयोमे आम तौरसे सत्यका अभाव है। जहाँ-कही भी सत्यपर दृढ रहनेमें कोई चूक हुई है, उसका अक्सर यही कारण रहा है कि भारतीयोको नैतिक नियन्त्रणके सब सूत्रोसे दूर कर दिया गया। सर जॉर्ज कैम्बैलका कथन तो यहाँतक बताया गया है कि "हमारे अधिकारमे कोई प्रान्त जितने लम्बे समयतक रहता है, झूठी गवाही उतनी ही आम और गम्भीर बन जाती है।"

हम पॉचेफस्ट्रूमकी हालकी सार्वजनिक सभाका थोड़ा-सा उल्लेख करके इसे समाप्त करेंगे। श्री लवडेने पूर्वीय छल-कपट, असत्य और चालबाजीके बारेमें बहुत-कुछ कहा है। उन्होने यह भी कहा है कि लॉर्ड मेकॉलेने क्लाइवके सम्बन्धमें कहा था. "इसमें कोई सन्देह नही कि भारतके छल-कपटकी कालोंच क्लाइवके चरित्रपर लग गई।"

हम नम्रतापूर्वक बताना चाहते है कि इतिहास-लेखकोमे से मेकॉले एक ऐसे इतिहास-लेखक है, जिनकी पुस्तके अब अपनी सचाई या घटनाओके तथ्य-मात्रके यथावत् वर्णनके लिए नही पढी जाती, बल्कि लेखककी साहित्यिक शैली और गुणोके लिए पढी जाती है। फिर भी, जब मेकॉलेका उद्धरण दिया ही गया है तो हम उनके निम्नलिखित शब्द उद्धृत करनेके लिए कोई क्षमा-याचना नही करते। ये शब्द अभी, आज और सदा-सर्वदा — जबतक भारत और इंग्लैंड एक साथ बँधे हुए है — सार्थक रहेगे।

> मैं एक सम्पूर्ण समाजको अफीम खिलानेकी, अपने हाथोमें ईश्वर द्वारा सौंपे हुए एक महान् राष्ट्रको सिर्फ इसलिए मदहोश और पंगु बना देनेकी सम्मति कभी न दूँगा कि वह हमारे नियन्त्रणमें रहनेके अधिक उपयुक्त बन जाये। उस सत्ताका क्या मूल्य, जिसकी नींव दुर्गुणोंपर, अज्ञानपर और दुःख-दैन्यपर रखी गयी हो; जिसका संरक्षण हम उन अत्यन्त पवित्र कर्तव्योको भंग करके ही कर सकते हों, जिनके लिए हम शासकोकी हैसियतसे शासितोंके प्रति जिम्मेदार हैं; और जिन कर्तव्योंके रूपमें साधारणसे अधिक राजनीतिक स्वतन्त्रता और बौद्धिक प्रकाशके धनीके नाते हमें उस जातिका ऋण चुकाना है, जो तीन हजार वर्षके निरंकुश शासन और पुरोहितोकी धूर्ततासे अधःपतित हो गई है? *अगर हम मानव-जातिके किसी अंगको अपने ही बराबर स्वतन्त्रता और सभ्यता प्रदान करनेको तैयार नहीं हैं, तो व्यर्थ ही स्वतन्त्र हैं, व्यर्थ ही सभ्य हैं।*[1]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४-१-१९०५

२८५. भारतीय कांग्रेस और रूसी जेम्स्त्वो[2]

एक तुलना – १

सर विलियम वेडरबर्न और सर हेनरी कॉटनको लन्दनसे विदाई देनेके पूर्व नवम्बर २९, १९०४ को वहाँके निवासी हमारे भारतीय भाइयो और यूरोपीय मित्रोने वेस्टमिन्स्टर पैलेस होटलमे एक भोज दिया था और कई विशिष्ट महानुभावोको निमन्त्रित किया था। उस अवसरपर भाषण भी दिये गये थे। सर हेनरी कॉटनने अपने भाषणमे भारतीय काग्रेस और रूसी जेम्स्त्वोकी थोडी-सी तुलना की थी, और उसके बादके जो समाचार प्राप्त हुए है उनके आधारपर उनकी तुलना कुछ विचार उत्पन्न करती है।

भारतीय काग्रेस क्या है, उसकी पैदाइश, उसका कार्य, और लोगो एवं सरकारपर उसका प्रभाव — इन सब बातोके बारेमे प्रत्येक भारतीयको सामान्य जानकारी है, और न हो तो होनी चाहिए। काग्रेसकी स्थापनाको आज बीस वर्ष हो चुके है। उसका पहला अधिवेशन बम्बईमें हुआ था, और उस समय हमारे भारतीय नेताओकी हौस और हिम्मतको देखकर दीर्घदर्शी लोगोको भरोसा हो गया कि यह सस्था भारतको जीवन देनेमे अवश्य समर्थ होगी। काग्रेसका यह मूल खास तौर

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १६४।

२. रूसकी स्थानीय क्षेत्रीय सभाएँ, जो रूसी जिलोंमें राज-काजका नियंत्रण करती थी और बोल्शेविकों द्वारा सन् १९१७ में भंग कर दी गईं।

से ध्यानमे रखनेकी आवश्यकता है। इस प्रकारकी कांग्रेस स्थापित की जानी चाहिए, ऐसी लॉर्ड डफरिनकी मान्यता थी। उन्होने इस सम्बन्धमे अपने विचार श्री ह्यूमको बताये और श्री ह्यूमको यह बात बहुत पसन्द आई। इसलिए उन्होने इसपर भारतके प्रसिद्ध पुरुषोसे परामर्श किया और फलस्वरूप यह कांग्रेस कायम की गई। यह बात याद रखना आवश्यक है, क्योकि कांग्रेसके शत्रु जो अनेक आरोप लगाते है उनका निवारण करनेमें यह काम देगी। कांग्रेसकी स्थापना होनेपर विशेषत: तानाशाह, सकुचित-दृष्टि और उद्दण्ड अधिकारी अत्यन्त आतंकित हो गये। क्योकि वे यह ताड गये थे कि कांग्रेस दिनो-दिन जोर पकडती जायेगी और लोग उसे माता मानकर, उसके अधिवेशनोमें निडरतासे अपनी भावनाएँ प्रकट करेगे। और इस कारण तानाशाही और उद्दण्डता बे-रोक-टोक न चल पायेगी। वे घबरा उठे, और अपने समाचारपत्रोके द्वारा अपना रोष प्रकट करने लगे तथा राज्यके प्रति वफादार कांग्रेसपर यह मानकर अगणित, अनुचित एव अशोभनीय आरोप लगाने लगे कि ऐसा करनेसे कांग्रेस देरतक नही टिक सकेगी। ये अधिकारी और उनके अखबार नेताओको पानी पी-पीकर कोसने लगे और यह बतानेका प्रयत्न करने लगे कि यह सस्था राज-द्रोही है, और यदि सरकार इसे कुचल न देगी तो राजका नुकसान होगा। लॉर्ड रिपनके[1] समयमे दलीलोका जो वाग्युद्ध हुआ उससे उनकी आँखे खुल गईं और यह साबित हो गया कि भारतीय अपना हित समझ सकते हैं, यही नही, अपने लिए प्रामाणिक योजना तैयार कर सकते है। कांग्रेसकी स्थापना होनेपर ये विचार पूरी तेजीसे याद आये और सरकारपर भी इसका दबाव पडने लगा। दूसरी ओर कांग्रेसमें आपसी फूट पैदा करनेके इरादेसे हिन्दुओ और मुसलमानोकी बात होने लगी और हिन्दुओ और मुसलमानोके बीच भी बगाली, पजाबी और मद्रासी आदिकी फच्चरे लगाकर फूट डालनेकी भरसक कोशिशे तेजीसे की जाने लगी। थोडे ही समयमें इन विघ्नसन्तोषियोने इतनी चीख-पुकार मचाई कि लॉर्ड डफरिन जैसे धीर-गम्भीर राजनयिकपर भी उसका प्रभाव पड गया। और, उन्होने कलकत्तेसे विदा होनेसे पूर्व सेंट एन्ड्रूके भोजमें भाषण देते हुए कांग्रेसके सम्बन्धमें अपना दुर्भाव प्रकट किया जिस पर आंग्ल-भारतीयोने तालियाँ बजाकर उन्हे सम्मानित किया। अलबत्ता स्वर्गीय श्री ब्रेडलॉने[2] जब इस सम्बन्धमें अपने विचार व्यक्त किये तब लॉर्ड डफरिनने लिखकर उनका समाधान करना उचित समझा। परन्तु यह बात दूसरी है। हमें तो फिलहाल यही देखना है कि ऐसी-ऐसी मुसीबतोके होते हुए भी हमारे नेता हिम्मत नही हारे, बल्कि मनको स्थिर रखकर अपना कर्त्तव्य पूरा करते चले गये। परिणामत आज उन्होने यह समय ला दिया है कि कांग्रेसकी महत्ता उसके शत्रुओको भी स्वीकार करनी पडती है और घमडी अधिकारियोको भी उसकी सूचनाओपर ध्यान देना पडता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४-१-१९०५

१. लॉर्ड रिपन, भारतके वाइसराय, १८८०-८४ और उपनिवेश-मन्त्री १८९२-९५।

२. चार्ल्स ब्रैडलॉ (१८३३-१८९१), एक सुविख्यात लोक-सेवक, ब्रिटिश ससदके सदस्य और कट्टर नास्तिक। भारतीय मामलोंमें ये बहुत दिलचस्पी रखते थे और इन्होने १८८९ में भारतीय विधान-परिषदोके सुधारके लिए एक विधेयकका मसविदा बनाया था। ये १८८९ में कांग्रेसके तृतीय अधिवेशन (बम्बई) में शामिल हुए थे। जब गाधीजी इंग्लैंडमें पढ़ रहे थे उन दिनों वे श्री ब्रैडलॉकी अन्त्येष्टिमें सम्मिलित हुये थे।

२८६. प्लेग और शराब

पजाब सरकारकी शराब-सम्बन्धी रिपोर्टमे बताया गया है कि पजाबमे प्लेगके डरसे लोग बहुत शराब पीने लगे हैं —और आबकारी-करमे बहुत बड़ी वृद्धि हो गई है। उसमे यह भी बताया गया है कि शराब पीनेसे प्लेग नही होता, यह मानकर जिन-जिन गाँवोमे लोग शराब पीने लगे है उन-उन गाँवोमे प्लेग और भी अधिक जोरसे फैला है तथा मनुष्योकी बरबादी अधिक हुई है। किन्तु जिन गाँवोमे लोग शराब पीते ही नही हैं, उन गाँवोमे प्लेगसे बहुत कम हानि हुई है। इस रिपोर्टसे यह तो साबित नही होता कि शराब पीनेवालोको प्लेग नही होता, परन्तु यह तो साफ-साफ साबित होता है कि शराब पीनेसे पूरा-पूरा नुकसान होता है। जोहानिसबर्गमे डॉ० मेलिसका, जो प्लेगके अस्पतालके मुख्य अधिकारी थे, विचार भी यही हैं कि शराब पीनेसे प्लेगका जोर बढता है, घटता नही।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४–१–१९०५

२८७. जोहानिसबर्गमें प्लेग[1]

जोहानिसबर्ग
जनवरी १६, १९०५

मालूम होता है, जोहानिसबर्गमे प्लेग भड़क उठा है। एक फेरीवाले मुसलमानके बेटेको कुछ दिन पहले सोवर स्ट्रीटमे बीमारी हो गई थी। शनिवारको उसके डॉक्टरने अधिकारियोको सूचना दी। रविवारको उसे प्लेगके अस्पतालमे ले गये और वह जवान आज गुजर गया और दफना दिया गया। उसके शवकी धार्मिक रीतिसे क्रिया करनेका मौका नही आया, क्योकि वह दफन कर दिया गया था, वरना अधिकारी लोग उसे खुशीसे दे देते।

यह घटा हमपर दुबारा घुमड़ आई है। इसलिए हमारे सब भाई नीचेके नियम याद रखेंगे तो बडा लाभ होगा। नही तो बहुत बड़ा नुकसान होगा। इतना ही नही, बल्कि हमारे खिलाफ अधिक कडे कानून बनानेमे यह घटना बतौर दलीलके पेश की जायेगी।

१ किसीको यह न समझना चाहिए कि सरकार रोगीको अस्पतालमे ले जाकर दु ख देगी।

२. बुखार या दमेकी बीमारी अकस्मात् हो जाये तो तुरन्त सरकारको खबर दी जाये।

३. डॉक्टरकी सलाह तुरन्त ली जाये।

४ कोई भी भागे नही, और जहाँ है वहाँ बना रहे।

५. जो व्यक्ति प्लेगके रोगीके ससर्गमे आये हो वे छिपे नही, बल्कि प्रकट हो जाये और अपने कपडे आदि सफाईके लिए दे दे।

६ अपने पैसे बचानेकी नीयतसे सोनेकी कोठरी दूकानसे सटी हुई कदापि न रखे।

१. यह "हमारे संवाददाता द्वारा प्रेषित" रूपमें प्रकाशित किया गया था।

७. दूकानका माल घरमें जरा भी न रखे।

८ घरको बहुत ही साफ रखे।

९. प्रत्येक घरमें या कोठरीमें खुले उजालेका और हवाका आवागमन होना चाहिए।

१०. खिड़कियाँ खुली रखकर सोये।

११ पहनने और सोनेके कपड़े साफ रखे जायें।

१२. आहार हलका और सादा हो।

१३ दावतें बन्द रखनी चाहिए।

१४. पाखानेमें जहाँ बालटियाँ रखी जाती हों वहाँपर सदैव सूखी मिट्टी और राख रखी जाये और प्रत्येक व्यक्ति शौचके बाद उसमें से मिट्टी या राख लेकर अच्छी तरहसे मैलेपर डाले ताकि वह ढक जाये और उस पर मक्खी आदि न बैठे।

१५. पाखाने और पेशाबकी जगह बहुत साफ-सुथरी रखी जानी चाहिए।

१६ घरके फर्श और अन्य भागोंको कीटाणुनाशक घोल मिलाकर गरम पानीसे खूब धोया जाये।

१७ जहाँ प्लेगका रोग हुआ हो वहाँका कोई सामान ठीक-ठीक साफ किये बिना अन्यत्र उपयोगमें न लाया जाये।

१८. एक साधारण कोठरीमें दोसे अधिक व्यक्ति न सोयें।

१९ रसोई बनानेकी या भोजन करनेकी जगहोंमें और जहाँ खानेकी चीजें रहती हों वहाँ बिलकुल न सोना चाहिए।

२०. घरमें चूहे न आ सकें इस तरह घरमें या दीवारोंमें सीमेंट आदि लगाये। विशेषतः यह सावधानी रखी जाये कि चूहे खानेकी वस्तुओंतक न पहुँचें।

२१. जिनको हमेशा दिन-भर घरमें बैठकर काम करना पड़ता हो उनको स्वच्छ वायुमें जाकर दो-तीन मीलतक चलनेका व्यायाम करना चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-१-१९०५

२८८. पत्र : जे० स्टुअर्टको[1]

२१-२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक ऐंड ऐंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
जनवरी १९, १९०५

श्री जे० स्टुअर्ट
आवासी न्यायाधीश
डर्बन

प्रिय श्री स्टुअर्ट,

मैं *इंडियन ओपिनियन* पत्रकी ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। यह अठारह महीनोंसे निकल रहा है। इस अवधिमें मेरा इससे घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। यह दक्षिण आफ्रिकाके दो महान् समाजोंके बीच दुभाषियेकी तरह काम करता है, इसलिए मेरी नम्र सम्मतिमें यह एक मूल्यवान सेवा कर रहा है। उसका उद्देश्य साम्राज्य-भावनाका पोषण है, और यद्यपि वह दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंकी शिकायतोंपर जोर देता है, और उसे जोर देना भी चाहिए, वह प्राय भारतीय समाजकी भावनाओंको नरम बनाता है और उसे साफ तौरपर उसकी त्रुटियाँ बतानेसे कभी नहीं चूकता। किन्तु अब अपने नये वेष और नये घरमें वह इससे बहुत अधिकका प्रतीक है। अब वह उस योजनाका प्रतीक है, जिसका सक्षिप्त वर्णन सलग्न है[2] और वह सफल हो गई तो सम्भव है, व्यवसायके तरीकोंमें वह क्रान्ति-सूचक हो। कुछ भी हो, चार स्वतन्त्र अंग्रेजोंने अपने धन्धे, जिनमें वे लगे थे इस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिए छोड दिये हैं और उतने ही भारतीयोंने भी वैसा ही किया है,[3] उनकी यह बात आपके मनको भायेगी। किन्तु इन आठ सस्थापकोंके दलके बावजूद योजनाकी सफलताके लिए सार्वजनिक सहयोगपर अवलम्बित रहना पडेगा। मुझे लगता है, आप कई तरहसे इस प्रयासमें मदद कर सकते हैं। एक तरीका है उसका ग्राहक बन जाना और कभी-कभी नामसे या गुमनाम उसमें लेख लिखना। वार्षिक मूल्य नेटालमें १२ शि० ६ पैंस और नेटालके बाहर १७ शि० है। कार्यालय फीनिक्स नेटालमें स्थित है। यदि आपको *इंडियन ओपिनियनका* उद्देश्य ठीक जान पडे और वह जिस योजनाका प्रतीक है वह आपको

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ४८६-८७।

२. यह उपलब्ध नहीं है। किन्तु जान पड़ता है वह वही पत्र है जो गांधीजीने गोखलेको १३ जनवरीके अपने पत्रके साथ *इंडियन ओपिनियनके* फीनिक्ससे प्रकाशनके बारेमें लिखा था। गांधीजीने अपने दिसम्बर १०, १९०४के दादाभाई नौरोजीको लिखे गये पत्रमें जो उल्लेख किया है उससे सिद्ध होता है कि यह कदाचित् "अपनी बात" शीर्षक *इंडियन ओपिनियनके* सम्पादकीयकी नक़ल या अलगसे मुद्रित प्रतियाँ थीं।

३. सम्भवत: अंग्रेजोंमें हर्बर्ट किचिन, अल्बर्ट वेस्ट, तथा हेनरी पोलक और भारतीयोंमें छगनलाल गांधी, मगनलाल गांधी और आनन्दलाल गांधीकी ओर इशारा है। मगनलाल और आनन्दलाल १९०२में गांधीजीके साथ दक्षिण आफ्रिका गये थे।

सहारा देनेके योग्य लगे तो क्या ऊपरकी दो प्रार्थनाओंके सिवा कृपया उत्साह देनेवाला एक पत्र मुझे लिख भेजेंगे जिसे मैं प्रकाशनके लिए सम्पादकोंको दे सकूँ ?

आपका विश्वस्त,
मो० क० गांधी

पुनश्च : मैं सोचता हूँ, आप जब-तब पत्रके लिए अराजनैतिक विषयोंपर लिख सकेंगे।[१]

मो० क० गां०

मूल अंग्रेजीसे अनुवादित : कुमारी केली कैम्बैल, डर्बनके सौजन्यसे।

२८९. भारतीयोंकी उदारता और उसका परिणाम

पाठक इस अंकके एक अन्य स्तंभमें पाँचेफस्ट्रूमके मुख्य पुलिस-अधिकारी और पाँचेफस्ट्रूमकी ब्रिटिश भारतीय-समितिका पत्रव्यवहार देखेंगे। यह एक साजसज्जा-युक्त अग्निशामक दल (फायर ब्रिगेड) बनानेकी योजनाको चलानेके लिए समितिके चन्देके बारेमें है। यह पत्रव्यवहार कुछ सप्ताह पहले हुआ था और इससे भारतीय चरित्रके एक ऐसे पहलूपर दिलचस्प प्रकाश पड़ता है, जिसकी उपेक्षा अबतक पाँचेफस्ट्रूमके गोरे निवासियोंने सावधानीके साथ की है। आशा है कि इन दो पत्रोंमें जिन तथ्योंका उल्लेख है उनका अन्य समाचारपत्र अधिक व्यापक प्रचार करेंगे, क्योंकि यह बहुत वांछनीय है कि हमारे विरोधी पाँचेफस्ट्रूमके ब्रिटिश भारतीय समाजका रुख सही-सही समझ लें।

हमें मालूम हुआ है कि नगरपालिका अग्निशामक दलकी योजनाके लिए आवश्यक आर्थिक सहायता देनेमें असमर्थ रही और, जहाँतक हम जानते हैं, इसी कारण वह योजना विफल हो गई।

परन्तु जो बात हम स्पष्ट करना चाहते हैं, वह है कि जिस समय कप्तान जोन्सने प्रस्ताव किया और श्री रहमानने उसे स्वीकार किया, उस समय अनेक भारतीय व्यापारी और वे भी, जो योजनाके कोषमें सबसे ज्यादा चन्दा देते, पहलेसे ही आगका बीमा कराये हुए थे।

परिणामको दृष्टिमें रखते हुए हम चाहते हैं कि इस विषयको बहुत सावधानीके साथ समझ लिया जाये, क्योंकि इससे पाँचेफस्ट्रूम "पहरेदार संघ" की बदलेकी वृत्तिकी कुछ मनहूस पृष्ठभूमिके सामने वहाँके ब्रिटिश भारतीय समाजके हेतुओंकी निःस्वार्थता अत्यन्त स्पष्ट रूपमें अंकित हो जाती है।

अपने ७ जनवरीके अंकमें हमने पाँचेफस्ट्रूमके एक आग-बीमेके एजेंटकी इस कार्रवाईकी ओर तत्काल ध्यान आकर्षित किया था कि उसने कुछ ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंकी पालिसियोंको, जिनके द्वारा उनके स्थानोंका आग-बीमा किया गया था, पहले सूचना दिये बिना, रद करा दिया। ये पालिसियाँ अभी कई महीनोंतक समाप्त होनेवाली नहीं थीं। मालूम हुआ है कि यह भला आदमी दुनियाकी एक सबसे पुरानी आग-बीमा कम्पनीका प्रतिनिधित्व करता है। कमसे-कम छः बड़े व्यापारियोंपर इसका असर पड़ा है और उनके मकानों-दूकानोंका अब आग-बीमा नहीं

१. यह गांधीजीके स्वाक्षरोंमें है। शेष पत्र, जो कदाचित् प्रभावशाली व्यक्तियोंको भेजा गया, परिपत्र होनेके कारण टाइप किया हुआ है।

रहा है। हमे अच्छेसे-अच्छे प्रमाणोके आधारपर बताया गया है कि यह भला आदमी यदि 'एशियाई-विरोधी पहरेदार सघमे' प्रत्यक्ष रूपसे शामिल नही हो गया है तो, कमसे-कम आतकवादियोकी उस सस्था द्वारा प्रतिकूल दिशामे प्रभावित तो किया ही गया है। इस तरह सघर्षका आह्वान हो चुका है और दुनिया अब जान गई है कि पॉचेफस्ट्रूमके गोरोंने बहिष्कारकी एक योजना बना ली है, जिसके प्रत्यक्ष प्रभावसे निर्दोष नागरिकोके मकान खतरेमे पड गये हैं। और इससे भारतीय व्यापारियोके सामने अपने अनेक वर्षोंके कठोर और कष्टमय परिश्रमके समस्त फलको अपनी आँखोके सामने स्वाहा होता हुआ देखनेकी जोखिम आ खडी हुई है। द्रोह सीमातक पहुँच गया है। अग्निशामक दल पास न होनेपर ये अभागे लोग अब असहाय हैं और हवासे उडकर आनेवाली किसी भी चिनगारीकी या किसी भी ऐसे उपद्रवीकी दयापर निर्भर हैं, जिसका रग-भेदका पागलपन उसे जिस आकर्षक भडारपर भी पहले नजर पड़ जाये उसीके मालिकको आगसे तबाह कर देनेके लिए प्रेरित कर सकता है।

हम उन्माद-भरी अनर्गल बाते नही करते है, क्योकि खतरा बहुत सच्चा है। पॉचेफस्ट्रूमम भारतीयोके विरोधका प्रचड सक्रामक रोग जब पराकाष्ठापर पहुँचा उसके थोडे ही दिन बाद आगजनीका जो कायरतापूर्ण प्रयत्न किया गया था उसकी याद हमारे पाठकोको अब भी ताजा होगी। यहाँ हम "आगजनी" शब्दका प्रयोग स्वय मुख्य पुलिस-अधिकारीके कथनके बलपर कर रहे है। और यह सोचकर हमे खेद होता है कि जिन भडारोपर इस तरहका कायरतापूर्ण आक्रमण हो सकता है उनमेसे प्रत्येककी रक्षा करनेकी स्थितिमे यह शिष्ट अधिकारी नही है।

स्वय आग-बीमा कम्पनीके दृष्टिकोणसे, पॉचेफस्ट्रूमके भारतीय वस्तु-भडारोकी जोखिम कमसे-कम उतनी ही अनुकूल होनी चाहिए, जितनी कि यूरोपीय व्यापारियोके भडारोकी है, क्योकि, हमे जो ज्ञान है उसके अनुसार अगर दोनो समाजोके वस्तु-भडारोकी तुलनाकी जाये तो भारतीय वस्तु-भडार घटिया दर्जेके न निकलेगे। फलत कम्पनीने पालिसियोको रद करनेकी जो कार्रवाई की है उसका कोई कारण हम देख नही पाते। निश्चय ही इसमे व्यापारिक ईमानदारीका प्रश्न नही हो सकता, नही तो उन व्यापारियोको पालिसी दी ही न जाती। इसके अलावा, वे सब चरित्रवान सुविख्यात व्यापारी है और बिलकुल सरसरी तौरपर पूछताछ करनेसे भी स्पष्ट हो जाता कि उनकी इज्जत और विश्वस्ततापर शका करनेका कोई आधार नही हो सकता।

सारा मामला पॉचेफस्ट्रूमके लिए बहुत प्रशसनीय नही है। और जो निन्दनीय कार्य इस प्रकार किया गया है, उससे सम्बन्धित बीमा-कम्पनीके माथेपर कलक लगता है।

हमारा इरादा कम्पनीके प्रधान कार्यालयके अधिकारियोका ध्यान तुरन्त इस मामलेकी ओर खीचनेका है। हमे विश्वास है कि कम्पनीकी न्याय और निष्पक्षताकी ब्रिटिश भावना, उसे अत्यन्त कठोर जॉच करनेकी प्रेरणा देगी और हमे कोई सन्देह नही है कि यह असह्य स्थिति प्रस्तुत परिस्थितियोमे जितनी जल्दी हो सके, मिटा दी जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-१-१९०५

२९०. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और रूसी जैम्स्त्वो

एक तुलना – २

प्रत्येक चतुर राज्यकर्त्ता अपनी प्रजाकी सही परिस्थिति एव उसके सुख-दु.ख जाननेके लिए उत्सुक होता है, और ऐसे ही, थोड़े-बहुत अशमे, हमारे माननीय सम्राट एडवर्ड एव रूसके ज़ार भी है। दोनो सम्राटोकी ख्वाहिश एक-सी ही है, परन्तु उसकी पूर्तिके लिए अलग-अलग किस्मकी कोशिशें करनी पड़ती है। हम लोगोके सौभाग्यसे भारतीय अधिकारियोमे रूसी अधिकारियोके समान घमड नही है और उनकी सत्ता भी एक-सी नही है। मतलब यह है कि भारतीय अधिकारीको मजबूरन कुछ नियम पालने पड़ते है, और रूसी अधिकारी जिस हदतक अपने पदका घमंड और स्वेच्छाचार दिखा सकता है उस हदतक भारतमे सम्भव नही। सार यह है कि भारतका अधिकारी इरादा करे तो भी, प्रजाका उत्पीडन उस सीमातक नही कर सकता जिसतक रूसी अधिकारी कर सकता है। फिर भी रूसी और भारतीय प्रजाके कई कष्ट एक समान ही है। यद्यपि रूसके कष्ट भारी है और उससे तुलना करनेपर भारतके कष्ट उतने कठिन नही है, फिर भी भारतीय प्रजाको अपने दु ख साधारण प्रतीत होते है, ऐसी बात नही है। और यह आसानीसे समझने योग्य बात है। रूस देशमे अधिकारी और प्रजाके बीच चमडीके रंगका, बोलीका, धर्मका, अथवा जात-पाँतका अन्तर नही है। भारतमे अधिकारी इनमें से प्रत्येक बातमे जनतासे भिन्न है। इसलिए परायापन (नही होना चाहिए फिर भी) प्रतीत होता है, और इस वजहसे कष्टोसे, जितना उचित है उससे अधिक, खेद स्वभावत होता है। फिर भी दोनो देशोमे प्रजा और अधिकारियोके बीच अलगाव रहता है और वह प्रजाको बहुत अखरता है। जनता यह मानती है कि राजा और प्रजाका आपसी सम्बन्ध बडा घनिष्ठ होना चाहिए, परस्पर विश्वास होना चाहिए, और एक-दूसरेके सुख-दु खमें प्रत्येकको भाग लेना चाहिए तथा प्रेम और ममताका व्यवहार रखना चाहिए — संक्षेपमे राजा और प्रजाका हित एक ही होना चाहिए और प्रजाके सुखी होनेपर ही राजा सुखी माना जाना चाहिए। राजा सत्ता धारण करता है, किन्तु सत्ताका दुरुपयोग किया जाये तो राजा एव प्रजा दोनोंकी हानि होती है, इसी कारण चतुर शासक अपनी प्रजाकी स्थिति और उसके सुख-दु खको जाननेके लिए उत्सुक रहता है।

पुराने राज्य आम तौरसे आजके मुकाबिले बहुत ही छोटे होते थे, इसलिए राजा आसानीसे अपनी रियायाकी देख-भाल कर सकता था। परन्तु ज्यों-ज्यो राज्य विशाल बनते गये त्यो-त्यो अधिकारियोकी नियुक्तिकी आवश्यकता बढती गई। फलस्वरूप आज सभ्य ससारमें हर जगह राजा केवल नामके रह गये है और अधिकारी लोग अनिवार्य एव महत्त्वपूर्ण हो गये है। बिना अधिकारीके राजा नही हो सकता, अधिकारी यह समझते है। इसलिए स्वभावत. ही वे अपने महत्त्वमे और रोबदाब अथवा सत्तामे खलल न हो ऐसे उपाय करते रहते है। नतीजा यह होता है कि वे अपने कर्त्तव्यके मुकाबले स्वार्थका महत्त्व अधिक समझने लगते है और प्रजाके सुख-दु.खकी ओर आवश्यक ध्यान नही देते। इससे प्रजामें बेचैनी पैदा होती है, और प्रजाकी शिकायत सुनने या आलोचना सहनेका धैर्य अधिकारियोमे न होनेकी वजहसे अलगाव पैदा हो जाता है। ऐसा होनेपर अधिकारियोका घमड तोडनेके लिए और अपने स्वत्वोको सुरक्षित रखनेके लिए प्रजा यथाशक्ति परिश्रम करती है और योजनाएँ बनाती है। जहाँपर राज्य-शासन अच्छा होता है वहाँपर ऐसे उदाहरण कम दीखते है और जहाँपर ढीला होता है वहाँपर अधिक। रूस और भारतकी

राजनीतिमे बडा अन्तर है, दोनो देशोके लोगोकी स्थितियो और भावनाओमे अन्तर है, परन्तु अधिकारी सख्यामे थोड़े-से, किन्तु विशेप सत्ताधारी हैं। और इससे जनता और उनके बीचका सम्बन्ध शोभाजनक नही है। भारत और रूसकी परिस्थितियाँ भिन्न है, फिर भी लोगोकी भावनाएँ और माँगें कई बातोमे एक ही हैं यह बात, ऊपर जो-कुछ कहा गया है, उससे स्पष्ट हो गई होगी। कारण है, दोनो देशोमे राजा और प्रजाके बीच अयोग्य और थोडा सम्बन्ध। जिस प्रकार कारण समान हैं उसी प्रकार परिणाम भी समान है।

कुदरत एक आश्चर्य है। गत नवम्बर मासमे बम्बईमे भारतीय काग्रेसमे चर्चा-योग्य विपयो पर खुला विचार हुआ। उसी समय रूसमे वहाँकी स्थानिक सस्थाओने, जो जेम्स्त्वो कही जाती है, अपनी भावनाओ और माँगोकी घोपणा की। काग्रेसमे प्रस्तुत किये जानेवाले प्रस्तावोपर प्रान्तोकी स्थानिक सभाओमे पहलेसे चर्चा की गई थी, और बादमें वे मुख्य कमेटीकी ओरसे घोषित किये गये थे। जेम्स्त्वोके प्रस्ताव सेट पीटर्सबर्गमे प्रकाशित किये गये थे और उनके पक्षमें ३४ में से ३१ स्थानिक जैम्स्त्वो सगठनोकी सम्मति प्राप्त हुई थी।

(अपूर्ण)[1]

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-१-१९०५

२९१. प्लेग[2]

जोहानिसबर्ग,
जनवरी २३, १९०५

मै पिछले सप्ताह प्लेगके फैलनेके समाचार और उसके सम्बन्धमें कुछ नियम लिख चुका हूँ।[3] इस बीच समाचार प्राप्त हुआ है कि डर्बनमे प्लेगकी छ: या सात घटनाएँ हो चुकी है। इनमे भारतीय और काफिर ही हैं। यह साफ दीखता है कि हम लोगोमे प्लेग फैलनेमे देर नही लगती। यदि प्लेगने घर कर लिया तो फिर घूमना-फिरना बड़ा कठिन होगा। इसलिए मै पिछले सप्ताह जो नियम दे चुका हूँ उनके पालनमे किसीको भी चूकना नही चाहिए।

जो लडका प्लेगसे गुजर गया था उसके मामा उसे देखने आये थे। वे डरसे भागकर प्रिटोरिया चले गये। नतीजा यह हुआ कि उनके ऊपर बहुत मुसीबत आई। उनको तथा उनके परिवारको टीके लगाये गये और वे थोड़े दिन सूतक (क्वारन्टीन) मे भी रखे गये। यदि वे भागते नही और अधिकारियोकी देख-रेखमे यही रहे होते तो उनको इतनी तकलीफ न उठानी पड़ती।

यहाँपर मलायी बस्तीकी हालत कितनी ही बातोमे बहुत बिगड़ गई है। लोग खचाखच भर गये है और कई तो सफाई रखनेकी बाततक नही सुनते। एक समिति नियुक्त की गई है जो हर रातको घरोकी देखभालके लिए निकलती है। और अब ऐसा विचार किया गया है कि यदि लोग उसकी बात कान न धरे तो अधिकारियोको सूचित कर दिया जाये। नि.सन्देह ऐसा

१. यह लेखमाला आगे जारी नहीं रखी गई।
२. यह "हमारे सवाददाता द्वारा प्रेषित" रूपमें छपा था।
३. देखिए, "जोहानिसबर्गमें प्लेग", १६-१-१९०५।

करना अधिक अच्छा है। यदि इस समय हमारी गन्दगी कुछ भी छिपाई जायेगी और बादमें प्लेग फैल जायेगा तो मलायी बस्ती भी भारतीय बस्तीकी तरह मिट जायेगी और हम लोगोको हाथ मलकर बैठ जाना पडेगा। इसलिए इस समय जो लोग गन्दगीसे निकलना न चाहते हो उनके नाम घोषित करना, उनके अपने एवं दूसरोके निजी लाभके लिए कड़वी दवा पिलानेके समान है।

यहाँके डॉक्टरसे विनती की गई है कि प्लेगके अस्पतालमें किसी भारतीयकी मृत्यु हो तो उसकी खबर हम लोगोको तुरन्त दी जाये। इस विनतीको उन्होंने स्वीकार किया है। ऐसा करनेका उद्देश्य यह है कि शवके मिल जानेपर उसकी क्रिया धार्मिक रीतिसे की जा सके।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८–१–१९०५

२९२. पाँचेफस्ट्रूमके भारतीय

एक अन्य स्तम्भमे हम अपने पाँचेफस्ट्रूमके सवाददाताका एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण वक्तव्य प्रकाशित करते है। सम्मेलनमे दो बिलकुल साफ गलतबयानियाँ की गई थी — एक तो पीटर्स-बर्गके बारेमें और दूसरी पाँचेफस्ट्रूमके बारेमे। इन दोनो नगरोके सम्बन्धमे वक्ताओने साहस-पूर्वक कहा कि भारतीय यूरोपीय व्यापारपर छाये जा रहे है और उनकी वर्तमान सख्या युद्धके पहलेकी सख्यासे बहुत ज्यादा है। जहाँतक पीटर्सबर्गका सम्बन्ध है, भ्रान्तिका भडाफोड़ हो चुका है। श्री क्लाइनेनबर्गने अबतक साबित नही किया कि श्री अब्दुल गनीके *स्टारमें*[1] प्रकाशित वक्तव्य गलत हैं। अब हमे पाँचेफस्ट्रूमसे एक विवरण मिला है और यह देखते हुए कि हमारे सवाददाताने शहरकी सीमामे व्यापार करनेवाले वर्तमान ब्रिटिश भारतीय दूकानदारोके नाम दिये है, हम समझते है कि जनताको यह विवरण सन्तोषजनक मान लेना चाहिए। हमारे लिए तो यह सन्तोषजनक है ही। अगर यह सच भी हो कि अब पाँचेफस्ट्रूममे, या किसी दूसरी जगहमे भी, भारतीय दूकानदारोकी सख्या पहलेसे अधिक है, तो भी इस कारण उनके अधिकारोकी जब्ती कदापि नही की जा सकती। परन्तु चूँकि ऐसे सनसनीदार वक्तव्य दिये गये है, जिनमें सचाई बिलकुल नही है, इसलिए जनताके सामने सच्ची बाते पेश करना और भारतीय-विरोधी दलकी अतिशयोक्तियोसे इस प्रश्नके भारतीय पक्षको हानि पहुँचनेसे बचाना ठीक ही होगा। तथापि, इस सारे मामलेका सबसे दु:खजनक भाग यह है कि जो लोग नेता होनेका दावा करते है उन्होने अपने सामने रखे गये मामलोकी सत्यताकी छानबीन करनेमें भी अपने-आपको नितान्त अयोग्य सिद्ध किया है। साथ ही उन्होने भारतीय-विरोधी दलीले ढूँढ़नेकी उत्सुकतामें जो भी कपोल-कल्पना सामने रखी गई वह स्वीकार कर ली है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८–१–१९०५

१. देखिए "पत्र: *स्टारको*," दिसम्बर २४, १९०४के पूर्व।

२९३. प्लेग

हम बरसात आनेके साथ-साथ प्लेगकी अफवाहें और प्लेगसे दरअसल बीमार होनेकी घटनाएँ भी सुनते हैं। हमें एक बार फिरसे अपने भारतीय मित्रोंका ध्यान डर्बन क्षेत्रके स्वास्थ्य-अधिकारीके उस पत्रकी ओर आकर्षित करना होगा, जो हमने इन स्तम्भोंमें प्रकाशित किया था। हमें यह खयाल होता है कि यह अवसर भारतीयोंके लिए अपनी क्षमता दिखानेका और नेताओंके लिए आगे आने और साधारण लोगोंको सफाईके नियमोंका सख्तीसे पालन करनेके लिए कहनेका है। प्लेग, निस्सन्देह गरीबी और गन्दगीकी उपज है। हम जानते हैं कि ज्यादा गरीब वर्गके भारतीय सभी जरूरी कार्रवाइयाँ नहीं कर सकते। उदाहरणके लिए, वे सम्भवत स्वास्थ्यप्रद स्थानोंमें अच्छे हवादार कमरों और मकानोंमें नहीं रह सकते। परन्तु इन सब बातोंके लिए गुंजाइश छोड़नेके बाद भी बहुत-सी बातें ऐसी रहती हैं जो समुचित सहयोग और नरमीसे समझाने-बुझानेसे करायी जा सकती हैं। और हमें आशा है कि समाज अवसरके अनुकूल व्यवहार और जरूरी एहतियाती कार्रवाई करेगा। साथ ही हम अपने आदरणीय स्वास्थ्य-अधिकारीका ध्यान भी वेस्टर्न फ्ले और ईस्टर्न फ्ले[1] की हालतकी ओर खींचना चाहेंगे। इन दोनों स्थानोंकी ओर तुरन्त ध्यान देना जरूरी है। भारतीय इनकी अवस्था नहीं सुधार सकते। परिषदको चाहिए कि वह साहसपूर्ण कदम उठाये और या तो इन दोनों स्थानोंको हमेशाके लिए सुधार दे या मिटा दे। कुछ भी हो, ये बस्तियाँ दक्षिण आफ्रिकाके इस प्रमुख नगरपर आक्षेप-रूप हैं। जोहानिसबर्गसे प्राप्त अशान्तिकारी समाचारोंसे भी हमें सावधान हो जाना चाहिए और हमें कोई शक नहीं कि वहाँके भारतीय, अपना कर्तव्य पूरा करेंगे और पिछले वर्ष जो प्लेग फैला था उसकी पुनरावृत्तिको रोकनेमें अधिकारियोंको हर सम्भव तरीकेसे मदद देंगे। हमें बताया गया है कि मलायी बस्तीकी हालतकी ओर अधिकारियोंका ध्यान कई बार खींचा जा चुका है। यद्यपि इस बस्तीको इसके निवासी बहुत अच्छी हालतमें रखते हैं और मकान अच्छे बने हैं, फिर भी यह तथ्य न भुलाया जाना चाहिए कि भस्मीभूत बस्तीकी लगभग समस्त भारतीय आबादी इस समय उसी बस्तीमें एकत्र है और अगर वहाँ प्लेग फैलता है तो जोहानिसबर्गकी नगर-परिषद अपने-आपको दोषमुक्त नहीं कर सकेगी। अबतक वह भारतीय बस्तीके जल जानेसे बेघरबार हुए लोगोंको स्थायी निवासस्थान देनेके अपने कर्त्तव्यका पालन करनेमें असफल रही है। अब अगर उसने मलायी बस्तीमें भीड़-भाड़ कम नहीं की तो वह लोक-स्वास्थ्यकी संरक्षिकाकी हैसियतसे अपने कर्त्तव्यके पालनमें और भी असफल होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८-१-१९०५

१. पश्चिमी दलदल और पूर्वी दलदल।

२९४. क्या काफिर महसूस करता है?

जोहानिसबर्गकी नगर-परिषद कुछ दिनोसे वतनी साइकिलवालोके प्रश्नपर विचार कर रही है। पिछले सप्ताह निर्माण-समितिने एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी और यह सलाह दी थी कि एक ऐसा उपनियम मजूर किया जाये जिसके अनुसार "साइकिलका परवाना रखनेवाला और नगरपालिका-क्षेत्रमें साइकिलकी सवारी करनेवाला प्रत्येक वतनी अपनी बाईं भुजामे एक नम्बर पड़ा हुआ बिल्ला लगाये, जो साफ तौरसे दिखाई दे। यह बिल्ला उसे परवानेके साथ दिया जाये।" जोहानिसबर्ग जैसे एक सर्वसमाजी नगरमे परिषदका भारी बहुमतसे ऐसा कड़ा उपनियम पास करना दक्षिण आफ्रिकामे रंग-विद्वेषकी भावना प्रबल होनेपर भी हमारे लिए दुःखमय आश्चर्यकी बात है। श्री लैंगरमानने उपनियमका जोरदार समर्थन किया और श्री मैकी निवेन और श्री क्विनने हलका-सा विरोध। श्री लैंगरमानने इस बिनापर उपनियमको उचित बताया कि उन्हे वतनी और गोरे साइकिल सवारोमें भेद करना ही होगा। उन्होने कहा — "बिल्ला सामनेकी ओर होना चाहिए। वतनियो और गोरोके बीच पहचानके लिए चिह्न रखना बिलकुल जरूरी है।" स्वभावतः इन शब्दोसे कुछ हँसी भी हुई; क्योकि श्री लैंगरमानके विपरीत, दूसरे सदस्य वतनियोको बिल्लेके बिना ही गोरोसे अलग पहचान लेनेमें पूर्णतः समर्थ थे। हमारे खयालसे श्री लैंगरमान इस कहावतकी सचाई सिद्ध करते है कि जिन्होने अत्याचार सहे है वे उनसे बचनेके बाद अत्याचार-पीड़ितोके प्रति सहानुभूति रखनेके बजाय दूसरोको उत्पीड़न करनेमें प्रसन्नता अनुभव करते है। श्री लैंगरमान रूसमें अपने सहधर्मियोंपर होनेवाले अत्याचारोंका विरोध करनेमें कभी शिथिलता नही दिखाते। फिर क्या वतनी उनसे यह सवाल नही पूछ सकते: क्या हमारे कोई भावनाएँ नही है? फिर भी हमे तो श्री लैंगरमानके विचारोकी अपेक्षा नगर-परिषदके बहुसख्यक सदस्योके द्वारा प्रकट किये गये सामान्य रुखकी अधिक चिन्ता है। नगर-परिषदके प्रति पूरा आदर रखते हुए हम कहते है कि परिषदकी बैठकमे जो भाषण दिये गये उनकी ध्वनि अत्यन्त निन्द्य थी। उससे श्री निवेन, क्विन, रॉकी और पिमका अल्पमत और भी अधिक सम्माननीय सिद्ध होता है। उनमें अपना विश्वास व्यक्त करनेका साहस था और उन्होने अनावश्यक और दुराग्रहपूर्ण अपमानसे वतनियोकी रक्षा करनेमें आगा-पीछा नही किया। आम तौरपर हमारी इच्छा ऐसी बातोकी मीमांसा करनेकी नहीं रहती, जो इस पत्रके क्षेत्रके अन्दर खास तौरसे नही आती। परन्तु परिषदकी कार्रवाई हमारे खयालसे इतनी अपयश-जनक है कि अगर हम दक्षिण आफ्रिकाके समाजके हितमें अपना विनम्र विरोध व्यक्त न करे तो हम अपने कर्त्तव्यसे च्युत हो जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४-२-१९०५

२९५. हुंडामलका मामला

हुडामलका मामला अब आखिरी मंजिलमे या, यो कहे कि, नये दौरकी पहली मजिलमें पहुँच गया है। अब हुडामल व्यक्ति दृष्टिसे ओझल हो गया है, परन्तु भारतीय व्यापारी-समाज उसके स्थानमे आ गया है। *हुंडामल* बनाम *सम्राज्ञी-सरकारके* परीक्षात्मक मुकदमेमे सर्वोच्च न्यायालयने आखिरी निर्णय दे दिया है और डर्बन नगर-परिषदकी क्षणिक जीत हो गई है।

हमने "क्षणिक" शब्दका प्रयोग जानबूझकर किया है। हम सोच ही नहीं सकते कि पक्षपात और अन्यायकी विजय भी कभी स्थायी हो सकती है। ऐसा निष्कर्ष इतिहास और दर्शनकी तमाम शिक्षाओके विपरीत होगा।

क्या कोई भी व्यक्ति ऐसा है जो यह कहनेका साहस करे कि डर्बन नगर-परिषदने इस अभागे मनुष्यको न्याय प्रदान करनेकी जरा भी इच्छा या प्रवृत्ति दिखाई है? उसने उसका सर्वनाश करनेके प्रत्येक साधनका प्रयोग किया है, क्योकि, परवाना-अधिकारीके शब्दोमे, "वेस्ट स्ट्रीटमे एशियाइयोको और परवाने नही देने चाहिए।" सरकारी तौरपर तो उसके इन शब्दोपर नापसन्दगी जाहिर की गई है, परन्तु हमारे पास यह विश्वास करनेका जरूरतसे ज्यादा कारण मौजूद है कि खानगी तौरपर नगर-परिषदके सदस्योने इनका समर्थन किया है।

कभी-कभी ऐसे मौके आते है जब, [जो बात हृदयके निकटतम होती है, वह ओठोके भी निकटतम होती है।] और हमे भय है कि यद्यपि नगर-परिषदने सरकारी तौरपर खण्डन किया है, फिर भी परवाना-अधिकारीका मत ही उसके मालिकोका जोरदार मत है। और शायद अनजाने ही यह रहस्य प्रकट कर दिया गया है। तब, सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयका असर यह है कि वेस्ट स्ट्रीटको गोरे व्यापारियोके लिए बिलकुल सुरक्षित कर दिया जाये, और उस चुनिन्दा सार्वजनिक बाजारमे व्यापार करनेके लिए परवानेकी "अर्जी कोई भारतीय न दे।"

परन्तु हम पूछते है — क्या इस मामलेको जहाँका-तहाँ पडा रहने दिया जा सकता है? क्या ऐसी हालत जारी रहने देनेकी हिम्मत की जा सकती है? हम समझते है — हरगिज नही। इस समय हम मामलेके कानूनी गुण-दोषोकी चर्चा नही करते। परन्तु सर्वोच्च न्यायालयका यह निर्णय विचित्र ही नही,, उससे भी कुछ अधिक मालूम होता है कि व्यापारका परवाना रखनेवाले किसी आदमीका परवाना केवल उसी शहरकी सीमामे एक स्थानसे दूसरेमे चले जानेसे ही रद किया जा सकता है। कुछ भी हो, हमे लगता है कि मामला और ऊँचे न्यायालयमे ले जानेके लिए काफी महत्त्वपूर्ण है। सम्भवतः दूसरी दलीले भी पेश की जा सकती है जिनके फलस्वरूप वर्तमान परिस्थितियोमे कुछ परिवर्तन होगा।

जिस समय सर्वोच्च न्यायालयके सामने यह नाटक रचा जा रहा था, उसी समय नगर-परिषदके भवनमे एक अवान्तर प्रश्नपर विचार किया जा रहा था। डर्बन निगमने वेस्ट स्ट्रीटमें हुडामल-दुर्गपर चौतरफा आक्रमण किया है और ऐसा दिखलाई पड़ता है कि जड खोदनेकी चाले उसकी नीवे खोखली करनेमे सफल हो गई है। इन आड़े-टेढे तरीकोसे दुर्ग प्रत्यक्ष रूपमे तो गिर गया है, परन्तु अभी प्रतिरक्षक परास्त नही हुआ है, क्योकि दुर्गके ध्वसावशेषोसे और भी ज्यादा शक्तिशाली योद्धा उत्पन्न होगा, जो अनिच्छुक हाथोसे न्याय करा लेगा और परिस्थितियोको अपनी आवश्यकताओके अनुकूल बदलनेके लिए बाध्य करेगा।

हमने जिस अवान्तर प्रश्नका उल्लेख किया है वह था, वेस्ट स्ट्रीटके मकानके बारेमें परवाना-अधिकारीके परवाना न देनेके निर्णयके विरुद्ध नगर-परिषदमें श्री हुंडामलकी अपील। श्री बर्नके शानदार ऐतराजके बावजूद नगर-परिषदने परवाना-अधिकारीका परवाना न देनेका निर्णय बहाल रखा है और यद्यपि उसने परवाना-अधिकारीके दिये हुए कारणसे सार्वजनिक रूपमें असहमति प्रकट की है, फिर भी उसने उस अस्वीकृत कारणके बदले अपना निजी कारण कोई नही दिया है।

परन्तु इस सुनवाईके सिलसिलेमें एक और आश्चर्यजनक प्रश्न उठता है। महापौरने यह असाधारण मत प्रकट किया है कि परवाना-अधिकारीका विवेक-प्रयोगका अधिकार निरकुश है, ऐसा नही कि कानूनी मर्यादाओके भीतर ही अमलमें लाया जाये, जैसी कि श्री हुडामलके वकीलने दलील दी है। इस फैसलेके कानूनी पहलूकी समीक्षा करना हमारे क्षेत्रके अन्दर नही है। हम इसे सिर्फ दर्ज कर लेते है। मालूम पडता है कि यह सघर्ष अति भीषण होगा। दरअसल, भारतीय समाजको या तो लड़ना होगा या मृत्युके मुखमे जाना पडेगा। अब यह सिर्फ श्री हुडामलके सर्वनाशका प्रश्न नही रहा है। ऐसा परिणाम शोचनीय तो होगा, परन्तु अपेक्षाकृत महत्त्वहीन होगा। इस मामलेका सम्बन्ध एक व्यक्तिके विशेषाधिकारोके सरक्षणकी अपेक्षा अधिक बड़ी चीजसे है। सारे भारतीय व्यापारी समाजके सम्मुख विनाशका खतरा आ उपस्थित हुआ है। श्री हुडामलके साथ जो-कुछ हुआ है वह प्रत्येक अन्य भारतीय व्यापारीके साथ हो सकता है। जबतक कानूनकी यह नई व्याख्या कायम है तबतक किसी भी भारतीयके व्यापारका मूल्य उसकी एक दिनकी आमदनीके बराबर भी नही है।

सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयका शुद्ध परिणाम यह है: सभी जानते है कि गोरे लोग भारतीय व्यापारियोको एक-एक करके मिटा देना चाहते है। फैसला यह दिया गया है कि परवाने केवल खास मकानोके लिए दिये जाते है और वे बदले नही जा सकते। फलतः मकान-मालिक अपने किरायेदारसे मनमाना किराया वसूल कर सकता है, और व्यापारी बुरी तरहसे असहाय रहता है। वह या तो अनिवार्य रूपसे मकान-मालिकके हाथो नष्ट हो जाये, या दूसरा मकान खोजे। अगर वह दूसरा उपाय पसन्द करता है तो उसका परवाना रद हो जाता है और उसका व्यापार करनेका विशेषाधिकार छिन जाता है। वह फिर परवाना नही ले सकता, जो तब नया परवाना माना जायेगा। क्योकि, ठीक जैसे एशियाई लोगोको वेस्ट स्ट्रीटमें व्यापार करनेके नये परवाने देना (गैर-सरकारी तौरपर) अनावश्यक माना जा सकता है, उसी तरह शहरके हरएक व्यापारी मुहल्लेमे भी उसके लिए रोक हो सकती है। और वह दीपककी लौमें पतिंगेके समान पूर्णतः नष्ट हो जायेगा।

यह विषय व्यक्तिगत रूपसे विचार करनेका नही, बल्कि दक्षिण आफ्रिका-भरके सम्पूर्ण भारतीय समाजके मिलकर विचार करनेका है। युद्धका क्षेत्र अस्थायी तौरपर ट्रान्सवालसे हटकर नेटाल चला गया है। जो बात डर्बनमे लागू होती है वह सारे उपनिवेशमें लागू होती है और आज जो नेटालमें लागू है वह, असम्भव नही, सारे दक्षिण आफ्रिकामें लागू हो जाये। बुरे उदाहरणका अनुसरण शीघ्रतासे किया जाता है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–२–१९०५

२९६. क्या यह अंग्रेजियत है?

पिछले अंकोमे हमने पॉचेफस्ट्रूमके कारनामोकी चर्चाको काफी जगह दी है। ऐसा हमने पॉचेफ्स्ट्रूमके विचार-केन्द्र होनेके नाते उतना नही किया जितना इस नाते किया है कि हम उस नगरको दक्षिण आफ्रिकामे भारतीय समाजके प्रति जो दुर्भावनापूर्ण रुख है उसका वहुत-कुछ नमूना मानते है। जब "स्वेच्छा न्याय" (लिंच-लॉ) के नामसे विदित अपवित्र विधानके अन्तर्गत कानूनको हाथमे लेकर अमेरिकाकी जनताके कुछ दल अभागे हब्शियोकी बलि चढा देते हैं तब अंग्रेज उसके प्रति निरपेक्ष घृणाका भाव प्रकट किया करते है। प्रत्यक्ष है कि पॉचेफस्ट्रूम इसी तरह ब्रिटिश सभ्यताकी सीमारेखाका उल्लघन करनेके लिए प्रयत्नशील है, क्योकि नगरमे एक मसजिदके निर्माणके विषयमे हमने यह पढा है· "यदि भारतीयोने जनताकी भावनाओकी उपेक्षा करना जारी रखा तो सम्भवत. इस मामलेको लेकर बखेडा खडा हो जायेगा, जैसा कि लोग इस बारेमे उग्रताके साथ सम्मतियाँ प्रकट कर चुके हैं। न्यायोचित क्या है, यह एक बात है; और किस बातपर क्रोध आ जायेगा, यह दूसरी बात है।" ये शब्द हमारे सहयोगी *पॉचेफस्ट्रूम बजटके* है। इस वक्तव्यके दो अर्थ नही हो सकते। इसका सीधा अर्थ जहाँतक कानून जानेकी आज्ञा देता है उससे आगे बढ़नेकी प्रेरणा देना है। हम खयाल करते हैं कि यह मान लिया गया है कि पॉचेफस्ट्रूम नगर-परिषदको मसजिदका निर्माण रोकनेका कानूनी अधिकार नही है। तब क्या हमारा सहयोगी कानूनके अलावा दूसरे तरीकोसे मसजिदका निर्माण रोकनेकी धृष्टतापूर्ण सलाह देना चाहता है? यह महान् ब्रिटिश जातिकी न्यायनिष्ठाकी परम्पराके अनुरूप नही है। किन्तु हम निराश होकर ऐसा कुछ सोच रहे है कि कही दक्षिण आफ्रीकियोने ब्रिटिश राष्ट्रीय सम्मानके मूलभूत सिद्धान्तोको तिलाजलि तो नही दे दी?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–२–१९०५

२९७. पीटर्सबर्गके व्यापारी

हम अपने पीटर्सबर्गके संवाददातासे प्राप्त एक समाचार अन्य स्तम्भमे प्रकाशित कर रहे है। उसके साथ जल्दी दूकाने बन्द करनेके सम्बन्धमे मालिक-सघ और स्थानिक ब्रिटिश भारतीय-समितिके बीचका पत्रव्यवहार भी है। इन कागजातको पढ़नेसे साफ मालूम हो जायेगा कि इस विषयमे पीटर्सबर्गमे बड़ी तीव्र भावना व्याप्त है। हमने बार-बार बताया है कि एशियाइयो और यूरोपीयोके बीच, खास तौरसे व्यापारिक मामलोमे, ईर्ष्या-द्वेषपूर्ण भेद-भाव किया जाता है। हमने बार-बार यह भी बताया है कि गोरे लोग भारतीय समाजपर किस तरह उत्तरदायित्व और दण्डका हिस्सा तो लादनेके लिए प्रयत्नशील रहे है, परन्तु उन्हे कोई विशेषाधिकार देनेसे सावधानीके साथ बचे है। अब, सयोगसे, मानवी स्वभाव कुछ ऐसा बना है कि वचित लोग विशेषाधिकारोसे वचन और समान उत्तरदायित्व या भार वहनको बराबर नही मानते। और ऐसी स्थितिमे, अगर भारतीय समाजने उन गोरे निवासियो द्वारा, जो उन्हे समान अवसर देनेसे हठपूर्वक इनकार करते है, लादे हुए उत्तरदायित्वको स्वीकार करना बार-बार अस्वीकार

किया है, तो इसपर आश्चर्य नही किया जा सकता। सच तो यह है कि, पीटर्सबर्गके भारतीय व्यापारियोने तबतक बराबर अपने गोरे व्यापारी भाइयोकी इच्छाओकी पूर्ति की है, जबतक कि उन्होने उनपर विशेष निर्योग्यताएँ नही लादी। परन्तु जब गोरे व्यापारियोने उनका बहिष्कार करने और उनको शहरसे निकालनेके तरीके शुरू किये तब भारतीय व्यापारी यह महसूस करने लगे कि उन्हे अपने-आपको शेष समाजसे पृथक् समझना चाहिए। इसका परिणाम उस पत्रव्यवहारमे मिलेगा, जिसका उल्लेख हमने किया है। अगर गोरे व्यापारी चाहते है कि भारतीय व्यापारी उनकी स्थापित की हुई रीति-नीतिका पालन करे तो उन्हे अपना व्यवहारका तरीका बदलना होगा। दोनो ही ओरसे आदान-प्रदान होना आवश्यक है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–२–१९०५

२९८. रंगदार लोगोंका मताधिकार

इस अकके एक अन्य स्तम्भमें ४ तारीखके जोहानिसबर्ग *स्टारमें* प्रकाशित एक लम्बी खबरके कुछ अश दिये जा रहे हैं। यह खबर ट्रान्सवालमे हुई रगदार लोगोकी एक सभाके बारेमे है। इस सभामे एक प्रस्ताव पेश किया गया था, जिसमे सम्राट-सरकारसे प्रार्थना की गई थी कि जो सविधान अब बनाया जा रहा है, उसका निर्माण करते समय ट्रान्सवालमें सम्राटकी रंगदार प्रजाके न्यायपूर्ण अधिकारो और विशेषाधिकारोको न तो भुलाया जाये और न उनमें काट-छाँट की जाये। हम सिर्फ इतना कह सकते है कि राजनीतिक विस्मरणसे आत्मरक्षाके प्रयत्नमें रंगदार समाजके साथ हमारी पूरी-पूरी सहानुभूति है। एक समय था जब कि स्वर्गीय श्री रोड्सने अपना यह प्रसिद्ध मत प्रकट किया था कि जैम्बेसीके दक्षिणमे प्रत्येक सभ्य व्यक्तिको मताधिकार प्रदान किया जाना चाहिए। ऐसा मालूम पडता है कि वह आदर्श, इधर कुछ दिनोसे, शीघ्रताके साथ बदनाम होता जा रहा है। आजकल आदर्श सम्मुख रखनेका दोषी बनना रिवाजके विरुद्ध है, और कोई रखे तो उसके अनुसार आचरणकी बेशर्मी दिखाना अपराध है। हमने अभी हालमें ही देखा है कि किस प्रकार वतनी-आयोगने एक सरकारी रिपोर्ट निकाली है और यह सिफारिश की है कि जिन रंगदार लोगोको मताधिकार दिया जा चुका है उनका वह अधिकार केवल राज्यके चुनावोके लिए कायम रहना चाहिए, परन्तु जब सघीय ससदके चुनावोका मौका आये तब वह उनसे वापस ले लिया जाना चाहिए। इसके स्पष्ट अन्यायपर जोर देनेकी जरूरत नही है। यह रंगदार लोगोके प्रति दक्षिण आफ्रिकी गोरे निवासियो द्वारा इख्तियार किये हुए आम रुखसे बहुत-कुछ मिलता-जुलता है। दुर्भाग्यवश रंग-विद्वेषके मामलोमे लोगोसे तर्कके द्वारा सत्य स्वीकार करवाना लगभग असम्भव है। जहाँ अन्ध पूर्वग्रहका शासन होता है वहाँ न्याय नही होता। हमें भय है कि ट्रान्सवालके रगदार समाजको अपने उन अधिकारोको, जिन्हें हम न्यायोचित समझते है, स्वीकार करानेके लिए अभी बहुत दिन प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। हमे भरोसा है कि वे इस अविचारपूर्ण व्यवहारके प्रति अपना विरोध और अपनी माँगोंमें निहित न्याय्यता पर आग्रह जारी रखेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–२–१९०५

२९९. काफिरोंपर आक्रमण

[काफिर गोरोकी तरह बाइसिकलपर बैठते है, यह जोहानिसबर्गकी नगर-परिषदसे देखा नही गया, और इसलिए उसने अपनी पिछली बैठकमे प्रस्ताव किया है कि जिस काफिरको बाइसिकल रखनेका अनुमति-पत्र मिला है या मिले वह बाइसिकलपर शहरमे घूमते समय साफ दिखाई दे, इस तरह बाये हाथपर एक नम्बर-युक्त बिल्ला लगाये।]

आजकल ट्रान्सवालका राजकाज ऐसा चल रहा है कि इस प्रस्तावसे हमे आश्चर्य नही होता। आज हम इस विषयपर इसलिए लिखते है कि अपने भारतीय भाइयोको यह याद दिला दे (यद्यपि याद दिलाना नितान्त आवश्यक नही जान पड़ता) कि आजकलका जोहानिसबर्ग लड़ाईके पहलेके जोहानिसबर्गसे बहुत भिन्न है। जिनके हाथमे इस समय सत्ता है उनमें से अधिकतर लोग लड़ाईका आरम्भ होनेसे पहले डचेतर गोरे (एटलाडर) कहलाते थे और इनसाफकी माँगके सम्बधमे बहुत प्रयत्नशील रहा करते थे। वे दूसरे देशोके निवासी ब्रिटिश प्रजा बनकर ब्रिटिशोके योग्य अधिकार प्राप्त करनेकी भरसक कोशिश करते थे, और अग्रेज, रूसी, जर्मन आदि सबके-सब एक हो गये थे। उस समय बोअर राज्य था और ये लोग यह चिल्ला-चिल्ला कर कान फाडे डालते थे कि इन्साफ नही किया जाता। भारतीयोके विरुद्ध बोअर-सरकारको उत्तेजित करनेवाले ये ही ब्रिटिश प्रजाजन थे। और फिर किस प्रकार बोअर-सरकार भारतीयोके विरुद्ध कानून बना सकती है, यह बतानेवाले भी ये ही ब्रिटिश प्रजाजन थे। अन्तमे लॉर्ड मिलनर और श्री चेम्बरलेनके द्वारा लड़ाई करानेवाले भी ये ब्रिटिश प्रजाजन ही थे। लड़ाईके बाद खरा इन्साफ होगा, और रग-भेद या जातिभेद कानूनसे हटा दिये जायेगे — लडाईके समय इस प्रकार ढोल पीटनेवाले भी ये ही ब्रिटिश प्रजाजन थे। यह था नाटकका एक अक।

दूसरे अकमे सब कुछ भुला दिया गया और ये ही ब्रिटिश प्रजाजन स्वार्थसाधनमे लीन हो गये। फिर आया तीसरा अक। उसमे भारतीयोके प्रति सरेआम दुश्मनी बताई जाने लगी, और इस समय चालू चौथे अंकमे अत्याचारपूर्ण कानून बनाये जाने लगे है एव अमलमें, वह भी पूरी सख्तीके साथ, आने लगे है।

यह सारा प्रताप इसी ब्रिटिश प्रजाका समझिए। यह आक्रमण जिस प्रकार भारतीयोपर हुआ है उसी प्रकार काफिरो और रगदार लोगोपर नियमित रूपसे होगा और इसलिए यदि एकपर आक्रमण हो तो दूसरेको सचेत हो जाना चाहिए कि देर-सवेर वह भी इस फन्देमें अवश्य ही फँसेगा। अर्थात् आज काफिरोके लिए इस किस्मका कानून बनाया गया है यदि कल वह भारतीयोपर लागू हो जाये तो यह अधिक अचम्भेकी बात न होगी।

खूबी यह है कि ऐसे निर्दयतापूर्ण कानूनकी बात प्रस्तुत करनेवाली अन्य देशीय प्रजा, अभी-अभी कुछ-ही समय पहले कथित ब्रिटिश प्रजा बनी है। श्री लैंगरमान[1] इस प्रस्तावपर बहुत बोले, और जोशमे काफिरोका रगतक भूल गये, जिसपर सभामें खूब हँसी हुई। उन्होने कहा, बिल्ला सामने लगाना चाहिए ताकि काफिर गोरा न समझ लिया जाये। ऐसी विचारपूर्ण बात श्री लैंगरमान ही कह सकते है, और हमारी ओरसे उन्हे बधाई है कि उन्होने यह सूचना दी कि बिल्ला आगे न होगा तो कभी काफिर भूलमे गोरा समझ लिया जायेगा। किन्तु श्री

१. नगर-परिषदके एक सदस्य।

लैंगरमान कौन है इस सम्बन्धमे थोडी जानकारी हो तो उनके कथनका यथोचित वजन हो सकता है। श्री लैंगरमानको अपने रूसी भाइयोके लिए बडी हमदर्दी है, इसलिए वे रूसी राज्यपर बहुत टीका करते है। प्राकृतिक नियम है कि जो व्यक्ति अन्याय और अत्याचारके बीच पला हो वह जब मुक्त होता है तब अपने दु:खके दिन भूलकर पाई हुई मुक्तिका अनुचित लाभ लेता है और निर्दय बन जाता है, इसलिए पोलैंडसे आये हुए और इन दिनो ब्रिटिश प्रजा बने हुए साहबोकी उछल-कूद बढ जाये तो यह आश्चर्यकी बात नही है।

इस प्रस्तावपर जो चर्चाएँ की गईं उनमें सन्तोषप्रद बात यह प्रतीत होती है कि सर्वश्री मेकी निवेन, क्विन, रॉकी और पिम यह नही भूले कि काफिर भी मनुष्य है और उनका व्यर्थमे अपमान न किया जाये, यह विरोध उन्होने किया। परन्तु नक्कारखानेमे तूतीकी आवाज कोई सुनता नही। ऐसे ही वे भी कामयाब नही हो सके। फिर भी उन्होने जनसाधारणकी विचार-धाराकी परवा न करके अपने सही और उचित विचार प्रकट किये, इसलिए उनको श्रेय मिलना चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११-२-१९०५

३००. केप कालोनीमें कसाईखानोंकी हालत

केप कालोनीके इन्स्पेक्टर कैनने वहाँके कसाईखानोकी स्थितिपर रिपोर्ट प्रकाशित की है। वह पढने योग्य है। उसने लिखा है कि उसने जिन कसाईखानोका निरीक्षण किया उनमें से दो-एक बहुत गन्दे पाये गये। मेडलैंडमें मुख्य सड़कपर उसने दीवारके ऊपर खूँटीपर टगी आँतें और चर्बी देखी। लोहू, खाद और सडन फर्शसे चार फुट ऊँचाईतक दीवारोपर जमे हुए थे। इन जगहोपर यह रिवाज देखा गया कि सड़न आदिकी तहोपर ही सफेदी पोत दी जाती है। इसलिए अब दीवारोपर सफेदी और सड़नकी तहे जमी हुई है। इन्स्पेक्टरने काम करते हुए आदमियोका निरीक्षण किया। वे गन्दे थे। उनके कपड़े बहुत मैले थे, उनपर चर्बी जमी हुई थी। ये कपड़े मांससे लगते रहते थे।

हमें यह कहनेकी आवश्यकता नही है कि यह सब गोरो द्वारा चलाये जानेवाले कसाई-खानोमें देखा गया है। प्रश्न यह है कि इतने दिनोतक ऐसे अपराध क्योकर छिपे रहे। ऐसी गन्दगीमे तैयार किये गये मासके कारण कितने आदमी बीमार पडे होंगे। अगर इस प्रकारकी खराब स्थिति भारतीयोकी होती तो उनकी क्या दुर्दशा की जाती? गोरे एकदम हुल्लड़ मचा देते कि अपराधियोको ही नही किन्तु सारी भारतीय कौमको निकालकर बाहर करना चाहिए, अथवा उसके ऊपर बहुत सख्ती की जानी चाहिए। लेकिन हमारे सौभाग्यसे यह गन्दगी गोरोकी दूकानोमें है। अब देखना यह है कि उसका उपाय किस प्रकार किया जाता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११-२-१९०५

३०१. कांग्रेस और लॉर्ड कर्जन[1]

इस बारके कांग्रेस अधिवेशनके अध्यक्ष सर हेनरी कॉटनने कांग्रेसके कुल प्रस्ताव माननीय वाइसरायको खुद जाकर देनेकी सूचना दी थी। परन्तु वाइसरायने सर हेनरी कॉटनसे कांग्रेसके अध्यक्षके नाते मिलने और प्रस्तावोंको लेनेसे इनकार कर दिया। फिर भी उन्होंने यह दिखानेके लिए कि वे इस प्रकार सर हेनरी कॉटनका अपमान करना नहीं चाहते, व्यक्तिगत रूपमें मिलना स्वीकार कर लिया। मतलब यह हुआ कि कर्जन साहबने कांग्रेसका अपमान करनेमें रत्ती-भर भी आगा-पीछा नहीं किया। *इंडिया* अखबारसे यह भी मालूम पड़ता है कि इस प्रकार सर हेनरीसे न मिलनेका हेतु यह था कि यदि एक बार उनसे मिलेंगे तो बादमें अन्य अध्यक्षोंसे भी मिलना होगा। और, ऐसे ही कारणसे पहले भी लॉर्ड लैन्सडाउनने[2] इनकार किया था। तब फिर पिछली परिपाटीको कर्जन साहब किस प्रकार तोड़ सकते थे? पुरानी परिपाटी आदिसे इस प्रकार चिपके रहनेसे करोड़ों मनुष्योंकी भावनाको ठेस पहुँचेगी यह प्रश्न हमारे वाइसराय साहबके मनमें पैदा नहीं हुआ। फिर भी जिस प्रकार कांग्रेसने २० वर्ष निकाले हैं उसी प्रकार अब भी निकालेगी और दिनोंदिन बढ़ती जायेगी, इसमें शंका नहीं है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११–२–१९०५

३०२. केप टाउनमें नाइयोंके लिए नियम

केप टाउनकी नगरपालिकाने नाइयोंके लिए नियम बनाये हैं। वे *गवर्नमेंट गज़टमें* प्रकाशित किये गये हैं। उनके बलपर डॉक्टरको प्रत्येक नाईकी दूकान जाँचनेका अधिकार है। उनके अनुसार प्रत्येक नाईको अपनी दूकान स्वच्छ रखनी चाहिए। वह जिन कैंचियों, उस्तरों आदिको एक ग्राहकके लिए काममें ला चुके, उनको साफ किये बिना दूसरोंके लिए काममें न लाये। वह ब्रश आदिको ठीक तरह धोकर साफ रखे, प्रत्येक ग्राहकके लिए नये अंगौछे बरते और यदि उसने किसी रोगीके बाल काटे हों अथवा दाढ़ी बनाई हो तो उसके काममें लाये गये कुल सामानको कीटाणुनाशक पानीसे साफ करके काममें ले। जो नाई ऐसा न करे उसे पाँच पौंडतक जुर्मानेकी सजा है। इन नियमोंपर अमल ठीक-ठीक किया जा रहा है या नहीं इसका निरीक्षण करनेके लिए अधिकारियोंको छान-बीन करनेके हक दिये गये हैं। ये नियम हैं तो बहुत ठीक, परन्तु इनको अमलमें लाना बहुत कठिन है। फिर भी इनके होनेसे नाइयोंपर कुछ दबाव पड़ना सम्भव है। ऐसे नियम हमने पहली ही बार केप टाउनकी नगरपालिकामें देखे हैं। हमें लगता है कि और जगहोंमें भी इनके लागू होनेकी सम्भावना है। इसलिए इनपर से हमारे नाइयोंको सचेत हो जाना चाहिए। हमारे नाइयोंकी दूकानोंमें सुधार होना निहायत जरूरी है। देखा गया है कि उनके औजार और अंगौछे स्वच्छ नहीं रहते। उन्हें स्वच्छ करनेमें केवल

१. भारतके वाइसराय, १८९९–१९०५।

२. भारतके वाइसराय और गवर्नर-जनरल १८८८–९४।

थोडा-सा समय जाता है, बस, परन्तु खर्च कुछ नही आता। औजार अच्छे रखनेसे उनकी आयु बढ़ती है और अगौछे-आदि स्वच्छ रखनेसे ग्राहकोंकी संख्या। गोरे नाई भी अपने औजार आदि गन्दे रखते हैं। परन्तु हम लोगोको [बुरी बातोमें उनकी नकल करनेकी आवश्यकता नही है।]

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११-२-१९०५

३०३. "रंगका प्रश्न"

रैंड *रेटपेयर्स रिव्यूमें* उपर्युक्त शीर्षकसे एक सम्पादकीय लेख प्रकाशित हुआ है। उसका एक उद्धरण हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं, और यह इसलिए कि हमारे सहयोगीने ठीक-ठिकानेकी और खरी बाते कही हैं। लेख एक ऐसे व्यक्तिका लिखा हुआ है जो — दक्षिण आफ्रिकाके कुछ छुटभैये राजनीतिज्ञोंके विपरीत — इस विषयकी चर्चा करते समय परिस्थितियोंका ठीक अनुपात स्मरण रख सकता है। यह विषय बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योकि यदि दक्षिण आफ्रिका एक अब्रिटिश और एशियाई-विरोधी नीतिपर अपनी मुहर लगा देता है तो उसके परिणाम बहुत गम्भीर हो सकते हैं। परन्तु हम विश्वास नही कर सकते कि हमारे राजनीतिज्ञ स्थानिक मामलोपर विचार करते हुए साम्राज्यिक हितोको भुला देंगे। एशियाई-विरोधी जिहादको हम स्वयं अपने सहयोगीकी अपेक्षा अधिक महत्त्व नही देते; क्योकि वस्तुस्थितिको जरा-सा देख लेनेसे ही किसीको भी पता चल सकता है कि इस प्रकारके आन्दोलनके लिए कितना कम आधार है। सारी बातका आरम्भ व्यापारिक ईर्ष्यासे हुआ है। केवल इस तुच्छ हेतुसे ही भारतीय-विरोधी आन्दोलनको स्फूर्ति मिल रही है और यह उन सबके लिए बिलकुल स्पष्ट है, जो राग-द्वेषसे अधे नही बन गये है। *रिव्यूने* यह कहकर सरल सत्यमात्र व्यक्त किया है.

> भारतीय व्यापारियोंको साम्राज्यके किसी भी भागमें व्यापार करनेसे रोकनेके लिए ग्रामवासियोंका सार्वजनिक सभाएँ करनेका गौरवहीन दृश्य बहुत ही बेहूदा और मूर्खतापूर्ण है।

हम जानते हैं कि बॉक्सबर्ग और पॉचेफस्ट्रूमकी ओर लेखकका ध्यान विशेष रूपसे रहा है। बॉक्सबर्ग तो एक ऐसा गाँव है, जो अपनी तुच्छ, संकीर्ण रुढ़ियोके विचारसे ऊपर उठ नही सकता। और पॉचेफस्ट्रूम एक छोटा-सा गाँव है, जो एशियाइयोंका कट्टर विरोधी बननेपर ही प्रसिद्ध हुआ है। और फिर भी अपेक्षा यह की जाती है कि भारतीयोंको — जिनकी संख्या, *रिव्यूके* कथनानुसार, साम्राज्यकी कुल जनसंख्याकी आधी है — तुच्छ प्रान्तीय कस्बोंकी चीख-पुकारके कारण ब्रिटिश प्रजाके अधिकारोसे वंचित कर दिया जायेगा।

माना कि भारतीय व्यापारी यूरोपीयोसे सस्ते दामोपर माल बेचते हैं। तो क्या प्रत्येक यूरोपीय व्यापारी भी अपने प्रतिस्पर्धीके साथ ठीक ऐसा ही नही करता? क्या स्पर्धा ही व्यापारका प्राण नही है? माना कि भारतीय "तेलहे चिथड़ेकी बू" पर जिन्दगी बसर कर सकते हैं; परन्तु क्या कोई भी चिकित्साशास्त्री यह नही कहेगा कि यूरोपीयोको जरूरत ठीक इस बातकी है कि वे अपने आहारको सीधा-सादा बनाये? तो फिर भारतीयोपर उनके इस सद्गुणका ऐसा आरोप क्यो, कि मानो वह कोई अपराध हो? सच बात यह है कि यूरोपीय अपने भारतीय प्रतिस्पर्धियोसे घृणा करते है, क्योकि उन्हे स्वयं ग्राहकोसे अपने मालकी खूब बढ़ाई-चढ़ाई कीमते वसूल करनेका मौका नही मिलता। अगर एशियाई-विरोधियोंकी विजय हो गई तो

जिन लोगोको सबसे अधिक हानि भोगनी पडेगी वे होगे — गोरे ग्राहक। दक्षिण आफ्रिकी लोगोको यह याद रखना चाहिए।

रिव्यूने कहा है :

> **बहुत-से ऐसे तरीके मौजूद हैं, जिनसे गोरे लोग अपने हितों और अधिकारोंका संरक्षण कर सकते हैं, और जिनमें सम्राटकी प्रजाके एक समुदायका दूसरे समुदायके प्रति बार-बार यह तिरस्कार व्यक्त करते रहना जरूरी नहीं है। अगर कुछ थोड़े-से गोरे लोग व्यापार करनेवाले एशियाइयोंसे द्वेष करते हैं, जबकि वे उन्हे मजदूरोंके तौरपर लानेके लिए समुद्र और पृथ्वी एक कर डालते हैं, तो फिर वे उन भारतीयोके साथ व्यापार करनेके लिए बाध्य तो नहीं है। क्यो नहीं वे उनका पिंड छोड़ देते, और अपनी ही जातिके लोगोंके साथ व्यापार करते?**

एशियाई-विरोधी स्थितिको उग्र करनेके लिए यह एक तर्क और काममे लाया जाता है कि वे लोक-स्वास्थ्यके लिए खतरनाक है। ऐसा हो भी सकता है और नही भी हो सकता। परन्तु यदि ऐसा है तो निश्चय ही दोष भारतीयोका नही, सफाई-अधिकारियोका है।

सारे दक्षिण आफ्रिकामे भारतीयोने स्वास्थ्यके नियमोके प्रति विशेष अनुकूलता दिखलाई है। जोहानिसबर्गमे हालमे जो प्लेग फैला था उसमे सारे भारतीय समाजने जिस तरह प्लेग-अधिकारियोके निर्देशोको शिरोधार्य किया, उससे इसका निर्विवाद और उल्लेखनीय प्रमाण मिलता है।

एक अन्य आरोप भारतीयो पर यह लगाया गया है कि उन्होने पिछले दक्षिण आफ्रिकी युद्धमे साम्राज्यके हितार्थ हथियार नही उठाये। इस आरोपमेके निर्माताओका अज्ञान नमूनेका है, क्योकि खुद इन लोगोके सिवा सारा ससार जानता है कि भारतीय साम्राज्यके लिए लडने, और जरूरत होनेपर मर जानेके लिए, उतने ही तैयार थे जितनी कि साम्राज्यकी कोई भी अन्य जाति। परन्तु उनको वैसा करने नही दिया गया। कुछ लोग मौजूद है जो जानते है कि नेटाल और ट्रान्सवालके भारतीयोने बार-बार नेटाल-सरकारको अर्जियाँ दी थी कि उन्हे किसी भी हैसियतसे" युद्धमे जानेकी इजाजत दी जाये। और कुछ ऐसे लोग भी मौजूद है जो जानते है कि सारी ब्रिटिश फौजमे नेटाल भारतीय स्वयसेवक आहत-सहायक दल (नेटाल इडियन वॉलंटियर एम्बुलैंस कोर)[1] के नेता ही ऐसे थे जिन्होने सेवा तो की, परन्तु कोई भी पुरस्कार नही लिया।

सच बात यह है कि भारतीय समाजमे ऐसे लोग है, जो अधिकतर एशियाई-विरोधियोसे अधिक ब्रिटिश है। उन्होने देशभक्ति तथा लोकसेवाकी उस भावनामे अपना पूरा-पूरा हिस्सा बँटाया है, जिससे साम्राज्य, जैसा भी आज है, वैसा बना है। यह मानना एक भोडी बात होगी कि जो लोग अपनी ब्रिटिश प्रजा की हैसियतसे परिचित है वे चुपचाप *बाजार* या बस्तियोमे निर्वासित हो जाना मजूर कर लेगे। इतना ही नही देशभक्तिकी इस भावनाको मिटानेका प्रयत्न करना एक अपराध है। और यह आशा करना भी उतना ही मूर्खतापूर्ण है कि वे गलतबयानी, अन्याय और धमकियोके तरीकोसे कुचल जायेगे। दक्षिण आफ्रिकाके एशियाई-विरोधियोके रुख का सार संक्षेपमे यह बताया जा सकता है — कुत्तेको पहले बदनाम करो फिर मौतके घाट उतार दो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–२–१९०५

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १३८–३९।

३०४. प्लेगका छिपाव

हमे खेद है कि डर्बनमे अब भी ऐसे भारतीय है जो अबतक छूतके रोगको छिपानेके गम्भीर परिणामोको नही जानते। गत सोमवारको डर्बन-निगमके एक भारतीय कर्मचारीको एक प्लेगके मरीजको छिपानेके आरोपमे २० पौड जुर्माने या तीन महीनेकी कडी कैदकी सजा दी गई। सजा शिक्षात्मक है, और यह ठीक ही है। मामला एक लडकीका था। उसके पिताने जैसे देखा कि वह बीमार है, उसे एक खाली मकानमें हटा दिया था। मजिस्ट्रेटके सामने उसने कारण बताते हुए कहा, मैं नही चाहता था कि यूरोपीय डॉक्टर उसे मेरे पाससे ले जायें। शायद यह बहुत स्वाभाविक था, परन्तु भारतीयोको जानना चाहिए कि इस मामलेमें वे उसी कानूनके अधीन है, जिसके अधीन यूरोपीय है। रोगी कोई भी हो, छूतकी बीमारीके हरएक मरीजकी सूचना अधिकारियोको दी जानी चाहिए, और हरएकको, चाहे वह भारतीय हो या यूरोपीय, अपनी निजी भावनाओको सामान्य हितकी दृष्टिसे अपने ही भीतर रखना चाहिए। यह आशा करना बहुत अधिक है कि गिरमिटिया वर्गका प्रत्येक भारतीय इस विषयको इसी निगाहसे देखेगा; परन्तु ऊँचे वर्गके भारतीयोसे यह आशा करना बहुत अधिक नही कि वे रोगकी रोकथाम करनेमे डॉ० म्यूरिसनकी मदद करेंगे। हम फिर अपने १० दिसम्बरके अकमे प्रकाशित स्वास्थ्य-अधिकारीके पत्र और उसपर अपनी टिप्पणीकी ओर पाठकोका ध्यान आकर्षित करते है। हमारे भारतीय मित्र याद रखे कि इस प्रकारके प्रत्येक मुकदमेसे — अनुचित रूपसे ही सही — सारा समाज बदनाम होता है। लेकिन कसूर सिर्फ भारतीयोका नही है। हम *नेटाल मर्क्युरीके* इस कथनसे सहमत नही हो सकते कि "कतिपय भारतीयोके कार्योंके कारण ही हमे अबतक प्लेगने नही छोडा है।" यह सच है कि भारतीय ही आम तौरपर इस भयकर बीमारीके शिकार होते है; परन्तु जैसा कि हमारे गत सप्ताहके अकमें एक पत्र-लेखकने इस प्रश्नका कि, "हमारे प्लेगोका प्रजनक कौन है?" उत्तर देते हुए लिखा है— "भारतीयोको ऐसी परिस्थितियोमे कौन रखता है, जिनसे कि वे प्लेग-प्रजनक बनते है?" डर्बनमे, नगर-परिषदके सीधे नियन्त्रणमे, "प्लेगके मुकाम" मौजूद है, फिर अगर कुदरती नतीजेके तौरपर प्लेग फैलता है तो सारा दोष बेचारे भारतीयोके सिर क्यो मढा जाता है? वास्तवमे बात इतनी महत्त्वपूर्ण है कि उसे सहजमें छोडा नही जा सकता। अगले अकमे हम नगरपालिकाके सफाईके पूरे प्रश्नपर चर्चा करना चाहते है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–२–१९०५

३०५. भारतीयोंके परवाने: सजग होनेकी जरूरत – १

सेठ हुंडामलके परवानेके सम्बन्धमे आज कई महीनोसे चर्चा चल रही है। हमारे पाठक जानते है कि सेठ हुडामल डर्बनमे करीव १० वर्पसे व्यापार करते आ रहे है। शुरूमे उन्होने डर्वनकी मुख्य वीथी वेस्ट स्ट्रीटमे दूकान खोली। इस दूकानके मालिकको उसकी मरम्मत करानी थी; इसलिए उसने सेठ हुडामलसे वह दूकान खाली करा ली। वेस्ट स्ट्रीटमे पसन्दकी जगह न मिलनेसे उन्होने पास ही ग्रे स्ट्रीटमे एक अच्छी दूकान ले ली और वहाँ व्यापार शुरू कर दिया। कुछ महीने वीतनेपर उस दूकानको भी खाली करनेकी आवश्यकता पड गई। इसलिए उन्होने, एक भारतीय मकान-मालिकसे पासमें ही, वेस्ट स्ट्रीटमे, कुछ समय पहले एक भारतीय व्यापारी द्वारा खाली की गई एक अच्छी और वड़ी दूकान किरायेपर ले ली और वहाँ व्यापार शुरू किया, तथा परवाना-अधिकारीको दरखास्त दी कि दूकान वदल जानेके कारण उनके परवानेपर नया पता लिख दिया जाये। इस दरखास्तको उक्त अधिकारीने स्वीकार नही किया, यही नही, वल्कि उनपर परवानेके विना व्यापार करनेका इल्जाम लगाया। मजिस्ट्रेटकी अदालतमे वाकायदा मुकदमा चला और सेठ हुडामलपर जुर्माना हुआ। सेठ हुडामलने मजिस्ट्रेटके फैसलेपर अपील की। इस अपीलकी सुनवाईसे पहले नगर-परिषदने सेठ हुडामलको मजिस्ट्रेटकी अदालतमे दो-तीन बार घसीटा, और मजिस्ट्रेटने हर बार उनपर जुर्माना किया। और एक बार तो मजिस्ट्रेट श्री स्टुअर्टने अपनी पद-मर्यादा भूलकर गैर-कानूनी हुक्म दिया कि सेठ हुडामल अपनी दूकान बन्द कर दे। अलवत्ता, गैर-कानूनी होनेसे सेठ हुडामलने इस हुक्मकी परवाह नही की, और उनके वकील श्री वाइलीने उनकी ओरसे मजिस्ट्रेट और पुलिसको लिखित रूपमे कडी चेतावनी दी कि अगर उक्त गैर-कानूनी हुक्मकी तामील की जायेगी तो उसकी तामील करानेवाले अफसरको उसकी जोखिम उठानी पडेगी। मजिस्ट्रेटको वेहद गुस्सा आया; लेकिन हुक्म सरासर गैर-कानूनी ही था, इसलिए उसे अपना-सा मुँह लेकर वैठ जाना पड़ा। डर्वनमे जव मण्डल-अदालत (सर्किट कोर्ट) वैठी तब अपीलकी सुनवाई हुई और सेठ हुडामल निरपराध सावित हुए। तव पुलिसने उनपर दूसरा जुर्म लगाया और उसमे मजिस्ट्रेटने दुवारा उन्हे अपराधी ठहराया। इस महीनेमे सर्वोच्च न्यायालयमे उसकी अपील हुई और भारतीय व्यापारियोके दुर्भाग्यसे उस वड़ी अदालतमे न्यायाधीशोने हुंडामलके विरुद्ध फैसला दिया।

उक्त अपीलकी सुनवाई तो इस मास न हुई। पिछले मासमे चालू वर्पके परवानेके लिए सेठ हुडामलने अर्जी दी थी और परवाना-अधिकारीने वह स्वीकार नही की। इसपर से नगर-परिषदमे वाकायदा अपील की गई। परवाना न देनेके सम्वन्धमे परवाना-अधिकारीने यह वताया कि वेस्ट स्ट्रीटमे एशियाइयोको अधिक परवाने नही मिलने चाहिए, इसलिए सेठ हुडामलको परवाना न मिलेगा। जब नगर-परिषदके समक्ष सेठ हुडामलके वकीलने यह कारण उपस्थित किया तब स्वभावत: नगर-परिषदके सदस्य शर्मिन्दा हो गये, क्योकि परवाना-अधिकारीने यह भी कहा कि नगर-परिषदके सदस्योकी इच्छा भी यही है। परिपदमे श्री वर्न सदस्य है और वे भी एक प्रख्यात वकील है। उन्होने यह वात सुनते ही विरोध किया कि परवाना-अधिकारी यह कह नही सकता कि नगर-परिषदके सदस्योकी इच्छा भी यही है। इसपर उस अधिकारीने उठकर जवाव दिया कि इससे पहले भी उसने यही कारण वताकर दरखास्ते नामजूर की थी और उसका दिया हुआ वह फैसला नगर-परिषदने मान्य किया था, इसलिए इस वार भी उसका

कहना दोषयुक्त नही समझा जा सकता। इस झगडेको बढनेसे रोकनेके लिए नगर-परिषदके एक सदस्यने दरखास्त की कि इस अपीलको खारिज किया जाये। और एक दूसरे सदस्यने उसका अनुमोदन किया। साथ-साथ कानूनकी यह दलील भी पेश की कि कानूनके अनुसार यह अधिकार परवाना-अधिकारीको है कि वह किसीको परवाना दे या न दे। जब कानूनकी बात की गई तब अर्जदारके वकीलने कहा कि अधिकार भी कानूनके अनुसार ही बरता जा सकता है और कानून तोड़ा जाये अथवा कानूनका उल्लघन किया जाये तो यह न्याय नही गिना जा सकता। परिषदके सदस्योको यह कथन उचित नही जँचा। फलतः सेठ हुडामलको परवाना प्राप्त नही हुआ और इस कारण दूकान बन्द करनी पड़ी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८-२-१९०५

३०६. कारपोरेशनकी गन्दगी

डर्बन नगर-परिषदकी साधारण मासिक बैठकमे इसी ७ तारीखको ईस्टर्न फ्ले और वेस्टर्न फ्ले (पूर्वी और पश्चिमी दलदली बस्तियो)के सम्बन्धमें गदगी-निरीक्षक (इन्सपेक्टर ऑफ न्यूसेन्सेज)की रिपोर्ट पेश की गई थी। यह उल्लेखनीय है कि इसमे उक्त अधिकारीने कुछ खास क्षेत्रोका जिक्र किया है। उसने उन क्षेत्रोके ज्यादातर मकानोको गिराऊ और सफाई तथा निर्माणकलाकी दृष्टिसे सदोष बताते हुए यह भी कहा है कि बस्तियोकी जमीन पानी निकाल कर सुखाई नही गई। इसके अलावा, उसने इन मकानोको "निवासके उद्देश्यसे प्रयुक्त" और "मनुष्यके निवासके अयोग्य" घोषित किया है।

हमे बरबस उस सभाकी याद आती है, जो जून १९०३ मे नेटाल भारतीय कांग्रेसके तत्त्वावधानमे हुई थी और जिसमे महापौरके एक आरोपकी जोरोके साथ चर्चा की गई थी। महापौरने नगरपालिकाके सामने एक कार्य-विवरण पेश करते हुए भारतीयोकी गदी आदतोका जिक्र किया था और बताया था कि अनेक कारणोमें से एक कारण यह है, जिससे भारतीयोको बस्तियोमे या — जैसा कि उन्हे नरम भाषामे नाम दिया गया है — *बाजारोंमें*, भेज दिया जाना चाहिए।

स्मरण रहे, लॉर्ड मिलनरने अपनी १९०३ की स्मरणीय सूचना ३५६ द्वारा उन एशियाइयोके बारेमे किये जानेवाले अपवादकी ओर खास तौरपर ध्यान आकर्षित किया था, जिनकी रहन-सहनकी आदतें और जिनके विशेष गुण यूरोपीय विचारो या सफाईके आदर्शोके प्रतिकूल न हो। हम कहनेका साहस करते है कि प्रत्येक डॉक्टर या अस्पतालकी परिचारिका हमारे इस कथनकी पुष्टि करेगी, कि ऊँचे वर्गोके यूरोपीय भी वैज्ञानिक सफाईको सदा अनुकूल दृष्टिसे नही देखते। परन्तु यह तो गौण बात हुई। असल बात यह है कि यूरोपीयोके *सामान्य मतको* उचित मापदण्ड मान लेना सदा ही ठीक नही होता। वे तो उन बातोके बारेमे भी बहुधा बिलकुल अज्ञानमें होते है जिनका उन्हे सबसे ज्यादा निश्चय होता है; और जिन परिस्थितियोसे वे अपरिचित होते है उनके विरुद्ध अक्सर उनके पूर्वग्रह भी होते है। यह कोई छिपी बात नही है कि जन-साधारणका मत सुशिक्षित लोगोके मतसे बहुत भिन्न और अक्सर विरुद्ध भी होता है। अध्ययनशील व्यक्ति जो बातें कहता है उन्हे इकट्ठा करने, उनकी छान-बीन करने और उनके गुण-दोषोका निर्णय करनेका ज्यादा बडा और ज्यादा बार मौका पाता रहता है।

भारतीयो और भारतीयोमें अन्तर है। कुछ भारतीय सफाईके वैज्ञानिक यूरोपीय मापदण्डके पूरी तरह कायल हैं और कुछ ऐसे हैं जो अवतक सफाईके वे ही तरीके काममे लाते जा रहे है, जिनका अवलम्बन वे भारतके सुदूरस्थ जिलोमे स्मरणातीत कालसे करते चले आते है। उनसे जरा भी भिन्न तरीके उन्होंने अख्तियार नही किये। ऐसे ही भेद सारी दुनियाके सभ्य राष्ट्रोके लोगोके बीच किये जा सकते हैं। शिक्षितो और अल्प-शिक्षितोके बीच यह भेद सदासे है और आगामी बहुत वर्षो तक रहेगा।

इसलिए, जब हम बार-बार भारतीयोके खिलाफ यह आरोप सुनते हैं कि वे अस्वच्छ है तो हम यह पूछनेके लिए बाध्य हो जाते हैं कि "आपका मतलब किन भारतीयोसे है? और आप व्यक्तिगत सफाईकी बात कहते हैं या घरेलू सफाईकी?" क्योकि, इससे अधिक महत्त्वकी बात और क्या है कि जो लोग इस तरहका अस्पष्ट आरोप लगाते है उन्हे किसी ज्यादा निश्चित और कम खतरनाक रूपमे अस्पष्ट बातपर स्थिर किया जाये? अक्सर देखा जाता है कि विचार-हीन व्यक्तिका ध्यान बातोको सर्व-सामान्य रूपमे पेश करनेसे सफलतापूर्वक खिच जाता है, जब कि तथ्यको निश्चित रूपमे पेश करनेसे तो वह दब ही जायेगा।

हमारा अनुभव यह है कि प्राय भारतीय अस्वच्छ नही होते। परन्तु हम यह नही कहते कि *कोई* भारतीय अस्वच्छ है ही नही। इसे भली-भाँति याद रखना चाहिए। हम यह तर्क विभिन्न भारतीय समाजोकी परम्पराओ और राष्ट्रीय प्रथाओके आधारपर पेश करते हैं। हम निश्चयके साथ कह सकते हैं कि भारतीयोका धर्म उनके लिए एक जीती-जागती चीज है, फिर भले ही वे हिन्दू हो, या मुसलमान, और वह धर्म उन्हे व्यक्तिगत सफाई और परिणामत घरेलू सफाईके निरपेक्ष सिद्धान्तोकी शिक्षा देता है। यह बात नीचीसे-नीची श्रेणियोके लोगोके बारेमें भी सही है, और भारतीय जीवनकी साधारण हालतोसे परिचित कोई भी व्यक्ति इसकी पुष्टि कर सकता है।

परन्तु हमारे यहाँ क्या है? हमारे यहाँ तो ईस्टर्न फ्ले और वेस्टर्न फ्ले है। हमने *बाजारों* और बस्तियोके बारेमें, छूत-निवारण और पृथक्करणके बारेमे बहुत ही सख्त बाते सुनी हैं। परन्तु प्रस्तावकी शेष बातोको, मालूम होता है, बहुत सोच-समझकर — या यो कहे कि लापर-वाहीके साथ — विचारसे अलग रखा गया है।

सफाई और आरोग्यके प्रश्नोमे दिलचस्पी रखनेवाले लोगोके लिए हम नगरपालिकाकी सफाई-समितिकी सन् १८९९मे *नेटाल मर्क्युरीमें* प्रकाशित रिपोर्टके कुछ उद्धरण देना चाहते है। इस समितिके अध्यक्ष माननीय आर० जेमिसन थे।

> (२) बादमें हमने वेस्टर्न फ्ले (पश्चिमी दलदली बस्ती) कहलानेवाले स्थानमें बने अहातेका निरीक्षण किया। वहाँ दो नालीदार चद्दरके मकान हैं, जिनमें २२ मर्द और ३३ औरतें तथा बच्चे रहते हैं। ये इमारतें बहुत-कुछ अच्छी हालतमें पाई गईं। परन्तु इनको सफाईके उपनियमोंके अनुकूल बनानेके लिए इनमें छप्पर, नालियों, बरसाती नलों (डाउन पाइप्स), अधिक, प्रकाश अधिक हवा तथा एक और पाखानेकी जरूरत है। वर्तमान पाखाना शिष्टताकी दृष्टिसे काफी नहीं है। चहारदीवारीकी मरम्मतकी जरूरत है। मकानोंके अन्दर सफेदी करनी चाहिए। पानीका प्रबंध पास ही है, इसलिए नहाने-धोनेके लिए लोहेकी चद्दरोंका एक छोटा-सा खोखा बना देना चाहिए। पासकी खुली नालियोको बरसात शुरू होनेके पहले भली-भाँति साफ करके खोल देना जरूरी है, क्योकि यह जगह दलदली है।

यह है उस महान *बाजार*, या बस्ती, या अहातेकी, या आप उसे जो भी कह कर पुकारें, हालतका वर्णन; और वह भी स्वय निगम जैसी अधिकारी सस्थाके सीधे नियन्त्रणमे। हम पूछते है अगर गदगीके ठीक बीचो-बीच इस प्रकारके मकानोमे बसाये गये भारतीयोकी आदतें गदी है तो इसके लिए जिम्मेदार कौन है? क्या भारतीय? हर्गिज नही। और फिर भी, यद्यपि इस रिपोर्टको पेश हुए लगभग साढे पाँच वर्ष बीत गये है, वह दुर्गन्धयुक्त क्षेत्र आज भी करीब-करीब उसी हालतमे है, जिसमे उस समय था।

ऐसी घिनौनी हालतोको सुधारनेके लिए निगम (कारपोरेशन) क्या कर रहा है? वह परवानोके सम्बन्धमे मुकदमे चलानेके लिए शक्ति और समय निकाल सकता है, फिर बीमारी और मौतके इस केन्द्र और दूसरे केन्द्रोको मिटानेमे अपनी उसी शक्तिका थोडा-सा अश क्यो नही लगा सकता?

नेटाल मर्क्युरी कहता है:

> कुली सफाई-पसन्द व्यक्ति नहीं है और अगर उन्हें अपनी मर्जीपर छोड़ दिया जाये तो वे बस्तीसे बाहर बने बढ़िया सदनको भी शीघ्र ही सूअरबाड़े जैसा गन्दा बना देंगे।

और वह आगे कहता है:

> परन्तु यह उनके मालिकोंका, और खास तौरसे प्रवासियोंके संरक्षकका काम है कि न सिर्फ उनके अपने हितके लिए, बल्कि सारे समाजके हितके लिए, सफाईके मामलेमें उन्हें उनकी मर्जीपर न छोड़ा जाये। यह मामला उपनिवेशके स्वास्थ्य-अधिकारीके ध्यान देनेका है। और अगर मालिक लोग अपने कुलियोंको नाकाफी और गंदे मकान देते हों तो उन्हें अपने तरीके सुधारनेके लिए बाध्य करना चाहिए।

इनमेसे दूसरे मन्तव्यसे हम पूरी तरह सहमत है। इससे सचमुच उनको बहुत-कुछ जवाब मिल जाता है, जो सारेके-सारे भारतीयोकी कथित गन्दी आदतोपर जोर देते है। पहले मन्तव्यको मजूर करनेके पहले जाँचना होगा। उसका निबटारा ऊपर बताई हुई रिपोर्टके निम्नलिखित अशसे हो जाता है:

> यहाँ (क्वीन स्ट्रीट अहातेमें) खास तौरसे देखा गया कि *जितने भी स्थानोंका हमने निरीक्षण किया उन सबकी तुलनामें यह बहुत साफ है।* इसका कारण यह है कि यह भूमिगत नाली-प्रणालीसे सम्बद्ध है और इससे यहाँ नहाने-धोने और पाखानोंकी व्यवस्था काफी अच्छी है।

इस प्रकार हमारे पास लिखित प्रमाण है कि यह बुराई निगमको बताई जा चुकी है; और यह भी कि इस तरहकी बुराइयाँ अगर जारी रहती है तो वे उस सस्थापर कलक-रूप है, जो इन्हें बरदाश्त करती है, और आखिरी बात यह है, यद्यपि वह उतनी ही महत्त्वपूर्ण है, कि निगमने ईस्टर्न फ्ले और वेस्टर्न फ्लेमें इन्हे मिटानेका कोई अमली प्रयत्न नही किया। फिर किसको अधिकार है कि वह भारतीयोकी अस्वच्छताको कारण बताकर उनका नाम-निशान मिटा देनेपर जोर दे और इस प्रकार जलेपर नमक छिड़के? निगमकी अहस्तक्षेपकी नीतिका परिणाम स्पष्ट दिखलाई पड़ रहा है। मूल कारण कितने दिनोतक बे-निपटा पड़ा रहेगा?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५-२-१९०५

३०७. प्लेग

सफाईके प्रश्नपर, जहाँतक उसका असर भारतीय समाजपर पडता है, सम्पूर्ण रूपसे पहले ही विचार किया जा चुका है।[1] अव हमारी तजवीज है कि जो खास वीमारी महामारीके रूपमें फैलकर अभागे लोगोका शिकार कर रही है, उसके कारणकी छानवीन की जाये और उस कारणके परिणामोपर विचार किया जाये।

गत शनिवारके *मर्क्युरीमें* एक लम्वा अनुच्छेद छपा है। उसमे अधिकारियोके प्रति "भारतीयो" के उस रवैयेकी चर्चा है जो, कहा जाता है, उन्होने खास तौरसे प्लेगकी वीमारीको छिपानेके वारेमें अपनाया है। लेखकने कई विचित्र और अधूरी वाते कही है, उनके आधार-पर वहुत-से शिकायती प्रश्न उठाये हैं और अन्तमें यह सुझाव देकर वक्तव्य समाप्त किया है कि "सम्भवतः इस आचरण (प्लेगके छिपाव) का वीमारीके समय-समयपर फैलनेके साथ गहरा सम्वन्ध है।"

सीधे-सच्चे तथ्य क्या है? हमारा समाज गोरो और भारतीयोंसे वना है। गोरोंमे भारतीयो-की अपेक्षा गरीव लोग कम है। तव इससे निष्कर्ष निकलता है कि एशियाई आवादीके गरीव लोगोके यूरोपीय गरीवोकी अपेक्षा अधिक सख्यामे रोगका शिकार होनेकी गुजाइश है। दूसरे, एक यह आरोप लगाया गया है कि "भारतीय जानकारी देनेसे इनकार करके और अगर कोई वीमार हो तो हर तरहसे उसका पता-ठिकाना छिपानेका प्रयत्न करके" अधिकारियोके काममें गम्भीर वाधा डालते है। हम फिर पूछते है — "कौनसे भारतीय?" निश्चय ही भारतीय समाजके सवसे ज्यादा नासमझ वर्गके कुछ लोगोका दोष *सारे* भारतीय समाजपर मढ़नेका इरादा तो इस आरोपमे नही है। तो फिर, लापरवाहीके साथ ये सामान्यीकरण क्यो? क्या समझदार जनताको यह समझाना सम्भव नही है कि भारतीयोके वीच उतने ही वारीकीसे वने उपविभाग है, जितने कि किन्ही भी अन्य सभ्य लोगोमे है? यह देखकर निराशा होती है कि किस प्रकार निहायत गैर-जिम्मेदारीके साथ ये झूठी वाते निरन्तर कही जाती है। इससे आश्चर्य होता है कि क्या कभी इतिहासके तथ्योंका अध्ययन किया गया है और क्या वे आजके जीवन-दर्शनका अग वन गये है।

ऊँचे वर्गोके भारतीय अपने कम भाग्यशाली भाइयोको शिक्षा तथा व्यक्तिगत उदाहरणसे यह वताते कभी थकते नही कि जो निर्दय रोग हमारे वीच फैला है, उसका मूलोच्छेद करनेके प्रयत्नोमें अधिकारियोके साथ सहयोग करनेकी आवश्यकता है, ताकि उनके प्रयत्न विफल न हो। स्वयं हमने वार-वार अपने इन स्तभोमे अग्रेजी और भारतीय भाषाओ दोनोके द्वारा यह वतानेका अधिकसे-अधिक प्रयत्न किया है कि "सफाईका स्थान ईश्वर-भक्तिके वाद दूसरा है।" और फिर भी हमारे वीच ऐसे मूर्ख लोग है जो पूछते है — "भारतीय" अधिकारियोके साथ सहयोग क्यो नही करते!

इसके अलावा, अगर भारतीयो और यूरोपीयोके वीच वर्गगत तुलना की जाये, तो हमे निश्चय है कि भारतीयोमे प्लेगकी घटनाओको छिपाने तथा प्लेगके रोगियोको विज्ञापित करनेके प्रति अनिच्छाके मामले यूरोपीयोकी अपेक्षा ज्यादा नही है। हम इस वस्तुस्थितिपर विशेष जोर देना नही चाहते और न यह तर्क ही पेश करना चाहते है कि आप भी तो ऐसा ही करते है। फिर भी

१. देखिए पिछला शीर्षक।

आत्मरक्षाके लिए हमे यह सब करना पड़ा है; क्योकि यह सकेत करना स्पष्टत. अन्यायपूर्ण है कि कुछ भारतीयोका ऐसा व्यवहार, जिसकी निन्दा हमसे ज्यादा और कोई नही करता, "यूरोपीयोंकी दृष्टिमे भारतीय समाजके प्रति बहुत बुरी धारणा पैदा करता है।" तथापि, ये छिपावके मामले क्यो होते है, इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण है। हमे बताया गया है कि प्लेगके अस्पतालमें भारतीयो और काफिरोके बीच कोई फर्क नही किया जाता। सबको अधाधुन्ध एक साथ डाल दिया जाता है। भारतीयोकी आदतो और भावनाओंका थोडा भी ज्ञान रखनेवाला कोई भी व्यक्ति एकदम ताड सकता है कि यह बात अधिकारियोके जारी किये हुए अच्छे काममे कितनी बाधक है। हम केवल यह कह सकते है कि जबतक भारतीयोको अलग स्थान नही दिया जाता और जबतक स्वयं भारतीयोके बीच, उनकी धार्मिक प्रथाओं और परम्परागत विश्वासोका उचित खयाल रखते हुए, जाति और धर्मका फर्क नही किया जाता, तबतक अधिकारियोको व्यर्थ ही उन कठिनाइयोको झेलते रहना होगा, जो जरा-सी दूरदर्शितासे सरलतापूर्वक दूर की जा सकती है।

हम अशत: यह बता चुके है कि गरीब वर्गके भारतीयोके लिए कैसे और क्यो गन्दगीकी हालते पैदा की जाती है। डर्बनमे प्लेग फिरसे फूट पडा है। उसके सबसे पहले शिकार कौन है? भारतीय। परन्तु हम इस विषयको लेकर प्रश्न करते है — *कौनसे* भारतीय? वे भारतीय *कौन* है? उनके अलावा और कोई नही, जो दक्षिण आफ्रिकाका आदर्श नगर होनेका अभिमान करनेवाले नगरके निगमकी नौकरियोमे है, उसके मकानोंमें रहते है और जिनकी वह "हिफाजत" करता है। निगमने इन भारतीयोंको गन्देसे-गन्दे काम करनेके लिए नौकर रखा है। उनसे नालियाँ और गटरें साफ करायी जाती है और उन्हे ईस्टर्न फ्ले और वेस्टर्न फ्ले (पूर्वी और पश्चिमी दलदल) जैसे "स्वच्छ" मुहल्लोमें "बसाया" जाता है। तब फिर अगर ये अभागे इस प्लेगकी बीमारीको और दूसरी हरएक गन्दगीकी बीमारीको पकड़ लेते है तो ताज्जुब क्या? सफाई-आयोग (सैनिटरी कमिशन) की रिपोर्टमे, जिसकी विस्तृत चर्चा अन्यत्र की गई है, उन भयानक परिस्थितियोंका काफी यथार्थ वर्णन किया गया है, जिनमे इन अभागे लोगोको स्थायी रूपसे निकृष्ट जीवन बितानेके लिए बाध्य किया जाता है। और जब ऐसी परिस्थितियोमें प्लेग स्वभावत: फैल जाता है — यद्यपि इसके बारेमें भारतीय समाजने अधिकारियोसे बार-बार शिकायते की और उन्ही अधिकारियो द्वारा नियुक्त विशेषज्ञोने भी बार-बार चेतावनियाँ दी — तब बिना किसी भेदभावके सारे भारतीयोपर गन्दी आदतोका दोष मढ़ दिया जाता है और "कुली"को फौरन "रोग-सवर्धक" की उपाधि दे डाली जाती है। जिस आदमीको सूअरोके बाड़ेमे रखा जाता हो उसका उस बाडेके असली निवासी पशुओके समान ही गन्दी आदतोवाला बन जाना असम्भव नही है। ट्रान्सवालके स्वास्थ्य-अधिकारी डॉ० टर्नरने विधान-परिषदमे ट्रान्सवालकी भारतीय बस्तियोके बारेमे बोलते हुए कहा है:

> **जोहानिसबर्गकी कुली बस्ती शर्मनाक हालतमें है, और क्यों? इसलिए कि ये गरीब लोग दरबेमें मुर्गीके बच्चोंकी तरह वहाँ रहनेके लिए मजबूर है और अधिकारियोंने उसे बहुत ही गन्दी हालतमें रख छोड़ा है। अगर श्री रेट (विधान-परिषदके सदस्य) उसमें रहनेको विवश होते तो वे भी उतने ही गन्दे होते।**

हमें खेदके साथ कहना पडता है कि सफाईके मामलेमे गुनहगार स्वय निगम है। इसलिए अपने मकानोकी भयानक हालत तथा प्लेगसे होनेवाली मौतोके लिए मुजरिमाना जिम्मेदारी उसके ही सिर है। इन तथ्योके प्रकाशमें भारतीय समाज या अभागे "कुलियो"पर भी "गन्दी

आदतो" और बुराईको मिटानेमे अधिकारियोके साथ सहयोगके प्रयत्न जान-बूझकर न करनेका दोष मढना, केवल मुख्य विषयसे लोगोका ध्यान बँटा देना है।

सरकार और निगम द्वारा नियुक्त किये हुए प्लेग-विशेषज्ञोके प्रति हम अपना आभार प्रकट करते है। उन्होंने बुराईका इलाज करनेकी शक्ति-भर कोशिश की है और सरकारसे सिफारिशे भी की है, परन्तु सब व्यर्थ। परिणामको पकडकर उसे कारण मानना बिलकुल व्यर्थ है। परिणाम आखिर परिणाम ही रहता है, और कारण, जो कुछ बताया गया है उससे बिलकुल भिन्न होनेके कारण, अभी खोजना शेष ही है।

इस सबके बावजूद हम देखते है कि कुछ जिम्मेदार लोग ऐसे है जो लॉर्ड मिलनरकी विज्ञप्तिमे सुझाये गये तरीकोके अनुसार नये कानून बनानेके पक्षमें है। वे चाहते है कि इन कानूनोंके द्वारा भारतीयोको *बाजारोंमें* ढकेल दिया जाये और उन विभीषिकाओको स्थायी बना दिया जाये जो *निगमकी भूमिपर बसी बस्तियोंमें* फैली है। भारत-सरकारके अक-विभागके भूतपूर्व महानिदेशक श्री जे० ई० ओ'कोनरने इस नीतिकी निन्दा करते हुए ठीक ही कहा है कि भारतीयोको *बाजारमें* ढकेलनेका मतलब है कि "वे अपनी फिक्र खुद ही करे।" यह माना जाता है कि अच्छी सरकारकी सच्ची कसौटी यह है कि वह अकिंचनमे भी कर्त्तव्यकी ऊँची भावना भरती है, वह उसे निम्नतर कोटिकी दासतामे कभी भी नही गिराती, किन्तु निश्चय ही कोई "मूर्खतापूर्ण लकीरकी फकीरी," राजनीतिज्ञताकी उदार भावना, डर्बन नगरपालिकाकी सफाई तथा राजनीति-सम्बन्धी नीतियोकी निर्मात्री नही है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५-२-१९०५

३०८. दक्षिण आफ्रिकाके तमाम भारतीयोंसे अपील

अपने पाठकोसे हमारी सिफारिश है कि इन दिनो भारतसे जो समाचारपत्र आते है वे गौर-से पढे। क्योकि उन्हे उनको पढ़नेसे यह यकीन हो जायेगा कि हमारे भारतके भाई हमारे सहा-यतार्थ दौडकर आनेके लिए तैयार है। बम्बईमे काग्रेसका जो अधिवेशन हुआ उसमें हम लोगोके कष्टोके सम्बन्धमे अच्छी चर्चा की गई थी, और यहाँके निवासियो द्वारा दिये गये भाषणोका उस महान सस्था काग्रेसपर ऐसा अच्छा प्रभाव पड़ा कि नेताओने हमारे प्रश्नका महत्व समझकर हमारी परिस्थितिमे सुधारका प्रयत्न भी आरम्भ कर दिया है। समाचारपत्रोने भी हमारी समस्याको भली-भाँति हाथमे ले लिया है। ये सारी बाते बहुत सन्तोषप्रद है। और हमे ईश्वरका अनुग्रह मानना चाहिए कि भारतके लोक-प्रतिनिधियोने खुद हमारी शिकायतपर ध्यान दिया है। हमें भी अधिक उत्साहसे अपना कर्त्तव्य पूरा करनेमें तत्पर हो जाना चाहिए। कहावत है कि "हिम्मते मर्दां मददे खुदा" और "अपने मरे बिना स्वर्ग नही मिलता।" इसलिए हमे अपना कर्त्तव्य पूरा करना ही चाहिए। यदि नही करते तो हमारी आकाक्षा फलीभूत नही होगी। भारतसे ज्यो-ज्यो मदद मिलती जाये त्यो-त्यो हमारे जोशमे बढती होनी चाहिए, क्योकि मदद मिलनेपर जिम्मे-वारी बढती है। अपने दु खोको मिटानेके लिए हमारा कोशिश करना तो स्वाभाविक ही है। यदि हम ऐसा नही करते तो हम लोगोको पशुओसे भी गया-गुजरा माना जायेगा। जब हम लोगोकी सहायताके लिए सहायक लोग निकल पड़े है तब हमें उनके प्रति अपने कर्त्तव्योका भी विचार करना चाहिए। और उनको सतोष तथा प्रोत्साहन देनेके लिए अधिक उमग और उत्साहसे

कोशिशें करनी चाहिए ताकि उन्हे यह प्रतीत हो कि हम अपात्र नही है, सुपात्र है। अपनी योग्यता साबित कर देनेसे उनका हौसला भी बढेगा और इससे हमे बहुत लाभ होगा। दुनिया-दारीमें व्यस्त आदमी भी यह बात समझ सकता है। फिर जो लोग धर्मके सम्बन्धमें विचार करते हो, उनको तो इस बातका औचित्य तुरन्त दिखाई देगा।

दक्षिण आफ्रिकाके तमाम भाइयोसे हमारी खास विनती है कि वे ऊपर लिखी बातपर विशेष रूपसे विचार करे और अपना फर्ज अदा करनेके लिए तुरन्त तैयार हो जायें। भारतीय नेता हमारी मदद करनेके लिए तैयार हैं तो उनके लिए उसके साधन जुटा देना हमारा साफ फर्ज है। क्योकि, हमे समझना चाहिए कि यदि हम ऐसा नही करते तो उन लोगोसे इच्छानुकूल मदद नही मिल सकती। फिलहाल तीन साधनोंकी आवश्यकता है: (१) हम अपनी कोशिशें जारी रखें, (२) उन्हे अपनी सही हालतसे वाकिफ रखें, (३) हमारी ओरसे काम करनेमे उन्हे खर्च करना पड़ता हो, तो रुपये-पैसेकी पर्याप्त सहायता दें। ये तीनों साधन बड़े कामके है। हम पहले दो साधन कुछ-कुछ जुटा देते है अर्थात् हमारी कोशिशें थोड़ी-बहुत चालू हैं और हम यहाँकी सही हालत भी प्रकाशित करते है। तीसरे साधनपर, यानी रुपये-पैसेके सम्बन्धमें, हमने कुछ नही किया है। इसलिए उस विषयपर अविलम्ब पूरा विचार करना आवश्यक है। पैसेकी मदद करना एक भारी हथियार देनेके बराबर है। दुनिया ऐसी है कि उसमे आजकल पग-पगपर पैसा चाहिए, और पैसेकी कमी पड़ जाये तो चाहे जैसी बडी और ऊँची उम्मीद मनमें बाँधी हो, अन्तमे नाउम्मीद हो जाना पड़ता है। जिस प्रकार मनुष्यको आहारकी आवश्यकता होती है उसी प्रकार सार्वजनिक काममें पैसेकी जरूरत रहती है। सहायक अपना बहुमूल्य समय दे, और खुशीसे मिहनत करे, तिसपर भी उन्हे पैसेकी आवश्यकता हो और तब हम अपनी थैलीका मुँह बन्द रखे तो हम नीच और अधम गिने जायेंगे।

हमें सोचना चाहिए कि नेता किस प्रकार सहायता कर सकते हैं। इस देशमें हमारा जो अनुभव है उससे यह समझना कठिन नही है। ब्रिटिश राज्यमें अपनी अभिलाषा पूरी करानेके लिए कैसे काम करना चाहिए यह हमने प्रत्यक्ष अनुभवसे सीखा है। ट्रान्सवालके लोगोने चाहा तो युद्ध करवाया और इस समय चाहें तो हमे इतना कष्ट दे सकते है। यह कैसे होता है? वे लोग, सर्व-साधारण जनतासे अपने विचारोका समर्थन प्राप्त करनेकी दृष्टिसे, जगह-जगह सभाएँ करते है; सब लोग सभाओमें हमेशा उपस्थित नही हो सकते, इसलिए समाचारपत्र निकालते है और उनमें यथारुचि लेख लिखते है, पत्रक और पत्रिकाएँ छपवाते है; अर्जियाँ तैयार करते है, छपवाते हैं और उनके ऊपर बहुतसे दस्तखत कराते हैं, और जो कुछ करते है उसकी खबर देनेके लिए तार भेजते है। अब यह सब करनेके लिए पैसेकी बड़ी आवश्यकता रहती है। और इसलिए उनके नेता अपनी जेबें जरा हल्की करनेमे झिझकते नही है। वे लोग बलवान है, अक्लमन्द है, संगठित हैं; उनका इस देशमे एव विलायतमें पूरा-पूरा प्रभाव है; फिर भी वे निश्चित काम निर्विघ्न पूरा करनेके लिए बुद्धिमतासे काम लेकर तमाम कोशिशे हमेशा जारी रखते हैं। ऐसे लोगोसे हमे टक्कर लेनी पड़ती है। हम कमजोर है, अक्लमे पिछड़े हुए हैं, ऐक्यका पूरा महत्त्व समझकर सब एक नही हो सकते; सरकारपर हमारा कुछ प्रभाव नही है; और [जिस उमग और विवेक-विचारसे हमें अपनी मनुष्यता दिखानी चाहिए उसका हममे अभाव है।] तब उनसे टक्कर कैसे ली जाये? हमारी प्राय: सभी कमियोके बदलेमें हमारे पक्षमें इन्साफ है; और इन्साफ विरोधी पक्षको हरा सकता है। किन्तु फिर भी हमे जय प्राप्त करनेके लिए अपनी मनुष्यता और योग्यता अवश्य दिखानी ही चाहिए। क्योकि ऐसा न करे तो इन्साफ कमजोर पड़ जाता है।

हमारे सौभाग्यसे यहाँके कई प्रतिष्ठित महानुभाव इन दिनों भारतमे है। उनके द्वारा यहाँके नेताओंको सहायता मिलनी चाहिए। दक्षिण आफ्रिकाके हर हिस्सेसे — खास करके नेटाल और ट्रान्सवालसे पैसेकी जितनी बन पड़े सहायता भेजकर भारतके नेताओंको बल देना चाहिए, ताकि वे ब्रिटिश राज्यकी रीतिके अनुसार जनताकी भावनाओंको प्रकाशमे लाकर सरकारसे इन्साफकी माँग करे। यहाँकी जैसी महँगाई भारतमें नही है। वह देश गरीब है, इसलिए वहाँ थोड़े पैसोसे काम हो सकता है, फिर वह बहुत विशाल है। इन सारी बातोंको ध्यानमे रखकर यहाँके नेताओंको अपना प्रत्यक्ष कर्तव्य अविलम्ब पूरा करना चाहिए — अर्थात् वहाँ अच्छी-खासी रकमे तत्काल भेज देनी चाहिए, जिससे उनका उत्साह मन्द न हो जाये। और अखबारोमे निकलवा कर तथा सभाएँ करके समूचे देशमे आवाज गुंजा देनी चाहिए, जिससे कहा जा सके कि भारतकी सरकारको जनताका पूरा समर्थन मिला है, और विलायतकी सरकारको भी उसपर ध्यान देना लाजिमी हो जाये।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५-२-१९०५

३०९. केपके सामान्य व्यापारी

केपके *गवर्नमेंट गज़टमें* सामान्य व्यापारियोंके व्यापारका नियमन करनेके लिए एक विधेयकका मसविदा प्रकाशित हुआ है। व्यापारियोके परवानोके नियमनकी बात तो हम समझ सकते है, मगर कानून व्यापारियोंका भी नियमन करे, यह एक बिलकुल अनूठी कल्पना है। हम विधेयककी असली उपधाराओंको दूसरे स्तम्भमे उद्धृत कर रहे है। इसमे कुल ३५ खण्ड है, जिनमे से अधिकांशको न्यूनाधिक रूपमे टाला जा सकता था। परन्तु, इसके साथ ही हमें यह भी मंजूर करना होगा कि यद्यपि विधेयक काफी सख्त है, फिर भी उससे मालूम होता है कि उसके निर्माताओंने सामान्य व्यापारियोके हितोंका बहुत खयाल रखा है। इस दृष्टिसे वह निस्सन्देह नेटाल अधिनियमकी अपेक्षा कम आपत्तिजनक है। विधेयकके अनुसार, सब वर्तमान परवानेदार व्यापारियोंको तबतक सरक्षण प्रदान किया गया है जबतक कि उन्होने इतवारको व्यापार, शराब-बिक्री और सफाईसे सम्बन्धित कानूनका भग न किया हो, या उनके ग्राहको, साथियों अथवा उनकी खुदकी आदतोके कारण उनके अहाते पास-पड़ोसके लोगोके लिए कष्टदायक न बन गये हो। जहाँतक नये परवानोका सम्बन्ध है, कोई आवासी मजिस्ट्रेट आवेदकको परवाना प्राप्त करनेके लिए प्रमाणपत्र दे सकेगा अथवा इस प्रश्नका फैसला परवाना देनेवाली अदालत कर देगी। मजिस्ट्रेट और परवाना-अदालत दोनोंको अधिकार होगा कि वे दूसरी बातोके साथ-साथ आवेदकके चाल-चलन, किसी यूरोपीय भाषामे लिखनेके सामर्थ्य अथवा कारोबारका समझमें आने लायक लेखा रखनेकी अयोग्यताके आधारपर उसे परवाना देनेसे इनकार कर दे। परवानेदारको भी अधिकार होगा कि अगर उसका परवाना रद कर दिया जाये तो वह सर्वोच्च न्यायालयमे अपील कर सके। अपील केवल उस हालतमें नही हो सकेगी, जब कि परवाना शराब-कानूनके अन्तर्गत सजाके कारण रद किया गया हो। सारे विधेयकमे सबसे अधिक आपत्तिजनक उपधारा यूरोपीय भाषाओके सम्बन्धमें है। इस तरहकी व्यवस्थाका अर्थ है — लाखो ब्रिटिश भारतीयों और उनकी सुसंस्कृत भाषाओका स्वभावत. अपमान। उसके कारण ही केप-निवासी भारतीयोंके लिए विधेयकका विरोध करना आवश्यक हो गया है; अन्यथा वे सहर्ष उससे सहमत हो जाते। इस तरहकी

त्रासदायक व्यवस्थाओसे भारतीयोका सहयोग प्राप्त नही हो सकता। हम नही समझ सकते कि किसी ऐसे व्यक्तिको, जो एक योग्य व्यापारी हो, पूरी तरह ईमानदार हो और दूसरोकी सहायतासे अपना हिसाब-किताब अंग्रेजीमें रखनेमे समर्थ हो, क्यो परवाना प्राप्त करनेसे वंचित किया जाना चाहिए। हम ऐसी बीसियो दुर्दशाग्रस्त झोपडियाँ बता सकते है, जिनके मालिक "किसी यूरोपीय भाषा"का ज्ञान रखते है, परन्तु जो किसी भी महत्त्वके शहरके लिए हर तरहसे लज्जाजनक है। ऐसे लोगोको परवाने क्यों मिले और किसी अच्छे शिष्ट भारतीय प्रजाजनका, जिसके व्यापारका स्थान बिलकुल स्वच्छ हो और जिसका चरित्र आपत्ति-रहित हो, मुँहपर यह थप्पड-सा मारकर अपमान क्यों किया जाये कि वह अयोग्य है, क्योंकि उसे कोई यूरोपीय भाषा नही आती? हमे विश्वास है कि केप-निवासी ब्रिटिश भारतीय अपने ऊपर भार लादनेके इस नये प्रयत्नका विरोध करनेमे सहयोग करेंगे। हमे यह भी आशा है कि सरकार विधेयकमें से इस आपत्तिजनक उपधारा को निकालकर सम्बन्धित व्यापारियोके भारी समाजका सक्रिय सहयोग प्राप्त करेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४-३-१९०५

३१०. भारतीयोंके परवाने: सजग होनेकी जरूरत – २

ये दोनो हारें[1] सेठ हुडामलकी ही हारे हुईं, ऐसा न समझा जाये; बल्कि ये नेटालके तमाम भारतीय व्यापारियोकी हुईं, ऐसा मानना चाहिए। हम यह नही कहते कि सर्वोच्च न्यायालयने जानबूझकर गैरइन्साफी की है, किन्तु हम मानते हैं कि यदि सर्वोच्च न्यायालयके फैसलेपर सम्राट्की न्यायपरिषद (प्रीवी कौंसिल)में अपील की जाये तो परिणाम अवश्य भारतीय व्यापारियोकी दलीलके पक्षमें होगा। यदि कानून बनानेवालोका मन्शा सर्वोच्च न्यायालयके कथनानुसार हो तो प्रश्न यह उठता है कि परवानेका फार्म पहले जैसा ही क्यो नही था? उसमे तो केवल शहरका ही नाम था, स्थानका नही। यह स्थान लिखनेकी बात बादमें ही दाखिल की गई है। और यह सर्वोच्च न्यायालयके फैसलेकी काट है। परन्तु, फिलहाल कानूनी बारीकीकी छानबीन आवश्यक नही। यह समझना आवश्यक है कि परवानेका कानून कुल मिलाकर भारतीय व्यापारियोके लिए अत्यन्त हानिकर है, और इस कानूनको बदलवानेके लिए यथासम्भव उपाय किये जाने चाहिए। कानून अत्याचारपूर्ण है, उससे बहुत गैरइन्साफी हुई है और अनेक दूकानदार बरबाद हुए जा रहे है, यह बात अच्छी तरह ज्ञात हो चुकी है और सब लोग यह स्वीकार करते हैं; तब हमारा स्पष्ट कर्त्तव्य है कि हम ऐसे कानूनको बदलवानेकी भरसक कोशिशें करे और जबतक सफलता नही मिलती तबतक सुस्त न पड़ें। यह स्पष्ट है कि ऐसी बातोमे थोडी-सी भी लापरवाही करना बहुत खतरनाक है।

फिलहाल, फौरन क्या किया जाये इसका विचार करे। पूरी, भरोसेकी, पक्की जानकारी प्रत्येक नगरसे प्राप्त करनी चाहिए कि वहाँ वर्षके आरम्भमे भारतीयोको बाकायदा परवाने मिले है या नही, और यह जानकारी यथासम्भव प्रकाशित करनी चाहिए। जो अगुआ हैं उन्हे इस जानकारीपर विचार करना चाहिए और उचित कदम उठाने चाहिए। भारत और विलायतमें हमारी ओरसे काम करनेवाले लोगोके कानोतक ये सब तथ्य पहुँचाने चाहिए, जिससे हमारे स्थानीय प्रयत्नोके साथ-साथ वहाँ भी हम लोगोका समर्थक आन्दोलन चल पडे। जबतक इस प्रकार काम नही होगा तबतक हम व्यापारियोकी परिस्थिति सुधरनेकी आशा रखना व्यर्थ

१. देखिए "भारतीयोंके परवाने: सजग होनेकी जरूरत" १८-२-१९०५।

समझते है। हमे याद रखना चाहिए कि कुछ इसी प्रकारकी वात हमने १८९८ मे की थी; उसके फलस्वरूप १८९९ मे उपनिवेश-सचिवने श्री चेम्वरलेन द्वारा लिखित सख्त सूचनाओंके आधार-पर नेटालकी प्रत्येक नगरपालिकाको एक गुप्त पत्र लिखा था कि यदि भारतीय व्यापारियोपर जुल्म किया गया तो कानून वदलना पडेगा और भारतीयोकी माँगोके अनुसार सर्वोच्च न्याया-लयमें अपीलकी छूट देनी पडेगी। इसके वाद कुछ ही समयमे युद्ध शुरू होनेसे वह सव वन्द हो गया। किन्तु अव फिर वे वाते उठ रही है। अत हम लोगोको सावधान रहनेकी पूरी आवश्यकता है। हमे उक्त उदाहरणसे साहस बटोरकर काम करना चाहिए। यदि हम अपने कर्त्तव्योको ठीक-ठीक पूरा करेंगे तो अन्तमे हमारा मन्तव्य पूरा हुए विना नही रहेगा।

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन, ४–३–१९०५

३११. हिन्दू धर्म

[जोहानिसवर्ग
मार्च ४, १९०५]

श्री मो० क० गाधीने पिछले शनिवारकी शामको मेसॉनिक टेम्पल, प्लीन स्ट्रीटमे उपर्युक्त विपयपर जोहानिसवर्ग लॉज ऑफ दि थियोसॉफिकल सोसाइटीके तत्त्वावधानमे चार व्याख्यानोकी मालामे से पहला व्याख्यान दिया। उपाध्यक्ष मेजर पीकॉक सभापति थे।

विषयका प्रारम्भ करते हुए गाधीजीने कहा कि विभिन्न धार्मिक पद्धतियोके अध्ययनके प्रति उत्कण्ठा जगानेका जोहानिसबर्ग लॉजका प्रयत्न बहुत ही प्रशसनीय है, क्योकि इससे लोगोकी सहा-नुभूतिका विस्तार होता है और अपनेसे भिन्न मत और वर्णवालोके व्यवहारके मूलमे रहनेवाले उद्देश्यो और विश्वासोको समझनेकी शक्ति बढती है। वे स्वय अपने ग्यारह बरसके आफ्रिका-निवासमे अपने देशवासियोके प्रति फैले हुए द्वेष और अज्ञानको दूर करनेकी कोशिश करते रहे है।

आगे बोलते हुए भाषणकर्त्ताने "हिन्दू" शब्दका अर्थ आर्योकी उस शाखाके सन्दर्भमे समझाया जो सिन्धु नदीके पारके भारतीय अचलोमे आकर उसके विशाल भूभागमे वस गई थी। भारतके करोड़ो लोग जो धर्म मानते है उसकी व्याख्याके विचारसे वास्तवमे "हिन्दू धर्म" की अपेक्षा "आर्यधर्म" शब्द अधिक अर्थसूचक होता।

हिन्दू जिस धर्मको मानते है, आत्मत्याग उसकी अत्यन्त उल्लेखनीय विशेषताओमे से एक है और यह बात स्वय उस धर्मके नामसे ही जाहिर है। ससारमे फैले हुए अन्य वड़े धर्मोकी तरह उसका नामकरण किसी गुरु या पैगम्वरके नामपर नही हुआ — यद्यपि उसके अन्तर्गत अनेक महान विभूतियाँ हुईं। भाषणकर्ताने आगे चलकर अपनी मान्यताके प्रमाणमें अरकाटके ऐतिहासिक घेरेका उदाहरण दिया कि जव सारी ब्रिटिश फौजके सामने भूखसे मर जानेका खतरा था तव भारतीय सिपाहियोने अपने हिस्सेके चावलोकी रसद अग्रेज सिपाहियोको दे दी और स्वय उस माँडसे सन्तोष किया जो अमूमन पसाकर फेक दिया जाता था। उन्होने गिरमिटिया मजदूर प्रभुसिहकी[1] वात भी कही जिसे घेरेके समय जानकी जोखिम उठाकर पेडके ऊपर छिपे-छिपे घटी बजाकर बोअरोकी हर अग्निवर्षासे लेडीस्मिथके निवासियोको सावधान करनेका सम्मानपूर्ण काम सौपा गया था। सर जॉर्ज व्हाइटने कई वार इस व्यक्तिका खरीतोमे उल्लेख किया है।

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १७९ और *दक्षिण आफ्रिकाना सत्याग्रहनो इतिहास*, प्रथम खण्ड, अध्याय ९।

हिन्दुओका अपना दावा यह है कि उनके शास्त्रोकी निर्माणतिथि पुरातन कालके कुहरेमें आच्छन्न है, क्योकि ये शास्त्र अपौरुपेय है। इसके विरुद्ध कुछ यूरोपीयोकी मान्यता है कि ये शास्त्र ३,००० या ४,००० वर्षोसे अधिक पुराने नही है। तथापि सस्कृतके प्रसिद्ध विद्वान श्री तिलकने इन ग्रथोमे आये हुए ज्योतिषके कतिपय तथ्योके आधारपर इन्हे कमसे-कम दस हजार वर्ष पुराना गिना है— भले ही वे केवल ईसाके कोई तीन सौ वर्ष पूर्व लिपिबद्ध किये गये हो। वेदोके— जो इन शास्त्रोकी सज्ञा है— विभिन्न सूक्त है। प्रत्येकका विशिष्ट काल है और वे एक-दूसरेसे बिलकुल स्वतन्त्र है। उनमे एक विशेषता यह है कि उनके एक भी प्रणेताका नाम भावी पीढ़ियोको ज्ञात नही हुआ। वेदोने पश्चिमके कई प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियोके विचारोको प्रेरणा दी है जिनमे आर्थर शॉपेनहॉर और प्रोफेसर मैक्समूलरके नाम लिये जा सकते है।

हिन्दू धर्मावलम्बियोकी सख्या बीस करोडसे ऊपर होगी। धर्म उनके प्रत्येक आचारमे प्रविष्ट है। आध्यात्मिक पक्षमे हिन्दू धर्मका प्रधानस्वर है— मोक्ष, अर्थात् सर्वव्यापी परमात्मतत्त्वमे आत्माका अन्तिम रूपसे विलीन हो जाना। धर्मसे सम्बन्धित मुख्य विशेषता है अखिल-देवतावाद, और नीतिके स्तरपर सर्वाधिक द्रष्टव्य गुण है आत्मत्याग तथा उससे नि सृत उसका अनुमेय सहिष्णुता। सामाजिक व्यवहारमे जाति सर्वोपरि थी और आचारमे पशुओका बलिदान। जब हिन्दू धर्म अपेक्षाकृत अधिक कर्मकाण्डी हो गया तब राजपुत्र गौतम बुद्धने दीर्घकालतक तपस्या करके वस्तुओके आध्यात्मिक मूल्यको जानकर यह उपदेश करना प्रारम्भ किया कि पशुबलि अनाध्यात्मिक है और प्रेमके परम स्वरूपकी अभिव्यक्ति, जीवित प्राणियोका नाश करनेकी दिशासे विमुख होकर, उस सहिष्णुताकी भावनाको फैलाना है जो पहलेसे उनके धर्मका सिद्धान्त है। हिन्दू धर्म कभी ईसाई अथवा इस्लाम मतकी तरह प्रचारक धर्म नही रहा; किन्तु, सम्राट् अशोकके समयमे देश-देशान्तरोमे बौद्ध भिक्षु इस नये मतका प्रचार करनेके लिए भेजे गये। हिन्दू धर्मपर बौद्ध मतका कुछ वैसा ही सुधारक प्रभाव पडा जैसा कैथोलिक मतपर प्रोटेस्टेंट मतका हुआ था। किन्तु इस सुधारकी आन्तरिक भावना बहुत अलग थी। किसी हिन्दूके मनमें बौद्धोके प्रति दुर्भावना नही थी। यह एक ऐसी बात है जो प्रोटेस्टेंटो और कैथोलिकोके बारेमे नहीं कही जा सकती। कई बार कहा जाता है कि बादमे भारतमे बौद्ध मतका ह्रास हो गया। किन्तु वास्तवमें ऐसा नही है। बौद्ध भिक्षुओने अत्यधिक लगनसे अपने मतका प्रचार किया और तब हिन्दू पुरोहितोमें ईर्ष्या जागी। उन्होने बौद्धोंको देशके सीमान्त भागो— तिब्बत, चीन, जापान, ब्रह्मदेश और लकामें खदेड दिया। किन्तु बौद्ध भावना भारतमे रह गई और उसने हिन्दुओ द्वारा मान्य प्रत्येक सिद्धान्तको बल दिया।

इस सम्बन्धमे भाषणकर्त्ताने जैनमतका धर्मके एक बहुत आकर्षक रूपकी तरह सक्षेपमें उल्लेख किया। उन्होने बताया कि जैनोंका दावा है कि जैनमत बौद्धमतसे एकदम स्वतन्त्र है; वह उससे निकला हुआ नही है। यह मानते हुए कि उसके पवित्र शास्त्र मानवकृतित्वके परिणाम है, वे अन्य मतवादियोकी तरह यह दावा नही करते कि उनका धर्म अपौरुषेय है। शायद सारे धर्मोमे जैनमत सबसे अधिक तर्कसगत है और उसकी सर्वाधिक ध्यान देने योग्य विशेषता जीवमात्रके प्रति उसका हार्दिक सद्भाव है।

भाषणके बाद कुछ श्रोताओने प्रश्न पूछे और श्री गाधीने उनके उत्तर दिये तथा कार्यवाही आभार-प्रदर्शनके बाद समाप्त हुई जिसे श्री गाधीने मुसकराते हुए इस आधारपर रोकना चाहा कि वे अभीतक कृतज्ञता-प्रदर्शनके पात्र नही है।

व्याख्यान-मालाका दूसरा भाषण अगले शनिवार ता० ११ की शामको उसी भवनमें होगा।

[अंग्रेजीसे]

स्टार, १०-३-१९०५

३१२. श्री रिचकी विदाईपर भाषण

यह गांधीजीके उस भाषणकी संक्षिप्त रिपोर्ट है जो उन्होने रिचके[1] विदाई-समारोहमें जोहानिसबर्गमें दिया था।

[मार्च ९, १९०५]

श्री गाधीने कहा कि वे श्री रिचके चरित्रके बारेमे और अपने दफ्तरमे उनके वास्तविक कार्यके बारेमे अपने प्रशसात्मक भाव प्रकट करना चाहते है। उन्होने श्री रिचके साथ अपने सम्बन्धोका इतिहास बताया और कहा कि हम दोनो भाई-भाई जैसे प्रेम-भावसे परस्पर आबद्ध रहे है। श्री रिचने पिछले साल प्लेगके समय बहुत आत्मत्याग दिखाया था और प्लेगसे पीडित भारतीयोकी सेवा करनेके लिए बहुत जिद की थी। उन्होने उसमे यह खयाल भी नही किया कि उनके ऊपर इसका सम्भावित परिणाम क्या होगा[2]। श्री गाधीने इसकी चर्चा विशेष जोर देकर की। उन्होने अपना खयाल बताते हुए कहा कि श्री रिच जिस कारणसे स्वदेश लौट रहे है वह उनके ऊपर ईश्वरका अनुग्रह है और उन्हे इसमे कोई शक नही कि जो कुछ घटित हुआ है उसीमे उनका सर्वोत्तम हित होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५-३-१९०५

१. लुई वॉल्टर रिचने १९०३ में अपना व्यवसाय छोड़ा और गांधीजीके मुन्शी हो गये। वे थियोसॉफिस्ट थे और उन्होंने गाधीजीको थियोसॉफिकल सोसाइटीसे परिचित कराया। वे सन् १९०५ में कानून पढ़नेके लिए इंग्लैंड गये और वहाँ दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोकी ओरसे पत्रोंमें बार-बार लेख लिखकर बहुत-सा अमूल्य काम करते रहे।

२. इस घटनाके सम्बन्धमें गांधीजीने बादमें लिखा: "*श्री रिचका परिवार बड़ा था। वे खतरेमें कूदनेके लिए तैयार थे किन्तु उन्हें मैंने रोक दिया। मुझमें उनको खतरेमें डालनेका साहस नहीं था। इसलिए उन्होंने खतरेके क्षेत्रसे बाहरका काम संभाला*" (*आत्मकथा*, भाग ४, अध्याय १५)। हम नहीं कह सकते कि *इंडियन ओपिनियनमें* उनके भाषणकी रिपोर्ट सही है या जब २० वर्ष बाद उन्होंने उक्त बात लिखी तब उनकी स्मृतिने उनका साथ नहीं दिया।

३१३. एक राजनीतिक डाक्टरी रिपोर्ट

पॉचेफस्ट्रूमके स्वास्थ्य-अधिकारीने नगर-परिषदके निर्देशसे उस शहरके भारतीय मुहल्लोंकी हालतपर एक रिपोर्ट तैयार की है। जिन परिस्थितियोमे वह तैयार की गई है वे जरा विलक्षण है। जैसा कि हमारे पाठकोको मालूम है, पॉचेफस्ट्रूमके लोग भारतीय मुसलमानोके एक मसजिद बनानेके विचारसे बड़े बौखला उठे है। नगर-परिषदकी बैठकमें, प्रतिकूल कानूनी सलाहके बावजूद, सदस्योने मसजिद बनानेका विरोध करनेका निश्चय किया, और एक प्रस्ताव पास करके स्वास्थ्य-अधिकारीको निर्देश भी दिया कि वह शहरके उस हिस्सेका निरीक्षण करे और तुरन्त परिषदको रिपोर्ट दे। लोग सोचेंगे कि मसजिद बनाने और आसपासके मकानोकी स्वच्छता-विषयक स्थितिके बीच कोई सम्बन्ध नही है — मसजिद तो विशुद्ध रूपमें धार्मिक आराधनाकी इमारत है, जो कभी भी रहनेकी जगहके तौरपर काममे नही लाई जाती। तथापि, पॉचेफस्ट्रूमकी नगर-परिषदको तो, मेमने और भेड़ियेवाली कहानीके भेडियेके समान, कदम उठानेके लिए किसी आरोपकी जरूरत थी। स्वास्थ्य-अधिकारी डॉ० फ्रीएलने परिषदके वफादार नौकरके तौरपर, अवसरके अनुकूल तत्परता दिखाकार उसके इच्छानुसार एक रिपोर्ट दे दी है। वह रिपोर्ट एक विलक्षण वस्तु है। डॉक्टरने कहा है.

> **कुल मिलाकर अहाते काफी साफ है। मगर यदि कोई बीमारी फैल गई तो उन्हें छूत-रहित करना बहुत कठिन होगा; क्योंकि वे ज्यादातर सब आकार-प्रकारोंकी झोपड़ियोंके भोंड़े समुदाय-मात्र है।**

कुदरतन सवाल उठता है कि, यह अधिकारी इस सारे समय क्या करता रहा? ट्रान्सवालमें प्लेगको आये अब एक बरस हो गया है और अबतक ये अहाते खतरेके उद्गम स्थान नही पाये गये थे। आज वे शहरके लिए अविलम्ब खतरेकी चीजें हो गये है और उनका इलाज तुरन्त होना चाहिए — प्लेगकी रोकथाम करनेके लिए नही, मसजिद बनाना रोकनेके लिए! अगर यह इतने खुले तौरपर बेईमानीकी बात न होती, तो, निस्सन्देह इसे भोडापन तो माना ही जाता। डॉक्टरका कथन है कि हरएक अहातेमे स्वच्छताकी सुविधाएँ मौजूद है। परन्तु, चूँकि इस प्रकारका वक्तव्य नगर-परिषदके प्रयोजनके लिए बहुत हानिकारक है, इसलिए सचमुच उन्हे कहना ही चाहिए था कि ज्यादातर मामलोमे स्नानका पानी सडकोपर फेक दिया जाता है। उसने यह नही बताया कि पॉचेफस्ट्रूमके कितने यूरोपीय लोग भी स्नानका पानी सडकोपर फेक देते है, और जहाँतक हमारा खुदका सम्बन्ध है, हमे प्रबल शका है कि जो भारतीय ऐसा करते है उनके लिए और कोई चारा ही नही है। इतनेपर भी डॉक्टर उपनियमोके उल्लंघनका मामला तैयार नही कर सका, इसलिए उसने कहा है

> **भले ही प्रत्यक्ष रूपमें उपनियमोंका उल्लंघन न होता हो, फिर भी नियमोंमें वायु-क्षेत्रकी जो कमसे-कम मर्यादा है उसके अनुसार ही मकान बनाये गये है, और कमरोंमें हवा और रोशनीका इन्तजाम बहुत खराब है।**

हमे कौतूहल है कि क्या पॉचेफस्ट्रूम-नगरपालिकाके उपनियमोमे रोशनी और हवाका खराब इन्तजाम बरदाश्त किया जाता है? अगर ऐसा है तो नगरपालिका उपनियमोमें संशोधनकी माँग क्यों नही करती, ताकि वे स्वास्थ्य और स्वच्छताकी जरूरत पूरी करे? हम तो सचमुच

यह जानते है कि पाँचेफस्ट्रूम नगरपालिकाने सरकार द्वारा बनाये हुए स्वास्थ्य-सम्बन्धी उप-नियमोको स्वीकार किया है और वे नियम सख्त और अत्यधिक व्यय-साध्य है। डॉक्टरने रिपोर्टके स्वास्थ्य-सम्बन्धी हिस्सेको यह कहकर समाप्त किया है कि, कुल मिलाकर उनका रहन-सहन आजकलके स्तरके अनुकूल नही है और शहरके बीचोबीच बने हुए ये मकान और इनके निवासी लोक-स्वास्थ्यके लिए सतत खतरेके बायस है। रिपोर्टमे, जिसमे इतनी स्पष्टताके साथ परस्पर-विरोधी बाते कही गई है, हमे ऐसी कोई बात दिखलाई नही पडती, जिससे डॉक्टरका दिया हुआ मत जरूरी हो। और, मानो, डॉक्टरकी दी हुई स्वास्थ्य सम्बन्धी रिपोर्ट काफी नही थी, इसलिए वह आगे बढकर कानूनी सलाह देता है और सुझाता है कि सरकारसे कहना चाहिए कि सब एशियाइयो और बाकायदा परवाना-प्राप्त व्यापारियोके अलावा दूसरे लोगोको *बाजारोंमें* रहनेके लिए बाध्य किया जाये।

यद्यपि हमारे मतसे यह रिपोर्ट अपने-आपमे ही निन्दित है, जिन मकानोपर डॉ० फ्रीएलने अपना निर्णय दिया है उनपर एक निष्पक्ष सम्मति दे देना कदाचित् उपयोगी होगा। सद्भाग्यसे हमारे पास जिला-सर्जन डॉ० टॉमस जे० डिक्सनकी रिपोर्ट मौजूद है, जो उन्होने पाँचेफस्ट्रूमके भारतीयोके अनुरोधसे तैयार की है। वे कहते है:

> मुझे यह कहते खुशी होती है कि विभिन्न अहातोको देखनेपर, मेरे मनपर हर जगहका बहुत अच्छा असर पड़ा। मैंने अन्दरसे और बाहरसे भी देखा है। कुल बातोका खयाल करते हुए, पीछेके आँगन बिल्कुल साफ और स्वास्थ्यकर हैं। मैंने कूड़ेके ढेर लगे नहीं देखे। मुझे मालूम हुआ कि सारा कूड़ा रोजाना ठेकेदार ले जाया करता है। शहरके दूसरे हिस्सोंके समान यहाँ बालटी-पद्धति काममें लायी जाती है। इसकी भी कमाईका प्रबन्ध है, जो सफाई विभाग द्वारा किया जाता है। मैंने जो-कुछ देखा उसमें मैं कोई दोष नहीं बता सकता। जहाँतक सोनेके स्थानकी बात है, मुझे कोई दोष दिखलाई नहीं पड़ता। प्रत्येक व्यापार-स्थानके पीछे, उससे अलग, मैंने एक प्रकारका भोजन-गृह-सा देखा, जिसमें ५ से ८ आदमियों तकके बैठनेका स्थान है और हरएकमें उसका रसोईघर है। ये सब भी साफ-सुथरे रखे जाते हैं।

डॉक्टरके जाँचे हुए प्रत्येक घरकी विस्तृत रिपोर्ट हमारे सामने मौजूद है। यह एक निष्पक्ष डाक्टरी रिपोर्ट है, जो एक ऐसे सज्जनकी दी हुई है, जिसे किसी मालिकको खुश नही करना है। उसने देखा है कि भारतीय मकान सफाईकी दृष्टिसे आपत्ति करने योग्य नही हैं।

हम देखते है कि डॉ० फ्रीएलकी रिपोर्ट नगर-परिषदने सरकारके पास भेज दी और हम राह देख रहे है कि सरकार उसपर क्या कहती है। वह रिपोर्ट प्रत्यक्षत एक ऐसे व्यक्तिके उद्गार है, जिसका रुझान उसकी अन्तरात्माके प्रतिकूल है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११-३-१९०५

३१४. पढ़े-लिखे भारतीयोंका स्वास्थ्य

जब हम अन्य देशोके शिक्षित पुरुषोंसे भारतके इसी वर्गकी तुलना करते है तो निराशा होती है। इग्लैंडमे हालमे नये उदारदली मन्त्रिमण्डलके निर्माणकी योजना चल रही है। इस मन्त्रिमण्डलके मुखियोकी आयुके अक ऐसे है जिनसे अमूल्य जानकारी मिलती है। श्री ब्राइस और श्री जॉर्ज मॉर्लेकी आयु ६७ वर्षकी, लॉर्ड ब्रेसी और सर हेनरी केम्पबेल बेनरमैनकी ६९ की, अर्ल स्पेसरकी ७० की, ड्यूक ऑफ डेवनशायरकी ७२ की और सर हेनरी फाउलरकी ७५ वर्षकी है। सर चार्ल्स डिल्ककी, जिनके नये मन्त्रिमण्डलमे शामिल होनेकी सम्भावना कम है, आयु भी ६० वर्षकी और लॉर्ड रोजबरीकी ५७ वर्षकी है। नये मन्त्रिमण्डलमें ऊपर बताये व्यक्तियोमें से थोड़े-बहुत आयेंगे ही।

अब भारतके किसी भी क्षेत्रके पुरुषोकी शारीरिक स्थितिकी ओर नजर डाले तो पकी आयुके, अक्षुण्ण आरोग्य और जोशके व्यक्ति क्वचित् ही दिखाई देगे। इसका कारण खोजनेपर भारतके जलवायुका दोष बताया जायेगा; किन्तु यह बहुत कम अशमें सत्य माना जा सकता है। हमारे पुराने जमानेके लोग पूर्ण रूपसे स्वस्थ और उत्साही रहकर लम्बा आयुष्य भोगते थे। वे लोग डील-डौलमे भी ऐसे थे कि उनकी तुलनामे आजके लोग बिलकुल दुर्बल दिखाई देते हैं। पहले भारतका जलवायु ऐसा बलप्रद था तो अब शारीरिक गठनके लिए प्रतिकूल हो, ऐसा नही हो सकता। सही कारण तो यही है कि हम लोग तन्दुरुस्तीके नियमोके प्रति लापरवाह रहते हैं। शालाओ और विद्यालयोमे जो लापरवाही शुरू होती है वह बडी आयु प्राप्त होनेपर भी ज्यो-की-त्यो बनी रहती है। अपने काममे, पैसे कमानेमे और जीवनको उन्नत बनानेमें हम लोग व्यस्त रहते हैं। हमे ऐसे मौकोंपर होश नही रहता कि अत्यधिक कार्य-बोझ उठानेसे शरीरका जीर्णशीर्ण होना स्वाभाविक है। प्राय· सभी लिखे-पढे भारतीयोमे नियमित शारीरिक व्यायामकी आदत नही होती। मनको विश्रान्ति देनेकी आवश्यकता है इस बातसे वे बेखबर दीखते हैं। कुछ जगहोंमे क्लब और मण्डल देखनेमे आते हैं, परन्तु उनमे भाग लेनेवाले बहुत थोडे होते है। कुछ लोग, जिन्हे घरमें कुछ काम नही करना होता, इस प्रकारके क्लबोंमे बातचीत या बिलियर्डकी एक दो बाजी खेलते हुए अधिक हलके मनोरजनको ज्यादा पसन्द करते हैं। फिर तन्दुरुस्ती और सुखके महत्त्वका मूल्याकन करनेवाले बुद्धिशाली यूरोपीयोके समान उनके यहाँ गोष्ठियाँ, नाचके समारोह अथवा नाटक या ऐसे कोई दूसरे खेल आदि होते नही हैं। उनको अलग-अलग रोजगारोकी ओर ध्यान देना पड़ता है, इसका हिसाब न लगाये तो उनकी जिन्दगी बिलकुल ही शिथिल और एक ही ढर्रेकी कही जा सकती है। ऐसी कुटेव सारी प्रजाको तबाह करनेवाली है, फिर भी यह अफसोसकी बात है कि इस कुटेवके भयानक परिणामको कोई देख नही पाता। खास समयतक उनको कुछ हानि प्रतीत नही होती, इसलिए वे अपनेको रोग-रहित मानते हैं। वे काम कर सकते है, खाना हजम कर सकते है, और उन्हे कोई कष्ट अनुभव नही होता इसलिए वे अपनेको तन्दुरुस्त समझते हैं। अकस्मात् उनके इस सुखकी अनुभूति बदल जाती है। वे किसी गम्भीर-रोगमे घिर जाते है और निराश हो जाते हैं। जो हमसे पहले इस कुटेवकी शिकार हुए हैं, उनके उदाहरणसे हमे सचेत होना चाहिए। किन्तु इन उदाहरणोसे लाभ उठानेमे हम लोग सुस्त और लापरवाह है। इस तौर-तरीकेके कारण शिक्षासे सम्मानित भारतीयोमे हमे पकी उम्रके लोग दिखलाई नही पड़ते। यह

दोष एक ही व्यक्ति अथवा एक ही परिवारमें नही है, बल्कि इससे समस्त भारतीय प्रजा दूषित है। इस प्रकार एक भारतीय युवकको असमय मुरझानेसे बचानेका सार्वजनिक प्रयास करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काम है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११-३-१९०५

३१५. राक्षसोंकी लड़ाई

जापान और रूस

रणक्षेत्रसे जो खबरे आ रही है उनसे पता चलता है कि मुकदनके पास जापान और रूसके बीच आजकल जो लडाई चल रही है वह प्राचीन एवं अर्वाचीन इतिहासकी सबसे बडी लड़ाई गिनी जायेगी। मनको स्तब्ध करनेवाले समाचार अखबारोमे बार-बार निकलते हैं। इससे जन-समुदायको इस प्रकारकी खबरोंके प्रति अरुचि पैदा होना स्वाभाविक है। इस वजहसे यदि इस समय मुकदनमे चालू लडाई बडीसे-बड़ी लड़ाई कही जाये तो सम्भवत वह अत्युक्ति समझी जायेगी। फिर भी हमे यह बता देना चाहिए कि इन दिनो मुकदनकी लड़ाईमे, दोनो पक्षोके लाखो मनुष्योका सहार हो रहा है। इस जगह जापानने पूर्व, पश्चिम और दक्षिणकी ओरसे हमला किया है, अर्थात् रूसी सेनाके व्यूहपर हमला सामनेसे न करके पक्षोसे किया है। इन पक्षोके भग हो जानेसे बीचका मोर्चा भी भंग हो जानेकी सभावना है।

इन सारी प्रवृत्तियोके सूत्र-संचालक जापानके वीर पुरुष मार्क्विस ओयामा है। रणक्षेत्रका विस्तार कोई सौ मील है, और उसमे दस लाख मनुष्य उतरे हैं। सहारके हथियारोमे छोटीसे-छोटी रायफलोसे लेकर बडीसे-बड़ी तोपेतक काममे लाई जा रही है। मनुष्योका सहार त्वरासे किस प्रकार किया जाये, इस सम्बन्धमे मानव-बुद्धि जो कुछ कर सकती है वह करनेमे जरा भी कसर नही छोड़ी गई है। हिम्मत और सहनशक्तिको कसनेमे कसर नही रहती। एक लाख मनुष्योका सहार हो चुका है। अगर इस हमलेमे जापान रूसको हरा सका तो इस लड़ाईका अन्त सन्निकट है, ऐसा अनुमान करनेका प्रबल कारण है। रूसके हाथमे अब समुद्री ताकत नही है, क्योकि पोर्टआर्थर निकल चुका है[1]। और खुश्कीके रास्ते मचूरियामे अधिक मनुष्य भेजे जानेकी सम्भावना नही है। रूसमे लड़ाईके प्रति घृणा पैदा हो गई है। इसलिए जो फौज मचूरियामे इस समय मौजूद है, वह हार जाये तो जापानको अधिक बलिदान देनेकी आवश्यकता नही पड़ेगी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११-३-१९०५

१. अगस्त १०, १९०४ को।

३१६. पत्र: दादाभाई नौरोजीको

२१-२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक व ऍंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
मार्च ११, १९०५

सेवामे
माननीय दादाभाई नौरोजी
२२, केंनिंगटन रोड
लदन

प्रिय श्री दादाभाई,

यह पत्र आपको जोहानिसबर्गके श्री एल० डब्ल्यू० रिचका परिचय दे सकेगा। श्री रिच और मै कई बरसोसे एक दूसरेको अच्छी तरह जानते है। श्री रिचके भारतीयोके पक्षमे खूब निश्चित विचार है और कई बातोके साथ भारतीय हितकी ज्यादा ठीक सेवा कर सकनेके खयालसे वे बैरिस्टरी पढने इग्लैंड रवाना हो रहे है।

मै बडी कृपा मानूँगा यदि आप अपनी सहायताका लाभ उन्हे दे सके। श्री रिचने दक्षिण आफ्रिकामे भारतीय प्रश्नका अध्ययन किया है।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० २२६६) से।

३१७. हिन्दू धर्म

[जोहानिसबर्ग
मार्च ११, १९०५]

श्री गाधीने शनिवारकी शामको जोहानिसबर्ग थियोसॉफिकल लॉजके तत्त्वावधानमे मेसॉनिक टेम्पलमे हिन्दू धर्मपर दूसरा भाषण दिया। भवन खचाखच भरा था।

पिछले भाषणका साराश देनेके बाद वक्ताने कहा कि दूसरे भाषणमे हिन्दू धर्मके उस कालका निरूपण किया जायेगा, जिसे उसका अद्वितीय युग कह सकते है। बुद्धके उपदेशोके प्रभावसे जो आन्तरिक सुधार हुए उनके बाद हिन्दू धर्म मूर्तिपूजाका अत्यधिक अभ्यस्त हो गया। वक्ताने बातको निर्दोष दिखानेके लिए कई स्पष्टीकरण किये, किन्तु वे इस तथ्यको अस्वीकार नही कर सके कि हिन्दू दृश्य रूपमे लकड़ी-पत्थर जैसी जड चीजे पूजते है। हिन्दू दार्शनिक ईश्वरको सरलतासे शुद्धतम आत्माके रूपमे जानते और पूजते थे तथा अद्वैतवादके आधारपर उच्चतम कल्पनातक पहुँच जाते थे। इसी भाँति अज्ञानी जन-साधारण इससे निम्नतम अवस्थामे गिर जाते थे। 'यदि बाल-बुद्धि ईश्वरका अनुभव निर्गुण आत्माके रूपमें नही कर पाती

तो उसके विविध सगुण रूपोके माध्यमसे उसको पूजनेमे उसे कोई कठिनाई नही होती। अनेक उसे सूर्य, चन्द्र और तारोके माध्यमसे पूजते है और अनेक उसे लकडी-पत्थरके रूपमे भी पूजते है। दर्शन-प्रधान हिन्दू धर्मको सहिष्णु-भावनाके कारण पूजाका यह प्रकार अगीकार करनेमें कोई कठिनाई नही हुई। इस प्रकार हिन्दू-जीवनका चक्र आनन्दसे चलता रहा। किन्तु तभी अरबके मरुस्थलमे एक ऐसी शक्ति उदित हुई जो विचारोमे क्रान्ति उत्पन्न किये और जीवनपर अपनी स्थायी छाप छोडे बिना रह नही सकती थी। मुहम्मद बचपनसे ही अपने आसपासके लोगोको मूर्तिपूजा, विलासपूर्ण असंयम और शरावखोरीमे डूवा देखकर मन ही मन क्रोधसे सुलगते रहते थे। उन्होने यहूदी धर्मको धराशायी और ईसाइयतको पतित देखा। उन्होने मूसा और ईसाकी ही तरह अनुभव किया कि उनके पास एक दिव्य सन्देश है। उन्होने ससारको अपना सन्देश देनेका निश्चय किया और पहले अपने कुटुम्बी-जनोको उसका पात्र चुना। जो लोग इस्लामको तलवारका धर्म मानते है वक्ताने अपनेको उनसे अलग वताया और कहा कि वाशिगटन इरविनने इस्लाम धर्मपर अपने ग्रथमे प्रश्न उठाया है, "अपनी पहली अवस्थामे इस्लामके पास तलवार चलानेवाले लोग कहाँ थे?" उनके विचारमे इस्लामकी सफलताका कारण अधिकतर उसकी सादगी और मनुष्यकी कमजोरियोकी स्वीकृति है। मुहम्मदने सिखाया कि ईश्वर एक और केवल एक है, और वे उसके पैगम्वर है। उन्होने यह भी सिखाया कि आत्मोत्थानकारी प्रभावके रूपमे प्रार्थना नितान्त आवश्यक है। जो कर सके ऐसे अपने समस्त अनुयायियोको उन्होने, वर्षमे भले ही एक वार, इकट्ठा होनेके लिए मक्काकी यात्राका विधान किया। और यह मानकर कि लोग धन-सग्रह करेगे, उन्होने अपने अनुयायियोसे अनुरोध किया कि वे उसका एक निश्चित अश दान-कार्यके लिए धर्मबुद्धिसे अलग सुरक्षित कर दे। वहरहाल इस्लामकी मुख्य ध्वनि उसकी समताकी भावना थी। जो उसके दायरेमे आये उसने उन सबको ऐसे भावसे समान व्यवहार प्रदान किया जैसे भावसे संसारके किसी और धर्मने नही किया था। इसलिए जव ईसाके ९०० वर्ष वाद उसके अनुयाइयोने भारतपर चढाई की, तब हिन्दू धर्म किकर्त्तव्यविमूढ हो गया। उसे ऐसा लगा कि इस्लामको सफलता मिलकर रहेगी। जातिभेदसे त्रस्त जनतापर समताके सिद्धान्तका प्रभाव पडे बिना नही रह सकता था। इस आन्तरिक शक्तिके साथ तलवारकी ताकत भी जोड दी गई। वे कट्टर हमलावर, जो समय-समयपर भारतमे आ घुसते थे, यदि समझा-बुझाकर सम्भव न होता तो तलवारके बलपर धर्म-परिवर्तन करनेमे हिचकते नही थे। मूर्तियोपर मूर्तियाँ तोड़ते हुए उन्होने लगभग सारा देश रौद डाला और यद्यपि राजपूती शौर्य हिन्दुत्वकी ओर था, किन्तु वह इस्लामके अचानक हमलेसे उसकी रक्षा करनेमे असमर्थ रहा। प्रारम्भमे हिन्दू धर्मकी भावनाके अनुरूप दोनो धर्मोके समन्वयका प्रयत्न किया गया। वाराणसीमे लगभग १३वी शताब्दीमे कबीर नामके एक सन्त हुए जिन्होने हिन्दूधर्मके प्रधान सिद्धान्तोको अक्षुण्ण रखकर और थोडा-वहुत इस्लामसे लेकर दोनो धर्मोके एकीकरणकी चेष्टा की, किन्तु उनका वह प्रयत्न बहुत सफल नही हुआ। जहाँसे होकर मुसलमान विजेता भारतमे वडी सख्यामे घुसे और जिसने उनकी पहली अनीको झेला उस पजावने सिख धर्मके सस्थापक गुरु नानकको जन्म दिया। उन्होने अपने धर्मके सिद्धान्त कबीरसे लिए और उनमे लडाकू हिन्दू-तत्त्वको मिलाया। उन्होने मुस्लिम भावनाओका आदर करते हुए समझौतेके लिए हाथ वढ़ाया, किन्तु यदि वह स्वीकार नही किया गया तो वे हिन्दू धर्मकी इस्लामके आक्रमणसे रक्षा करनेके लिए भी उतने ही तैयार थे। और इस तरह सिख धर्म इस्लामका सीधा परिणाम था। यह सर्वविदित है कि सिख कैसा वहादुर होता है और उसने ब्रिटिश सत्ताकी क्या सेवा की है। हिन्दू धर्मपर इस्लामका यह प्रभाव हुआ कि उसने सिख धर्मको जन्म दिया और धर्मके एक प्रधान गुण अर्थात् सहि-

ष्णुताको उसके सच्चे और पूर्ण रूपमे व्यक्त किया। जिन दिनो कोई राजनीतिक प्रभाव काम नही करते होते थे तब बिना कठिनाईके हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरेकी भावनाका आदर करते हुए और बिना किसी विघ्न-बाधाके अपना-अपना धर्म पालते हुए पूर्ण शान्ति और सद्भावनाके साथ-साथ रहते थे। हिन्दू धर्मने ही इस्लामको अकबर दिया जिसने अचूक अन्तर्दृष्टिसे सहिष्णुताकी भावनाको पहचाना और भारतपर शासन करनेमे उसे स्वय अपनाया। इसके सिवाय हिन्दू धर्मने अपना लचीलापन इस तरह भी जाहिर किया कि भयानक सघर्षके बाद भी विशिष्ट वर्गो और साधारण जनताका बहुत बडा भाग एकदम अप्रभावित रह गया और हिन्दू धर्म सघर्षमे से ऐसा तरोताजा होकर निकला जैसे हम शीतल जलमे से स्नान करनेके बाद तेजस्वी होकर निकलते है। इसमें सन्देह नही कि पहला धक्का जोरका लगा था, किन्तु जल्दी ही हिन्दू धर्मने दृढतासे अपनेको फिर स्थापित कर लिया। वक्ताने फकीरो और योगियोका भी उल्लेख किया और कहा कि यद्यपि फकीर इस्लामको और योगी हिन्दू धर्मको मानते थे, तथापि उनकी जीवन-पद्धति लगभग एक-सी होती थी।

भाषणके अन्तमे अनेक दिलचस्प सवाल पूछे गये और सदाकी तरह सभा सधन्यवाद समाप्त हुई।

भाषण-मालाका तीसरा व्याख्यान[1] अगले शनिवारको ८ बजे मेसॉनिक टेम्पलमें होगा। व्याख्यानमे निम्नलिखित विषयोपर प्रकाश डाला जायेगा भारतमें ईसाई मतका उदय, हिन्दुओंपर प्रभावकी दृष्टिसे इस्लाम और ईसाई मतकी तुलना, हिन्दू धर्मपर ईसाई मतका असर, ईसाई मत और आधुनिक अथवा पाश्चात्य सभ्यताका मिश्रण; भारतमे ईसाई मतकी प्रत्यक्ष असफलता और अप्रत्यक्ष सफलता, राममोहनराय, केशवचन्द्र सेन, दयानन्द, थियॉसफी, ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज, हिन्दू धर्मकी वर्तमान स्थिति, उसकी दीर्घायु और जबर्दस्त जीवन-शक्तिका रहस्य।

[अंग्रेजीसे]

स्टार, १८-३-१९०५

१. *स्टारमें* तीसरे और चौथे भाषणका विवरण प्रकाशित भी हुआ हो तो उपलब्ध नहीं है। किन्तु इन भाषणोंका सारांश बादमें *इंडियन ओपिनियनमें* प्रकाशित हुआ था। देखिये, "धर्मपर व्याख्यान", १५-४-१९०५।

३१८. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

ब्रिटिश भारतीय संघ

बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
मार्च १४, १९०५

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
प्रिटोरिया

महोदय,

मेरा सघ आपका ध्यान *पॉचेफस्ट्रूम बजटकी* सलग्न कतरनों[१] की ओर सादर आकर्षित करता है। उनमें इसी ४ तारीखको शनिवारके दिन पाँचेफस्ट्रूमके मार्केट स्क्वेयरमे भारतीय वस्तुभण्डारोके सामने किये गये एशियाई-विरोधी प्रदर्शनका विवरण छपा है।

पॉचेफस्ट्रूमवासी ब्रिटिश भारतीयोने मेरे सघको सूचना दी है कि प्रदर्शनकी कार्रवाई हिंसापूर्ण थी और उसमे ऐसे भाषण दिये गये जो लोगोकी निकृष्टतम भावनाओको उत्तेजित करें। भाषण समाप्त होनेपर शरारतके लिए आमादा लोग भारतीय वस्तु-भण्डारोकी खिडकियोपर पत्थर फेकने लगे। यदि पुलिस इस संकट-कालके लिए इस प्रकार सक्षम रूपसे तैयार न होती तो हिंसा कितनी बढ़ जाती, यह कहना कठिन है। इसीलिए हानि खिड़कियोके काँच तोडे जाने तक ही सीमित रही। यह ध्यान देने योग्य है कि प्रदर्शनकारियोका नेतृत्व नगरके कुछ प्रमुख व्यक्ति कर रहे थे, जैसे पॉचेफस्ट्रूम व्यापार-सघके अध्यक्ष, नगर-परिषदके एक प्रमुख सदस्य और सरकारी तथा अर्धसरकारी पदोपर नियुक्त अन्य लोग। नगरमे एक मसजिद बनानेका प्रस्ताव है। यह बात भारतीय समाजके विरुद्ध जनताके पूर्वग्रहको उत्तेजित करनेके लिए उपयोगमे लाई गई। लेकिन मेरे सघको सूचित किया गया है कि प्रस्तावित मसजिदका स्थान —

(क) नगरके केन्द्रमे नही है,

(ख) मुख्य आवागमनके मार्गपर नही है;

(ग) नये होटलसे, जिसपर, कहा जाता है कि, ३०,००० पौंड खर्च हुए हैं, कुछ दूरीपर है; उससे संलग्न नही, जैसा कि बताया जाता है।

(घ) वह स्थान एक पीछेकी गलीमें है और प्रस्तावित इमारतें पासकी किसी भी सड़कसे दिखाई नही देंगी।

(ङ) उस स्थानके बिलकुल आसपासकी इमारतें केवल लकड़ी और लोहेकी बनी हैं और प्रस्तावित मसजिदकी इमारतोसे उनकी बनावट बहुत घटिया दर्जेकी रहेगी।

इसलिए मेरा संघ सादर निवेदन करता है कि पाँचेफस्ट्रूमके ब्रिटिश भारतीय लोग सरकारसे यह घोषणा करानेके अधिकारी हैं कि पॉचेफस्ट्रूममे एशियाई-विरोधी आन्दोलन जिस ढगसे चलाया जा रहा है वह उसको नामजूर करती है; और साथ ही वे सरकारसे यह आश्वासन पानेके हक-

१. ये उपलब्ध नहीं हैं।

दार भी है कि उनके प्राणो और उनकी सम्पत्तिकी रक्षा पूर्ण रूपसे की जायेगी। शायद सरकारको मालूम होगा कि पॉचेफस्ट्रूम पहरेदार सघ तथा उपनिवेशकी इसी तरहकी अन्य संस्थाएँ, जैसा कि उन्होने कहा है, सरकारके हाथ मजबूत करनेके उद्देश्यसे आन्दोलन चलाती हैं। उनका कथन है कि सरकार उनकी माँगें स्वीकार करनेके लिए तैयार है और उनकी रायमे वह इसी उद्देश्यको लेकर इग्लैडकी सरकारसे, इस समय, बातचीत करनेमें संलग्न है।

मेरा संघ यह खयाल भी नही कर सकता कि सरकारका ऐसा कोई उद्देश्य हो सकता है। किन्तु संघके नम्र विचारमें सरकारकी स्पष्ट विपरीत घोषणाके अभावका गलत अर्थ लगाया जा सकता है और उससे आन्दोलनमें हिंसा तीव्र हो सकती है।

इसलिए मेरा संघ विश्वास करता है कि सरकार कृपा करके ऐसे उपाय करेगी जो पॉचे-फस्ट्रूम तथा उपनिवेशके अन्य नगरोके शान्तिप्रिय ब्रिटिश भारतीयोके अधिकारोकी रक्षाके लिए आवश्यक हो।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष,
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइव्ज़ : एल० जी० ९३, विविध फ़ाइलें ९७/३, एशियाटिक्स १९०२/१९०७।

३१९. नेटाल नगर-निगम विधेयक

नेटाल सरकारका २१ फरवरी, १९०५ का *गज़ट* हमारे सामने है। इसमें "नगर-निगमोसे सम्बन्धित कानूनको संशोधित और संघटित करनेके लिए एक विधेयक" है। हम एक अन्य स्तम्भमें उसकी वे धाराएँ उद्धृत कर रहे है, जिनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव ब्रिटिश भारतीयोके प्रश्नपर पड़ता है। यह सरकारका इस विधेयकको पेश करने और कानूनके रूपमें पारित करनेका दूसरा प्रयत्न होगा। उसमे "रंगदार व्यक्ति" और "असभ्य प्रजातियो" की जो परि-भाषाएँ दी गई है वे बहुत असन्तोषजनक हैं। उनसे "रंगदार व्यक्ति" की परिभाषासे पैदा हुई शरारत विधेयकमे दाखिल हो जायेगी। विधेयकके अनुसार, उक्त संज्ञामे, दूसरोके साथ-साथ "प्रत्येक हाटेंटाट, कुली, बुशमैन या लशकर" सम्मिलित है। अब, स्वयं "कुली" और "लशकर" शब्दोकी व्याख्या करनेकी जरूरत है। इनकी व्याख्या करनेका काम महान्यायवादीसे लेकर काफिर पुलिस-सिपाहीतक कानूनके सभी प्रशासकोपर छोड़ देना बहुत खतरनाक है। उदा-हरणके लिए काफिर पुलिस-सिपाही कैसे जानेगा कि कौन "कुली" है और कौन "लशकर"? फिर, जब यह सभी जानते हैं कि "कुली" शब्द कितना घृणास्पद बन गया है, तब उसे विधेयकमे रखा ही क्यो जाये?

"असभ्य प्रजातियाँ" शब्दोकी परिभाषा सम्बन्धित भारतीयोके लिए अपमानजनक है और उनके वशजोके लिए तो और भी अपमानजनक है। सभ्यताकी एक अचूक कसौटी यह है कि जो आदमी सभ्य होनेका दावा करता है वह बुद्धिपूर्वक श्रम करनेवाला हो, और वह श्रमका गौरव समझे और उसका काम ऐसा हो कि उससे उसके समाजके हितोंकी वृद्धि हो। इस कसौटीपर तुच्छसे-तुच्छ गिरमिटिया भारतीयको भी कसें तो वह खरा उतरेगा। फिर उसे असभ्य प्रजातिका

सदस्य क्यों कहा जाये? और यदि भारतीय मजदूरको असभ्य कहना ठीक भी हो — क्योंकि उसने शर्तोंमें बँधकर उपनिवेशकी सेवा करना मजूर किया है — तो भी उसके वंशजोंपर यह अभिशाप क्यों लादा जाये? ऊँची श्रेणीके जिस भारतीय विद्यालयकी गवर्नर और भूतपूर्व प्रशासकने सुखद और सुन्दर शब्दोंमें प्रशसा की है, उसमे गिरमिटिया भारतीयोके बहुत-से बच्चे हैं। ये बच्चे किसी भी समाजका मान बढा सकते हैं। ये होशियार हैं और उदार शिक्षा पाते हैं। तब क्या इनपर "असभ्य प्रजातियोका" बिल्ला लगाना उचित है? ऐसे भारतीयों तथा अन्य भारतीयोके बीच अन्तर करना अकारण ही होगा, क्योंकि, हम विधेयकके निर्माताओंको विश्वास दिलाते हैं कि अनेक गिरमिटिया भारतीय बिलकुल उतने ही अच्छे हैं जितने कि अपना खर्च स्वय उठाकर स्वतन्त्र लोगोंकी हैसियतसे इस उपनिवेशमें आये हुए कुछ दूसरे भारतीय। सच तो यह है कि अगर गिरमिटिया भारतीय किसी चीजके पात्र हैं तो इसके कि उनके साथ स्वतन्त्र भारतीयोकी अपेक्षा ज्यादा अच्छा बरताव किया जाये, क्योंकि वे इस उपनिवेशमें आनेके लिए आमन्त्रित और प्रेरित किये गये हैं और उन्होंने इसको समृद्धिशाली बनानेमें कम योग नही दिया है।

अब हम विधेयककी उपधारा २२ पर विचार करेंगे। स्वर्गीय श्री एस्कम्ब और स्वर्गीय सर जॉन रॉबिन्सनने राजनीतिक मताधिकार विधेयक पेश करते समय विधानसभामें उसकी सिफारिश इस आधारपर की थी कि उसका प्रभाव नगरपालिका-सम्बन्धी मताधिकारपर नही पडता है। उनकी इस घोषणाके प्रतिकूल हम देखते हैं कि ससदीय मताधिकार अधिनियम (पार्लमेंटरी फ्रैंचाइज़ ऐक्ट) की व्यवस्थाएँ नगरपालिका-सम्बन्धी मताधिकारपर लागू की जा रही हैं और यदि यह विधेयक ज्यों-का-त्यों कानूनके रूपमें स्वीकृत हो जाता है तो ऐसा कोई आदमी नगर-पालिका-सम्बन्धी मताधिकार प्राप्त न कर सकेगा, जो कि १८९६ के अधिनियम ८ के अन्तर्गत संसदीय मताधिकारके अयोग्य ठहरा दिया गया हो। अर्थात् जिन प्रजातियोंने अबतक प्रातिनिधिक-प्रणालीका उपभोग नही किया, उनके सदस्य नगरपालिका-सम्बन्धी चुनावोंमे मतदाता होनेके अयोग्य ठहरा दिये जायेंगे, भले ही उन्होंने अपने देशमें प्रातिनिधिक नगरपालिका-सम्बन्धी प्रणालीका उपभोग क्यों न किया हो। यह सभी जानते हैं कि भारतके सभी मुख्य शहरोंमे निर्वाचित नगर-पालिकाएँ मौजूद हैं और ऐसी नगरपालिकाएँ सैकड़ोंकी सख्यामें हैं और हजारों मतदाता उनके सदस्योंका निर्वाचन करते हैं। उन लोगोंको अयोग्य क्यों ठहराया जाये? भारतीय समाजने नगरपालिका-सम्बन्धी चुनावोंकी बाबत कितने भारी आत्म-सयमसे काम लिया है, इसका विधेयक-के निर्माताओंने कोई खयाल नही किया। उन्होंने नागरिकोंकी नामावलीमें अपने नाम दर्ज करानेका लोभ संवरण किया है, और उन्हें उसका पुरस्कार दिया गया है इस विचाराधीन उपधाराके रूपमें! हम इस उपधाराको जान-बूझकर किया जानेवाला अपमान समझते हैं और हमें आशा है कि भारतीय समाजके ऐसे अपमानको विधानसभाके सदस्य अपना समर्थन प्रदान न करेंगे।

उपधारा १८२ द्वारा नगरपालिकाओंको अधिकार दिया जायेगा कि वे रगदार लोगों द्वारा खरंजों, पैदल-पटरियों और रिक्शा-गाडियोंके उपयोगका नियमन करनेके लिए उपनियम बना सकें। यहाँ "कुली" तथा "लशकर" शब्दोंकी व्याख्या करना आवश्यक है और यह कल्पना करना कठिन नही है कि अगर वर्तमान व्याख्या कायम रखी गई तो ये उपनियम अत्याचारके कैसे भयानक साधन सिद्ध हो सकते हैं। स्पष्ट है कि यह उपधारा ट्रान्सवाल सरकारकी ढुलमुल नीतिका और उस आन्दोलनका नतीजा है जो "रंगदार" लोगों द्वारा सड़ककी पटरियोंके उपयोगके बारेमें ट्रान्सवालमें अब भी चलाया जा रहा है।

उपधारा २०० में यह व्यवस्था है कि शहरमें रहने और काम करनेवाले असभ्य प्रजातियोंके सब लोग अपना पंजीयन (रजिस्टरी) करायें। उन काफिरोंके पंजीयन करानेकी बात तो समझमें आ सकती है जो काम नहीं करते; परन्तु जो गिरमिटिया भारतीय शर्तोंसे मुक्त हो चुके हैं उनका और उनके वंशजोंका, जिनके बारेमें सामान्य शिकायत यह है कि वे बहुत ज्यादा काम करते हैं, पंजीयन कराना जरूरी क्यों हो? क्या गिरमिटिया भारतीयके क्लार्ककी नौकरी खोजनेवाले लड़केका पंजीयन किया जायेगा?

विधेयकमें और भी आपत्तिजनक उपधाराएँ हैं, मगर हम फिलहाल इस संक्षिप्त मीमांसामें उनपर ध्यान नहीं देते। सारे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंको कुचलनेका जो प्रयत्न किया जा रहा है यह विधेयक उसके बहुत-से प्रमाणोंमें से केवल एक है, क्योंकि इस समय जो आन्दोलन चल रहा है वह यद्यपि सारेका-सारा नाममात्रके लिए "रंगदार" लोगोंके खिलाफ है, तथापि उसके वास्तविक लक्ष्य ब्रिटिश भारतीय हैं। जो नीति बरती जा रही है, वही है जिसका आरोप युद्धके पूर्व किम्बरलेके अपने प्रसिद्ध भाषणमें लॉर्ड मिलनरने डचेतर गोरोंके सिलसिलेमें बोअरोंपर किया था। लॉर्ड महोदयने उसे छेड़खानीकी नीति कहा था। फिर भी डचेतर गोरे अपने ऊपर लादी जानेवाली राजनीतिक अयोग्यताओंके बावजूद बेहद खुशहाल थे और भारतीयोंकी अपेक्षा उन्हें बरदाश्त करनेमें ज्यादा समर्थ भी थे। अगर डचेतर गोरोंके प्रति व्यवहार छेड़खानीकी नीति कहा जाये तो दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति जो नीति बरती जा रही है उसे हम क्या कहेंगे? जैसा कि नेटालकी विधानसभाके एक सदस्यने एक बार कहा था, औपनिवेशिक आदर्श ऐसा होना चाहिए कि दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके जीवनको, जितना हो सके, कष्टमय बना दिया जाये, जिससे उनका धैर्य समाप्त हो जाये और वे इस देशको छोड़कर चले जायें।

इस अग्नि-परीक्षामें अब ब्रिटिश भारतीयोंका कर्त्तव्य क्या है? इसका उत्तर सीधा-सादा है। धैर्य भारतीयोंकी विशेषता है और यह तथ्य उन्हें किसी भी कारणसे नहीं भूलना चाहिए। यह उनकी मूल्यवान विरासत है और यदि वे इसके साथ केवल उद्योगकी एक बड़ी मात्रा और जोड़ दें और सम्राट्की प्रजाकी हैसियतसे अपने अधिकारोंके अपहरणका एक होकर निरन्तर विरोध करते रहें तो वे फिर भी विजय प्राप्त कर सकते हैं — भले ही उनके सामने कठिनाइयाँ क्यों न हों। उनमें अविचल पैगम्बरकी श्रद्धा होनी चाहिए, जो ईश्वरमें जीवन्त विश्वाससे उत्पन्न साहसके साथ शत्रु-दलका मुकाबला करनेके आदी थे और जिन्होंने अपने शिष्योंके याद दिलानेपर कि शत्रुओंकी भारी संख्याके मुकाबले वे केवल तीन ही हैं, यह मुँहतोड़ उत्तर दिया था: हम तीन नहीं, चार हैं, क्योंकि सर्वशक्तिमान प्रभु अदृश्य रूपमें हमारे साथ है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८-३-१९०५

३२०. केपका सामान्य विक्रेता-विधेयक

हमें यह देखकर प्रसन्नता है कि केप-ससदके वर्तमान अधिवेशनमे जो विक्रेता-विधेयक पेश किया जानेवाला है उसके सम्बन्धमे, केपके ब्रिटिश भारतीय बराबर आन्दोलन करते रहे हैं। सर विलियम थॉर्न और माननीय एडमड पॉवेलके नेतृत्वमे उनका एक शिष्टमण्डल माननीय महान्यायवादी (अटर्नी-जनरल) से पहले ही मिल चुका है। तथापि हमे यह स्वीकार करना होगा कि श्री सैम्सनके लचर उत्तरसे हमें निराशा हुई है। उनके लिए यह कह देना बडा सरल है कि "किसी यूरोपीय भाषामे हिसाब रखनेके प्रश्नका खयाल करनेके लिए कोई आवासी मजिस्ट्रेट बाध्य नही है। विधेयकमे विधान है कि वह चाहे तो उसका खयाल करे, चाहे न करे।" हम सब जानते हैं कि इन विवेकाधिकारोका अर्थ क्या है। अतीतमे इनका दुरुपयोग किया गया है; और भविष्यमे नही किया जायेगा, ऐसा कोई निश्चय नही है। हम यह आश्वासन माननेके लिए बिलकुल तैयार हैं कि विधेयक "भारतीयोपर प्रहार" नही है। परन्तु जहाँतक विवेकाधिकारका सम्बन्ध है, यदि उसका उपयोग इस प्रकार करनेकी गुंजाइश है तो विधेयकका अर्थ प्रहार करना ही होगा। हम साहसपूर्वक कहते हैं कि यह विधेयक नि.सन्देह ऐसा है, जो भारी पैमानेपर उत्पीडनका साधन बन जायेगा। फिर, महान्यायवादीने जब बहस करते हुए कहा कि प्रश्न किसी यूरोपीय भाषामें हिसाब-किताब रखनेका है तब उनका ध्यान मुख्य मुद्देपर बिलकुल नही गया। विधेयक तो इससे बहुत आगेतक जाता है और परवाना-अधिकारीको अधिकार देता है कि अर्जदारको कोई यूरोपीय भाषा न जाननेकी बिनापर परवाना देनेसे इनकार कर दे। हमे अंग्रेजीमे हिसाब-किताब रखनेके बारेमें कोई आपत्ति न होती; यह योग्य मुनीमोके द्वारा कराया जा सकता है। परन्तु अर्जदार कोई यूरोपीय भाषा जाने, यह आग्रह करना बिलकुल दूसरी ही बात है। अगर इस उपधाराका उद्देश्य धोखा-धडीको रोकना है तो हम नही समझ सकते कि हिसाब-किताब अंग्रेजीके अलावा किसी भी यूरोपीय भाषामे क्यो रखा जाये। यदि यह परिवर्तन सिर्फ हिसाब-किताबतक ही सीमित रखा जाये और परवाना-प्राप्त लोगोतक विस्तृत न किया जाये तो इस धारामें से भारतकी महान भाषाओके प्रति अपमानका दोष निकल जायेगा। विद्वान महान्यायवादी आगे चलकर भारतीयोको एक प्रवचन सुनाते हुए कहते हैं :

> **मैं ऐसी बातोंके बारेमें नहीं कह रहा हूँ जिन्हें मैं जानता नहीं। मैं न्यायप्रिय आदमी हूँ और स्थितिसे परिचित हूँ। उदाहरणके लिए, रविवारके दिन भारतीयोंके व्यापार करनेकी बात ही ले लीजिए। क्या आप मुझसे यह कहना चाहते हैं कि भारतीय व्यापारी रविवारको व्यापार नहीं करते?**

हम बड़े आदरके साथ निवेदन करते हैं कि वे नही करते। और अगर जहाँ-तहाँ करते भी है, तो उनका मुहकमा क्या कर रहा है? क्या केपमे रविवासरीय व्यापार-कानून नही है? क्या गैरकानूनी रविवासरीय व्यापार कड़ाई करके बन्द नही किया जा सकता? और अगर हम इस दलीलको काममे ला सकें कि "आप भी तो करते हैं", तो क्या गैरकानूनी व्यापार भारतीयोतक ही सीमित है? इसके अलावा, यह दु:ख और आश्चर्यकी बात है कि केपके कानूनी पेशेवरोके नेताने अपनी व्यवस्थाके समर्थनमें एक ऐसी दलील पेश करके, जिसका उस विषयपर

कोई असर नही पडता, कानूनकी परम्पराओकी अवहेलना की है, क्योकि रविवारको गैरकानूनी व्यापार करने और भारतीय व्यापारियोको किसी एक यूरोपीय भाषाका ज्ञान रखनेके बीच क्या सम्भव सम्बन्ध हो सकता है? परवानेके अर्जदारके लिए किसी यूरोपीय भाषाका ज्ञान आवश्यक करके वे रविवासरीय व्यापारको कैसे रोकेंगे? माननीय सज्जन आगे कहते हैं :

> **भारतीयोंके सम्बन्धमें एक कठिनाई और है। वे अक्सर अपने परिवारोंके साथ निकलते हैं और सारा परिवार व्यापार करता है। अगर व्यापारी थक जाता है तो उसकी पत्नी कुछ देर काम चलाती है; और जब वह थकती है तो बच्चे दूकान देखते हैं। उन्हें मालूम होगा कि यूरोपीय लोगोंको दूसरे ही ढंगसे रहना पड़ता है। उन्हें अपने बच्चोंको दिनके बहुत बड़े हिस्सेके लिए स्कूलोंमें भेजना पड़ता है, इसलिए वे उन लोगोंके साथ ठीक तरहसे होड़ नहीं कर सकते जिनपर ये दायित्व नहीं हैं।**

हमे यह कहनेमे कोई सकोच नही कि वक्तव्य देते समय उक्त माननीय सज्जन भारतीयोको छोडकर और लोगोकी बात सोच रहे थे; क्योकि जब हम यह कहते है कि ऐसे भारतीय बहुत ही कम है, जिनकी पत्नियाँ बिक्रीके काममे उनकी मदद करती है तो हम जानकारीके साथ कहते है। हाँ, ज्यादा गरीब दूकानदारोके बच्चे ऐसा भले ही करते हो; इससे इनकार करनेके लिए हम तैयार नहीं है। परन्तु भारतीय बच्चोकी शिक्षाके प्रति ईर्ष्या-भाव ही इसका ज्यादातर कारण हो सकता है, और कुछ नही। भारतीयोकी शिक्षाके मार्गमे हर तरहकी बाधा डालना और फिर यह कहना कि माता-पिता अपने बच्चोको पढ़ाते नही, न्यायसंगत नही है। क्या यह असमानता — अगर वह यही हो तो — भारतीय दूकानदारसे यूरोपीय भाषा जाननेकी अपेक्षा करके दूर की जायेगी?

यह कही ज्यादा अच्छा और गौरवपूर्ण होता, अगर श्री सैम्सनने कोई समझौता कराया होता और भारतीयोकी भावनाके प्रति कुछ खयाल दिखाया होता। विक्रेता-परवाना अधिनियमका सिद्धान्त ऐसा है, जिसे दक्षिण आफ्रिकाकी वर्तमान परिस्थितियोमें सब सही विचार करनेवाले लोग मजूर करेगे। महान्यायवादीका सारा तर्क, जहाँतक वह सगत है, बताता है कि सब दूकानदारोका हिसाब-किताब अंग्रेजीमें रखा जाना चाहिए। अगर यह बात है तो उपधारामें इसे उसी तरहसे कहना चाहिए। इससे सारी आलोचना व्यर्थ हो जायेगी; और विधेयकके उपबन्धोपर अमल करानेमे कानून-विभागको बहुत मदद मिलेगी, क्योकि तब उन लोगोमें से अधिकतर, जिनपर कि विधेयकका असर पड़नेकी सम्भावना है, उन उपबन्धोको स्वीकार कर लेगे।

यहाँ सरसरी तौरपर हम अपने पाठकोका ध्यान एक विचित्र प्रासगिक जानकारीकी ओर भी खीचना चाहते है जो श्री सैम्सनने, शायद अनजाने, सरकारके रुखके सम्बन्धमे दे दी है। उन्होने कहा .

> **हालाँकि यिडिश[1] भाषाको प्रवासियोंके निमित्त एक यूरोपीय भाषाके रूपमें स्वीकार किया गया है, वह उस रूपमें उस हिसाब-किताबपर लागू नहीं होती जो किसी यूरोपीय भाषामें रखा जाना है।**

१. यहूदियोंकी एक प्राचीन जर्मन-बोली, जिसमें अनेक यूरोपीय भाषाओंके शब्द मिले हुए हैं।

स्पष्ट है कि सरकार जरूरत पड़नेपर किसी कानूनको कार्यान्वित करानेके लिए किसी भाषाको यूरोपीय बना सकती है और दूसरे कानूनको कार्यान्वित करानेके लिए उसे गैर-यूरोपीय भी ठहरा सकती है।

उपर्युक्त लेख लिखनेके बाद महान्यायवादीके साथ मुलाकातकी पूरी रिपोर्ट प्राप्त हुई। उससे मालूम होता है कि किसी यूरोपीय भाषाके ज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाली आपत्तिजनक उपधारा वापसे ले ली जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८-३-१९०५

३२१. केपके वकील

केपका विधिवत् स्थापित वकील-मण्डल (इनकारपोरेटेड लॉ सोसाइटी) एक विधेयक पास कराना चाहता है, जिसके द्वारा उसका इरादा केप-स्थित सर्वोच्च न्यायालयके वकील-मण्डल और अन्य छोटी अदालतोके वकील-मण्डलोमे रंगदार वकीलोको प्रवेश पानेसे रोकनेका है। ब्रिटिश साम्राज्यके किसी भी देशमे ऐसे कानूनका उपक्रम किया गया हो, यह हम नही जानते। अबतक केपको दक्षिण आफ्रिकी उपनिवेशोमे सबसे उदार और रग-भेदसे सर्वाधिक मुक्त होनेकी प्रतिष्ठा प्राप्त रही है। जिस उपनिवेशकी परम्पराएँ ऐसी रही हो, उसमे ऐसे लोगोके एक समुदायका होना, जिन्हे समाजमे सबसे बुद्धिशाली माना जाता है, और जो खराबसे-खराब किस्मके वर्ग-भेद कानूनको प्रोत्साहित करना चाहते है, एक उल्लेखनीय बात है, क्योकि इस प्रकारकी कार्रवाईका कोई औचित्य दिखलाई नही पड़ता। हम प्रस्तावित विधेयकको लन्दनके इन्स ऑफ कोर्ट्स और इनकारपोरेटेड लॉ सोसाइटीकी भी नजरोमे लाना चाहते है। हम जानना चाहेगे कि इस नितान्त गैरमामूली प्रस्तावके बारेमे उनका कहना क्या है। अबतक यह माना जाता रहा है कि किसी एक इन्स ऑफ कोर्टकी परीक्षा पास करके निकले हुए बैरिस्टरके लिए सारा ब्रिटिश साम्राज्य बैरिस्टरी करनेके लिए खुला है। क्या अब यूनियन जैक फहरानेवाला केप उपनिवेश इन्सके बनाये हुए नियमोको किनारे रख देगा और अगर किन्ही बैरिस्टरोकी चमड़ी काली हो तो उन्हे बैरिस्टरी न करने देगा?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८-३-१९०५

३२२. पत्र : दादाभाई नौरोजीको[1]

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
२० मार्च, १९०५

श्री दादाभाई नौरोजी
२२, केनिंगटन रोड
लदन
इग्लैंड

प्रियवर,

भारतीयोके प्रति सारे दक्षिण आफ्रिकामे प्रतिगामी नीति बरती जा रही है। मै आपका ध्यान *इंडियन ओपिनियनके* हालके अकोकी ओर खीचना चाहता हूँ। उनमें आप पायेंगे कि केपमें एक सामान्य विक्रेता-परवाना विधेयक (जनरल डीलर्स लाइसेंसेज बिल) लागू करनेकी कोशिश की जा रही है। इस विधेयकसे केपमे बसे हुए ब्रिटिश भारतीयोको जबरदस्त नुकसान होनेकी सभावना है। इसी प्रकार नेटाल *गवर्नमेंट गज़टमें* एक शस्त्र-विधेयक छपा है, जिससे गैरजरूरी तौरपर ब्रिटिश भारतीयोकी तौहीन होती है। फ्राइहीड नामके जिलेमें, जो अभी-अभी नेटालमे शामिल किया गया है, ट्रान्सवाल जैसा एशियाई-विरोधी कानून लगाया गया है और वहाँके नगर-निगम विधेयकमे भी अनेक धाराएँ बहुत ही आपत्तिजनक हैं। ऑरेंज रिवर कालोनीमें उपनियम बनाकर भारतीयोपर एकके बाद एक निर्योग्यताएँ लादी जा रही है और मै आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि इग्लैंडकी लोकसभा (हाउस ऑफ कामन्स) में ट्रान्सवाल कानून और नेटाल कानूनके सम्बन्धमे तो बहुत-कुछ किया गया है, किन्तु कभी ऑरेंज रिवर कालोनीके बारेमें वहाँ एक प्रश्न भी नही पूछा गया, ऐसा मेरा खयाल है। इसलिए मै आशा करता हूँ कि यह सवाल भी उठाया जायेगा। *इंडियन ओपिनियनका* ताजा अक कई बातोके साथ-साथ नेटाल नगर-निगम विधेयकपर भी प्रकाश डालता है। पत्रमे उल्लिखित अन्य तथ्योपर अगले अकमें ब्यौरेवार लिखा जायेगा।

आपका विश्वासपात्र,
मो० क० गांधी

मूल अग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० २२६७) से।

१. दादाभाई नौराजीने इस पत्रकी प्रति भारत-मन्त्री और उपनिवेश-सचिवको भेजी थी। यह पत्र १४-४-१९०५को *इंडियाम* भी छपा था।

३२३. ऑरेंज रिवर कालोनी और एशियाई

हमने एकाधिक बार ऑरेंज रिवर कालोनीकी उग्र एशियाई-विरोधी नीतिकी ओर पाठकोका ध्यान आकर्षित किया है। इस तरहकी नीतिमे भूतपूर्व बोअर सरकार वर्तमान सरकारके नजदीकतक नही पहुँची थी। वर्तमान सरकार प्रचलित रगभेदपर सम्राट्के नामपर अपनी स्वीकृतिकी मुहर लगा रही है। श्री चेम्बरलेनके इस वादेकी पूर्ति की, कि ऑरेंज रिवर कालोनीके एशियाई-विरोधी कानूनोको ब्रिटिश विचारोके अनुरूप सशोधित कर दिया जायेगा, हमारी अबतककी प्रतीक्षा निष्फल हुई है। वे सशोधित तो जरूर किये जा रहे है, परन्तु अबतक हमे यह जानना बाकी है कि जिस तरीकेसे उनमे फेरफार किया जा रहा है वह उन परम्पराओके अनुरूप है, जो सदा "ब्रिटिश" शब्दके साथ सलग्न रही है। सबसे ताजा उदाहरण इसी माहकी १० तारीखके ऑरेंज रिवर कालोनीके *गवर्नमेंट गज़टमें* उपलब्ध है। ओडेडाल्सरस्ट नामक गाँवके लिए बने नियमोमे, जिनपर परम श्रेष्ठ लेफ्टिनेट गवर्नर और कार्य-समितिकी मजूरी मिल चुकी है, वतनी लोगोके बारेमे कुछ उपधाराएँ है। उनका सम्बन्ध उनके बस्तियोमे रहने, उनके काफिर-बियर बनाने और बेचने, बस्तियोमे नाचके जलसे करने तथा उनमे मेहमानोंको रखने, कुत्ते पालने आदिसे है। अब, नियमोमे जिस "वतनी" शब्दका प्रयोग किया गया है उसका अर्थ यह लगाया जायेगा कि उसमे दक्षिण आफ्रिकाकी किसी भी जन-जातिके सोलह वर्षकी प्रत्यक्ष अथवा अनुमानित आयुके स्त्री-पुरुष सम्मिलित है, *और उसमें सब रंगदार लोग, और वे सब लोग भी जो कानून या प्रथाके अनुसार रंगदार कहे जाते है, या जिनके साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है—भले ही वे किसी भी प्रजाति या राष्ट्रके क्यों न हों—सम्मिलित है।* वे नियम इन सबपर लागू माने जायेंगे। इसलिए बिलकुल साफ शब्दोमे, उस गाँवकी "नगरपालिका" को "वतनी" शब्दमे ब्रिटिश भारतीयो और अन्य "रगदार" लोगोको शामिल करनेकी अनुमति दे दी गई है। यदि ऑरेंज रिवर कालोनीकी विधान-परिषदमे ऐसी व्याख्या और नियम स्वीकृत किये गये तो वे ब्रिटेन-स्थित सरकारके निषेधाधिकारके विषय बन सकेगे, परंन्तु, क्योकि उन्हे एक ग्राम-निकाय स्वीकार कर रहा है और वही "वतनी" शब्दकी नाजायज व्याख्या करना पसन्द करता है, इसलिए ब्रिटेन-स्थित सरकारसे परामर्श किया ही नही जायेगा, और नरम तबीयतकी स्थानिक सरकारको तो उपर्युक्त तरीकेके व्यापक प्रतिबन्धोका अनुमोदन करनेमे कोई पसोपेश है ही नही। साफ तो यह है कि उस सरकारका इस बातसे कोई वास्ता ही नही कि ऐसे नियम सम्राट्की भारतीय प्रजाकी भावनाओको ठेस पहुँचाते है, या नही। इन नियमोको हम विस्तारके साथ अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं। इनसे जो कलक व्यक्त होता है उसकी ओर हम इग्लैडके उन लोकसेवकोका ध्यान आकर्षित करते है, जो न्याय और औचित्यकी लोकविश्रुत भावनाओके धनी है।

[अग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५-३-१९०५

३२४. नेटालकी भारतीय-विरोधी प्रवृत्ति

फरवरी २८के नेटाल *गवर्नमेंट गज़टमें* बन्दूकोके उपयोगका नियमन करनेवाला एक विधेयक प्रकाशित हुआ है। उसका खण्ड ४ वतनियो और एशियाइयो द्वारा बन्दूकोके उपयोगसे सबध रखता है। अन्यत्र हम सब धाराएँ प्रकाशित कर रहे हैं। जाहिर है कि विधेयकके निर्माताओने लगभग सहज वृत्तिसे एशियाइयोको वतनियोके साथ मिला दिया है और इस मनोवृत्तिका ही हमने सदा दृढ़ता और आदरके साथ विरोध किया है। एक वर्ग और दूसरे वर्गके बीच भेद किया गया है, इसलिए एशियाइयोंको तबतक न्याय प्राप्त नही हो सकता, जबतक कि उन्हे वतनियोसे अलग न माना जाये। वतनियोका प्रश्न दक्षिण आफ्रिकाका बहुत बड़ा प्रश्न है। उनकी जनसख्या बहुत बड़ी है। उनकी सभ्यता एशियाई या यूरोपीय सभ्यतासे बिलकुल भिन्न है। वे इस भूमिके ही अपत्य हैं, इसलिए उन्हे अच्छा व्यवहार पानेका अधिकार है। परन्तु वे जो-कुछ भी हैं उसके ही कारण, कदाचित्, प्रतिबन्धात्मक प्रकारके किसी कानूनकी जरूरत है। इसलिए, वह एशियाइयोपर कभी लागू नही हो सकता। बन्दूकोके इस मामलेमे एशियाइयोको जो वतनी लोगोके साथ जोड दिया गया है, वह बहुत ही अनुचित है। बन्दूके रखनेके सम्बन्धमें विधेयक द्वारा वतनी लोगोपर जो प्रतिबन्ध लगाये गये है, वैसे कोई प्रतिबन्ध ब्रिटिश भारतीयो-पर लगानेकी जरूरत नही है। प्रबल गोरे वतनी लोगोको शस्त्र-सज्जित होनेसे रोक कर प्रबल बने रह सकते है। परन्तु क्या ब्रिटिश भारतीयोको इस प्रकार रोकनेमे न्यायका जरा-सा भी अश है? सभी जानते हैं कि जो ब्रिटिश भारतीय इस उपनिवेशमे बसे हैं वे लडाकू नही है। वे अत्यन्त सीधे-सादे हैं। फिर उन्हे वतनियोके ही वर्गमे रखकर उनका अपमान क्यो किया जाये? क्या नेटालमें आनेवाला कोई अपरिचित व्यक्ति इस प्रकारके कानूनको देखकर यह निष्कर्ष नही निकालेगा कि ब्रिटिश भारतीयोका समाज बहुत तकलीफदेह होगा? ऐसे प्रसंग आते हैं जब कि कोने-किनारेमे रहनेवाले ब्रिटिश भारतीयोको बन्दूक या रिवॉल्वरकी जरूरत हो। अगर यह विधेयक कानूनमे परिणत हो गया तो उन्हे साधारण अधिकारियोके पास नही, बल्कि वतनी मामलोके सचिवके पास, जिसका ब्रिटिश भारतीयोके साथ कोई सम्बन्ध नही है, रिवॉल्वर या बन्दूक रखनेकी इजाजतकी याचना करनेके लिए जाना होगा — मानो, भारतीयोके बन्दूक रखनेके बारेमे मजिस्ट्रेट लोग अपने विवेकका उपयोग करनेके अयोग्य हो। हमे लगता है कि क्या इस दुराग्रही तरीकेसे भारतीय-विरोधी पूर्वग्रहोका पोषण करके सरकार ब्रिटिश भारतीयोको गैरजरूरी तौरपर संतप्त नही कर रही है? हमें आशा है कि जब विधेयक नेटालकी ससदके सामने आयेगा, उसमे संशोधन कर दिया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५-३-१९०५

३२५. फुटकर मिनिटोंका मूल्य

किसी कामको शुरू करनेसे पहले उसको करनेके सोच-विचारमें ही कितना समय बीत जाता है। इस प्रकारका समय फुटकर मिनिट समझा जाता है। हम समयके इन टुकड़ोको कोई परवाह किये बिना छीज जाने देते हैं। नगण्य समझे जानेवाले इन छुट-पुट मिनिटोका जोड़ लगानेपर वह जीवनका बड़ा भाग हो जाता है। और इनका सही उपयोग न करना आयुष्यको व्यर्थ खो देनेके बराबर है।

हममे से प्रत्येक व्यक्ति अपने शिक्षण, सुधार और प्रगतिके सम्बन्धमे कम या ज्यादा चर्चा करता रहता है। खाली समयका सबसे बढ़िया उपयोग क्या किया जाये, हम इसके लिए आयोजन करते हैं। परन्तु जब छुट-पुट समयमे अवकाशके थोड़े-बहुत मिनिट मिलते हैं तब स्त्रियाँ और पुरुष — उनमे भी विशेष रूपसे स्त्रियाँ — उनका खयाल मनसे उतार कर उन्हे खो देते हैं। जब समय मिल जायेगा तब हम क्या-क्या करेंगे, इसके हवाई किले हम बनाते रहते है। समय तो पाव घंटेका, आधे घटेका अथवा थोडे मिनटोका ही मिलता है। उस समय हम कहेगे कि कुछ नही, अभी काफी समय नही है। इस प्रकार सुवर्ण अवसर बीत जाता है और हम स्वप्न ही देखते रहते है।

जिसे दस पौंडकी आवश्यकता है, ऐसा व्यक्ति रोज मिलनेवाले चन्द शिलिंगोकी परवाह न करे तो उसे हम कैसा मूर्ख बतायेंगे; और फिर भी हम उसके समान ही आचरण करते हैं। समय नही मिलता, इसके लिए मनमें दुःखित होते है और उन छुट-पुट शिलिंगोके समान, जिनका जोड़ एकाध बैंक-नोटके बराबर हो सकता है, हम छुट-पुट मिनटोको, जिनको जोड़नेसे दिन बन सकते है, आलसी बनकर खोते रहते हैं।

एक गौरांग नवयुवती महिला ऐसे मिनटोका नित्य प्रति नियमपूर्वक उपयोग करनेसे इटालियन भाषा सीखनेमें कामयाब हो गई थी। एव एक अन्य महिला इस प्रकारके फुरसतके समयमे दान-धर्मके लिए कढ़ाईका काम करके वर्ष-भरमे आश्चर्यजनक बड़ी रकम पैदा कर सकी थी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५-३-१९०५

३२६. स्फूर्ति प्राप्त करनेका उत्तम साधन — निद्रा

यदि कोई मनुष्य थक गया हो और अपना काम करते-रहनेमे समर्थ न हो तो इसका उपाय यह है कि वह सो जाये। और सम्भव हो तो एक सप्ताहतक भी सोता रहे। खोई हुई शक्तिको — विशेषत मस्तिष्ककी शक्तिको — पुन. प्राप्त करनेके लिए यह सबसे अच्छा साधन है, क्योकि नीदमे मस्तिष्क पूर्ण विश्रामका अनुभव करता है और श्रम करनेसे मस्तिष्कके जो अणु खर्च हुए हो वे इस अवस्थामे रक्तसे वापस मिल सकते है। जिस प्रकार एक शानदार स्टीमरके चक्रका एक-एक घुमाव उसके बॉइलरकी भट्टीमे सुलगते इधनका परिणाम है, उसी प्रकार मस्तिष्कमे उत्पन्न प्रत्येक विचार उसके अन्दरके अणुओके व्ययका परिणाम है। मस्तिष्ककी खर्च हो जानेवाली वस्तु केवल रक्तके पौष्टिक पदार्थमे से मिल सकती है। और रक्त, हमने जो अन्न खाया है, उससे बनता है। मस्तिष्ककी रचना ही इस प्रकारकी है कि वह खोये हुए अणुओको विश्राम अथवा नीदकी शान्त स्थिरताके द्वारा ही पुन प्राप्त कर सकता है। नशीली वस्तु मस्तिष्कको कुछ भी पोषण नही पहुँचा सकती। वह केवल मस्तिष्कको अपने अणुओका अधिक खर्च करनेके लिए बाध्य करती है। परिणामस्वरूप अन्तमे थककर — जिस प्रकार भूख-प्यासके मारे मृत्युके सन्निकट पहुँचे हुए व्यक्तिके सम्मुख उत्तम प्रकारका खाद्य अथवा पेय धर देनेपर भी वह गलेके नीचे नही उतर पाता उसी प्रकार — मस्तिष्क अपने लिए आवश्यक आहार प्राप्त करनेमें सर्वथा असमर्थ हो जाता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–३–१९०५

३२७. पत्र : दादाभाई नौरोजीको

२१–२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक व ऍडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
मार्च २५, १९०५

माननीय दादाभाई नौरोजी
२२, केनिंगटन रोड
लदन, एस० ई०

प्रिय श्री दादाभाई,

साउथ आफ्रिकन बुलेटिनके बारेमे आपके २० जनवरीके पत्रका उत्तर इससे पहले नही दे सका। फिलहाल उस पत्रको पैसेकी कोई मदद कर सकना बहुत मुश्किल है; क्योकि यहाँ स्थानिक लड़ाई चलानेमें लगभग सब चुक गया है। फिर भी यदि आप पत्रको मददके योग्य मानते है तो, मुझे लगता है, १० पौं० उसको दे सकना सभव हो जायेगा।

आपका विश्वासपात्र,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० २२६८) से।

३२८. दुधारी गश्ती-चिट्ठी

नेटाल उपनिवेशकी कानूनकी किताबमे एक कानून[1], सन् १८९७ का अधिनियम सख्या २८ है, जिसका मशा उन भारतीय प्रवासियोको सरक्षण देना है जो गिरमिटिया भारतीयोपर लागू कायदोकी सीमामे नही आते। जब वह पास किया गया था तब भारतीय समाजने कहा था कि यह एक ऐसा कानून है जिसका उपयोग उत्पीडनके साधनके रूपमे किया जा सकता है। उसका उद्देश्य, जो आवेदन करे, उनको यह प्रमाणपत्र देना है कि प्रमाणपत्र-प्राप्त व्यक्ति गिरमिटिया भारतीय नही है; ताकि उसे गिरमिटिया होने और अपने मालिकको छोड़नेके सन्देहमें गिरफ्तार न किया जाये। बहुत सभव है कि गरीब फेरीवाले और ऐसे दूसरे भारतीय वास्तवमें ऐसा प्रमाणपत्र लेकर सताये जानेसे रक्षा पा सके। किन्तु उसका प्रभाव नि.सन्देह बहुत कष्टप्रद और ईर्ष्या-द्वेषजनक हुआ है; क्योकि यद्यपि अधिनियम केवल अनुमतिसूचक है, किन्तु वह इस तरह बरता गया है मानो बन्धनकारी हो; और अनेक भारतीय नजरबन्द किये गये है और उनको अधिनियमके अन्तर्गत पास पेश करने या यह सिद्ध करनेका आदेश दिया गया है कि वे गिरमिटिया नही हैं।

उपनिवेश-सचिवके दफ्तरसे नेटालके न्यायाधीशोके नाम जारी की गई तत्सम्बन्धी एक गश्ती-चिट्ठीके कारण इस अधिनियममे एक और उलझन जुड़ गई है। प्रमुख उपसचिव श्री सी० बर्ड न्यायाधीशोंको इस प्रकार लिखते हैं:

> **मुझे यह निवेदन करना है कि आप सन् १८९७ के अधिनियम संख्या २८ के अन्तर्गत प्रवासी-संरक्षकको पासके लिए प्रार्थनापत्र भेजते समय साथमें प्रार्थीका अधिवास-प्रमाणपत्र अथवा इस आशयका वक्तव्य भी भेजें कि प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया जा चुका है।**

मंशा बिलकुल साफ है। इसका मशा है, जो भारतीय प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमका उल्लंघन करके उपनिवेशमे आ गये है, उन्हे उपर्युक्त अधिनियमके अन्तर्गत सरक्षकसे पास प्राप्त करने और इस तरह प्रवासी अधिनियमकी अवज्ञा करनेसे रोकना। किन्तु हमे जो खबरे मिली है उनके अनुसार इस गश्ती चिट्ठीसे बडा अनर्थ हुआ है। इसके द्वारा कुछ अपराधियोको ढूँढ निकालनेके लिए एक समूचे समाजको दण्ड दिया जाता है। इससे गरीव लोगोपर दो शिलिंग छ. पेसका निरर्थक जुर्माना भी लदता है। सन् १८९७ के अधिनियम २८ के अन्तर्गत जिन्हे पासकी जरूरत हो उन्हे सबसे पहले अधिवास-प्रमाणपत्र लेना पडता है और इसके लिए २ शि० ६ पे० शुल्क देना जरूरी है। और जब ऐसा प्रमाणपत्र मिल जाये तव सरक्षकसे पास लेनेकी एक शिलिंग फीस और देनी पडती है।

अब वास्तवमें ऐसी झझट-भरी पद्धति नितान्त अनावश्यक है। सन् १८९७ के अधिनियम २८ के अन्तर्गत प्राप्त पाससे प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत कार्यवाही किये जानेसे कतई छुटकारा नही मिलता, और यदि अधिवास-प्रमाणपत्र आवश्यक है तो नि सन्देह सबसे अच्छी बात यह है कि सन् १८९७ का अधिनियम २८ रद कर दिया जाये, ताकि जो भारतीय उपनिवेशमें हैं और प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत उपनिवेशमे रहनेके अधिकारी है उन्हे यदि सताये जानेका डर हो तो, वे अधिवास-प्रमाणपत्र ले ले। उनसे श्री बर्ड द्वारा निर्धारित दुहरी प्रक्रियामें से गुजरनेकी उम्मीद करना उचित और न्यायपूर्ण नही है और हमे इसमे बहुत

1. देखिए, खण्ड २, पृष्ठ ३८६-८७।

सन्देह है कि क्या जैसी गश्ती चिट्ठीकी ओर हमने ध्यान आकर्षित किया है वैसी गश्ती चिट्ठियो द्वारा कानूनके अमलमे बाधा डालना उचित है। सन् १८९७ के अधिनियम २८ मे ऐसा कुछ नही है जिससे अधिवास-प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना जरूरी हो। हमे इसमे कोई सन्देह नही है कि यदि कोई भारतीय आग्रह करे तो वह प्रार्थनापत्र देकर कानूनकी रूसे सरक्षकको पास देनेके लिए मजबूर कर सकता है। तब फिर अधिवास-प्रमाणपत्र पेश करनेकी बात जरूरी तौरपर रखना अधिनियममे एक गैरजरूरी चीज जोड़ना है। इसलिए हम विश्वास करते हैं कि या तो उक्त गश्ती चिट्ठी वापस ले ली जायेगी या सरकार सन् १८९७ के अधिनियम २८ को जल्दी ही रद कर देगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–४–१९०५

३२९. भारतीयोंके प्रति सहानुभूति

जोहानिसबर्ग काग्रिगेशनल चर्चके मुखपत्र, *आउटलुक*के वर्तमान अकमें "भारतीयोके प्रति न्याय" शीर्षकसे एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसका साराश हम अन्यत्र उद्धृत करते है। हमारा सहयोगी अनुभव करता है कि समाजके रगदार हिस्सेको प्रभावित करनेवाले कुछ वर्तमान विचारोके प्रति विरोध प्रकट करनेका समय आ गया है। वह कबूल करता है कि ब्रिटिश भारतीयोका जिस सडे ढगसे विरोध किया जाता है वह घृणास्पद है। उसने विभिन्न स्थानोमे एशियाई-विरोधी कार्यवाहियोके विवरणोको "उनके अन्यायपूर्ण रुख और गलत वक्तव्योके कारण तिरस्कारजनित ग्लानिसे," पढा है। वह स्वीकार करता है कि कुछ लोग वास्तवमें दक्षिण आफ्रिकामे एशियाइयोकी उपस्थितिको सार्वजनिक हितकी बाधक मानते हैं। वह आपत्तिका कारण बतलाते समय कडाईके साथ ईमानदारी बरतनेकी हिमायत करता है, और यह सही ही है। जब आपत्ति वास्तवमे रग-विद्वेषपर आधारित हो तब भारतीयोके विरुद्ध निराधार आरोप लगाना ठीक नही है। इसी प्रकार जब वे असुविधाजनक प्रतिस्पर्धी मात्र हो तब उनके रूपमे "सार्वजनिक स्वास्थ्यके लिए खतरा," खोज निकालना ठीक नही होगा। दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय स्वय अपनी ही कमी पूरी करते हैं। नेटालकी समृद्धि बहुत कुछ गिरमिटिया मजदूरोपर ही निर्भर है। और, जैसा कि *आउटलुक* कहता है, उन धन्धोमे, जिन्हे उन्होने खास तौरसे अपना ही बना लिया है, भारतीयोके बिना काम नही चल सकता। शराबसे परहेज करने और कानूनका आदर करनेके कारण वे उत्तम नागरिक बन गये हैं। हम यह कहनेका साहस करते है कि यदि इस उपमहाद्वीपके लोग एशियाई प्रश्नपर तटस्थ होकर विचार करे तो अत्यन्त कठिन परिस्थितियोमे भी भारतीय समाजके व्यवहारकी वे प्रशसा ही करेगे। ऐसे त्रासकारी कानूनोके होते हुए भी, जिनकी ओर हम हालमे ध्यान आकृष्ट कर चुके हैं, ब्रिटिश न्याय-भावनामे उनका विश्वास अडिग बना है। अन्तमे उनके साथ न्याय होगा ही। दक्षिण आफ्रिकाके सुसस्कृत यूरोपीयोमे भारतीयोके मित्रोकी सख्या लगातार बढ़ रही है। इसलिए एक दिन आयेगा जब उनकी पुकार सुनी जायेगी। इस सर्वथा सामयिक लेखके लिए हम अपने सहयोगीको धन्यवाद देते हैं। जहाँ-कही भी *आउटलुक* पढ़ा जाता है, उसकी प्रत्यक्ष ईमानदारी, उदारता और बुद्धिमत्ताका आदर होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–४–१९०५

३३०. तुच्छ शंका

पॉचेफस्ट्रूम पहरेदार सघ (पॉचेफस्ट्रूम विजिलैंस असोसिएशन) के मुखपत्रने इन स्तम्भोंमें प्रकाशित एक हालके लेखका हवाला देकर हमे इज्जत बख्शी है। लेख उन तथाकथित गन्दी अवस्थाओके बारेमे था जिनमे मार्केट स्क्वेयरमे[1] भारतीय रहते बताये जाते हैं। परन्तु, साथ ही, पत्रने डॉक्टर डिक्सनकी रिपोर्टकी वैधतापर शका भी की है। वह रिपोर्ट हमने यह बताते हुए प्रकाशित की थी कि पॉचेफस्ट्रूमके भारतीय समाजपर गन्दगीका वैसा कोई आरोप न्यायपूर्वक नही लगाया जा सकता। हम बिलकुल नही जानते कि हमारा सहयोगी तथ्योका इस तरह बार-बार मजाक क्यो उड़ाता है, प्रतिष्ठित वक्तव्योका गलत अर्थ क्यो लगाता है या उनकी उपेक्षा क्यो करता है। ऐसा मालूम होता है कि, अगर राजा कोई गलत काम नही कर सकता, तो भारतीय कोई सही काम नही कर सकता। जिनपर विपरीत मत हावी हो गया हो उन्हे समझानेके लिए कोई कितना भी प्रमाण पेश करे, सब व्यर्थ होगा। हमे तो ऐसी नुक्ताचीनी करनेवाली टीका-टिप्पणियोका उत्तर देना मरे घोडेको चाबुक लगाने जैसा मालूम होता है। हमारे ऐसा करनेका कारण केवल एक यह है कि पूर्वग्रहोसे रहित पाठकोको विचार करनेकी सामग्री मिले और हम जिस विषयकी पैरवी कर रहे हैं उसके औचित्य और अनौचित्यका वे ज्यादा न्यायपूर्वक निर्णय कर सके। डॉ० डिक्सनने भारतीय समाजके अनुरोधपर गत अक्टूबर मासके आरम्भमे, जब कि भारतीय-विरोधी भावनाएँ अपनी उचित सीमाओको भग करने लगी थी, यह जॉच की थी। उन्हे अधिकार दिया गया था कि वे अपने ही समयमे अपनी सुविधाके अनुसार और जैसा भी तरीका ठीक समझे उस तरीकेसे यह जाँच करे। इसलिए सम्बद्ध भारतीयोकी ओरसे उनके कार्यपर कोई सम्भव नियन्त्रण नही था। और न भारतीयोको उनके आनेके बारेमे कोई सूचना ही दी जाती थी। इसके अलावा, जिला-सर्जन (डॉ० डिक्सन) ने इस तरहकी जाँच भी की, जैसा कि उनकी रिपोर्टसे स्पष्ट है, जिससे कि रातको बहुत भीड होनेका आरोप झूठा सिद्ध हो जाता है। परन्तु, मालूम होता है कि *बजटसे* हमारे वाद-विवादका पूरा मुद्दा ही चूक गया है। हमने दावा किया था कि डॉ० फ्रीएलकी रिपोर्टकी तहमे स्पष्ट राजनीतिक प्रयोजन है। उसके बावजूद वे सिद्ध नही कर सके कि भारतीयोने नगरपालिकाके नियमोको भग किया है। उन्होने कहा कि वे ऐसे ढगसे रहते हैं, जो मेरे अपने मानदण्डपर सन्तोषजनक नही उतरता। वह मानदण्ड क्या है, डॉक्टर फ्रीएलके अलावा कोई नही जानता। और अबतक *बजटने* हमारी बातोका उत्तर नही दिया है। इसी बीच, हमे मालूम हुआ है कि सरकारने काफी स्पष्टतासे सकेत कर दिया है कि नगरपालिका जो-कुछ करना चाहेगी वह अवैध होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १-४-१९०५

१. देखिए "एक राजनीतिक डाक्टरी रिपोर्ट", ११-३-१९०५।

३३१. सत्यका प्राच्य आदर्श

लॉर्ड कर्जनने दीक्षान्त-अभिभाषणमे घोषणा की है कि "सत्यका उच्चतम आदर्श बहुत हदतक पाश्चात्य कल्पना है", और "नि सन्देह, पाश्चात्य आचार-सहिताओमे सत्यको, प्राच्य देशोसे पहले ही, ऊँचा स्थान प्राप्त हो चुका था। प्राच्य देशोंमें वैसा पीछे जाकर हुआ, यहाँ तो सदासे कुटिलता और कूटनीतिक चतुरताका ही अधिक आदर होता आया है।" हम वाइसराय महोदयसे सिफारिश करते हैं कि वे सत्य और असत्यके विषयमें, प्राच्य शास्त्रो, महाकाव्यों, धार्मिक ग्रन्थो तथा नीति-सम्बन्धी अन्य रचनाओकी निम्न शिक्षाओपर ध्यान देनेकी कृपा करे; और यदि वे सत्यका तथा इस देशके लोगोका कुछ भी आदर करते हो—और हमे सन्देह नही कि वे करते है—तो, भारतके वाइसराय, कलकत्ता विश्वविद्यालयके कुलपति और एक अंग्रेज सज्जनकी हैसियतसे, उनके सम्मानका तकाजा है कि वे अपने निराधार और आक्रामक आक्षेपोको वापस ले ले।

दुर्लंघ्य मार्गोंको लांघो; क्रोधको अक्रोधसे, और असत्यको सत्यसे जीतो।— ***सामवेद,*** **अरण्यगान, अर्कपर्व।**

सत्य ही जीतता है, झूठ नहीं। सत्यका ही वह मार्ग है जिसपर देव अर्थात् विद्वान लोग चलते हैं। इसी मार्ग पर चलकर, अपनी सब कामनाओंको पूर्ण कर चुकनेवाले ऋषि, उस ब्रह्ममें लीन होकर मुक्त हो जाते हैं जो सत्यका परम निधान है।[1]— ***मुण्डकोपनिषद्,*** **मुण्डक ३, खण्ड १, वाक्य ६।**

जब शिष्य यज्ञोपवीत धारण करके वेद पढ़ना शुरू करता है तब आचार्य उसे पहला उपदेश यह देता है:

सत्य बोलो। धर्मपर चलो। . . . सत्यसे कभी विचलित न हो।[2]— ***तैत्तिरीयोपनिषद्,*** **शिक्षावल्ली, ग्यारहवाँ अनुवाक, वाक्य १।**

हिन्दू धर्मके अनुसार, सत्य ब्रह्मका तत्त्व है:

ब्रह्म सनातन सत्य है, अप्रमेय ज्ञान है।[3]— ***तैत्तिरीयोपनिषद्,*** **ब्रह्मवल्ली, प्रथम अनुवाक, वाक्य १।**

वाणी सत्यमें ही प्रतिष्ठित होती है। यह सब सत्यमें प्रतिष्ठित है। इसीलिए विद्वान् सत्यको ही सबसे ऊँचा बताते हैं।[4]— ***महानारायणोपनिषद्,*** **२७, १।**

सत्यसे बढ़कर कोई धर्म नहीं और झूठसे बढ़कर कोई पाप नहीं। वस्तुतः सत्य ही धर्मका मूल है।[5]— ***महाभारत*****।**

१. सत्यमेव जयते नानृतम् । सत्येन पन्था विततो देवयानः । येनाक्रमन्त्यृषयोह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥

२. सत्यं वद । धर्मं चर । . . . . सत्यान्मा प्रमदितव्यम् ॥

३. सत्य ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ।

४. वाक् सत्ये प्रतिष्ठिता । सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ।

५. न हि सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम् ।

युवराज रामचन्द्रको दरबारके एक पुरोहितने सलाह दी थी कि वे अपने पिताको दिये चौदह वर्षतक वनमे रहनेके वचनसे मुकर जाये। किन्तु उसे उत्तर देते हुए अमरकीर्ति रामचन्द्र कहते हैं:

सत्य और दया, राजधर्मके अविस्मरणीय अंग है। इसलिए राज्यशासन तत्त्वतः सत्य ही है। सत्य ही संसारका आधार है। ऋषि और देव दोनोंने सत्यका आदर किया है। जो मनुष्य इस लोकमें सत्य बोलता है वह श्रेष्ठ और अमर पदको प्राप्त करता है। मिथ्यावादी मनुष्यसे लोग, भय और आतंकके मारे, ऐसे परे भागते है जैसे कि साँपसे। संसारमें धर्मका मुख्य तत्त्व सत्य है। सत्य प्रत्येक वस्तुका आधार कहा जाता है। सत्य संसारमें सर्वोपरि है। धर्मका आधार सदा सत्य ही होता है। सब वस्तुओका आधार सत्य ही है। कोई भी वस्तु इससे ऊँची नहीं। मै अपने वचनका पालन क्यों न करूँ अपने पिताके सत्य आदेशपर सचाईसे क्यों न चलूँ? मै लोभ-लालच, बहकावे या अज्ञानके वशमें होकर या अपनी दृष्टि कलुषित हो जानेके कारण सत्यकी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करूँगा। मै पिताजीको दिये हुए वचनका पालन अवश्य करूँगा। मै उन्हें वनवासका वचन दे चुका हूँ। अब मै उनके आदेशका उल्लंघन करके भरतकी बात कैसे मान सकता हूँ?[1] (प्रोफेसर मैक्समूलरके अंग्रेजी अनुवादसे)। —*रामायण*।

प्रकृतिके नियमोमें ही सत्यका प्रकाश होता है। सब सद्गुण सत्यके और सब अवगुण असत्यके रूप है। भीष्मने *महाभारतमें* उनका वर्णन इस प्रकार किया है:

सत्य-परायणता, न्यायवर्तिता, आत्मसंयम, आडम्बरहीनता, क्षमा, नम्रता, सहिष्णुता, अनसूया, दाक्षिण्य, परोपकार, आत्मजय, दया और अहिंसा — ये तेरहों सत्यके रूप है। —*महाभारत*, शान्तिपर्व, अध्याय १६२, श्लोक ८ व ९।

किसी वस्तुका होना सत्य और न होना असत्य है। भीष्मने कहा है:

सत्य सनातन ब्रह्म है. . . . सब कुछ सत्यमें प्रतिष्ठित है। —*महाभारत*, शान्तिपर्व, अध्याय १६२, श्लोक ५।

1. सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम्।
तस्मात् सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः १०९।१०॥
ऋषयश्चैव देवाश्च सत्यमेव हि मेनिरे।
सत्यवादीहि लोकेऽस्मिन् परम गच्छति चाक्षयम् १०९।११॥
उद्विजन्ते यथा सर्पान्नरादनृतवादिनः।
धर्मः सत्यं परोलोके मूलं सर्वस्य चोच्यते १०९।१३॥
सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये पद्मा प्रतिष्ठिता।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परंपदम् १०९।१४॥
सोऽहं पितुर्नियोगंतु किमर्थं नानुपाल्ये।
सत्यप्रतिश्रवः सत्यं सत्येन समयीकृतम् १०९।१६॥
नैव लोभान्न मोहाद्वा न ह्यज्ञानात्तमोऽन्वितः।
सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरोः सत्यप्रतिश्रवः १०९।१७॥
कथं ह्यहं प्रतिज्ञाय वनवासमिमं गुरौ।
भरतस्य करिष्यामि वचो हित्वा गुरोर्वचः १०९।२४॥

आर्य क्षत्रियोंने बहुधा कहा है :

मेरे मुखसे असत्य कभी नहीं निकला।

अश्वमेध पर्वमें श्रीकृष्णने कहा है :

सत्य और धर्मका मुझमें नित्य निवास है।

भीष्मने सत्यका बखान करते हुए उसे उच्चतम त्याग बतलाया है और कहा है :

एक बार एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ और सत्य एक तराजूमें तोले गये। सत्य सहस्र अश्वमेध यज्ञोंसे कहीं भारी उतरा। — *महाभारत*, शान्तिपर्व, अध्याय १६२, श्लोक २६।

सत्यसे बढ़कर कुछ नहीं और सत्यको अन्य समस्त वस्तुओंसे पवित्र मानना चाहिए। — *रामायण*।

सत्य महात्माओं और प्रभुको सदा प्रिय रहा है, और जिसकी वाणी इस जीवनमें सत्यका पालन करती है वह मृत्युके पश्चात् उच्चतम लोकोंमें जाता है। जो सत्यसे घृणा करता है उससे हम इसी प्रकार परे रहते हैं जिस प्रकार साँपके विष-भरे दाँतसे। — *रामायण*।

जिन गुणोंसे मनुष्यको योग और साम्यकी प्राप्ति होती है, शान्ति और संतोष मिलता है, और अपने लक्ष्यकी पूर्तिमें सहायता मिलती है उनकी चर्चा श्रीकृष्णने इस प्रकार की है :

हे अर्जुन, निर्भयता, सत्त्व शुद्धि, ज्ञानकी प्राप्तिका निरन्तर प्रयत्न, दान, इन्द्रिय-दमन, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, अन्तःकरणकी सरलता, मन, वचन और कर्मकी अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, परनिन्दा न करना, प्राणिमात्रपर दया, लोभ-लालचका न होना, कोमलता, अनुचित कार्य करनेमें लज्जा, अचपलता, तेजस्विता, क्षमा, धीरता, शुद्धता, अद्वेष और निरभिमानता, ये गुण उस व्यक्तिमें होते हैं जो दैवी सम्पत्तिको प्राप्त कर लेता है।[1] — *भगवद्गीता*, अध्याय १६, श्लोक १–३।

वाणीके तपकी व्याख्या *भगवद्गीतामें* इस प्रकार की गई है :

किसीका चित्त दुखानेवाली बात न कहना, केवल सत्य, प्रिय और हितकारी वचन बोलना और वेद-शास्त्रोंका पढ़ना, वाणीका तप कहलाता है।[2] — अध्याय १७, श्लोक १५।

हिन्दू धर्मके अनुसार, ईश्वर सत्यका ही रूप है। देवोंके आवाहन करनेपर, जब ईश्वर उनके सन्मुख श्रीकृष्णके रूपमें प्रकट हुआ, तब उन्होंने उसकी स्तुति इस प्रकार की :

१. अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञान योग व्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ १ ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुपत्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ २ ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति, सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३ ॥

२. अनुद्वेगकरं वाक्य सत्य प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मय तप उच्यते ॥

तुम अपने वचनके सच्चे हो, लक्ष्यके सच्चे हो, तुम तिगुने सत्य हो, सत्यके तुम स्रोत हो, तुम्हारा निवास सत्यमें है, तुम सत्योंके सत्य हो, न्याय और सत्यके तुम चक्षु हो, इसलिए हे सत्यात्मा, हम आपमें आश्रय माँगते हे।——*भागवत पुराण,* स्कन्ध १२, श्लोक २६।

सर विलियम जोन्सका मत है कि *मनुस्मृतिका* रचना-काल, यदि १५८० ई० पूर्व नही, तो १२८० ई० पूर्व अवश्य है। मनुने धर्मके जो दस लक्षण बताये है उनमे कई ऐसे है जो मनकी साधना और उच्चतम सत्यकी प्राप्तिके लिए अति आवश्यक है[1]

धैर्य, क्षमा, आत्म-संयम, चोरी न करना, शुद्धि, इन्द्रिय-निग्रह, बुद्धि, ज्ञान, सत्य और अक्रोध, ये दस धर्मके लक्षण अर्थात् साधन है।[1]——*मनुस्मृति,* अध्याय ६, श्लोक ९२।

एक-और स्थानपर उनकी सक्षेपसे चर्चा इस प्रकार की गई है:

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी या छिपाव न करना), शुद्धि और इन्द्रिय-निग्रह, इन कार्योका मनुने चारो वर्णोके लिए विधान किया है।[2]——*मनुस्मृति,* अध्याय ६, श्लोक ६३।

जो लोग वाणी द्वारा वेईमानी करते है उनकी निन्दा मनुने इस प्रकार की है

सब कार्य वाणी द्वारा नियन्त्रित होते है, वाणी उनका मूल है, वाणीसे उनकी उत्पत्ति होती है; और जो मनुष्य वाणीमें ईमानदार नहीं, वह सभी कामोमें वेईमान होता है।[3]——*मनुस्मृति,* अध्याय ४, श्लोक २५६।

आर्योके धर्मग्रन्थोमें निरन्तर सत्यके आचरण और कर्त्तव्यके पालनका आदेश दिया गया है। देखिए:

जो मनुष्य सच्चा नहीं, या जो झूठ बोलकर धन कमाता है, या जो दूसरोको दुःख देनेमें सुख मानता है, वह इस संसारमें कभी सुखी नहीं हो सकता। पापसे पीड़ित होकर भी पापमें प्रवृत्त नहीं होना चाहिए; ऐसा करनेवाला पाप और पापियोका पतन शीघ्र ही प्रत्यक्ष देख लेता है। संसारमें पापाचरणका फल, गौके समान, शीघ्र प्रकट नहीं होता, परन्तु वह धीरे-धीरे पापीकी जड़तकको काट डालता है।[4]——*मनुस्मृति,* अध्याय ४, श्लोक १७०-१७२।

१. धृतिः क्षमा दमोऽस्तेय शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म-लक्षणम्॥

२. अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

३. वाच्यार्था नियता सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः।
तास्तु यः स्तेनयेद्वाच स सर्वस्तेयकृन्नरः॥

४. अधार्मिको नरो योहि यस्य चाप्यनृत धनम्।
हिंसारतश्च योनित्य नेहासौ सुखमेधते॥
न सीदन्नपि धर्मेण मनो धर्मे निवेशयेत्।
अधार्मिकाणा पापानामाशु पश्यन्विपर्ययम्॥
नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति॥

सत्य बोले, परन्तु प्रिय सत्य बोले। अप्रिय सत्य न बोले। साथ ही प्रिय झूठ भी न बोले। यही सनातन धर्म है।[1] —*मनुस्मृति*, अध्याय ४, श्लोक १३८।

मनुष्यको सदा सत्य, न्याय, प्रशंसनीय आचरण और पवित्रतामें सुख मानना चाहिए।[2] —अध्याय ४, श्लोक १७५।

चुगलखोर या झूठी गवाही देनेवालेका अन्न न खाये।[3] —अध्याय ४, श्लोक २१४।

जो योग्य लोगोंके सामने अपनी प्रशंसा सत्यके विपरीत करता है, वह संसारमें अत्यन्त नीच और पापी होता है। वह चोरोंका चोर और मनकी चोरी करनेवाला होता है।[4] —अध्याय ४, श्लोक २५५।

जो भोजन केवल जीवित रहनेके लिए करता है, और जो भाषण केवल सत्य बोलनेके लिए करता है, वह सब आपत्तियोंपर विजय पा सकता है। —*हितोपदेश*।

वाणीके पाप चार है:

१. झूठ बोलना, २. परनिन्दा करना, ३. गाली देना और, ४. निष्प्रयोजन बकवाद करना। —बौद्ध धर्मकी एक शिक्षा।

सच और झूठकी टक्कर ऐसी है जैसी कि पत्थर और मिट्टीके बर्तनकी। पत्थर मिट्टीके बर्तनपर गिरेगा तो बर्तन टूट जायेगा। दोनों हालतोंमें नुकसान मिट्टीके बर्तनका ही होगा। —सिक्ख धर्मकी सीख।

साँच बरोबर तप नहीं झूठ बरोबर पाप।
जाके हिरदे साँच है ताके हिरदे आप॥ —कबीर।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–४–१९०५

१. सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥

२. सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा।

३. पिशुनानृतिनोश्चान्नं क्रतुविक्रयिणस्तथा।

४. योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा सत्सु भाषते।
सपापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मापहारकः॥

३३२. केपके भारतीय भाइयोंका स्तुत्य कार्य

नये विधेयकके सम्बन्धमें सभा और शिष्टमण्डल

हम अपने केप-वासी भारतीय भाइयोको मुबारकबादी देते है कि वे नये बननेवाले कानूनके बारेमें ठीक समयपर सतर्क हो गये और अपने कर्त्तव्यका पालन करनेमें लग गये। केपके *गवर्नमेंट गज़टमें* व्यापारियोके परवाना-अधिनियमका मसविदा प्रकाशित होते ही हमारे नेता उसका मतलब समझ गये, और उन्होने केप टाउनमे एक विराट सभा[1] करके उसमें उसके सम्बन्धमें अपनी भावना प्रकट की एवं प्रस्ताव पास किये। (इसका विवरण[2] हमने छापा है)। वे इस मामलेकी गम्भीरतासे वाकिफ थे, इसलिए उन्होने इतना करके ही सन्तोष नही माना। उन्होने एक शिष्टमण्डल बनाकर केप कालोनीके माननीय महान्यायवादीसे मुलाकात भी की। और उस अवसरपर वे प्रस्ताव उनके सामने पेश किये जो सभामें स्वीकार किये गये थे तथा उनपर उनसे चर्चा की।

उन्होंने शिष्टमंडल बनानेमे भी चतुराईसे काम लिया, अर्थात् उसमे दो स्थानीय सुप्रतिष्ठित ससद-सदस्य[3] सम्मिलत किये और उनको नेतृत्व सौपा। महान्यायवादी श्री सेम्सनने कई बातोका स्पष्टीकरण किया जिनमे से कुछ स्पष्टीकरण उचित थे। अन्य उत्तर कुल मिलाकर सन्तोषप्रद थे, ऐसा नही कहा जा सकता, और उनपर विचार करनेसे स्पष्ट पता चलता है कि जब यह कानून ससदमे पेश किया जाये तब भारतीय नेताओको सजग रहनेकी पूरी आवश्यकता है। मुख्यत: विचार भाषाके सम्बन्धमे हुआ। कानूनमे एक धारा ऐसी है कि व्यापारिक परवानेका आवेदन देनेवाले व्यक्तिको किसी भी एक यूरोपीय भाषाका जानकार होना चाहिए। इस सम्बन्धमे श्री सेम्सनने साफ-साफ बाते कही, और कुछ बातोपर ऐसे उत्तर दिये मानो वे चतुराईसे टाल देनेकी कोशिश कर रहे हो। उन्होने एक सन्तोषप्रद बात यह कही कि वे भाषा-सम्बन्धी धारामे स्पष्ट कर देंगे कि केवल बहीखाता किसी यूरोपीय भाषामें रखा जाये। आवेदकको वह भाषा आती है या नही, इस बातपर ध्यान देनेकी जरूरत नही है। बहीखाता यूरोपीय भाषामे रखनेकी बात भारतीयोको मजूर है, फिर भी महान्यायवादीने इस सम्बन्धमें बहुत टीका की। यद्यपि टीका तर्कपुष्ट नही थी फिर भी उसपर से हमारे भारतीय भाइयोंको बहुत सावधान हो जाना चाहिए। मजिस्ट्रेटकी मर्जीके सम्बन्धमे जो टीका की गई उसपरसे चौकन्ने रहनेकी आवश्यकता है। आजकल यदि कोई बात मजिस्ट्रेटकी मर्जीपर छोड़ दी जाये तो समझना चाहिए कि वह गड़बड़मे पड़ गई। सारे दक्षिण आफ्रिकामें हम देख रहे हैं कि ऐसी मर्जीका परिणाम एक ही होता है और वह सदैव भारतीयोके विरुद्ध। श्री सेम्सनने यह बताना चाहा कि भारतीयोको अधिक डरनेका कारण नही है, परन्तु ऐसा करनेमें वह मर्यादासे बाहर निकल गये, इसलिए अन्तिम उत्तर देते समय श्री पॉवेलने पोल खोल दी कि वे लोगोंको खुश करनेके लिए ही ऐसी गोल-मोल बाते कह रहे है। उनका उत्तर एक मजाक-सा लगता है।

१. ब्रिटिश भारतीय सभाके तत्त्वावधानमें केप टाउनके प्रमुख भारतीय निवासियोंकी एक सभा मेसॉनिक हॉल, केप टाउनमें हुई थी।

२. देखिए, *इंडियन ओपिनियन*, १८-३-१९०५ और २५-३-१९०५।

३. सर विलियन थॉर्न, एम०एल०ए० और माननीय एडमंड पॉवेल, एम०एल०सी०।

"मजिस्ट्रेटको अर्जी भी अंग्रेजीमे देनेकी जरूरत नही है; यद्यपि वह उसकी समझमें आ सके, ऐसी होनी चाहिए।" इसका क्या मतलब है?

कानून बनानेके प्रयोजनके सम्बन्धमे बोलते हुए श्री सेम्सनने कई तरहकी बातें कही। इससे प्रतीत होता है कि खुद इन साहबके मनमे भी वहम है और वे भारतीयोके प्रति अच्छी भावना नही रखते। ऐसा नही लगता कि उन्होने गम्भीरतासे बात की हो, और जो उदाहरण उन्होने बताये वे हमारे मतसे तो असगत थे। एक बार उन्होने कहा कि यह कानून विशेष रूपसे भारतीयोके लिए नही बनाया गया है; और दूसरी बार कहा कि व्यापार-सघ (चेम्बर ऑफ कॉमर्स) आदि व्यापारी-मण्डल शिकायत किया करते है और दबाव डालते है कि भारतीयोके बही-खाते बहुत बेढगे होते है, इसलिए ऐसा कानून बनानेकी जरूरत पड़ रही है। भारतीयोके बही-खातोसे अदालतमे आवश्यक जानकारी प्राप्त करनेमें बडी असुविधा होती है, ऐसा उनका अपना अनुभव है, इत्यादि। इस प्रकार यूरोपीय व्यापारियोका रक्षण करनेके लिए यह कानून बन रहा है। स्पष्ट ही ये स्पष्टीकरण पूरा विचार किये बिना ही दिये गये प्रतीत होते है। फिर वे स्वय अपनी न्यायप्रियता बताने लगे। और भारतीयोके बारेमे अपनी निजी जानकारी दिखाने लगे। इसी सिलसिलेमें उन्होने रविवारको व्यापार होनेका उल्लेख किया; और पूछा कि क्या भारतीयोका पूराका पूरा परिवार रविवारको व्यापार करता हो, ऐसा उदाहरण देखनेमें नही आता? श्री सेम्सनने बताया कि उनके पास एक पत्र आया है कि एक पूरा भारतीय कुटुम्ब, अर्थात् औरत और बच्चो सहित, रविवारको गैरकानूनी व्यापार करता है। इन लोगोके साथ गोरोकी स्पर्धा नही हो सकती। भारतीय और यूनानी इस बातमे बुरे है और कुछ लोगोके कारण सबको दड भुगतना पडता है, इत्यादि, इत्यादि। श्री गुलने[1] तुरन्त उनकी बात काटी और कहा कि चिट्ठी लिखनेवाला ईर्ष्यालु होगा और यह विवरण गलत है। फिर भी अगर कोई कसूर करता है तो कायदेके अनुसार उसे सजा क्यो नही देते?

सार रूपमे उपर्युक्त बातें हुईं। अब हमारे मनमे यह प्रश्न पैदा होता है कि क्या अंग्रेजी या यूरोपीय भाषा जान लेनेसे यह भ्रष्टता खत्म हो जायेगी? महान्यायवादी एक होशियार वकील है। फिर भी ऐसी दलीलबाजी करनेमे वे झिझके नही, इसलिए हमें आश्चर्य और खेद होता है। मनुष्यकी भाषाका उसके चालचलनसे क्या सम्बन्ध है? भारतीय व्यापारी उक्त भाषामे बहीखाते लिखवा ले क्या तब शिकायत मिट जायेगी?

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–४–१९०५

१. श्री जी०एम०एच० गुल, केप टाऊनके एक प्रमुख भारतीय व्यापारी और शिष्टमण्डलके एक सदस्य।

३३३. प्लेगसे तबाही

प्लेगने देशमे तबाही फैलाई है। इस वर्ष इसका जोर वहुत ज्यादा है। सरकारने हाथ ढीले कर दिये हैं। लोग कायर हो गये हैं। पजाबमे तो इतना जोर है कि व्यापारको वहुत धक्का लगा है और पहले अच्छी तरह रहनेवाले लोगोको रोग थोडा होता था, परन्तु अव तो वे भी उससे मुक्त नही रहे। फिर भी, यह भयकर रोग अवतक देशी लोगोमे ही फैला है। बहुतसे लोगोकी धारणा यह है कि हमारे पाप वहुत अधिक वढ गये है, अत प्लेग ईश्वरके प्रकोपके रूपमे आया है। इसपर *टाइम्स ऑफ इंडियाके* एक लेखकने यह सुझाया है कि सरकारको भारतमे एक ऐसा दिन मनाना चाहिए जिस दिन सारा देश ईश्वरसे इस रोगके अन्तके लिए स्तुति करे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–४–१९०५

३३४. प्रार्थनापत्र : नेटाल विधान-सभाको[1]

अप्रैल ७, १९०५

आपके प्रार्थी अमुक दो विधेयकोके विषयमे इस माननीय सदनकी सेवामे उपस्थित होनेकी धृष्टता कर रहे है। ये विधेयक आपके विचारके लिए इसी सत्रमे पेश किये जायेंगे। इनमे से एक है — "नगर-निगम सम्बन्धी कानूनको सशोधित तथा सघटित करनेवाला" विधेयक और दूसरा है — "बारूदी हथियारोके उपयोगको नियन्त्रित करनेवाला" विधेयक। प्रार्थियोका निवेदन निम्नलिखित है :

आपके प्रार्थियोका खयाल है कि उपर्युक्त प्रथम विधेयकमें "रंगदार व्यक्ति" शब्दोकी जो परिभाषा दी गई है वह नितान्त असन्तोषजनक है। उसमे इनका अर्थ है अन्योके साथ-साथ कोई भी "कुली या लशकर", जिन्हे कि स्वय परिभाषाकी आवश्यकता है। पुलिस सिपाहीके लिए यह समझना अत्यन्त कठिन होगा कि कौन कुली है, कौन लशकर, क्योकि ये शब्द किसी विशेष प्रजातिके द्योतक नही है, बल्कि इनका प्रयोग अकुशल श्रमिको तथा नाविकोके लिए होता है।

आपके प्रार्थियोके विचारमे "असभ्य प्रजातियाँ" शब्दोकी परिभाषा भी असन्तोपजनक है और ये शब्द स्वय उन लोगोके लिए दु खदायी है जिन्हे कि इनमे शामिल करना अभीष्ट है। इसके अतिरिक्त, आपके प्रार्थी यह समझनेमे भी असमर्थ हैं कि गिरमिटिया भारतीयोके बच्चे "असभ्य प्रजातियोके" वर्गमे क्यो रखे जाये। उनमे बहुतसे अपने परिश्रम द्वारा शिक्षा और सस्कृतिमें बहुत ऊँचे उठ गये है और उपनिवेशमे कर्मचारियो या स्वतन्त्र व्यक्तियोंके रूपमें महत्त्वपूर्ण स्थानोपर स्थित हैं।

१. अब्दुल कादिर तथा अन्य ब्रिटिश भारतीयोंकी ओरसे इस प्रार्थनापत्रकी एक नकल वादको लॉर्ड एलगिनको भेजे गये अगस्त १५, १९०६ के प्रार्थनापत्रके साथ संलग्न की गई थी और १८–८–१९०६ के *इंडियन ओपिनियनमें* छपी थी।

धारा (क्लॉज) २२ की उपधारा (ग) के अन्तर्गत उन लोगोको नागरिकताका अधिकार प्राप्त करनेके अयोग्य ठहराया गया है जिन्हे कि १८९६ के अधिनियम ८ के अनुसार संसदीय मताधिकार उपलब्ध नही है। १८९६ का अधिनियम ८ उन लोगोको मताधिकारसे वंचित करता है जो कि ऐसे देशोके निवासी है, जिनमें अवतक संसदीय मताधिकारपर आधारित प्रातिनिधिक सस्थाएँ नही है।

आपके प्रार्थी निवेदन करते है कि संसदीय मताधिकार तथा नगरपालिका मताधिकारमें कोई सम्बन्ध नही है, और यदि तर्कके लिए यह सच मान भी लिया जाये कि भारतमें भारतीयोको संसदीय मताधिकार उपलब्ध नही है, तो भी यह निश्चयपूर्वक सिद्ध किया जा सकता है कि उन्हे काफी हदतक नगरपालिकाके मताधिकार उपलब्ध है। आपके प्रार्थियोमे से कुछ लोग भारतमें स्वयं नगरपालिकाओं या परिषदोके सदस्य रह चुके है। उपनिवेशमे बसे ब्रिटिश भारतीयो का भूतकालीन इतिहास भी उपर्युक्त प्रकारकी निर्योग्यताको उचित नही ठहराता। इसलिए आपके प्रार्थी नम्र निवेदन करते हैं कि यदि प्रस्तुत धाराको आपका अनुमोदन मिल गया तो यह ब्रिटिश भारतीयोका अनावश्यक अपमान होगा।

उपनिवेशकी नगर-परिषदोको "रंगदार व्यक्तियो" द्वारा पैदल पटरियो तथा रिक्शोके उपयोगके सम्बन्धमें उपनियम बनानेका जो अधिकार दिया गया है उसमें — जहाँतक ये शब्द भारतीयोंको शामिल करते है — आपके प्रार्थियोको कोई औचित्य नजर नही आया है। इस प्रकार इस सम्बन्धमें "रंगदार व्यक्ति" की परिभाषा अपना प्रभाव डालती है और खयाल किया जाता है कि इससे बहुत-सी शरारतें पैदा होगी।

आपके प्रार्थी उक्त विधेयककी धारा २०० का भी नम्रतापूर्वक विरोध करते है। उसमें परिषदको वतनियों या "असभ्य प्रजातियो" के लोगोके पंजीकरणकी एक प्रणाली स्थापित करनेके लिए उपनियम बनानेका अधिकार दिया गया है। आपके प्रार्थियोके विचारमें उन भारतीयोंका, जो "असभ्य प्रजाति" शब्दोमे शामिल किये गये है, पजीकरण करना सर्वथा अनुचित है, क्योकि भारतीयोको मेहनतसे मुँह मोड़ते हुए कभी नही पाया गया है। प्रस्तुत धारासे आगे यह भी मालूम पड़ता है कि सुसंस्कृत भारतीयोके भी पंजीकरणकी आवश्यकता होगी।

दूसरे विधेयकके सम्बन्धमें आपके प्रार्थी निवेदन करते है कि इससे उपनिवेशवासी ब्रिटिश भारतीयोको, बड़ा दु:ख हुआ है। सं० ४४ से ४७ तकके खण्ड वतनियो तथा एशियाइयो द्वारा बारूदी हथियारोके उपयोगसे सम्बद्ध है। आपके प्रार्थियोके विचारसे भारतीयोका वतनियोके साथ मिला दिया जाना उचित नही है। भारतीय अत्यन्त सीधे-सादे उपनिवेशी है और उन्होंने कभी भी किसीको कष्ट नही दिया। इसलिए आपके प्रार्थी सादर निवेदन करते है कि भारतीयो और वतनियोको साथ मिलाना तथा भारतीयोको इस बातके लिए मजबूर करना, कि वे बारूदी हथियारोके लिए, जिनकी कि आत्मरक्षाके लिए आवश्यकता पड़ सकती है, अनुमतिपत्र प्राप्त करनेसे पहले वतनी विभागसे पूछ-ताछ करे, नितान्त अपमानजनक होगा।

अन्तमे आपके प्रार्थियोकी प्रार्थना है कि उपर्युक्त विधेयकोंको इस प्रकार सशोधित कर दिया जाये कि उनसे शिकायतकी सभी बाते दूर हो जायें।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया, १४–९–१९०६

३३५. ट्रान्सवालके भारतीयोंपर श्री लिटिलटनका वक्तव्य

स्थानिक पत्रोमे प्रकाशित एक तारसे मालूम होता है कि श्री लिटिलटनने एक प्रश्नके उत्तरमें कहा है, *मोटन* बनाम *सरकारके* परीक्षात्मक मुकदमेके फैसलेसे[1] ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिमे सुधार हो गया है। पूर्ण और उचित आदरके साथ हमारा खयाल यह है कि यह वक्तव्य तथ्योके अनुरूप नही है। और फिर, अगर स्थितिमे कोई राहत मिली भी है तो उसके लिए उनको या सरकारको जरा भी श्रेय क्यो मिलना चाहिए, क्योकि वह तो सरकारके विरोधके बावजूद प्राप्त की गई है? क्या यह सच नही है कि सर्वोच्च न्यायालयको परवानेके लिए जो आवेदन दिया गया था उसका सरकारने विरोध किया था? सरकारकी ओरसे तीन अग्रगण्य वकील पैरवी कर रहे थे और वास्तवमे तो उसने सारे भारतीय समाजको यह परीक्षात्मक मुकदमा लड़नेके लिए मजबूर कर दिया, क्योकि यह मुकदमा तब दायर किया गया था जब कि पुराने प्रामाणिक व्यापारियोको भी इस बिनापर व्यापार करनेका परवाना देनेसे इनकार कर दिया गया कि युद्धके ऐन पहले उनके पास परवाने नही थे। इस बातको काफी नही माना गया था कि वे युद्धके पूर्व बस्तियोके बाहर व्यापार करते थे।

वस्तुत: हमे युद्ध-पूर्वके दिनोकी जबरदस्त याद दिलाई गई है। जिस प्रकारके परीक्षात्मक मुकदमेका उल्लेख श्री लिटिलटनने किया है, ठीक उसी प्रकारका मुकदमा[2] उस समय भी चला था। तब ब्रिटिश सरकारने मुकदमा लड़नेमे भारतीयोकी मदद की थी। भारतीयोके स्वर-में-स्वर मिलाकर उसने यह दावा किया था कि १८८५ के कानून ३ के मातहत बस्तियोके बाहर भारतीयोको व्यापार करनेकी मनाही नही थी। परन्तु ट्रान्सवालके ब्रिटिश हाथोमे चले जानेके बाद एक और ही तरहकी तान छेडी गई। मोटनके परीक्षात्मक मुकदमेमे उसी ब्रिटिश सरकारने अपने वकीलोको भारतीय तर्कका विरोध करनेका निर्देश किया। इस सबकी जानकारी रखते हुए भी श्री लिटिलटन परीक्षात्मक मुकदमेमे सर्वोच्च न्यायालयके फैसलेका श्रेय स्वय ले तो यह एक अजीब बात है। परन्तु, जैसा कि हमने कहा है, भारतीयोकी स्थिति बोअर शासनकालमे जैसी थी, उससे किसी भी तरह सुधरी नही। हाँ, वह परीक्षात्मक मुकदमेके पहले जैसी थी, उससे बेहतर जरूर हो गई है। परन्तु, ट्रान्सवालमे ब्रिटिश सरकारकी स्थापनाके बाद सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयके अन्तर्गत भारतीय *परवाना-शुल्क देनेके बाद* जहाँ चाहे वहाँ व्यापार कर सकते है। युद्धके पूर्व, ब्रिटिश सरकारके सरक्षणमे, भारतीय *कोई परवाना-शुल्क दिये बिना ही* जहाँ चाहते, व्यापार कर सकते थे। यह सच है कि भारतीय परवाना-शुल्क पेश करते थे, परन्तु बोअर सरकार उसे लेनेसे इनकार कर देती थी। भारतीय उसकी जानकारीमे और उसे सूचित करके बस्तियोके बाहर व्यापार किया करते थे और वह ब्रिटिश विरोधके कारण उनपर मुकदमे चलानेमे असमर्थ थी। इस तरह, जहाँतक व्यापारका सम्बन्ध है, ब्रिटिश भारतीयोकी स्थिति आजकी अपेक्षा युद्धके पूर्व बेहतर थी। दूसरी बातोमे भी स्थिति काफी बुरी है, और वह युद्धके पहलेकी स्थितिसे किसी कदर भी कम निराशाजनक नही है।

१. फैसला यह था कि भारतीय व्यापारी हबीब मोटनको बस्तीके बाहर व्यापार करनेका परवाना देनेसे इनकार नहीं किया जा सकता।

२. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १, ८, १०।

जहाँतक इस देशमे भारतीयोके प्रवासका सम्बन्ध है, वह अनुचित रूपसे दु खद है। युद्धके पहले हर-किसी भारतीयको ट्रान्सवालमे प्रवेशकी स्वतन्त्रता थी। आज किसी प्रामाणिक भारतीय शरणार्थीको भी, जो यह साबित करनेकी स्थितिमे है कि वह पहले ट्रान्सवालका अधिवासी रह चुका है और युद्धके पूर्व इस उपनिवेशमे बसनेकी अनुमतिके मूल्यके रूपमे ३ पौंडकी रकम अदा कर चुका है, उपनिवेशमे प्रवेशकी अनुमति प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। और कोई ऐसा ब्रिटिश भारतीय, जो शरणार्थी नही है — फिर भले ही उसकी योग्यता या दर्जा कुछ भी क्यो न हो — सम्भवत यहाँ प्रवेश नही कर सकता। ऐसे व्यक्तिकी अर्जीपर सरकार विचार ही नही करती। और भारतीयोके प्रवासपर पूरा तो नही, किन्तु यह सारा प्रतिबन्ध खुले और उचित तरीकोसे नही, बल्कि एक राजनीतिक अध्यादेशको अमलमे लाकर लगाया गया है। पहले-पहल यह अध्यादेश ट्रान्सवालमें उन लोगोका प्रवेश रोकनेके लिए जारी किया गया था, जिनपर यह शक था कि इनका इरादा बगावत करनेका है। अब भारतीयोको देशसे बाहर रखनेके उद्देश्यसे इसका दुरुपयोग किया जा रहा है। पुराने शासन-कालमे भारतीयोकी धार्मिक भावनाओको शायद ही कभी छेडा गया हो, परन्तु अब यद्यपि यह सच है कि सरकारके खिलाफ कुछ कहा नही जा सकता, फिर भी इस विषयमे हकीकत यह है कि आज पॉचेफ-स्ट्रूममे एक मसजिदके निर्माणके खिलाफ आन्दोलन चल रहा है, और यह मसजिद शहरके किसी मुख्य स्थानमे नही, जैसा कि लोग बताते है, बल्कि एक गलीमे बनेगी। हम भारतीयोके कष्टोको और भी गिना सकते है और बता सकते है कि कैसे, ब्रिटिश सरकारके व्यवहार और ब्रिटिश मन्त्रियोके भाषणोसे भारतीयोके दिलोमे उठी हुई तमाम आशाओके विपरीत, भारतीयोके सामने जीवन और मरणका सघर्ष उपस्थित हो गया है। ऐसी स्थितिमे श्री लिटिलटनका यह कहना कि ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोकी स्थिति सुधर गई है, यदि कमसे-कम कहा जाये तो, अत्यन्त भ्रमोत्पादक है। ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोके लिए यह कहना कि वे फिरसे ब्रिटिश प्रजाकी हैसियतसे उपलब्ध सब अधिकारोका भोग करनेवाले ब्रिटिश प्रजाजन बन गये है, तबतक सम्भव नही होगा, जबतक कि १८८५ का कानून ३ और ब्रिटिश भारतीयोसे सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे नियम कानूनकी पुस्तक (स्टैटचूट बुक) से निकाल नही दिये जाते और न्याय-सम्बन्धी ब्रिटिश विचारोके अधिक अनुरूप नही बनाये जाते। आज तो भारतीय सौतेला लड़का है, जो अपने माता-पितासे सरक्षण चाहता है और उसके लिए लालायित है, परन्तु वह सरक्षण उसे मिलता नही।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-४-१९०५

३३६. ट्रान्सवालके भारतीयोंके बारेमें महत्त्वपूर्ण फैसला

सभी यह जानते हैं कि ट्रान्सवालमें अनेक भारतीय अपने नामसे जमीन नहीं रख सकते, इसलिए गोरोंके नामपर रखते हैं। श्री सैयद इस्माइल नामके एक व्यक्ति जोहानिसबर्गके निवासी हैं। उनके नामपर कुछ जमीन थी जो उन्होंने ल्यूकस नामक अपने गोरे मित्र और जमीन मालिकके नाम कर रखी थी। यह जमीन जोहानिसबर्गके नगर-निगमने जब बस्ती (लोकेशन) आदि ली तब ले ली और हरजानेके रूपमें २,००० पौंड ल्यूकसके नामपर देनेका प्रस्ताव हुआ। ल्यूकस लड़ाईके समयमें गुजर गया। उसकी जायदाद दिवालियापनमें गई। चूँकि उसके लेनदारोंको पूरा चुकाया जा सके, इतना पैसा ल्यूकसकी मिलकियतमें नहीं था, इस कारण उसके न्यासियों (ट्रस्टियों) ने ल्यूकसके नामपर दर्ज सैयद इस्माइलकी जमीनके पैसोंपर हक जमाया। इसपर सैयद इस्माइलने उच्च न्यायालयमें मुकदमा दायर किया कि उक्त २,००० पौंड उसे मिलने चाहिए। इसमें ल्यूकसके लेनदारोंने दो सवाल उठाये। अर्थात्, सैयद इस्माइल जो पैसे माँगते हैं वे पैसे ल्यूकसके नामपर हैं और जिस जमीनपर सैयद इस्माइल हक बताते हैं, उस जमीनपर, अचल सम्पत्ति होनेके कारण, सैयद इस्माइलको मालिकीका हक नहीं है। सैयद इस्माइलकी ओरसे यह सफाई दी गई कि वह जमीन निन्यानवे वर्षके पट्टेपर होनेके कारण अचल सम्पत्ति नहीं कही जा सकती, इसलिए भारतीयोंके उसकी मालिकी भोगनेपर रोक नहीं होनी चाहिए। और यदि यह सफाई उचित न मानी जाये तो जिस कानूनसे भारतीयोंको अचल सम्पत्तिपर स्वामित्व नहीं दिया जाता वह कानून ऐसा नहीं कहता कि गोरे तथा दूसरे लोग भारतीयोंकी तरफसे अचल सम्पत्ति अपने नामपर नहीं रख सकते। माननीय जजने फैसला सैयद इस्माइलके पक्षमें देते हुए बताया कि निन्यानवे वर्षके पट्टेपर होनेके कारण उसे अचल[1] सम्पत्ति नहीं कहना चाहिए। इसलिए ऐसी जमीन भारतीयोंके नामपर नहीं चढ़ सकती। किन्तु सैयद इस्माइलकी दूसरी सफाई मंजूर करते हुए कहा कि भारतीयोंके लाभके लिए गोरे जमीन रख सकते हैं, और यदि गोरे धोखा देना चाहे तो ऐसी हालतमें भारतीय मालिकके हकके रक्षणका कर्त्तव्य कानून सँभालेगा। यह निर्णय बड़ा सन्तोषप्रद है, और यदि गोरेके नाम भारतीय लोग जमीन लेनेमें डरते हों तो उन्हें अब डरनेकी जरूरत नहीं है। फिर भी यह याद रखना चाहिए कि गोरा विश्वासपात्र व्यक्ति होना चाहिए और उससे साफ-साफ दस्तावेज लेने चाहिए। इस निर्णयसे हमको सरकारसे स्वत्वोंके विषयमें मोर्चा लेते हुए बल मिलेगा, ऐसा निश्चित दीखता है। हमें खबर मिली है कि उच्च न्यायालयके निर्णयके विरुद्ध ल्यूकसकी मिलकियतके न्यासीने अपील दायर की है। देखें, इसका क्या परिणाम होता है!

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-४-१९०५

१. यहाँ मूलमें भूल हो गई है "अचल" के बजाय "चल" शब्द चाहिए।

३३७. दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके बारेमें लॉर्ड कर्जनका भाषण

रायटरके तारसे मालूम होता है कि भारतकी विधानसभामें लॉर्ड कर्जनने हमारे पक्षमें जोरदार भाषण किया है। इस भाषणमें उन्होंने कहा है कि जबतक भारतीयोंके स्वत्वोंकी सम्पूर्ण रक्षा करनेका सबूत दक्षिण आफ्रिकाके राज्य नही देते तबतक उनको भारतकी ओरसे सहायता नही मिलेगी। भारतीयोका रक्षण करनेका काम भारत सरकारका है और उस कामको वह अंजाम देती रहेगी।

ये वचन हमें आनन्द देनेवाले हैं। इनका प्रभाव अच्छा ही पडेगा। यह भाषण बताता है कि यहाँपर जो परिश्रम हम कर रहे हैं वह व्यर्थ नही जा रहा है। हमारे लिए मुनासिब है कि हम और भी अधिक परिश्रम करते रहे और जब-जब प्रसंग आये, ढाये जानेवाले कष्टोंके बारेमे शिकायत करे। हमें यकीन है कि ऐक्यसे और मिलकर मेहनत करनेसे हम जीतेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-४-१९०५

३३८. पत्र: दादाभाई नौरोजीको[1]

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
१० अप्रैल, १९०५

माननीय श्री दादाभाई नौरोजी
२२, केनिंगटन रोड
लंदन

प्रियवर,

कहते हैं, श्री लिटिलटनने यह कहा है कि ट्रान्सवालके परीक्षात्मक मुकदमेके निर्णयके बाद ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थिति युद्धके पहलेकी स्थितिसे अच्छी हो गई है। *इंडियन ओपिनियनके* ८ अप्रैलके अंकके पहले सम्पादकीय लेखमें इस वक्तव्यका उत्तर दिया गया है। साधारणतः स्थिति तबसे अच्छी नही, खराब हुई है। परीक्षात्मक मुकदमेसे जो सुविधा भारतीयोंको मिली है, यह है कि वे युद्धके पहलेके दिनोकी हालतमे पहुँच गये है। मगर इसका श्रेय भी सरकारको शायद ही मिल सकता है, क्योंकि उन्होंने सर्वोच्च न्यायालयके सामने भारतीयोके मतका बडे जोरसे विरोध किया था।

१. इस पत्रको दादाभाईने नीचेका अंश जोड़कर भारत-मन्त्री और उपनिवेश-मन्त्रीके पास भेज दिया था: "मुझे पूरी आशा है कि आप विरोध करेंगे और सम्राट्की ब्रिटिश भारतीय प्रजाके प्रति, जो आपसे राहतकी उम्मीद करती है, न्याय करेंगे।"

नेटालमें भारतीय-विरोधी रुखवाले कितने ही विधेयक पेश किये जा रहे हैं। *इंडियन ओपिनियनमें* इनका उल्लेख है। और ऑरेंज रिवर कालोनी रंगदार प्रजापर अपना शिकंजा हमेशा कड़ा करती जा रही है। एक नगरके बाद दूसरे नगरमें ऐसे नियम लगाये जा रहे हैं जो मेरी रायमें ब्रिटिश संविधानकी दृष्टिसे अनैतिक हैं। यदि ये ही विधान-परिषदके सामने विधेयकके रूपमें पेश होते तो श्री लिटिलटनकी सहमति उन्हें कभी न मिलती।

मैं गम्भीरतापूर्वक आशा करता हूँ कि आप महामहिम सम्राटके ब्रिटिश प्रजाजनोंकी रक्षा करेंगे और उनके साथ न्याय करेंगे। भारतीय सहायताके लिए आपका ही मुँह जोहते हैं।

आपका विश्वासपात्र,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २२६९) से।

३३९. पत्र : उपनिवेश-सचिवको

जोहानिसबर्ग
अप्रैल ११, १९०५

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
ब्लूमफॉटीन

महोदय,

ऑरेंज रिवर कालोनीकी विभिन्न नगरपालिकाओंके संबंधमें उनके अन्तर्गत रहनेवाले रंगदार लोगोंकी बाबत *गवर्नमेंट गज़टमें* समय-समयपर जो विनियम छपते रहते हैं उनकी ओर, और "ब्लूमफॉटीन नगरपालिकाकी कानूनी व्यवस्थाओंको संशोधित तथा परिपूर्ण करने" के अध्यादेशकी ओर मेरे संघका ध्यान आकर्षित किया गया है।

रेडर्सबर्ग शहरके विनियमोंमें मेरे संघने देखा है कि "वतनी" शब्दकी व्याख्या इस तरह की गई है कि उसमें सब रंगदार लोग शामिल हो जाते हैं। ब्रिटिश भारतीय भी इसमें अपवाद-रूप नहीं हैं। और इस शहरके, वैसे ही फ्रीड शहरके विनियमोंके अन्तर्गत भी, वहाँके रंगदार निवासियोंको नियन्त्रित करनेके नियम बनाये गये हैं। मेरे संघके विनम्र मतसे ये नियम जलालत-भरे, अन्यायपूर्ण और अपमानजनक हैं। बहुत संभव है कि उन शहरोंमें कोई भी ब्रिटिश भारतीय न रहते हों। फिर भी इस कारणसे उक्त आपत्तिजनक विनियम कम कष्टदायक नहीं हो जाते, क्योंकि यदि कोई भूला-भटका भारतीय उनमें से किसी भी शहरमें पहुँच जाये तो वह अकस्मात् अपने-आपको भयानक प्रतिबन्धोंसे जकड़ा हुआ पायेगा।

मेरे संघको यह देखकर दुःख हुआ है कि ब्लूमफॉटीन नगरपालिकाको भी एक अध्यादेश द्वारा वैसे ही अधिकार दे दिये गये हैं। मेरा संघ यह समझता है कि ऑरेंज रिवर कालोनीकी इस तरहकी रंगविरोधी प्रवृत्ति ब्रिटिश परम्पराओं तथा महारानीके मन्त्रियों द्वारा समय-समयपर की गई घोषणाओंके विरुद्ध है। मेरा संघ यह समझनेमें असमर्थ है कि ऑरेंज रिवर कालोनी क्यों इस प्रकारके कानूनों और विनियमोंको बर्दाश्त करती है।

यदि आप कृपाकर मुझे सूचित करेंगे कि क्या सरकारका इरादा इस विषयमें किसी प्रकारकी राहत देनेका है, तो मेरा संघ आपका बहुत आभारी होगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, २२-४-१९०५

३४०. श्री बार्नेटका आरोप और श्री ऐंकेटिल

भूतपूर्व शिक्षा-अधीक्षक (एजुकेशन सुपरिंटेंडेंट) श्री बार्नेटने नेटालके कुछ गिरमिटिया भारतीयोंके मालिकोंपर भारतीयोंकी झोंपड़ियोंकी हालतके सम्बन्धमें — जिन्हें उन्होंने "सूअरोंके बाड़े" कहा है — आरोप लगाया था। इस आरोपके सम्बन्धमें उपनिवेश-मन्त्रीसे सवाल पूछनेपर श्री ऐंकेटिल बधाईके पात्र हैं।

श्री मेडनने[1] उत्तर दिया है कि श्री बार्नेट द्वारा लगाया गया आरोप बहुत अतिरंजित है और भारतीय संरक्षक गिरमिटिया भारतीयोंकी सुख-सुविधाका प्रबन्ध करता है। श्री मेडनने इस आरोपपर संरक्षककी रिपोर्ट सदनके सामने पेश करनेका वादा किया। हम उपनिवेश-मन्त्रीके उत्तरको प्रत्येक दृष्टिसे असन्तोषजनक मानते हैं। आरोप अत्यन्त गम्भीर है और भली-भाँति सोच-विचार कर ऐसे सुसंस्कृत लोगोंकी सभामें लगाया गया है, जिनकी उपनिवेशमें अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण स्थिति है। उस समय श्री बार्नेट नेटालमें शिक्षाके प्रश्नपर आम भाषण कर रहे थे, और उपर्युक्त आरोप उनके भाषणका कोई प्रसंगसे पृथक्कृत अंग नहीं है। भाषण नेटालमें प्रचलित शिक्षा-प्रणालीपर एक गम्भीर आक्षेप है। ऐसे मामलेमें प्रवासी-संरक्षककी रिपोर्ट माँगना बहुत-कुछ वैसा ही है, जैसा कि किसी आदमीको अपने ही मामलेके निर्णयका काम सौंपना। हमारा दावा है कि श्री बार्नेटके आरोपमें सारेके-सारे भारतीय प्रवासी-विभागकी निन्दा शामिल है। हम यह नहीं कहते कि श्री बार्नेटका कथन सही है, परन्तु यह जरूर कहते हैं कि जिस विभागकी निन्दा की गई है उसीसे उस निन्दाके प्रतिवादमें रिपोर्ट प्राप्त करना आरोपका उत्तर देनेका तरीका नहीं है।

यह प्रश्न केवल गिरमिटिया भारतीयोंके हितोंकी जानकारी प्राप्त करनेका नहीं है, बल्कि उपनिवेशकी नेकनामीका है। हम समझते हैं कि सरकारका प्रश्नकी तहतक छानबीन न करना और जनताको पूर्णरूपसे सन्तोष न देना बहुत ही अबुद्धिमत्तापूर्ण होगा। अगर स्वतंत्र जाँचके परिणामसे किसी तरह श्री बार्नेटके आरोपका समर्थन होता है तो जितनी जल्दी यह कलंक मिटाया जाये, उपनिवेशके लिए उतना ही अच्छा है; और अगर आरोप गलत सिद्ध होता है तो, श्री बार्नेटसे, भूतपूर्व सरकारी सेवकके नाते, कैफियत माँगी जाये। इसलिए हमें आशा है कि श्री ऐंकेटिल तबतक उपनिवेश-मन्त्रीसे प्रश्न करते रहेंगे जबतक कि आवश्यक कार्रवाई न की जाये।

१. नेटालके उपनिवेश-सचिव।

यह भी देखनेकी बात है कि श्री बार्नेट ने अपना आक्रमण एक ऐसी श्रोता-मण्डलीके सामने किया था, जिसमे नेटालके भूतपूर्व प्रधानमन्त्री सर अल्बर्ट हाइम और उपनिवेशके अन्य अनेक प्रमुख व्यक्ति शामिल थे। वक्ताके व्याख्यान दे चुकनेपर सर अल्बर्ट हाइमने एक लम्बी मीमांसा की थी और उसमे हमे श्री बार्नेटके गम्भीर आरोपका खण्डन कही भी दिखलाई नही पड़ता। क्या उपनिवेश-मन्त्रीको इसमे विचारकी सामग्री प्राप्त नही होती?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५-४-१९०५

३४१. धर्मपर व्याख्यान

जोहानिसबर्गके समाचारपत्रोसे पता चलता है कि वहाँकी थियोसॉफिकल सोसाइटीने श्री गाधीको हिन्दू धर्मपर भाषण देनेके लिए आमन्त्रित किया और उसपर उन्होने मेसॉनिक टेम्पलमे चार भाषण दिये। हर बार भवन भर जाता था। अन्तिम भाषण मार्च महीनेकी २५ वी तारीखको दिया। इनमे से दो भाषणोका विवरण *स्टार*[1]-अखबारमे आ गया है। अपने अनेक पाठकोकी माँगपर हम गाधीजीसे प्राप्त चारो भाषणोका सक्षिप्त सार लेकर नीचे दे रहे है।

दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंका अपमान

थियोसॉफिकल सोसाइटीने मुझे भाषण करनेके लिए बुलाया तब मैने दो बाते सोचकर वह आमन्त्रण स्वीकार किया। मुझे दक्षिण आफ्रिकामे बसे हुए बारह बरस होने आते है। यहाँ मेरे देशवासियोपर जो तकलीफे आती है, उनकी खबर सबको है। लोग उनके रगको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते है। मै ऐसा मानता हूँ कि यह सब गलतफहमीसे होता है और यह गलतफहमी दूर करनेमे मुझसे जितनी बने, उतनी मदद करनेके हेतुसे मै दक्षिण आफ्रिकामे पडा हूँ। इसलिए मुझे लगा कि यदि मै सोसाइटीका आमन्त्रण स्वीकार करूँ तो जो मेरा कर्त्तव्य है उसमे एक हदतक मदद मिलेगी, और यदि मै आपको इन भाषणोसे भारतीयोके प्रति थोडा भी अच्छा खयाल करा सका तो अपना भाग्य धन्य समझूँगा। मुझे आपको बताना तो [हिन्दुओ][2] ही के विषयमे है, किन्तु हिन्दू और अन्य जो भारतीय है उनकी बहुत-सी रीति एक ही है। सारे भारतीयोके गुण-दोष समान है और सारे एक ही शाखासे उतरे है। फिर दूसरा कारण यह था कि थियोसॉफिकल सोसाइटीके उद्देश्योमे से एक उद्देश्य विभिन्न धर्मोका मिलान करके उनका तत्त्व खोजकर लोगोको यह बताना है कि वास्तवमे देखा जाये तो सारे धर्म ईश्वरको पहचाननेके अलग-अलग मार्ग है और कोई धर्म खराब है, ऐसा कहते हुए हिचक होनी चाहिए। मैने सोचा कि यदि मै हिन्दू धर्मके बारेमे दो बाते कहूँगा तो थोडा-बहुत यह हेतु भी सिद्ध होगा।

हिन्दू

हिन्दू वास्तवमे हिन्दुस्तानके रहनेवाले नही माने जाते। पश्चिमके विद्वान कहते है कि हिन्दू और यूरोपके अधिकाश लोग एक समय मध्य एशियामे निवास करते थे। वहाँसे अलग होकर कुछ लोग यूरोप गये, कुछ ईरान गये और कुछ हिन्दुस्तानमे पजाबके रास्तेसे पहुँचे और वहाँ

१. यह उपलब्ध नही है।

२. यहाँ मूलमें भूलसे 'हिन्दुओं' की जगह 'हिन्दियों' हो गया है।

आर्यधर्मका प्रसार हुआ। हिन्दुओकी सख्या २० करोडसे ऊपर है। उनका नाम हिन्दू इसलिए पडा कि वे सिन्धु नदीके पार बसते थे। उनकी प्राचीनतम पवित्र पुस्तके वेद है। बहुत-से श्रद्धालु हिन्दू ऐसा मानते है कि वेद ईश्वरकृत और अनादि है। पश्चिमके विद्वानोकी मान्यता है कि ईसासे २,००० वर्ष पहले वेद रचे गये। पूनाके प्रख्यात विद्वान श्री तिलकने बताया है कि वेद कमसे-कम १०,००० वर्ष पुराने है।[1] हिन्दुओकी प्रधान विशेषता है उनका सर्वव्यापक ब्रह्ममे विश्वास। पृथ्वीपर प्रत्येक व्यक्तिका लक्ष्य होना चाहिए मोक्ष प्राप्त करना, और मोक्षका अर्थ है जन्म-मरणके भयसे छूटना और ब्रह्ममे लीन हो जाना। उनकी नीतिमे मृदुता और समदृष्टि मुख्य गुण है और उनके लौकिक व्यवहारमे जाति-भेद सर्वोपरि है।

हिन्दू धर्मकी पहली कसौटी जब बुद्धदेवने जन्म लिया तब हुई। बुद्धदेव स्वय एक [राजा]के[2] पुत्र थे। उनका जन्म ईसासे ६०० वर्ष पहले हुआ बताया जाता है। उस समय हिन्दू ऊपरके दिखावेपर *मोहित हो रहे थे और ब्राह्मण स्वार्थके कारण हिन्दू धर्मकी रक्षाका अपना कर्त्तव्य भूल गये थे।* जब यह सब बुद्धकी दृष्टिमे पडा तब उन्हे अपने धर्मकी यह दशा देखकर दया आई। उन्होने ससार छोड़कर तपस्याको अपनाया। कितने ही वर्ष ईश्वर-भक्तिमे लीन रहकर व्यतीत किये। अन्तमे उन्होने हिन्दू धर्ममे सुधार सूचित किये। उनकी पवित्रताका ब्राह्मणोपर असर हुआ और बहुत हदतक यज्ञके लिए प्राणियोका वध बन्द हो गया। इस तरह बुद्धदेवने नया धर्म स्थापित किया, ऐसा नही कहा जा सकता। पर उनके बाद जो लोग आये उन्होने उसे एक अलग धर्मका रूप दिया। महान् सम्राट अशोकने बौद्ध धर्मके प्रचारके लिए भिन्न-भिन्न देशोमे लोग भेजे, और लका, चीन, ब्रह्मदेश आदि मुल्कोमे बौद्ध धर्मको फैलाया। इस समय हिन्दू धर्मकी यह खूबी प्रकट हुई कि किसीको जबरदस्ती बौद्ध नही बनाया गया। केवल वादविवाद द्वारा तर्क करके और प्रधान रूपसे अपने शुद्ध चालचलनसे प्रचारकोने लोगोके मनपर छाप डाली थी। ऐसा कह सकते है कि बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म भारतमे तो एक ही थे और आज भी दोनोके मूल तत्त्व एक ही है।

मुहम्मद पैगम्बरका जन्म

आपने देखा कि हिन्दू धर्मपर बौद्ध धर्मका असर अच्छा हुआ और उससे हिन्दू धर्मके रक्षक जागृत हुए। आजसे १,००० वर्ष पहले हिन्दू धर्म एक दूसरे सम्पर्कमें आया जो ज्यादा जोरदार था। हजरत मुहम्मद अबसे १,३०० वर्ष पहले जन्मे। उन्होने अरबस्तानमे बहुत अनाचार देखा। यहूदी धर्म तब गोते खा रहा था। ईसाई धर्म वहाँ पाँव नही धर पाता था और लोग विषयी और स्वच्छन्द हो गये थे। यह सब मुहम्मदको ठीक नही लगा। उनका मन सुलगने लगा और उन्होने ईश्वरका नाम लेकर अपने देशवासियोको होशमे लानेका निश्चय किया। उनकी लगन इतनी तीव्र थी कि आस-पासके लोगोपर उनके हार्दिक जोशकी छाप तुरन्त पड़ी और बडी तेजीसे इस्लामका प्रचार हुआ। जोश इस्लामकी जबरदस्त खूबी है। इससे कई अच्छे काम हुए और कई बार बहुत बुरे काम भी हुए। १,००० वर्ष पूर्व इस्लाम फैलानेके लिए भारतपर गजनीकी सेना चढ आई। हिन्दू मूर्तियोका खण्डन शुरू हुआ और सोमनाथतक हमलावर गये। इस तरह एक तरफसे जबरदस्ती हो चली और दूसरी तरफसे इस्लामी फकीर उसकी वास्तविक खूबी बताने लगे। जो इस्लाममें आते है वे सब बराबर है, इस बातका असर हलके वर्णके लोगोपर बहुत अच्छा पडा और लाखो हिन्दुओने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। *इससे हिन्दुओमे बड़ी खलबली मची।*

१. देखिए, *आर्कटिक होम इन दि वेदाज्।*

२. यहाँ मूलमें 'सम्राट' शब्दका प्रयोग है।

बनारसमे कबीर पैदा हुए। उन्होने सोचा कि हिन्दू विचारके अनुसार हिन्दू-मुसलमानमे भेद नही है। अगर दोनो अच्छा काम करे तो स्वर्ग प्राप्त कर सकते है। मूर्तिपूजा हिन्दू धर्मका आवश्यक तत्त्व नही है—यह सोचकर उन्होने इस्लाम और हिन्दू धर्मको एक करना शुरू किया। किन्तु उसका बहुत असर नही हुआ और वह एक अलग पथ होकर रह गया जो अभीतक देखनेमे आता है। कुछ बरसो बाद पजाबमे गुरु नानक हुए। उन्होने वही कबीरका तर्क मानकर, दोनो धर्मोको एक करनेका विचार पसन्द किया, किन्तु उसके साथ-साथ उनका खयाल यह भी था कि जरूरत पडे तो इस्लामका तलवारसे मुकाबला करके हिन्दू धर्मकी रक्षा की जाये। इसीमे से सिक्ख धर्म उत्पन्न हुआ और लडनेवाले सिक्ख तैयार हुए। इस सबका नतीजा यह हुआ है कि भले ही इन दिनो भारतमे हिन्दू और मुसलमान ऐसे दो मुख्य धर्म है, फिर भी दोनो कौमे हिल-मिलकर रहती हैं और दोनो, एक-दूसरेकी भावनाको चोट न पहुँचे, ऐसा बर्ताव करती है। हाँ, राजनीतिक सघर्ष और उत्तेजनासे खटास उत्पन्न होती है। हिन्दू योगी अथवा मुस्लिम फकीरके बीच बहुत थोडा अन्तर देखनेमे आता है।

पैगम्बर यीशु खीस्त

इस तरह जब इस्लाम और हिन्दू धर्ममे प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी उसी बीच लगभग ५०० वर्ष पहले ईसाई गोवाके बन्दरगाहमे उतरे और हिन्दुओको ईसाई बनाने लगे। उन्होने भी कुछ बलपूर्वक और कुछ समझाकर काम लेनेकी पद्धति अपनाई। उनमे कई पादरी अत्यन्त कोमल और दयालु थे। उनको सन्त कहे तो भी गलत नही होगा। उनका असर फकीरोकी तरह हिन्दू जातिके निचले वर्णोपर बहुत हुआ। परन्तु बादमें जब ईसाई धर्म और पश्चिमी सभ्यताका गठबन्धन किया गया तब हिन्दुओने ईसाई धर्मको पसन्द नही किया। और आज हम देखते है कि उनके ऊपर एक बहुत बडी ईसाई शक्तिका राज्य होनेपर भी विरला ही हिन्दू ईसाई धर्म स्वीकार करता है। फिर भी ईसाई धर्मका असर हिन्दू धर्मपर बहुत अधिक हुआ है। उन पादरियोने ऊँचे प्रकारका शिक्षण दिया, हिन्दू धर्मकी बडी-बडी कमियाँ बताई और परिणाम यह हुआ कि कबीर जैसे दूसरे हिन्दू शिक्षक पैदा हुए और उन्होने ईसाई धर्ममे जो अच्छा था उसे सीखना शुरू किया और हिन्दुओकी कमियाँ दूर करनेका आन्दोलन चलाया। राजा राममोहनराय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर और केशवचन्द्र सेन ऐसे ही व्यक्ति थे। पश्चिम भारतमे दयानन्द सरस्वती हुए और वर्तमानकालमे भारतमे ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज बने। यह निश्चय ही ईसाई धर्मका असर है। फिर श्रीमती ब्लेवेट्स्कीने[१] भारतमें आकर हिन्दू-मुसलमान दोनोको पश्चिमी सभ्यताके दोषोसे परिचित कराया और उन्हे समझाया कि उसपर आसक्त नही होना चाहिए।

हिन्दू धर्मके तत्त्व

इस तरह आपने देखा कि हिन्दू धर्मपर तीन आक्रमण—बौद्ध, इस्लाम और ईसाई धर्मके हुए। किन्तु कुल मिलाकर देखे तो हिन्दू धर्म उनसे उबरकर निकला है। हरएक धर्ममे जो अच्छाई थी उसे उसने ग्रहण करनेका प्रयत्न किया है। इस धर्मके लोग क्या मानते है, यह जान लेना चाहिए। ईश्वर है। वह अनादि है। निर्गुण है। निराकार है। सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान है। उसका मूल स्वरूप ब्रह्म है। वह करता नही है, कराता नही है। वह सत्ता नही चलाता। वह आनन्दरूप है और उसके द्वारा ही सारी सृष्टिका पालन होता है। आत्मा है, सो देहसे पृथक् है। वह भी अनादि है, अजन्म है। उसके मूल स्वरूप और ब्रह्मसे भेद नही है। किन्तु

१. थियोसॉफिकल सोसाइटीकी संस्थापिका।

कर्मवश या मायावश समय-समय पर देह धारण करता रहता है और अच्छे या बुरे कर्मोंसे अच्छी या बुरी योनियोमे जनमता रहता है। जन्म-मरणके चक्रके बन्धनसे छूटना और ब्रह्ममें लीन होना मोक्ष है। मोक्ष पानेका साधन बहुत अच्छे काम करना, जीव-मात्र पर दया करना और सत्यमय होकर रहना है। इस ऊँचाईतक जा पहुँचनेपर भी मोक्ष नही मिलता; क्योकि ऐसे अच्छे कामोका फल भोगनेके लिए भी शरीर मिलता ही है। इसलिए इससे भी एक कदम आगे बढना जरूरी है। कर्म करना तो अनिवार्य है ही, अब उनमें आसक्ति नही रखनी चाहिए। उन्हे करनेके लिए करे किन्तु उनके परिणाम पर नजर न रखे। थोडेमें, सब ईश्वरको अर्पण करे। हम कुछ कर रहे है या कर सकते है, स्वप्नमे भी ऐसा गुमान नही रखना चाहिए। सबको समान-भावसे देखना चाहिए। ये है हिन्दू धर्मके तत्त्व। हिन्दुओमें अनेक सम्प्रदाय है; फिर लौकिक आचारोको लेकर कुछ फिरके बन गये है। उन सबका विचार इस प्रसगपर करना जरूरी नही है।

परिसमाप्ति—सुननेवालोंसे प्रार्थना

यदि आपमें से किसीपर भी यह सब सुनकर अच्छा असर हुआ हो और यदि आपको ऐसा लगा हो कि हिन्दू या भारतीय, जिनके देशमे ऐसा धर्म प्रचलित है वे एकदम नीची प्रजातिके लोग नही होगें, तो आप राजनीतिके मामलोमे बिना उलझे मेरे देशवासियोकी सेवा कर सकते है।

हम सबको प्रेमसे रहना है यह सारे धर्म सिखाते है। मेरा हेतु आपको धर्मका उपदेश देना नही था। मै वैसा करने योग्य हूँ भी नही। मेरा इरादा भी नही है। फिर भी यदि आपके मनपर कोई अच्छा असर पड़ा हो तो उसका लाभ मेरे भाइयोको देनेकी कृपा करे। जब उनकी निन्दा हो तो उनका पक्ष ले जो अंग्रेज जातिको शोभता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५-४-१९०५

३४२. पत्र: छगनलाल गांधीको

जोहानिसबर्ग
अप्रैल १७, १९०५

श्री छगनलाल खुशालचन्द गाधी
मार्फत इन्टरनेशनल प्रिंटिंग प्रेस
फीनिक्स

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम जिन मामलोका उल्लेख करते हो, उनपर तुम्हे श्री किचिनसे बात कर लेनी चाहिए। चुप नही बैठना चाहिए। तुम देखोगे कि तुम्हारी उत्सुकतासे, जो बिलकुल वाजिब है, उन्हे बुरा नही लगेगा। नया इतजाम कैसा रहा? क्या जॉब-वर्क अब पूरा हो गया है, या होनेको है? जबतक तुम यह नही बताते हमारी हिन्दी ग्राहक-संख्या क्या है अथवा हिन्दी पाठक एक निश्चित सख्या की गारटी नही देते तबतक हम हिन्दी-स्तभ नही बढा सकते। मै एक पत्र तुम्हारे इस पत्रको पानेके पहले डाकमें छोड चुका हूँ। वास्तवमें उसमे मैंने यही लिखा है कि यदि पर्याप्त ग्राहक नही बनते तो मै हिन्दी स्तभोमें कमी कर देना भी पसन्द करूँगा। यही बात तमिल पर लागू होती है। फिलहाल मेरे वहाँ पहुँच सकनेकी कोई सूरत नही है। मै १०० पौड भेज ही चुका हूँ। आगेके तीन महीनोतक तुम एम० सी० कमरुद्दीनके नाम रुक्को पर दस्तखत मत करना।

हमें कमसे कम छः महीनोंकी मुहलत मिलनी चाहिए। श्री नाज़र तुम्हे गुजराती दें चाहे न दे, चिंता नही करना। क्या तुम निश्चित रूपसे मईके शुरूमे आ सकते हो? यदि अपनी तारीख पहलेसे तय करो तो मैं तुम्हारे लिए अनुमतिपत्रका प्रबंध कर सकता हूँ। यदि अप्पू चाहता है कि उसे दो प्रतियाँ भेजी जायें तो बेशक केवल एकका पैसा लगाकर ऐसा कर सकते हो। और बंबईमें श्री रुस्तमजीको नियमसे तीन प्रतियाँ भेजते रहना है। क्या लंदन और भारतकी भेंट-सूची छोटी नही की जा सकती? विदेशोमें यानी ब्रिटिश दक्षिण आफ्रिकाके बाहर भेंटमें कुल कितनी प्रतियाँ जाती है? मैं बड़े परिश्रमसे तमिल सीख रहा हूँ और यदि सब ठीक रहा तो मैं अधिकसे-अधिक दो महीनोमें तमिल लेख काफी समझने लगूँगा। मैं तमिल पुस्तके पानेके लिए जरा आतुर हो उठा हूँ। अगर आसानीसे न मिले तो उनके लिए कोशिश करो। मेरा खयाल है, तुम मेरी जरूरत समझ गये हो। तुम श्री मूडलेके घर जा सकते हो। मैंने उन्हे लिख दिया है।

तुम्हारा शुभचिन्तक,
मो० क० गांधी

टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४२३२) से।

३४३. पत्र : छगनलाल गांधीको

जोहानिसबर्ग
अप्रैल १९, १९०५

श्री छगनलाल खुशालचन्द गाधी
मार्फत इन्टरनेशनल प्रिंटिंग प्रेस
फीनिक्स

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। हिन्दी और तमिलके बारेमे, मुझे आशा है, तुम किचिनसे बाते कर लोगे। नि.सन्देह खुद मुझे दोनो भाषाओको छोड़ देनेका बड़ा दु:ख होगा। मैनरिंगके बारेमें मैं तुमसे बिलकुल सहमत हूँ। श्री वेस्टसे इसपर चर्चा कर लेना। मैनरिंगके कबतक जानेकी सभावना है? उम्मीद करता हूँ कि शाह कल शामको रवाना हो रहा है, उसके साथ तुम्हे केक भिजवा सकूँगा। तमिल पुस्तके मिल गई है। वे उपयोगी होगी। वैसे मुझे पोपके बड़े व्याकरणकी जरूरत थी। मैंने मदनजीतको अपनी जो किताब दे दी सो तुमने देखी है। तुमसे केक ठीक नही बनती तो भट्टी ठीक नही होगी। या तुम काफी मोन नही डालते। आटेको पानीमें कोई तीन घटे फूलने देना चाहिए। जब केक बनाने लगो तब पहले घीका मोन दो और उसे आटेमे एक-जी कर दो। तब पानी डालो और खूब अच्छी तरह उसे गूँधो।

तुम्हारा शुभचिन्तक,
मो० क० गांधी

टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४२३३) से।

३४४. पत्र : "आउटलुक"को[1]

[अप्रैल २२, १९०५
के पूर्व]

सेवामें
सम्पादक,
आउटलुक
जोहानिसवर्ग

महोदय,

श्री डब्ल्यू० हिल्सने *आउटलुकको* लिखे अपने पत्रमें ऐसी वातें कही है, जो तथ्योसे प्रमाणित नही होती। सम्पादकने किसी ऐसी नीतिका समर्थन नही किया है "जिससे ट्रान्सवाल एक परोपजीवी प्रजातिके हाथोमें चला जायेगा।" स्वयं श्री हिल्स अप्रत्यक्ष रूपसे स्वीकार करते हैं कि ब्रिटिश भारतीय बहुत उद्यमी और परिश्रमी हैं। ऐसे लोगोंकी प्रजातिको परोपजीवी कह कर पुकारना न्यायसगत नही है।

श्री हिल्स कहते है, एशियाइयोके प्रति उनका विरोध "रग-द्वेष-जनित नही, वल्कि आर्थिक कारणोसे है।" इसके समर्थनमें वे सव नेटालवासियोके अनुभवका उल्लेख करते हैं। अव सव नेटालवासियोके अनुभवकी जानकारी हासिल करना तो बहुत कठिन है। कुछ लोगोका अनुभव, जो नेटाली लोगोके प्रतिनिधि भी माने गये हैं, कागजातमें मौजूद है। स्वर्गीय श्री सॉडर्स, स्वर्गीय सर हेनरी विन्स, स्वर्गीय सर जॉन रॉविन्सन, स्वर्गीय श्री एस्कम्ब, वर्तमान उपनिवेश-सचिव श्री मेडन, सर जी० एम० सटन, सर जेम्स हलेट और अन्य अनेक सज्जनोने नेटालके भारतीयोकी उपयोगिताकी साक्षी दी है। स्वर्गीय सर हेनरी विन्सने एक आयोगके सामने गवाही देते हुए कहा था कि भारतीयोके प्रवासका खयाल तब किया गया था, जब कि नेटाल दिवालियापनके कगार पर खड़ा था। सर जेम्स हलेटने अभी कुछ ही महीने पहले वतनी मामलोंके आयोगके सामने गवाही देते हुए जोरदार शब्दोमे कहा था कि नेटालकी समृद्धिका श्रेय भारतीय प्रवासियोको है और उनके विना नेटालका काम नही चल सकता तथापि, नेटालको भारतीयोंकी जरूरत है, इसके समर्थनमे सवसे बड़ा प्रमाण तो स्वय श्री हिल्सने ही दिया है। अगर १८९६ से लेकर, अव तक यहाँ भारतीयोकी आवादी दुगुनी हो गई है तो इसका कारण क्या है? कारण सिर्फ यह है कि नेटालके मुख्य उद्योगो — अर्थात् चीनी, चाय और कोयलाके उद्योगो — को चालू रखनेके लिए अधिकाधिक भारतीयोकी आवश्यकता प्रकट की जा रही है। याद रखना चाहिए कि श्री हिल्स जिन भारतीयोका खयाल कर रहे हैं वे विना वुलाये नही आये हैं, वल्कि उपनिवेशके लिए वस्तुत: आमत्रित किये गये हैं। भारतीय प्रवासी न्यास निकाय (इडियन इमिग्रेशन ट्रस्ट वोर्ड) के सामने अव भी १८,००० आवेदन-पत्र मौजूद है, जिनको निवटाना वाकी है। भारतीय गिरमिटिया मजदूरोकी उपलब्धिकी अपेक्षा माँग बहुत ज्यादा है। वेरुलममे हमेशा भारतीयोकी वहुत बड़ी आवादी रही है। श्री हिल्स यह खेद व्यक्त करते हुए, कि वह भारतीय नगर वन गया है, यह भूल जाते हैं कि उसके सामने दो ही चारे थे — या तो वह भारतीयोका नगर वन जाता, या नगर रहता ही नही। सबसे ज्यादा

१. यह पत्र *आउटलुकमें* "गां०" के सांकेतिक नामसे १४ मार्चके श्री डब्ल्यू० हिल्सके पत्रके साथ छपा था। पत्रके सम्पादकने श्री हिल्सका पत्र "इस विषयके एक विशेष जानकार व्यक्ति" को भेज दिया था। संकेत गांधीजीकी ओर था। पत्र और उत्तर दोनों वादमें *इंडियन ओपिनियनमें* छपे थे। श्री हिल्सका पत्र यहाँ नहीं दिया गया है।

भारतीय नेटालके उत्तरी तटपर जाते है। उसका विकास या तो भारतीय मजदूरोसे होगा या बिलकुल होगा ही नही। नेटालके लोगोने सोचनेमे ज्यादा बुद्धिमानी की है। उन्होने भारतीय मजदूरोके जरिये तटवर्ती जमीन पर खेती करानेमें पसोपेश नही किया। और, याद रहे, उत्तरी तटपर भी जो बड़ी-बड़ी महलों जैसी इमारते है और जिनमे गोरे लोग रहते हैं, पूर्ण रूपसे भारतीय प्रवासियोकी ही मददसे बनी हैं, और वे उन्हीके मालिकोकी सम्पत्ति भी है। इस तरह, नेटालका उदाहरण पूर्णत भारतीयोके पक्षमें है और जिन "आर्थिक कारणो" पर श्री हिल्स इतना जोर देते है, उन्हीसे नेटालके लोग भारतीयोकी सहायताका आश्रय लेनेके लिए विवश हुए हैं।

फिर, श्री हिल्स यह कहनेमे भी भूल करते हैं कि "पिछली सरकारके अधीन कानून द्वारा, जैसी कि उसकी १५ वर्ष तक व्याख्या की जाती रही थी, एशियाई बस्तियोमे ही रहनेके लिए बाध्य थे" यह तो एक सुविदित तथ्य है कि पिछली सरकारके शासनमे भारतीय पूर्णत दण्ड-भयसे मुक्त होकर बस्तियोके बाहर रहते थे और इस तरह रहनेके कारण ही वर्तमान सरकारको उन्हे बेदखल करना कठिन हो रहा है। यह सच है कि उस समय उन्हे ब्रिटिश संरक्षण प्राप्त था, इसलिए अब उसे वापस नही लिया जा सकता। फिर यह भी याद रखना चाहिए कि बोअरोके शासनमे भारतीयोके प्रवासपर कोई रुकावट नही थी। इसके विपरीत आज, जैसा कि मुख्य परवाना-सचिवने बताया है, केवल उन भारतीयोको उपनिवेशमे पुन प्रवेशकी इजाजत दी जाती है जो युद्धके पहले देशमे बसे हुए थे — और सो भी बहुत पूछताछ और विलम्बके बाद। यद्यपि श्री हिल्स सामान्य गोरी आबादी और उसके कल्याणकी बाते करते है, अपने सिद्धान्तोको लागू करनेमें वे सिर्फ भारतीयोके व्यापारिक परवानोका ही खयाल करते हैं। तो क्या उनकी आपत्ति केवल भारतीय व्यापारियोके बारेमें ही है? श्री हिल्स यह मान कर फिर गलती करते है कि दक्षिण आफ्रिकी रगदार लोगोको तो परवाने देनेसे इनकार किया जाता है, जबकि वे भारतीयोको बेरोकटोक दे दिये जाते है। सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयके अन्तर्गत सरकार किन्ही रगदार लोगोको, रगदार होनेके आधार पर, परवाने प्राप्त करनेसे रोक ही नही सकती। और अगर श्री हिल्सकी आपत्ति अन्तत — जैसी कि वह दिखलाई पड़ती है — उपनिवेशका व्यापार पूर्णत या अधिकाशमे भारतीयोके हाथोमे जाने देनेके विरुद्ध हैं, तो उनके साथ सहानुभूति व्यक्त करनेमे बहुत कठिनाई नही है; और न *आउटलुकके* सम्पादकने यह सुझाव दिया है कि इस प्रकारकी प्रतिस्पर्धाका साधारण कानून द्वारा विनियमन न किया जाये। परन्तु भारतीय व्यापारका इस प्रकारसे विनियमन करना और हर प्रकारसे हैरान करनेवाले कानून बना-बनाकर भारतीयोको उपनिवेशसे खदेड देना दो भिन्न बाते है। एकके साथ, जबतक कि निहित स्वार्थोको हानि नही पहुँचाई जाती और भारतीयोको, भारतीय होनेके नाते ही, परवाने देनेसे इनकार नही किया जाता, प्रत्येक समझदार उपनिवेशी पूरी तरहसे सहमत रहेगा। परन्तु, भारतीयोको ऐसे कार्योसे, जैसे सड़कोकी पटरियो पर चलनेसे, जमीन-जायदाद खरीदनेसे, कडे म्यूनिसिपल विनियमोके अनुसार निवास करनेसे, या जहाँ वे चाहे वहाँ मसजिद बनानेसे रोकना शायद ही न्याय और औचित्यके अनुकूल है। अगर ऐसे प्रतिबन्धो का मूल रगभेद-जनित नही है तो वे निरर्थक है। और यह शकाजनक है कि इस प्रकारके द्वेषभावकी लपटोको उत्तेजित करनेवाले लोग आगामी पीढियोका कोई भला कर रहे है। हकीकते जैसी है, वैसी मजूर करनी चाहिए। भारत भी ट्रान्सवालके समान ही ब्रिटिश साम्राज्यका भाग है। इन दोनोके बीच आदान-प्रदानकी नीति तो होनी ही चाहिए, मगर साथ ही, गैरजरूरी तौरपर उन लोगोकी भावनाओको ठेस पहुँचानेवाली कोई कार्रवाई न की जानी चाहिए जो, आखिरकार तो, उसी सम्राटकी प्रजा हैं, जिसकी प्रजा वे स्वय है, और जिनकी विशिष्ट परम्पराएँ है तथा जो एक आश्चर्यजनक प्राचीन सभ्यताके उत्तराधिकारी है।

सारी कठिनाई दो सीधे-सादे विधेयकोसे दूर की जा सकती है। एकसे तो तमाम व्यापारिक परवानोका नियत्रण स्थानिक सस्थाओको सौप दिया जाये; हाँ, विशेष मामलोमें सर्वोच्च न्यायालयको पुर्नविचार करनेका अधिकार रहे; और दूसरेके द्वारा, केप प्रवासी अधिनियमके आधारपर उपनिवेशमे प्रवासका विनियमन कर दिया जाये।

श्री हिल्सके एक और कथनमे भूल-सुधार करना आवश्यक है। *स्टारमें* एक वक्तव्य प्रकाशित करके इस कथनको चुनौती दी गई थी कि पीटर्सबर्गमें १३ गोरे वस्तु-भडार मालिक है और उनके विरुद्ध ४९ भारतीय वस्तु-भडार मालिक। इसके बाद कमसे-कम कुछ तो सावधानी जरूरी है। ब्रिटिश भारतीय सघने निश्चयात्मक रूपसे प्रकट किया है[1] कि उस शहरमे केवल २३ भारतीय वस्तु-भडार है। श्री हिल्सने जिन श्री क्लाइनेनबर्गकी नकल की है वे उस कथनका खडन नही कर सके। इसलिए श्री हिल्सके लिए जरूरी है कि वे श्री क्लाइनेनबर्गसे दरियाफ्त कर ले कि क्या उन्होने *स्टारमे* जो ऑकडे दिये थे उनकी पुष्टि की जा सकती है। अब तक ब्रिटिश भारतीय संघका ही कथन अतिम है। यह अत्यन्त महत्त्वर्ण है कि जो लोग लोकमतके नेतृत्वके जिम्मेदार हैं वे अपने सामने सच्ची बाते ही रखें, सच्ची बातोके अलावा और कुछ नही।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-४-१९०५

३४५. ऑरेंज रिवर कालोनी

जोहानिसबर्गके कर्मठ ब्रिटिश भारतीय संघका पत्र[2] अन्यत्र मिलेगा। यह पत्र ऑरेंज रिवर कालोनीके उपनिवेश-सचिवको उपनिवेशकी एशियाई-विरोधी प्रवृत्तियोंके सम्बन्धमें भेजा गया है। इस लोकापवादके मामलेमे कदम उठानेके लिए हमे संघको अवश्य ही बधाई देनी चाहिए। अबतक हमे नगरोके विनियमोकी ओर ध्यान आकर्षित करना पडा है। ये विनियम जिस छूटके साथ बने और काममे आये, उससे हिम्मत पाकर ब्लूमफॉटीनकी नगरपालिकाने अब एक अध्यादेश बनवा लिया है। इसके द्वारा उसे लगभग वे ही अधिकार प्राप्त हो गये है, जो कि उपनिवेशके अनेक नगरोमें उन विनियमोके द्वारा हडप लिये गये है, जिनकी ओर इस पत्र द्वारा अनेक बार ध्यान आर्कषित किया जा चुका है। अध्यादेशके पास होनेसे मालूम होता है कि उसकी एशियाई-विरोधी उपधाराएँ साम्राज्यके उपनिवेश-मन्त्रीने स्वीकार कर ली हैं। जैसा कि ब्रिटिश भारतीय सघके अध्यक्षने अपने पत्रमे कहा है, निस्सन्देह ऐसा कानून "पतनकारी, अन्यायपूर्ण और अपमानजनक" है। और, "ऑरेंज रिवर कालोनीकी इस प्रकारकी रगदार-विरोधी प्रवृत्ति ब्रिटिश परम्पराओ और स्वर्गीया महारानीके मन्त्रियो द्वारा बार-बार की गई घोषणाओके विरुद्ध है।"

हम देखते है कि सर मचरजी[3] श्री लिटिलटनसे दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोके सम्बन्धमे फिर-फिर प्रश्न पूछ रहे है। हम मानते है कि यद्यपि ऑरेज रिवर कालोनीमे यह प्रश्न अभीतक सक्रिय रूपसे ब्रिटिश भारतीयोके मार्गमे बाधक नही हुआ है, फिर भी यदि वे इसे सजीदगीके साथ उठायेंगे तो उन्होने दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोकी जो अनेक सेवाएँ की है, उनमें यह कार्रवाई और जुड़ जायेगी। हम उस दिनके आगमनके बारेमे निराश नही है, जब कि भारतीयोको एक उचित अनुपातमे उस उपनिवेशमे बसने दिया जायेगा। इस समय भी वहाँ शायद २०० भारतीयोसे कम न होगे, जो उपनिवेशके भिन्न-भिन्न शहरोमे रहकर अपनी आजीविका उपार्जित कर रहे है। हम

१. देखिए, "पत्र: *स्टारको*" दिसम्बर २४, १९०४से पूर्व।
२. देखिए "पत्र: उपनिवेश-सचिवको," अप्रैल ११, १९०५।
३. लन्दनके दक्षिण आफ्रिकी ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष।

अनुभव करते है कि उनकी भी — क्योकि वे मुट्ठी-भर है — जानबूझ कर किये जानेवाले इस अपमानसे रक्षाकी जरूरत है। राज्यके कानूनोके कारण ही वे इस अपमानके शिकार बनाये गये हैं।

शुद्ध साम्राज्यीय दृष्टिकोणसे तो हम एक कदम और आगे जा सकते है और कुछ पूछ सकते है कि क्या यह दूरदर्शितापूर्ण या उचित है कि इस भूमिके मूल निवासियोको अनावश्यक प्रतिबन्ध लगा-लगाकर परेशान किया जाये? ब्रिटिश शासनमें किसी समाजको गतिरुद्ध अथवा अप्रगतिशील नही रहने दिया जाता। मूल निवासियोको धीरे-धीरे शिक्षा दी जा रही है। यह मान लेना गलत होगा कि उनकी कोई भावनाएँ नही है, या वे अपनी स्वाभाविक स्वतन्त्रतामें कमी होनेपर दु:खी नही होते। हम ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी बस्तियोको नियन्त्रित करनेके विनियमोकी तुलना उन नियमोसे करते है जो किसी व्यवस्थित जेलमे कैदियोका नियन्त्रण करनेके लिए बनाये जाते है। और ऐसी तुलनामें कोई अतिशयोक्ति नही है। अगर ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी बस्तियोको थोडी-सी ज्यादा स्वतत्रता है तो उसमे सिर्फ मात्राका अन्तर है, प्रकार का नही। ट्रान्सवालके आदिवासियोका बहुत लम्बा प्रार्थनापत्र बताता है कि उनमे ब्रिटिश झंडेकी छत्रछायामे अपने अधिकारोकी भावना जाग रही है। सच्ची राजनीतिज्ञता यह होगी कि उनकी मुनासिब जरूरतोका पहले ही से अनुमान कर लिया जाये और वे पूर्ण कर दी जाये। ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें तो दीख पड़ता है कि मूल निवासियोके मनमे कोई भावना है, ऐसा माना ही नही जाता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–४–१९०५

३४६. लन्दन विश्वविद्यालयमें तमिल भाषा

लंकासे हमें एक पत्र प्राप्त हुआ है। उसमे हमसे अनुरोध किया गया है कि हम मैट्रिक तथा कला-विषयक अन्य परीक्षाओके पाठ्य-क्रममे तमिल भाषाको वैकल्पिक विषयके रूपमें स्थान देनेके लिए लन्दन विश्वविद्यालयके रजिस्ट्रारको प्रार्थनापत्र भेजनेके उद्देश्यसे एक सभा आयोजित करें। हम तमिल शिक्षा-प्राप्त भारतीयोका ध्यान इस मामलेकी ओर आकर्षित करते हैं। हमारा खयाल है कि इस विषयको हर तरहसे प्रोत्साहन देना चाहिए। तमिल शिक्षा-प्रेमियोको एक सभा करके लन्दन विश्वविद्यालयकी बाह्य परीक्षाओके रजिस्ट्रारके नाम भेजनेके लिए एक सीधा-सादा प्रार्थनापत्र स्वीकार कर लेनेमे कोई कठिनाई नही होनी चाहिए। दुनियाके दूसरे हिस्सोमें जाकर बसे हुए तमिल लोगोने अपने प्रार्थनापत्र पहले ही भेज दिये है और हमे कोई कारण दिखलाई नही पड़ता कि दक्षिण आफ्रिकाके लोग भी वैसा ही क्यो न करे। तमिल सबसे बड़ी द्राविड़ भाषाओमे से एक है और उसका साहित्य बहुत सम्पन्न है। वह भारतकी इतालवी भाषा मानी जाती है। इसलिए वह लन्दन विश्वविद्यालय द्वारा वैकल्पिक विषयके रूपमें स्वीकार की जानेके सर्वथा योग्य है। लन्दन विश्वविद्यालय दुनियाकी सबसे उदार सस्था माना गया है और यह देखते हुए कि तमिल भाषा सम्राटकी प्रजाके करोड़ो लोगो द्वारा बोली जाती है, साम्राज्यकी राजधानीके विश्वविद्यालयके लिए उचित ही होगा कि वह तमिल-भाषी आवेदकोकी प्रार्थना स्वीकार कर ले।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२–४–१९०५

३४७. खानोंमें भारतीय

श्री लिटिलटनने खानोमें भारतीयोके प्रति व्यवहारके बारेमे सर मचरजी मेरवानजी भावनगरीके प्रश्नका ब्रिटिश ससदमे उत्तर दे दिया। यह उत्तर अत्यन्त असंतोषजनक है। श्री लिटिलटनने कहा कि उन्हे यह जानकारी नही कि जाँचके लायक कोई बात है। किन्तु जब ताजे मामलोकी खबरे उनतक पहुँचेगी तब सभवत वे अपनी राय बदल देंगे। ऐसे अरुचिकर मामलोका लगातार होते रहना खुद कडी और निष्पक्ष जाँचके लिए बिलकुल पर्याप्त कारण है। श्री लिटिलिटनने यह भी कहा कि नेटालमे एक भारतीय सरक्षक है। ऐसा कहनेसे उनका आशय यह था कि उसीको इस मामलेको पेश करना था। किन्तु, उसने यह मामला पेश किया हो, यह हमने नही सुना। *नेटाल विटनेस* श्री लिलिटलटनके इस उत्तरपर टिप्पणी करते हुए इसे असन्तोषजनक मानता है, और इस सम्बन्धमें जाँचकी माँग दुहराता है। भारतीय सरक्षकके बारेमे *विटनेस* लिखता है :

> हम जानते हैं कि ऐसा एक अधिकारी है; किन्तु खानोंमें नियुक्त भारतीयोंका कहना है कि उन्हें उसके पास जाने नहीं दिया जाता, और यह खुद ऐसी बात है जिसकी जाँचकी जरूरत है।

वह यह भी लिखता है :

> यदि हमारी सरकार इन मामलोंमें अपने कर्तव्य को स्वीकार करनेमें चूकती है तो आशा करनी चाहिए कि इंग्लैडमें यह प्रश्न आँखोंसे ओझल नहीं किया जायेगा, और वहाँसे ठीक दिशामें प्रभाव डाला जायेगा। किन्तु यदि ऐसे किसी दबावके बिना ही जाँच कराई जायेगी और घिनौने आरोप अन्तिम रूपसे सिद्ध या असिद्ध कर दिये जायेंगे तो यह ज्यादा अच्छा होगा।

हमे आशा है कि ये मामले भारत सरकारके ध्यानमें लाये जायेंगे। वह अपने पूर्व अनुभवके कारण श्री लिटिलिटनकी तरह सरलतासे सन्तुष्ट न होगी। किन्तु, सबसे अच्छी बात नेटाल सरकारके लिए यह होगी कि वह हमारे सहयोगीके सुझावके अनुसार स्वय पहल करके जाँच कराये और अविलम्ब मामलेकी तहतक छानबीन करे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-४-१९०५

३४८. डर्बनमें जाड़ा-बुखार या मलेरिया

मलेरिया डर्बनमे बड़े जोरसे चल रहा है। पिछली जनवरीमे मलेरियाके केवल १२ रोगी थे, और अभी जो मार्च महीना बीता उसमे इसके ६१२ रोगी हुए। इतनी वड़ी तादाद खौफनाक है। इसमें मौतें ज्यादा नही होती यह तसल्लीकी बात है। फिर डॉक्टर म्यूरिसननें बताया है कि यह बीमारी ज्यादातर औरतों, बच्चो और उनको हुई है, जो घरमें अधिक रहते हैं। इसका कारण यह बताते हैं कि जूलूलैंडसे मच्छरो द्वारा मलेरिया आया है। मलेरियाको रोकनेके लिए डॉ० म्यूरिसन नीचे लिखे उपाय बताते है.

१ बहुत बारीक छेदवाले पर्दे [मच्छरदानी] अपनी खाट पर हरएकको लगाने चाहिए। खाटके ऊपर कुछ मच्छर हो तो उन्हे दूर करके चारो ओरसे गद्दोके किनारोंको पर्दों पर दवा देना चाहिए। पर्दा फटा हुआ हो तो जबतक उसे सुधार न लिया जाये तबतक वह निकम्मा समझा जाये।

२ जबतक सम्भव हो मलेरिया रोकनेके लिए कुनैन न ली जाये। किन्तु यदि मलेरिया-वाले घरमे रहना पड रहा हो या पर्दोके बिना सोनेकी मजबूरी हो तो रोज सवेरे नाश्तेसे पहले पॉच जौ-भर कुनैन ली जाये।

३. घरमें या आसपास पानी बिलकुल जमा न होने दिया जाये। नाली आदिको जाँच कर गड्ढे बन्द कर दिये जाये।

४. जहाँ पानीके बड़े गड्ढे हों वहाँ, वे जबतक बन्द न हो जाये, उनमे मिट्टीका तेल डाला जाये।

५ यदि घरके आसपास अपनी हदमें पानी जमा रहता हो अथवा झाड़-झखाड़ उग निकलते हो तो अधिकारियोको इस सम्बन्धमे सूचित करना चाहिए।

इस प्रकार प्रत्येक व्यक्तिको सावधानी रखनेकी आवश्यकता है। सार यह है कि घर और आँगन साफ रखना, मच्छर न होने देना, शरीर स्वच्छ रखना और आहार हलका लेना चाहिए।

मलेरियाके रोगियोकी सख्या गोरोमे काले आदमियोसे ज्यादा है। ६१२ रोगियोमे ४०० गोरे, १८५ एशियाई, और २७ काफिर थे। इससे पता चलता है कि कुछ रोग कुछ कौमोको अधिक पकडते है, कुछको कम। प्लेगके शिकार भारतीय लोग अधिक होते हैं। यो देखे तो "कठौती कूँडीकी क्या हँसी करे" की-सी बात तय होती है। फिर भी मलेरिया भयावह रोग नही है। लेकिन प्लेग जबरदस्त और मारक रोग हैं। जाँच करने पर दोनोके कारणोका पता लग सकता है। इसलिए पूरी सावधानी बरतना हमारा कर्त्तव्य है और उसमे हमे चूकना नही चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-४-१९०५

३४९. ईस्ट लंदनमें भारतीय

ईस्ट लदनमें भारतीयोके पैदल पटरियोंपर चलने और नगरमे रहनेपर कुछ प्रतिबन्ध है। वहाँका कानून ऐसा है कि जो भारतीय जमीनके मालिक हो अथवा अच्छे किरायेदार हो वे शहरमे आजादीसे रह सकते है। किन्तु नगर-परिषदसे उन लोगोको पास प्राप्त कर लेना चाहिए। जो माँगे, उसे पास देनेके लिए टाउन क्लार्क बँधा हुआ है। भारतीयोने आम तौरसे इस प्रकार पास लेनेमे आनाकानी की। डेढ़ वर्ष तक जूझते रहे और काम चलता रहा, किन्तु जब नगर-परिषदने मुकदमा दायर कर दिया तब मजिस्ट्रेटने नगर-परिषदके हकमें फैसला दिया। इसके विरोधमे भारतीयोने अपील की। उसमे यह मुद्दा रखा कि वे "एशियाई" नही है, परन्तु भारतमें बादमे जाकर बसे है। वे "आर्य" है। हमे इस मौकेपर कहना चाहिए कि हमारे भाइयोने इस मुकदमेमे पैसे बरबाद किये और अपनी हँसी कराई। "आर्य है" इत्यादि बात सही है। परन्तु अदालतमे इस प्रकारकी दलील देनेसे नुकसान ही होता है, और हुआ भी।

ईस्ट लदनका कानून जब बना उस समय जागनेकी जरूरत थी। बने हुए कानूनोको रद कराना बहुत मुश्किल होता है। अब हमारी सलाह है कि चुपचाप कानूनका पालन करके प्रमाण-पत्र ले लेना चाहिए। दूसरी जगहो, जैसे ट्रान्सवाल आदिकी तुलनामे ईस्ट लदनमे अब भी स्थिति बेहतर है। कानूनके अनुसार चले और तब भी लड़ाई लड़ते रहे। परन्तु वह लड़ाई संसदकी मार्फत लड़नी चाहिए। ईस्ट लदनमे हमारे पास वोटकी ताकत और वोटका हक है। इसलिए उसका ठीक उपयोग करनेसे अच्छा परिणाम निकलेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-४-१९०५

३५०. गिरमिटिया भारतीय

नेटालके *गवर्नमेंट गज़टसे* पता चलता है कि प्रत्येक व्यक्तिपर ३ पौंडका जो कर लगाया गया है उसके लागू होनेके बाद सन् १९०४ के दिसम्बरकी ३१ वी तारीखतक ११,१७५ मर्द और ५,३३४ औरते गिरमिटसे मुक्त हुए। उनमे से ७,५८५ मर्दोने और १,८४५ औरतोने ३ पौंडका कर दिया है। अर्थात् मुक्त होनेवाले गिरमिटियोमे से ५० प्रतिशतने प्रति व्यक्ति लगाया गया यह कर सरकारको दिया है। और वे लोग इस समय कालोनीमे नौकरी अथवा दूसरा धन्धा करते है।

इन व्यक्तियोसे सरकार २८,२९० पौंडकी उगाही कर चुकी है। इसपर विचार करे तो यह कोई मामूली रकम नही है। ब्रिटेनकी रियायाको ऐसी सजा दी जाती है, यह बहुत दुःखकी बात है। लेकिन जहाँ चारा न हो वहाँ सन्तोष कर लेना पडता है। लॉर्ड कर्जनके लगाये हुए हिसाबके अनुसार प्रत्येक भारतीयकी औसत वार्षिक आय ३० रुपयेकी होती है। मतलब यह हुआ कि यह कर हिन्दुस्तानमें हिन्दुस्तानीकी औसत आयसे डेढ़ गुना अधिक है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-४-१९०५

३५१. जोहानिसबर्गमें मलायी बस्ती

जोहानिसवर्गकी सरकारने फ्रीडडॉर्पकी कुछ जमीन लेनेके विचारसे कानून वनानेके लिए आयोग नियुक्त किया है। फ्रीडडॉर्पमे मलायी वस्ती आ जाती है या नही यह अभी निश्चित नही हुआ है, लेकिन सम्भव है कि उसका कुछ अश उसमे आ जायेगा। आयोग इस तरह विचार करेगा .

१. किस रीतिसे रहनेवालोके पाससे जमीन ली जाये।

२. यदि जमीन ली जाये तो उन लोगोको हरजाना किस तरह दिया जाये।

३. इस सम्बन्धमे प्रमाण प्राप्त करना।

आयोगके मुखिया जोहानिसबर्गके मुख्य मजिस्ट्रेट श्री वडव नामजद हुए है। आयोग कव वैठेगा, यह अभी निश्चित नही हुआ है। लेकिन निश्चित हो जानेपर जो लोग मलायी वस्तीमें रहनेवाले है, उन्हे सावधानी रखनी होगी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-४-१९०५

३५२. ज्यूजित्सु

यूरोपकी प्रजाकी आँख धीरे-धीरे खुलती जा रही है। कवि नर्मदाशकरने गाया है कि:

राज करे अंग्रेज देश रहता है दबकर,
दबे न क्योंकर देश, देहका देखो अन्तर,
वह पँचहत्था ज्वान, पाँच सौ को भी पूरे।

कविने इसमे यह वताया है कि अग्रेजोके शरीरकी काठी विशाल है, यह उनकी वढतीका एक मुख्य कारण है। जापानियोने दिखा दिया है कि दारोमदार शरीरके कदपर कोई खास नही है। रूसी लोग वहुत वडे कदवाले है फिर भी वौने और पतले जापानियोके सामने उनकी कुछ चल नही पाती। इसपर अग्रेज अमलदार विचारमे पड़ गये और उन्होने यह तय पाया कि व्यायाम और शरीरके नियमोके सम्बन्धमे यूरोप वहुत पिछडा हुआ है। शरीरके भिन्न-भिन्न जोड और हड्डियों-पर कव क्या असर पड़ता है यह जापानी लोग वड़ी अच्छी तरह समझ सकते है, और इसलिए वे लोग अजेय वन गये है। व्यायाम करते समय गर्दनकी और पैरोकी किस नस पर दवाव पडनेसे क्या असर होता है, यह तो हमारे वहुत-से पाठकोको ज्ञात होगा। जापानियोने उसी वातका सम्पूर्ण शास्त्र वनाया है। अग्रेजोकी फौजको यह शास्त्र सिखानेके लिए एक जापानी शिक्षक रखा गया है, और हजारोको यह युक्ति सिखा दी गई है। इस शास्त्रका जापानी नाम ज्यूजित्सु है। फिर भी यह सवाल वना रहता है कि जब सभी प्रजा ज्यूजित्सु सीख लेगी तव फिर कुछ नई खोज करनी होगी; और इस प्रकार चरखी चलती ही रहेगी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-४-१९०५

३५३. बारबर्टन कृषि-परिषदका सुझाव

बारबर्टनके इर्दगिर्दकी जमीनमें तम्बाकू बोनेपर फसल ठीक होगी या नही इसका निर्णय करनेके लिए वहाँकी कृषि-परिषदने कैप्टन मेजको नियुक्त किया था। कैप्टन मेजका कहना है कि तम्बाकूकी फसल बडी अच्छी हो सकती है। इस परसे परिषदकी समितिने यह सिफारिश की है कि तम्बाकू बोनेके काममे सहायता करनेके लिए भारतीय लोग चाहिए और जिस प्रकार नेटालमें भारतीय आ रहे है उसी प्रकार बारबर्टनकी तरफके हिस्सेमें भारतीयोको आने दिया जाये। इस प्रकार आजसे ही गोरे लोगोको भारतीय मजदूरकी जरूरत महसूस हो रही है। काफिर कामके नही है। चीनी जितने मिल सकते है, खानोमे खप जाते है। इसलिए काम करनेके लिए आम तौरसे भारतीय चाहिए।

लॉर्ड कर्जनने अपने भाषणमें[1] कहा है कि जबतक दक्षिण आफ्रिकाके राज्य भारतीयोको पर्याप्त अधिकार नही देते तबतक उन्हे सहायता नही दी जायेगी। इसलिए यदि ट्रान्सवालकी सरकारको भारतीयोकी सचमुच आवश्यकता होगी तो लॉर्ड कर्जनको अमूल्य अवसर मिलेगा और भारतीयोके अधिकार दिलवानेमें वे स्वय काफी दबाव डाल सकेंगे। जबतक ट्रान्सवालमें खेती आरम्भ नही की जाती तबतक इस प्रदेशका ठीक तरहसे आबाद होना सम्भव नही है। और भारतीयोके बिना खेती होनेकी सम्भावना कम है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९-४-१९०५

३५४. रंगदार और गोरे लोगोंकी आयु

केप टाइम्सने प्रश्न पूछा है कि मर्दोसे औरते ज्यादा जीवित क्यो रहती है? और हब्शी, होटेनटोट और मलायी लोग गोरोसे ज्यादा जीवित क्यो रहते है? मर्दुमशुमारीकी रिपोर्ट पढ़नेपर यह सवाल पैदा होता है। केपमे मर्दोसे औरते ज्यादा है। मर्दोकी सख्या १२,१८,९४० है और औरतोकी सख्या १२,९०,८६४ है। ६० वर्षकी आयुतक मर्दोकी सख्या ज्यादा है लेकिन ७० वर्षकी आयुवालोकी सख्यामे २१,७८८ मर्द है और २३,७१९ औरतें है। ८५ वर्षकी आयुवालोमें २,३५५ मर्द और २,८९५ औरते है। और ९५ वर्षवालोमें ८८ मर्द और १०९ औरतें है। केपमे १०० वर्षसे अधिक आयुवाले मनुष्य ३०० है। उनमें मर्द केवल १२६ है और शेष सब औरते है। इसी प्रकार गोरोसे रगदार मनुष्य अधिक आयुष्यवाले दीख पडते है।

ऐसा होनेका कारण स्पष्ट नजर आता है। यूरोपीय लोग अधिक मौज-शौक उड़ाते है, इस कारण उनकी आयु रगदार मनुष्योसे कम है और औरतोके मुकाबले मर्दोपर चिन्ताका अधिक बोझ होता है, इसलिए मर्दोकी आयु कम है। उनकी तुलना भारतीयोके साथ की जाये तो भारतीय कम उतरते है। इसके बहुत-से सबल कारण है। लेकिन मुख्य कारण यह है कि भारतीयोका रहन-सहन दक्षिण आफ्रिकामे बहुत खराब है। पैसोकी बचतके लिए हम बहुत-सारे लोग एक कोठरीमे

१. देखिए "दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके बारेमें लॉर्ड कर्जनका भाषण", ८-४-१९०५।

रहते है और पैसे बचानेके लिए अथवा आलस्यके कारण खुराक घटिया अथवा कम खाते है। बहुत-से मनुष्य सडे हुए आटेकी कच्ची-पक्की सिकी रोटीपर गुजर करते है। ऐसे आहारका परिणाम खराब निकलना अजीब नही है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९-४-१९०५

३५५. पत्र: छगनलाल गांधीको

२१-२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक व ऐंडर्सन स्ट्रीट्स
पॉ० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
मई १, १९०५

श्री छगनलाल खुशालचन्द गाधी
मार्फत इन्टरनेशनल प्रिटिंग प्रेस
फीनिक्स

चि० छगनलाल,

तुम्हारे पत्र मिले। कुछ दिनोसे मै तुम्हे चिट्ठी नही दे पाया। मैंने कल तुम्हे गुजराती सामग्री भेजी है। मै जानना चाहता हूँ कि मै जो भेजता हूँ वह काफी है या नही। काफी न हो तो और भी भेज सकता हूँ, मगर उस हालतमे दरअसल मुझे *इंडियन रिव्यू* और कुछ गुजराती पत्र भेजे जाने चाहिए।

मैंने शाहके साथ कूनेकी दो रोटियाँ, कुछ बिस्कुट, मिठाई, केक और पापड भेजे थे। रोटियाँ एक-एक वीन और वेस्टके लिए थी और बाकी चीजे तुम्हारे लिए । मालूम नही ये सब चीजे तुमको मिली या नही। क्या तुमने डर्बनसे मिठाइयाँ भेजी थी? अगर भेजी हो तो अब फिर वैसा न करना। यह बिलकुल गैरजरूरी है और मै घरको बहुव्यजनके चलनसे बचाना चाहता हूँ।

मुझे पोपके व्याकरणका पहला भाग भेज दो। मगर वह अग्रेजी और तमिल दोनोमें हो। क्या यह नया प्रकाशित सस्करण है? अगर नही है तो उसे न खरीदना। मेरा खयाल है, पिछले बरस नया संस्करण प्रकाशित हुआ था। अगर वे पहले देखनेके लिए दे सके तो तीनो भाग भेज दो। तीस शिलिंग जमा कर दो। यदि वे मुझे उपयोगी नही लगते तो वे पैसा वापस करके किताबे ले ले। श्री साइमनसे मुझे एक तमिल-अग्रेजी शब्दकोश मिल गया है। अब मुझे सिर्फ एक अच्छे व्याकरणकी जरूरत है।

आशा है कि तमिल और हिन्दीके सवालपर किचिनसे तुम्हारी बात हो चुकी होगी। तुमने कह दिया होगा कि मौजूदा हालतमे एकको भी नामजूर नही कर सकते। एम० सी० सी० ऐंड क०[1] जो रुक्के चाहती है, मैंने उसे उनके बारेमे लिख दिया है। इसके साथ आज तकका वक्तव्य[2] प्रेसके लिए भेज रहा हूँ। मै यह जानना चाहूँगा कि मैनरिंगकी गैरहाजिरीमें

१. एम० सी० कमरुद्दीन ऐंड कं० की पेढ़ी।

२. यह उपलब्ध नहीं है।

इस हफ्ते अंग्रेजीका काम कैसा हुआ। क्या रघुवीर बिलकुल चला ही गया? मुझे उसके लिए बहुत अफसोस है। क्या तुमने रातको काम करना बन्द कर दिया?

निःशुल्क-सूचीमें श्री एडवर्ड बी० रोज, ४५, ग्रेट ऑर्मन्ड स्ट्रीट, ब्लूम्सबरी, लन्दनका नाम चढ़ा लो। तुम इसी चालू अंकसे शुरू कर सकते हो।

शुभचिन्तक

मो० क० गांधी

[पुनश्च]

मिठाइयाँ देसाई लाये थे यह मालूम हो गया।[1]

संलग्न : एक वक्तव्य

टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४२३४) से।

३५६. पत्र : छगनलाल गांधीको

[जोहानिसबर्ग
मई १, १९०५ के बाद][2]

चि० छगनलाल,[3]

तुम्हारी चिट्ठी और पोपकी पुस्तिका मिली। अगर पी० डेविस तीनो भाग ३० शिलिंगसे कममें देनेको राजी हो तो तुम २५ पौडमें[4] तीनो खरीद सकते हो। अगर वे पहला भाग १२ शिलिंग ६ पेंसमें बेचें तो तुम उसकी कीमत चुका सकते हो। अगर वे तीनो भाग एक-साथ देने अन्यथा बिलकुल न देनेका आग्रह करें और तीनोके ३० शिलिंग ही माँगें तब भी तुम्हें दाम चुका देना चाहिए और दूसरे दो भाग लेकर भेज देने चाहिए।

हाँ, प्रेसमें तुम्हारे नियोजनके बाद मैंने तुम्हें ५ पौंड १ शि० ६ पेंस भेजे थे। मैंने वह रकम प्रेसके नाम इसलिए डलवा दी है कि अन्तमें मेरी स्थिति क्या रहती है यह मैं देख सकूँ। निस्सन्देह यह रकम और शाहकी १६ पौंडकी रकम इस सालके खर्चेमें शामिल नहीं होगी। शाहको दिये गये ५ पौंड और उनको उस्तरेके लिए दिये गये ५ शिलिंग मेरे नाम लिख देना। इस हफ्ते भेजी गई गुजराती सामग्री काफी है या अभी और भेजूँ?

शुभचिन्तक,

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४२३५) से।

१. यह गांधीजीके स्वाक्षरोंमें है।

२. इस पत्रमें जो पोपकी पुस्तिका *हैंड बुक ऑफ तामिल ग्रामरका* उल्लेख किया है और खर्चेका ब्योरा दिया है, इन दोनोंकी चर्चा इससे पहलेके पत्रमें है; इससे मालूम होता है कि यह पत्र बादकी तारीखका है।

३. मूल कटा-फटा है। नामके अन्तिम दो वर्ण बच रहे हैं। विषयसे जान पड़ता है कि पत्र छगनलाल गांधीको लिखा गया था। देखिए पिछला शीर्षक।

४. पौंड स्पष्ट ही भूलसे लिखा गया है। शिलिंग होना चाहिए।

३५७. ट्रान्सवालका संविधान

जबसे ट्रान्सवालका सविधान प्रकाशित हुआ है तबसे दक्षिण आफ्रिकामे हरएक की जबानपर उसकी ही चर्चा है। लोगोका जितना ध्यान इस सविधानकी ओर आकर्षित हुआ है, उतना किसी अन्य ब्रिटिश उपनिवेशीय सविधानकी ओर आकर्षित हुआ हो, यह हमे याद नही आता। हर समाचारपत्रने इसपर सम्पादकीय प्रकाशित किये है, दक्षिण आफ्रिकाके प्रत्येक महत्त्वपूर्ण व्यक्तिने उसपर अपना मन्तव्य दिया है और उक्त सविधानके सम्बन्धमे प्रकट की गई सम्मतियोका सार कुल मिलाकर प्रशसात्मक ही जान पडता है, यद्यपि उसमे कुछ विरोधी आलोचना भी है। वास्तवमे लॉर्ड मिलनरने जोहानिसबर्गमे अपने विदाई भाषणमे ऐसे परिणामकी पूर्व कल्पना कर ली थी। उन्होने कहा था कि यह सविधान कदाचित् पूरी तरह किसी को भी सन्तुष्ट नही कर सकेगा, किन्तु सब निष्पक्ष व्यक्ति इसे अग्रेजो और बोअरोको एक दूसरेके समीप लाने तथा निकट भविष्यमे जनताको पूर्ण स्वराज्यके लिए तैयार करनेके सच्चे प्रयत्नके रूपमे ग्रहण करेगे।

तफसीलके बारेमे की गई आपत्तियाँ ऐसी आपत्तियाँ है जो हमारी रायमें, अन्य स्वशासित उपनिवेशोके सविधानोकी जानकारीके अभावमे की गई है। बात यह है कि यद्यपि स्वराज्य अथवा अन्य प्रातिनिधिक सस्थाओकी प्राप्तिके लिए जोरदार आन्दोलन किये जाते रहे है, किन्तु पहले तफसीलकी जाँच इतनी बारीकीसे कभी नही की गई। लोग अबतक एक सिद्धान्तकी स्वीकृति-मात्रसे सन्तुष्ट हो जाया करते थे; किन्तु हम देखते है कि आज वे हर तफसील अपने खया-लातके अनुसार रखनेका आग्रह करते है। इसलिए विधानके बारेमे ताज द्वारा निषेधाधिकार सुर-क्षित करनेकी बातका इतनी गम्भीरतासे विरोध किया जाता है। किन्तु यदि स्वशासित उपनि-वेशोके संविधानोकी जाँच-पडताल करनेकी तकलीफ उठाई जाये तो यह मालूम हो जायगा कि निषेधाधिकार सदा ही सुरक्षित रखा गया है और कभी-कभी उसका उपयोग भी किया गया है। उदाहरणार्थ, जब आस्ट्रेलिया सरकारने एशियाइयोको एशियाई होनेके नाते अलग रखनेका एशियाई-विरोधी अधिनियम बनाया तब श्री चेम्बरलेनने उस अधिनियमको अस्वीकार करनेमे कोई आगा-पीछा नही किया, और ऐसा ही नेटालमे भी हुआ। उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल द्वारा भारतीयोको भारतीय होनेके नाते मताधिकारसे वचित करनेके लिए की गई पहली कार्यवाहीकी लॉर्ड रिपनने मुस्तैदीसे रोकथाम की थी। उत्तरदायी शासनसे पूर्व आजतक जितने सविधानोके मजूर होनेकी हमे जानकारी है उनमे ट्रान्सवालका सविधान शायद सबसे अधिक उदारतापूर्ण है। यह तथ्य सहूलियतके साथ भुला दिया गया है। दूसरी आपत्ति यह है कि ऑरेंज रिवर उपनिवेशके साथ वही-व्यवहार नही किया गया है जो ट्रान्सवालके साथ किया गया है। इसका सम्बन्ध समस्त शासनके मूलसे है। जबतक ब्रिटेन प्रमुख शक्ति है और जबतक शासन-सत्ताएँ अन्तत शक्ति-पर निर्भर करती है, तबतक प्रस्तुत स्थितियोमें जो-कुछ अपरिहार्य है, उससे असन्तोष प्रकट करना निरर्थक है।

सविधानके निहित गुण-दोषोके सिवा, सबसे मुख्य बात तो लॉर्ड लिटिलटनका वह खरीता है जिसने स्वय सविधानकी भूमिकाका काम दिया है। वह एक ब्रिटिश मन्त्रीके योग्य मानवता-पूर्ण प्रलेख है।

विशुद्ध भारतीय दृष्टिकोणसे विचार करे तो यह अनुभव न करना कठिन है कि ब्रिटिश भारतीय और उसी तरह रगदार ब्रिटिश लोग केवल सौतेली सन्तान है और वे उपेक्षित छोड़

दिये गये है। उपनिवेश-सम्बन्धी मामलोमें उनकी बात नही पूछी जाती। वे जानबूझकर पृथक् करके अपमानित किये जाते हैं। श्री लिटिलटन कहते हैं :

> **महामहिमकी सरकार, १९०२ की सन्धिकी शर्तोंके लिहाजसे महामहिमकी रंगदार प्रजाको प्रतिनिधित्व देनेकी व्यवस्था करनेमें असमर्थ रही है।**

और यहाँ इसपर ध्यान दिया जाना चाहिए कि श्री लिटिलटनने भी "वतनी" शब्दके अन्तर्गत अन्य लोगोको लेनेकी आम गलती की है। सन्धिकी शर्तोमे केवल दक्षिण आफ्रिकाके वतनियोका उल्लेख है। तब फिर यह निष्कर्ष क्यो निकाला गया कि उसमें अन्य रगदार लोग शामिल है? श्री लिटिलटन आगे कहते है :

> **तथापि आबादीके जिन अंशोंको विधानसभामें सीधा प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है, उनके हितोंकी रक्षाके लिए आजकी तरह गवर्नरको अपनी हिदायतोंसे ऐसे किसी भी विधेयकको सुरक्षित रखना आवश्यक होगा जिसके द्वारा गैर-यूरोपीय लोगोंपर वे रुकावटें और निर्योग्यताएँ लगाई जा सकती हों जो जन्मजात यूरोपीय लोगोंपर लागू न हों।**

आशा की जाती है कि इस रक्षित अधिकारका व्यवहार पूरा-पूरा किया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ६-५-१९०५

३५८. भारतीयोंकी शिक्षा

नेटालकी ससदमे शिक्षाके सम्बन्धमे बोलते हुए ससद-सदस्य श्री विलशायरने कहा कि सरकारको भारतीयोकी शिक्षाके लिए अधिक साधन उपलब्ध करने चाहिए। भारतीयोंको शिक्षाकी आवश्यकता है और जिन भारतीयोका जन्म नेटालमे हुआ है उनके प्रति सरकारकी जिम्मेदारी खास है। इस भाषणके लिए हमे इन सज्जनका आभार मानना चाहिए। ज्यो-ज्यो शिक्षाका प्रसार अधिक होगा त्यो-त्यो हर प्रकारसे हमारी स्थितिमे सुधार होनेकी सम्भावना है। आखिर अपना कर्तव्य पूरा किये बिना सरकारका छुटकारा नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेडीस्मिथमें भारतीयोकी अलग पाठशाला नही है, इसीलिए सरकारने अच्छी स्थितिके भारतीयोके बच्चोको वर्तमान पाठशालामे प्रविष्ट करनेकी स्वीकृति दे दी है।

ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर कालोनीके शिक्षा विभागके भूतपूर्व अधीक्षक श्री आर्जेटने ऑरेंज रिवर कालोनीमे भाषण देते हुए कहा कि वे काफिरो (हब्शियो) की शिक्षाके लिए बसूटोलैंडमे विशेष प्रयास करेगे। औद्योगिक शिक्षाकी ओर उनका ध्यान पर्याप्त है। भारतीयोकी शिक्षाके प्रति भी उनका खयाल बहुत सहानुभूतिपूर्ण था और वे ट्रान्सवालमे उनके बच्चोके लिए पाठशालाएँ स्थापित करनेका प्रयास सदा करते रहे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ६-५-१९०५

३५९. पत्र : छगनलाल गांधीको

२१-२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक और एंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
मई ६, १९०५

[चि० छगनलाल,][1]

आज सारी गुजराती सामग्री भेज रहा हूँ, शायद अब और न भेजूँ। खडेरियाने मुझे बताया कि उसने पीटर्सबर्ग-अभिनन्दनका[2] विवरण भेजा है। मैं गुजरातीमे जो सम्पादकीय उपलेख भेज रहा हूँ अगर इसके खिलाफ कुछ हो तो तुम वह भाग काट देना यानी स्थानापन्न उच्चायुक्तकी झूठी तारीफकी कोई बात नही हो। उसका उत्तर उतना सन्तोषप्रद नही है जितना हो सकता था। मैं जो भेज रहा हूँ उससे यह साफ दिखेगा।

देसाईने बताया कि तुम्हारा स्वास्थ्य बहुत अच्छा नही है। तुम्हारे फुसी-फोडे हो रहे हैं। यह अक्षम्य है। जरूर भोजनकी कोई गड़बड़ी होगी। वेस्टके सादे जीवनका अनुकरण करो। इसपर जितना जोर दूँ उतना थोडा है। दोपहरके भोजनमें हम सब कूनेकी रोटी, मूँगफली, मक्खन और मुरब्बा ले रहे हैं। रोटी घर काट लेते हैं और दफ्तरमे ले जाते हैं और भोजन वही हो जाता है। अगर शहरमे भोजन करना पडे तो तुम भी ऐसा ही कर सकते हो। मैं चाहता हूँ कि तुम बहुत सभालकर सब-कुछ करो। भूकम्प-निधिके[3] बारेमें तुम्हे गुजरातियोसे मिलना चाहिए। वह कही ठप न हो जाये। यहाँ मैं जो-कुछ कर सकता हूँ, कर रहा हूँ। क्या कावा अभीतक नही आये? श्री मुखर्जी और श्री दादाभाई दोनोने मुझे लिखा है कि अप्रैलके बीचमे उन्हे *ओपिनियन*के अक नही मिले[4]। . . . चैंकोके सम्बन्धमें है . . . . . .

तुम्हारा और चि० मगनलालका पत्र मिला। इस बार पिछली बारसे गुजराती सामग्री दुगुनी भेज रहा हूँ। अभी और भी भेजनेकी उम्मीद है। वहाँकी तकलीफोका तुम्हारी चिट्ठीसे अन्दाज कर सकता हूँ। मै अपने अवकाशका बहुत-सा समय तमिलमे लगाता हूँ। इसलिए जितना चाहिए उतना नही कर पाता। अबसे जहाँतक बनेगा गुजरातीकी तो काफी सामग्री आजकी तरह शनिवारकी डाकसे रवाना कर दिया करूँगा। मै जो कुछ लिखता हूँ उसे दुबारा नही पढता, इसका ध्यान रखना। मुझे *इंडियन रिव्यू* भेजना। मैं उसमें से तरजुमा कर सकूँगा।

चि० मगनलालकी चिट्ठी पढकर सन्तोष हुआ। तुम लोगोने शाक-सब्जी उगा ली है, यह अच्छा किया। कीडे शाक-सब्जीको नुकसान तो नही पहुँचाते, यह लिखना। सबसे अच्छी किसकी क्यारी है? दादा सेठने अभीतक मुझे बुलाया नही है। अगर वे बुलायेंगे तो मैं आऊँगा।

मोहनदासके आशीर्वाद

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४२३६) से।

१. दफ्तरी नकलमें सरनामा नहीं है; किन्तु पत्रकी इबारतसे यह असन्दिग्ध रूपसे प्रकट है कि यह किसको लिखा गया था।

२. यह अभिनन्दनपत्र उच्चायुक्तको दिया गया था; "देखिए सर आर्थर लाली और ब्रिटिश भारतीय," १३-५-१९०५।

३. देखिए "भारतमें भूकम्प," १३-५-१९०५।

४. यहाँसे आगे शब्द अपठनीय हैं। इसके आगे दो अनुच्छेद गुजरातीमें हैं जिनका अनुवाद यहाँ दिया गया है।

३६०. नये उच्चायुक्त और भारतीय

[मई ६, १९०५][1]

परमश्रेष्ठ लॉर्ड सेल्वोर्न अब थोडे ही दिनोमें जोहानिसबर्ग पहुँच जायेंगे। ब्रिटेनके प्रसिद्ध पत्रकार श्री स्टेडने अप्रैल मासके *रिव्यू ऑफ रिव्यूज़* नामक पत्रमे उनका जीवन-वृत्त दिया है, उससे प्रकट होता है कि परमश्रेष्ठ सेल्वोर्नने जब नवम्बर १, १८९९ को लडाईके बारेमे भाषण दिया था तब वे श्री चेम्बरलेनके सचिव थे। उन्होंने भाषण देते हुए बताया था कि युद्ध करनेका उद्देश्य बोअरोके अधिकार छीन लेना नही था बल्कि बोअरो तथा अंग्रेजोको समान अधिकार देना था। ब्रिटिश सरकारने स्वार्थ-भाव या आर्थिक विचारोंसे प्रेरित होकर यह कार्रवाई नही की थी, बल्कि उसे तो दूसरोके अधिकारोकी छानवीन करके उनका सरक्षण करना था। ब्रिटिश सरकार जैसे केनेडा तथा आस्ट्रेलियाके लोगोकी सरक्षक है वैसे ही दक्षिण आफ्रिकाके सिद्दियो और ट्रान्सवालमें बसे भारतीयोकी भी सरक्षक है। इसलिए उनकी रक्षाके लिए युद्ध कर्त्तव्य हो गया था। ब्रिटिश सरकारने जो वचन दिया है उसकी पूर्ति करना उसका कर्त्तव्य हो तो उसे उपर्युक्त सब लोगोके अधिकारोकी रक्षा करनी चाहिए। ब्रिटिश सरकारका कर्त्तव्य था कि वह ब्रिटिश प्रजाके, फिर वह काली हो या गोरी और चाहे जहाँ जाये वहाँ, अधिकार सुरक्षित रखे। परमश्रेष्ठने इस विचारसे लडाईका समर्थन किया।

श्री स्टेड इस भाषणका विवरण देते हुए कहते है कि अब यह देखना है कि लॉर्ड सेल्वोर्न किस तरह अपने वचनका पालन करते है। हम आशा करते है कि उक्त महोदय अपने वचनोपर दृढ रहकर अंग्रेजोका नाम उज्ज्वल करेंगे और भारतीयोको उन अत्याचारोसे मुक्त करायेंगे, जो उनपर किये जा रहे है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १३-५-१९०५

१. देखिये "पत्र: छगनलाल गांधीको," मई ६, १९०५।

३६१. पत्र : छगनलाल गांधीको

२१-२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक व एंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
मई ११, १९०५

श्री छगनलाल खुशालचन्द गाधी
मार्फत इन्टरनेशनल प्रिंटिंग प्रेस
फीनिक्स

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। काबाने मुझे लिखा है कि वे जब रवाना होना चाहते थे तब रवाना नही हो सके। वे १९ अप्रैलको जरूर रवाना हो चुके होगे। उनका जो पत्र अभी मिला है उसमे उन्होंनें लिखा है कि वे अपनी पत्नीको साथ नही ला रहे हैं। वे अपने साथ शायद हरिलाल और गोकुलदासको लायें; मगर चूंकि उनका कोई तार नही आया है, इसलिए मेरा यह खयाल नही कि वे रवाना हुए है। मुझे ऑर्चर्ड बहुत असन्तुष्ट जान पड़ते हैं। तुमने उनके बारेमे कुछ नही कहा है। मेहरबानी करके मुझे बताओ कि क्या बात है। आनन्दलालकी[1] एक अजीब चिट्ठी मिली है। उनका कहना है कि वे अकेले रहते हैं और चाहते है कि जिन कमरोमे वीन रहते थे मैं उन्हे उनमे रहने दूं। इसका कारण क्या है? तुम इस विषयमे चुप्पी क्यो साधे रहे? श्री एम०सी० कमरुद्दीनकी पेढीने मुझे अपने ब्यौरे भेज दिये है। एक ९२ पौड २ शिलिंग ११ पैंस का किरायेके बाबत है और दूसरा २३८ पौड ९ शिलिंग २ पैंसका दूसरे सामानके बाबत। क्या तुमने उन्हे जाँच लिया है? लन्दनसे आये हुए मालके मूल बीजक तुम्हारे पास हैं या नही? मैं उन्हे किरायेके हिसाबकी रकमका ड्राफ्ट भेज रहा हूँ। अलबत्ता हिसाबमे कोई भूल-चूक होगी तो उसमें सुधार होगा ही। मेरे पास फिलहाल कुछ पैसा है, इसलिए मैं पारसी रुस्तमजीको ५०० पौड भेज रहा हूँ ताकि वे उसका उपयोग कर सके और जब तुम्हें रुपयेकी जरूरत पडे तो तुम उनसे कुछ ले सको।

शुभचिन्तक,
[मो० क० गांधी][2]

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस०एन० ४२३७)से। सौजन्य श्री अरुण गाधी, बम्बई।

१. अमृतलाल गांधीके पुत्र और गांधीजीके भतीजे।
२. पत्रका यह अंश फट गया है।

३६२. पत्र: उमर हाजी आमद झवेरीको

[जोहानिसबर्ग]
मई ११, १९०५

श्री उमर हाजी आमद
बॉक्स ४४१
डर्बन

श्री सेठ उमर हाजी आमद,

आपका पत्र मिला। अब्दुल्ला सेठके बारेमें बहुत दु:खी हूँ। कृपया दादा सेठको कहें कि अगर वे मुझे बुलायें तो बगैर पैसे आनेके लिए कहकर संकोचमें न डालें। फीनिक्समें रुपया खर्च हो जानेसे मुझे बहुत सोच-विचार कर चलना पड़ता है।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० १०।

३६३. सर आर्थर लाली और ब्रिटिश भारतीय

परमश्रेष्ठ उच्चायुक्त एक कृषि-प्रदर्शनीके सम्बन्धमें पीटर्सबर्ग आये हुए हैं। ब्रिटिश भारतीयोंने उक्त अवसरसे लाभ उठाकर उन्हें राजभक्तिपूर्ण अभिनन्दनपत्र दिया। यह कार्य प्रशंसनीय है। उन्होंने अभिनन्दनपत्रके उत्तरमें सर आर्थर लालीसे भारतीय प्रश्नके सम्बन्धमें कुछ बातें कहलवा ली। बताया जाता है कि परमश्रेष्ठने यह कहा,

इस समय सरकारके सामने जो कठिनाइयाँ उपस्थित हैं उनमें इस देशमें ब्रिटिश भारतीयोंके दर्जेसे सम्बन्धित कठिनाईसे बड़ी अन्य कोई कठिनाई नहीं है। सरकार अनुभव करती है कि उन्होंने भारतमें और अन्य भागोंमें साम्राज्यकी विशिष्ट और गौरवास्पद सेवाएँ की हैं। सरकार उनकी कीमतको भलीभाँति जानती है। परन्तु इस देशके लोग यह मानते हैं कि भारतीयोंकी स्थिति यहाँ वैसी नहीं है जैसी उस देशमें है जिससे वे आये हैं। रंगदार वर्गोंके साथ जो पुराना इतिहास जुड़ा है उसके कारण यहाँ लोगोंके मनमें पूर्वग्रह उदित हो गये हैं और भारतीयोंकी उपस्थितिपर एक बिलकुल ही अलग दृष्टिकोणसे विचार किया जाता है। उन्हें भरोसा है कि भारतीय इसे अवश्य स्वीकार करेंगे। निष्पक्ष रूपसे न्याय करना सरकारका कर्त्तव्य है और ब्रिटिश सरकार और औपनिवेशिक प्रशासनके बीच अभीतक इस प्रश्नपर पत्र-व्यवहार हो रहा है।

हम भारतकी साम्राज्यके प्रति सेवाओंको मान्य करनेके लिए सर आर्थर लालीको धन्यवाद देते हैं। किन्तु हमें यह कहते हुए दु:ख होता है कि इस मान्यताका परिणाम प्राय: नगण्य है। हम परमश्रेष्ठ द्वारा श्री लिटिलटनको दी गई इस सलाहको स्मरण किये बिना नहीं रह सकते कि ब्रिटिश भारतीयोंसे जो वादे अज्ञानवश किये गये थे उन्हें पूरा करनेके बजाय तोड़ देना ज्यादा

अच्छा है। ब्रिटिश भारतीय संघने यह बात निर्णयात्मक रूपसे सिद्ध कर दी है कि ट्रान्सवालमें भारतीयोसे वादे परिस्थितियोको पूरी तरह जानते हुए किये गये थे, अज्ञानवश हरगिज नही। हमें भय है कि परमश्रेष्ठने — यदि हम आदरपूर्वक कहे तो — अपने उक्त कथनमे वही गलती की है। वे भारतीयोको अन्य रगदार वर्गोमे किसलिए मिला देते है? यदि ट्रान्सवालमे श्वेत लोगोका वडा भाग किसी भेदको न देख पाये तो क्या उसे ठीक-ठीक समझानेकी दृष्टिसे प्रशिक्षित करना सरकारका कर्तव्य नही है? भारतीयोसे अनुचित पूर्वग्रहको स्वीकार करनेकी आशा कैसे की जाती है — जब इसका अर्थ यह है कि वे उसके आगे झुके। इसमे सन्देह नही कि ऐसे पूर्वग्रहको तथ्य रूपमे स्वीकार करना आवश्यक है; किन्तु यह केवल इसलिए आवश्यक है कि यह पूर्वग्रह शान्तिके साथ विचार-विनिमय करके और जनताके सामने सच्चे तथ्योको प्रस्तुत करके दूर किया जा सके। सरकार तभी "निष्पक्ष न्याय करेगी" जब वह प्रश्नको साहसपूर्वक हाथमे लेगी और अप्रत्यक्ष रूपसे प्रचारित पूर्वग्रहको वढावा देनेके बजाय दृढ रुख इख्तियार करके उसकी लहरको रोकनेका प्रयत्न करेगी। जहाँतक ब्रिटिश सरकारसे पत्रव्यवहार चलानेका सम्बन्ध है, हमारे पास यह माननेके पर्याप्त कारण है कि इसका मंशा उस सरकारसे जैसे भी हो वैसे ब्रिटिश भारतीयोपर और भी निर्योग्यताएँ लादनेकी स्वीकृति प्राप्त करना है। क्या परमश्रेष्ठने ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयो द्वारा प्रस्तुत अत्यन्त नम्र प्रस्तावोका अध्ययन ध्यानसे किया है? क्या उनकी सरकारने ट्रान्सवालके लोगोसे कभी यह कहा है कि भारतीयोकी मागे अत्यन्त उचित है और उन्होने श्वेत उपनिवेशियोके मतसे यथासम्भव समझौता करनेकी प्रशंसनीय इच्छा व्यक्त की है?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १३–५–१९०५

३६४. बच्चोंमें धूम्रपान

केप *गवर्नमेंट गज़टके* एक हालके अकमे एक मनोरजक विधेयक छपा है। इसे केप विधान-सभामे प्रसिद्ध सदस्य श्री टी०एल०श्राइनर पेश करेंगे। श्री श्राइनर एक लोक-हितैषी और नीति-वादी व्यक्ति विख्यात है। प्रस्तुत विधेयकका नाम "बाल धूम्रपान-निषेध विधेयक" है। उसका उद्देश्य उन बालकोमे धूम्रपान रोकना है जो १६ वर्षकी आयुके या उससे कम आयुके हो या जिनकी आयु इतनी लगती हो। माननीय सदस्य जिस रीतिसे अपने उद्देश्यको सफल करना चाहते है वह बहुत सरल है। विधेयकके अनुसार तम्वाकू-विक्रेताओके लिए उनको तम्वाकू, सिगार अथवा सिगरेट बेचना अपराध होगा जो १६ वर्षके या उससे कम आयुके लगते हो। उससे पुलिसको यह अधिकार प्राप्त होगा कि यदि उसे ऐसे वालकोके पास तम्वाकू, पाइप, सिगार अथवा सिगरेट मिले तो वह उन्हे जव्त कर ले और नष्ट कर दे। उसके अनुसार माता-पिताओ अथवा अभिभावको को अधिकार होगा कि वे उन हानिकर वस्तुओके विक्रेता पर, उन वस्तुओके नष्ट कर दिये जानेके बावजूद, वालकोसे प्राप्त रुपया वापस करनेके लिए मुकदमा दायर करे। साथ ही उससे सर-कारी शालाओके शिक्षकोको यह अधिकार मिल जायेगा कि वे धूम्रपानको शाला-सम्वन्धी अपराध मानकर लडकोको धूम्रपान करनेपर दण्ड दे। यह प्राय कहा गया है कि लोग सासदिक विधानोसे परहेजगार नही वनाये जा सकते और सम्भव है, यह वात श्री श्राइनर के विधेयक पर उसी तरह लागू हो, किन्तु हम इस विचारसे सहमत नही हो सकते कि नशा-बन्दी कानूनसे कोई अच्छा फल नही निकला है। हमे ऐसा लगता है कि यदि यह विधेयक

केप विधानसभाके द्वारा स्वीकृत हो गया तो यह ठीक दिशामें एक कदम होगा। तम्बाकू पीना किसी भी हालतमें कोई वाछनीय या स्वच्छ आदत नही है। और मुमकिन है किसी विशेष स्थितिमें उसका कुछ उपयोग हो और उससे किसी दर्दमें भी बहुत राहत मिलती हो, किन्तु तम्बाकू पीनेकी आदत बालकोके लिए बेशक नुकसानदेह है और उसे समस्त वैध साधनोसे रोकना उचित है। विधेयक शायद बुराईके व्यापक अस्तित्वका प्रमाण है। वस्तुतः यह आदत तार चपरासियो और हरकारोमें, जिनकी आयु १६ वर्षसे बहुत कम होती है, अक्सर देखी जाती है। बच्चोके धूम्रपानके पक्षमें प्राय यह भ्रामक तर्क दिया जाता है कि जब वह वयस्कोके लिए अच्छा है तो बालकोके लिए बुरा नही हो सकता। किन्तु तार्किक सज्जन यदि क्षण-भर सोचे तो उन्हे विश्वास हो जायेगा कि जो चीज एकके लिए अच्छी होती है वह अनिवार्यत. दूसरेके लिए अच्छी नही होती; और तम्बाकू एक ऐसी चीज है जिसका व्यवहार बालकोंको निर्भयतापूर्वक नही करने देना चाहिए। इससे उनके शरीरमे घुन लग जाता है और मानसिक शक्ति कमजोर पड़ जाती है। इसलिए हम आशा करते हैं कि श्री श्राइनर केप विधानसभाको यह विधेयक स्वीकार करनेके लिए रजामन्द कर सकेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १३–५–१९०५

३६५. भारतमें भूकम्प

भारतसे हालकी डाकमे प्राप्त ताजे समाचारोसे यह जानकारी पूरी तरह मिलती है कि भारतमे भूकम्पसे कैसी हानि हुई है। इस ईश्वरीय प्रकोपसे भारतके उत्तरी क्षेत्रके निवासियोपर जो मुसीबत आई है वह वर्षोतक नही भुलाई जा सकेगी। अनेक पुरानी ऐतिहासिक इमारतें, अनेक गाँव और बडे-बडे शहरोके मध्य मकान, गरीबोके सादे झोपडे और तम्बुओमे आबाद सैनिक छावनियाँ — सभी बरबाद हो गई हैं। कितने ही परिवारोका नाम-निशान भी नही रहा है। धर्मशाला, काँगडा घाटी, पालनपुर और मसूरीमे सबसे अधिक हानि हुई है। इस आकस्मिक घटनाके शिकार लोगोकी दुर्दशाका विवरण अत्यन्त करुणाजनक है। कई क्षेत्रोसे तारका सम्बन्ध टूट गया है। इससे वहाँके लोगोकी कैसी दुर्दशा हुई है इसका समाचार तक प्राप्त नही हो सका है। फलस्वरूप सहायता और पानीके अभावमे बिलखते हुए लोग मृत्युके ग्रास हो गये हैं। सरकारकी ओरसे बड़ी सहानुभूति प्रदर्शित की गई और सहायताके लिए खास रेलगाड़ियाँ चलाकर यथासम्भव सहायता पहुँचाई गई। सकटग्रस्त लोगोकी सहायताके लिए भारत और इग्लैडमे चन्दे किये गये हैं। इनमे बडी-बड़ी रकमें दी गई है। हमारे पाठकोको स्मरण होगा कि अपने इन रावसे रक बने भारतीय भाइयोके सहायतार्थ हमारी ओरसे एक कोष खोला गया है। आशा है, इसमें सभी भाई यथाशक्ति रकमें भेजकर अपना कर्तव्य पूरा करेगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १३–५–१९०५

३६६. पत्र : एनी बेसेंटको

[जोहानिसबर्ग]
मई १३, १९०५

श्रीमती एनी बेसेंट
सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज
बनारस सिटी

प्रिय महोदया,

इन्टरनेशनल प्रिंटिंग प्रेसके प्रबधकोने आपका वह पत्र मेरे पास भेजा है जो आपने अपनी *भगवद्गीताको* छापनेके सम्बन्धमे उनको लिखा था। पुस्तकको छापने और उसमें आपकी तसवीर लगानेकी सलाहकी सारी जिम्मेदारी अवश्य ही मेरे ऊपर है। मै जानता हूँ कि मामूली तौरपर किसी लेखककी किताब उसकी अनुमतिके विना छापना उचित नही माना जाता। एक सज्जनने प्रस्ताव किया था कि अगर प्रबन्धक भगवद्गीताका कोई अनुवाद लागत-मात्र लेकर छापे तो वे हिन्दू लडको और दूसरोमें बाँटनेके लिए पुस्तक छपवा लेंगे। उन्हे इसकी जल्दी भी थी। आपके अनुवादको छापनेका सुझाव दिया गया। इस मामलेमे मेरी सलाह माँगी गई। चूँकि आपसे पूछनेका समय नही था, इसलिए बहुत सोच-विचार कर मैंने सलाह दी कि वे दक्षिण आफ्रिकामे प्रचारके लिए आपका अनुवाद छाप सकते हैं। मुझे लगा कि प्रवन्धकोका उद्देश्य शुद्ध है और यह सस्करण जिन परिस्थितियोमें प्रकाशित किया गया था उनको जाननेपर आप भी इस प्रत्यक्ष अनौचित्यकी उपेक्षा कर देंगी। किताबके प्रकाशनके साथ ही साथ सारी स्थितिको स्पष्ट करते हुए प्रबन्धक और मालिकके हस्ताक्षरोसे आपको पत्र भेजा गया था। प्रतीत होता है, वह कही गुम हो गया। हम सब हैरान थे कि आपका स्वीकृति या अस्वीकृतिका पत्र क्यो नही आया। परन्तु आपके २७ मार्चके पत्रसे स्पष्ट है कि इसके पहले आपकी कोई सूचना क्यो नही मिली। तसवीरके बारेमे इतना ही कह सकता हूँ कि अगर कोई गलती हुई है तो वह आपके प्रति अत्यधिक आदर-भावके कारण ही। मैंने जब तसवीर लगानेका सुझाव दिया था तब कुछ लोग इसका जो अर्थ लगा सकते है, वह मेरे ध्यानमे था। किन्तु फिर मैंने अनुभव किया कि जब आप जानेंगी कि पुस्तककी बहुत-सी प्रतियाँ भारतीय युवकोको मिली हैं तब आप इस गलतीको, अगर वह गलती है तो, माफ कर देंगी। सही हो या गलत, आप जानती ही हैं, भारतमे पवित्र पुस्तकोमे ऐसी तसवीरोका प्रकाशन या मुद्रण असाधारण नही है। केवल १,००० प्रतियाँ छापी गई थी। उनमे से शायद २०० से अधिक शेष नही हैं और ये अब शायद प्रति मास ५ प्रतियोकी दरसे बाँटी या बेची जा रही है — सो भी सच्चे जिज्ञासुओको।

मैंने सारी स्थिति आपके सामने रख दी है और मैंने आपकी भावनाओके विरुद्ध जो अपराध किया है, अब उसके लिए गहरा खेद-प्रकाश करना और क्षमा माँगना शेष रहता है। यदि आपके खयालसे कोई सार्वजनिक वक्तव्य देना या पुस्तककी बिक्री पूर्णत बन्द करना या केवल तसवीरको पुस्तकमें से निकाल देना आवश्यक हो तो आपकी इच्छाओकी पूर्ति अवश्य की जायेगी।

आपका आज्ञाकारी सेवक,

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४२३८)से।

३६७. श्री गांधीका स्पष्टीकरण[1]

मई १३, १९०५

सम्पादकजीने ऊपरका पत्र मेरे पास भेजा है, इससे मुझे प्रसन्नता हुई। श्री वावड़ाने अपना विचार बताया, इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। मैंने जो भाषण दिये उनमें मेरा एकमात्र हेतु था भारतीयोकी सेवा करना। भारतमें हिन्दू धर्मका क्या रूप है इसका चित्र उपस्थित करनेका निमन्त्रण मुझे मिला था। उसको मैंने स्वीकार कर लिया। उस विषयका विवेचन करते हुए दूसरे धर्मोसे तुलना करना आवश्यक हो गया। किन्तु उसमें मेरा एक ही इरादा यह था कि मै, जहाँतक बने, हर धर्मकी अच्छी बातें बताकर गोरोके मनपर अच्छी छाप डालूँ। मैंने जो-जो तथ्य बताये वे सब उस इतिहाससे लिये गये है जिसे हम बचपनसे पाठशालामे पढ़ते आये है। इस्लामका प्रचार जोर-जबरदस्तीसे हुआ, यह बात इतिहास बताता है। किन्तु उसके साथ मैंने बताया कि इस्लामके प्रचारका प्रबल कारण है — उसकी सादगी और सबको समान समझनेकी खूबी। निम्नवर्गीय हिन्दू ज्यादातर मुसलमान हुए, यह बात भी सिद्ध होने योग्य है और मेरी समझमें इसमे कोई बुराई नही है। मेरे अपने मनमे ब्राह्मण और भगीके बीच कोई भेद नही है और मै इसमें इस्लामधर्मकी श्रेष्ठता मानता हूँ कि जो लोग हिन्दू धर्मके भेदभावसे असन्तुष्ट हुए उन्होने इस्लामको स्वीकार करके अपनी स्थिति सुधारी है। फिर मैंने यह भी नही कहा कि जितने हिन्दू मुसलमान हुए वे सब नीचे वर्णके थे और नीचे वर्णमें केवल ढेढ ही आते है ऐसा तो मुझे खयालतक नही है। ऊँचे वर्णके हिन्दू अर्थात् ब्राह्मण और क्षत्रिय भी मुसलमान हुए है मै यह स्वीकार करता हूँ, किन्तु उसमें अधिक भाग उनका नही था, यह जगत-प्रसिद्ध बात है। परन्तु मुझे मुख्य जोर इस बातपर देना है कि नीचे वर्णके हिन्दू मुसलमान हुए इसमें इस्लाम धर्मकी तनिक भी हीनता नही है। उलटे यह बात उसकी खूबी बताती है और मुसलमानोको इसका गर्व होना चाहिए।

जुनून (जोश) के बारेमें मेरा मत जैसा मैंने बताया वैसा ही है। श्री वावडा जुनूनका अर्थ उलटा लगाते है। मैंने जुनून शब्दका सारार्थ लिया है और मैंने स्पष्ट कहा है कि यह इस्लामकी एक शक्ति है। सच्चे जुनूनके बिना कोई अच्छा काम नही हो सकता। तुर्क जब सच्चे जुनूनसे जानकी बाजी लगाकर लडे तभी वे रूस और ग्रीसके साथ टक्कर ले सके और आज सब लोग तुर्क सिपाहियोसे भय खाते है। जबतक राजपूत लोग जुनूनसे लडे तबतक कोई राजपूतानेको हाथ भी नही लगा सका। जुनूनसे जापान जूझता है तभी तो वह पोर्ट आर्थरका किला सर कर सकता है।[2] जिस तरह युद्धमें, उसी तरह दूसरे कामोमें भी जुनूनकी

१. गांधीजीने जोहानिसबर्ग थियोसॉफिकल सोसाइटीके तत्वावधानमें "हिन्दू धर्म" पर दिये गये अपने भाषणोंमेंसे (देखिए "हिन्दू धर्म", मार्च ४ और ११, १९०५) एकमें इस्लामके प्रचारकी चर्चा करते हुए कहा था कि इस्लाम धर्मको अधिकतर निम्नवर्गीय लोगोंने अपनाया। उन्होंने यह भी कहा था कि "जोश" या "जुनून" इस्लामकी एक जबर्दस्त खूबी है, जिससे कई अच्छे काम हुए हैं और कई बार बुरे भी।

गांधीजीके इस कथनसे भारतीय मुसलमानोंमें खलबली पैदा हो गई और इसके विरुद्ध *इंडियन ओपीनियनके* सम्पादकको कई पत्र भेजे गये। सम्पादकने इनमें से तीन पत्र गांधीजीके इस स्पष्टीकरणके साथ प्रकाशित किये थे। यह स्पष्टीकरण श्री ए० ई० वावड़ाके मई ९, १९०५ के पत्रका उत्तर है।

२. पोर्ट आर्थरके रूसी जहाजी बेड़ेको जापानियोंने अगस्त १०, १९०४को हराया।

जरूरत है और यह अच्छा गुण है। जुनूनसे एडीसन बडी-बडी खोजे करता है। जुनूनसे ही वाटने रेलकी खोज की और ससारमे यात्राको सरल बनाया। और यही जुनून हुआ तो हम इकट्ठे होकर गोरोके साथ सघर्षमे जीतकर अपनी शिकायते दूर करा सकेगे। यह जुनून इस्लामका खास गुण है। ऐसा ही जुनून दूसरे कामोमे भी बरता जाये तो बडा लाभ हो।

अब मेरे कहनेके लिए अधिक नही रहता। मुझे मालूम है, जो सवाल श्री बावड़ाने उठाया है वही दूसरोने भी उठाया है। मैंने जो सच समझा है, वह कहा है। वैसा कहनेमे मेरा इरादा एक भी व्यक्तिकी भावनाको ठेस पहुँचानेका नही था और मेरे मनमे हिन्दू, मुसलमान और ईसाईके बीच कोई भेद नही है। ऐसा मैं कई बार कह चुका हूँ और मुझे लगता है कि मैंने उसीके अनुसार आचरण किया है। मेरा आग्रह है कि हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण या भगीके बीच कोई भी भेदभाव रखे बिना सबके प्रति समदृष्टि रखनी चाहिए। हिन्दू धर्मकी शिक्षा यही है और यही मेरा धर्म है।

मो० क० गांधी

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २०-५-१९०५

३६८. पत्र: छगनलाल गांधीको

२१-२४, कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक ऐंड ऐंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
मई १३, १९०५

श्री छगनलाल खुशालचन्द गाधी

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। उससे आनन्दलालके बारेमे समाधान हो जाता है। तो भी मैं उनसे यह जाननेको उत्सुक हूँ कि वे अकेले क्यो रहना चाहते है। अगर रुस्तमजीकी पेढीके लोग ढीले है तो तुम उनसे जल्दी कराओ। एम० के० पटेलने अभीतक अदायगी नही की है। मेरा खयाल है, मुझे वह रुपया अगले महीनेमे किसी समय मिल जायेगा। सूचना मैं तुमको समझा चुका हूँ। उसमे तुमने जो ६ पौडकी रकम देखी वह उस चन्देका हिस्सा है जिसे मैं केप टाउनसे लाया था। मै तुमसे कह ही चुका हूँ कि उस सूचीमे जो तीन रकमे दर्ज है वे केप टाउनसे लाये गये चन्देकी है। और इन रकमोको देनेवालोके नाम, जिसमे विज्ञापकोके नाम भी शामिल है, तुम्हारे पास भेजे ही जा चुके है। क्या तुमको वे नही मिले? १ पौंड १४ शिलिंगकी रकम श्री गुलके वसूल किये दो और चन्दोकी है। उनमे से एक ग्राहक विल्सन है। दूसरे ग्राहकका नाम मुझे लच्छीरामसे नही मिला। वही रुपया लाये थे। लछीरामको पार्सल तो मिल गया है, लेकिन उसने अभी रुपया नही दिया है। तुम्हे पाँच पौड प्रेसको नही देने है। मैंने बता दिया है कि मैंने यह रकम प्रेसके नाम क्यो डाली है। वह पूँजीगत व्ययका हिस्सा है। इस-लिए तुम्हे उसकी फिक्र करनेकी जरूरत नही। आशा है, जो लोग बीमार थे, अब अच्छे होंगे।

सामके[1] गोली दागनेके मामलेमे हलकी झिड़की और समझाना-बुझाना ही एक उपाय है। मैं समझता हूँ उससे अधिक कुछ नही किया जा सकता। किचिनके बारेमे मेरा सुझाव है, तुम्हे उनके पास जाकर पूछना चाहिए कि वे निठल्लापन क्यों दिखा रहे हैं। मैं जानता हूँ, वे बुरा न मानेंगे। बहरहाल यह अच्छा ही होगा कि तुम उन्हें भलीभाँति समझ लो। साप्ताहिक विवरणकी चिन्ता मत करो। तुम्हे तो मासिक पत्रिकाकी केवल दो और प्रतियाँ छापनी हैं। पता नही, पूरी रकम वसूल हो सकेगी या नही। फिर भी, मुझे आशा तो है कि हो जायेगी। इतना कर चुकनेके बाद मुझे लगता है कि हमे बारहो अंक छाप देने चाहिए। तुम ग्यारहवाँ अंक तो अब छाप ही रहे हो; सिर्फ १२ वाँ प्रकाशनके लिए बच जायेगा। शेषके बारेमे, अगर वे चाहते है कि हम उन्हे प्रकाशित करें तो हम उनसे गारटी माँगेंगे। मुझे खुशी है कि तुमको मेरे व्याख्यानोके सम्बन्धमें गुजराती पत्र मिल गया है। अगले अंकमे उसे पूरा-पूरा छाप देना और मेरा पत्र भी।[2] इससे मालूम होता है कि हमारा पत्र बड़े चावसे पढ़ा जाता है। और यही तो हम चाहते भी हैं। कभी-कभी गलतफहमियाँ होगी ही। परन्तु इससे हमें अपने कर्त्तव्यसे विमुख नही होना चाहिए। वह पत्र पहले छापा जाये और मेरा स्पष्टीकरण उसके नीचे। यहाँ भी, वैसी ही कुछ चर्चा चली थी। यद्यपि मैं खुलासा करनेकी कोशिश तो करता रहा हूँ, परन्तु तुमने जो पत्र मुझे भेजा है उससे मैं अधिक विस्तारके साथ और सार्वजनिक रूपसे स्पष्टीकरण कर सकूंगा। फिलहाल तुम मुझसे हर हफ्ते गुजरातीके ३२ सफोंकी आशा रख सकते हो। एन० सेनको बिल क्यो भेजा गया? क्या मदनजीतकी सूचना पर? यदि ऐसी बात है तो तुम उन्हे इस आशयका पत्र लिखो कि मदनजीतके लिखनेपर आपको हिसाब भेजा गया था। नही तो, उन्हे लिख भेजो कि बिल भूलसे चला गया था, और व्यवस्थापक उसके लिए क्षमा-प्रार्थी है। मैं तुम्हारे देखनेके लिए और अगर किचिन, वेस्ट और बीनने श्रीमती बेसेंटका पत्र देखा हो तो उनके देखनेके लिए भी, श्रीमती बेसेंटके नाम प्रेषित अपने पत्रकी[3] नकल भेज रहा हूँ। उन्होने श्रीमती बेसेंटका पत्र न देखा हो तो भी तुम उन्हे वह बात बताकर यह नकल दिखा दो। प्रत्यक्ष है कि बीन तुम्हारे लिए पोलकका रिक्त स्थान पूरा कर रहे है। वे कहते हैं कि यह अच्छा ही हुआ कि वे फीनिक्स चले गये — कमसे-कम तुमसे और मगनलालसे जान-पहचान हो जानेके लिहाजसे ही सही।

तुम्हारा शुभचिन्तक,

मो० क० गांधी

टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४२३९) से।

१. "साम" फीनिक्स बस्तीके इंजीनियर और शिकारी — गोविन्द स्वामी।

२. देखिए "श्री गांधीका स्पष्टीकरण", १३-५-१९०५।

३. देखिए "पत्र: एनी बेसेंटको," मई १३, १९०५।

३६९. पत्र : कैखुसरू व अब्दुल हकको[1]

[जोहानिसबर्ग]
मई १३, १९०५

श्री जालभाई सोरावजी ब्रदर्स
८४, फील्ड स्ट्रीट
डर्वन

भाई कैखुसरू व अब्दुल हक,

इसके साथ ५०० पौडकी हुडी भेज रहा हूँ। इसे प्रेस खातेमे जमा करे। बात यह है कि इतना पैसा मेरे पास अभी बच सकता है। इसीलिए मैंने यह भेजा है। मै जानता हूँ कि इतनी रकम वहाँ रहेगी तो सेठको उसका व्याज बचेगा। उसमें से चि० छगनलालको जितनेकी जरूरत पड़े उतना दे दे बाकी जब मुझे जरूरत पडेगी तब मै मँगा लूँगा। लेकिन मेरे पास जो रुपया फालतू हो उसे वहाँ रखना अधिक ठीक समझता हूं; इसीलिए यह हुंडी भेजता हूँ।

मो० क० गांधीके सलाम

गाधीजीके स्वाक्षरोमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), स० ३५।

३७०. पत्र : पारसी रुस्तमजीको

[जोहानिसबर्ग]
मई १३, १९०५

श्री रुस्तमजी जीवनजी घोरखोदू
११, खेतवाड़ी लेन
खेतवाड़ी
बम्बई

श्री सेठ पारसी रुस्तमजी,

आशा है, आप अच्छी तरह पहुँच गये होगे।

भाई कैखुसरू और अब्दुल हकके पत्र मुझे नियमसे मिलते है। वे आपको पत्र लिखते ही है, इसलिए ज्यादा कुछ कहने लायक नही है।

मै जानता हूँ आपको ओवर-ड्राफ्टपर व्याज देना पडता है। फिलहाल मेरे पास थोडा पैसा होनेसे दूकानको ५०० पौडकी हुंडी भेजी है।[2] उसमे से थोडा, करीब २५० पौंड, चि० छगनलालको चला जायेगा। फिर भी बाकी वहाँ जमा रहेगा। मुझे जरूरत पडेगी तो इसे वापस मँगा लूँगा और मेरे पास अतिरिक्त बचेगा तो और भी भेज दूँगा। आपकी छापाखानेपर वाजिब

१. ये दोनों जालभाई सोरावजी ब्रदर्सकी पेढ़ीके व्यवस्थापक थे। पेढीके मालिक पारसी रुस्तमजी उन दिनों भारतमें थे।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

बडी रकम लम्बे अर्से रखना मनमें अच्छा नही लगता और जब मेरे पास अतिरिक्त रुपया हो तब तो ऐसा होना ही नही चाहिए। यह मेरी मान्यता है।

बच्चोकी पढाईकी चिन्ता रखे। मैंने आपकी तबीयतके बारेमे जो-कुछ कहा है उसे न भूले।

माजीको सलाम

मो० क० गांधीके सलाम

गाधीजीके स्वाक्षरोमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ३६।

३७१. पत्र : दादाभाई नौरोजीको[1]

[जोहानिसबर्ग
मई १५, १९०५]

[महोदय,]

नेटालमे अभी हालमें भारतीय-विरोधी आन्दोलन बहुत सक्रिय हो उठा है। हमारा ध्यान विभिन्न विधेयकोकी ओर गया है जो *गवर्नमेंट गज़टमें* छपे है और अब नेटाल ससदके सामने हैं।

बन्दूक आदि शस्त्र-विधेयक भारतीयोको किसी औचित्यके विना ही वतनियोके साथ सम्बद्ध कर देता है और जहाँतक उस विधेयकका सम्बन्ध है, उन्हें वतनी मामलोके मुहकमेके अन्तर्गत रख देता है। इसका नैतिक प्रभाव क्या हो सकता है, यह कहनेकी आवश्यकता नही है।

एक दूसरा विधेयक प्रकाशित हुआ है। उसके अनुसार नेटालके देहाती क्षेत्रोमे भारतीयोका भूमि-अधिकार अधिकार ही नही रह जाता। यदि किसी व्यक्ति या कम्पनीके अधिकारमे २४९ एकडसे अधिक देहाती जमीन हो और वह बेकार पडी हो तो उसपर इस विधेयकमें प्रतिवर्ष प्रति एकड आधा पेस कर लगानेका विधान है। इस विधेयकके अन्तर्गत यदि ऐसी भूमि भारतीयोके अधिकारमें हो, परन्तु वे उसके मालिक न हो तो उन्हे कर देना होगा। यह अपमानजनक और अन्यायपूर्ण है। भारतीयोने ही समुद्रतटकी भूमिमे कृपिको सम्भव बनाया है।

[अंग्रेजीसे]

इडिया आफिस : ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, १६५०।

१. मूल उपलब्ध नहीं है। यह केवल एक अंश है जिसे दादाभाई नौरोजीने भारत-मन्त्रीके नाम अपने जून ६, १९०५के पत्रमें उद्धृत किया था।

३७२. पत्र : हाजी दादा हाजी हबीबको

[जोहानिसबर्ग]
मई १५, १९०५

श्री हाजी दादा हाजी हबीब
बॉक्स ८८
डर्बन

श्री सेठ हाजी दादा हाजी हबीब,

आपका तार मिला। मैने जवाब दिया है। लॉर्ड सेल्बोर्न[1] इसी महीने आनेवाले हैं। इसलिए जबतक वे आ नही जाते मेरा निकलना बहुत मुश्किल है। उन्हे मानपत्र देनेकी बात चल रही है और अगर वह दिया गया तो मुझे अवश्य रुकना होगा। वे महाशय मानपत्र स्वीकार करेंगे या नही, यह इस अठवाड़ेमे मालूम हो जायेगा। बीचमे मैने अब्दुल्ला सेठको लिखा है कि खर्चमे न पड़े।

अगर मुझे आना ही पड़े तो मैने कमसे-कम ४० पौंड[2] मँगाये है। इस समय मेरी स्थिति ऐसी नही है कि मै अपने खर्चसे आ सकूँ। इसके लिए माफी चाहता हूँ।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोमे गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), स० ४०।

३७३. पत्र : महान्यायवादीको

[जोहानिसबर्ग]
मई १७, १९०५

सेवामे
महान्यायवादी
पीटरमैरित्सबर्ग

महोदय,

मै प्रमुख प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिकारी और अपने बीच एक ब्रिटिश भारतीयकी जमानतकी जब्तीके सम्बन्धमे किये गये पत्रव्यवहारकी[3] प्रतिलिपि सेवामे भेजनेकी धृष्टता कर रहा हूँ।

मै केवल इस तथ्यपर जोर देना चाहता हूँ कि पासके मालिकने कतई धोखाधड़ी नही की। उसके खुदके कहनेके मुताबिक वह इतना बीमार था कि उपनिवेशसे बाहर जानेके लायक नही था। किसी भी हालतमे पासका दुरुपयोग करनेका उसका कोई इरादा नही था और वह एक गरीब आदमी है जिसे १० पौंड एक दोस्तने उधार दिये थे।

१. ट्रान्सवालके उच्चायुक्त और गवर्नर, १९०५–१९१० ।

२. मई १५, १९०५ का तार: "महीनेके अखीरतक भेजनेसे काम चलेगा। कमसे-कम ४० पौंड जरूर भेजें।"

३. यह उपलब्ध नही है ।

इस परिस्थितिमे और यह देखते हुए कि अदालती कार्रवाईको छोडकर जब्तीका कोई औचित्य नही है, मुझे भरोसा है कि आप प्रमुख प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिकारीको जमानतकी रकम लौटानेका अधिकार देनेकी कृपा करेंगे। इसके कानूनी पहलूपर जोर देनेकी मेरी कोई इच्छा नही है, किन्तु प्रार्थीके प्रति न्याय-दृष्टिसे आपका ध्यान इस ओर आकर्षित करना मै अपना कर्तव्य समझता हूँ।

आपका आज्ञाकारी सेवक

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), स० ६५।

३७४. पत्र: पारसी रुस्तमजीको

[जोहानिसबर्ग]
मई १७, १९०५

[सेवामे]
श्री रुस्तमजी जीवनजी घोरखोदू

श्री सेठ पारसी रुस्तमजी,

आपका पत्र मिला। पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई। आप अपनी माताजीसे मिले। मुझे निश्चय है कि इससे उन्हे बहुत हर्ष हुआ होगा। आपकी यह इच्छा पूरी हुई, यह बडे सतोषकी बात है।

आशा है, अब आप बच्चोके शिक्षण और चालचलनपर खूब ध्यान देंगे।

आपने जहाजमे खुराक सादी रखी, यह बहुत ठीक किया। इससे भी बहुत प्रसन्नता होती है कि आप बम्बईमे अपना घूमना, खाना और नहाना नियमानुसार चलाते रहनेका आश्वासन देते है। मैंने आपकी कुछ सेवा की है, मनमे ऐसा खयाल करनेकी कोई जरूरत नही है। मै तो इतना ही चाहता हूँ कि आपकी तन्दुरुस्ती हमेशा सुधरती चली जाये और आप दीर्घायु होकर अच्छे काम करे।

आप मेरे बच्चोसे जब मिले तो उन्हे यहाँ आनेके लिए समझाये।

यहाँके कामकी जरा भी फिक्र न करे। मुझे समय-समयपर आपके पत्र मिलते है। मुझे लगता है कि दोनो व्यक्ति सन्तोषपूर्वक काम करते है।

मै पिछले मुकदमोके बिलोके बारेमें पूछताछ कर रहा हूँ।

माजीको सलाम। भाई जालको[1] मुझे चिट्ठी लिखनेके लिए कहे। उसके नीचे सोराबसे[1] भी लिखवाये।

मो० क० गांधीके सलाम

गाधीजीके स्वाक्षरोमे गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका, (१९०५), स० ७०।

१. पारसी रुस्तमजीके पुत्र।

३७५. पत्र : कैखुसरू व अब्दुल हकको

[जोहानिसबर्ग]
मई १७, १९०५

श्री जालभाई सोराबजी ब्रदर्स

भाई कैखुसरू और अब्दुल हक,

तुम्हारा पत्र मिला। भूचाल-पीड़ित सहायक कोषमे ज्यादासे-ज्यादा पाँच गिन्नी चन्दा देना बशर्ते कि उमर सेठ इतना दे। उनकी राय ले लेना। उनसे कहना कि दोनो इतना ही चन्दा दे, यह मेरी सलाह है। अगर उमर सेठ इससे कम दे तो तुम भी उनके बराबर ही देना, उनसे अधिक नही। दूसरोसे भी चन्दा लेनेकी तजवीज करना।

रुस्तमजी सेठका पत्र आया है। उसमे श्री लॉटनके पिछले मुकदमोके बिलोंके बारेमे पूछा है। उनमे कुछ कमी सभव हो तो करा लेना और उनका रुपया चुकाया न हो तो चुका कर उसकी खबर उनको दे देना।

रुस्तमजी सेठ चाहते है कि तुम दोनो भाइयोमे से एक अधिकतर हमेशा दूकानमे रहे, ऐसा प्रबध करना और इसके बारेमे उन्हे आश्वासनप्रद पत्र लिख देना। मैंने उनको लिखा है कि तुम्हारे हाथोमे काम हमेशा ठीक ही रहेगा और उन्हे तनिक भी चिन्ता नही करनी है।

तसवीर वहाँ खिचवाई, यह ठीक किया।

मो० क० गांधीके सलाम

गाधीजीके स्वाक्षरोमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ७२।

३७६. पत्र : ईसा हाजी सुमारको

[जोहानिसबर्ग]
मई १८, १९०५

सेवामे
श्री ईसा हाजी सुमार
रानावाव
पोरबन्दर
भारत

श्री सेठ ईसा हाजी सुमार,

आपका पत्र मिला। आपका मत मेरे मतसे मिलता है, यह जानकर मुझे खुशी होती है। यदि आप श्री जोशीको ले जाये, तो कागज वगैराका खर्च इतना कम आयेगा कि उसकी माँग करना व्यर्थ है। जब आप विलायत जायेगे तब उसका लाभ होगा, ऐसा मैं समझता हूँ।

दूसरे भाई आपकी मददके लिए नही बढ़ते, इससे जरा भी हिम्मत हारनेकी जरूरत नही है। जो अपना फर्ज समझते है उन्हे ही वह फर्ज अदा करना है, दूसरे शामिल हों या न हों।

जायदादके बारेमे जो मुकदमा चल रहा है उसका हाल *इंडियन ओपिनियनमें* देखा होगा।

मो० क० गाधीके सलाम

गाधीजीके स्वाक्षरोमे गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), स० ७१।

३७७. पत्र : उमर हाजी आमद झवेरीको

[जोहानिसबर्ग]
मई १८, १९०५

श्री उमर हाजी आमद झवेरी
बॉक्स ४४१
डर्बन

श्री सेठ हाजी उमर आमद,

आपका पत्र मिला। मैं, जितनी जल्दी बनेगा, वहाँ जाऊँगा। किन्तु लॉर्ड सेल्बोर्नको मान-पत्र देनेकी बात है, इसलिए इस कामको निबटानेसे पहले रवाना होना कठिन है।

मै पैसा न माँगता, किन्तु मेरी स्थिति ऐसी है कि इस समय खुद खर्च करके आना बहुत मुश्किल है। इसलिए अगर दादा सेठ थोडा-बहुत पैसा भेज दें तो अच्छा हो।

मो० क० गांधीके सलाम

गाधीजीके स्वाक्षरोमे गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), स० ७५।

३७८. पत्र : एस० वी० पटेलको

[जोहानिसबर्ग]
मई १९, १९०५

श्री एस० वी० पटेल
पो० ऑ० बॉक्स २०८
क्लार्क्सडॉर्प

प्रिय महोदय,

कदाचित् चिकित्सा-शास्त्रकी श्रेष्ठ शिक्षा जर्मनीमे मिल सकेगी, किन्तु उसके लिए जर्मन भाषाका ज्ञान आवश्यक होगा। सामान्यत: चिकित्साकी ग्लासगोसे प्राप्त उपाधि बहुत अच्छी मानी जाती है, और बम्बईसे चाहे जो उपाधि ली हो, पाठ्यक्रम प्राय ५ सालका होता है। दक्षिण आफ्रिकाके किसी भी भागमें व्यवसायके लिए ग्लासगोकी उपाधि काफी मानी जायेगी।

समाचारपत्र *इंडियाका* पता, ८४–८५, पैलेस चेम्बर्स, वेस्टमिन्स्टर, लन्दन है।

आपका विश्वासपात्र,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ९३।

३७९. दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंके सम्बन्धमें लॉर्ड कर्जनका भाषण

वाइसरायकी परिषदमें, बजटकी बहसके समय दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंके सम्बन्धमे लॉर्ड कर्ज़नका पूरा भाषण आजकी भारतीय डाकसे प्राप्त हुआ है।

परमश्रेष्ठने दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके दर्जेकी लम्बी चर्चा की, इसलिए दक्षिण आफ्रिकी प्रवासी ब्रिटिश भारतीयोंको उनकी इस जोरदार वकालतके लिए अत्यन्त कृतज्ञ होना चाहिए। परमश्रेष्ठके भाषणका खासा हिस्सा नेटालकी स्थितिके सम्बन्धमें था और हमे अब पहली बार मालूम हुआ है कि कुछ समय पूर्व नेटाल सरकारकी ओरसे जो प्रतिनिधि भारत गये थे, उनका काम किस किस्मका था। उनका उद्देश्य यह था कि नौकरीकी समाप्तिपर गिरमिटिया भारतीयोंकी वापसी नितान्त अनिवार्य करार देकर उनपर और भी प्रतिबंध लागू किये जायें। हमें यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि जबतक नेटाल सरकार उपनिवेशमे आबाद गैर-गिरमिटिया भारतीयोंको कुछ रियायतें न दे दे तबतक लॉर्ड कर्ज़नने किसी भी ऐसे सुझावको माननेसे इनकार कर दिया। लॉर्ड महोदयने तीन पौंडी करकी अन्ततः समाप्ति, विक्रेता-परवाना अधिनियममे सशोधन तथा जिन कानूनोंके अन्तर्गत भारतीय असभ्य जातियोमे वर्गीकृत किये जाते हैं उनमें और अन्य छोटी-छोटी बातोंमे परिवर्तनकी माँग की।

यह सब अत्यन्त संतोषजनक है और इससे जाहिर होता है कि भारतीयोंने वाइसरायसे जो अपील की थी उसपर पूरा विचार किया गया है। परमश्रेष्ठने यह भी कहा कि वे एक रियायत स्वीकृत भी करा सके हैं, अर्थात् नेटाल-सरकारने उपनिवेशमें तीन वर्षका निवास भारतीयोंको प्रवासी-प्रतिबन्धक कानूनके अन्तर्गत लगे निषेधसे मुक्त करनेकी शर्तके रूपमे मान लिया है। इसका यह अर्थ है कि लॉर्ड महोदयको किसी तरह यह विश्वास हो गया है कि यह नेटाल-सरकार द्वारा दी गई रियायत है। यदि ऐसी बात है तो हमे दुःख है, क्योंकि यह वक्तव्य भ्रामक होगा। वस्तुतः नेटाल सरकार "पूर्व निवास" शब्दोंकी व्याख्याके सम्बन्धमें कुछ नियम बनानेके लिए बाध्य थी। कानूनमे, जैसा वह पहले था, कहा गया था कि वे भारतीय, जो उपनिवेशके "पूर्व निवासी" हैं, शैक्षणिक प्रतिबन्धोंसे मुक्त रहेंगे। व्यवहारतः दो वर्षका निवास श्री स्मिथ[1] द्वारा प्रायः "पूर्व-निवास" के प्रमाणके रूपमें स्वीकार कर लिया जाता था; और श्री स्मिथकी सिफारिशपर ही सरकारने यह अवधि बढ़ाकर तीन वर्ष कर दी है और उसे कानूनमे शामिल कर लिया है। हम परमश्रेष्ठको यह भी सूचित कर दें कि तीन वर्षका निवास "पूर्व-निवास" का प्रमाण मान ही लिया जाये, यह जरूरी नहीं है। हम यह कहनेकी धृष्टता करते हैं कि यदि कानूनमे यह संशोधन न किया जाता तो किसी भारतीयको, जो उपनिवेशमें छः महीने भी रह चुका हो और जो यह सिद्ध कर सकता हो कि वह अब नेटालमें रहने लग गया है और वहाँका निवासी होना चाहता है, छूट देनेसे इनकार करना संभव नहीं था। इसलिए हमें बहुत ही नम्रतापूर्वक यह कहना पड़ता है कि लॉर्ड महोदय जिसे रियायत समझते हैं वह कतई रियायत नहीं है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या लॉर्ड महोदय वहीं रुक सकते हैं जहाँ उन्होंने बात छोड़ी है। चालू वर्षमे नेटाल संसद सक्रिय रूपसे भारतीय-विरोधी नीतिका अनुसरण करती रही है। हम उन विधेयकोंकी ओर ध्यान आकर्षित कर ही चुके हैं जिनमें भारतीय-विरोधी धाराएँ

१. प्रवासी-अधिकारी।

है। विक्रेता-परवाना अधिनियम सतत चिन्ता और परेशानीका सबब है। तब क्या यह उचित है कि नेटाल भारतको अपनी उन्नतिके साधनके रूपमें बरतता चला जाये और स्वतन्त्र ब्रिटिश भारतीयोंकी तरफसे भारत सरकारके सुझावोंको अस्वीकृत कर दे? हमें कमसे-कम यह तो कहना ही चाहिए कि यह एकतरफा सौदा है जिसमें बदलेमें कुछ दिए बिना नेटाल सब लेता ही है।

परमश्रेष्ठने ट्रान्सवालकी स्थितिकी भी चर्चा की। उनका वक्तव्य श्री लिटिलटनके खरीतेका संक्षेप है, किन्तु उससे यह प्रकट हो जाता है कि वह अपने आश्रितोंके हितोंके बारेमें पूरी तरह सावधान हैं। हम आशा करते हैं कि उनकी सतर्क अभिभावकतामें भारतीय निकट भविष्यमें उन कष्टप्रद प्रतिबन्धोंसे छुटकारा पा जायेंगे जिनके कारण वे उस शाही उपनिवेशमें उत्पीड़ित हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २०-५-१९०५

३८०. नेटालमें भारतीय-विरोधी कानून

नेटाल *गवर्नमेंट गज़टके* एक हालके अंकमें तीन विधेयक प्रकाशित हुए हैं। उनसे पता चलता है कि इस उपनिवेशकी आर्थिक स्थिति कितनी खराब है। उनमें से एक विधेयकका उद्देश्य १८ वर्ष या उससे अधिक उम्रके प्रत्येक वयस्क पुरुषपर एक पौंडका व्यक्तिकर लगाना है। उसके अनुसार इस करकी अदायगीसे वे लोग मुक्त रहेंगे जो या तो गरीब हैं या अशक्त हैं या गिरमिटिया मजदूर हैं। परन्तु गिरमिटिया मजदूर उसी वक्ततक मुक्त रहेंगे जबतक वे गिरमिटके अन्तर्गत हैं। दूसरे विधेयकमें मृत व्यक्तियोंकी जायदादपर उत्तराधिकार-कर लगानेकी तजवीज है। इस करकी न्यूनतम दर मृत व्यक्तिके पूर्वजों अथवा वंशजोंके लिए एक फी सदी है। अगर ये दोनों विधेयक नेटाल संसद द्वारा स्वीकृत कर लिये गये तो इनसे सरकारको अच्छी-खासी आमदनी होनेकी सम्भावना है।

लेकिन वह तीसरा विधेयक है जिससे हमारा अधिक सम्बन्ध है और भारतीय समाजको प्रभावित करनेवाला एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठता है। इस विधेयकको शीर्षक दिया गया है — "अनधिकृत देहाती जमीन-कर विधेयक"। इसका उद्देश्य है २५० एकड़ या उससे अधिक अनधिकृत देहाती भूमिपर आधा पेंस फी एकड़की दरसे कर लगाना। विधेयककी पाँचवीं धारामें कहा गया है कि,

> **जिस जमीनपर उसका मालिक या कोई यूरोपीय किसी सालमें पहली मार्चसे पहले बारह महीनोंमें से कमसे-कम नौ महीनेतक लगातार न रहा हो वह जमीन अनधिकृत समझी जायेगी।**

इस प्रकार, अगर यह विधेयक पास हो गया तो देहाती भूमिका कोई भी टुकड़ा, जिसपर उसके मालिकके अलावा उपनिवेशके किसी अन्य भारतीयका दखल है, आधा पेंस प्रति एकड कर लगानेके उद्देश्यसे अनधिकृत माना जायेगा। समुद्र-तटवर्ती जिलोंमें, जहाँ जमीनकी काश्त केवल भारतीय ही करते हैं, भारतीय जमींदार इस विधेयकसे प्रभावित हो सकते हैं।

श्री लिटिलटनको, साम्राज्यके हितकी दृष्टिसे, भारतीयोंको अकारण ही लगातार अपमानित और परेशान करनेकी इस नीतिको रोकना चाहिए। यह सच है कि नेटाल पूर्ण रूपसे स्वशासित राज्य है, और इसलिए वह अपने कानून स्वयं बनानेके लिए स्वतन्त्र है। लेकिन जब स्वतन्त्रता

स्वच्छन्दता बन जाती है, तब सवाल यह पैदा होता है कि क्या इंग्लैंडकी सरकारको, जो साम्राज्यकी सम्मानित परम्पराओकी सरक्षिका है, ऐसे कानूनका निर्माण नही रोकना चाहिए, जिसके द्वारा विधान-सभामें प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्वसे वचित ब्रिटिश प्रजाका अपमान होता है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २०–५–१९०५

३८१. केपमें प्रवासी कानून

केपमे जो प्रवासी कानून बना है उसके अमलके बारेमें वहाँके प्रवासी-अधिकारी डॉक्टर ग्रेगरीकी रिपोर्ट प्रकाशित कर दी गई है। इससे पता चलता है कि पिछले महीनेमे जिन लोगोने उपनिवेशमे प्रवेशका प्रयत्न किया उनमे से २९८ को लौटा दिया गया है। उनमे से ५६ लोगोको अग्रेजी पढा न होनेसे, १५६ को कंगाल होनेसे और ७४ को अनपढ़ और गरीब होनेसे अनुमति नही दी गई। उनमे से १२ वेश्याये थी अत उन्हे उतरनेकी मनाही कर दी गई। डॉक्टर ग्रेगरी मानते है कि समय खराब होनेके कारण ऐसे बहुत-से लोग नही आये है जो अन्यथा आना चाहते। इसलिए, यह नही कहा जा सकता कि कानूनका वास्तविक प्रभाव क्या हुआ है। डॉक्टर ग्रेगरी विश्वास करते है कि बहुतसे भारतीयोको उतरने नही दिया गया, अत उन्हे कष्ट उठाने पड़े है। और यदि यह भी मान लिया जाये कि यह कानून भारतीयोका प्रवेश रोकनेके लिए अच्छा है तो भी यह प्रश्न हो सकता है कि जब यिडिशभाषी यहूदी, जो वस्तुत भिखमगे है, अपने दोस्तोसे रुपया उधार लेकर आ सकते है तब क्या ब्रिटिश भारतीय लोगोको प्रवेश करनेसे रोकना न्यायपूर्ण है। इस रिपोर्टसे मालूम होता है कि डॉक्टर ग्रेगरी स्वय इस कानूनको अन्यायपूर्ण मानते है। केप-सरकारने केपके भारतीयोको वचन दिया है कि उक्त कानूनमे भाषा-ज्ञान सम्बन्धी शर्तमे परिवर्तन कर दिया जायेगा ताकि एक भारतीय भाषाका ज्ञान स्वीकृत हो सके। इस वचनकी पूर्ति कराना केपके प्रमुख भारतीयोका कर्तव्य है। यदि वे इस सम्बन्धमे जोर-शोरसे काम करेगे तो हमे पक्का भरोसा है कि सरकार उक्त विधेयकमे आवश्यक परिवर्तन कर देगी। हम आशा करते है कि केपके भारतीय इस मामलेको पूरी शक्तिसे हाथमें लेगे और सफल करेगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २०–५–१९०५

३८२. स्वर्गीय श्री ताता[1]

गत अप्रैलके आरम्भमें बम्बईके टाउन हॉलमे स्वर्गीय श्री ताताकी यादगार कायम करनेके उद्देश्यसे एक विशाल सभा की गई थी। इसमें अध्यक्ष पदपर गवर्नर लॉर्ड लेमिंगटन सुशोभित हुए और स्मारक बनानेके सम्बन्धमे प्रथम प्रस्ताव बम्बई उच्च न्यायालयके लोकप्रिय प्रधान न्यायाधीश सर लॉरेंस जेंकिसने पेश किया। उस सभामे न्यायाधीश बदरुद्दीन तैय्यबजी,[2] न्यायाधीश चन्दावरकर, माननीय श्री पारेख[3] और सर भालचन्द्र[4] आदिने भाग लिया था। गवर्नर तथा अन्य सभी वक्ताओने यह कहा कि श्री ताताके समान उदार, सरल और बुद्धिमान सज्जन भारतमे कम ही हुए हैं। श्री ताताने जो कुछ किया उसमे अपना स्वार्थ नही देखा। उन्होंने सरकारसे खिताब लेनेकी आकाक्षा नही की, और जात-बिरादरीका भेद भी नही माना। न्यायाधीश बदरुद्दीनके कथनानुसार उनके लिए पारसी, मुसलमान और हिन्दू सभी समान थे। उनके लिए भारतीय होना ही बस था। उनका दयाभाव बहुत ही गहन था। वे गरीबोंके दु खोका विचार करके स्वय रो पडते थे। उनके पास अपार धन था; किन्तु उन्होंने उसमें से अपनी सुख-सुविधाके लिए कुछ भी खर्च नही किया। उनकी सादगी जबरदस्त थी। हम चाहते है, भारतमें बहुतसे ताता हो।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २०-५-१९०५

३८३. सर फीरोजशाह मेहता

सर फीरोजशाह मेहताने बम्बईकी जैसी सेवा की है वैसी और किसीने नही की। आज तीस वर्षसे वे नगर निगममे है और बडे-बडे मुकदमे छोड़कर निगमकी बैठकोमे उपस्थित रहे है; इसलिए वे निगमके पिता माने जाते है। इस वर्ष उनको नगर निगमके अध्यक्षका पद देनेकी बात चल रही है क्योकि इस वर्ष प्रिंस ऑफ वेल्स भारत जानेवाले है। उनको नाइटकी उपाधि प्राप्त है। इसलिए *टाइम्स ऑफ इंडियाने* सुझाया है कि जब सर फीरोजशाह अध्यक्षके स्थानपर विराजमान हो तब सरकार उनको "लॉर्ड मेयर" की उपाधि दे तो अनुचित न होगा। यदि मेलबोर्न तथा सिडनीके निगमोके अध्यक्ष लॉर्ड मेयर कहे जाते है तो कलकत्ता और बम्बईमे ऐसा क्यो न हो?

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २०-५-१९०५

१. सर जमशेदजी नसरवानजी ताता (१८३९-१९०४), महान भारतीय उद्योगपति और दानी।

२. बम्बईके वकील-संघके एक प्रमुख सदस्य और बादमें बम्बई उच्च न्यायालयके न्यायाधीश। दिसम्बर १८८७ के मद्रास कांग्रेस अधिवेशनकेअध्यक्ष।

३. सर गोकुलदास काहनदास पारेख — बम्बई विधान-परिषदके सदस्य।

४. सर भालचन्द्र भातवडेकर — बम्बईके एक प्रमुख डॉक्टर और सार्वजनिक सेवक।

३८४. पत्र : हाजी मुहम्मद हाजी दादाको

[जोहानिसबर्ग]
मई २०, १९०५

श्री हाजी मुहम्मद हाजी दादा
बॉक्स ७३,
डर्बन

श्री सेठ हाजी मुहम्मद हाजी दादा,

मैंने *कसस्सुल अंबिया*[१] पुस्तक पढी नही है। अगर आप मुझे उसकी प्रति भेज दे तो मै कह सकूँगा कि *इंडियन ओपिनियनमें* उसके उद्धरण ले सकेंगे या नही। अग्रेजीके पाठकोंके कामकी तवारीख हो तो अग्रेजीमे भी छापी जा सकती है। मैंने इस पुस्तकका नाम कई बार सुना है। क्या यह सम्भव नही है कि उसमे दी हुई बातें बहुत-से पाठक जानते हो? यदि ऐसा हो तो छापें कि नही, यह सवाल आ जायेगा।

गुणवंतरायसे रुपया वसूल कर रहा हूँ। २५ पौड आ गये है और सेठ हाजी हबीबके खातेमें जमा कर दिये है। मेरा खयाल है, बाकी रकमका ५ पौड हर महीना आयेगा।

मो० क० गांधीके सलाम

गाधीजीके स्वाक्षरोमे गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० १०२।

३८५. पत्र : अब्दुल हक व कैखुसरूको

[जोहानिसबर्ग]
मई २०, १९०५

श्री जालभाई सोराबजी ब्रदर्स
८४, फील्ड स्ट्रीट
डर्बन

श्री ५ भाई अब्दुल हक व कैखुसरू,

आपका पत्र मिला। सेठ आजम गुलाम हुसैनकी तरफसे मुख्त्यारीके इख्तियार मिल गये है।

हुसेन ईसप दूकानका नौकर जान पडता है। वह १५ पौड तनख्वाह पेटे पेशगी माँगता है। वह कहता है कि आपने उसको मेरी स्वीकृति लानेके लिए कहा है। अगर वह आदमी काम बहुत अच्छा करता हो, विश्वास करने लायक हो और उसे रुपयेकी सचमुच जरूरत हो तो मुझे लगता है कि उसे पेशगी रुपये देनेमे हर्ज नही है। पर यह मैं आपके निर्णयपर छोडता हूँ।[२]

मो० क० गांधीके सलाम

गाधीजीके स्वाक्षरोमे गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० १०३।

१. एक उर्दू पुस्तक जिसमें इस्लामके नबियों और फकीरोंके जीवन-चरित्र हैं।

२. जान पड़ता है कि गाधीजी पारसी रुस्तमजीकी अनुपस्थितिमें उनके सलाहकारका काम करते थे और उनकी पेढ़ीके व्यवस्थापक सब तरहकी समस्याएँ उनके सामने रखते थे और उनके सम्बन्धमें उनसे सलाह लेते थे।

३८६. पत्र : उमर हाजी आमद और आदमजी मियाँखाँको

[जोहानिसबर्ग]
मई २०, १९०५

श्री सेठ उमर हाजी आमद और श्री आदमजी मियाँखाँ,

मैंने पहले श्री नाजरके मार्फत जो अर्जी[1] भेजी थी वह विधानसभामें दे दी होगी। न दी हो तो शायद अब समय थोड़ा रह गया है।

मैं आज दूसरी अर्जी भेजता हूँ।[2] वह एक दूसरे कानूनके बारेमें है। मुझे आशा है, इस मामलेमें ढील नहीं होगी।

यह डर्बनका एक गैरसरकारी विधेयक है, जिसके बारेमें वकीलकी मार्फत सुनवाई हो सकती है। मैंने श्री नाजरको वैसा करनेकी सूचना दे दी है।

इस वक्त आप दोनोंको ताकत दिखानी है और हिम्मतसे काम करना है। कम हस्ताक्षर हों तो भी हर्ज नहीं है। अगर अध्यक्ष और मन्त्रीके हस्ताक्षर हों तो भी काम चल सकता है।

मो० क० गांधीके सलाम

संलग्न–१

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० १०४।

३८७. पत्र : हाजी दादा हाजी हबीबको

[जोहानिसबर्ग]
मई २३, १९०५

श्री हाजी दादा हाजी हबीब
बॉक्स ८८
डर्बन

श्री सेठ हाजी दादा हाजी हबीब,

आपका पत्र और रुक्का मिला। मेरे लिए रुक्केका कोई उपयोग नहीं है, इसलिए वापस भेजता हूँ। मेरी स्थिति ऐसी है कि मैं अपनी गाँठका पैसा कुछ समयके लिए भी खर्च करनेमें हिचकिचाता हूँ। फिर भी आपका आग्रह है, इसलिए अगर अब्दुल्ला सेठका सन्तोषजनक जवाब नहीं मिला तो यथासम्भव शीघ्र यहाँसे रवाना हो जाऊँगा।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ११६।

१. देखिए "प्रार्थनापत्र : नेटाल विधानसभाको," ७-४-१९०५।
२. यह उपलब्ध नहीं है।

३८८. पत्र : पारसी कावसजीको

[जोहानिसबर्ग]
मई २३, १९०५

श्री पारसी कावसजी
११५, फील्ड स्ट्रीट
डर्बन

श्री पारसी कावसजी,

आपका पत्र मिला। आपके बारेमें मेरी रुस्तमजी सेठसे बातचीत हुई थी। उनका विचार जमानतके बिना मदद करनेका नहीं था, इसलिए मैं हाँ नहीं कह सकता। मुझे सीधा रास्ता यह दिखाई देता है कि आप रुस्तमजी सेठको लिखें और जबतक जवाब न आये तबतक चुप रहें।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ११९।

३८९. पत्र : चिन्दे-स्थित सरकारी अफसरको

[जोहानिसबर्ग]
मई २३, १९०५

सरकारी अफसर
प्रतिनिधि, उपनिवेश-सचिव
चिन्दे
ब्रिटिश मध्य आफ्रिका

महोदय,

मैंने सुना है कि सरकार चिंदेमें रेलमार्ग बनवा रही है। यदि वहाँ काम मिल सके तो इस समय ट्रान्सवालमें कुछ सौ भारतीय हैं जो चिंदेको[1] रवाना होनेके लिए उत्सुक हैं। इनमें से कुछ लोग चिंदेमें या ब्रिटिश मध्य आफ्रिकाके दूसरे हिस्सोंमें काम भी कर चुके हैं।

मैं आपका कृतज्ञ हूँगा यदि आप कृपया मुझे यह सूचित करेंगे कि वहाँ उनके लिए कोई गुंजाइश है या नहीं, और यदि है तो उन्हें अपनी दरख्वास्तें कहाँ भेजनी चाहिए।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० १२०।

१. पुर्तगाली पूर्वी आफ्रिकामें एक छोटा शहर, जहाँ १९२३ तक ब्रिटिशोंको विशेषाधिकार प्राप्त थे।

३९०. पत्र : पुलिसके डिप्टी कमिश्नरको[1]

[जोहानिसबर्ग]
मई २३, १९०५

सेवामें
डिप्टी कमिश्नर, पुलिस
"अ" विभाग
जोहानिसबर्ग

महोदय,

आपके कार्यालयसे श्री कमरुद्दीनकी पेढीके नाम भेजी गई एक चेतावनी[2] साथमें नत्थी कर रहा हूँ। चेतावनीमें उन्हें कमरुद्दीन "कुली" कहा गया है।

मैं आशा करता हूँ कि जिस अफसरने चेतावनी दी है, उससे यह गलती अनजाने हुई है। आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकर्षित करनेकी आवश्यकता नही है कि उनको ऐसा कहना अत्यन्त अपमानजनक है। श्री एम० सी० कमरुद्दीन वगैराको "कुली" कहना बिलकुल गलत होगा। मैं यह भी कह दूँ कि उनकी पेढी दक्षिण आफ्रिकामें स्थापित एक सबसे पुरानी ब्रिटिश भारतीय पेढ़ी है।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

१—संलग्न

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० १२४।

३९१. पत्र : छगनलाल गांधीको

[जोहानिसबर्ग]
मई २३, १९०५

श्री छगनलाल खुशालचन्द गांधी
मार्फत इन्टरनेशनल प्रिंटिंग प्रेस
फीनिक्स

चि० छगनलाल,

मैं गुजरातीमे नगरपालिकाकी सूचना छापनेके लिए भेजता हूँ। इसे कृपया तमिल, हिन्दी और उर्दूमें भी अनुवादित करा लेना। ध्यान रहे कि अनुवाद सही हो। कृपया यह सब चारो भाषाओमे फुलस्केपके दुगुने आकारमें एक ही कागजपर और १०,००० प्रतियाँ छापना। तुम देखोगे कि यह मामला तात्कालिक महत्त्वका है और चूँकि नगरपालिकासे सम्बन्धित है इसलिए

१. इसी तिथिको दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके कमिश्नरको भी ऐसा ही पत्र लिखा गया था (पत्र-पुस्तिका; १९०५, स० १२६।)
२. यह उपलब्ध नहीं है।

यदि बहुत काम हो तो अन्य कामोसे पहले इसे कराना। कागज अच्छा लगाना। प्रूफकी जरूरत नहीं है, ताकि देर न हो। मैं तुम्हें मूल अंग्रेजी भी भेजता हूँ जिससे तुम कठिनाईके बिना अपना अनुवाद करा सको।

मो० क० गांधीके आशीर्वाद

संलग्न[1]

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० १३३।

३९२. पत्र : ई० ए० वॉल्टर्सको

[जोहानिसबर्ग]
मई २५, १९०५

श्री ई० ए० वॉल्टर्स
विजर्टन
केप कालोनी

प्रिय महोदय,

विषय : *कुवाडिया और सीदत*

इस मामलेमें, हालमें भेजे गये मेरे सब पत्रोंकी उपेक्षा की गई है। स्वयं कर्जदार मुझे लिखता है कि उसने आपको पूरी रकम चुका दी है। इसलिए यदि मुझे आपसे चुकते हिसाबकी सूचना नहीं मिलती तो मैं अत्यन्त अनिच्छासे यह मामला पंजीकृत न्याय-संघ (इनकॉरपोरेटेड लॉ सोसाइटी) केप टाउनके समक्ष रखनेके लिए बाध्य हूँगा।[2]

आपका विश्वासपात्र,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० १४५।

१. ये उपलब्ध नहीं हैं।
२. गांधीजीने पंजीकृत न्याय-संघको बादमें पत्र लिखा; देखिए "पत्र : न्याय-संघको," २२-६-१९०५।

३९३. पत्र : कैखुसरू और अब्दुल हकको

[जोहानिसबर्ग]
मई २५, १९०५

श्री जालभाई सोराबजी ब्रदर्स
८४, फील्ड स्ट्रीट
डर्बन

श्री भाई कैखुसरू और अब्दुल हक,

आपका पत्र मिला। रुस्तमजी सेठने नूरुद्दीनके बारेमें जैसी सूचना दी है वैसा ही करना। नूरुद्दीनको मैंने सेठ रुस्तमजीको सीधा पत्र लिखनेके लिए कहा है।

हुसेन ईसपको, अगर वह अच्छा काम करता हो और विश्वासी हो तो, ७ पौंडतक पेशगी वेतनपेटे दे दीजिये।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० १५३।

३९४. पत्र : उमर हाजी आमद झवेरीको

[जोहानिसबर्ग]
मई २६, १९०५

श्री उमर हाजी आमद झवेरी
बॉक्स ४४१
डर्बन

श्री सेठ उमर हाजी आमद झवेरी,

आपका पत्र तथा सेठ हाजी मुहम्मदके पत्रकी नकलें मिलीं। पत्र पढ़कर बहुत आश्चर्य और दुःख होता है कि बुजुर्ग और समझदार व्यक्तिको भी भान नहीं रहता। मुझे लगता है कि जब पत्र मिला था तभी आपने छोटा-सा जवाब दे दिया होता तो ठीक था। परन्तु अभी-तक जवाब नहीं दिया, इसलिए अब मुझे जवाब देनेकी जरूरत दिखाई नहीं देती। मुझे पत्र मिलेगा तो आपको लिखूंगा।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० १५७।

३९५. साम्राज्य-दिवस

साम्राज्य-दिवस — स्वर्गीया सम्राज्ञीका जन्म-दिवस — ब्रिटेनके बाहर साम्राज्यके सब भागोमे सब वर्गोकी सम्मतिसे अपनी अत्यन्त प्रिय महारानीके शासनकी स्मृति मनानेके लिए निश्चित किया गया दिवस है। यह दिन "विक्टोरिया"–दिवसकी अपेक्षा "साम्राज्य" – दिवसके नामसे ज्यादा विख्यात हो रहा है। इससे तो उनके प्रति अधिक गम्भीर आदर ही व्यक्त होता है। क्योंकि यह इस बातकी स्वीकृति है कि जिन विशाल उपनिवेशोकी वे महारानी थी उन्हे पास-पास लानेमें उनसे अधिक काम किसी अन्य व्यक्तिने नही किया। अपने हृदयकी विशालता और व्यापक सहानुभूतिसे, अपनी योग्यता और राजसी गुणोसे; तथा इन सबसे बढकर नारीके रूपमे अपने व्यक्तिगत भलेपनके कारण उन्होंने ब्रिटिश ध्वजाके नीचे बसी सब जातियोंके हृदयोमे सदाके लिए अपना स्थान बना लिया है। उनके छोटे शासनाधिकारियोसे गलतियाँ हुई होगी, उनके नाम पर गैर-इन्साफियाँ भी की गई होगी, किन्तु लोग सदा जानते थे कि वे गलतियाँ और गैर-इन्साफियाँ नेक विक्टोरियाकी नही है। वे जितनी योग्य रानी थी, उतनी ही योग्य पत्नी और माता भी सिद्ध हुई। वे जानती थी, कि केवल गार्हस्थिक पवित्रता परिवारको सुखी और समृद्ध बनाती है। बाइबिलके इस वचनमे उनकी श्रद्धा अटूट थी · पवित्रता जातियोको उदात्त बनाती है, किन्तु पाप सभी लोगोको अपयश देता है। उन्होने सबसे पहले यह समझा कि ब्रिटिश साम्राज्यकी नीव पवित्रता — वैयक्तिक पवित्रता और जातीय पवित्रता — की चट्टान पर डाली जानी चाहिए। तभी उसकी उन्नति स्थायी होगी। अतीतमे दूसरे राष्ट्र और साम्राज्य भी हुए है, किन्तु वे सब इस "पापकी चट्टान" पर पतित होकर नष्ट हो गए। जब उन्होने वे सरल शब्द कहे थे कि मै नेक बनूँगी, तभी सारे ससारमे उन्होने अपनी प्रजाका स्नेह अर्जित कर लिया था। यहाँ यह देखा जा सकता है कि विक्टोरियाको अपनी यह महानता विधिके विधानके अन्तर्गत अपनी बुद्धिमती मातासे मिली थी। असख्य महान पुरुष और स्त्री इस सत्यको कर्तव्यनिष्ठाके साथ पहले भी स्वीकार कर चुके है और उनके बाद भी। यह चिर सत्य है कि अच्छी माता अपने बच्चेको बुद्धिमान बनाती है। इसका दूसरा उदाहरण ब्रिटिश सिहासन पर आसीन वर्तमान महानुभाव है। हम देखते है कि उनके प्रति सब सतोष अनुभव करते है। वे इस समयतक भी अपनी कुशलता और बुद्धिमत्तासे साम्राज्य और ससारके लिए कितना काम कर चुके है। बादशाह एडवर्डमे वह विशिष्ट प्रतिभा उनके सब समकालीन बादशाहोसे अधिक दिखाई देती है जो सच्चे राजाका प्रधान गुण है। और उसके मूलमे अधिकतर प्रभाव उनकी गौरवशालिनी माता का है।

इस तरह जब हम साम्राज्यके विषयमे सोचते है तब विक्टोरियाका नाम हर तरह आदरणीय ठहरता है और यह उचित ही है कि इसके लिए निश्चित किया गया दिवस उस क्षणकी वर्षगाँठ हो जिसमे वे ससारमे आई थी।

विशेषत भारतीयोके लिए, विक्टोरिया-दिवस पुण्य दिवस होना चाहिए। भारतकी स्वतन्त्रताके लिए जितना स्वर्गीया महारानीने किया उतना दूसरे किसी व्यक्तिने नही किया। यह बात करोडो भारतीय स्वीकार करते थे। यह उनके देहान्तके बाद सारे देशमे व्यक्त किए गये साधारण शोक-प्रदर्शनोसे स्पष्ट हो गया था। वाइसरायने उनके बारेमे बोलते हुए कहा था:

महारानीने, जिसमें माता, नारी और रानीका अद्वितीय और सुन्दर समन्वय हुआ है, समस्त भारतीयोंके हृदय मिला दिये हैं। उनके आश्चर्यजनक शासनकालने भारतीय इतिहासपर जो छाप छोड़ी है उसके विषयमें बहुत-कुछ कहना और उन बहुत-सी बातोंको बताना सरल है, जिनमें स्वर्गीया सम्राज्ञीने विवेकपूर्वक हाथ डाला था और जिनपर उनका प्रभाव पड़ा था, किन्तु क्या १८५८ की वह प्रसिद्ध घोषणा उनके समूचे शासन और चरित्रको व्यक्त नहीं करती, जो भारतका मैग्ना-कार्टा और हमारे व्यवहार और महत्त्वाकांक्षाओंका उत्तम मार्गदर्शक है? उनके विषयमें यह कहा जा सकता है कि उन्होंने भारतको स्तम्भ बनाकर ब्रिटेनको एक विश्वव्यापी साम्राज्यमें बदल दिया।

विक्टोरिया भारतके प्रति सदा व्यक्तिगत और गहरी दिलचस्पी रखती थी। इतना ही नही कि उनके समीपस्थ नौकर-चाकर बहुतसे भारतीय होते थे और उन्होने हिन्दुस्तानी लिखना-बोलना सीखा था (जो राज्यकी चिताओसे ग्रस्त व्यक्तिके लिए कोई आसान काम नही है); बल्कि वे वाइसरायसे *प्रत्येक डाकसे* भारतकी स्थितिका विवरण मँगाती थी, और लॉर्ड नार्थब्रुकके नाम लिखे हुए पत्रोमें से एक पत्रके निम्न अशसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनको भारतीय मामलोका आन्तरिक ज्ञान प्राप्त था.

महारानीका विश्वास है कि अब अंग्रेज पहलेकी अपेक्षा भारतके देशी लोगोंके प्रति अपने व्यवहारमें अधिक सदय हैं। अब ईसाइयोंके लिए अशोभनीय इन भावनाओंका निर्मूल होना बहुत जरूरी है। उनकी सर्वत्र सबसे बड़ी इच्छा यह है कि सब वर्गोंके बीच, जो आखिरकार भगवानकी दृष्टिमें समान हैं, अधिकतम प्रेम और सद्भाव हो।

"भगवानकी दृष्टिमें समान"—यही वह भावना थी जिससे प्रेरित होकर वह महान घोषणा की गई थी और साम्राज्य जिसके योग्य सिद्ध नही हुआ। हम यह दुःखके साथ कहते हैं और दुःखके साथ ही हमें अपने पाठको और अधिकारियोका ध्यान उन बहुत-सी बातोकी ओर आकर्षित करना पड़ता है जिनमे नेक विक्टोरियाकी भावना भग की गई है। वैसे हमने इस समय पसन्द यही किया होता कि हमारे पत्रके कमसे-कम इस अंकमें ऐसी कोई बात न होती जो हमारे इस सतोषमे बाधक प्रतीत होती कि हम अग्रेजी साम्राज्यके अग हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २७-५-१९०५

३९६. परीक्षात्मक मुकदमेके सदृश

सर्वोच्च न्यायालयने एक मुकदमेमें एक महत्त्वपूर्ण फैसला दिया है। उस मुकदमेमें कोई सईद इस्माइल तथा एक अन्य व्यक्ति वादी और ल्यूकस नामके किसी मृत व्यक्तिकी दिवालेकी जायदादके न्यासीके रूपमे एल० के० जैकब्स प्रतिवादी थे। मुकदमा सबसे पहिले जोहानिसबर्गके उच्च न्यायालयमे दायर किया गया था। वहाँ वादियोकी कुछ जमीन-जायदाद थी, किन्तु चूँकि वे उसकी मिल्कियतका अपने नाम पजीयन करानेसे रोक दिये गये थे, इसलिए उन्होने उसका पंजीयन अपने मित्र मृत ल्यूकसके नाम करा दिया। यह बात १८९६ की है। अभी कुछ समय पहलेतक वे उसपर काविज थे और यह बात अधिकारियोकी जानकारीमे थी। वे सारा महसूल और दूसरे कर भी दे चुके थे। उन्होने जोहानिसबर्गकी एक प्रमुख वकील पेढीकी सलाहसे यह रास्ता इख्तियार किया था, और अपने बचावके विचारसे मृत ल्यूकससे जायदादके बारेमे कार्रवाईकी मुख्त्यारीका पक्का इख्तियार और पट्टा ले लिया था। इसके साथ एक धारा जुड़ी थी जिसमे पट्टा हमेशा अपने आप नया होते रहनेकी व्यवस्था थी। लडाईके पहले ल्यूकस दिवालिया हो गया और कुछ समयके बाद उसकी मृत्यु हो गई। मूल न्यासीने उक्त जायदादको कभी सूचीमे सम्मिलित नही किया। जोहानिसबर्ग नगरपालिकाने सन् १९०२ मे अधिग्रहण अध्यादेशके अन्तर्गत दूसरी जायदादोके साथ इसे भी अपने अधिकारमे ले लिया और उसका मुआवजा २,००० पौंड तय किया। यह निर्णय स्वभावत पजीकृत मालिक अर्थात् ल्यूकसके पक्षमे दिया गया था; किन्तु चूँकि वादियोने मुकदमा दायर कर दिया था और उस पैसेके लिए दावा किया था जो उनके कथनानुसार ल्यूकसके पास उनकी ओरसे गुप्त रूपसे धरोहर रखी हुई जायदादसे मिला था, इसलिए वह पैसा सर्वोच्च न्यायालयके अध्यक्षके पास जमा कर दिया गया और दोनो पक्ष अपने अधिकारोके सम्बन्धमे अदालती फैसला लेनेके लिए स्वतन्त्र छोड दिये गये। इसलिए वादियोने प्रतिवादीके विरुद्ध मुकदमा दायर कर दिया कि वे अपने अधिकारोको सिद्ध करे। और उन्होने यह माँग भी की कि सर्वोच्च न्यायालयके अध्यक्षके नाम उनको रुपया देनेका हुक्म जारी किया जाये। सफाईमे पहले यह कहा गया कि चूँकि वादी ब्रिटिश भारतीय है, और १८८५ के कानून ३ के अनुसार जमीनी जायदादके मालिक नही हो सकते, इसलिए ल्यूकसने उनकी ओरसे जमीनी जायदाद रखनेका जो इकरारनामा किया वह गैर-कानूनी और बेअसर है और इसलिए वह कानूनन अमलमे नही लाया जा सकता। बचाव-पक्षकी दूसरी दलील यह थी कि अगर ल्यूकसके लिए वादियोके साथ इकरारनामा करना उचित भी था तो भी वादियोका अधिकार उसके विरुद्ध व्यक्तिगत ही है और इसलिए वे केवल दूसरे ऋणदाताओके समान ही अपना दावा साबित कर सकते है, आम अधिकारके बलपर, दूसरे शब्दोमे विशिष्ट ऋणदाताकी हैसियतसे, इस रुपयेके लिए अपना अधिकार सिद्ध नही कर सकते। सर विलियम स्मिथने वादियोके पक्षमे खर्च समेत फैसला दिया, यद्यपि थोडा आगा-पीछा किये बिना नही। इसपर प्रतिवादीने अपील की और अपीलमे सर्वोच्च न्यायालयने बचाव-पक्षकी दूसरी दलीलको मान्य करते हुए प्रतिवादीके पक्षमे फैसला किया। तथापि इस महत्त्वपूर्ण फैसलेका विशुद्ध परिणाम यह जान पडता है कि यूरोपीयोका भारतीयोकी ओरसे जमीनपर कब्जा रखना गैर-कानूनी नही है, किन्तु अगर, ऐसे यूरोपीयोके दिवालिया हो जानेकी अवस्थामे, मिल्कियतनामेपर उनके नाम सम्पत्तिके लाभके अधिकारीके रूपमे पजीकृत नही है तो उन्हे जोखिम उठानेके लिए तैयार रहना चाहिए। इसलिए

भारतीय इस मुकदमेसे अपने संघर्षमें एक कदम और आगे बढ़ जाते हैं और १८८५ का कानून ३ शस्त्र रूपमें उनके खिलाफ प्रयोगकी दृष्टिसे और भी कुण्ठित हो जाता है। यदि कोई भारतीय सम्पत्तिके लाभके अधिकारीके रूपमें अपने नामका पंजीयन करानेका आग्रह करे तो उसका नाम इस तरह पंजीकृत किया जा सकता है या नहीं, इसकी परीक्षा करना एक बड़ी दिलचस्प बात होगी। यदि भारतीय ऐसे परीक्षात्मक मुकदमेमें जीत जाये तो वे तनिक भी जोखिमके बिना ट्रान्सवालके किसी भी भागमें व्यवहारत: जमीनके मालिक हो सकेंगे और इसपर सामान्य बुद्धिके दृष्टिकोणसे विचार करें तो हमें ऐसा लगता है कि सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयसे यह बात उपसिद्धान्तकी तरह निष्पन्न होती है। चूँकि अब यह फैसला हो गया है कि वतनी ट्रान्सवालके किसी भी भागमें जमीनी जायदादके मालिक हो सकते हैं और उसका पंजीयन अपने नाम पर करा सकते हैं, इसलिए यह निश्चय ही उनके न्याय्य अधिकारोंके अनुकूल होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २७–५–१९०५

३९७. मुस्लिम बनाम हिन्दू

हमने ईस्ट लंदनके एक समाचारपत्रमें एक हिन्दू और मुसलमान भाईके बीचका पत्र-व्यवहार बड़े खेदके साथ पढ़ा है। हम समझते थे कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय समाजके सभी वर्गोंमें अधिकसे-अधिक मेलकी प्रत्यक्ष जरूरतके आगे इस तरहके प्रेम-भावकी[1] गुंजाइश नहीं है। हम इन पत्रोंके गुण-दोषकी चर्चा नहीं करना चाहते, केवल इस प्रकारके व्यवहारके प्रति नापसन्दगी जाहिर करना चाहते हैं। हम विश्वास करते हैं कि पत्रलेखक भी हमारे साथ-साथ खेद प्रकट करनेकी समझदारी दिखायेंगे और पत्र-व्यवहारको जहाँका तहाँ रोक देंगे। यहाँ दूसरी और अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण बातें मौजूद हैं जिनकी ओर वे ज्यादा लाभप्रद रूपसे ध्यान दे सकते हैं। हमें शायद अपने पाठकोंको यह स्मरण दिलानेकी अनुमति दी जायेगी कि *इंडियन ओपिनियन* दक्षिण आफ्रिकाके सारे भारतीय मसलोंकी चर्चा करनेके लिए विशेष पत्र है; और यदि दुर्भाग्यसे भारतीयोंके बीच मतभेद उत्पन्न हों तो उनको प्रकाशमें लानेके लिए हमारे स्तम्भ स्वाभाविक और अत्यन्त उपयुक्त माध्यम हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २७–५–१९०५

१. यह अंग्रेजीके जिस शब्दका अनुवाद है उसका प्रयोग शायद व्यंग्यके रूपमें किया गया है, या वह मुद्रणकी भूल है। इसके स्थानमें सम्भवत: दूसरा शब्द होगा जिसका अर्थ होता है "शत्रु-भाव"।

३९८. सर मंचरजी और श्री लिटिलटन

सर मचरजीने श्री लिटिलटनसे पूछा कि ट्रान्सवाल राज्यके सविधानमे भारतीयोको मताधिकार-से वचित करनेका क्या कारण था? उन्होने यह भी पूछा कि सरकार सविधानमे परिवर्तन करके भारतीयोको अब मताधिकार देगी या नही। श्री लिटिलटनने उत्तर दिया कि लडाईकी समाप्तिपर जो सन्धि हुई उसका अर्थ बोअर लोग यह करते है कि जबतक ट्रान्सवालको पूर्ण स्वराज्य नही मिलता तबतक किसी भी काले आदमीको मताधिकार नही दिया जायेगा। इसके आधारपर श्री लिटिलटनने भारतीयोको मताधिकारसे वचित कर दिया है जिससे बोअर लोगोको ब्रिटिश सरकारकी ईमानदारीके बारेमे सन्देह उत्पन्न न हो। सन्धिपत्रमे जो शब्द प्रयोगमे लाया गया है वह "रगदार लोग" नही है, अपितु "वतनी" है। अब "वतनी" शब्दका अर्थ किसी भी प्रकार "भारतीय" नही किया जा सकता। दक्षिण आफ्रिकामे यह शब्द सदैव इस देशके मूल वासियोके लिए ही प्रयुक्त किया जाता है। "वतनी" शब्दमे भारतीयोको और दूसरे काले लोगोको गिननेका रिवाज अभी नया ही है। और वह भी तब जब कानूनमे विशेष रूपसे उसका ऐसा उल्लेख हो। अब भी आम तौरसे इसका इस प्रकारका अर्थ नही किया जाता। फिर भी श्री लिटिलटनने ऊपर जो स्पष्टीकरण किया है वह आश्चर्यजनक है। और यदि भारतीय "वतनी" शब्दमे इस तरह शामिल किये जाते रहे तो उनको बहुत हानि होनेकी सम्भावना है।

स्वराज्य मिलनेपर डच या ब्रिटिश कोई भी भारतीयोको मताधिकार देगे, यह सम्भावना तनिक भी नही है। सर जॉर्ज फेरारने, जो ट्रान्सवालके एक विख्यात सज्जन है, कहा है कि "वतनी" लोगोको कभी मताधिकार नही दिया जायेगा। भारतीयोके सम्बन्धमे इन महानुभावके विचार बहुत ही विरोधी है। इसलिए "वतनी" लोगोको मताधिकार न मिले और भारतीयोको मिले, यह विचार उनको सपनेमे भी नही आ सकता।

उपर्युक्त सवाल-जवाबका अर्थ यह निकलता है कि जब-जब "वतनी" शब्दके अन्तर्गत भारतीय गिने जायें तब-तब डटकर मोर्चा लिया जाये।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २७-५-१९०५

३९९. जोहानिसबर्गमें चेचक[1]

जोहानिसबर्गमे चेचक आ गई है। कहा यह जाता है कि वह मुसाफिरी जहाजोसे आई है। इसका मलायी बस्तीसे आरम्भ हुआ है। इसका सबसे पहला रोगी एक मलायी था। उसके बाद यह रोग एक गोरेको हुआ। डॉक्टर पोर्टरके कथनानुसार ५ भारतीय भी व्याधिग्रस्त हुए हैं। मलायी बस्तीमे बडी सख्ती की जा रही है। सुबह और शाम लोगोके घरोकी जाँच की जाती है।

अगर चेचक अधिक फैली तो बडी दिक्कते पैदा होनेकी सम्भावना है। मलायी बस्तीमे जबरन टीके लगाये गये है। लेकिन बात यही खत्म नही हो जाती। नगर-परिषदने कानून बनाये है। और जब वे अमलमे आयेगे तब सम्भवत. बहुत-सी कठिनाइयाँ सामने आयेगी।

उपाय लोगोके ही हाथमे है। घर साफ रखना, हर रोज नहाना, पानी और दूध आदि स्वच्छ रखना, कपडे साफ पहिनना, और मकानमे हवा और रोशनी काफी आने देना। ये चेचक और दूसरी बीमारियोको रोकनेके उपाय है। यदि घरमे किसीको चेचक निकले तो उसकी खबर अधिकारियोको तुरन्त दी जाये। लोग ऐसे रोगोको डरके मारे जितना छिपायेंगे उतना ही अधिक कष्ट होगा तथा रोग अधिक फैलेगा और अधिकारी विरोधी हो जायेंगे। फिर रोगीको अन्तमे अस्पताल तो ले जाया ही जायेगा। तब यदि हम स्वय ही खबर दे दें तो परेशानी कम होनेकी सम्भावना है। रोगीको अस्पताल ले जानेसे कोई नुकसान नही होगा; बल्कि जल्दी आराम होनेकी सम्भावना है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २७–५–१९०५

४००. पत्र: मुहम्मद सीदतको

जोहानिसबर्ग
मई २७, १९०५

श्री मुहम्मद सीदत
मार्फत श्री एम० सी० एग्लिया
ग्रे स्ट्रीट
डर्बन

श्री सेठ मुहम्मद सीदत व अन्य इस्लामी न्यासी,

आपका पत्र मिला। मेरे भाषण[2] और लेखसे आपको और दूसरे सज्जनोको बुरा लगा, उसके लिए मुझे बहुत दुःख है और मैं माफी चाहता हूँ।

उस भाषणमे मेरा उद्देश्य तमाम भारतीयोकी सेवा करना था। मै मानता हूँ कि वैसी ही छाप मेरे भाषणके श्रोताओके मनोपर पडी है।

१. यह "हमारे संवाददाता द्वारा" प्राप्त रूपमें छपा था।

२. देखिए खण्ड ४, पृष्ठ ३९५, ४०२ और ४३५।

मैंने जो कुछ कहा है वह इतिहासपर आधारित है, इसमें कोई शक नहीं है और इसके लिए मैं आपसे *एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका* और हन्टरकी *इंडियन एम्पायर* आदि पुस्तकें देखनेकी सिफारिश करता हूँ।

हलके वर्गके लोग मेरी समझमें नीच नहीं हैं। मैं उनको सँभालना खुदाई काम मानता हूँ। आपने मेरा वर्ण पूछा है। मेरा वर्ण वैश्य है।

अधिक क्या लिखूँ।[1]

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० १६३।

४०१. लॉर्ड सेल्बोर्नको दिया हुआ मानपत्र

जोहानिसबर्ग
[मई २८, १९०५][2]

परमश्रेष्ठ हमपर कृपालु हो

हम, नीचे हस्ताक्षर करनेवाले, ट्रान्सवालमें बसे हुए ब्रिटिश भारतीयोंके प्रतिनिधि, परमश्रेष्ठका सम्मानपूर्ण स्वागत करनेकी इजाजत चाहते हैं, और प्रार्थना करते हैं कि आपके शासनकालमें विशेष रूपसे यह देश पुन समृद्धिको प्राप्त हो और इस उपमहाद्वीपमें बसी हुई महामहिमकी प्रजाओंके विभिन्न अंगोंमें शान्ति और सौहार्दकी स्थापना हो। क्या हम परमश्रेष्ठसे यह अनुरोध कर सकते हैं कि परमश्रेष्ठ महामहिम सम्राट और सम्राज्ञीको उनके प्रति हमारी राजभक्तिका विश्वास दिला देनेकी कृपा करेंगे?

हम हैं,
परमश्रेष्ठके विनीत सेवक,
अब्दुल गनी,
ए० ए० पिल्ले,
मो० क० गांधी
[तथा अन्य १७ व्यक्ति]

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, १०-६-१९०५

१. गांधीजी इस सम्बन्धमें अपनी स्थिति कुछ विस्तारसे पहले स्पष्ट कर चुके हैं, देखिए "श्री गांधीका स्पष्टीकरण," १३-५-१९०५।

२. यह मानपत्र वस्तुतः बुधवार ७ जूनको भेंट किया गया था।

४०२. पत्र : ईसा हाजी सुमारको

[जोहानिसबर्ग]
जून १, १९०५

सेवामे
श्री ईसा हाजी सुमार
रानावाव
पोरबन्दर
काठियावाड़, भारत

श्री सेठ ईसा हाजी सुमार,

आपका पत्र मिला। जोशी चतुर आदमी हैं, यह ठीक है। किन्तु मुझे इस समय यहाँ कुछ भी पैसा मिलनेकी सूरत नही दिखती। उमर सेठने श्री मजमूदारको[1] ठीक पैसा दे दिया था। आप भी वैसा ही कर सकते हैं। विलायत जायेंगे तो उसमे उचित खर्च करना पडेगा। अगर उसमें थोडा पैसा ज्यादा खर्च हो जाये तो हिसाब लगाना ठीक नही है।

श्री जोशीका पत्र वापस नत्थी करता हूँ।

मो० क० गांधीके सलाम

गाधीजीके स्वाक्षरोमे गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० २१०।

४०३. पत्र : एच० जे० हॉफमेयरको

निजी पत्र वाहक द्वारा प्रेषित

[जोहानिसबर्ग]
जून २, १९०५

सेवामे
श्री एच० जे० हॉफमेयर
जिमन्स बिल्डिंग्स
जोहानिसबर्ग

प्रिय श्री हॉफमेयर,

मुझे स्वीकार करना चाहिए कि आपके पत्रसे, जिसके साथ एक चैक भी है, मै असमंजसमें पड़ गया हूँ। क्योकि मेरा खयाल है कि इसमें एक सिद्धान्तका सवाल है। वह चैक मुझे एक खास कामके लिए दिया गया था। आप जानते हैं कि यह रुपया मेरा था। मेरे पास सईद इस्माइलका जो कुछ जमा था यह रकम उसमें से नही ली गई है। और इस बातको देखते हुए कि जिस जायदादको खरीदनेके उद्देश्यसे यह रकम दी गई थी वह जायदाद खरीदी नही गई है, मेरा खयाल है कि मै उस चैककी पूरी रकम वापस पानेका अधिकारी हूँ। मै जानता

१. जूनागढ़के श्री त्र्यम्बकलाल मजमूदार, इंग्लैंडमें गांधीजीके सहपाठी।

हूँ कि उसमें से आपने जो खर्च काटा है उससे मैं कुछ बरबाद नही हो जाऊँगा। लेकिन मैं समझता हूँ कि इससे पारस्परिक सम्बन्धोमें वैसा विश्वास जमनेमें मदद नही मिलती जैसा व्यवसायी लोगोमें होना चाहिए। मैं आशा करता हूँ कि मैंने आपको जो कुछ इतनी स्पष्ट-वादितासे लिखा है, आप उसका खयाल न करेंगे। लेकिन मैंने सोचा, मेरे मनमें आपका चैक, पत्र और बिल देखनेपर जो विचार आये, उन्हे आपको अवश्य बता देना चाहिए। नि.सन्देह मैं आपका चैक स्वीकार करता हूँ। इससे इस पत्रमें मैंने जो कुछ कहा है उसका प्रभाव आपके द्वारा की गई कटौतीपर नही पडता।

आपका सच्चा,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० २२०।

४०४. बड़ौदा : एक आदर्श भारतीय रियासत

सर विलियम वेडरबर्नने, जो कि भारतके अत्यन्त सच्चे मित्रोमें से हैं, *इंडिया*के हालके एक अंकमें, बम्बई प्रान्तकी बडौदा रियासतके प्रशासनके सम्बन्धमें एक प्रशंसात्मक लेख लिखा है। इस रियासतकी आबादी बीस लाख है और इसका क्षेत्रफल आठ हजार वर्गमील है। दूसरे शब्दोमें, यह ब्रिटेनके वेल्स प्रदेशसे कुछ बडी है। इसके वित्त-मन्त्री श्री रमेशचन्द्र दत्त[1] हैं, जो कि कभी उडीसाके कार्यवाहक कमिश्नर थे और जो साहित्य-जगतमें एक प्रतिभाशाली लेखकके रूपमें विख्यात है। महाराजा गायकवाडने, जो स्वयं भारतके सुसंस्कृत नरेशोमें से हैं, अपने सलाहकार भी योग्य एकत्र किये हैं; और श्री दत्त उनमें ज्वलन्ततम नक्षत्र हैं। उनकी ही प्रकाशित प्रशासन-रिपोर्टके आधारपर सर विलियम वेडरबर्नने बडौदाकी प्रशंसा की है। श्री दत्तने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें भारतीय जनसाधारणकी दरिद्रता दूर करनेके विषयमें अपने विचार प्रकट किये हैं। इसका एक मुख्य उपाय उन्होने यह सुझाया है कि कर-संग्रह प्रणालीको यथासम्भव अधिक लचकीला बना दिया जाये। बडौदामें मन्त्रिपद स्वीकार करते ही उन्हे अपने विचारोको अमलमें लानेकी इजाजत दे दी गई थी। अब वहाँ किसान एक निश्चित लगान केवल नकद रकमके रूपमें देनेके लिए बाध्य नही हैं। अब वह उसे, निश्चित नियमोके अनुसार, नकद या जिन्स, किसी भी रूपमें दे सकता है। इससे, हम फिर ब्रिटिश राजसे पहलेके जमानेमें पहुँच जाते हैं, जब भारत-भरमें किसान अपनी पैदावारका एक निश्चित भाग राजाको देता था। यह लोगोके विचारोके अनुकूल था और दोनो पक्षोके लिए सुविधाजनक भी। तब राजा किसानकी समृद्धिमें हिस्सा बँटाता था, और विपत्तिमें उसके साथ हानि उठाता था। महाराजाके मन्त्रीने, जनताको परेशान करनेवाली छोटी-छोटी लागें भी उठा दी हैं। श्री दत्तका काम कर-प्रणालीके सुधारपर ही समाप्त नही होता। शिक्षाके विषयमें भी उनके अपने निश्चित विचार हैं। रियासतका एक उन्नत जिला, अनिवार्य शिक्षाके परीक्षणके लिए चुन लिया गया है। श्री दत्तकी रिपोर्टके अनुसार, बडौदामें शिक्षाकी स्थिति, ब्रिटिश भारतकी तुलनामें, निम्निलिखित है .

१. श्री रमेशचन्द्र दत्त, भारतीय सिविल सर्विसके प्रमुख सदस्य, जो १८९०में कांग्रेसके लखनऊ अधिवेशनके अध्यक्ष हुए।

शासनके अन्य किसी भी विभागमें, महाराजा गायकवाड़की दूरदर्शितापूर्ण उदारता, इतनी प्रत्यक्ष नहीं जितनी कि शिक्षामें; और उसके परिणाम भी अन्यत्र कहीं इतने वास्तविक और ठोस नहीं निकले हैं। बड़ौदामें रियासतकी आयका ६.५ प्रतिशत शिक्षापर व्यय किया जाता है। इसके विपरीत, बंगालमें यह प्रतिशत १.१७, बम्बईमें १.४४, मद्रासमें १.३३, और सारे ब्रिटिश भारतमें लगभग १ है। और सारी आबादीमें शिक्षा पानेवाले बालकोंका प्रतिशत, बड़ौदामें ८.६, बंगालमें ४.०, बम्बईमें ६.२, मद्रासमें ३.०९, और समस्त ब्रिटिश भारतमें ३ से भी कम है। बड़ौदामें शिक्षाकी मदमें कुल आबादीपर प्रति व्यक्ति सात आने खर्च किये जाते हैं, जब कि ब्रिटिश भारतमें लगभग एक आना खर्च किया जाता है।

श्री दत्तकी दिलचस्पी स्वशासनकी समस्याके अतिरिक्त भारतके महान ग्राम-समाजोंको, जिन्हें स्वर्गीय सर हेनरी मेनने अपनी सजीव वर्णनशैलीमें आत्मनिर्भर गणराज्योंके रूपमें चित्रित किया है, पुनरुज्जीवित करने और कायम रखनेमें बहुत गहरी है। श्री दत्तने ग्रामोंको अपने प्रबन्धका निजरूप दे दिया है और गाँवके मुखियाको भी कुछ अधिकार दे दिये हैं; उन्होंने गाँवके अध्यापकको उसके आसनपर पुनः प्रतिष्ठित कर दिया है और पुरानी प्रणालीके पौधेमें सच्चे निर्वाचनात्मक प्रतिनिधित्वकी कलम लगा दी है। अब गाँवकी पंचायतके सदस्य पुश्तैनी न होंगे, वे लोगों द्वारा चुने जाया करेंगे। यह प्रयोग साहसपूर्ण है; और यदि यह सफल हो गया तो यह भारतीय रियासतोंके शासनमें एक नई प्रगतिका प्रतीक बन जायेगा। और जैसा कि सर विलियम वेडरबर्नने लिखा है, सम्भव है कि ब्रिटिश भारतकी सरकारको बड़ौदाका अनुकरण करना पड़े। सर विलियम वेडरबर्नने यह भी लिखा है कि इसमें लज्जा या झिझक अनुभव करनेकी कोई जरूरत नहीं है; प्रत्युत ब्रिटिश सरकारके लिए तो यह अभिमानकी बात होनी चाहिए; क्योंकि भारतको वर्तमान बड़ौदा नरेश और श्री दत्त जैसे असाधारण योग्यताके शासक भी तो आखिर उसने ही दिये हैं। बड़ौदा सरीखी रियासतसे दक्षिण आफ्रिकाके हमारे पाठकोंको अपने भारत-विषयक पूर्वग्रह और भ्रान्त विचार दूर करनेमें सहायता मिलनी चाहिए। क्योंकि जिस देशमें इतने अच्छे और इतने उत्थानकारी कार्य होते हों उसे किसी भी प्रकार असभ्य अथवा अर्ध-सभ्य जंगली जातियोंसे आबाद देश नहीं कहा जा सकता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३-६-१९०५

४०५. एक परोपकारी भारतीय

कुछ समयसे हमारे पास *इंडियन सोशिऑलॉजिस्ट* नामक पत्रकी प्रतियाँ आ रही हैं। यह पत्र "स्वतन्त्रताका और राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक सुधार" का समर्थक है। यह लन्दनसे प्रकाशित होता है और इसके सम्पादक हैं पंडित श्यामजी कृष्णवर्मा जो कि ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयके एम० ए० हैं और वहाँ अध्यापक भी रह चुके हैं। इस पत्रका सम्पादन निर्भीकतासे किया जाता है और इसके सम्पादक स्वर्गीय हर्बर्ट स्पेन्सरकी शिक्षाओंसे अनुप्राणित हैं। स्पष्ट है कि इस पत्रका लक्ष्य भारतीय विचारोंको स्पेन्सरकी शिक्षाओंके अनुसार ढालना है। पण्डितजी एक प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् हैं, और उनके पास सम्पत्ति भी अच्छी खासी है। उन्होंने कई छात्रवृत्तियाँ आरम्भ की हैं जिससे भारतीय छात्र यूरोप और अमेरिकामें अपना स्नातकोत्तर अध्ययन जारी रख सकें। प्रत्येक छात्रवृत्ति २,००० रुपये की है और वह भारतके सभी भागोंके चुने हुए स्नातकोंको इन मुख्य शर्तोंपर दी जाती है कि उम्मीदवार यूरोप या अमेरिकामें कमसे-कम दो वर्ष तक अवश्य रहेंगे और अध्ययन करेंगे एवं किसी भी अवस्थामें सरकारी नौकरी स्वीकार नहीं करेंगे। उम्मीदवारोंसे इस आशयका शर्तनामा लिखनेकी आशा की जाती है कि वे अध्ययन पूरा कर चुकनेपर इस प्रकार दी हुई रकमको सुविधाजनक किस्तोंमें चुका देंगे। प्रथम स्पर्धामें ये पाँच उम्मीदवार चुने गये हैं :– अब्दुल्ला-अल-महमू सुहरावर्दी, एम० ए०, शरद्चन्द्र मुखर्जी, एम० ए०, परमेश्वरलाल, एम० ए०, सैयद अब्दुल मजीद, बी० ए०, और शेख अब्दुल अजीज, बी० ए०। यह प्रयोग अति साहसपूर्ण है। दानी व्यक्तिके उद्देश्य देशभक्तिपूर्ण हैं। परन्तु इस प्रयोगकी सफलता बहुत-कुछ इस बातपर निर्भर करती है कि प्रथम छात्र इस अवसरका उपयोग कैसे करते हैं। उनकी शिक्षा-सम्बन्धी योग्यताएँ तो सुखद परिणामकी सूचक हैं। हम पण्डित श्यामजी कृष्णवर्माके प्रयत्नकी पूर्ण सफलताकी कामना करते हैं। दक्षिण आफ्रिका और अन्य स्थानोंके भारतीय व्यापारी भी उनके उदाहरणका अनुकरण बखूबी कर सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३–६–१९०५

४०६. श्री गांधीकी टिप्पणियाँ[1]

उपर्युक्त पत्रको पढकर मुझे बहुत दु.ख हुआ है। मैंने वही लिखा है जिसे मैंने सत्य माना है। फिर भी, मुझे मालूम हुआ है कि कुछ लोग मेरे कथनसे अप्रसन्न हुए है। उसके लिए मुझे खेद है और मै उनसे क्षमा माँगता हूँ। चूँकि मै इस विवादको बढाना नही चाहता, इसलिए मै इस पत्रका उत्तर कुछ भी विस्तारसे देना ठीक नही समझता। मैंने इस्लामकी निन्दा करनेका प्रयत्न नही किया है और न मै उसे नीचा ही मानता हूँ। मै नही समझता हूँ कि जब मैंने वह भाषण दिया था तब किसी व्यक्तिके मस्तिष्कपर ऐसा प्रभाव पडा होगा।

मो० क० गांधी

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३–६–१९०५

४०७. जोहानिसबर्गमें चेचक

यह रोग जोहानिसबर्गमें फूट निकला है; लेकिन सौभाग्यसे अधिक फैला नही है। हुसनमल नामका एक भारतीय मलायी बस्तीमें रहता है। उसके घरमे एक लडकेको चेचकका रोग हो गया था। उसने इसकी खबर अधिकारियोको नही दी और जब अधिकारियोने पूछताछ की तब उसने सही-सही बात नही बताई। इस वजहसे उसपर मुकदमा चलाया गया और १० पौंड जुर्माना किया गया। इस उदाहरणसे हम लोगोको सबक लेना चाहिए। रोगको छिपानेसे कुछ भी लाभ नही, अपितु बहुत हानि है। केवल छिपानेवाला ही उसकी सजा भुगतता है, यह बात नही है, बल्कि वह सारी कौमको भुगतनी पडती है। चेचक छूत लगनेसे फैलती है, इसमें कोई शक नही। हजारो मनुष्य इससे दु.खी होते है, यह हम जानते है। इसलिए स्वय अपनी तन्दुरुस्ती कायम रखनेके लिए भी हमें सँभल कर रहना आवश्यक है।

फिर, दक्षिण आफ्रिकामे सँभलकर रहनेकी और भी ज्यादा जरूरत है क्योकि हममे से किसी से भी भूल हो जाये तो उससे पूरी कौमको उलाहना मिलता है और सारी कौमके सामने बाधाएँ आती है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३–६–१९०५

१. श्री गांधीके उत्तरके बाद (देखिए "श्री गांधीका स्पष्टीकरण", १३–५–१९०५) *इंडियन ओपिनियनके* सम्पादकको दो विरोध-सूचक पत्र प्राप्त हुए। उनमें से एक पत्रमें, जिसपर "एक मुसलमान" के दस्तखत है, यह दावा किया गया है कि . . . "लगभग एक लाख बोहरे मुसलमानोंके, जिनकी समाजमें अच्छी प्रतिष्ठा है, पुरखे सिद्धपुरके ब्राह्मण पुरोहित थे। इसके अतिरिक्त मध्य गुजरातके सुन्नी बोहरोंके पुरखे वनिया थे। इस प्रकार यह सिद्ध किया जा सकता है कि उच्च श्रेणियोंमें से भी कुछ लोग मुसलमान बने थे।" गांधीजीका उपर्युक्त उत्तर इसी सम्बन्धमें है।

४०८. सैम्युअल स्मिथ और भारत

श्री सैम्युअल स्मिथ भारतके शुभचिन्तक हैं। वे ब्रिटिश ससदके सदस्य हैं, और पिछली कांग्रेसमे खास तौरपर गये थे। उन्होंने लन्दन *टाइम्सको* लिखते हुए निम्न सुझाव दिये हैं:

१. ब्रिटेनमें जो इंडिया कौंसिल है उसमें तीन दक्ष भारतीय शामिल किये जायें और उनकी नियुक्ति वाइसराय करें।

२. वाइसरायकी शासन-समितिमें कमसे-कम एक भारतीय नियुक्त किया जाये।

३. ब्रिटिश संसदमें कलकत्ता, बम्बई और मद्रासकी ओरसे एक-एक सदस्य नियुक्त किया जाये और उन सदस्योंका चुनाव सम्बन्धित धारासभाएँ करें।

श्री सैम्युअल स्मिथका कहना है कि इस प्रकार सुधार किया जाये तो भारतीयोको बहुत सन्तोष होगा और शासन-प्रवन्ध बहुत अच्छा चलेगा। फिर श्री स्मिथ यह बताते हैं कि भारतकी सबसे बड़ी बीमारी कगाली है। इसलिए रैयतको सुखी करनेके लिए भूमिका लगान सदाके लिए निश्चित कर देना चाहिए और वह बहुत कम होना चाहिए। श्री स्मिथके इन विचारोंपर सरकार ध्यान दे तो अवश्य लाभ होगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३-६-१९०५

४०९. भारत और आम चुनाव

खयाल किया जाता है कि अब सम्भवत कुछ ही दिनोमे ब्रिटिश संसदका नया चुनाव होगा। ऐसे अवसरपर भारतकी अवस्था ब्रिटिश मतदाताओको बताई जानी चाहिए। इस विचारसे गत कांग्रेसमें यह प्रस्ताव किया गया था कि भारतीय प्रतिनिधि भारतसे ब्रिटेन भेजे जाये। *इंडिया* पत्र बताता है कि इस सम्बन्धमे भारतके पक्के मित्र सर विलियम वेडरबर्नने एक सूचना निकाली है और ब्रिटेनके बड़े शहरोके सदस्योसे विनती की है कि वे भारतीय प्रतिनिधियोसे भारतके दु:खोका इतिहास सुननेके लिए सभाएँ करे। इन प्रतिनिधियोंके मुखिया श्री गोपालकृष्ण गोखले सी० आई० ई० नियुक्त किये गये है। ये श्री गोखले वे ही है जिन्होंने पूनाके फर्ग्युसन कॉलेजमे केवल अपने जीवन-निर्वाह लायक पैसा लेकर अध्यापनका काम किया था। इन दिनो वे कलकत्तामे इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौसिलके सदस्य है और प्रतिवर्ष उसमें भारतके निमित्त टक्कर लेते है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३-६-१९०५

४१०. भारतमें प्लेग

पिछले अप्रैल मासके अन्तिम सप्ताहमें भारतमे प्लेगसे ६५,७८० लोग बीमार पडे और उनमें से ५७,७०२ मर गये। संयुक्त प्रान्तमे[1] २३,३८७, पजाबमे १९,०१५, बम्बई प्रान्तमे ३,०५६ और बंगालमें ९,७०३ लोग मरे। *लिबर्टी रिव्यू* नामक पत्रने इस मृत्यु-सख्याकी कडी आलोचना की है, और कहा है कि इस प्लेगके लिए अंग्रेज सरकार जिम्मेवार है, क्योंकि देशमे भुखमरी बहुत है। यह हिसाब लगाया गया है कि ३० करोड़में से ३ करोड लोगोंको केवल एक बार खाना मिलता है। यह निश्चित बात है कि जिस मनुष्यको रोज भूखा रहना पडता हो उसका शरीर धीरे-धीरे कमजोर पड़ता जाता है, और अन्तमें ऐसा बिगड जाता है कि उसपर छूतके कीटाणुओका असर तुरन्त होता है। फिर भी हमे कहना चाहिए *लिबर्टी रिव्यूकी* आलोचना एक हदतक नामुनासिब है। यह अनुभवके आधारपर कहा जा सकता है कि केवल भुखमरीसे पीडित लोगोको ही प्लेग नही होता। हम देखते हैं कि अच्छी स्थितिमे रहनेवाले भी इसके शिकार हो जाते हैं। और अनुभवसे हम यह कह सकते हैं कि:

१. जिस घरमें प्लेग होता है उस घरमें अक्सर सभी लोग बीमार पडते हैं।
२ जिस गाँवमे प्लेग फैलता है वहाँ उसका सर्वथा उन्मूलन नही होता।
३. जो लोग स्वच्छतापूर्वक रहते हैं उनको प्लेग कम होता है।
४. जहाँ प्लेग हो, उस गाँवसे लोग निकल जाते हैं तो बच जाते हैं।
५ भारतीयोमे जितना प्लेग होता है उतना गोरोमे नही होता।
६ गोरे अधिक स्वच्छ रहते हैं और स्वास्थ्यके नियमोका पालन करते हैं।
७. भारतसे बाहर जहाँ-जहाँ प्लेग होता है वहाँ वह तुरन्त निर्मूल हो जाता है।

इससे हम देख सकते हैं कि भुखमरीके साथ प्लेगका सम्बन्ध अधिक नही है।

इसमे कोई शक नही कि प्लेग के सम्बन्धमें मुख्य बात स्वच्छता रखनेकी है। स्वच्छताका मतलब बस नहाना-धोना ही नही है। यह ठीक है कि शारीरिक स्वच्छता रखनी चाहिए। परन्तु इसके अतिरिक्त घर साफ रखना चाहिए, घरमें रोशनी और धूप आने देनी चाहिए। पाखाने साफ रखने चाहिए और जिस घरमें रोग हो वहाँ रोगी और दूसरोके रहनेकी सुविधा ऐसी रखनी चाहिए कि रोगीके लिए बरता जानेवाला सामान दूसरे व्यवहारमें न लायें। प्लेगके रोगीकी तीमारदारी एक महत्त्वपूर्ण विषय है। उसके बारेमें इस समय अधिक नही कह सकते, किन्तु हमारे पाठकोंको यह याद रखना आवश्यक है कि प्लेगके समान दूसरा घातक रोग देखनेमे नही आता। हैजा हमेशा भयानक रोग माना गया है; लेकिन प्लेगके सामने वह कुछ नही है, ऐसा कहा जा सकता है। फिर भारतमें दिन-प्रतिदिन प्लेग बढ रहा है, घट नही रहा है। उदाहरणार्थ उससे १९०१ में २,७२,००० मौतें हुईं, १९०२ मे ५,००,००० और १९०३ मे ८,००,०००; और इस वर्ष तो इतना अधिक जोर है कि सहज ही १०,००,००० मौते हो जायेंगी। प्रतिमास इस वर्ष १,२०,०००[2] मनुष्योंकी औसत आ रही है। इस प्रकार

१. अब उत्तर प्रदेश।
२. मूल लेखमें १,२०,००० का अंक प्रत्यक्षतः भूलसे लिखा गया है।

मौतें होती ही रहीं और प्रतिवर्ष बढ़ती ही रहीं तो सारा भारत १५ वर्षमें उजाड़ हो जाये तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। कुछ गाँव तो उजड़ चुके हैं। पंजाबमें कई जगह लोकोपयोगी काम बन्द हो गये हैं। प्लेगसे बचे हुए लोग गाँव छोड़कर भाग गये हैं। इसलिए इसपर प्रत्येक भारतीयको विचार करना चाहिए। प्रत्येक भारतीयको अपना हृदय टटोलना है और अपने कर्त्तव्यकी रूपरेखा तैयार करनी है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ३-६-१९०५

४११. पत्र: एम० एच० थर्स्टनको

[जोहानिसबर्ग]
जून ५, १९०५

श्री एम० एच० थर्स्टन
पो० ऑ० बॉक्स १७१२
जोहानिसबर्ग

प्रिय महोदय,

मैं देखता हूँ कि जिस मकानमें रह रहा हूँ उसके भोजन-कक्षकी चिमनी बिलकुल काम नहीं करती। उसमें जो भाग लकड़ीका बना है वह बाहर उभर आया है। प्रत्येक बार, जब मैं आग जलाता हूँ, भोजनकक्ष धुएँसे भर जाता है। यह धुआँ लकड़ीके बाहर उभरे हुए भागकी दरारोंमें से निकलता है।

यदि आप इसको कृपापूर्वक अविलम्ब ठीक करा देंगे तो मैं आपका कृतज्ञ हूँगा।

मैं आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर भी आकृष्ट करना चाहूँगा कि ट्रान्सवालमें सब जगह किराये घट गये हैं। और यदि आप, मैं जो किराया दे रहा हूँ उसमें कुछ कमी कर देंगे तो मैं कृतज्ञ होऊँगा।

आपका विश्वासपात्र,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० २५२।

४१२. पत्र : उमर हाजी आमद झवेरीको

[जोहानिसबर्ग]
जून ६, १९०५

सेवामें
श्री उमर हाजी आमद झवेरी
बॉक्स ४४१
डर्बन

श्री सेठ उमर हाजी आमद झवेरी,

प्रिटोरियासे प्राप्त तार साथ भेजता हूँ। श्री शोन नामके एक व्यक्तिने हाजी तैयब खान मुहम्मदको दस वर्षके पट्टेके लिए ५० पौंड देनेका प्रस्ताव किया है। उसका पत्र मुझे कल ही मिला है। परन्तु मकान कितनेका है, उसने इस बारेमें कुछ नहीं लिखा। मैंने उस व्यक्तिसे पुछवाया है, किन्तु उसमें कोई सार निकलता नहीं प्रतीत होता। तारसे ऐसा जान पड़ता है कि १४,००० पौंडका मकान २० पौंडमें तय है।[1] फिर भी केलनबेकसे नहीं मिला, इसलिए मैंने तार नहीं दिया। मुझे दस्तावेज भेजना।

मैं बहुत करके ९ तारीखको रवाना हूँगा। ११ तारीख रविवार दादा सेठके काममें लगानेका विचार है। मुझे जैसे हो वैसे तुरन्त वापस आना पड़ेगा, क्योंकि यहाँ मेरी बहुत जरूरत है। मुझे कुछ समय फीनिक्सको भी देना चाहिए। बात यह है कि मुझे अधिकसे-अधिक १९ तारीखतक यहाँ पहुँच जाना चाहिए।

मो० क० गांधीके सलाम

संलग्न — एक

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० २५९।

१. पहली रकम मकानकी कीमतकी और दूसरी उसके किरायेकी है।

४१३. पत्र : खुशालभाई गांधीको[1]

[जोहानिसबर्ग]
जून ७, १९०५

सेवामे
श्री खुशाल जीवन गाधी
सरधार राजकोट होकर
काठियावाड़, भारत

आदरणीय खुशालभाई,

आज छगनलालका पत्र मिला है। वह उसमे लिखता है कि हकीकी[2] लडकी गुजर गई है। यहाँ ऐसी दुर्घटनाओपर विचार करनेका भी अवकाश नही रहता। यह इस देशकी तासीर है। मै समझ सकता हूँ कि आपके और भाभीके मनपर इस दु खका असर कितना हुआ होगा। किन्तु ऐसे दु ख हम सबको कसौटीपर कसते हैं। इस समय धीरज रखा जा सके तभी ठीक है।

मै दो दिनोमे फीनिक्स जाऊँगा। तब चि० छगनलाल और मगनलालसे मुलाकात होगी।

मोहनदासका दंडवत्

गाधीजीके स्वाक्षरोमे गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), स० २७२।

४१४. पत्र : फुलाभाईको

[जोहानिसबर्ग]
जून ७, १९०५

सेवामे
श्री फुलाभाई
बॉक्स १२८
पॉचेफस्ट्रूम

प्रिय श्री फुलाभाई,

आपके दो पत्र मिले।

अपने पत्रमे आपने मुझे फीस भेजनेके लिए लिखा था और हुसेन इब्राहीम यहाँसे गये तब भी आपने पैसा भेजनेकी बात कही थी। इसलिए मैंने आपके खाते नामे लिखनेका निर्देश दे दिया था। चाहे जिसके खाते नामे लिखे, मेरे लिए एक ही बात है, क्योंकि मै किसीपर नालिश तो करता नही हूँ। इसीलिए बिना जाने-पहचाने व्यक्तियोसे खास तौरपर अगाऊ फीस

१. गाधीजीके चचेरे भाई और श्री छगनलाल और मगनलालके पिता।
२. श्री खुशालभाईकी पुत्री हरकुँवर बेन।

लेता हूँ। आप बीचमें मध्यस्थ न होते तो मैं फीस लिए बिना बिलकुल काम नही करता; फिर भी चूँकि आप आनाकानी करते है, इसलिए यह रकम आपके खातेमें नही रखूँगा।

हुसेन इब्राहीम यहाँ आयें अथवा वहाँसे दस्तखत करके दस्तावेज भेजें तभी यह स्टोर बचेगा; नही तो इसे एक ही लेनदार खा जायेगा। वे फीस भेजे तो मैं दस्तावेज तैयार करके भेज दूँ। यह लिखें कि उनका माल कहाँ है और नीलामका नोटिस मिला है या नही।

मो० क० गांधीके यथायोग्य

गाधीजीके स्वाक्षरोमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० २८१।

४१५. लॉर्ड सेल्बोर्न और भारतीय

हम एक अन्य स्तम्भमे ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयो द्वारा लॉर्ड सेल्वोर्नको मानपत्र[1] भेंट करनेका मनोरजक विवरण प्रकाशित करते है। यद्यपि मानपत्रकी सलिपि उक्त अवसरके अनुकूल और सीधी-सादी है, परन्तु उससे यह प्रकट होता है कि ब्रिटिश भारतीय, चारो ओर परिस्थितियाँ उत्तेजक होनेपर भी, अपने सहज शिष्टाचारको नही भूलते और यह बात उन्होने, दक्षिण आफ्रिकामे सम्राटके प्रतिनिधिके स्वागतसे सिद्ध कर दी है। उचित तो यह था कि यह मानपत्र सार्वजनिक रूपसे दिया जाता, परन्तु खेद है कि ऐसा नही किया गया। किन्तु स्पष्ट है कि इसमे भूल भारतीयोकी नही थी। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होने तैयारियाँ बहुत पहलेसे ही कर रखी थी और परमश्रेष्ठ गवर्नरके निजी सचिवने जो-जो आवश्यक बताया वह सब पूरा कर दिया गया था। यद्यपि लॉर्ड सेल्वोर्नके स्वागतमें किये गये समारोह राजनीतिक नही थे, फिर भी हम देखते है कि प्रिटोरिया और जोहानिसबर्ग, दोनोके महापौर, भारतीय प्रश्नकी चर्चा किये बिना नही रह सके है। इस प्रश्नकी ओर लॉर्ड सेल्बोर्नका ध्यान इतनी जल्दी खीचना उचित था या नही, इस विषयमे मतभेद रहेगा ही। जोहानिसबर्गके महापौर, श्री जॉर्ज गॉश यो तो उदारमना सज्जन है, और वे दक्षिण आफ्रिकामे कई बार रगदार लोगोका पक्ष भी ले चुके है, परन्तु इस अवसरपर, अपने स्वास्थ्यकी शुभकामनाका उत्तर देते हुए, उनके मुँहसे भी निकल गया कि सर आर्थर लालीने श्री लिटिलटनको ब्रिटिश भारतीयोके प्रश्नके विषयमे जो अन्तिम खरीता भेजा है उससे सच्ची स्थिति प्रकट हो जाती है; और भारतीय लोगोको कृतज्ञ होना चाहिए कि,

> **श्री लालीने इस प्रश्नको इतने ऊँचे पायेपर उठा दिया है कि उनमें से कोई उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता था, और अपने खरीतेमें उन्होंने एक अत्यन्त उलझे हुए तथा कठिन प्रश्नको नई धारासभामें, जो जल्दी ही उनके ही नेतृत्वमें चलेगी, हल करनेका एक आधार प्रदान किया है।**

हमारे खयालसे तो हम निश्चयात्मक रूपसे दिखा चुके है कि वह खरीता गलतबयानियो और ऐसी भावनाओसे भरा पडा है जिनसे किसी भी अग्रेज राजनयिककी प्रतिष्ठा नही बढ़ती। हम सर आर्थर लालीका बहुत आदर करते है। हमारा विश्वास है उनके हेतु अच्छे रहे है; परन्तु हमें खेदपूर्वक कहना पड़ता है कि वे इस प्रश्नके सम्बन्धमे बिलकुल गलत रास्तेपर चले गये है और व्यापक द्वेषभावके वशीभूत होकर उसके शिकार बन गये है। उन्होने

१. देखिए "लॉर्ड सेल्वोर्नको दिया हुआ मानपत्र," मई २८, १९०५।

उपनिवेश-मन्त्रीको यह सलाहतक देनेमे सकोच नही किया है कि वे ब्रिटिश सरकारकी बार-बार दुहराई हुई प्रतिज्ञाओको तोड दें; और निस्सन्देह उन्होने अनजानमे ही इस भयावह परामर्शके समर्थनमे तथ्योके गलत हवाले दिये है। ब्रिटिश सरकारकी शक्ति बहुत कुछ, उसकी सचाईमें और अपने वचनोका ईमानदारीसे पालन करनेमे है। यह ठीक है कि कई बार उसने इसके विपरीत आचरण किया है, और जब-जब उसने ऐसा किया है तब-तब अग्रेजोकी प्रतिष्ठाकी ही क्षति हुई है। कोई भी राजनयिक ऐसे आचरणका स्मरण अभिमानपूर्वक नही करता, वह या तो उसकी लीपा-पोती करता है या उसकी सफाई देनेका प्रयत्न करता है। इस प्रकार वह अप्रत्यक्ष रूपसे यह दिखाना चाहता है कि ब्रिटिश राजनयिकोका इरादा अपने ऊँचे स्तरसे स्खलित होनेका कदापि नही है। इसलिए श्री जॉर्ज गॉशकी स्थितिके सज्जनको भी उन लोगोकी पक्तिमें खड़ा देखकर चिन्ता होती है जो कि ब्रिटिश तौर-तरीकोमे क्रान्ति करनेवाली नीतिके समर्थक है। फिर भी इससे, ब्रिटिश भारतीयोके प्रश्नपर ट्रान्सवालके यूरोपीय लोगोकी भावनाएँ प्रकट होती हैं। और व्यावहारिक राजनीतिज्ञोको इन भावनाओका ध्यान रखना है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०–६–१९०५

४१६. चीनियों और काफिरोंकी तुलना

चीनी लोग जोहानिसबर्गकी खानोमे रखे गये है, इसके सम्बन्धमे अब भी इग्लैंडमे बहुत चर्चा होती रहती है। इस बारेमे लोगोके मानसिक क्षोभको शान्त करनेके लिए लॉर्ड मिलनरने अपनी रवानगीसे पहले एक विवरण ब्रिटेन भेजा था जो वहाँ प्रकाशित हुआ है। इसमे लॉर्ड मिलनरने बताया है कि काफिरोको ढूँढने और उन्हे जोहानिसबर्ग लानेमे तीन वर्षोमे प्रति व्यक्ति १० पौड १५ शिलिग खर्च बैठता है। चीनियोको लानेका खर्च प्रति व्यक्ति १६ पौड ११ शिलिग ३ पैस पडता है। इससे लॉर्ड मिलनर दिखाना चाहते है कि चीनियोको लानेमें खान-मालिकोको पैसोका फायदा नही होता। फिर जोहानिसबर्गमे लाये जानेपर भी काफिरोकी अपेक्षा चीनियोंपर खर्च अधिक पडता है। क्योकि काफिरोपर प्रतिदिन प्रति व्यक्ति पौने छः पेंस खर्च आता है, जब कि चीनियोपर प्रतिदिन प्रति व्यक्ति ११ पेंस खर्च पडता है, लॉर्ड मिलनर इसके आधारपर बताते हैं कि यदि खान-मालिकोको पर्याप्त सख्यामे काफिर मिल जाये तो वे चीनियोका नाम भी नही लेंगे। ३०,९८० चीनी तो ट्रान्सवालमे प्रविष्ट हो चुके हैं।

इन सारे आँकडोमें लॉर्ड मिलनर एक बात भूल गये है कि काफिर क्वचित् ही छ महीने काम करते हैं, जब कि चीनियोको लगातार ३ वर्ष काम करना पडता है। फिर चीनी, काफिरोकी अपेक्षा अधिक फुर्तीले होते है, इसलिए उनसे अधिक काम लिया जा सकता है। यह बात मुख्यत आवश्यक है और इसके बारेमे ये महानुभाव एक शब्द भी नही कहते। जबतक यह ध्यान नही रखा जाता, तबतक लॉर्ड मिलनरके आँकड़े कुछ भी उपयोगी नही माने जा सकते। अधिक कुशलको अधिक वेतन दिया जाता है। यदि ऐसा न हो तो लॉर्ड मिलनरके हिसाबसे तो यह भूल हो रही है। इसलिए हमे लगता है कि लॉर्ड मिलनरके विवरणका प्रभाव ब्रिटेनमे अधिक होनेकी सम्भावना नही है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०–६–१९०५

४१७. जापान और रूस

जापानकी कला दिनोदिन बढ़ती दिखाई देती है। उसने पोर्ट आर्थरका किला तोड़ा, मुकदन सर किया और दूसरी बहादुरियाँ दिखाईं। ये सब उसके बादके पराक्रमके सामने फीकी पड़ जाती हैं। उसने रूसके विशाल जहाजी बेड़ेको हरा दिया, यही नही, अपितु उसके बड़े जल-सेनाध्यक्षको घायल कर दिया और रूसका एक भी युद्धपोत नही छोड़ा। जापान इतनी बहादुरी दिखा सकेगा, ऐसा खयाल किसीने न किया था। बहुत-से लोग यह समझते थे कि रूसी बेडा सिंगापुर पहुँच जायेगा तब जापान बड़ी कठिनाईमे पड़ जायेगा। यह बात सब जानते थे कि जापानका बेड़ा कोई बहुत मजबूत बेड़ा नही है; क्योंकि जापानी युद्धपोत रूसी युद्धपोतोसे सख्यामे कम थे। किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि जापानकी सावधानी सबसे बढ़ी-चढ़ी थी। जल-सेनाध्यक्ष तोजोके जासूस बहुत चौकन्ने थे और जब रूसी बेड़ा उसके ठीक प्रहारके घेरेमें आ गया तभी उसने उसपर हमला कर दिया। यह साहस छोटा-मोटा नही कहा जा सकता। इस साहसकी तुलना नही की जा सकती। किन्तु इस प्रकार काम लेनेमे जल-सेनाध्यक्ष तोजोने जिस धीरज और दिमागी ठंडेपनका प्रयोग किया है उसे हम सर्वोपरि मानते हैं। इसमे सम्मान प्राप्त करने अथवा दुनियाको बहादुरी जतानेके उद्देश्यसे कुछ भी नही किया गया। तोजोका हेतु एक ही था और वह यह कि सही वक्तपर और सही जगह रूसको चपत लगायी जाये। यह उसने करके दिखा दिया है। और, जो रूस दो वर्ष पहले प्राय अजेय माना जाता था वह इस समय जापानके काबूमे आ गया प्रतीत होता है। यह कहा जाता है कि इस समुद्री युद्धसे जिसकी तुलना की जा सके ऐसा एक भी युद्ध तवारीखमे देखनेको नही मिलता। १६वी सदीमे इंग्लैंडकी एक बड़ी जीत हुई थी। स्पेनका बेड़ा अजेय था। वह इंग्लिश चैनलमे नष्ट हो गया था और अंग्रेज जल-सेनाध्यक्षकी जीत हुई थी। वह लड़ाई बड़ी भारी कही जाती है; किन्तु उसमे इंग्लैंडको दैवी सहायता मिली थी। स्पेनका बेड़ा बहुत बड़ा था, खाडी सकरी थी, और ऐन लड़ाईके मौकेपर ही ऐसी जोरकी आँधी चल पड़ी कि स्पेनका बेड़ा उसे बर्दाश्त नही कर सका। वह आँधी इंग्लैंडके बेडेके अनुकूल थी।

ट्रफाल्गर अन्तरीपके पास १९वी सदीमे नेल्सनने भारी विजय प्राप्त करके अंग्रेजी बेडेको प्रथम स्थान दिलाया; किन्तु उस समय आजकल जैसे मजबूत जहाज नही थे। उस समय इस जमानेके भयानक हथियार नही थे।

जापानको कोई अनपेक्षित सहायता नही मिली। उसका तो केवल एक पक्का निश्चय यह था कि उसे जीतना ही है। वह निश्चय उसका सच्चा मित्र सिद्ध हुआ है। हार किसे कहते हैं यह इस लड़ाईमे जापानने जाना ही नही है।

ऐसे महा कठिन पराक्रमका स्रोत क्या है? इस प्रश्नका उत्तर हमे बार-बार दुहरानेकी आवश्यकता है, और वह एक ही है — ऐक्य, स्वदेशाभिमान, मर-मिटनेकी चाह। इस संबंधमे सभी जापानियोका उत्साह एकसा ही है। इसमे कोई किसीको ज्यादा नही मानता, और उनमे फूट-फाट कुछ नही है। देशकी सेवा करनेके अतिरिक्त वे और कुछ नही जानते। जिस देशमे उन्होने जन्म लिया, जिन लोगोमे वे पले, और जिनके बीच उनको जीवन बिताना पडा, उस देशके समृद्ध होनेपर वे स्वयं समृद्ध बने, उस देशकी उन्नति होनेपर स्वय उन्नत हो और उस देशको राज्यसत्ता मिलनेपर ही उसके अंशके रूपमे राज्यसत्ताका उपभोग करे, ऐसा महान उनका

स्वदेशाभिमान रहा है। इस प्रकारके ऐक्य तथा स्वदेशाभिमानमे प्राणोंके प्रति अनासक्तिका योग है। जापानमे इस समय ऐसी स्थिति है। इस तरहकी स्थिति ससारके किसी अन्य भागमें नही है। मृत्युका भय तो उन लोगोने जाना ही नही है, बल्कि देश-सेवामे मरना हर प्रकारसे अच्छा माना है। एक दिन तो सभीको मरना है, फिर लडाईमे ही मरनेमे क्या हानि है? लडाईमे नही जायेंगे तो घरमे बैठकर अधिक जियेंगे, यह कोई निश्चय नही है। कदाचित् अधिक जियें, तो भी पराजित लोगोकी सतान बनकर रहनेमें क्या लाभ है? ऐसा विचार करके जापानी सर-फरोश हुए है। जो लोग इस प्रकार अपने हाड-मास तथा रक्त देते हो वे रणमें अजेय हो इसमे कुछ आश्चर्य नही है।

ये विचार किस कामके है? हमे इनसे क्या सीखना है? दक्षिण आफ्रिकामे जो हम तुच्छ-सी लडाई लड़ रहे है इसमे हम ऐक्य नही पाते है, फूट-फाट चलती रहती है। स्वदेशाभिमानके बदले स्वार्थ अधिक दीख पडता है। "मै बच जाऊँ, दूसरे भले ही जाये", ऐसा खयाल मनमे रहता है। हमे अपने प्राण इतने प्यारे होते है कि हम इन प्राणोसे मोह करते-करते ही चले जाते है। इस लोकमे कल्याण नही हो पाता तो परलोककी आशा किसे हो? हममे से ज्यादातर लोगोकी ऐसी ही स्थिति नजर आती है। यदि हम लोग जापानके उदाहरणसे प्रेरणा लेकर उसका थोडा-सा भी अनुकरण कर सके तो जापानके युद्धकी कहानी पढनेकी बात फलदायक होगी। वैसे तो बहुत-से तोते राम-राम रटते है, किन्तु इससे वे स्वर्ग नही पहुँच जाते। इसी तरह इसे केवल पढ़ जानेसे हमे भी कोई लाभ नही है।

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन, १०-६-१९०५

४१८. नेटाल भारतीय कांग्रेसकी सभामें भाषण

नेटाल भारतीय कांग्रेसकी एक सभा डर्बनमें श्री हाजी मुहम्मद हाजी दादाकी अध्यक्षतामें हुई थी। गांधीजीने उस अवसरपर भाषण करते हुए निम्न-बातें कहीं:

जून १६, १९०५

मेरी सलाह है कि काग्रेसके सदस्य हुडामलके परवानेके मुकदमेमे खर्च करनेका अधिकार काग्रेसके मन्त्रियोको दे दे। क्योकि मुकदमा बहुत सगीन है और यदि सघर्ष नही किया गया तो भविष्यमे पछतानेका मौका आयेगा। श्री मदनजीत भारतमें हमारी ओरसे अच्छा आन्दोलन कर रहे है, इसलिए उनको मददके तौरपर पैसा भेजा जाना चाहिए।

मैंने जोहानिसबर्गमे जो भाषण[1] दिये है, जान पडता है कि कुछ लोगोने उनका अनर्थ किया है। उन भाषणोसे मेरा इरादा मुसलमानोकी भावनाको ठेस पहुँचानेका नही था। हम लोगोको हिन्दुओ और मुसलमानोके बीच भेद नही करना चाहिए। हम लोगोको अच्छी तरह जानना चाहिए कि फूटके कारण हम अपना देश खो बैठे है और जापानी लोग सगठन और एकताके बलपर कितना कर सके है। हम अलग-अलग धर्मोके लोग है, किन्तु हमे यह स्वीकार करना चाहिए कि हम सार्वजनिक कार्योमे एक ही है।

[गुजरातीसे]
इंडियन ओपिनियन, १-७-१९०५

१. देखिए "हिन्दू धर्म," मार्च ४ और ११ एवं 'धर्मपर व्याख्यान,' अप्रैल १५, १९०५।

४१९. भारतमें प्लेगको कम करनेके उपाय

बम्बईके डॉक्टर टर्नरने बम्बई सरकारको लम्बा पत्र लिखा है। उसमे उन्होने कहा है कि प्रतिवर्ष प्लेग बढता जा रहा है। इसमे कमी होनेका एक ही रास्ता है और वह है टीके लगवाना। उक्त डॉक्टरकी मान्यता है कि जिन्होने टीके लगवाये है उनको प्लेग क्वचित् ही होता है। लेकिन लोगोको टीका लगवानेके लिए कैसे समझाया जाये यह एक बडी कठिनाई है। डॉ० टर्नर लिखते है कि लोगोके लिए टीका बाध्य कर देनेसे भी यह सम्भव नही है। मजदूरोको उनके मालिक बाध्य करे तो अच्छा, परन्तु ऐसा करनेमे समय लगेगा। इसलिए वह भी ठीक नही है। अन्तमे डॉ० टर्नर कहते है कि सरकार टीके लगवानेवाले व्यक्तिका बीमा करे; और उसे यह दस्तावेज लिख दे कि यदि वह टीका लगवानेके बाद एक वर्षके भीतर मर जायेगा तो सरकार उसके रिश्तेदारोको १०० रुपया देगी। डॉक्टरकी मान्यता है कि ऐसा करनेसे बहुत आदमी टीके लगवायेंगे। एक दूसरे डॉक्टरका सुझाव है कि टीके लगवानेवाले लोगोके लिए एक लॉटरी निकाली जाये। जो लोग टीके लगवायेंगे उनके नामकी पर्चियाँ डाली जाये और जिसके नामकी पर्ची निकले उसे इनाम दिया जाये। इस प्रकार ये भलेमानुस प्लेगको नष्ट करनेके लिए निष्फल प्रयत्न करते रहते है।

यह सम्भव है कि कुछ लोग इस प्रकारसे टीके लगवानेसे बच जाते होगे। परन्तु हमे इसमे कुछ भी लाभ नजर नही आता। टीके लगवानेका यह उपाय वैसा ही है जैसा कोई विषयी मनुष्य अपने विषय-भोगोके परिणामसे मुक्त होनेके लिए ढूँढता है। टीके लगवानेसे प्लेगके कारण निर्मूल नही होते। और जबतक ये कारण निर्मूल नही होते तबतक वास्तविक लाभ नही होगा। अगर प्लेग कम हो जायेगा तो उसके स्थानमे कोई दूसरा रोग पैदा हो जायेगा। जैसे जडे खोदे बिना पेड खतम नही होता वैसे ही प्लेगका कारण समाप्त किये बिना प्लेग समाप्त होनेवाला नही है। लोगोकी गन्दगी दूर करना, लोगोकी रीति-नीति सुधारना और लोगोकी गरीबी मिटाना आवश्यक है। हम मानते है कि हम लोग स्वच्छताके नियमोका पालन नही करते, यह हम पाप करते है। हमारी रीति-नीति ठीक नही है, क्योकि हम अपने कर्तव्योको भूल जाते है। तिसपर यह गरीबी है; इसलिए हमें सभी दशाएँ घेरती है। यह अवस्था कैसे सुधरे इसका विचार जो कर सके और विचार करके उसके अनुसार आचरण कर सके, वह मनुष्य भारतका त्राता माना जायेगा। इस प्रकारके मूलगत उपाय करनेके बाद सहायताके रूपमें दूसरे उपाय किये जायेंगे तो वे शोभा देंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–६–१९०५

४२०. इंग्लैंडको लड़ाईमें भारतकी सहायता

इंडिया अखबारमे, इग्लैंडको भारतीय सेनाकी कितनी मदद मिलती है, इसके कुछ आँकडे प्रकाशित किये गये है। इनसे पता चलता है कि १८९९ मे दक्षिण आफ्रिकामे ८,२१५ भारतीय सैनिकोकी सेना आई थी। चीनमे जब बॉक्सरका गदर हुआ था तब भारतसे भारतीय सेनाके १४,३७१ सैनिक भेजे गये थे। सोमालीलैंडमें ३,३७६ भारतीय सैनिक गये थे। तिब्बतमे और उत्तर-पश्चिम सीमाकी रक्षाके लिए जो भारतीय सैनिक जाते है उनकी गिनती इससे बिलकुल अलग है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–६–१९०५

४२१. गांधीजीका उत्तर[1]

उपर्युक्त पत्रके सबंधमे मुझे केवल यह कहना है कि इतिहासकी पुस्तकोमे जो तथ्य अंकित है वे गलत हो तो मुझे उसका पता नही है। मेरी कोई भूल हो तो मुझे उसे सुधारनेमे प्रसन्नता होगी। जिन तथ्योकी मैने चर्चा की है वे *एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका*, हंटरकी *हिस्ट्री ऑफ इंडिया* और अन्य पुस्तकोमे मिलते है। खैर, मेरा कहना सही है या गलत, इसपर जोर नहीं देना चाहिए। परन्तु जिस उद्देश्यसे मैने इन तथ्योको प्रस्तुत किया है उनपर विचार किया जाना चाहिए। और यदि मैंने ऐतिहासिक तथ्योको सद्‌भावसे प्रस्तुत किया है तो इससे किसीको दुःख न मानना चाहिए।

मो० क० गांधी

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७–६–१९०५

१ *इंडियन ओपिनियन*, ३–६–१९०५ में श्री गाधीजीकी टिप्पणी प्रकाशित होनेके बाद सम्पादकको एक पत्र मिला जिसमें "इस्लामके एक अनुयायी"की ओरसे इसके विरोधमें लिखा गया था: "हिन्दुओंकी नीची जातियाँ ही मुसलमान हुई, इस वक्तव्यका समर्थन भारतीय इतिहासकी किसी उर्दू या गुजराती पुस्तकमें नहीं मिलता। यदि इतिहासकी किन्हीं रद्दी पुस्तकोमें ऐसे विचार मिलते हैं तो वे हिन्दू कल्पनाकी गढ़न्त हो सकते हैं।... क्या श्री गाधी उस इतिहासका नाम बतानेकी कृपा करेंगे जिसमें उन्होंने ऐसी गम्भीर बातें पढ़ी है?" गाधीजीने इसी पत्रका उत्तर दिया है।

४२२. पत्र : न्याय-संघको

[जोहानिसबर्ग]
जून २२, १९०५

सेवामे
मन्त्री
सयुक्त न्याय-संघ
केप टाउन

महोदय,

मैंने विजर्टनके बडे वकील श्री ई० ए० वॉल्टर्सको[1] एक रकमकी वसूलीका काम सौंपा था जो जोहानिसबर्गके एक मुवक्किलको उसी जगह या जिलेके एक निवासीसे लेनी थी। जैसा कि कर्जदारने मुझे लिखा है, वह अपने ऊपर पूरी वाजिब रकम श्री वॉल्टर्सको अदा कर चुका है। परन्तु उन्होंने मुझे उस रकमका केवल एक हिस्सा भेजा है और मैंने पिछले बारह महीनोमे उनको जो पत्र लिखे हैं उनकी उपेक्षा की है। उनको यह काम फरवरी १९०४ के आस-पास सौंपा गया था। मैंने उनको अपना पिछला पत्र २५ मई १९०५ को लिखा था। इसमें उनको सूचना दी थी कि यदि वे मेरे पत्रोका उत्तर न देंगे तो मैं उनके इस कार्यकी ओर आपके सघका ध्यान आकृष्ट करूँगा। दुर्भाग्यसे उन्होंने उस पत्रका भी कोई उत्तर नही दिया है।

इसलिए मै इस मामलेको आपके ध्यानमे ला रहा हूँ ताकि संघ इसके सम्बन्धमे जो कार्यवाही करना उचित समझे वह करे।

आपका आज्ञाकारी,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), स० ३९३।

१. देखिए "पत्र: ई० ए० वॉल्टर्सको", मई २५, १९०५।

४२३. पत्र : टाउन क्लार्कको

[जोहानिसबर्ग]
जून २२, १९०५

सेवामे
टाउन क्लार्क
पो० ऑ० बॉक्स १०४९
जोहानिसबर्ग

महोदय,

विषय : *भारतीयोंका नगरपालिकाकी ट्रामोंमें यात्राका अधिकार*

यदि ट्रामवे-समितिने इस मामलेपर विचार कर लिया हो तो मै इस सम्बन्धमे प्रेषित अपने पत्रोके उत्तरके लिए आपको धन्यवाद दूंगा।

मेरे मुवक्किलने मासिक पासके लिए प्रार्थनापत्र भेजा था। यदि समिति उसके प्रार्थनापत्रपर सहानुभूतिपूर्वक विचार न करे तो वह इस मामलेको आगे बढानेके लिए उत्सुक है और अपने अधिकारकी परीक्षा करना चाहता है।

आपका आज्ञाकारी,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ३९७।

४२४. पत्र : पारसी रुस्तमजीको

[जोहानिसबर्ग]
जून २३, १९०५

श्री पारसी रुस्तमजी जीवनजी घोरखोदू
९, खेतवाड़ी गली
बम्बई

श्री सेठ रुस्तमजी जीवनजी घोरखोदू,

मैं पिछले अठवाडेमे डर्बन गया था। तभी दूकानपर भी गया। उमरसेठ, कैखुसरू, अब्दुल हक और मै — साथ-साथ बैठे और हिसाब देखा। भाडेकी आय बहुत घट गई है। वह २०० पौडके नीचे आ गई है तथा अभी और घटेगी। मगर इसका कोई उपाय नही है। एवान होटलकी सचालिका महिलासे मिला। उसने कहा कि भाडा कम होगा, वह तभी रहेगी। मैंने उससे भाडा कम करनेकी हाँ कर दी है। व्यापारमे भी कोई खास तत्त्व नहीं दिखाई देता। लेकिन अब्दुल हकमे हिम्मत है, इसलिए उमर सेठकी सलाह है कि थोडा बहुत व्यापार करे। वे खुद देखरेख रखनेकी बात कहते हैं। इसलिए मै मानता हूँ कि थोड़ा व्यापार करनेमें हर्ज नही है।

भाड़ेके बारेमें आपकी बात याद है। मगर आप इसमें उतावली न करें। समय बहुत खराब है, इसलिए भाड़ा तो घटेगा ही। लेकिन घबराना नहीं चाहिए। आप वहाँका काम प्रसन्न होकर पूरा करें। घर बनानेकी जरूरत साफ है, इसलिए उसमें विघ्न न होना चाहिए।

आपका पत्र अभी यहाँ नहीं आया। डर्बनमें भी नहीं पहुँचा था। निश्चित समय बाद दूकानको पत्र लिखना जरूरी है।

अपनी तबियतकी खबर दें।

माजीको सलाम कहें। जाल और सोराबसे पत्र लिखायें।

मो० क० गांधीके सलाम

गाधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ४०२।

४२५. पत्र : जालभाई सोराबजी ब्रदर्सको

[जोहानिसबर्ग]
जून २३, १९०५

सेवामें
श्री जालभाई सोराबजी ब्रदर्स
११०, फील्ड स्ट्रीट
डर्बन

प्रिय महोदय,

मुझे आपका पत्र मिला। मैंने श्री लॉटनका हिसाब देख लिया है। मैं सोचता हूँ, व्यावसायिक दृष्टिसे, इसके विरुद्ध कुछ नहीं कहा जा सकता। लाटीवाला गायब हो गया है, यह देखते हुए आप उसके बिलमें कमीकी प्रार्थना कर सकते हैं। मैं एवान होटलके बारेमें आपकी कार्यवाहीकी पुष्टि करता हूँ। कृपया छगनलालको बता दें कि ७ पौंड ४ शि० किस बाबत हैं जिससे वे बहियोंमें आवश्यक इन्दराज कर लें। उम्बिलो रोडकी जायदादके बारेमें, यदि किरायेदार ६ पौंडसे ज्यादा नहीं देना चाहता तो आप उसीके अनुसार किराया घटा दें।

आपका विश्वासपात्र,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ४०५।

४२६. पत्र : "स्टार"को[1]

[जून २४, १९०५ के पूर्व]

[सेवामें
श्री सम्पादक
स्टार
जोहानिसबर्ग]

महोदय,

मैं देखता हूँ कि श्री लवडेने इस उपनिवेशमें बड़ी संख्यामें भारतीयोंके आगमनके विषयमें अपना वक्तव्य फिर दुहराया है। इसमें उन्होंने उन सबूतोंकी पूरी उपेक्षा की है जिन्हें पहले जारी किये गये वक्तव्योंके बाद देख चुकनेकी बात वे स्वीकार करते हैं। श्री लवडेका खयाल है कि परवाना-विभाग ब्रिटिश भारतीयोंको यहाँ आनेसे नहीं रोकता, और जो लोग शरणार्थी नहीं हैं, वे भी इस उपनिवेशमें आ रहे हैं। मुख्य परवाना-सचिवकी रिपोर्टको देखनेके पश्चात्, कोई भी इसी नतीजेपर पहुँचेगा कि श्री लवडे उस रिपोर्टपर विश्वास करनेसे इनकार करते हैं। मैं तो यही कह सकता हूँ कि ब्रिटिश भारतीय शरणार्थियोंको भी इस उपनिवेशमें प्रविष्ट होनेमें बेहद कठिनाईका सामना करना पड़ता है। मेरे सामने परवाना-कार्यालयका एक पत्र है जो एक ब्रिटिश भारतीयको भेजा गया है। इस भारतीयने कोई सात महीने पूर्व परवानेके लिए प्रार्थनापत्र दिया था। प्राप्त पत्रमें उससे पूछा गया है कि क्या उसे अब भी परवानेकी जरूरत है। बेचारा शरणार्थी महीनों ट्रान्सवालमें अपना प्रवेशाधिकार सुनिश्चित किये जानेकी राह देखता रहा। उसके बाद मित्रहीन होनेसे भारत लौट गया। यह पत्र उन सज्जनने मुझे भेजा है जिनका पता वह परवाना-कार्यालयको दे गया था। और यह इस किस्मका एक ही मामला नहीं है। यूरोपीयोंको तो, वे चाहे शरणार्थी हों, चाहे न हों, माँगते ही परवाने मिल जाते हैं, परन्तु भारतीय शरणार्थियोंको प्रवेशसे पूर्व कमसे-कम दो महीने इंतजार करना पड़ता है। और तिसपर भी, प्रत्येक प्रार्थीको पहले अनेक जाब्तोंमें से गुजरना और बहुत-सा रुपया खर्च करना पड़ता है, तब कहीं वह उपनिवेशमें प्रवेश कर सकता है। इनमें से कई शरणार्थी तो ऐसे हैं जो पुराने शासन-कालमें, देशमें रहनेकी अनुमतिके मूल्यके रूपमें ३ पौंड कर दे चुके हैं। प्रार्थीको प्रार्थनापत्रका फॉर्म लेनेके लिए स्वयं किसी तटवर्ती नगरके परवाना-कार्यालयमें जाना आवश्यक है। फिर उसे वह फॉर्म किसीसे भरवाना पड़ता है। उसके लिए भी वह प्रायः कुछ फीस देता है। जब प्रार्थनापत्र जोहानिसबर्गके परवाना-कार्यालयमें पहुँच जाता है, तब जिन व्यक्तियोंके नाम हवालेके लिए दिये गये हैं, उनको पत्र भेजे जाते हैं। अब इन व्यक्तियोंको हलफनामे देने पड़ते हैं जिनपर आधे क्राउनका स्टाम्प लगाना होता है। यदि पूर्व निवासके सम्बन्धमें प्रस्तुत साक्षी सन्तोषजनक समझी जाती है तो प्रार्थीको उपनिवेशमें प्रवेशका अधिकार देते हुए सूचना भेज दी जाती है। अन्त यहीं नहीं हो जाता। इसके बाद प्रार्थीको जोहानिसबर्ग पहुँचना, परवाना-कार्यालयमें जाना और जिरहके लिए खुद पेश होना पड़ता है। यदि वह वहाँ परीक्षक अधिकारीको संतुष्ट कर दे तो उसे उपनिवेशमें रहनेका स्थायी अधिकारपत्र मिल जाता

1. यह *इंडियन ओपिनियन*में "श्री लवडेकी गलतबयानियोंका खण्डन" शीर्षकसे उद्धृत किया गया था।

है। मै ऐसे मामले भी जानता हूँ जिनमे कई आदमी वापिस लौटा दिये गये है क्योंकि वे परीक्षक अधिकारीको यह तसल्ली नही करा सके कि वे शरणार्थी है। इसलिए यदि परवाना कार्यालयके विरुद्ध कोई शिकायत कर सकते है तो वे, ब्रिटिश भारतीय ही है। और वे उस जरायमपेशा जातिके नही है जिनका जिक्र श्री हॉस्केनने किया है। श्री लवडेने एक बार फिर पीटर्सबर्गके महापौर द्वारा प्रकाशित आँकडोंका हवाला दिया है। परन्तु इन आँकडोके सम्बन्धमें ब्रिटिश भारतीय सघने पीटर्सबर्गके महापौरको जो चुनौती दी थी उसे उन्होने अबतक स्वीकार नही किया है, हालाँकि उत्तेजनाकी बात पहले उन्हीने की थी। मैं उस पत्रमे से कुछ शब्द उद्धृत करनेका साहस करता हूँ जो कि ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षने आपको ९ दिसम्बरको लिखा था।

मै नहीं मानता कि इस समय पीटर्सबर्गमें ४९ भारतीय व्यापारी हैं। भारतीय बस्तीसे अलग पीटर्सबर्ग नगरमें भारतीयोंके केवल २८ वस्तु-भण्डार है और इनमें कुछके मालिक एक ही भारतीय है। . . . युद्धसे पहले नगरके अन्दर कमसे-कम २३ भारतीय वस्तु-भण्डार थे।

इन सब दूकानदारोके नाम उसी पत्रमे दिये हुए है। इस वक्तव्यको मिथ्या कभी भी सिद्ध नही किया गया है। किन्तु श्री लवडे कहते है कि एशियाई व्यापारी-आयोगने रिपोर्ट दी है कि युद्धसे पहले पीटर्सबर्गमे बिना परवानेका केवल एक भारतीय व्यापारी था। यह बात भ्रामक है। मेरे सामने एशियाई व्यापारी-आयोगकी पूरी रिपोर्ट मौजूद है। पहले तो यह रिपोर्ट अन्तरिम है। दूसरे आयोगके सदस्य यह दावा नही करते कि उन्होने बिना परवानोके व्यापार करनेवाले भारतीयोकी सख्याका निश्चित पता लगा लिया है। आयोगके सदस्योने अपने सम्मुख प्रस्तुत किये गये दावोका उल्लेखमात्र किया है। उन्होने कहा है कि पीटर्सबर्गसे उन्हे केवल एक ब्रिटिश भारतीयका दावा मिला। कुल मिलाकर उनके सामने केवल २३३ दावे पेश किये गये थे। निश्चय ही इन दावोसे उन एशियाई व्यापारियोकी सूची खतम नही हो जाती जो कि यहाँ युद्धसे पहले मौजूद थे। समाचारपत्रोमे यह जानकारी भी छपी थी कि आयोगके सदस्यो द्वारा अपने अधिकारके सम्बन्धमे निर्णय देनेके बाद ब्रिटिश भारतीयोने अपने सब दावे वापिस ले लिये और आयोगकी कार्रवाईमे भाग लेना बन्द कर दिया। आयोगके सदस्योने यह भी लिखा है कि सर्वोच्च न्यायालयने उपनिवेशमे ब्रिटिश भारतीयोके स्वतन्त्रतापूर्वक व्यापार करनेके अधिकारके विषयमें, दायर किये गये प्रसिद्ध परीक्षात्मक मुकदमेका जो फैसला दिया, उसके कारण उनका काम बीचमे ही रुक गया। अवश्य ही श्री लवडे आयोगकी रिपोर्टके सम्बन्धमें इन सब तथ्योको जानते होगे। उसके बावजूद यदि उन जैसे जिम्मेवार राजनीतिक नेता ऐसी बात कहे जो कि सत्य सिद्ध नही की जा सकती, और जनतामें भ्रम फलानेका प्रयत्न करें तो यह आश्चर्य है। मै मानता हूँ कि प्रिटोरियाकी बस्तीमे भारतीयोकी आबादी बढ गई है। वह शायद पीटर्सबर्ग और पॉचेफस्ट्रूममें भी बढी है। परन्तु क्या वे यह तथ्य भी ध्यानमे रखेंगे कि जोहानिसबर्गकी बस्ती तो बिलकुल खतम ही हो गई है, पुरानी बस्तीमे जितने ब्रिटिश भारतीय रहते थे उनमें से अब आधे भी नही रहे है, और पिछले तीन महीनोमे कमसे-कम ३०० ब्रिटिश भारतीय जोहानिसबर्ग छोडकर चले गये है? श्री कनिंघम ग्रीनके सामने प्रस्तुत किये गये आँकडोके अनुसार, ट्रान्सवालमे युद्धसे पहले १५,००० भारतीय थे। परवाना-विभागने उनको १२,००० से अधिक परवाने नही दिये, और चूँकि उपनिवेश छोडकर जानेवाले भारतीयोकी सख्या उनसे अधिक है जो कि यहाँ आने दिये जा रहे है, इसलिए मै यह निवेदन करनेका साहस करता हूँ

कि इस समय इस उपनिवेशमे भारतीयोकी सख्या १२,००० से कम है। श्री लवडेने और भी कहा है कि नेटालके वे गिरमिटिया भारतीय जो हालमे मुक्त हुए है, पॉचेफस्ट्रूम चले गये है और वहाँ बस गये है, एव इस बातसे स्वय पॉचेफस्ट्रूमके भारतीय भी नाराज है। क्या माननीय सज्जन उन भारतीयोके नाम बतानेकी कृपा करेंगे जो इस प्रकार इस उपनिवेशमे आ गये है? वह ऐसा करेंगे तो निश्चय ही इससे उनके अपने निर्वाचको, एशियाई-विरोधी पहरेदारो, की भी बड़ी सेवा होगी। क्या वे उन भारतीयोके नाम बतानेकी भी कृपा करेंगे जिन्होने यह शिकायत की है कि यहाँ नेटालसे भारतीयोकी बाढ आ रही है? यदि वे ऐसा नही कर सकते तो क्या वे उन गम्भीर वक्तव्योको, जो उन्होने दिये है, वापिस लेनेका सौजन्य दिखायेंगे?

आपका, आदि,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४-६-१९०५

४२७. पत्र: दादाभाई नौरोजीको[1]

[जून २४, १९०५ के पूर्व]

[सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी
२२, कैनिंगटन रोड
लन्दन, द० पू०

महोदय,]

मै इसके साथ *इंडियन ओपिनियनकी* प्रति भेज रहा हूँ। उसके सम्पादकीयसे यह मालूम होगा कि १८८५ के कानून ३ के अन्तर्गत अब भारतीयोके लिए जमीनी मिल्कियत हासिल करना किस हदतक मुमकिन हो गया है। सर्वोच्च न्यायालयके फैसलेके बाद वे अचल सम्पत्तिकी मिल्कियत हासिल करनेके लिए अमली रूपमे स्वतन्त्र है बशर्ते कि उनको कोई यूरोपीय मित्र ऐसा मिल जाये जो उनका न्यासी बन सके। मै आपका ध्यान इस बातकी ओर इसलिए खीच रहा हूँ कि यदि वहाँ किसी कानूनका मसविदा बनाया जाये तो इस बातको तथ्य न मान लिया जाये कि १८८५ के कानून ३ के अन्तर्गत भारतीयोका अचल सम्पत्ति रखना असम्भव है।

यहाँ जो-कुछ हो रहा है उससे जान पड़ता है कि १८८५ के कानून ३ की जगह जो नया कानून बनेगा वह यथासम्भव १८८५ के कानून ३ के ढंगका होगा; अर्थात् नेटाल-सरकारका इरादा भारतीयोको १८८५ के कानून ३ के अन्तर्गत प्राप्त अधिकारोसे कुछ अधिक अधिकार देनेका नही है। इसलिए श्री लिटिलटनने जिस तरह यह कहा है कि सर्वोच्च न्यायालयके फैसलेको देखते हुए वे भारतीयोके व्यापारिक अधिकारोको सीमित करना मजूर नही करेंगे और उन्होने इस तरह एक रुख अपनाया है, उसी प्रकार अब उनको ऐसे किसी भी कानूनको मजूर

१. मूल उपलब्ध नही है। हम इसे दादाभाई नौरोजीके उस पत्रसे लेकर दे रहे है जो उन्होंने २४ जून १९०५ को भारत-मन्त्रीको लिखा था।

करनेसे इनकार कर देना चाहिए जिससे भारतीयोका अचल सम्पत्तिकी मिल्कियतका अधिकार सीमित होता हो।

नेटालकी ससदमे इस समय जिस भारतीय-विरोधी कानूनपर विचार किया जा रहा है उससे स्थिति खतरनाक है यह पता चलता है। प्राय हर *गज़टमें* उसके बारेमे कुछ-न-कुछ रहता है। बन्दूके वगैरा रखनेके बारेमे भारतीय वतनी-विभागके अन्तर्गत लाये जायेगे।

किसी भी देहाती जमीनपर, जिसके मालिक वे खुद नही है, जमीन-कर लगानेके उद्देश्यसे, उनका कब्जा कब्जा नही माना जायेगा।

डर्बन नगर-परिषद दूकानदारोपर परवाने लादनेका अधिकार माँग रही है और उन्हे विक्रेता-परवाना अधिनियमके अन्तर्गत ले आना चाहती है।

सयुक्त नगर-निगम अधिनियमका मशा भारतीयोको नगरपालिका-मताधिकारसे वचित करना है।

नेटाल *गवर्नमेंट गज़टमें* जो विधेयक अभी-अभी प्रकाशित हुए है उनका मशा वतनी भोजनालयोके मालिकोको विक्रेता-परवाना अधिनियमके अन्तर्गत लाना और फेरीवालोके परवानोके क्षेत्रको उस मजिस्ट्रेटी हलकेतक सीमित करना है, जिसमें वे जारी किये गये हो। (अबतक जिसके पास नगरपालिकाकी हदोके बाहर फेरी करनेका परवाना होता था वह नगरपालिकाके क्षेत्रोको छोड़कर उपनिवेशमे हर जगह फेरी लगा सकता था।)

इन कानूनोको बनाना अनावश्यक और अपमानजनक है। इसलिए मेरा खयाल है कि, जैसा कि लॉर्ड कर्ज़नने अपने बजट-सम्बन्धी भाषणमे कहा था, यदि नेटाल-सरकार अपनी भारतीय-विरोधी कार्रवाइयोको बन्द नही कर देती और विक्रेता-परवाना अधिनियममे सुधार करके कमसे-कम पीडित पक्षको सर्वोच्च न्यायालयमे अपील करनेका अधिकार नही देती तो अगला कदम उठानेका — अर्थात नेटालका गिरमिटिया भारतीयोका प्रवास बन्द कर देनेका — समय अब आ गया है।

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स: ४१७, जिल्द ४१४, इडिया ऑफिस।

४२८. लड़ाईके दिनोंकी अन्धेरगर्दी

यह ठीक है कि लडाईके दिनोमे देशभक्तिकी भावना प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमे जागृत होती है। इस भावनामे बहुत फायदा होता है। इसके नशेमे बहुत-से देश-हितैषी लोगोने थोडी-थोड़ी फौज लेकर ऐसे काम कर दिखाये है जिनसे ससार चकित हो गया है। एक ओर जब कुछ स्थानोमे ऐसी भावनाकी कुछ बाढ आई है तब दूसरी ओर युद्धमे काफी बन्दोबस्त करनेमे अधिकारियोकी असमर्थताका फायदा उठानेवाले कुछ खुदगर्ज लोगोकी कारगुजारियोके फल-स्वरूप सैकड़ो हजारो और लाखो लोगोकी जाने चली गई है, और वे तबाह हो गये है या गुलाम बन गये है। लडाईके जमानेमें कुछ साधारण लोगोने इस अन्धेरगर्दीसे लाभ उठाकर ऐसे काम किये है जिन्हे करनेकी बात वे किसी और समयमे सोच ही नही सकते थे, और, ऐसा करके उन्होंने इस अन्धेरगर्दीको और भी बढाया है। ऐसा प्रतीत होता है कि लडाईके समय नीति और प्रामाणिकताके नियम मानो बिलकुल बिसर ही जाते है। छोटी लड़ाईके मुकाबले बड़ी लड़ाईके दिनोमे इन नियमोका उल्लंघन और भी ज्यादा देखनेमे आया है।

इसका कारण यह बताया जाता है कि मनुष्यकी मनोवृत्तिकी परख सकटके समय होती हे। जबतक किसीको सफलतापूर्वक अपराध करनेका मौका नही मिलता तबतक तो यही माना जाता है कि उसकी परीक्षा नही हुई। जब वह मौका मिलनेपर भी अचल रहे तभी यह गिना जाता है कि वह कसौटीपर खरा उतर गया। ऐन मौकेपर ऐसी अटल दृढता क्वचित् और विरले लोगोमे ही पाई जाती है।

लडाई ज्यो-ज्यो बडी होगी त्यो-त्यो अन्धेरगर्दीकी सीमा बढेगी। क्रीमियाकी लडाई[1] के षड्यन्त्रोका जो भेद खुला और छोटे-मोटे दूसरे तथ्य प्रकाशमे आये, वे अत्यन्त दु खदायक जान पडे। उस युद्धके समय सैनिकोके लिए बहुतसे बूट थोकमे खरीदकर मोर्चेपर भेजे गये थे। सबके-सब बूट बाये पैरके थे। फौजके खानेके लिए ब्रिटेनसे बडी मात्रामे खाद्य-सामग्री रवाना की गई थी। वह खाद्य-सामग्री जब काममे लाई गई तब वह सहारा देनेके बदले नुकसानदिह साबित हुई क्योंकि उसमे बहुत दिनोका रखा हुआ सडा मास था। यही नही कि इसमे केवल व्यापारी ही लखपती बननेके लिए धोखाधडी करते थे, बल्कि स्वय युद्धभूमिपर आये हुए सेनापति और बड़ी सख्यामे अमूल्य प्राणोकी आहुति देनेके लिए कटिबद्ध राजनीतिज्ञ और राज्यके तथाकथित हितचिन्तक नेता एव मुखिया भी थे। शय्याओपर पडे हुए मरणासन्न सैनिको और सरदारोके लिए विशाल मात्रामे रवाना की हुई उपयोगी ओपधियाँ उचित अस्पतालोमे पहुँचनेके पहले ही अधबीच कही गायब हो गई थी। उनका कही पतातक नही चला। व्यापारी और तथाकथित देशभक्त सरदार या राज्यतन्त्रके सचालक, देशकी खातिर घर-बार छोडकर लडाईपर गये हुए सैकडो गरीब सैनिकोकी बलि चढाकर, अपनी खाली थैलियाँ भरनेके लिए सैकडो उपयोगी और कीमती वस्तुएँ इस प्रकार हजम करते रहे। सेबस्टपोलपर जो सेना पडी हुई थी उसका वर्णन करते हुए समाचारपत्रके एक सवाददाताने जब पूरी खबर लिखकर भेजी तब वहाँकी जनता इतनी अधिक उत्तेजित हो गई कि तत्कालीन मत्रिमण्डलको त्यागपत्र देना पड़ा। इसके अतिरिक्त और भी भयकर अत्याचारोकी बहुत बडी सूची है। लेकिन वे घटनाएँ इस अन्तिम बोअर युद्धमे घटी घटनाओके मुकाबिले उपेक्षणीय है। इस अन्तिम युद्धमे फौजके उपयोगके लिए खाद्य पदार्थो और कपडे आदि वस्तुओके जो ठेके दिये जाते थे उनकी और उन ठेकोकी पूर्ति किस प्रकार की जाती थी, इसकी बारीकीसे छानबीन करनेपर यह ज्ञात हुआ है कि जनताके पैसेकी निरी बरबादी ही हुई है। यह आपाधापी करनेवाले अधिकारियोकी खराबियोका ही नतीजा है। अपने परिचित और कृपापात्र ठेकेदारोको ठेके देनेवाले विभागोकी ओरसे आँख मीचकर ठेके दिये जाते थे। इनमे कुछ सामानपर ये लोग ५० प्रतिशतसे ५०० प्रतिशत-तक मुनाफा लेते थे। ऐसी अन्धेरगर्दी केवल ब्रिटेनमे ही नही थी। जब १८७९ मे फ्रासने हार खाई, सो केवल अपने लक्ष्मीके दास बने हुए सरदारोकी वजहसे खाई थी। उस युद्धके समय फ्रासीसी सरकारकी ओरसे प्रत्येक वस्तु तैयार रखी गई थी। प्रारम्भमे सारी व्यवस्था करनेमें लाखो और करोडो रुपये खर्च किये गये थे, लेकिन वह सारा खर्च गुप्त रूपसे किया गया था। जो-कुछ चीजे सचित की गई थी वे सब केवल कागज पर ही। पैसा पानीकी तरह बहाया गया था। फिर भी लडाईमे आम उपयोगकी वस्तुएँ तब लडाईके आरम्भमे ही कम पड गई थी। इस समयकी रूसी-जापानी लडाईकी खबरे भी हैरत-अगेज है। गत अप्रैल मासमें मचूरिया-स्थित फौजके और खाने-पीने और कपडेपर खर्च करनेके लिए ड्यूक ऑफ सरजेसको दस लाख रूबल दिये गये थे। मई मासमे सामानका यह थोक मचूरियाको रवाना कर दिया गया, परन्तु वह वहाँ पहुँचनेसे पहले ही मास्कोसे सीधा डेन्जिग पहुँच गया और वहाँसे

१. रूस और मित्र राष्ट्रों, अर्थात् तुर्की, इंग्लैंड, फ्रास और सार्डीनियाके बीच हुई थी (१८५३-१८५६)।

जर्मनीमे ले जाकर हजारो पौड मूल्यका माल मिट्टीके मोल बेच दिया गया। युद्धमे मृत सैनिको और सरदारोकी विधवाओके लिए बडी मात्रामे धन इकट्ठा किया गया था, परन्तु उसमे से गरीब विधवाओके हाथ एक दमडी भी नही लगी। युद्ध-स्थलमें भेजी गई चीनीकी बोरियोमें से चीनीके बजाय बालू निकली थी। ट्रान्स-साइबेरियन रेलवेकी लाइन बिछानेमे जो लाखो रूबल खर्च हुए वे कहाँ उड़ गये, इसका पता नही लगा। इसके अतिरिक्त रूसमे व्याप्त अन्धाधुन्धी और रिश्वत व भ्रष्टाचारके असख्य किस्से लिखे गये हैं।

इसके मुकाबिलेमे जापानी लोगोंका आचरण इससे बिलकुल विपरीत है। वहाँ युद्धकी स्थितिका लाभ उठानेका इरादा किसी भी व्यापारी अथवा अधिकारीने नही किया, जिसका परिणाम यह हुआ है कि जापानी सेनाको बहुत थोडे खर्चमे आवश्यक चीजे प्राप्त हो सकती है। दक्षिण आफ्रिकाकी लडाईके सम्बन्धमे बटलर-आयोगने जो विवरण प्रकाशित किया है उसमे बताया गया है कि उस समय जो अन्धेरगर्दी चली थी वह रूसियोसे किसी कदर कम नही थी। आम जनताके धनका जो उपयोग हुआ वह अत्यन्त खेदजनक समझा जायेगा। इसमे से अधिकतर नुकसान अयोग्य अधिकारियोके कारण हुआ था। वे अनुभवहीन और अशिक्षित थे। आयोगने और भी बताया है कि ऐसी बडी भूलके लिए अधिकारी ही निन्दनीय कहे जाने चाहिए। देशकी जो दौलत भारी-भारी करोके रूपमे एकत्र की गई थी, उसका बेहद दुरुपयोग किया गया था, और इसके लिए जो अधिकारी उत्तरदायी माने जाते थे वे अपनी आँख और कान बन्द किये बैठे रहे थे। इस सम्बन्धमे सर्वसाधारणके कामको चलानेमे प्रामाणिकता और न्यायके लिए अग्रेजी राज्यका जो नाम था उसपर बहुत कालिख लगी है। उस समयके अन्धेर-गर्दी, भ्रष्टाचार व रिश्वत और अप्रामाणिकताकी कोई हद नही रही है। आशा है, सरकारकी आँख आयोगकी इस रिपोर्टसे खुलेगी और वह अब भी जो-कुछ हो सकता है, करेगी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४–६–१९०५

४२९. पत्र : गो० कृ० गोखलेको

२१-२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुवफ़ड, रिसिक व ऍडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स न० ६५२२
जोहानिसबर्ग
जून २६, १९०५

सेवामें
माननीय प्रोफेसर गोखले सी० आई० ई०
८४ व ८५ पेलेस चैम्बर्स
वेस्टमिन्स्टर

प्रिय प्रोफेसर गोखले,

अवश्य ही अब आप इंग्लैंडमें अपने कार्यको सम्पादित करनेमें बहुत अधिक व्यस्त होंगे। मेरे मनमें इस विषयमें जरा भी सन्देह नहीं है कि दक्षिण आफ्रिकामें बसे ब्रिटिश भारतीयोंके लिए आपके हृदयमें स्थान अवश्य होगा। क्या आपके लिए भारतवर्षको लौटते समय दक्षिण आफ्रिका होकर जाना सम्भव है? यदि आप ऐसा कर सकें और इसकी सूचना मुझे कृपा करके पहलेसे ही दें तो दक्षिण आफ्रिकाके विभिन्न भागोंमें आपको ठहरानेकी उपयुक्त व्यवस्था कर दी जायेगी। मेरा सुझाव है कि आप दक्षिण आफ्रिकाको एक मास दें। यदि आप आ सकें तो दक्षिण आफ्रिकामें आपके पर्यटनका खर्च यहाँका भारतीय समाज उठायेगा। आप केप टाउनमें उतरें, किम्बर्ले, ब्लूमफॉंटीन, जोहानिसबर्ग और प्रिटोरिया होकर गुजरें, वहाँसे नेटाल जायें और डर्बन और पीटरमैरित्सबर्ग देखें, तदनन्तर डेलागोआ-बे जायें, और फिर वहाँसे या तो पूर्वी तटपर होकर मोजाम्बीक, जंजीबार, लामू और मोम्बासाकी यात्रा करें, या लंका होकर जायें और मार्गमें मॉरिशसमें ठहरें।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० ४१०५) से।

४३०. पत्र : कमरुद्दीन ऐंड कम्पनीको

[जोहानिसबर्ग]
जून २६, १९०५

सेवामे
श्री एम० सी० कमरुद्दीन ऐंड कं०
पो० ऑ० बॉ० १२६
डर्बन

प्रिय महोदय,

श्री डानककी मृत्युका समाचार पाकर मुझे अत्यन्त दु:ख हुआ। क्या आप कृपा करके उनके माता-पिताको उनके इस शोकमे मेरी सहानुभूति पहुँचा देंगे? मै इस तथ्यको समझ नही सकता। आपके पत्रके साथ उनका भी एक पत्र मेरे सामने है। उन्होने उसमे लिखा है कि उनका काम अच्छी तरह चल रहा है।

जब मै वहाँ दादा अब्दुल्लाके कामकाजके सम्बन्धमें जाऊँगा तब यदि मेरे साथ श्री अब्दुल गनी चलें तो मुझे बहुत सुविधा होगी।

आपका विश्वासपात्र,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), स० ४३३।

४३१. पत्र : अब्दुल हक और कैखुसरूको

[जोहानिसबर्ग]
जून २७, १९०५

श्री अब्दुल हक व कैखुसरू
श्री ५ भाई अब्दुल हक तथा कैखुसरू,

आप दोनोके खिलाफ शिकायत आई है कि आप रविवारका बहुत-सा वक्त पत्ते खेलनेमें गँवा देते है, लोगोको जवाब वगैरा देनेमे पूरी तरह विनययुक्त व्यवहार नही करते और सेठका काम जितनी चितासे देखना चाहिए उतनी चितासे नही देखते। मैं इसके बहुतसे अंशपर विश्वास नही करता। आपको पत्तोका शौक हो तो मैं खुद उसपर रोक नही लगाना चाहता। आप सेठका काम अच्छी तरह करते है, मै ऐसा मानता हूँ। आपमे विनय नही है, यह बात मेरे गले नही उतरती। फिर भी जो मेरे कानोमे आया है उसे अपने मनमे रख छोड़नेके बजाय आपको बताना ठीक समझता हूँ। पत्ते खेलते हो तो उसकी अपेक्षा अपने अवकाशके समयका उपयोग बाहर हवा खानेमें अथवा अच्छी पुस्तके पढ़कर अपना ज्ञान बढानेमे करें तो बहुत अच्छा हो। पत्ते खेलने ही हो तो उसमें थोडा ही समय लगायें। आप रुस्तमजी सेठका स्वभाव जानते है। उन्हे पत्ते बिलकुल पसन्द नही है। अगर खेलते हो तो उनका मान रखनेके विचारसे भी बिलकुल बन्द करना ठीक है।

ऊपरकी बात किसने लिखी होगी इसके बारेमे मनमे तनिक भी तर्क-वितर्क न करे। इससे किसीके ऊपर नाराज भी न हो। बल्कि जिसने लिखा है उसने हित-भावनासे लिखा है यह मानकर यदि कही खराबी सुधारने योग्य हो तो सुधार ले अथवा उस शिकायतके बारेमें आप अपना फर्ज अदा करते ही है, यह समझकर वेफिक्र रहे।

श्री नूरुद्दीनका पत्र फिर आया है। यदि इस रुक्केके सम्बन्धमे कुछ दावा न रहा हो, तो मै इसे दे देना ठीक मानता हूँ।

मो० क० गांधीके सलाम

गाधीजीके स्वाक्षरोमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), स० ४४९।

४३२. पत्र : "स्टार" को

जोहानिसबर्ग
जून २७, १९०५

सेवामे
सम्पादक
स्टार

महोदय,

अन्त उपनिवेशीय परिषदकी बैठकमे श्री लवडेने जो कुछ कहा था उसके सम्बन्धमें मैने आपको एक पत्र लिखा था। उसपर आपके पॉचेफस्ट्रूमके संवाददाताने कुछ बातें कही है। आशा है, आप मुझे अपने सौजन्यका लाभ उठाकर उनका उत्तर देनेका अवसर प्रदान करेगें। आपके सवाददाताका कहना है कि मुझे "भारतीयोके, विशेषत: निचले वर्गके भारतीयोके धारा-प्रवाह चले आनेका दु ख है।" मुझे अपने ऐसे किसी दु ख-प्रकाशनकी खबर नही है, और इसका सीधा-सादा कारण यह है कि मैंने पॉचेफस्ट्रूम या दूसरी किसी जगहमे भारतीयोके धारा-प्रवाह चले आनेकी बातपर कभी विश्वास नही किया। मैं बडी सख्यामें ऐसे किसी भी प्रवेशकी बातको, निश्चित जानकारीके बलपर, अमान्य करता हूँ। यह ठीक है कि पॉचेफस्ट्रूम और दूसरी जगहोमे भारतीय व्यापारियोकी तादादमे कुछ बढ़ती हुई है, किन्तु भारतीय व्यापारियोकी सख्यावृद्धिके मुकाबिलेमे गोरे व्यापारियोकी सख्यावृद्धि प्रमाणहीन अनुपातमे हुई है। क्रूगर्सडॉर्पकी सभासे सम्बन्धित अपने सपादकीयमे आप कहते है कि, "निस्सन्देह पीटर्सबर्ग उन लोकप्रिय स्थानोमे से है जहाँ पिछले कुछ दिनोसे भारतीय व्यापारी आर्कषित होकर बसे है।" यह बात गलत सिद्ध करके दिखा दी गई है। तथ्य यह है कि युद्धके पहले पीटर्सबर्गमे भारतीय व्यापारी अच्छे अनुपातमे थे, किन्तु उसके बाद वे किसी बडी तादादमे वहाँ नही पहुँचे।

इस सम्बन्धमे मैं निवेदन करना चाहता हूँ कि ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय समाजने सुलह और समझौतेकी जो प्रवृत्ति सदा दिखाई है उसका पर्याप्त श्रेय उसे कभी नही मिला। तरह-तरहके असम्भव उपाय सुझाये जाते है, केवल उन दो अचूक उपायोको अभीतक काममे नही लाया गया जो ब्रिटिश भारतीय सघ द्वारा सुझाये गये है। देशपर भारतीय "हमले" की सम्भावनाको रोकनेके विचारसे केपके ढगपर एक प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमका सुझाव दिया गया है। केवल यहाँ ही नही, आस्ट्रेलिया, नेटाल और अन्य स्थानोपर यह प्रयोग किया गया है और वह सफल हुआ है। ऐसा कहना निरर्थक है कि सीमापर कड़ी निगरानी नहीं रखी

जा सकती। नेटाल यह निगरानी रखनेमे सफल हुआ है। अनेक भारतीयोने नुकसान उठानेके बाद यह समझ लिया है कि यदि वे यह प्रमाणित न कर सके कि 'प्रवासी-अधिनियमके अन्तर्गत उन्हे उपनिवेशमे प्रवेश करनेका अधिकार है तो वे चार्ल्सटाउन अथवा अन्य किसी खुश्कीकी जगहसे नेटालके अचलोमें प्रवेश नही कर सकते। भारतीय किसी भी तरह यूरोपीय व्यापारको नही हथियाना चाहते, यह प्रमाणित करनेके लिए वे परवानोपर हर नगरपालिकाका ऐसा नियन्त्रण स्वीकार करते है जिसमे नगरपालिकाको व्यापार करनेका परवाना देने या न देनेका अधिकार तो हो किन्तु आत्यन्तिक मामलोमे उनपर सर्वोच्च न्यायालयमे पुनर्विचार हो सके। यह ठीक है कि यह कानून किसी वर्ग-विशेषके लिए नही होगा, बल्कि सबपर लागू होगा। किन्तु इसमे हानि क्या है? यदि सभी पक्ष मुख्य सिद्धान्तोपर एकमत हो जायें तो यह बिना किसी झझटके स्वीकृत हो सकता है; इससे उपनिवेशमे समय-समयपर एशियाइयोके विरोधमे उठता रहनेवाला दूषित आन्दोलन समाप्त हो जायेगा। और भारतीयोके मन स्थिर हो जायेंगे। हर प्रगतिशील सरकारके कानून परिवर्तनशील होते है। इसलिए, यदि उपर्युक्त दो उपाय काममे लाने पर उपयोगी सिद्ध न हो तो उस समय, और क्या आवश्यक है, इसपर विचार किया जा सकता है।

भारतीयोको कोई अशोभनीय समझौता स्वीकार करनेकी जरूरत नही है; विशेषत: श्री लिटिलटनकी इस जोरदार घोषणाके बाद कि कोई भी ऐसी सुविधा जो उन्हे युद्धके पहले प्राप्त थी उनसे छीनी नही जा सकती। इसमे कोई सन्देह नहीं है कि उन्हे बिना रुकावट आने और व्यापार करनेकी स्वतन्त्रता थी। और यही वे दो मुद्दे है जिनको लेकर उन्होने उपर्युक्त समझौतेकी बात चलाई है, बशर्ते कि १८८५ का अंग्रेजोके लिए अत्यन्त अशोभनीय कानून ३ तथा वे अन्य कड़े और अनावश्यक नियम विधान-संहितासे हटा दिये जाये जिनका आर्थिक परिस्थितियोसे कोई सम्बन्ध नही है। श्री ब्रॉड्रिकने[१] अभी हालमे ही कहा है कि ब्रिटेनका आस्ट्रेलिया, कैनेडा और दक्षिण आफ्रिका तीनोके साथ मिलाकर जितना व्यापार है उसकी अपेक्षा अधिक व्यापार अकेले भारतसे है और इसलिए साम्राज्यकी दृष्टिसे देखनेपर ब्रिटेनके बाद भारतका ही स्थान आता है। क्या फिर भी उपनिवेशी लोग उस देशके निवासियोको लगातार परेशान करते रहेंगे?

हमे मालूम हुआ है कि चीनी मजदूर-सघ अमरीकी सरकारको झुकानेमे सफल हुए है। लॉर्ड कर्ज़न बदला लेनेकी बात कह ही चुके है। तब, क्या यह समझना सभव नही है कि यदि भारत बदला लेनेपर उतारू हो जाये तो वह क्या कुछ कर सकता है? चीन और अमेरिका एक ही झडेके तले नही है, किन्तु दक्षिण आफ्रिका और भारत है। यदि भारत सरकार और दक्षिण आफ्रिकाकी स्थानीय सरकारोके बीच स्थायी मनोमालिन्य उत्पन्न हो जाये और यदि लॉर्ड कर्ज़नने जो धमकी कलकत्तेमें इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिलमे सोच-समझकर दी है, वे उसको अमलमें ले आयें तो क्या यह एक दुर्भाग्यपूर्ण बात नहीं होगी? यदि उपनिवेशी लोगोने उपर्युक्त समझौता-प्रस्तावके सीधे-सादे औचित्यको नही समझा तो ऐसी कोई बात होकर रहेगी।

आपका, आदि,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ८-७-१९०५।

१. भारत-मन्त्री।

४३३. पत्र : "रैंड डेली मेल"को

जोहानिसबर्ग
जून २८, १९०५

सेवामें
श्री सम्पादक
रैंड *डेली मेल*

महोदय,

आपने २६ तारीखके *डेली मेलमें* क्रूगर्सडॉर्पकी एशियाई-विरोधी सभाके सम्बन्धमें जो अग्रलेख लिखा है, उसके बारेमें शायद आप मुझे कुछ कहनेकी इजाजत दे देंगे।

यह मान लेनेके पश्चात् कि युद्धसे पहले ब्रिटिश सरकारने ब्रिटिश भारतीयोंके सम्बन्धमें कुछ वादे किये थे, आपने उन्हें सलाह दी है कि "उन्हें स्वीकार करना पड़ेगा कि उनकी स्पर्धासे बहुत-से गोरे व्यापारी व्यापारमें से निकल चुके हैं।" आपका पूरा सम्मान करते हुए भी मैं यह खयाल करनेका साहस करता हूँ कि आप भारतीय लोगोंको ऐसी बात स्वीकार करनेकी सलाह दे रहे हैं जो है ही नहीं। इन सभाओंमें से एकमें भी, कभी, किसी ऐसे गोरे व्यापारीका कोई विश्वसनीय उदाहरण पेश नहीं किया गया जो भारतीयोंकी स्पर्धासे व्यापारमें से निकला हो। यह बात इस आक्षेपकी जाँचके लिए एक आयोगकी नियुक्तिसे ही सिद्ध की जा सकती है। इस बीच खयाल पूर्णत भारतीयोंके इस तर्कके पक्षमें है कि उनकी स्पर्धासे "गोरे लोगोंका व्यापार नष्ट" नहीं हुआ या कोई गोरा व्यापारी "व्यापारमें से नहीं निकला।" खुद ट्रान्सवालमें ही, युद्धसे पहले भी और पीछे भी, गोरे व्यापारी अपने व्यापारमें जमे हैं। केपमें, एशियाई व्यापारियोंको व्यापारकी अधिकतम स्वतन्त्रता दे देनेपर भी, गोरे व्यापारियोंकी बहुत अधिक प्रमुखता है। नेटालके बारेमें भी, जहाँ भारतीय आबादी सबसे अधिक है, सर जेम्स हुलेटने उस दिन अपनी गवाहीमें शपथपूर्वक कहा था कि भारतीय व्यापारियोंने गोरे व्यापारियोंको गम्भीर रूपसे प्रभावित नहीं किया है। मेरा निवेदन है कि यह स्पर्धा बिलकुल फायदेमन्द रही है, क्योंकि इससे जीवनकी जरूरी चीजोंका मूल्य नीचे स्तरपर कायम रहा है। मुझे यह मान लेनेमें कोई बाधा नहीं है कि भारतीय लोग अपने रहन-सहनकी सादगीके कारण बाजी मार ले जाते हैं, परन्तु इसकी तुलनामें, गोरे व्यापारियोंको अंग्रेजी भाषाके ज्ञान, अपने ऊँचे संगठन-कौशल और यूरोपकी थोक-फरोश पेढ़ियोंसे सीधे सम्बन्धकी अतिरिक्त सुविधाओंके कारण जो लाभ मिलते हैं उनसे उनका पलड़ा बहुत ज्यादा भारी हो जाता है।

परन्तु, महोदय, आप भारतीयोंसे जो-कुछ स्वीकार कराना चाहते हैं उसे स्वीकार करनेके अतिरिक्त, वे वह सब कुछ माननेके लिए तैयार हैं जिसकी उनसे उचित रूपसे आशा की जा सकती है। वे यह स्वीकार करनेके लिए तैयार हैं कि १८८५के कानून ३ और अन्य अनावश्यक रूपसे कठोर नियमोंके स्थानपर, सामान्य परवानोंका नियन्त्रण नगरपालिकाओंको सौंप दिया जाये। इससे परवाने मंजूर करने या नामंजूर करनेका अधिकार, स्थानीय संस्थाओंको मिल जायेगा, बशर्ते कि कुछ खास मामलोंमें उनके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालयमें अपील की जा सके।

परेशानीका सबसे बड़ा कारण है उनके व्यापारिक अधिकार। यदि ऊपर सुझाये गये समझौतेको मान लिया जाये तो, किसी कठिनाई और किसी विलम्बके बिना, यह परेशानी दूर की जा सकती है।

आपका खयाल यह मालूम पडता है कि जो भारतीय इस समय यहाँ है उनके "कुछ नैतिक दावे है, और उनका निबटारा नये कानूनसे करना पडेगा।" परन्तु यह खयाल तथ्योसे मेल नही खाता। निःसन्देह उनका नैतिक दावा यह है कि व्यापार, सम्पत्तिके स्वामित्व और आवागमनके अधिकारका जहाँतक सम्बन्ध है, उन्हे यूरोपीयोके बराबर रखा जाये। किन्तु आज तो, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालयने फैसला दिया है, उन्हे जहाँ चाहे वहाँ रहने और व्यापार करनेका कानूनी अधिकार प्राप्त है, और, जैसा श्री लिटिलटन और श्री ब्रॉड्रिक दोनोने कहा है, उसको नया कानून बनाकर सीमित नही किया जा सकता; परन्तु फिर भी, लोकमतसे मेल बैठानेके लिए, भारतीय लोग अपने व्यापारपर, ऊपर बताई गई शर्तोके अनुसार, सामान्य और जातिभेद-रहित आधारपर पाबन्दी स्वीकार करनेके लिए तैयार है।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, ८-७-१९०५

४३४. पत्र : एम० एच० नाजरको

[जोहानिसबर्ग]
जून २९, १९०५

सेवामें
श्री एम० एच० नाजर
पो० ऑ० बॉक्स १८२
डर्बन

प्रिय श्री नाजर,

मै इस पत्रके साथ १०८ पौंडका ड्राफ्ट ब्योरेके साथ भेज रहा हूँ। वह संक्षेपमें नीचे लिखे अनुसार है:

	पौ० शि० पे०
डोमन	२९-१७-०
सुभाव	२२-१८-०
टी० महाराज	५-१८-६
वगड स्वामी	१६—७-०
दुबरी	३३—०-०
कुल	१०८—०-६

अन्य दावोकी रकमे अभीतक प्राप्त नही हुई है। सुरम स्वामीके वकालतनामेका पता मुझे नही चल पाया है और न वेरा स्वामीके वकालतनामेका ही। वन्दीथुमुका वकालतनामा आयोगके पास भेज दिया गया है, परन्तु वे इस दावेको ढूँढ़ नही पाये है। क्या आप बता सकते है कि उस व्यक्तिको पहले कितनी रकम मिली? यदि आप ऐसा कर पाये तो मै उस दावेकी रकम वसूल करनेमे समर्थ हूँगा।

मैंने नेटाल *गवर्नमेंट गज़टमें*, जो यहाँ आज मिला है, १९०३ के प्रवासी-अधिनियम सशोधन विधेयकके विषयमे प्रकाशित समाचार पढा है। यह इस सप्ताहके *ओपिनियनमें* प्रकाशित होना चाहिए, परन्तु मुझे आशका है कि ऐसा होगा नही। मेरा खयाल है कि यह आपका स्पष्ट कर्तव्य है कि आपको जिस दिन *गज़ट* मिले आप उसे उसी दिन देखे और उसमे जो कुछ महत्त्वपूर्ण मिले उसे फीनिक्स भेज दे। यह बिलकुल शोभा नहीं देता कि नेटालकी घटनाएँ घटित होनेके १५ दिन पश्चात् छपें। क्या आपने यह भी ध्यानमे रखा है कि ज्यों ही वे सब विधेयक, जिनके बारेमे हमने प्रार्थनापत्र भेजा है, कानून बन जाये या विधान-परिषदमे अतिम [अवस्थाओमे][1] स्वीकृत हो जायें, हमें [औपनिवेशिक] सचिवके पास आवेदनपत्र भेजना है? इस सूचनाके लिए [मुझे] आपपर ही पूरी तरह [निर्भर रहना है।]

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

संलग्न—२ कागज[2]
[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ४६८।

४३५. पत्र : मैक्स नाथनको

[जोहानिसबर्ग]
जून २९, १९०५

सेवामें
श्री मैक्स नाथन
केंपसे बिल्डिंग्स
जोहानिसबर्ग

प्रिय श्री नाथन,

विषय : *मीर आलम ऐंड लेवे*

मेरे मुर्हरिर श्री पोलक मुझे[3] सूचित करते है कि वे इस मामलेमें जब-जब आपके पास गये, आपने तब-तब उनका अनादर किया है। यह दु खद रूपसे आश्चर्यजनक है, क्योकि मै आपसे इस प्रकारके व्यवहारकी आशा नही करता था। वे आपके पास एक सीधी-सादी बात पूछनेके लिए गये थे और उन्होने मुझे बताया है कि आपने रूखे स्वरमे उनसे मिलने या उनको किसी प्रकारकी जानकारी देनेसे इनकार कर दिया। आपने ऐसा क्यो किया है?

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ४७०।

१. बड़े कोष्ठकोंमें लिखित यह शब्द तथा आगेके अन्य शब्द कार्यालयकी मूल प्रतिमें अस्पष्ट हैं। यहाँ इनकी पूर्ति हमने की है।

२. ये उपलब्ध नहीं है।

३. श्री हेनरी एस० पोलक बादको गाधीजीके बहुत ही घनिष्ठ साथी बन गये। वे *इंडियन ओपिनियनके* सम्पादक भी रहे। देखिए *आत्मकथा* भाग ४, अध्याय १८।

४३६. पत्र : पारसी रुस्तमजीको

[जोहानिसबर्ग]
जून ३०, १९०५

[सेवामें]
श्री रुस्तमजी जीवनजी
१२, खेतवाड़ी लेन
वम्बई

श्री सेठ पारसी रुस्तमजी,

आपका २० मईका पत्र मुझे मिला। आपने दो पत्र भेजे थे। उन्हे वापस भेजता हूँ। मैंने भाई कैखुसरू तथा अब्दुल हकको आपका और पत्र-लेखकका नाम वताये विना चिट्ठी[1] लिखी है। जवाव आनेमे अभी एक-दो दिनकी देर है। आप इस पत्रको वहुत महत्त्व न दें। आपके पास जो हिसाव-कितावके आँकड़े आते है आप उनसे अधिक जान सकेंगे। उनमे कोई त्रुटि हो तो मुझे लिखिये। चाहे जो हो आप दूकानकी चिन्ता न करे। हाथमें लिया काम सानन्द पूरा करे।

यह लिखे कि बच्चोकी पढ़ाईके वारेमे क्या किया है।

आप नहाने और घूमनेकी क्रिया जारी रख रहे है, यह जानकर प्रसन्नता होती है। वच्चोको भी साथ ले जाते होगे।

जामे-जमशेदकी जो प्रति भेजी है, उसमे अच्छा विवरण दिया है। मेरे सम्वन्धमे व्यौरा देना जरूरी नही था। इस तरह आत्मविज्ञापनके विना मै अधिक अच्छी लोकसेवा कर सकता हूँ। आप इस विपयमे मेरे विचार जानते ही है।

श्री लॉटनका लाटीवालाके सम्बन्धमें वहुत वड़ा विल[2] आया है। इस विषयमें मै हस्त-क्षेप नही कर सकता। इसलिए मैंने दूकानको लिख दिया है कि श्री लॉटनके पास जायें और उनसे विलकी रकममे उचित कमीकी प्रार्थना करें।

माजी को मेरा सलाम कहें। आप किस-किससे मिले, यह लिखें।

मो० क० गांधीके सलाम

संलग्न—२

गांधीजीके स्वाक्षरोमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ४८१–८२।

१. देखिए "पत्र: अब्दुल हक और कैखुसरूको" जून २७, १९०५।
२. देखिए "पत्र: जालभाई सोरावजी अदर्सको" जून २३, १९०५।

४३७. पत्र : ई० इब्राहीम ऐंड कम्पनीको

[जोहानिसबर्ग]
जून ३०, १९०५

श्री ई० इब्राहीम ऐंड क०
पो० बॉ० २७
स्टैंडर्टन

सेठ ई० इब्राहीमकी कम्पनी,

आपका पत्र मिला। पचोंने कोई खर्च ही नही लिया। श्री इस्माइल काजीके कामका बहुत-सा खर्च नही लिया। परन्तु फैसलेके सम्बन्धमे जो चिट्ठियाँ लिखी, आपसे और श्री काजीसे मिला, पचोको देनेके लिए कागजात तैयार किये और वे पचोके सामने पेश किये और बादमें पचोका काम किया — इस सबकी फीस ३० गिन्नी होती है। मैंने यह सारी फीस जुदा-जुदा तो नही लिखी, परन्तु जो कमसे-कम वाजिब लगी उतनी ही लिखी है। फिर भी अगर आप चाहे तो विगतवार बिल बनाकर भेज दूंगा। वह कितनी होगी सो नही कह सकता, क्योंकि जो ३० गिन्नी फीस नाम लिखी है वह इकट्ठी ही लिखी है।

आपका वकीलका खर्च नही मिल सकता क्योंकि उसके कामका सम्बन्ध पचोसे नही था। कुछ और पूछना हो तो पूछे।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोमें गुजरातीसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० ४८८।

४३८. पत्र : हाजी हबीबको

[जोहानिसबर्ग]
जून ३०, १९०५

श्री हाजी हबीब
पो० ऑ० बॉक्स ५७
प्रिटोरिया

श्री सेठ हाजी हबीब,

आपको इस्माइल आमदके बारेमें जवाब देना भूल गया। उसके विषयमें जबतक श्री लाग स्वीकार नही कर लेते तबतक क्या हो सकता है? मैंने उनसे कहा है, कुछ निश्चित होने पर लिखूँगा। मुझे लगता है कि आपको उतावली करनेकी आवश्यकता नही है। तमस्सुक (बॉंड) की जरूरत तुरन्त जान पड़े तो रुक्का पेश किये बिना तमस्सुक तैयार करा सकते है।

बीमेवाला बीमा करेगा। वह अपना एजेंट मकान देखनेके लिए भेजेगा। अगर मकान कसौटीपर ठीक उतरेगा तो बीमा करेगा, नही तो नही। वह जिस एजेंटको भेजेगा उसके आने और जानेका खर्च आपको देना चाहिए।

मेरे बिलका कुछ पैसा भेजेंगे तो आभारी होऊँगा। मुझे पैसेकी बहुत जरूरत है। सेठ हबीब मोटनसे भी कुछ भिजवा सके तो आभार मानूँगा। मेरा सारा रुपया फीनिक्समे चला गया है और अब भी जाता है।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके हस्ताक्षर-युक्त गुजराती पत्रसे; पत्र-पुस्तिका (१९०५), स० ४९२।

सामग्रीके साधन-सूत्र

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स. औपनिवेशिक कार्यालय, लन्दनके पुस्तकालयमें रक्षित कागजात, जिनमे दक्षिण आफ्रिकी राजकाज सम्बन्धी ज्यादातर सरकारी प्रलेख और कागजात भी शामिल है। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

गाधी स्मारक सग्रहालय, नई दिल्ली गाधी साहित्य और सम्बन्धित कागजातका केन्द्रीय संग्रहालय और पुस्तकालय। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

गवर्नमेंट ऑफ साउथ आफ्रिका रेकर्ड्स, जो पीटरमैरित्सबर्ग और प्रिटोरिया आर्काइव्जमें हैं।

इंडिया. भारतीय राष्ट्रीय काग्रेसकी ब्रिटिश समिति, लन्दनका मुखपत्र, १८९०–१९२१। देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४१०।

इडिया ऑफिस रेकर्ड्स· १९४७ तक लन्दन-स्थित इडिया ऑफिसमे रक्षित उन भारतीय मामलोसे सम्बन्धित प्रलेख और कागजात, जिनका सम्बन्ध भारत-मन्त्रीसे था।

इंडियन ओपिनियन (१९०३–): डर्बनमें स्थापित साप्ताहिक पत्र, जो १९१४में दक्षिण आफ्रिकासे रवाना होनेतक लगभग गाधीजीके सम्पादनमे रहा। इसमे अग्रेजी और गुजराती दो विभाग थे और कुछ समय तक हिन्दी और तमिल भी रहे।

पत्र-पुस्तिका (१९०५)· फीनिक्ससे प्राप्त गाधीजीके लगभग एक हजार पत्रोंकी कार्यालय-प्रतिका सजिल्द सग्रह। ये पत्र प्राय व्यवसाय सम्बन्धी हैं और १० मई तथा १९ अगस्तके बीच १९०५ मे लिखे गये थे।

आउटलुक· जोहानिसबर्गके काग्रीगेशनल चर्चका मुखपत्र।

साबरमती सग्रहालय, अहमदाबाद पुस्तकालय और सग्रहालय, जिसमे गाधीजीके दक्षिण आफ्रिकी काल और १९३३ तकके भारतीय कालसे सम्बन्धित कागजात रखे है। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३६०।

स्टार: जोहानिसबर्गसे प्रकाशित दैनिक सान्ध्य पत्र।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(१९०३ से १९०५)

१९०३

नवम्बर ९ : गांधीजीने दादाभाई नौरोजीको लिखा कि चुने हुए *बाजार* दूर और दुर्गम स्थानोंमें हैं।

नवम्बर १६ : साप्ताहिक पत्रमें दादाभाई नौरोजीको सूचना दी कि लॉर्ड मिलनरके १९०३ के खरीतेमें निर्धारित नीति कार्यान्वित नहीं की जा रही है।

दिसम्बर १ : भारतीय-राष्ट्रीय महासभाके मद्रास अधिवेशनको लिखा कि नेटालकी गम्भीर स्थिति अनुभव की जानी चाहिए और भारतीयोंके कष्ट दूर करनेके प्रयत्न तत्परता और लगनसे किये जाने चाहिए।

दिसम्बर ११ : ब्रिटिश भारतीयोंकी विशाल सभामें समस्त वर्तमान परवानोंको संरक्षण देनेकी प्रार्थना की गई।

दिसम्बर १२ : गांधीजीने दादाभाई नौरोजीको *बाजार*-सूचनामें सरकारके प्रस्तावित संशोधनके सम्बन्धमें तार दिया। इसमें यह सुझाव था कि कुछ भारतीय *बाजारों* या बस्तियोंमें व्यापार करनेकी बाध्यतासे मुक्त कर दिये जायें।

दिसम्बर १७ : प्रिटोरियाके असोसिएटेड चेम्बर्स ऑफ कॉमर्ससे बस्ती-कानूनमें संशोधनके सम्बन्धमें गम्भीरतापूर्वक विचार करनेकी अपील की गई।

१९०४

जनवरी १८ : ट्रान्सवाल विधान-परिषदके उस प्रस्तावपर, जिसमें भारतीयोंके व्यापारिक परवानोंका नवीनीकरण सीमित करनेपर जोर दिया गया है, दादाभाई नौरोजीको पत्र लिखा।

फरवरी ११ : जोहानिसबर्गके स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारीको भारतीय बस्तीमें गुंजाइशसे ज्यादा भीड़-भाड़ और गन्दी हालतके सम्बन्धमें पत्र लिखा और चेतावनी दी कि बस्तीमें भारी बीमारी फैलनेकी सम्भावना है।

फरवरी १५ (से पूर्व) : जोहानिसबर्गके अस्वच्छ क्षेत्रमें भारतीय बस्तीको देखा।

फरवरी १५ : जोहानिसबर्गके स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारीसे भारतीय बस्तीमें सफाईकी हालतमें सुधारकी कार्रवाई तुरन्त करनेका अनुरोध किया।

फरवरी २० : स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारीको अपने १५ फरवरीके पत्रमें अख्तियार किये गये रुखको दुहराते हुए फिर पत्र लिखा।

मार्च १ : स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारीको सूचित किया कि जोहानिसबर्गमें प्लेग आरम्भ हो गया है।

मार्च १८ : अधिकारियोंको खबर दी कि बस्तीमें कुछ "मृत या मरणासन्न" भारतीय लाकर "डाले" जा रहे हैं। डॉ० गॉडफ्रे, डॉ० पेरेरा और एक स्वास्थ्य-निरीक्षकके साथ सन्दिग्ध क्षेत्रका निरीक्षण किया।

मार्च ११ : टाउन क्लार्कने मुलाकात की और कहा कि नगर-परिषद कोई आर्थिक दायित्व नही ले सकती, अस्पतालकी व्यवस्थाकी और मिट्टीसे चिकित्सा करनेकी प्रेरणा दी, टाउन क्लार्कको बताया कि भारतीय प्लेगका मुकाबला करनेके लिए क्या-क्या कदम उठा रहे है।

मार्च ११ : *स्टारके* प्रतिनिधिने प्लेगकी समस्या पर मुलाकात की।

अप्रैल ५ : प्लेगकी महामारीके सम्बन्धमे जोहानिसबर्गके अखबारोको पत्र लिखा, जोहानिसबर्गके स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारी डॉ० पोर्टरके साथ किया गया पत्र-व्यवहार प्रकाशित किया।

अप्रैल १४ : प्लेगके प्रश्नपर *रैंड डेली मेलको* पत्र लिखा।

अप्रैल १८ : लोक-स्वास्थ्य समितिको क्रूगर्सडॉर्पकी भारतीय बस्तीका तफसीलवार मूल्याकन भेजा।

अप्रैल २० : प्लेग महारोगके सम्बन्धमे *इंडियाको* विस्तृत पत्र लिखा।

मई ११ : सर्वोच्च न्यायालयने निर्णय दिया कि १८८५ के कानून ३ मे उल्लिखित "निवास" शब्दके अन्तर्गत व्यवसायका स्थान नही आता।

सितम्बर ३ (से पूर्व) *:* ब्रिटिश भारतीय सघकी ओरसे उपनिवेश-सचिवको प्रार्थनापत्र भेजा।

सितम्बर ३ : दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोके प्रश्नपर *स्टारको* पत्र लिखा।

सितम्बर ५ : दादाभाई नौरोजीको पत्र लिखा कि भारतीय प्रश्नसे सम्बन्धित मामले "सकटापन्न स्थिति" मे पहुँच चुके है।

अक्टूबर १ : इंडियन ओपिनियनकी पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर ली और साथ ही उसका प्रबन्ध भी सँभाला। टोगाट गये। डर्बनकी यात्रामे रस्किनकी *अनटू दिस लास्ट* पुस्तक पढी। उसमे निर्दिष्ट आधारपर एक बस्ती बसानेका निश्चय किया।

अक्टूबर १० : डर्बनमे अपने और अन्य भारतीय नेताओके सम्मानमें आयोजित भोजमे आत्म-त्यागपर भाषण दिया।

अक्टूबर १५ : इंडियन ओपिनियनके मालिक श्री मदनजीतको भारत वापस आनेसे पूर्व विदाई देनेके लिए डर्बनमे किये गये समारोहमे भाषण दिया।

नवम्बर ३ : लॉर्ड रॉबर्ट्सको मानपत्र देनेकी तारीख पूछनेके लिए उपनिवेश सचिव, प्रिटोरियाको तार दिया।

नवम्बर १० : प्रिटोरियामे एशियाई-विरोधी सम्मेलन हुआ जिसमे ब्रिटिश भारतीयोको उपनिवेशसे निकालनेके लिए कडी कार्रवाई करनेकी माँग की गई।

नवम्बर ११ : लॉर्ड रॉबर्ट्सको मानपत्र दिया।

नवम्बर १७ : ब्रिटिश भारतीयोकी उस सभामे भाग लिया जो ट्रान्सवालमे एशियाइयोके प्रवासके सम्बन्धमें आयोजित "सम्मेलन" की कार्रवाईका विरोध करनेके लिए की गई थी।

नवम्बर-दिसम्बर : फीनिक्स बस्तीकी स्थापना की।

दिसम्बर ३ : रैंड प्लेग-समितिके आदेशसे जो सामान नष्ट कर दिया गया था उसके हर्जानेकी माँगोके सम्बन्धमे कार्यवाहक लेफ्टिनेट गवर्नरको प्रार्थनापत्र भेजा।

दिसम्बर ९ : भारतीयोके व्यापारिक परवानोके सम्बन्धमे *स्टारको* पत्र लिखा।

दिसम्बर १४ : नेटाल भारतीय काग्रेसकी बैठकमे परीक्षात्मक मुकदमेके सम्बन्धमें श्री हुंडामलको आर्थिक सहायता देनेका प्रस्ताव किया।

दिसम्बर २४ (से पूर्व) : एशियाई-विरोधी सम्मेलनमे भारतीयोपर किये गये विद्वेषपूर्ण हमलेके जवावमें *स्टारको* पत्र लिखा।

दिसम्बर २४ : फीनिक्स बस्तीसे *इंडियन ओपीनियनका* पहला अक निकाला।

१९०५

जनवरी १० : डर्बनमें पुस्तकालयके उद्घाटन-समारोहमें भाषण दिया।

जनवरी १३ : इंडियन ओपिनियनके सम्बन्धमें श्री गोपाल कृष्ण गोखलेको पत्र लिखा और भारतीय बालकोंके लिए एक स्कूल खोलनेका इरादा व्यक्त किया।

फरवरी १७ : पारसी रुस्तमजीके साथ केप टाउन गये, जोहानिसबर्गको रवाना हुए।

मार्च ४ : जोहानिसबर्गकी थियोसॉफिकल सोसाइटीमें हिन्दू धर्मके सम्बन्धमें पहला व्याख्यान दिया।

मार्च ९ : एल० डब्ल्यू० रिचको विदाई देनेके लिए जोहानिसबर्गमें किये गये समारोहमें भाषण दिया।

मार्च ११ : हिन्दू धर्मके सम्बन्धमें दूसरा व्याख्यान।

मार्च १८ : हिन्दू धर्मके सम्बन्धमें तीसरा व्याख्यान।

मार्च २५ : हिन्दू धर्मके सम्बन्धमें चौथा और अन्तिम व्याख्यान।

अप्रैल ७ : नेटाल विधानसभाको उन विधेयकोंके सम्बन्धमें प्रार्थनापत्र भेजा जो "नगरपालिका निगमोंसे सम्बन्धित कानूनके सशोधन और समन्वय" और "बन्दूक आदि शस्त्रोंके प्रयोग" के नियमनके सम्बन्धमें रखे गये हैं।

मई : गांधीजी इन दिनोंके आसपास तमिल भाषा सीख रहे थे।

मई ६ : भारतके भूचाल-पीड़ितोंकी सहायताके लिए धन-संग्रहके प्रयत्न किये।

जून ७ : नये उच्चायुक्त लॉर्ड सेल्बोर्नको मानपत्र भेंट किया।

जून ९ : (के बाद) : डर्बन और फीनिक्स बस्ती गये।

जून १६ : डर्बनमें नेटाल भारतीय कांग्रेसकी बैठकमें भाषण दिया।

सांकेतिका

अ

आ

इ

ई

ऐ

ओ

क

घ

च

ठ

ड

त

थ

द

म

ल

ह